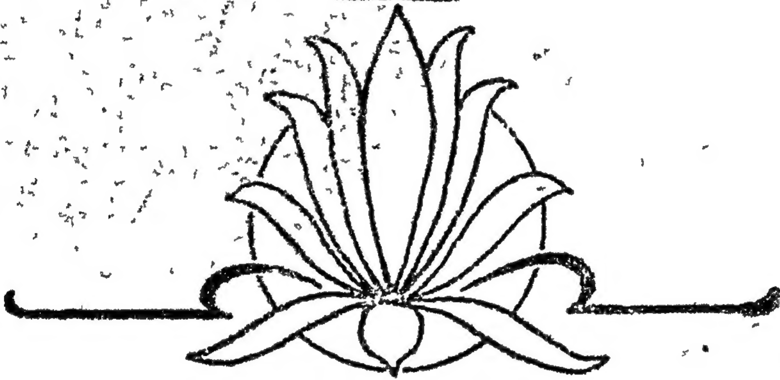
ओ३म्

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमाला का प्रथम रत्न

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

प्रथम खण्ड



प्रकाशक:-

ठाकुर नाथूसिंह

मैनेजिंग ट्रस्टी

कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

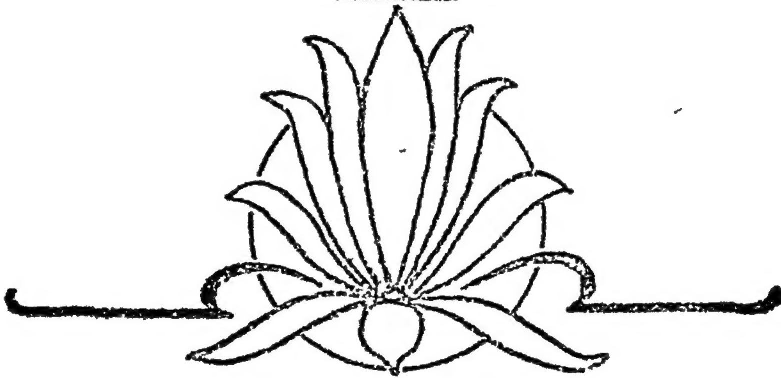
पो० कालेड़ा-कृष्णगोपाल (जि० अजमेर)

ओ३म्

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमाला का प्रथम रत्न

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

प्रथम खण्ड



प्रकाशकः-

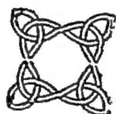
ठाकुर नाथूसिंह

मैनेजिंग ट्रस्टी

कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

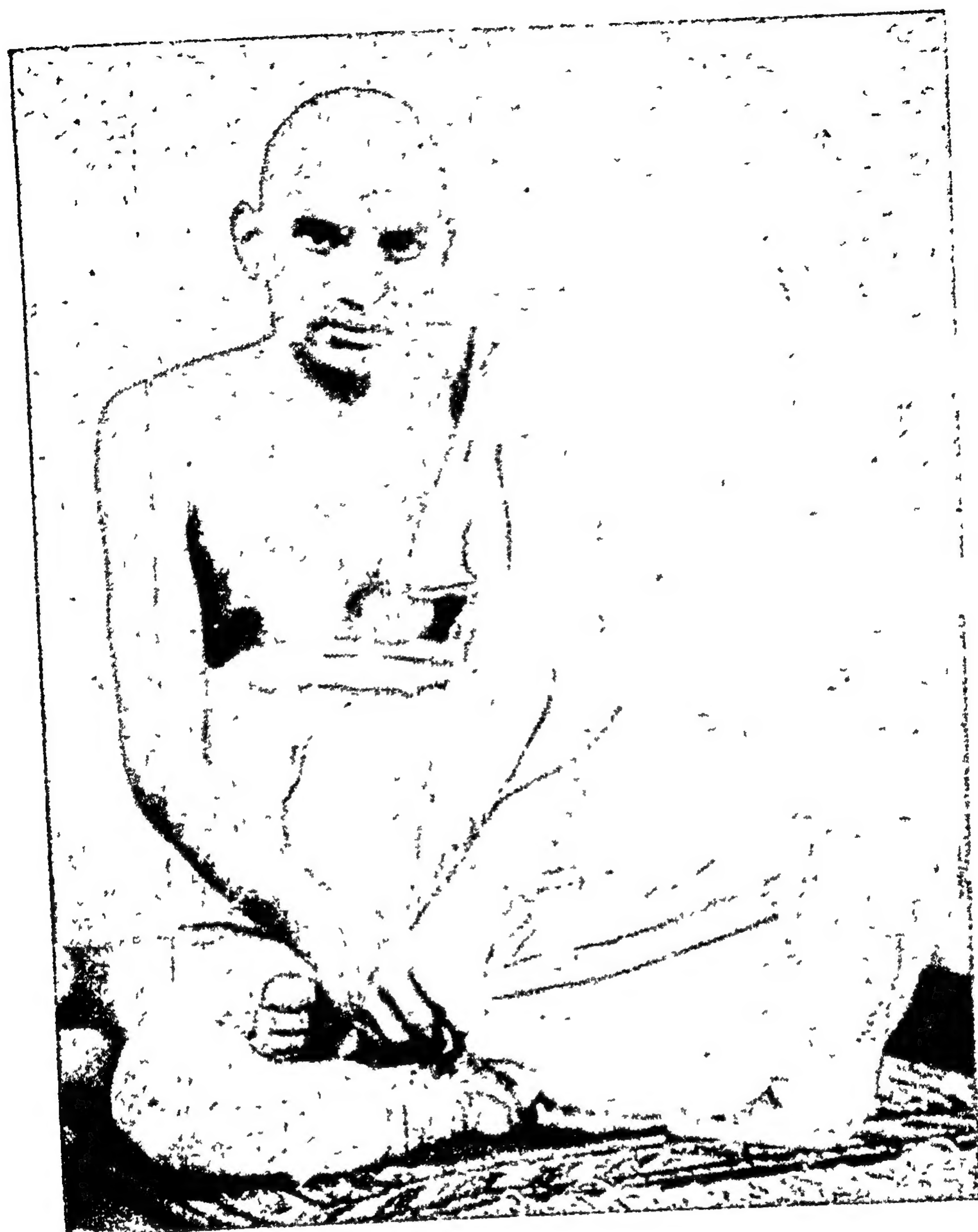
पो० कालेड़ा -कृष्णगोपाल (जि० अजमेर)

प्रथमसस्करण जुलाई १९३२ ई०
द्वितीय सस्करण जुलाई १९३८ ई०
तृतीय सस्करण अप्रैल १९४० ई०
चतुर्थ सस्करण मार्च १९४५ ई०
पञ्चम सस्करण जनवरी १९४७ ई०
षष्ठ सस्करण जनवरी १९४९ ई०
सप्तम सस्करण सितम्बर १९५१ ई०



अनन्त श्री विभूषित

पूज्यपाद परम योगि-राज टाटबाबा महाराज



यह हमारा सौभाग्य है कि आपने अत्यन्त उदार चित्त होकर इस संस्थाके सेवा कार्यके ति सहानुभूति प्रकट करते हुए हर तरह से सहायता प्रदान करनेका अभिवचन दिया है।

आपकी अनुपम कृपासे देशमे अनेकानेक परोपकारी संस्थाएं जनहितार्थ कार्य कर रही हैं। आपके कर कमलोमें

यह ग्रन्थ

सादर सप्रेम समर्पित ।

निवेदन

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

श्री महाप्रभु, कल्याणरायकी असीम कृपासे "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" का षष्ठ संस्करण प्रकाशित होते ही ३००० प्रति शीघ्र बिक गयी। फिर सप्तम संस्करण छपानेमें अति शीघ्रता करनी पड़ी। किन्तु पुनः संशोधन करनेकी सुविधा तुरन्त न मिलने के हेतुसे देर हुई है। यह संस्करण विद्यार्थी वर्गको विशेष उपयोगी हो, इस बातको लक्ष्यमें रख करके इसे पूज्य स्वामीजी महाराजने आद्योपान्त देखकर शुद्ध कर दिया है। फिर न्यूनता और त्रुटियोंको दूर करनेके लिये डा० आयुर्वेदरत्न श्री० कविराज प्रतापसिंहजी आयुर्वेदाचार्य—डाइरेक्टर—राजपूताना आयुर्वेद बोर्डको निवेदन किया गया। आपने निष्काम भावसे विशेष शुद्ध कर दिया है। अतः हम आपके हृदयसे आभारी हैं।

लक्ष्यपूर्वक शुद्ध करनेपर भी दृष्टि भेदसे न्यूनता भासना या भूल रहजाना स्वाभाविक ही है। कारण मनुष्यमात्रकी बुद्धि मर्यादित है। विज्ञानकी नूतन नूतन शोध हो रही है। नये नये प्रश्न उत्पन्न हो रहे है। इनके अतिरिक्त लेखन और प्रतिलिपिमें प्रमादवश भूल होना, कम्पोजिटरोंके भ्रम-प्रमादसे नवीन भूलें हो जाना और प्रूफरीडरोंके दृष्टिदोषसे कुछ भूल रह जाना, आदि कारण भी उत्पन्न होते हैं। इन सबके लिये सहृदय पाठक क्षमा प्रदान कर, उन त्रुटियोंकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे, ताकि आगामी संस्करणमें उनको दूर करनेका प्रयत्न किया जा सके।

वर्तमान में कागजका मूल्य अधिक बढ़ गया है, छपाई, एडवांस आदि खर्च भी दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जाता है। पहले प्रेसवालोंको कुछ रकम एडवांस देनेसे या केवल विश्वासपर पुस्तक छप कर तैयार हो जाती थी। अब कागजका पूरा मूल्य दे देना पड़ता है और छपाईके लिये भी रकम अेडवांस देनी पड़ती है। छपाई भी समय पर नहीं होती। प्रूफ-रीडिंगकार्य भी संतोषप्रद नही होता। इस तरह पुस्तक छपवानेमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, वह वर्णनातीत है।

इस संस्थाने अभीतक चार लखसे अधिक गरीब रोगियोंको औषधदान दिया है। एवं निम्न १३ पुस्तकें प्रकाशित करके आयुर्वेद साहित्यकी सेवा की है।

१. रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथमखण्ड (यही पुस्तक)

२. रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह (द्वितीय खण्ड, द्वितीय संस्करण छपेगा)

३. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम खण्डका गुजराती अनुवाद।

इस ग्रथमें प्रयोग कहासे लिये हैं या किनसे मिले हैं, यह प्रयोगके साथ स्पष्ट लिखा है। फिर भी प्रमादवश प्रयोगदाताका नाम छूट गया हो, उनके भी हम आभारी हैं।

षष्ठ सस्करण की ५०० प्रति ग्लेज कागज पर और २५०० न्यूज पेपर पर छपवाई थी। इस सस्करणके लिये २३ × ३६–३६ पौण्डके ग्लेज पेपर १८० रीम, टीटाघर मिल और उनके एजेण्ट वैदिक यन्त्रालयके मैनेजरके सौजन्यसे मिले हैं, जिससे सब प्रति ग्ले कागज पर छपवाई हैं। पुस्तककी छपाई जॉब प्रिंटिंग प्रेस अजमेरने अति सद्भाव पूर्वक की है। इस सबन्धमें इन सबके हम कृतज्ञ हैं।

महायुद्धकी समाप्तिके बाद भी क्रमश महगाई बढती जाने और अभी ५०,०००) रु० कर्ज शेष रहनेके हेतुसे औषधालयका सचालन अधिक कष्टसे हो रहा है। इस हेतुसे इच्छा होते हुए भी इस सस्करणके मूल्यमें कमी नही कर सके हैं।

भारतवर्षमें आयुर्वेद साहित्यकी सेवा करनेवाली धर्मार्थ सस्थाएं बहुत कम है। जो है उन सबमेंसे इस सस्थाकी यह विशेषता है, कि इस सस्थाने अभीतक अेक भी पाठ नही छिपाया, न कोई औषधि पेटेन्ट कराई। औषधका पाठ छिपाये और पेटेण्ट कराकर औषधविक्री करनेपर इच्छानुरूप १०-२० गुना मूल्य अधिक मिल सकता है, किन्तु अनुभव गुप्त रखनेके हेतुसे आयुर्वेद साहित्यकी उन्नतिमें बाधा पडती है। यह पाप इस सस्थाको न करना पडे, इसी हेतुसे अभीतक कष्ट सहन कर रही है।

यह सस्था जनता जनार्दनकी है। श्रीहरिको इस सस्थासे विशेष सेवा लेनी होगी, तो उदारचित्त आयुर्वेदानुरागी सज्जनोंके हृदयमें प्रेरणा करेंगे और सहायता दिलायेंगे किन्तु ध्येयसे पतित होकर लाभ नही उठाया जायगा।

इस सस्थाने निष्काम भावसे सेवा की है और कर रही है। अत इस औषधालयमें अभी तक पूर्ण सत्यका पालन होता आरहा है। रोगी, ग्राहक और लेनदेन करनेवालोंमेंसे किसीके साथ अभी तक अन्यायपूर्वक व्यवहार नही हुआ है और भविष्यमें भी इस नीतिका पालन आग्रहपूर्वक होता रहेगा। महाप्रभु कल्याणराय इस सेवा यज्ञको सदा चलाते रहे, ऐसी हार्दिक प्रार्थना है।

पो० कालेडा-कृष्णगोपाल
(अजमेर राज्य)
ता० १-८-१९५१

जनता जनार्दनका कृपाकांक्षी
ठाकुर नाथूसिंह

भूमिका।

यह बात निर्विवाद है कि सत्य किसीसे छिपाये नहीं छिप सकता। अन्तिम निर्णय भी वही होता है, जो सत्य रहता है। सारांश-सत्यकी सदा विजय ही होती है। सत्ये नास्ति भयं क्वचित्---इस उक्तिके अनुसार सत्य को कहीं किसी प्रकारका भय भी नही रहता। यही उक्ति हमारे आयुर्वेदके लिये चरितार्थ हो रही है। चाहे कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करे, अन्तमे उसे मानना ही पड़ेगा कि आयुर्वेद सिद्धांत ध्रुव एवं सत्य हैं, यूरोप आदि शीत कटिबन्ध निवासियोंके आहार विहारकी ओर दृष्टि रखकर अद्यावधि जितनी एलोपैथिक आदि औषधिया बनी है, वे उनके लिये चाहें हितकारी हों; परन्तु हमारे महर्षियोंका यह कथन पूर्ण सत्य है कि:—

"यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम।"

अर्थात् जो प्राणी जहां जन्मा है, उसके लिये उसी देशके ओषधि एवं आहार-विहार हितकारी होते हैं। अर्थात् भारतीय आर्योंके लिये भारतीय ओषधि, अन्न और विहार ही हितकारी हैं। यही युक्ति सिद्धांतसूत्रके तात्पर्यार्थ है। इसी सिद्धांतके अनुसार भगवान् स्वयंभूने आर्योंके कल्याणार्थ वेदोंके अनेक सूक्तोंमे आयुर्वेदोपदेशका विवेचन किया है कि, किस प्रकार प्राणिमात्र नाना महौषधियोंसे आयु और आरोग्यका रक्षण कर दीर्घायु प्राप्त कर सकता, एवं क्षयादि भयंकर रोगोसे छुटकारा पा सकता है। किन्तु वेद या वेदवाणी, सब ही के लिये सुलभ नही है। सूत्ररूपसे कहे हुए इन गूढ़ सूक्तों तथा मंत्रोके गम्भीर अर्थको यथावत् जान लेना भावी अल्पज्ञ सन्तानोके लिये टेढ़ी खीर है; इस भावनासे प्रेरित हो, सम्पूर्ण जगत्के कल्याणेच्छुक आत्रेय, भारद्वाज, काश्यप, पाराशर, सुश्रुतादि महर्षियोंने इन वेदसूक्तोंके विस्तृत व्याख्यान रूप आयुर्वेदिक संहिता-ग्रंथोंकी रचना की थी। इनमेंसे कतिपय कालवशात् लुप्तप्रायः हो गये हैं। वर्तमान कालमें केवल अत्रिसंहिता, भेडसंहिता, काश्यपसंहिता, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहितादि थोड़ेसे संहिता ग्रंथ विद्यमान हैं।

वेदोकी तरह इन संहिताओंमें भी अर्थगाम्भीर्य एवं मनुष्योंके उत्तरोत्तर बलबुद्धि के ह्रासका अनुभव कर वाग्भट्ट, वृन्द, वंगसेन, चक्रपाणि, गयदास, शार्ङ्गधर, विजयरक्षित, श्रीकण्ठदत्त, हेमाद्रि चन्द्रनन्दन, अरुणदत्त, डल्हण, भावमिश्रादि अनेक आचार्योंने इन संहिताओंपर व्याख्यायें, स्वतन्त्र ग्रंथ रचनाएं की हैं। इन धन्वन्तर-आत्रेय साम्प्रदायिक-संहिता ग्रंथोंके साथ-साथ भगवान शंकरके सिद्ध साम्प्रदायिक ग्रंथोंका भी अवतार हुआ। धन्वन्तरात्रेय साम्प्रदायिक ग्रंथोंमें केवल वनौषधियों द्वारा जैसे चिकित्साका वर्णन है, वैसे ही सिद्धरसार्णव, काकचण्डीश्वर, रसरत्नाकरादि सिद्ध-साम्प्रदायिक ग्रंथोंकी चिकित्सामें पारदादि, रसोपरस स्वर्णादि धातुपधातु हीरकादि मणि आदिका महत्त्व विशेष है। सारांश यह है कि उपर्युक्त सभी ग्रंथ सम्प्रदायमें अपने-अपने विषयोंका स्थान रखते वाले हैं। धान्वन्तर साम्प्रदायिक शल्यचिकित्सा (Surgery) आत्रेय साम्प्रदायिक कायचिकित्सा (Medicines) और सिद्धसाम्प्रदायिक रसायन' शास्त्र (Chemistry) के पथप्रदर्शक रहते हुए भी वे महात्मागण पारस्परिक हस्तक्षेप करनेवाले नहीं थे और न वर्तमानकी तरह वे एक दूसरेको देख कुढ़ने-चिढ़ने वाले ही थे, अपितु सबका परस्परमें बड़ा आदरभाव था। अपने शास्त्रके अधिकारकी बात न रहने पर वे स्पष्ट कहते थे, कि यह इस शास्त्रका विषय नहीं किन्तु अमुक शास्त्र का विषय है। उदाहरणार्थ—शस्त्रक्रिया साध्य विषयका पूरा वर्णन करनेके बाद औषधि विषयके प्रारम्भमें ही महर्षि सुश्रुताचार्य कहते हैं, कि—"पराधिकारे न विस्तरोक्ति -अर्थात् यह कायचिकित्सा शास्त्रका विषय है, अतः मैं यहां विस्तार नहीं करना चाहता। इसी प्रकार चरकाचार्यने भी अपने संहिता ग्रंथमें केवल औषधि साध्य बातको ही कहा है। शस्त्रक्रियासाध्य रोगके विषय में स्पष्ट कह दिया है कि, "अत्र धान्वन्तराणामेवाधिकार" अर्थात् इस शस्त्रक्रियाके विषयमें धन्वन्तरीसंहिताके अनुयायियोंका ही अधिकार है। यह इस शास्त्रका विषय नहीं है। इत्यादि।

किन्तु आगे चलकर इन तीनों सम्प्रदायोंकी चमत्कारिक-चिकित्साप्रणालियोंकी उपयुक्तताके अनुभव करनेवाले कतिपय दीर्घदर्शी आचार्योंने सबका समन्वय एक ही ग्रंथमें रहना अच्छा समझा और वैसा ही कर भी डाला। उदाहरणार्थ—चक्रदत्त, वंगसेन, शार्ङ्गधर संहिता भावप्रकाश, योगचिन्तामणि, योगरत्नाकर आदि ऐसे समन्वयात्मक अनेक ग्रंथ आज हम सबके समक्ष विद्यमान हैं। इसी प्रकार अल्प संस्कृतज्ञ एवं केवल हिंदी जाननेवालोंके लिये इन सब ग्रंथोंकी भाषाटीकाएं भी बनी और छपी हैं। इतना ही नहीं, कतिपय आधुनिक वैद्य महाशयोंने केवल सरल हिंदीमें संग्रह तैयार किये हैं, जो छपकर बिक रहे हैं। उदाहरणार्थ—चिकित्सा-चन्द्रोदय, रसहजारा, आयुर्वेद-प्रकाशादि। "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" नामक प्रस्तुत ग्रंथ भी इसी संग्रहकोटि में आता है तथापि यह उपर्युक्त सब ही संग्रह-ग्रंथोंसे अपनी कुछ विशेषता रखता है। अतः इस विषयमें कुछ कह देना अप्रासंगिक न होगा।

आजतक कई छोटे बड़े संग्रह मेरे देखनेमें आये हैं। वैद्यक विषयकी कई बातें ऐसी हैं, जिनका एक ही ग्रंथमें संगृहीत रहना नितान्त आवश्यक है। परन्तु ऐसा देखनेमें नहीं आया। आवश्यक बातें दो चार एकमें हैं तो एक-दो दूसरेमें और इसी प्रकार कुछ बातें किसी और संग्रहमें है। ऐसी अवस्थामें साधकको एक ही जगह सभी बातें न मिलनेसे कई संग्रहोंको देखनेकी झंझट रहती है। कई बड़े बड़े संग्रह होने पर भी उनमें उक्त आवश्यक बातोंका नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता। ऐसी अवस्थामें ऐसे संग्रह ग्रथकी नितान्त आवश्यकता थी, जो न बहुत बड़ा हो और न नितान्त छोटा। इसके अतिरिक्त ऐसा भी न हो जिसमें वैद्यक विषय की महत्वकी बात छूट जाय। यदि सच कहा जाय तो इस बड़ी भारी कमीकी पूर्ति कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय कालेड़ा-बोगला द्वारा प्रकाशित सरल हिंदीके "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" ने की है। यह वस्तुतः परम्पराप्राप्त दीर्घकाल तक अनुभव की हुई वैद्यक विद्याका निचोड़ है। सारांश यह है कि इसके विद्वान अनुभवी लेखक ने—

(१) उपोद्घात प्रकरणमें चिकित्सोपयोगी सभी महत्व की बातें सरल भाषामें स्पष्ट समझाई हैं।

(२) आवश्यक सूचना प्रकरण बड़ा महत्व रखता है, क्योंकि रोगी, रोग औषधि और आहार-विहारादि विषयक सभी उपयुक्त सूचनाएं एक ही स्थानमें दे दी गई हैं।

(३) परिभाषा—प्रकरणमें औषधियोंके बनानेकी विधि, तोल, नाप, पुटविधि, यन्त्रोंका वर्णन और उनके चित्र इत्यादि बातें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं।

(४) शोधन-प्रकरणमें धातु उपधातु, विष आदिकी शोधन विधि वही दी है जो सरल और अनुभूत है।

(५) भस्मप्रकरणमें कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थऔषधालयकी रसायनशालामें जिस विधिसे भस्में बनाई जाती हैं, जिनसे मनुष्योंका निश्चित उपकार हो रहा है, रोगी रोग-मुक्त होते हैं, जो शतशोऽनुभूत हैं, उन्हें दिल खोल कर सरल भाषामें लिख दिया गया है। इतना ही नहीं, उनका गुणविवेचन भी विस्तारपूर्वक लिखा है।

(६) कूपीपक्व रसायन अर्थात् मकरध्वज-चन्द्रोदयादि बनानेकी सरल अनुभूत विधिएं जैसी इस संग्रहमें हैं, वैसी किसी भी संस्कृत, हिंदी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषाग्रंथोंमें नहीं हैं।

(७) पर्पटी, खरलीय रसायन अर्थात् सभी प्रकारके अनुभूत एवं प्रभूत रस, गुटिका, चूर्ण, क्वाथ, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, अंजन, लेप, मरहम आदि सभी प्रकरणोंके आदिमें महत्वकी सूचना और औषधि विधि आदिका वर्णन किया गया है। विशेषता यह है कि, व्यर्थ आडम्बर न कर वे ही प्रयोग दिये हैं जो अपने अनु-

श्री वैद्यरत्न कविराज डा० प्रतापसिंहजी D.Sc. (Ayur.) P.C.S.,
डाइरेक्टर आफ आयुर्वेद--राजस्थान

संशोधकके दो वचन ।

श्री० स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज, उन विज्ञ वैद्योंमेंसे हैं, जिनका जीवन आयुर्वेदके उद्धारमें ही संलग्न है ।

आपने ग्रंथ संकलनकी नवीन शैलीका अनुसरण कर "रसतन्त्रसार" (सिद्धप्रयोगसंग्रह) एक अनुपम ग्रंथरत्न तैयार किया है, यहबृहद् ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ है कि इसके शीघ्र ही एकाधिक संस्करण तैयार हो चुके हैं और गुजराती भाषामें भी अनुदित हो चुका है ।

इस ग्रंथका संशोधन करनेकी आज्ञा प्रदान कर स्वामीजी महाराजने मुझे अनुगृहीत किया है, इसके लिये मैं आभारी हूं । इस ग्रंथमें सर्वत्र सूक्ष्म दृष्टि से समीक्षावृत्तिपूर्वक देखने पर भी केवल यत्रतत्र नामकरण या पाठ । संस्करणके अतिरिक्त कुछ संशोधन करना जैसा मेरी दृष्टिमें नहीं आया

मैं इस ग्रंथको चिकित्साके पाठ्यक्रममें रखनेके लिये बलपूर्वक सिफारिश करता हूँ ।

उदयपुर — क० प्रतापसिंह

ता० ३-११-५०

अनुक्रमणिका।

आवश्यक सूचना।

आयुर्वेदीय परिभाषा ।

द्रव्य शोधन।

भस्म प्रकरण।

कूपीपक्व रसायन ।

पर्पटी ।

खरलीय रसायन ।

गुटिका प्रकरण।

सूचना— अनेक रसायनोंके नामके अन्तमें वटी संज्ञा दी है। अतः उनकी सूची भी पाठकोंकी सुविधाके लिये इस प्रकरणके साथमें मिला दी गयी है।

चूर्ण प्रकरण।

सूचना—बहुतसी खरलीय रसायनोंके अन्तमें चूर्ण संज्ञा दी है अतः उनकी सूची भी पाठकोंकी सुविधाके लिये इस प्रकरण में दे दी गयी है।



* श्रीधन्वन्तरये नमः *

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

(प्रथम-खण्ड)

आयुर्वेदीय-प्रयोग-विधान ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।
सर्वकार्येष्वतरंगं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

शास्त्राचार्योने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ कहे है । इन सबका मुख्य साधन शरीर है । इसलिये शरीरकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये । इसी हेतुसे धन्वन्तरि, भरद्वाज, अत्रि इत्यादि परोपकारी मुनियोंने अथर्ववेदके उपवेदरूप आयुर्वेद-का निर्माण किया है । आयुर्वेदकी व्याख्या प्राचीन आचार्योने निम्नवचनसे की है---

आयुर्हिताहिते व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः आयुर्वेदः स उच्यते ॥

जिसमें आयु के हित (पथ्य आहार-विहार), अहित (हानिकर आहार-विहार), रोगका निदान और व्याधियोंकी चिकित्सा आदिका वर्णन है, उसे विद्वान् मनुष्य आयुर्वेद कहते हैं ।

इस आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन स्वास्थ्यका रक्षण करना और गौण प्रयोजन रोगाक्रान्त रोगीका रोग दूर करके आरोग्यताका प्रदान करना है । रोग दूर करनेके लिये तीन प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता है---(१) हेतुज्ञान (रोगके भिन्न-भिन्न कारणोका ज्ञान) । (२) लिंगज्ञान (रोगका लक्षण) । (३) चिकित्सा ज्ञान । इनमें से पहिले और दूसरे विभागको इस ग्रंथ में स्थान नहीं दिया । चिकित्सामें उपयोगी सिद्ध प्रयोग, पारदप्रयोग, धातुओं की भस्म विधि आदि विषय यहां विस्तार पूर्वक लिखें है ।

चिकित्साके तीन प्रकार है---मंत्र-चिकित्सा, ओषधि-चिकित्सा और शस्त्र-चिकित्सा । मंत्र-चिकित्सा और शस्त्र-चिकित्सा इस ग्रंथ का विषय नही है । केवल ओषधि-चिकित्सा सम्बन्धी कुछ विचार किया है । शास्त्राचार्यो ने इन ओषधियोंके मुख्य दो विभाग किये हैं---(१) सेन्द्रिय (प्राणिजन्य और वनौषधि) (२) निरिन्द्रिय (खनिज ओषधि) ।

पुनः दूसरा वर्गीकरण करके कर्पूरादिवर्ग, वटादिवर्ग, गुडूच्यादिवर्ग, ऐसे अनेक विभाग किये हैं। इन ओषधियों के स्वरूपज्ञान और रस, वीर्यविपाक, प्रभाव आदि गुणधर्मज्ञान को जानने के लिये आयुर्वेदके प्रकरण रूप अनेक निघण्टु बने हैं।

दूसरी रीति से ओषधि उपयोग के दो विभाग किये हैं—(१) सिद्ध ओषधि (अनेक ओषधि मिला करके अथवा एक ही ओषधि अमुक संस्कार से सिद्ध की गई हो, वह) (२) असिद्ध ओषधि (अलग-अलग अपक्व ओषधि) इनमें से सिद्ध ओषधियों के कृति और जाति भेदसे निम्न अनुसार चार विभाग होते हैं। इनका विवेचन पृथक् पृथक् ४ शास्त्रों में किया है—

(१) कल्प-शास्त्र—एक अथवा अनेक ओषधियोंका मिश्रण निश्चित विधिसे तैयार करके सेवन करानेसे अमुक विशेष फलकी प्राप्ति होती है। यह कल्प शास्त्रके ग्रंथों में दिखाया है।

(२) वनस्पतिशास्त्र—इन ग्रंथों में भिन्न भिन्न वानस्पत्यादि ओषधियों का विवेचन किया है।

(३) रसशास्त्र—पारद आदि खनिज ओषधियोंको अन्य ओषधियोंके संस्कार देनेसे वे शरीर में नाना प्रकार के गुण उत्पन्न करती हैं। यह वर्णन इन ग्रंथोंमें किया है।

(४) रसायनशास्त्र—दो अथवा अधिक ओषधि मिलकर, मूल वस्तुसे भिन्न गुण अथवा अधिक गुण वाली ओषधि तैयार होती है, जैसे पारा, गंधक और सोना मिलाकर अधिक गुणवाला पूर्णचन्द्रोदयरस, एवं पारा और अन्य क्षार मिलकर भिन्न गुणवाला रसकर्पूर तैयार होता है। ये सब रसायन-शास्त्रके विषय हैं।

इनमेंसे वनौषधि, रस और रसायन शास्त्रके प्रयोगोंमेंसे अनेक महत्वके प्रयोग, जिनका अनुभव कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालयमें और इतर परिचित चिकित्सकों द्वारा अनेक वर्षों से हो रहा है उन प्रयोगोंको इस ग्रंथमें स्थान दिया है।

सिद्ध-प्रयोग देना यह इस ग्रंथका मुख्य विषय है। अनेक धातु-उपधातुओंकी भस्म, विविध पारदकल्प, विविध वनौषधियोंके मिश्रणसे बनाई हुई गुटिका आदि ओषधियां, क्षार, घृत-तैलादि द्रव्योंको नाना प्रकारसे औषधोंके संस्कार देकर सिद्धकी हुई औषधियां, इत्यादि सिद्ध प्रयोग हैं। इन प्रयोगोंमें अनेकोंको अनेक औषधियोंके मिश्रणसे तैयार किया जाता है। इन औषधि द्रव्योंमें अनेक प्रकारके गुणोंके परमाणु मिश्रित रहते हैं। भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें भिन्न-भिन्न गुणका प्राधान्य रहता है। इस हेतुसे कौन कौन द्रव्य परस्पर सहायक हैं और कौन-कौन विरोधी हैं, यह बिना शास्त्राभ्यास नहीं जाना जाता। विरोधी ओषधियोंका मिश्रण बनाने पर किसी समय तुरन्त और किसी समय भविष्य में हानि पहुंचती है।

विरोधी ओषधियां (एन्टेगोनिस्ट्स-Antagonists) की क्रिया परस्पर एक दूसरे के विपरीत होती है। इनमें कितनीक वीर्यविरोधी और कितनीक संयोग-विरोधी हैं। उदाहरण-दूध और दही, शराब और कुचिला, अफीम और सूचीबूटी, कुचिला और

कपूर, इनका बीर्य परस्पर विरुद्ध होने से इनका मिश्रण नही कराया जाता। इस तरह अफीम और सूचीबूटी (Balladonna Atropha), गारीकून (Polyporus Officinalis) और सूचीबूटी, इनकी क्रिया परस्पर विरुद्ध होने से अफीम और गारीकून के विप-प्रकोपमें सूचीबूटी तथा सूचीबूटीके विष-प्रकोपमें अफीम हितावह होती है इस तरह धतूरा और पद्मकाष्ठकी क्रिया विरुद्ध है। धतूराका धूम्र पान करनेपर उबाक होती है और कफ गिरता है, इसके विपरीत नये पद्मकाष्ठका फाण्ट या चूर्ण लेनेपर उबाक और वमन बन्द हो जाती है। अतः ये सब परस्पर विरोधी हैं। इस प्रकारकी विरोधी ओषधियोंके मिश्रणसे लाभके स्थानपर हानि पहुंच जानेकी संभावना रहती है। अतः मनघड़न्त रीतिमे ओपधियोंको मिलाकर प्रयोग तैयार नहीं किये जाते।

नूतनप्रयोगनिर्माणविधि-नये प्रयोग तैयारकरनेके लिये निम्नप्रकारकी ओपधियोंको मिलाना चाहिये:—

१—रोगनाशक एक अथवा अधिक मुख्य ओपधिया।

२—रोगके उपद्रवोंको शमन करने वाली ओषधियां।

३—मुख्य ओषधिको सहायता पहुचाने वाली ओषधियां।

४—मुख्य और सहायक ओषधियोंके दोषको शांत करने वाली ओषधियां।

जैमे ज्वर उतारनेके लिये ज्वरकेसरी वटी दी जाती है। इस ज्वरकेसरीमें पारद, गन्धक, बच्छनाग, त्रिकटु, त्रिफला और जमालगोटा हैं। इन सब ओषधियों को यथा-विधि मिलाकर, फिर भागरे के रसकी भावना देकर तैयार किया जाता है। इनमें उष्णत कम करके ज्वरको दूर करने वाली मुख्य ओषधि बच्छनाग है। बच्छनागसे पसीना आता है, मूत्र साफ होता है, नाड़ी और हृदयकी बढी हुई गति मन्द हो जाती है वेदना शांत होती है, और ज्वरकी निवृत्ति होती है।

किन्तु एक मात्र बच्छनागका ही उपयोग किया जाय तो व्याधिसे मुक्ति नहीं मिल सकती। कारण, ज्वर होनेमें मुख्य हेतु सेन्द्रिय विषकी उत्पति है। जब तक सेन्द्रिय विपको नष्ट न किया जाय और सेन्द्रिय विष जिस कारणसे उत्पन्न हुआ है, उस परम्परा कारण को भी दूर नही हटाया जाय, तब तक सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती रहेगी फिर सेन्द्रिय विषको दूर करनेकेलियें रक्तमें उष्णता बढ़कर ज्वरका वेग उत्पन्न होता ही रहेगा। अतः इस मूल कारणको भी साथ-साथ नष्ट कर देना चाहिये। इस सेन्द्रिय विषका उत्पादक कारण क्या है? इस बातका शास्त्रानुरूप विचार करनेपर अवगता होता है कि, आमाशय रस दूषित होकर (आम बनकर) के नाड़ियोंमें प्रविष्ट होजाता है। जिससे प्रस्वेद द्वारा विष का निकलना रूक जाता है। यह विष रक्तमें रहे हुये अनेक रक्ताणुओंको दूषित बना देता है, और इसी हेतुसे हानिकर सूक्ष्म कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है। अन्य मलसे पूर्ण होजाते हैं, अतः वे अपना फर्ज (Duty) बजानेमें असमर्थ होते हैं फिर कोष्ठाग्नि स्वस्थानसे बाहर निकल, दोषोंको जलानेके लिये रक्तमें उष्णता उत्पन्न करती है।

ज्वरको शमन करनेके लिये इन सब कारणोंको (जन्तु, दूषित आम और मलावरोध को) दूर करना चाहिये। किन्तु ये सब कार्य एक मात्र वच्छनागसे ही नहीं हो सकते। इसलिये वच्छनागके साथ सहायक ओषधियाँ मिलाई हैं। वच्छनागको सहायता पहुंचाना, जन्तुओंका नाश करना और रसके दूषित अणुओंको शुद्ध करना, इन कार्योंके लिये पारद मिलाया जाता है। पारद जन्तुघ्न, कोष्ठस्थ दोषनाशक और योगवाही (गुणवर्धक) है। परन्तु, बिना गन्धक मिलाये अन्य ओषधियोंके साथ पारद नहीं मिल सकता। अतः गन्धक भी मिलाया है। गन्धक पारदको मूर्छित बनाकर पारदकी चपलता दूर करता है। गन्धक में दुर्गन्धनाशक, रक्तशोधक, जन्तुघ्न और पाचन गुण भी हैं। अतः नाड़ियोंमें रहे हुए दोषका संशोधन, कीटाणुओंका नाश और पाचन-क्रियाको सरल बनाना, इन कार्योंमें सहायता मिलती है। तदपि वच्छनाग और पारद गन्धककी कज्जली मिलानेसे भी मलावरोध दूर नहीं होता।

अनेक प्रकारके ज्वर बहुधा मलावरोध होनेपर ही होते हैं और वे कब्ज दूर होनेसे दूर हो जाते हैं। अतः जमालगोटे का मिश्रण किया है। जमालगोटा मलावरोधनाशक है। परन्तु इसमें वमन करानेका और आंतोंमें दाह उत्पन्न करनेका दोष है। इस हेतुसे भांगरेके रसकी भावना भी है और त्रिफला मिलाया है। भांगरेसे दाह और उबाकका शमन होता है तथा वातवाहिनियोंका क्षोभ दूर होता है एवं त्रिफलेसे जमालगोटाकी तेजी कम होती है और दोषोंका पचन होता है।

इनके अतिरिक्त वच्छनाग उष्णता कम करता है। परन्तु साथ-साथ हृदय की गतिको कुछ शिथिल बनाता है। इस दोषको दबानेके लिये शास्त्राचार्योंने इस ओषधि में कज्जली और त्रिकटुकी योजना की है। पारद-गन्धककी कज्जली हृद्य है, और त्रिकटु भी हृद्य, उष्ण, किंचित् पसीना लाने वाला और दीपन-पाचन है।

इस तरह बने हुए प्रयोगमें वच्छनाग मुख्य रोगनाशक ओषधि है। जमालगोटा मल दोषका दूर करने वाली दूसरे नम्बरमें कही हुई उपद्रवनाशक ओषधि है। पारद और गन्धक रक्तशोधक और गुणवर्धक (योगवाही) होनेसे दूसरे और तीसरे प्रकार की सहायक ओषधियां हैं। त्रिकटु, हृद्य, दोषशामक और अग्निप्रदीपक होनेसे उपद्रवनाशक और दोषनाशक ओषधि है। ज्वरमें बहुधा अग्निमान्द्य हो जाता है। उसे दूर करनेका काम त्रिकटु करता है और हृद्य होनेसे वच्छनागके दोषका भी शमन करता है। अतः यह दूसरे और चौथे प्रकारके लिखे हुए कार्योंको करने वाली ओषधि है। भांगरेका रस और त्रिफला दोषशामक चतुर्थ विभागकी ओषधियां हैं।

इस उदाहरणके अनुसार चाहे जितने नये प्रयोग बना सकते हैं। शास्त्र में ६८-६४ ओषधियोंके क्वाथ आदिका विधान किया है, उन सबमें यही नियम वर्तमान है। यद्यपि कतिपय समय रोगनाशक अनेक मुख्य और गौण ओषधियों एवं उपद्रव-शामक अनेक ओषधियोंको ही मिलाया जाता है, चतुर्थ विभागकी ओषधि मिलानेकी आवश्यकता नहीं रहती, तथापि मूल नियमका परिवर्तन नहीं होता।

शास्त्रमें रोग, उपद्रव, ऋतु, दूष्य, देश, काल, ओषधि-बल, अनल, प्रकृति आदिका पूर्ण विचारकरके ही प्रयोग लिखे हैं; एवं अर्वाचीन विद्वान् भी इसी तरह प्रयोग तैयार करते हैं, परन्तु साधारण बोधवाले चिकित्सकोंके लिये नूतन प्रयोगकी योजना करनेमें कठिनता रहती है। इस प्रतिबन्धको दूर करानेके लिये यहां मुख्य नियम संक्षेप में दर्शाये है।

जिन सिद्ध ओषधियोंके प्रयोगको प्राचीन आचार्यो और विद्वानोंने शास्त्र-विधि अनुसार तैयार किया है, वे सब निर्भयतापूर्वक उपयोगमे आ सकते है। तथापि किसी-किसी समय देश, काल और रोगीकी परिस्थिति अनुसार तुरन्त लाभ होनेके लिये मात्रा और मिश्रणमें थोड़ा अन्तर किया जाता है। कदाच अन्तर न किया जाय तो भी नुकसानका भय नही है। किन्तु शास्त्रविधिको त्यागकर मनघड़न्त रीतिसे अनेक औषधियोका मिश्रण करके उपयोग किया जाय, तो विशेष जवाबदारी रहती है। क्वचित् ऐसी मनोकल्पित ओषधिसे किसीको लाभ हो जाय, तो भी वह अनेकोंको हानि पहुचायेगी।

विशुद्ध ओषधि परिचयः—श्री वाग्भट्टाचार्यने लिखा है कि :—

प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत् ।
नासौ वशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ।

अ. हृ. सू. स्था. अ. १३–१६ ॥

ओषधि उसे कहनी चाहिये जो व्याधि का शमन करे। एक रोगका शमन करके दूसरा रोग उत्पन्न करे उसे अशुद्ध (अनुपयोगी) जाननी चाहिये। जो रोगका शमन करे और कुछ भी विकृति न करे, उसीको शुद्ध लाभदायक ओषधि समझनी चाहिये।

इसी तरह ओषधि प्रयोग तैयार करनेमें नवीन चिकित्सकोंको आपत्ति आती है। वह इन परीक्षित प्रयोगोंसे बहुत अंशमें दूर हो सकेगी, ऐसी मेरी धारणा है। इसी हेतुसे अनुभूत सग्रहको प्रकाशित किया है। यदि अधिकारी वर्ग इस ग्रंथसे कुछ लाभ उठावेंगे, तो मैं अपना परिश्रम सफल मानूंगा।

आवश्यक सूचनाः—

(औषधि-सम्बन्धी सूचना)

(१) वनौषधि वर्षाकाल पीछे अथवा एक वर्ष हो जाने पर न्यून गुण युक्त हो जाती हैं। साधारण चूर्ण प्रायः दो मास पीछे और लवण, हींग और पारद युक्त छः मास अथवा अधिक समय पीछे न्यून गुण वाले हो जाते हैं, परन्तु काचकी शीशी में मजबूत बन्द रहनेसे गुण कुछ विशेष समय तक रह सकते हैं।

(२) गोली, अवलेह, शर्बत आदि एक वर्ष पश्चात् न्यून गुण वाले होते हैं। पाक एक माससे अधिक समय तक अच्छा नहीं रहता। सिद्ध तैल चार मास (बोतलोंमें रहे तो १ वर्ष) पश्चात् न्यून गुण वाला हो जाता है। सिद्ध घृत तैलकी अपेक्षा पुराना होनेपर भी (सम्हाल पूर्वक रखा जाय तो) गुणयुक्त रहता है।

(३) आसव, अरिष्ट, कूपीपक्व रसायन और धातुओंकी भस्में जितनी पुरानी होती हैं, उतनी ही विशेष सौम्य होती हैं।

(४) गूगलवाली गुटिका दो, तीन वर्ष तक अच्छी रह सकती हैं तदनन्तर गुणका ह्रास होने लगता है।

(५) पीपल, धनिया और वायविडंग एक वर्ष का पुराना लेवें।

(६) नेत्र रोगकी औषधिमें घी पुराना और खानेके लिये नया लें, तथा बाहर लेप करनेकेलिये घृतको धोकरके उपयोगमें लें।

(७) कफनाशक औषधिके साथ अनुपान रूपमे शहद पुराना और धातुपौष्टिक औषधिमें नया लें।

(८) गिलोय, कुड़ेकी छाल, अडूसा, शतावरी, असगन्ध, पीयावांसा, सौंफ काशीफल, प्रसारणी, ये नव औषधिया ताजा लें। ताजा न मिलें, तो सूखी औषधि समान वजनसे लें।

(९) उपर्युक्त नव औषधियोंके अतिरिक्त अन्य औषधियोंको सूखीके बदले ताजी लेनी हो तो दुगुनी लेनी चाहिये।

(१०) बड़े वृक्षोंके मूल लेनेको लिखा हो, वहांपर वृक्षकी अन्तर छाल लें, परन्तु छोटे-छोटे वृक्षोंके मूल ही लें। सिर्फ लघु पचमूलके बदलेमें पचांग लेनेका रिवाज है।

(११) जहा कडवे पटोल लिखे हों, वहांपर मात्र उसके पत्ते ही लिये जाते हैं।

(१२) यदि कोई औषधि समय पर न मिल सके, तो प्रतिनिधि रूपसे समान गुण-वाली दूसरी औषधि लेनी चाहिये। परन्तु प्रयोगमें जो, वस्तु हो, उसके बदलेमें प्रतिनिधि न लें। केवल गौण औषधिके स्थानमें प्रतिनिधि लें। जैसे, आकके दूधके अभावमें आकके-पत्तोंका रस, अजवायन न मिलने पर अजमोद आदि। प्रतिनिधि विषयक विशेष वर्णन आगे परिभाषा प्रकरणमें लिखा जायगा।

(१३) क्वाथके लिये बरतन मिट्टीका ले और मुंह खुला रखकर क्वाथ करे, यह प्रचलित रीति है। मुंह ढककर मन्दाग्निसे क्वाथ किया जाय तो विशेष लाभ होता है ऐसा नव्य विचारकोंका मत है। पात्र मिट्टीका न मिले, तो पीतलका कलई किया हुआ ले

(१४) तैल पकानेके लिये पीतलका कलई किया हुआ ४-६ गुना बड़ा पात्र लेवे अन्यथा उफान आकर तैल बाहर निकल जायगा। लोहेकी कढ़ाईमे पकानेसे तैल काला हो जाता है।

(१५) एल्युमिनियमका बरतन कदापि ओषधि-कार्य के लिये उपयोग में न लें; वैसे ही खाने पीनेमें भी एल्युमिनियमका पात्र लेना अनुपयुक्त माना गयाहै। एल्युमनियमके बरतनमें बने हुए भोजन और ओषधिमें जहर मिश्रित हो जाता है। उसके सेवनसे पाचन क्रिया बिगड़ती है और रक्त विकृत होता है। एल्युमिनियमके पात्रमें यदि जल ४-८ घंट भरा रहे, तो वह भी दूषित हो जाता है।

(१६) जायफल, जावित्री, लौग, सौफ आदि सुगन्धित तैलीय द्रव्योंका चूर्ण आवश्यकतापर करें। पहिलेसे विशेष परिमाणमें कूटकर तैयार न रखे। तैलीय द्रव्य मिश्रित ओषधियों के चूर्णको काचकी मजवूत डाटवाली शीशीमें रखना चाहिये। डाट रहित शीशीमेंसे अथवा टीनके डिब्बेमेंसे चूर्णका तैलांश थोड़े ही दिनोंमें निकल जाता है।

(१७) नमक और क्षार (नौसादर, शोरा आदि) मिश्रित ओषधियाँ वर्षाऋतुमें शीतल वायु लगनेसे गुणहीन हो जाती है। इसलिये ऐसे समय पर शीशीमेसे आवश्यकता हो उतने परिमाणमे ओषधिको सम्हालपूर्वक निकाल, शीशी को सत्वर बन्द कर देना चाहिये। टीनके डिब्बे आदि धातु-पात्रमे रखनेसे लवण और धातुका संयोग होकर औषधि दूषित हो जाती है।

(१८) घृत और तैलको कांच या चीनी मिट्टीके अमृतबानमें रखना चाहिये। टीनके डिब्बेमें जल्दी खराब हो जाते है। अमृतबानमेसे भी घृतको अंगुलियोंसे न निकालें। कलछी या चम्मचसे निकालना चाहिये। अन्यथा घृतमें दुर्गन्धि हो जाती है।

(१९) ओषधिका उपयोग करनेसे पहिले रोगके निदान ओषधिके गुण, देश, काल (ऋतु) और प्रकृतिका विचार करना चाहिये। जैसे ताजा गोदुग्ध पथ्य, तेजोवर्धक और तुरन्त बल बढ़ानेवाला है; तो भी ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, कफवाली खांसी, कृमि, विद्रधि, नवीन सुजाक और कुष्ठ आदि रोगोंमें हानिकर है। कफ प्रकृति वाले के लिये हितकर ओषधियां पित्त प्रकृतिवालेको समान रोग होनेपर भी हानि पहुचाती है। एव देश और काल भेदसे भी ओषधि-योजना परिवर्तन किया जाता है। यदि उपरोक्त रोगोंमे दुग्ध देना आवश्यक हो, तो दूध गरम करते वक्त थोड़ा सोंठका चूर्ण डाल दे।

(२०) संखिया, हरताल, रसकपूर, दालचिकना, मैनसिल, बच्छनाग. कुचिला और कनेर आदि जहरी ओषधियोंकी तीक्ष्णता और मलदोषको दूर करके उपयोगमें लिया जाता है। ऐसी ओषधियोके शोधन करनेकी विधि शोधनप्रकरणमें लिखी है; और धातु-उपधातुएं प्रायः भस्म करके ही प्रयोगमें ली जाती है।

(२१) हींगको घीमें भून करके उपयोगमें लेनी चाहिये।

(२२) फिटकरी और सोहागाको खानेकी ओषधिमें मिलानेकेलिये प्राय फूला बना करके उपयोगमें लिया जाता है। क्वचित् दादकी ओषधिमें सोहागा कच्चा भी मिलाते है, और पूयप्रमेहकी ओषधिमें फिटकरी कच्ची ही मिलाई जाती है।

(२३) बच्छनाग प्रधान ओषधि बहुधा शीताग ज्वर, मुद्दती ताप, विषूचिका और हृदयकी धडकनमें नही देनी चाहिये। यदि आवश्यक हो, तो सम्हालपूर्वक बहुत कम मात्रामे दे। कारण, बच्छनाग शरीरकी उष्णताको शीघ्र मूत्र और पसीना लाकर कम करता है, और हृदय को कुछ शिथिल बनाता है। जहा ताप बढा हुआ हो और ताप कम करना आवश्यक हो, वहापर वत्सनाभयुक्त औषधि देनेमें स्वेद आकर ताप शनै शनै कम हो जाता है।

(२४) कुचिला नये तीक्ष्ण वातप्रकोपपर सत्वर हानि पहुँचाता है और पुरानी वातव्याधि में अति हितकर है। मात्रा अधिक होने पर वातवाहिनियाँ खिचने लगती है।

(२५) पारद-मिश्रित ओषधि सगर्भा स्त्री, दुर्बल, वृक्कशोथयुक्त पाण्डु और कण्ठमाल के रोगीको कम अनुकूल रहती है। स्त्रियाके गर्भाशय और योनिके रोगोमें हितकर है। एव बालकोंको पारद मिश्रित औषधियाँ तो अति ही अनुकूल रहती हैं।

(२६) सोमलवाली ओषधियाँ घी या दूध पिलाकर देनी चाहिये। परन्तु न्युमोनिया, सन्निपात आदि रोगोमें घृत, दूध पिलाये बिना रोगानुसार अनुपानके साथ दें। कितनेक विद्वानो ने शुक्रक्षयमें सोमलवाली ओषधि हितकर नही मानी। एव सन्निपातमें पित्त-प्रकोपसे प्रलाप होता हो, नेत्र लाल हो और बेहोशी आदि उपद्रवोकी प्रतीति होती हो, तो सोमलवाली ओषधि न देवें।

न्युमोनिया आदि कफप्रधान रोगोमें सोमलयुक्त औषधि मल्लचन्द्रोदय, समीर-पन्नग आदि सत्वर लाभ पहुचाते है। कफ-प्रधान रोगोमें जहा सोमलभस्म व पुष्प देनेका निषेध है, वहाँ पर मल्लचन्द्रोदय या समीर-पन्नग वासा-स्वरस या चणके साथ प्राय दिया जाता है। शीताङ्ग सन्निपातम सोमलयुक्त औषध सत्वर फलप्रद है। जो ज्वर बार-बार स्वेद आकर उतर जाता है, वहा शारीरिक उष्णताका अति ह्रास न होनेके लिये मल्लमिश्रित औषध दी जाती है।

(२७) हरताल भस्म और हरतालमिश्रित ओषधि, ये सब उग्र होने से पित्त प्रधान कुष्ठ और पित्त प्रधान वातरक्त में हानिकर है।

(२८) ताम्र भस्म मूत्रपिण्डके शोथसे उत्पन्न हुए उदर रोगमें हानिकर है। कारण ताम्र भस्म उष्ण और पित्त विरेचक होनेसे मूत्रपिण्ड के कार्यमें प्रतिबन्ध करती है। जिससे मूत्रमें पित्त मिल जाता है और मूत्रोत्सर्ग क्रिया कम हो जाती है। फिर उदरमे जलसञ्चय अधिक होने लगता है, और शोथ बढता जाता है।

(२९) सुवर्णमाक्षिक भस्म विषनाशनके विषको दूर करनेमें अति हितकर है, परन्तु नये तीव्र ज्वरमें नही देनी चाहिये।

(३०) शृङ्ग-भस्म वातजन्य शुष्क कासमें हानिकर है तथा कफप्रधान कास, श्वास और न्युमोनिया आदि रोगोंमें हितकर है ।

(३१) जसद-भस्म उपदंशजन्य कंठ रोगमें हितकर नहीं है ।

(३२) वराटिका भस्म आमयुक्त जीर्ण संग्रहणीमें लाभदायक है । परन्तु नूतन आम संग्रहणीमें हितकर नहीं है ।

(३३) लोह भस्म रक्तार्श और रक्तातिसारके आरम्भमें हानिकर है । परन्तु वातार्श और पित्तार्शमें अधिक शक्तिपात हुआ हो, तो भी लाभदायक है । रक्तवृद्धि और पुष्टिके लिये लोहभस्म भोजनके बाद देना, यह विशेष हितकर है ।

(३४) सुवर्ण भस्म संखियासे मारणकी हो, तो क्षय रोगकी प्रथमावस्थामें न दें, अन्यथा शुष्क कास बढ़ जायगी । पारद, गंधक या वनौषधिसे मारित भस्म क्षय रोगमें विशेष हितकर है ।

सुवर्ण पर्पटी पुरानी संग्रहणीमें ज्वर होनेपर अथवा मानसिक विकृति होनेपर नहीं देनी चाहिए । सुवर्ण पर्पटीके सेवनकालमें दुग्धाहार विशेष लाभदायक है ।

सुवर्णमिश्रित औषधि ज्यादा परिमाणमें क्षय रोगीको नहीं देनी चाहिये । मात्रा अधिक होनेपर क्षयके जन्तु (Tuberculosis) एक साथ अधिक संख्यामें मरते हैं, जिससे विषवृद्धि होकर ज्वर बढ़ जाता है । अतः शुद्ध सुवर्णकी मात्रा एक समयमें $\frac{१}{१००}$ से $\frac{१}{५०}$ रत्ती तक और सुवर्ण भस्म की मात्रा $\frac{१}{३२}$ रत्ती तक देनी चाहिये ।

जब क्षय रोगमें ज्वर ९९° से अधिक हो, तब सुवर्ण-मिश्रित औषधि न दें । अन्य औषधिसे ज्वरको कम करनेके बाद सुवर्ण-मिश्रित औषधि दें । मंथर ज्वरके विषका ह्रास कराने तथा स्थावर जंगम विषके शमनार्थ सुवर्ण-प्रधान औषधि प्रयुक्त होती है ।

(३५) एलुवावाली औषधियां विशेषतः रात्रिको सोनेके समय दी जाती हैं । परन्तु सगर्भा स्त्रीको नहीं देनी चाहिये ।

(३६) कस्तूरी औषधियोंमें मिलानी हो, इसके पहले उसके भीतरसे बालोंको अच्छी तरह देखकर निकाल डालना चाहिए। एवं कस्तूरी मिलानेके पश्चात् औषधियोंको होसके उतना जल्दी मिलाकर छोटी छोटी गोलियां बनाकर छायामें सुखा देनी चाहिये अथवा सूखा चूर्ण करके बोतलोंमें भर लेना चाहिये ।

(३७) केशरको औषधिमें मिला लेनेसे पहले एक थालमें रखें । फिर एक कटोरीको गरम कर केसरके ऊपर ढक देवें । जिससे केसरमें से नम निकल जायगी । फिर उसे बारीक पीसकर मिला लेवें ।

(३८) अफीम वाली औषधि बालकोंको अधिक मात्रामें सहन नहीं होती यदि आवश्यकता हो, तो सम्हालपूर्वक दें । रक्तार्श और रक्तातिसारमें दूषित रक्त और कच्चे आम गिरते हों, तब तक अफीमवाली औषधि न दें ।

सगर्भा स्त्रीको अफीम वाली औषधि कदापि नहीं देनी चाहिये । कमजोर आंतवाले मधुमेहके रोगीको अफीम वाली औषधि सम्हालपूर्वक देनी चाहिये ।

नेत्रमें अंजन औरलेपके लिये अफीम जितनी पुरानी मिले, उतनी ही हितकर है ।

अफीम आदि कतिपय औषधियां स्वस्थावस्थामें जिस तरह परिणाम दर्शाती है, वे कतिपय विकारमें वैसा परिणाम नहीं दर्शाती। जैसे निद्रा लानेमें अफीम उत्तम औषधि है, फिर भी किसी-किसी व्यक्तिको तीव्र ज्वर होनेपर निद्रा नहीं ला सकती। प्रत्युत उत्तेजना देती है, जिससे प्रलाप बढ जाता है।

(३९) मादक औषधिकी क्रिया शीतल देशकी अपेक्षा उष्णदेशमें अधिकतर प्रकाशित होती है, और प्रातःकाल सेवनकी हुई औषधि इतर समयकी अपेक्षा अधिक गुण दर्शाती है।

(४०) किसी किसी व्यक्तिको लोहभस्म, सोमल, हींग, अफीम, क्विनाइन या इतर कोई-कोई औषधि अनुकूल नहीं होती। ऐसे मनुष्यों के लिये उस औषधिका प्रयोग (रोगनाशक होने पर भी) नहीं करना चाहिये। एक रोगिणीको दूध अनुकूल नहीं रहता था, दूध पिलाने पर थूकमें रक्त आने लगता था। जिससे दूध अहितकर समझकर हमें छुडा देना पडा था।

(४१) जिन-जिन औषधियोंके रासायनिक संयोग द्वारा गुणमें परिवर्त्तन हो जाता हो, ऐसे परस्पर विरोधी द्रव्यों का मिश्रण नहीं करना चाहिये। जैसे दूध और दही, दूध और नीबूका रस, दूध और लहसुन आदि। परन्तु क्वचित् अतिसारके रोगीको रोगके महिमानुसार दूधमें नीबूका रस निचोडकर तुरन्त पिलाते हैं। मस्तिष्क-गत वातविकारमें रोगीको दूधमें लहसुन मिला, खीर बनाकर सेवन कराते हैं। इस तरह अन्य रासायनिक संयोग-विरोधी द्रव्योंका प्रयोग भी हो सकता है।

(४२) शोथहर औषधियोंके प्रयोगकालमें यदि नमक, शराब या मांसाहारका सेवन किया जायगा तो औषधिसे योग्य लाभ नहीं हो सकेगा।

(४३) मेदोहर औषधियोंके प्रयोगकालमें यदि घृत, मधुर पदार्थ, दही, चावलादि मेदवर्द्धक आहारका सेवन अधिक होगा तो औषधिसे योग्य लाभ नहीं पहुंचेगा।

(४४) शुक्रवर्द्धक औषधियोंके सेवन कालमें आग्रहपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन होगा, तो ही लाभ मिल सकेगा।

(४५) शराब, तमाखू, अफीम आदिका व्यसन कराना हानिकर है। फिर भी इतर मार्ग न होनेपर व्यसन कराया जाता है। जैसे मधुमेह दूर न होनेपर अफीमका व्यसन, मानसिक आघात शमनार्थ शराबका व्यसन, निर्बल व्यक्तिकी मानसिक थकावट को दूर करानेके लिये चायका व्यसन आदि। इस तरह विविध व्यसनों द्वारा रोगका दमन कराया जाता है।

(४६) मुख द्वारा सेवनकी हुई औषधि जितने परिमाणमें और जितने समयमें फल प्रदर्शित करती है, इसकी अपेक्षा अन्तःक्षेपणकी हुई औषधि कम परिमाणमें और सत्वर लाभ पहुंचाती है। कारण, आमाशय और अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला द्वारा औषधिसत्वका शोषण मृदुतापूर्वक और विलम्बसे होता है। शोषण हो जानेपर भी वह सत्व यकृत्में जाता है और उसमें पित्तमिश्रित होकर रक्तमें गमन करता है, जिससे यकृत्में भी औषधिका कुछ अंश नष्ट हो जाता है।

परन्तु अन्तःक्षेपण द्वारा ओषधि द्रव्य सत्वर शोषित हो जाता है और उसके सत्त्वका इतर यन्त्रों द्वारा क्षय नहीं होता। इस हेतुसे कम मात्रा होने पर भी सत्वर लाभ पहुंचाताहै।

भीतर प्रवेश किये हुए ओषध सत्त्वका शोषण रसत्वचा (Serous membrane) द्वारा अति सत्वर होता है । संयोजक कला (Intercellular tissue) द्वारा अपेक्षाकृत कम शोषण और श्लैष्मिक कला द्वारा सबकी अपेक्षा कम शोषण होता है।

(४७) कितनीक ओषधियां प्रतिदिन सेवन करनेपर देहमें शनैः शनैः संचित होती रहती हैं, जैसे पारद, सोमल, कुचिला आदि । इन संगृहीत ओषधियोंका असर अर्थात् संग्राहक क्रिया (Cumulative action) कभी-कभी सहसा उपस्थित हो जाता है । अतः इन ओषधियोंका सेवन दीर्घकाल तक करना हो, तो बीच बीचमें थोड़े-थोड़े दिन तक इनको छोड़ देना चाहिये ।

(४८) चूर्ण और गुटिका आदि ओषधियोंकी अपेक्षा आसव-अरिष्ट, अर्क, क्वाथ आदि ओषधियां सत्वर शोषित होकर अपना फल दर्शाती है। अतः तीव्र विकार शमनार्थ ओषधिका द्रव-प्रवाही रूपसे उपयोग करना विशेष हितावह माना जाता है।

(४९) आमाशयमें आहार होनेकी अपेक्षा आमाशय खाली होनेपर ओषधि सत्वर शोषित हो जाती है । इसके अतिरिक्त प्रयोगभेद. रोगभेद, स्त्री-पुरुषभेद, आयु-भेद, ऋतुभेद, देशभेद, अभ्यासभेद, शारीरिक उत्तापभेद आदि कारणों से ओषधि-सत्त्वकी शोषणक्रियामें तारतम्यता हो जाती है ।

(५०) अफीम, सोमल, शराब, गांजा, कुचिला आदि ओषधिया व्यसन, अभ्यास (Idiosyncrasy) के हेतुसे अधिक मात्रामें सेवन करनेपर भी विष-क्रिया उत्पन्न नहीं करा सकती । अतः ऐसी ओषधियां सेवन करानेके पहिले इस बातको भी सोच लेना चाहिये ।

(५१) प्रस्वेद लानेवाली ओषधि देनेपर रोगीको भलीभांति वस्त्र ओढ़ाकर बैठाना या सुलाना चाहिये ।

(५२) नित्य उपयोगके दन्तमंजनमें तेज नमक मिलाना हानिकर है । तेज नमकसे दांतोंकी सफेदी और मसूढ़ेको हानि पहुंचती है, दांतोंकी संधि घिस जाती है, और दांत अलग-अलग हो जाते हैं । परन्तु जिनके दांतोंमें कृमि हों, पीप आता हो, उनको सैंधा-नमक और सरसोंका तेल मिला दन्तमंजन विशेष लाभदायक है ।

(५३) किसीभी चूर्ण में ईसबगोल मिलाना हो, तो विना कुटा ही मिलाना चाहिये। कूटा हुआ ईसबगोल हानिकर है ।

(५४) अनुपान रूपसे घृत और तैल लेनेपर एक घण्टे तक ठण्डा जल न पीवे । यदि अति व्याकुलता उपस्थित हो, तो निवाया जल थोड़े परिमाणमें ले सकते हैं ।

(रोग-विषयक सूचना)

(५५) **नूतन ज्वरमें** तेज वायुका सेवन, दिनमें अधिक समय तक शयन, स्नान, अभ्यङ्ग मैथुन, क्रोध और परिश्रम हानिकर हैं ।

(५६) चढ़ने बुखारमें ज्वरहर ओषधि देनेसे ज्वर विशेष कुपित होता है।

(५७) जब तक नूतन ज्वर शरीरमें रहे, तबतक खानेको कुछ भी नहीं देना चाहिये। आचार्योंने कहा है कि —

शयन पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम् ।
वमन कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम् ॥

(५८) ज्वर रोगमें जल गरम करके ठण्डा किया हुआ थोड़ा-थोड़ा आवश्यकता अनुसार देते रहना चाहिये।

(५९) पुराने ज्वरमें रोगीको घी और दूध अवश्य देना चाहिये। दूधको 'सर्वज्वराणा जीर्णाना क्षीर भैषज्यमुत्तमम्,इस वचनसे उत्तम भेषज माना है। जीर्णज्वरजो क्वाथ वमन, लघन और लघुभोजनसे शमन न हुआ हो, उसपर शास्त्रोक्त घृतपान हितावह माना गया है। इनके रोगीको कदापि उपवास न करावें। यदि अपथ्य सेवनसे दोष प्रकुपित हुए हों, तो सम्हालपूर्वक लघन करावें।

(६०) मुद्दती ज्वरमें ज्वरशामक ओषधि न देवें। विकारको पचन करनेवाली पाचन और शोधन ओषधि देनी चाहिये।

(६१) चातुर्थिक ज्वर (तिजारी) वाले रोगीको ज्वर दूर होनेके पश्चात् भी दो-चार मास तक गुड वाला पदार्थ खाने को नहीं देना चाहिये, अन्यथा ज्वर पुन आ जाता है।

(६२) शीतलाके ज्वर में पीनेको ठण्डा जल दिया जाता है।

(६३) तरुण ज्वरमें द्विदल धान्य आदि भोजन, भाम, स्त्री-सेवन और पतली काजी पीना अति हानिकर है।

(६४) त्रिदोष ज्वरमें घृत कदापि नही देना चाहिये, एव मास या भात देना भी हानिकारक है।

(६५) सन्निपातमें दाह हो,तो भी शीतल जल नही पिलाना चाहिये। यदि प्रस्वेद आता हो, तो सत्वर बन्द करनेकी चिकित्सा करनी चाहिये। अन्यथा रोगी शीत में आ जाता है।

(६६) यदि सन्निपातमें तन्द्रा है, तो तीक्ष्ण नस्य आदि ओषधि द्वारा तुरन्त चेतना, लाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(६७) यदि सन्निपातमें कर्णशोथ हो जाय तो जोक आदि उपचारोंसे तुरन्त सूजनको दूर करना चाहिये।

(६८) सन्निपातमें पहिले वात-कफका शमन करें, तनन्तर वातपित्तको दूर करना चाहिये।

(६९) ज्वर चले जानेके पश्चात् जबतक शरीरमें शक्ति न आवे, तब तक मैथुन, व्यायाम, मार्गगमन, देरसे पचने वाले भोजन, सूर्यके ताप या वायुका अति सेवन और ठण्डे जलसे स्नान करना हानिकर है।

(७०) ज्वर रोकनेवाली ओषधि एक दिनमें ३ समय दें। बारीके बुखार आनेके ६ घंटे पहिलेसे २-२ घण्टे पर ३ बार ओषधि दें तथा सन्निपातमें रोग काबूमें आये, तब तक २-२ घण्टे पर ३-४ या अधिक बार ओषधि देते रहना चाहिये।

(७१) सन्निपात, मुद्दती ज्वर, प्लेग और क्षयरोगमें जुलाब देना अति हानिकर है। परन्तु मलावरोध हो, तो मृदु विरेचन देकर उदरशुद्धि कर लेनी चाहिये। दूधमें अमलतास डालकर कोष्ठशुद्धि की जाती है।

(७२) अतिसारके रोगीको कच्चा दूध और पतला अन्न (कांजी आदि पिलाना) हानिकर है, किन्तु चावलकी-लाजाकी यवागूका निषेध नहीं है। अतिसारमें उपवास अति लाभदायक है। ओषधि थोड़ी-थोड़ी मात्रामें दिनमें ३-४ वार देना हितकर है। एक साथमें ज्यादा ओषधि देनेसे लाभके बदले हानि होती है। कच्चा आंव पड़ता हो तब तक अफीम या अन्य स्तम्भक ओषधि नहीं देनी चाहिये। अतिसार शांत होनेके पश्चात् भी १५ दिन तक अधिक भोजन, पक्वान्न, कच्चा अनाज और देरसे पचने वाले पदार्थो का त्याग करना चाहिये।

(७३) विसूचिका (कालेरा) में रोगीको पीनेके लिये बार-बार एक-एक तोल बर्फका जल दें। अथवा गरम करके शीतल किये हुए जलको सौंफके अर्कमें मिलाकर एक-एक चम्मच देते रहें। एक साथमें ज्यादा जल नहीं पिलाना चाहिये। अफीमवाली ओषधि हो सके, तब तक न दें। पेशाब बन्द हो, तो मूत्रेन्द्रियमें कपूर रक्खें और पेडूपर केसूला तथा कलमी शोराकी लुगदी बांधें। यदि दस्त बन्द हो जानेपर वमन बन्द न होती हो, तो जलके बदले में तिलका तेल अथवा घृत पिलाना अति हितकर है।

(७४) रक्तार्श और रक्तातिसारके आरम्भ में जब तक दूषित रक्त गिरता हो तब तक लोहभस्म आदि स्तंभक ओषधि न दें। अफीमसे भी तुरन्त दूषित रक्तका स्तभन न करें। अर्शके रोगीको कच्चा दूध और मलावरोधकारक भोजन नहीं देना चाहिये।

(७५) जीर्ण मलावरोधके रोगीको बार-बार विरेचन देना हानिकर है। आवश्यकता पर बस्तिसे आंतोंको साफ कर लेना, यह लाभदायक है। परन्तु बस्तिका उपयोग भी बारबार नही करना चाहिये।

(७६) अम्लपित्त रोगमें भोजनके बीचमें या भोजन करके तुरन्त ज्यादा जल पीना, शाक ज्यादा खाना, खट्टे पदार्थ खाना, गरम गरम भोजन, चाय आदि लेना ये सब हानिकर हैं।

(७७) दाहयुक्त अम्लपित्त रोगमें वमन विरेचनसे शोधन किये विना ओषधि देना लाभदायक नहीं है।

(७८) रक्तपित्तके रोगीको धूम्रपान आदि व्यसन और पित्तवर्द्धक आहार विहारोंका त्याग करना चाहिये।

(७९) सब प्रकारके उदर रोगोंमें मट्ठा और गोमूत्रका सेवन अति लाभदायक है।

(८०) कृमिरोगमें अधिक मधुर पदार्थ, गुड, अति दूध और कच्चा दूध हानिकर हैं, तथा तैल हितकर है।

(८१) भगन्दरमें हींग बेसन और मधुर पदार्थ हानिकर हैं।

(८२) रक्तगुल्मकी चिकित्सा शास्त्रमर्यादा अनुसार १० मासके बाद करनी चाहिये। किन्तु नव्य मतके अनुसार यदि रोग निर्णीत हो जाय, तो तुरन्त की जाती है।

(८३) कफप्रधान गुल्म रोगमें वमन कराना हानिकर है।

(८४) शूल रोगमें द्विदल धान्य (चना, मसूर, मटर आदि), का सेवन अति हानिकर है। वमन, लघन, स्वेदन और पाचन औषधिया लाभदायक हैं। प्रथम स्वेदन देना विशेष हितकर है।

(८५) वात-जन्य शूलमें रेचक ओषधि और निरूह वस्ति, पित्त-जन्य शूलमें मधुर ओषधियोंमें सिद्ध किया हुआ दुग्ध और कफजन्य शूलमें कड़वी और चरपरी ओषधिया तथा वमन हितकर है।

(८६) परिणाम शूलमें लघन, वमन, विरेचन और तैलयुक्त वस्ति, ये सब लाभ पहुचाते है।

(८७) अन्नद्रव शूलमें पित्त शमनार्थ तथा कफ नाशार्थ विरेचन और अम्लपित्त-हर ओषधि देने का निम्न वचन में कहा है।

पित्तान्त वमन कृत्वा कफान्त च विरेचनम्।
अन्नद्रवे च तत्कार्यं ज्वरपित्ते यदीरितम्॥

(८८) आमजन्य तीव्र उदरशूलमें नमक मिले निवाये जलसे वमन कराना हितकर है। उस समय तीव्र शूलघ्न ओषधि देना हानिकर है।

(८९) जलोदर रोगमें संचित जल को यन्त्रसे निकालना हो, तो एक ही समयमें सब जल नही निकालना चाहिये।

(९०) अजीर्ण रोगमे तीव्र पीडा होती हो, तब शूलनाशक ओषधि न दें। अन्यथा अग्नि आमदोषसे आच्छादित होने से प्रकुपित होती है।

(९१) शुष्क वातिक कास और पित्तप्रधान सूखी खासी के रोगीको खट्टा पदार्थ, चरपरा पदार्थ अजीर्ण होवे उतने अधिक परिमाणमें भोजन और हींग हानिकर है। इस तरह सिगरफ, अभ्रक मसिया, कुचिला और भिलावा आदि उत्तेजक ओषधि भी नही देनी चाहिये।

(९२) क्षय रोगमें विरेचन और स्त्री सेवन हानिकर हैं। क्षयके कीटाणुओंको नाश करने वाली ओषधि स्वर्ण है; परन्तु जब ज्वर अधिक हो, तब सुवर्णवाली ओषधि नही देनी चाहिये। पतले दस्त लगते हों, तो जल्दी बाधनेका प्रबन्ध करना चाहिये, परन्तु अफीमसे दस्त न रोकें। सोमलवाली ओषधि शुष्क कास होने पर नही देनी चाहिये यदि क्षयरोगीको देवदारु या बासके जगलमें, या बकरियोंके साथ रखा जाय तो सत्वर लाभ होनेकी सम्भावना है।

भोजनमे बकरीका दूध और घी, बकरेके मस्तकको उबालकर बनाया हुआ यूष और लहसुन, ये सब अति हितकर हैं; तथा उपवास, परिश्रम, मानसिक चिन्ता और तेज वायु अति हानिकर है

क्षय रोगीके कफको जमीनमें गहरा खड्डा करके दबा दें; तथा वस्त्र और जगह को साफ रक्खें। क्षयरोगीके थूकनेके बरतनमे फिनाइल, मिट्टीका तेल अथवा राख रक्खें; जिससे मक्खी उसपर न बैठे। एवं हो सके तो थूकनेके पात्रको ढक कर रक्खें।

(९३) कृमिजन्य हृद् रोगमें वमन करानेका निषेध है; विरेचन देना हितावह है।

(९४) शस्त्र लगनेसे शरीरका कोई भाग कट जानेपर उसको ऊंचा रखनेसे रक्त निकलना बन्द होता है।

(९५) ऊरुस्तभ (आढचवात) में वमन, विरेचन, बस्ति, तैलमर्दन, शिरावेध, और स्निग्ध पदार्थोका सेवन हानिकारक है। लेप, ईट तपाकर सेकना, स्वेदन, उपवास तथा आम, मेद और कफके नाशक रूक्ष पदार्थोका सेवन हितकर है। जलाशयमें तैरना भी लाभदायक है। इस रोगमें पहिले कफनाशक उपचार और फिर वातनाशक ओषधि देवें

(९६) कम्प वातमें तैलकी मालिश, पौष्टिक भोजन तथा अफीम, कुचिला और गूगलका सेवन, ये सब अति लाभदायक हैं।

(९७) अर्दित वात (मुखको पक्षाघात) में तैलकी मालिश और स्निग्ध भोजन लाभदायक है।

(९८) मन्यास्तंभमें रुक्ष स्वेद और नस्यसे सत्वर लाभ होता है।

(९९) जीर्ण आमवातमें लंघन, स्वेदन स्नेहपान, विरेचन, वस्ति तथा कड़वी, चरपरी और अग्निप्रदीपक ओषधियोका उपचार करनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

(१००) वातरोगकी सूजन पर रात्रिको लेप न करें और दिनमें सूखने पर लेपको बार बार हटा दें।

(१०१) गाँठ फोड़ा आदि पर बैठानेका लेप गाढ़ा किया हो, तो उसे रहने दें; बार-बार न हटावें। एवं पकानेकी गांठ पर रात्रिको भी नया लेप करना चाहिये।

(१०२) अस्थिभङ्गका लेप २-३ दिन या अधिक दिनके बाद ही खोलकर बदलें; जल्दी नहीं खोलना चाहिये।

(१०३) विद्रधि (फोड़ा) को पकानेके लिये बांधी हुई पुल्टिश यदि २-३ घण्टे पर बार-बार बदलते रहे, तो पाक जल्दी हो जाता है। पुल्टिशको ज्यादा समयतक रहने देना, यह लाभदायक नही है।

(१०४) विद्रधिको शस्त्रसे चीरना हो, तो खड़ा चीरा लगावें। जिससे रक्त-वाहिनियां थोड़ी कटती हैं; और रक्त भी थोड़ा निकलता है। प्रमादवश आड़ा चीरा गया जायगा, तो रक्तवाहिनियां ज्यादा कट जायंगी और रक्त ज्यादा निकलेगा।

(१०५) पित्तप्रधान उन्माद रोगीको धारोष्ण दूध अथवा गोघृत पिलाना और पौष्टिक आहार देना, ये सब हितकर हैं। सूर्यके ताप और अग्नि का सेवन, मैथुन, शोक, क्रोध आदि हानिकर हैं। ठंडे जलमें उठना अति हितकर हैं।

(१०६) कुष्ट रोगमें मांस, दूध, दही और इनसे बनी हुई वस्तुओंका सेवन हानिकर है। चनेके पदार्थ और घी अति हितकर हैं। वमन, विरेचन, स्वेदन और वस्ति प्रयोग लाभदायक है।

(१०७) विसर्प रोगमें घृत और तैल वाले पदार्थ हानिकर हैं।

(१०८) श्लीपद रोगमें तैलकी मालिश हानिकर है। किन्तु जब रक्त निकलना हो, तब तैलमर्दन और स्वेदन कर सकते हैं।

(१०९) कर्णशोथ पर तैल और घृत वाले मलहम प्राय लाभ नहीं पहुंचाता है। जोंकोसे दूषित रक्त निकलवाकर शोथको तुरन्त कम करने वाला लेप लगाना चाहिये।

(११०) नाडी व्रण (नासूर) का मुह छोटा होवे तो पहिले चूना, सैंधानमक या अन्य क्षार युक्त लेप करके मुह को बडा बनावें। पश्चात् सिद्धघृत अथवा तैलकी पिचकारी द्वारा प्रवेश करानेसे रोगकी निवृत्ति होती है।

(१११) पागल कुत्ता काटनेके पश्चात् १ वर्ष पर्यन्त वातप्रकोपक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये।

(११२) साँप काटनेके पश्चात् एक आध मास तक नित्य रोगीको शक्ति अनुसार सुबह भोजनके ३ घण्टे पहले २ से ४ तोले तक घी पिलानेसे नेत्रज्योति नहीं बिगडती।

(११३) चूहेके विष-प्रकोपमें शीतल वायु शीतल जल, शीतल गुण वाला भोजन, दिनमें शयन आदि हानिकर हैं।

(११४) बहुमूत्र रोगमें अधिक घी, खटाई, नये चावल, अधिक परिमाणमें मधुर पदार्थ का सेवन, अजीर्णमें भोजन, भोजन पचन होनेसे पहले पुन भोजन और भोजनके साथ अधिक जलपान, ये सब हानिकर हैं तथा भोजनके एक घण्टा पीछे जल पीना, भोजन सादा और कम करना, खुली वायु में घूमना, ये सब हितकर हैं।

(११५) स्वप्नदोषमें रात्रिको मधुर पदार्थका सेवन, रात्रिको भात खाना, अजीर्णमें भोजन, वातल पदार्थोंका अति सेवन, खट्टा पदार्थ खाना, तमाखू, चाय आदि हानिकर हैं। एवं अफीम, सोमल और हरताल मिश्रित ओषधि भी प्राय हितकर नहीं है। सायंकालको खुली वायुमें घूमना, सात्विक भोजन, ईश्वरस्मरण, रात्रिको भोजनके बदले केवल दूध पीना, ये सब लाभदायक हैं।

(११६) पूयमेह (सुजाक) के रोगीको रक्तशोधन न करने और अपथ्य सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, पेशाव में रक्तस्राव, वद, वृषणवृद्धि, नेत्राभिष्यंद, मंदाग्नि, संधिवात और प्रमेह पीटिका आदिमेंसे कोई न कोई उपद्रव हो जाने की संभावना है।

(११७) सुजाक और उपदंश रोगमें अपथ्य सेवन से रोगका मूल ऐसा दृढ हो जाता है कि जीवन पर्यन्त वारवार अनेक उपद्रव होते रहते हैं। वद विद्रधि,

नेत्रव्याधि, नख बिगड़ना, रक्तविकार, संधिवात, मन्दाग्नि, मलावरोध आदिकी संप्राप्ति हो जाती है ।

(११८) दाँतके रोग, नेत्ररोग, शिरदर्द और प्रतिश्याय आदिमें आवश्यकता पर पेट साफ करनेवाली ओषधिका सेवन करते रहना चाहिये ।

(११९) साधारण हिलते हुए ऊपरके दांत और दाढ़ोको शस्त्रसे नही निकलवाना चाहिये । अन्यथा नसोंमे आघात होकर अधिक रक्त गिरना, शिरदर्द, नेत्रकी निर्बलता आदि भयंकर रोग उत्पन्न होते है । यदि दाढ़ोंको निकलवाना हो, तो विशेषज्ञोसे मसूढ़ेकी जड़को शिथिल करनेवाली ओषधिका लगवाकर निकलवाना चाहिये ।

(१२०) तीक्ष्ण नेत्ररोगमे नेत्रोंको ठंडे जलसे नही धोना चाहिये और ठण्डी वायुसे बचाना चाहिये । नेत्रोंको धोनेके लिये निवाये जलका उपयोग करना चाहिये । नेत्र रोगमें गुड़, मिर्च, तैल, शुष्क अन्न, कब्जाकारक पदार्थ और रात्रिकाजागरण, इन सबका त्याग करना चाहिए ।

(१२१) थका हुआ, रुदन किया हुआ, भयभीत, मदिरा पिया हुआ, नवीन ज्वर-वाला, अजीर्णरोगी, मल-मूत्रका वेग जिसने रोका हो, इन सबके नेत्रोंमें अंजन नही लगाना चाहिये ।

(१२२) फूला आदि रोगोंमे जहां लेखन ओषधिको प्रयोजित करना हो, उस लेखन (तीक्ष्ण) औषधिके साथ मिश्री अथवा अन्य मधुर ओषधि न मिलावे । केवल शहद मिला सकते है ।

(१२३) फूला, मोतियाबिन्दु आदि रोगोंमे अंजन करनेकेलिये तांबेकी सलाई विशेष हितकर है ।

(१२४) मोतियाबिन्दुके रोगीके नेत्रोंमेसे ज्यादा अश्रुपात हो, ऐसी ओषधिका उपचार नहीं करना चाहिये ।

(१२५) पित्तज अभिष्यंदमे कदापि स्वेदन नही देना चाहिये । पित्तज और वातज नेत्ररोगकी आमावस्थाके समय कच्चा दोष हो, तब तक नेत्रमे ओषधि न डाले । किन्तु, कफजनित नेत्ररोगको आमावस्थामे तीक्ष्ण ओषधि डालनी चाहिये ।

(१२६) नेत्र, हृदय और वृषण कोमल होनेसे इन स्थानोपर स्वेदन न दे । अति आवश्यकता होनेपर सौम्य स्वेदन दे ।

(१२७) मूत्ररोगमे मूत्रविरेचन देना हो, तो सुबहके समय देना चाहिये ।

(१२८) कफवृद्धि दूर करनेके लिए वमन कराना हो, तो प्रातःकाल पिला कर वामक ओषधि देवे ।

(१२९) मलावरोध और इतर रोगोमें विरेचनकेलिये ओषधि प्रायः जल्दी दें । परन्तु मृदु विरेचन देना हो, तो रात्रिको देना चाहिए ।

(१३०) अग्निमांद्य और अजीर्णको दूर करने वाली ओषधि भोजनके साथ देनी चाहिये । अजीर्णनाशक ओषधि रात्रिको भी दी जाती है ।

(१३१) तृषा, हिचकी, श्वास और विष-प्रकोपमें बार-बार औषधिका सेवन करना चाहिये ।

(१३२) मानसिक चिन्ता या इतर रोगोंसे निद्रा-नाश होनेपर मादक औषधि रात्रिको सोनेके दो घण्टे पहिले देनी चाहिये ।

(१३३) रक्तविकार, कफप्रकोप, जीर्णविषपीडा और इतर रोगोमें रात्रिको स्वेदल औषधि देनी हो, तो सोनेके दो घण्टे पहिले दें ।

(१३४) अग्निसे जले हुए भागपर शीतल जल लगाना हानिकर है और तुरन्त लेप करना हितकर है ।

(१३५) कानके रोगमें रस आदि औषधि प्रातः और तैल आदि औषधि सूर्यास्तके पश्चात् डालनी चाहिये ।

(१३६) दाहमह शिरदर्द रोगमें तैलकी मालिश नहीं करनी चाहिये । क्योंकि तैलसे रोमकूप बन्द हो जाते हैं, जिससे प्रस्वेद द्वारा विष बाहर नहीं निकल सकता । फिर मस्तिष्कमें उष्णताकी वृद्धि होकर दाह, उत्ताप और व्याकुलता बढ़ जाते हैं ।

(१३७) जब असाध्य रोग निवारण न हो सके, तब तीव्र पीडा आदि लक्षणोंको कम करानेके लिये प्रयत्न कराना चाहिये । परन्तु ऐसी क्रियासे रोग दमन हो जायगा एसे मिथ्याभ्रम में रोगी या रोगीके सम्बन्धियो को नहीं डालना चाहिये ।

(१३८) मूत्रग्रन्थि- (पौरुषग्रंथिकी वृद्धि) हो जानेपर शीत न लग जाय, य सम्हालना चाहिये । नियमित पथ्य भोजन करना चाहिये नियमित समय पर उदरशुद्धि हो, ऐसा स्वभाव बनावें । अधिक परिश्रम या मार्ग गमन न करें । मूत्रावरोधक द्रव्य या मत्रकी उत्पत्तिका ह्रास करने वाले भोजन या औषध)मल्ल, मिथनाइन, वगभस्म, कुचिला, हीग, तेल, मिलावा आदि) न लेवें

(१३९)बालाक्षेप -(बालको को धनुर्वात) आनेपर रोगीके वस्त्र दूर करना चाहिये । मुखमडल पर जल छिडके, वायु डालें और पैरोको गर्म जलमें रखावें ।

(१४०) प्रसूताको आक्षेप आनेपर गर्भाशयमें उत्तरवस्ति देकर दोष को बाहर निकालें । पैरोपर गर्म जलकी थैलीसे सेक करें ।

(१४१) यकृद्विकार और कामला होने पर यकृत्के पित्तसे पचन होनेवाले पदार्थ घृत तैलादिका सेवन नहीं करना चाहिये या कम करना चाहिये ।

(१४२) यकृत्में रक्तसग्रह पीडित रोगीको शरावका व्यसन हो, तो छुड़ा देना चाहिये । व्यायाम, लघन विरेचन, यकृत् पर सेक और रक्तस्राव कराना, ये सब हित कारक है ।

(१४३) निद्रानाश (निद्रा न आना)-नियमित उदरशुद्धि हो ऐसा स्वभाव डालें । निद्रानाशका हेतु मानसिक आघात होनेपर शामको द्राक्षासव या खुरासानी अजवायन देना चाहिये । मनको ईश्वरमें लगाकर प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करें । रक्तदबाव वृद्धिहेतु हो, तो विरेचन देवें । उष्ण आहार या पेयका अधिक सेवन हो, तो भोजन समशीतोष्ण कराना चाहिये ।

(१४४) गर्भपात--होनेपर गर्भाशयमें रहे हुए गर्भके अंग उपाङ्गोंको निकालकर गर्भाशयको शुद्ध बना लेना चाहिये ।

(१४५ कर्णशूल-पूयपाक होनेपर होता हो, तो कानको उष्ण रखना चाहिये । शीतलवायु और शीतल जलसे रक्षा करनी चाहिये ।

(१४६) उरस्तोय पीड़ित रोगीके फुफ्फुसोंको शीत न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये और रोगीको शय्यापर पूर्ण आराम कराना चाहिये ।

(१४७) विष प्रकोप-यदि किसी अम्ल (Acid) या दाहक पदार्थके सेवनसे हुआ हो,तो उसके विरोधी प्रतिविषका सेवन करानेसे विषशमन हो जाता है ।

अफीम, जमालगोटा, कुचिला, शीशा (नाग), मर्दासिंग, सिन्दूर, जसद, वत्सनाग, ताम्रादिका सेवनहोनेपर वमन करायी जाती है । यदि स्वाभाविक वमन होकर विष निकल गया हो, तो फिर वमन करानेकी आवश्यकता नहीं है । पारद, रसकर्पूरादि के विषप्रकोपमें वमन नहीं करायी जाती, बल्कि दूध और घीका सेवन कराया जाता है

(१४८) सर्पविष और अहिफेनवि इन दोनोंमें से किसी विष से पीड़ित रोगीको निद्रा न आजाय, यह सम्हालना चाहिये । तीक्ष्ण अञ्जनादिप्रयोग करें और हृदय के संरक्षणार्थ हृद्य औषधिका सेवन करावें ।

(१४९) अलर्क अर्थात पागल कुत्तेके विषसे पीड़ित रोगीको कुत्ता काटनेके लगभग १५ दिन होनेपर धनूरा या इतर औषधिके सेवन द्वारा अपक्व विषको प्रकुपित कराकर जला देना चाहिये ।

(१५०) सोमलका सेवन विष मात्रामें हो गया हो, तो हो सके उतना जल्दी वमन करा देना चाहिये । यदि विषका प्रवेश रक्त और अन्त्रमें हो गया हो, तो दूधमें घी या जलमें एरंड तैल मिलाकर पिला देना चाहिये ।

(१५१) नासारक्तस्राव—यदि मस्तिष्कमें रक्तवृद्धि होनेपर हुआ हो, तो उसे नहीं रोकना चाहिए । अन्यथा भयंकर आपत्ति उपस्थित हो जायगी । पक्षाघात, मस्तिष्कमें रक्तस्राव या कोई बड़ी शिरा टूटकर मृत्यु अथवा अन्य विकारकी प्राप्ति हो जायगी ।

(१५२) शारीरिक उष्णता—शीत कटिबन्ध प्रदेशमें स्वस्थ सबल मनुष्यकी शारीरिक उष्णता सामान्यतः ९८.४° मानी गई है । भारतमें प्रांतमें भेदसे उष्णता भिन्न भिन्न

रहती है । कतिपय निर्बल मनुष्योंको ९६.५° से ९७.५° तक उष्णता रहती है । उनको ९९° होनेपर सामान्यत १॥ डिग्री ज्वर माना जायगा ।

प्राय सुबह उठनेके समय अधिकतम और रात्रिको सोनेके २-३ घण्टेबाद न्यूनतम उष्णता रहती है। शीत लगने और क्रोध करनेपर उष्णताकी वृद्धि हो जाती है। स्वस्थ मनुष्यको कभी १००° तक हो जाती है। उसे ज्वर नहीं मानना चाहिए।

ज्वरावस्थामें उष्णता १०५° से १०८° तक ४-६ घण्टे रहनेपर स्थिति भयप्रद मानी जाती है, इससे अधिक बढनेपर रोगीका जीवन अधिक समयतक नहीं रह सकेगा, ऐसा अनुमान होता है ।

आशुकारी आमवातिक ज्वरमें १०४ से अधिक उष्णता रहनेपर हृदयको हानि पहुचनेका भय रहता है । एव क्षयरोगमें भी जितनी उष्णता बढती है उतना ही अधिक कीटाणुविष रक्तमें मिलजाने का अनुमान होता है और उतना ही अधिक मासक्षय होता ॥

कामलारोग रक्तमें पित्त मिलजानेपर होता है, यदि साथ साथ शारीरिक उष्णता भी बढ जाती है, तो रोगबल अधिक माना जाता है ।

आन्त्रज्वर (मधुरारोग) में सामान्यत सुबहकी अपेक्षा शामको २ डिग्री उष्णता अधिक रहती है । पहले सप्ताहमे उष्णता क्रमश बढती है, सप्ताहके अन्तमें सुबह १०२° होतो रात्रिको १०४° रहता है, दूसरे सप्ताहमें यह परिमाण कायम रहता है, तीसरे सप्ताहमें उष्णता क्रमश घटने लगती है ।

बडी आयुवाले मनुष्यको ज्वर बढनेपर प्रलाप होने लगता है, किन्तु छोटे बच्चेको ऐसी अवस्थामें आक्षेप होता है। बालकोंको ज्वरवृद्धि शीघ्र होती है और ह्रास भी शीघ्र होता है ।

उदरमें मल, आम या विष सगृहीत होनेपर ज्वरावस्था अधिक समयतक रहती है एव कम होने के पश्चात् थोडेही समयमें उष्णता बढ जाती है ।

(१५२) नाडीकी गति—सामान्यत पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी नाडीकी गति अधिक रहती है। भोजनके परिपाक कालमें, परिश्रम करने पर और मानस उत्तेजना होने पर नाडीकी गति बढ जाती है। भय लगनेपर गति मन्द हो जाती है, हृदय निर्बल होने पर नाडी की गति निर्बल और अस्थिर वेगवती बन जाती है।

सगर्भावस्थामें ३ मासके पश्चात् नाडीकी गति सामान्यत शिथिल होने लगती है और श्वासोच्छ्वास की सख्यामें वृद्धि होती है। नाडी स्पदन सामान्यत प्रति मिनिट श्वसोच्छ्वास निम्नानुसार होता है ।

गर्भस्थ शिशु	१४० से १५०	३ से ७ वर्ष	९० से १००
जन्मके समय	१३० से १४०	७ से १४ वर्ष	७५ से ९५

प्रथमवर्ष	११५ से १३०	१४ से २५ वर्ष	७५ से ८५
द्वितीयवर्ष	१०० से ११५	२५ से ६० वर्ष	६५ से ७५
तृतीयवर्ष	९५ से १०५	६० से अधिक	७५ से ८५

सामान्यतः आयु और बलवृद्धिके साथ साथ नाड़ी स्पन्दन कम होते जाते हैं। पुनः वृद्धावस्था में हृदय निर्बल बननेपर स्पन्दन संख्या बढ़ जाती है।

स्वस्थावस्थामें शारीरिक उष्णता नाड़ीगति और श्वसन संख्या नियमित और परस्पर सम्बन्धवाली रहती हैं। सामान्यतः नाड़ीस्पन्दन और श्वसनका अनुपात ४=१ रहता है। यह नियम फुफ्फुसप्रदाहादि रोगोंमें टूट जाता है।

(१५४) श्वसनक्रिया-आयुवृद्धिके साथ जैसे जैसे फुफ्फुस सबल बनते जाते हैं, वैसे वैसे श्वसन संख्या कम होती जाती हैं। पुरुषों की अपेक्षा समान आयुवाली स्त्रीकी श्वास-संख्या कुछ अधिक होती है। एवं सगर्भावस्थामें और वृद्धि होती है। सामान्यतः श्वसन-संख्या प्रति मिनट आयुकी दृष्टिसे निम्नानुसार होती है।

२ मास से २ वर्ष तक	३० से ३५	१० वर्ष से १५ वर्षतक	१८ से २२
२ वर्षसे ५ वर्षतक,	२५ से ३०	१५ वर्षसे ४० वर्षतक	१८ से २०
५ वर्ष से १० वर्षतक	२२ से २५	उत्तर वयमें	२० से २५

निमोनिया, कास, श्वासादि, फुफ्फुस रोगोंमें प्रायः श्वास गहरा नहीं चल सकता। जिससे श्वसन संख्यामें वृद्धि हो जाती है। इसीतरह ज्वर, हृदयविकार अथवा अन्य कारण से निर्बलता आनेपर श्वसन क्रिया जल्दी जल्दी होने लगती हैं। जिससे संख्यामें वृद्धि होती है।

(१५५) रक्तदबाव—स्वस्थावस्थामें हृदय, धमनी, शिरा और रक्ताभिसरणमें सहायक अवयव सबल होनेपर रक्तदबाव सामान्यतः नियमित रहता है। किन्तु गरम गरम भोजन गरम पेय, शराब आदि उत्तेजक औषधियां, व्यायाम, विरेचन, उपवास, रक्तस्राव, शीत लगना और क्रोध, चिन्तादि मनोवृत्तियोंके कारण न्यूनाधिक हो जाता है। शराब और उपदंशादि रोगोंके कारणसे धमनियोंकी दीवार कठोर बननेपर बहुधा रक्त दबाव बढ जाता है। पाण्डुरोग, देहमें रक्तकी न्यूनता और अति हृदय शामक औषधि लेनेपर रक्तका दबाव कम हो जाता है। रक्तदबाववृद्धि और रक्तदबाव ह्रास, इनमें जो स्थिति

सामान्यतः रक्तदबाव आयु अनुसार निम्नानुसार होता है।

उत्पन्न हुई हो, उसे लक्ष्यमें रखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

वर्ष	हृदयाकुंचनदबाव,			हृदयप्रसरणदबाव,			नाड़ीदबाव
	न्यनतम	औसत	अधिकतम	न्यूनतम	औसत	अधिकतम	
१५-१९	१०५	११७	१२९	७३	७७	८१	४०
२०-२४	१०८	१२०	१३२	७५	७९	८३	४१

२५-२९	१०९	१२१	१३३	७६	८०	८४	४१
३०-३४	११०	१२२	१३४	७७	८१	८५	४१
३५-३९	११०	१२३	१३५	७८	८२	८६	४१
४०-४४	११२	१२५	१३७	७९	८३	८७	४२
४५-४९	११५	१२७	१३९	८०	८४	८८	४३
५०-५४	११६	१२९	१४२	८१	८५	८९	४४
५५-५९	११८	१३१	१४४	८२	८६	९०	४५
६०-६४	१२१	१३४	१४७	८३	८७	९१	४७

(१५६) अंगमर्दन—मांसपेशियोंको सबल बनाने और थकावट दूर करनेकेलिये चंपी अति सहायक क्रिया है। चंपी करनेमें मांसपेशियोंकी मोटाईके अनुरूप उनपर दबाव देना चाहिये। एवं एक सिरेसे दूसरे सिरेतक मांसपेशीपर घर्षण करना चाहिये। इस क्रियामें दबाव सदया रक्तकी गति हो उस ओर डाला जाता है। विरुद्ध दिशामें दबाव नहीं देना चाहिये। जिस तरह रक्ताभिसरण क्रियामें सरलता हो, उस तरह चंपी करना चाहिये।

चंपी करनेमें पहले त्वचाको स्निग्ध बनानेकेलिये तैल मर्दन कर लेना चाहिये। विशेष रुग्ण स्थानमें मलहमकी मालिश भी की जाती है। फिर चंपी करनेपर त्वचा उत्तेजित होती है और मांसपेशियां सबल बनती हैं और शांत निद्रा आनेसे रोग निवारण या थकावट दूर करनेमें सहायता मिल जाती है।

(१५७) औषधमात्रा आयु और बलके अनुरूप औषधियोंकी मात्रामें न्यूनाधिकता होती है। जैसे बडी आयुवाले सबल मनुष्यको कोई औषधि २४ रत्ती दी जाती है, तो वहां औषधि कम आयुवाले या निबलको सामान्यत निम्नानुसार न्यून देनी चाहिये —

आयु	रत्ती	आयु	रत्ती
२१ से ५० वर्ष	२४	५ से ८ वर्ष	८
१८ से २० वर्ष	२०	३ से ५ वर्ष	५
१६ से १८ वर्ष	१६	२ से ३ वर्ष	३
१२ से १६ वर्ष	१२	१ से २ वर्ष	२
८ से १२ वर्ष	१०	१ वर्ष से कम	१

पुरुषकी अपेक्षा नाजुक प्रकृतिवाली स्त्रियोंको कुछ मात्रा कम देनी चाहिये। कभी लाभ पहुंचानेकी भावनासे अधिक मात्रा नहीं देनी चाहिये। अन्यथा लाभदायक औषधिसे भी हानि पहुंच जायगी।

शहरवासी मनुष्यों की अपेक्षा ग्रामोंकी शुद्ध वायुमें रहनेवाले मनुष्योंको मात्रा प्राय अधिक देनी चाहिये।

विरेचन औषधिकी मात्रा आयुर्वेदकी अपेक्षा शरीरबल, रोगबल, मलसंग्रह और समयपर विशेष अवलम्बित है।

मादक और निद्राप्रद औषधिकी मात्रा व्यसन, स्वभाव और प्रकृतिके आधारपर न्यूनाधिक होती है।

(रोगी विषयक सूचना)

(१५८) सगर्भा स्त्रीको अफीम, जमालगोटा और एलुवावाली अथवा तीक्ष्ण ओषधिया नही देनी चाहिये।

(१५९) सूतिका ज्वरमें पीड़ित रोगिणी और सन्निपातके रोगीको घी खिलाना अति हानिकर है।

(१६०) यकृत्की शिथिलतासे उत्पन्न मन्दाग्नि और बहुमूत्रके रोगीको घी ज्यादा नही देना चाहिये। मन्दाग्नि होनेपर घीका पचन योग्य समयमें नहीं होता, और बहुमूत्र होनेसे मूत्रोत्पत्तिमें अधिक कष्ट पहुँचता है और पेशाबके साथ घृतका कुछ अंश भी निकलता है।

(१६१) दूध पानेवाले बच्चोंको ओषधि देनेके समय उसकी माताको भी ओषधि देनी चाहिये। बालकोंको अफीमवाली ओषधि देनेकी आवश्यकता हो, तो सम्हालपूर्वक दे।

(१६२) जलमें डूबा हुआ मनुष्य जब तक तैर कर ऊपर न आया हो, तब तक उसके जीवनकी आशा रह सकती है, जलके पेंदेमेंसे निकाला गया हो, तो कृत्रिम श्वासोच्छ्वास चलानेके लिये बार-बार नाकमें फूंक देवे, हाथ हिलाते रहे और सीधा अथवा उल्टा सुलाकर पेटमें रहे हुए जलको निकाल डाले। यदि छोटा बच्चा हो, तो चक्र (गाड़ीके चाक) पर बांधे. फिर चक्र को फिराकर पेटमें भरे हुए जलको निकाल डाले, जिह्वा को बाहर खेंचें, हाथ पैर दबावें, सेक करें, गर्म वस्त्र पहिनावें और निर्वात प्रकाशवाले स्थानमें रखे, ये सब उपाय करनेपर मनुष्य पुनः होश में आजाता है।

(१६३) शरीरमें रोग हो तब तक पौष्टिक ओषधिसे लाभ नहीं होता। रोग दूर होनेके पश्चात् ही पौष्टिक ओषधि देनी चाहिये।

(१६४) किसी भी रोगीका रोग शमन होने लगे, उस समय उसके ओषधि व्यवस्था द्वारा, स्वाभाविक क्रिया या अभ्यासमें व्याघात नहीं पहुँचाना चाहिये। स्वभावके अनुकूल ओषधि-व्यवस्था और पथ्य आदि की योजना करनी चाहिये।

(१६५) स्त्रियोंके शारीरिक विधानमें कोमलता और स्वभाव में मृदुता होनेसे पुरुषोंकी अपेक्षा ओषधिकी मात्रा कम देनी चाहिये।

(१६६) शास्त्रोंमें लिखे हुए रोगोंके समस्त लक्षण त्रिदोषज ज्वर आदि रोगों में हों, तो रोग दूर नहीं होसकेगा, अर्थात् रोगीकी मृत्यु हो जानेकी संभावना है।

(आहार-विहार-सम्बन्धी सूचना।)

(१६७) शीतल जलपान—मूर्छा, पित्त ,गर्मी, दाह, विषविकार, रक्तविकार, मदात्यय श्रम, तमकश्वास, वमन और ऊर्ध्व रक्तपित्त आदि रोगोंमें अन्नपाचन होने पर ठण्डा जल पिलाना लाभदायक है। रक्तपित्त, मूर्छा रक्तविकार और पित्त प्रधान रोगोंमें उष्ण जलका उपयोग हानिकर है।

(१६८) उष्ण जलपान—पार्श्वशूल, प्रमेह, बवासीर, पाण्डु, जुखाम, वातरोग गलग्रह, अफारा, मलावरोध, विरेचन, नवीन ज्वर, गुल्म, क्षय, मन्दाग्नि अरुचि, नेत्र रोग, संग्रहणी, कफप्रधान रोग, श्वास, कास, फोड़ा-फुन्सी और हिचकी। इन रोगोंमें गरम तथा गरम ठण्डा किया हुआ जल पिलाना हितकर है। दिनमें उबाला हुआ जल शाम तक और रात्रिको उबाला हुआ सुबह तक उपयोगमें लेवें।

(१६९) अल्प जलपान —अरुचि, जुखाम मन्दाग्नि, शोथ, क्षय, मुंहमें जल आना उदर-रोग, कुष्ठ, तीक्ष्ण नेत्ररोग, नूतन ज्वर, व्रण और मधुमेहमें थोड़ा थोड़ा जल आवश्यकता पर पिलाते रहें। विसूचिका (हैजा) में लौंगसह उबाला हुआ (पश्चात् ठण्डा किया हुआ) जल या बर्फ का जल एक एक चम्मच पिलाते रहें। एक साथमें अधिक जल पिलानेसे वमनका वेग नहीं रुकता।

(१७०) शीतल जल निषेध—घृत-पान या तैलपानके बाद प्यास हो, तो निवाया जल पिलावें। तुरन्त ठण्डा जल पिलाना हानिकर है। एवं सन्निपातके रोगीको ठण्डा जल पिलाना या स्नान कराना, मृत्युको बुलाना है।

(१७१) अधिक जलपान—एक समयमें अधिक जल पीनेसे आम बढ़ता है। फिर धीरे धीरे अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

(१७२) मधुर जलपान—शक्कर मिलाकर जल पीनेसे कफ बढ़ता और वात घटता है। मिश्रीयुक्त जल दोषनाशक और शुक्रल है। गुड़वाला जल मूत्रकृच्छ्र पित्तकर तथा कफवर्द्धक है। किन्तु पुराना गुड़ युक्त जल पित्त नाशक और पथ्य है।

(१७३) जलपाननिषेध—शौच जानेके पश्चात्, सूर्यके तापमें घूमकर बिना विश्रांति लिये और व्यायाम या शारीरिक परिश्रम करनेपर तुरन्त एवं भोजनके प्रारम्भमें जल-पान नहीं करना चाहिये।

(१७४) उषा पान—रात्रिके अंतमें उठनेपर शौच जानेसे पहिले जल पान करना हितकर है। किन्तु कफप्रकोप, मन्दाग्नि और नूतन-ज्वर आदि रोगोंमें उषा पान नहीं करना चाहिये। विशेष विचार 'चिकित्सा-तत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्डके पृष्ठ ६२८ में किया है।

(१७५) दुग्धनिषेध—तीव्र आम प्रकोपसह नूतन ज्वर, मन्दाग्नि, आम वृद्धि, कुष्ठ, उरःशूल, कफवृद्धि और कृमि, इन रोगोंमें दुग्ध हानिकर है। अर्शके रोगीके

लिये कच्चा दुग्ध हानि पहुँचाता है। जब नया उपदंश, सुजाक और व्रणमेंसे पूयस्राव होता हो, तब अधिक दुग्ध पीना, या भैंसका दुग्ध पीना हितकर नहीं है।

(१७६) दुग्धके प्रतिकूल पदार्थ—सैंधा नमकको छोड़कर अन्य क्षार आँवलेको छोड़कर अन्य खटाई, गुड़, मूंग, मूली, मद्य, मत्स्य आदि भोजन, इनमेंसे किसीके साथ दुग्धका सेवन नहीं करना चाहिये।

(१७७) तक्र निषेध—उपदंश, सुजाक, प्रमेह, मूत्रमें जलन, क्षत, मूर्च्छा, भ्रम दाह, तृषा, रक्तपित्त और अम्लपित्त आदि रोगवालोंको, दुर्बल मनुष्यको एवं गरमीके समय (ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें) तक्र नहीं पिलाना चाहिये।

(१७८) दधिनिषेध—रक्तपित्त, अम्लपित्त, कफवृद्धि, क्षय, सूजन, आगन्तुक क्षतरोग, अस्थिभंग, पीनस, उपदंश, सुजाक, नेत्रदाह, नेत्रलाली, पित्तजमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि मूत्ररोग, मदात्यय, कुष्ठ, वातरक्त, अन्तर विद्रधि और मूत्ररोग जनित संधिवात, इन व्याधियोंसे पीडितोंको दही नहीं देना चाहिये। शरद्, ग्रीष्म और वसन्त ऋतुमें दही प्रतिकूल रहता है, एवं रात्रिके समयमें भी दहीका सेवन निषिद्ध है। दिनमें यदि सेवन करना हो, तो नमक, जल, घृत, मिश्री, शहद, मूंगका यूष, अथवा आवलेका चूर्ण, इनमेंसे किसी अनुकूल वस्तुका मिश्रण प्रकृति और समयानुसार करना चाहिये। अन्यथा कुष्ठ, रक्तविकार, कामला, सूजन, भ्रम, पित्त-प्रकोप, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, फोड़ा-फुन्सी और संधियोंमें पीड़ा आदि विकार होजानेकी संभावना है।

(१७९) घृतनिषेध—ज्वर सहित राजक्षयमा रोगी, दूध पीनेवाला बालक, वृद्ध रोगी, कफवृद्धि, मलावरोधके रोगी, आमयुक्त रोगी, जीर्णज्वरी, मन्दाग्नि वाले बहुमूत्र रोगी, प्रमेह रोगी, और अजीर्ण जनित निर्जन्तुक विसूचिका रोगी इन सबको घी थोड़े-थोड़े परिमाणमें दें, अधिक न दें। सन्निपात और नूतन ज्वरमें बिलकुल न दें। क्षयमें अजाघृत तथा सिद्ध-घृत अन्य घृतकी अपेक्षा विशेष लाभप्रद हैं।

(१८०) अदरखका निषेध—कुष्ठ, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, रक्तपित्त, व्रण, शुष्क कास दाह, निद्रानाश, इन रोगोंमें, ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें तथा पित्तप्रधान प्रकृतिवालोको अदरखका सेवन हानिकर है।

(१८१) शहदका उपयोग—शहद रोगनाशक औषधिके साथ पुराना और रसायन गणके लिये नया लेना हितकर है। अनपानमें शहदके साथ घृत मिलाना हो, तो गोघृत लेना चाहिये वातश्लेष्म प्रधान प्रकृतिवालोंको शहद दुगुना और पित्त प्रधान प्रकृतिवालोंको घृत दुगुना लेना चाहिये। दोनोंमें समभाग नहीं मिलाना चाहिये।

यूनानीमें शहदकी चाशनीकर मैलको निकालकर उपयोगमें लेनेका विधान है, तथापि आयुर्वेदकी दृष्टिसे शहद एक प्रकारका विष है। विष अग्निपर गरम करनेसे कुपित होता है। इसलिये आयुर्वेदमें शहदको गरम करनेका निषेध किया है।

बोतल, अमृतबान या मिट्टीके वर्तनमें रखना चाहिये। टीनके पीपेमें ६-८ मास तक रहने पर शहद काला हो जाता है और दुर्गन्ध आने लगती है।

शहदमें सामान्यतः शीतवीर्य, लघु, ईषत् कषाययुक्त मधुर रस, रूक्ष, ग्राही लेखन, चक्षुके लिये हितकर अग्निदीपक, स्वरवर्द्धक, व्रणशोधक, व्रणरोपक, कामलता सम्पादक, सूक्ष्मस्रोतोगामी, स्रोतस्समूहका विशोधक, आह्लादजनक, प्रसादक, वर्णकारक, मेधाजनक, कामोत्तेजक, विशद गुणयुक्त, रुचिकर, योगवाही और किंचित् वातकारक गुण है। शहद कुष्ठ, अर्श, कास, रक्तपित्त, कफ, प्रमेह, क्लान्ति, कृमि, मेद, पिपासा, वमन, श्वास, हिक्का, अतिसार, कोष्ठबद्धता, दाह, क्षत, और क्षय रोगमें हितकारक है।

शहदमें जो बड़ी मक्खीका शहद (भ्रामर) है, वह गाढ़ा अति मधुर, भारी और रक्तपित्तनाशक है। छोटी मक्खियों का शहद (माक्षिक) अति हल्का, रूक्ष और श्रेष्ठ है। इस शहदको भगवान् धन्वन्तरि और महर्षि आत्रेयने सर्वश्रेष्ठ और श्वास आदि रोगोंमें विशेष हितकर माना है।

नया शहद बृंहण, पौष्टिक, सर, अभिष्यन्दी, स्निग्ध, अनुलोमक और श्लेष्महर है। पुराना शहद रूक्ष, मेद और कफका नाशक, ग्राही और अति लेखन (देहको कृश बनाने वाला) है।

छत्ता परिपक्व होने पर शहद निकाला हो, तो वह त्रिदोषनाशक तथा छत्ता पूरा पका न हो, तो शहद खट्टा और त्रिदोषकृत् होता है।

नव्यमत (Chemistry) अनुसार शहदको परीक्षा करनेपर त्रिविध शर्करा (अन्न शर्करा, द्राक्षशर्करा और फलशर्करा Dextrose, Glucose or Fructose) मिलती है। इस हेतुसे अनेक रोगोंमें रोगियोंके बलकी रक्षाकेलिये शहद दिया जाता है। शहदमें यह विशेषता है कि, वह आमाशयमें ही शोषित हो जाता है। उसे अन्त्रमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। इस हेतुसे मधुमेहके रोगीको भी शहद दिया जाता है। जिनको शक्कर अनुकूल न हो, वे प्रतिदिन २-४ तोले शहद भोजनके साथ सेवन करते रहें, तो हृदय सबल बनता है।

(१८२) मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल (Acidic Reaction) हो, तो घृत आदि स्नेहयुक्त भोजन अधिकांशमें नहीं करना चाहिये।

(१८३) प्रातःकालके भोजनके पश्चात् वामकुक्षी (बाईं करवटसे लगभग आध घण्टे तक आराम) करना और सायंकालके भोजनके बाद थोड़ा घूमना लाभदायक है। इस विषयमें अंग्रेजी कहावत है कि—After dinner rest a while, after supper walk a mile

(१८४) दिनके भोजनके अन्तमें तक्र सेवन और रात्रिके भोजनके बाद दुग्धपान करना हितकारक है। रात्रिको दहीका सेवन और भोजनोपरान्त तुरन्त अधिक जलपान निषिद्ध है।

(१८५) भोजनके पश्चात्, मूत्रके वेगके समय और दिनमें स्त्री प्रसंग करना हानिकर है। भोजनके पश्चात् और अपचनमें स्नान करना भी हानिकर है।

(१८६) ताम्बूल सेवन—आलस्य ण, विद्रधि, दन्तरोग, तालुरोग, उपजिह्वाके विकार, अर्बुदरोग, गलगण्ड, अपची, तालुशोष और कफप्रकोपमें ताम्बूल हितकर है।

(१८७) ताम्बूलनिषेध—नेत्रप्रकोप, रक्तपित्त, क्षत, दाह, विषप्रकोप, शोष (राजयक्ष्मा), मदात्यय, मोह, मूर्च्छा, श्वास आदि रोग पीड़ितोंकेलिये नागरबेलका पान हानिकर है।

शौच जानेके पश्चात्, भोजनके पहिले, नूतन प्रतिश्यायमें, दृष्टिविकार, कानके बलका क्षय, दांतोंमें पीव निकलना, मसूड़ोंकी शिथिलता और परिश्रम करनेसे प्रस्वेद आने पर पान नहीं खाना चाहिये। राजयक्ष्मा रोगीको भी पान नहीं देना चाहिये।

(१८८) ताम्बूल का अतियोग—पानका अति सेवन करनेपर विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है। दांत, कान, नेत्र आदिका बलक्षय, शोष, रक्तपित्त, दाह और वातरक्त आदि रोग हो जाते हैं।

(१८९) अचक्षुष्य—शिरपर गरम जलसे स्नान करनेसे नेत्रको हानि पहुंचती है और वलीपलितकी उत्पति होती है। मन्द प्रकाश या प्रचण्ड प्रकाशमें लिखना-पढ़ना या इतर सूक्ष्म कार्य करना, सोते-सोते और चलती गाड़ी में पुस्तक पढ़ना, गरम वस्तु का अधिक सेवन, सिनेमा देखना, नेत्रको अधिक परिश्रम पहुंचे ऐसा सूक्ष्म काम करना, मिर्च आदि उग्र वस्तु कूटना, धुएमें बैठना, अग्निको फूंक मारना, अधिक स्त्रीसहवास अधिक तमाखू सेवन, अग्निके पास अधिक बैठना, सूर्यके तापमें घूमना और सूर्यपर त्राटक आदि नेत्रके लिये हानिकर हैं।

(१९०) दन्तविनाशक—पत्थरके कोयले, रेती या अन्य कठोर वस्तुसे दांत साफ करनेसे दांतके ऊपरकी सफेदी खराब हो जाती है। एव सिगरेट, बीड़ी, सुर्ती तमाखू, शराब, सिरका, तेज खटाई, मधुर पदार्थ और नागरबेलका पान, इनका अधिक सेवन करते रहनेसे दांतोंमें कृमि, उत्पन्न हो जाते हैं और हानि होती है।

(१९१) सोनेके समय शिरपर कपड़ा बांधने एवं पैरपर मोजे या अन्य चिपके हुए वस्त्र या जूते पहिननेसे रक्ताभिसरण क्रियामें प्रतिबन्ध होता है। जिससे उस अवयवकी शक्ति न्यून होती जाती है।

(१९२) दिनमें निद्रा लेनेके अधिकारी—व्यायाम या श्रमसे थका हुआ, जिसने मैथुन किया हो, रोज मार्गगमन करनेवाला, अतिसार, उदर-शूल, रसाजीर्ण, श्वास, तृषा, हिक्का और निराम वातके रोगी, कफक्षय हुआ हो, बालक, मद्य पीकर नशेमें आया हो, वृद्ध, रात्रि-जागरण वाले इन, सबको दिनमें भोजनके पहिले सोना हितावह है।

(१९३) उपवासके अनधिकारी—वातरोगी, तृषातुर, बालक, वृद्ध, सगर्भा स्त्री, क्षयरोगी, जीर्णज्वरी, अनेक रोगोंसे पीड़ित, थका हुआ और क्षुधातुर मनुष्यको उपवास न करावें, तथा उपवास करनेसे जिसकी हड्डीमें पीड़ा मनमें भ्रम, नेत्र पर अंधेरा, हृदयमें अवरोध और शरीरमें अति अशक्ति आती हो, उसे भी अधिक उपवास नहीं कराना चाहिये।

(१९४) नूतन रोगमें—यदि वात, पित्त, कफ धातुएँ बलवान हों, तो औषधिकी मात्रा पूरी दी जाती है। परन्तु जीर्ण रोगमें वात आदि धातु निर्बल होजानेके कारण जितना रोग जीर्ण हो, उतनी ही मात्रा कम करनी चाहिये और औषधि ज्यादा दिनों तक देनी चाहिये। जैसे हृद्रोगसे पीड़ितको लोह भस्म, सुवर्ण भस्म, मक्ना भस्म, प्रवाल-पिष्टी या इतर हृदयपौष्टिक औषधि यदि पूर्ण मात्रामें दी जाय तो हानि पहुंचाती है और १६वां हिस्सा जितनी सूक्ष्म मात्रा देनेसे वह पचन होकर शनैः शनैः लाभ पहुंचाती है।

(१९५) आहारादिका विरोध।—औषधि सेवनमें आहार-विहार, देश-कालादि विरोध न हो इस बातको समझानेके लिये नव प्रकारके विरोधोंका उदाहरण अष्टांग संग्रहकारने निम्न श्लोकमें लिखा है। ऐसी विरोधी वस्तुओंका सेवन नहीं करना चाहिये—

क्षीरकुलत्थे पनसेन मत्स्यैस्तप्तं दधि क्षौद्रघृते समांशे।
वार्युष्णरे रात्रिषु सक्तवश्च तोयान्तरास्ते यवकास्तथैव॥

(अ) दूध और कुलथी, दोनोंके विपाक और वीर्यमें विरोध है। इनमें दूध मधुर विपाकयुक्त और शीतवीर्य तथा कुलथी अम्लविपाकयुक्त और उष्णवीर्य है। यह विरुद्ध गुण विपाकका उदाहरण है। इनका सेवन एक साथ नहीं करना चाहिये।

(आ) दूधका कटहलसे विरोध है। इन दोनोंके रस, वीर्य विपाकमें समानता होने हुए भी ये परस्पर महाविरोधी हैं। यह सदृश गुण-विरोधी उदाहरण है।

(इ) दूधका चिलिचिम जातिके मत्स्य और इतर प्रकारके सब मत्स्योंके साथ विरोध है। दूध और मत्स्य, दोनोंमें मधुर गुण होनेसे एक अंशमें समानता है। दूधमें शीत वीर्य और मत्स्यमें उष्ण वीर्य होनेसे एक अंशमें विरोध है। इन दोनोंका एक साथ सेवन करना निषिद्ध है। यह एक देश विरोधी उदाहरण है।

(ई) दही तपाकर खाना यह विरुद्ध होनेसे हानि पहुँचाता है। यह विरुद्ध संस्कार का उदाहरण है।

(उ) शहद और घी, दोनों समभागमें मिलाकर सेवन करना, यह हानिकर है। यह मात्राविरोधी उदाहरण है।

(ऊ) ऊपर भूमिस्थित जल विरुद्ध स्वभाववाला है, यह विरोधी देशका उदाहरण है।

(ए) रात्रिमें सत्तूका उपयोग करना, यह कालविरोधी है।

(ऐ) बिना जल मिलाये सत्तूका सेवन करना, संयोगादि दोषदर्शक है।

(ओ) केवल जौका सेवन करना और इतर अन्नका सेवन बिल्कुल न करना, यह स्वभाव विरुद्ध नियम का उदाहरण है।

आयुर्वेदीय परिभाषा।

पुट यन्त्र आदि विधि।

(१) **गजपुट**—एक गज चौड़ा और एक गज गहेरा (लगभग २७ इंच) खड्डा कर, उसमें गोवरी भर, बीचमें औषधका सपुटको रखकर अग्नि देनेसे गजपुट अग्नि कही जाती है। गजपुटकेलिये २॥ हाथका गोल खड्डा बनवाकर पक्का इंटोंसे बधवा लेनेसे २७ इंच लगभग का खड्डा तैयार हो जायगा। खड्डे की गोलाई जितनी नीचे हो, उससे ऊपरके भागमें ३-४ इंच कम रहना चाहिये। इस रीतिसे खड्डा तैयार होनेपर अग्नि प्रमाणसे लगती है। इंटोंसे बांधे बिना अग्निका तेज जमीनमें बहुत चली जाती है। सपुटके ऊपर १-२ कण्डोंकी तह रहे, इस तरह सपुट बीचमें रखना चाहिये। संपुट स्वांग शीतल होनेपर ही गजपुटमेंसे निकालना चाहिये।

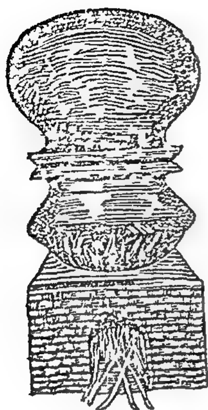
(२) **वराहपुट**—उपरोक्त विधिसे एक हाथ (१८ इंच) का खड्डा तैयार करा, उसमें अग्नि देनेसे वराहपुट कहा जाता है।

(३) **कुक्कुटपुट**—उपरोक्त विधिसे ९ इंचका खड्डा बना, उसमें अग्नि देनेसे कुक्कुटपुट कहलाता है।

(४) **सरावसंपुट**—दो मिट्टीके सराव, समान नापवाले लेवें। इनमेंसे एकमें औषध रखें, फिर दूसरेको ऊपर औंधा रखें; तथा संधिपर चारों ओर चिकनी मिट्टीमें भिगोया कपड़ा लपेट देवें। ऊपर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी लगाकर सुखा देवें।

सूचना—सराव संपुट करनेके पहिले सरावोंकी धारोंको पत्थरपर जल डाल, घिसकर चिकनी बना लेवें। दोनों सरावोंकी किनारी समान ही होनी चाहिये। एवं सराव फूटे हुये या कच्चे न हों यह भी देख लेना चाहिये।

(५) **डमरू यन्त्र**—दो हांडी ऐसी लें कि, जिनमें नीचेकी हाँडीसे ऊपरकी हाँडी बड़ी हो परन्तु मुह दोनोंके बराबर हों। इन हांडियोंके भीतर चूना अथवा खाक मिट्टीका लेप अच्छा तरहसे करके सुखा लें। फिर दोनों हांडियोंके मुहको पत्थरपर जल डालकर घिसे और संधि बराबर मिल जाय ऐसी किनारें बना लें जिससे सन्धिमेंसे पारा बाहर न निकल जाय। इस तरह हांडी तयार होने पर छोटी हांडी में सिंगरफ, जो तीन घण्टे या अधिक समय तक नीबूके रसमें पीसकर सुखाया हो, वह भरें। पश्चात् बड़ी हांडीको छोटी हांडीके ऊपर औंधी रखकर दोनोंकी संधि वज्रमुद्रासे बन्द करें। अथवा एक भाग चूना और दो भाग गेहूंके आटेको जलमें मिलाकर सन्धि बन्द करें या लोहेके तारसे बांधकर संधिपर कपड़-मिट्टी करें। मजबूत बन्द न होनेसे संधिको तोड़कर पारा निकल जाता है।



यन्त्र सूखनेसे चूल्हेपर चढ़ाकर १२ घण्टे अग्नि देकर पारा उड़ावें। ऊपर की हाँडी पर ४-८ गुणे कपड़ेकी तह जलसे भिगोकर रक्खें। कपड़ेको बार-बार गरम होने पर ठण्डे जलमें भिगोलें। इतना सम्हाल रक्खें कि नीचे की हांडीपर जलकी बून्द न गिर जाय। अन्यथा हांडी फूट जायगी। १२ घण्टे बाद यन्त्र स्वांग शीतल होनेपर ऊपर की हांडीमें लगे हुए पारेको कपड़ेसे पोंछ, निकालकर वस्त्रसे छानलें। कदाचित् पारा पूरा न निकला हो और सिंगरफमें रह गया हो तो पुन इस यन्त्र द्वारा निकाल लें।

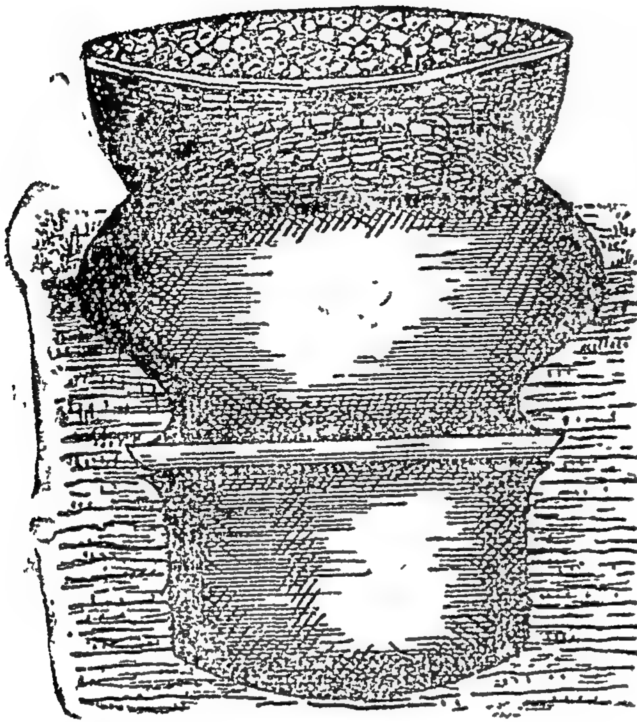
(६) नालिका-डमरू यन्त्र —उपरोक्त विधिसे डमरू यन्त्रकी दो हांडियोंको कलईसे पुतवा लें। फिर ऊपरकी हांडी के बराबर मध्यभाग में छेद करें। छेदमें ४-६ अंगुल लम्बी चाक मिट्टीकी अथवा चिकनी मिट्टी की नली बनवाकर लगादें। नलीके भीतर मटर जा सके उतना बड़ा छिद्र रक्खें। इस नलीको हांडी के छिद्रमें घुसा, चारोओर मिट्टी लगाकर संधि मजबूत बन्द करें। इस विधिसे ऊपरकी हांडी तैयार होनेपर, नीचेकी हांडी में औषधि भरें। फिर डमरू यन्त्र तैयार कर चूल्हे पर चढ़ावें। धुआ नलीमेंसे निकलता रहे। पश्चात इस नलीके चारों ओर रससिंदूर आदि औषधि जमजायगी, और नीचेकी हांडीके पेंदेमें कज्जलीके साथमें डाली हुई धातुकी भस्म हो जायगी। इस तरह इस यन्त्र द्वारा एक साथ दो कार्य होते हैं।

(७) तैलपातन यन्त्र—चीनी अथवा पीतलके एक बरतन पर स्वच्छ कपड़ेका टुकड़ा फैलाकर बरतनके किनारे पर मजबूत बांधें। फिर कपड़ेके ऊपर बीचमें तेल निकालने की औषधि या चूर्ण रक्खें और उसपर अभ्रकका टुकड़ा इस तरह रखें कि औषधि और कपड़ा बराबर ढक जाय। बादमें अभ्रकके ऊपर पूरे अंगारोंसेभरे हुए लोहेके तवे को रखें, जिससे एकआध घण्टेमें तेल नीचे टपक जाय।

सूचना—कपड़ेको तवा न लग जाय, इस बात का सम्हाल रखें अन्यथा कपड़ा जल जाता है और सब औषधि नीचे बर्तन में गिर जाती है। तवेपर सतत पंखेसे वायु करते रहें

जससे अग्नि सतेज रहे। एकाध घण्ट बाद तवा और अभ्रकको दूर करके देख लें। तेल टपक गया होतो कपड़ेको खोलकर तेल निकाल लें। इस विधिसे तेल कम निकलता है; अतः जब कम मात्रामें तेल उपयोगमें लेना हो तब यह तैलपातन यन्त्र काममें आता है।

(८) पातालयन्त्र (पहली विधि)—एक हांडी लेकर उसमें तेल या अर्क निकालनेकी ओषधि कूटकर या भिगोकर भरें। हाँडीके मुंहपर मजबूत नया अच्छा कपड़ा बांधकर कपड़ेके बाहरकी बाजमें आटा अथवा मिट्टी लगा दें। फिर हांडी के मुंहके बराबर एक कलई किया हुआ भगोना रख, सन्धिको कपडमिट्टी लगाकर बन्द करें। जरूरत हो तो लोहेके तारसे भी बांध लें। पश्चात जमीनमें खड्डा कर, उसमें इस यंत्र को रखें। भगोना नीचे और हांडी ऊपर रहे। हांडीका पौना भाग जमीनमें रहे इतना बड़ा खड्डा बनावें। खड्डे में यन्त्र के चारों ओर मिट्टी अच्छी तरहसे दबाकर भर दें, ताकि नीचे वाले भगोनेको अग्निकी उष्णता न पहुंचे। हांडी के ऊपरके भागमें अग्नि ३ से १२

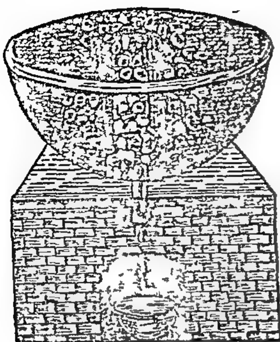


घण्टे तक औषधिके परिमाण अनुसार निश्चित समय तक जलावें। अति खुले भागमें जहां तेज वायु चलती हो, वहां पर अग्नि न दें। क्योंकि ऊपरके बर्तनको अग्नि कम लगती है; और नीचेके बर्तनको उष्णता पहुंचेगी। फिर अर्क कम और जला हुआ निकलेगा।

दूसरी विधि—चूल्हेपर एक मिट्टीकी नांद रक्खें और उस (नांद) पर लोहे या मिट्टी की परात रक्खें। परात और नांदके बीच एक सीधमें छिद्र बना दें। नांदमें छिद्र इतना बड़ा बनाया जावे कि बोतलके गले का भाग ४ अंगुल बाहर निकला रह सके, बोतलका यह गले वाला भाग नांदकेछिद्रमे होता हुआ चूल्हेके पोले भागकी ओर रहेगा। और परात जो नांद पर रक्खी गई है उसका छिद्र इतना बड़ा बनावें कि उसमेंसे बोतलका पैंदा बाहर हो सके ताकि बोतल नीचेकी नांद और ऊपर की परातके सहारे सीधी और स्थिर रह सके।

अथवा एकही परात रख उसमे छिद्रकर शीशीको लोहेका कड़ा (Ring) या तारके आधारसे सम्हाल पूर्वक रख लें।

शीशी पर ५-७ कपड़ मिट्टीकी करें। कपड़मिट्टीकी विधि आग कनीरस्व रआ?? प्रकरणमें लिखी है।



जिस ओषधिका तैल निकालना हो, उसे शीशीमें भर, शीशीके मुहँमें लोहेके तारोंकी गोली डाल कर बन्द कर दें। जिससे ओषधि बाहर न गिर जाय और तैल बराबर झरता रहे। फिर इस शीशीको परातमें रखकर दानाकी सन्धियों मिट्टीसे बन्द करें, और चूल्हेके भीतर शीशीके नीचे एक काचका गिलास रखें, जिसमें तैल गिरता रहे। शीशी और गिलास दोनों एक नली के भीतर रहे, ऐसी लोहेके पतरेकी नली बनाकर रखें, जिससे तैल भापके साथ उड़ न जाय और बराबर गिलासमें टपकता रहे। इस तरह योजना होनेपर ऊपर वाली परातमें अग्नि देते रहें, जिससे तैल टपकता रहे। ६-८ घण्टे तक अथवा जहा तक तैल निकलना रहे, तब तक अग्नि दें। तैल निकलना बन्द होनेपर अग्नि देना बन्द करें, चूल्हे पर नाद रखकर यन्त्र तैयार करनेसे बाहरसे तैल टपकता देखनमें आसकता है।

सूचना—सोंठ, लौंग आदि शुष्क वस्तुका तैल निकालना हो तो उसे, कुछ रात्रिको जलमें भिगो, दूसरे दिन एक घण्टा धूपमें रखकर तैल निकाल लें।

(९) वालुकागर्भपातालयन्त्र—दूसरी विधिसे पातालयन्त्र बना शीशीके चारों ओर परातमें तीन-तीन अंगुल जगह खाली रहे, और शीशीसे ४ अंगुल ऊंचा रहे, ऐसा लोहेका एक नली बनाकर शीशीके चारों ओर परातमें रख दें। फिर नलीके भीतर शीशीके चारों ओर रेत भरें, और नलीके बाहर परातके भीतर गोबरी जलावें। इस विधिसे तैल अथवा अर्क निकालनेके यन्त्रको वालुका-गर्भपाताल यन्त्र कहते हैं।

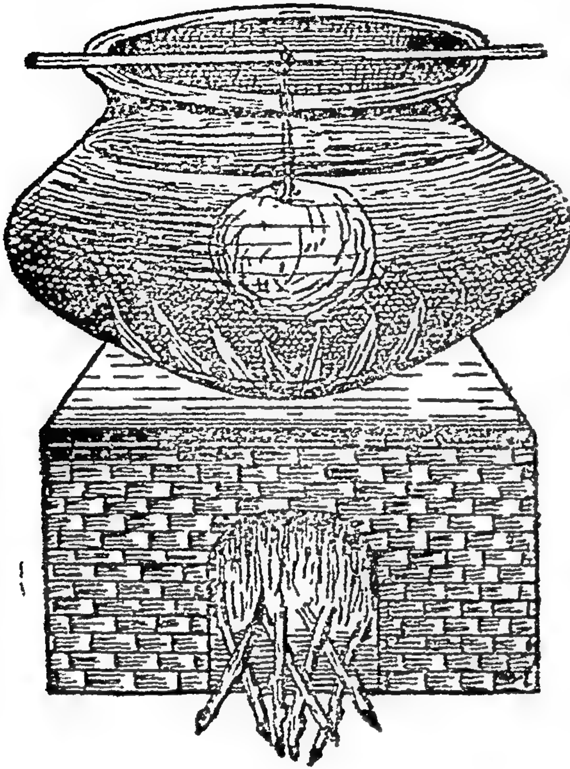
(१०) वालुकायन्त्र—इस यन्त्रकी विधि "कूपीपक्व रसायन" में लिखी जायगी।

(११) लवणयन्त्र—मिट्टीकी हांडीमें नमकके भीतर ओषधिके संपुटको दबाकर चूल्हे पर चढावें। फिर निश्चित समय तक अग्नि देकर ओषधि को सिद्ध करें। इस तरह तयार किए हुए यन्त्रको लवणयन्त्र कहते हैं।

लवणयन्त्र और वालुकायन्त्र, दोनोंकी कृतिमें समानता है। लवणयन्त्रका विधान होने पर हांडीमें नमक भरकर ओषधिके संपुटको दबाया जाता है और वालुका यन्त्रमें रेतके

भीतर सपुट अथवा बोतलको रक्खा जाता है। अग्नि देनेकी विधि दोनोंमे समान है।

(१२) **दोलायन्त्र**—कपड़ेकी ४ तह करके एक छोटी थैली वना लें। उसमें ३ भोजपत्रोमें लपेटकर ओषधि-मिश्रित पारेका गोला अथवा अन्य स्वेदन देनेकी ओषधि को रक्खें। थैलीके ऊपरके भागको दृढ़ डोरीसे बांधकर हांडीमें लटकावें। हांडीके ऊपर लोहेकी शलाका रक्खें, जिस पर पारे वाली थैलीकी डोरी बांध देनेसे हांडीमें थैली झूलेकी तरह लटकती रहेगी। थैली हांडीके पेंदेसे १ अंगुल ऊंची रहनी चाहिये थैलीका कोई भाग हांडीको नहीं लगना चाहिये, अन्यथा हांडीके तलेमें लगनेसे कपड़ा जल जायगा, फिर थैलीमेंसे ओषधि हांडीमें गिर कर नष्ट हो जायगी।



हांडीमे कांजी, गोमूत्र, दूध, तक्र, तैल अथवा अन्य शोधनीय-द्रव इतना भरें कि थैलीमे भरी हुई ओषधि अथवा पारदका गोला द्रवमें डूबा रहे। गोमत्र,दूध आदि उफान आकर वाहर न गिर जाय, इसलिए पहिलेसे हांडी बड़ी लें। अग्नि मन्द-मन्द नियत समय तक दे। कांजी, गोमूत्र आदि द्रव कदाचित् समयसे कुछ पहिले सूख जाय, तो पुनः ऊपरसे डालें क्योंकि, द्रव्य विल्कुल सूख जानपर ऊपरसे काजी आदि पदार्थ डालनेसे हांडी फूट जायगी।

(१३)वाष्प यन्त्र—एक भगोने या हाडीमे जल अथवा कांजी भर और वरतनके ऊपर लोहेकी शलाका रखे। फिर वादाम, पिस्ता अथवा अन्य तैल निकालने की ओपधिको कूट, पोटलीमेंबांधकर डोरेसे उस शलाकापर वांधकर लटका दें। जलसे पोटली ऊंची रहे ताकि उसे भाफ लगती रहे, इस तरह यन्त्र तैयार कर चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि दें फिर ओषधि पसीजने पर पोटलीको निकाल कर तैल निचोड़ लें।

(१४) स्वरसयन्त्र—बिल्पपत्र, अड़सा, पियावांसा आदि शुष्क द्रव्योका स्वरस निकालनेकेलिये पहिले इनको इमामदस्तेमे कूटे। फिर एकक टोरदानमें भरकर ढक्कन मजवूत ढंक दे। पश्चात् चूल्हे पर कड़ाही को चढ़ा कड़ाहीमे इंटके ३. टुकड़े रखकर उनपर कटोरदान रखें उस पर एक पत्थर रक्खे, फिर कटोरदानके चारों ओर जल इतना भरे कि 'कटोरदान के भीतर प्रवेश न करे। इस तरह यन्त्र वननेपर नीचे अग्नि जलावें। लगभग आध घण्टे में ओषधि नरम होनेपर वाहर निकाल निचोड़ लें।



(१५) नलिकायन्त्र —(अर्क निकालनेका भभका) भीतरसे कलई की हुई तांबेकी डेगची या मिट्टी की डेगची जैसी हांडी लें। ऊपर तांबेकी बाल्टी जैसा बर्तन बनवाकर रक्खें। जिसकी ४ अंगुल किनारी नीचे वाली डेगचीमें चली जाय। फिर सन्धिको अच्छी तरह बन्द करें। ताकि अर्क भाफ होकर बाहर न निकल जाय। ऊपरकी बाल्टीमें पेंदेमें एक औंधा कटोरा कड़ाहीके आकारका जड़वावें। उस कटोरेमें ही कलई करवालें। बाल्टीमें कटोरेके नीचेके भागमें एक नली लगावें। जिसमेंसे अर्क बाहर निकलता रहे। नली इस तरह लगानी चाहिये कि बाल्टी डेगची पर रखनेके समय नली डेगचीसे ऊपर रहे। जिससे भाफ बाल्टीमें लगे हुए औंधे कटोरेमें इकट्ठी होकर नली द्वारा बाहर निकलती रहे। बाल्टीके नीचेका भाग जो यन्त्र बन्द करनेके समय नीचे डेगचीमें रहता है, उस जगह पर आध इञ्चकी मुडी हुई किनारी वाली तांबेकी पट्टी नलीके समान ऊंचाई पर जड़वा लें, इसलिये कि नीचेकी डेगचीमें से भाफ उत्पन्न होकर ऊपरकी बाल्टीके नीचे औंधे जड़े हुए कटोरेमें लगे, और वह भाफ अर्क रूप होकर तांबेकी मुडी हुई पट्टी परसे नलीमें चली जाय। बाल्टीमें कटोरेके ऊपर एक दूसरी नली लगावें, जिससे जल उष्ण होनेपर बार-बार निकाल सकें।

इस तरह यन्त्र तैयार होनेपर जिस ओषधिका अर्क निकालना हो, उसे ४ गुने पानीमें २४ घण्टे भिगोकर भरें। कोई-कोई ओषधि जल मिलाये बिना भी भरी जाती हैं। डेगचीका १ हिस्सा खाली रक्खें और ३ हिस्सेमें ओषधियुक्त जल रक्खें। पश्चात् ऊपरके बरतनको बैठा, सन्धिमें कपडमिट्टी लगा सुदृढ करें। कपडमिट्टी अच्छी नहीं लगी होगी तो भाफ बाहर निकलती रहेगी, जिससे अर्क कम निकलेगा।

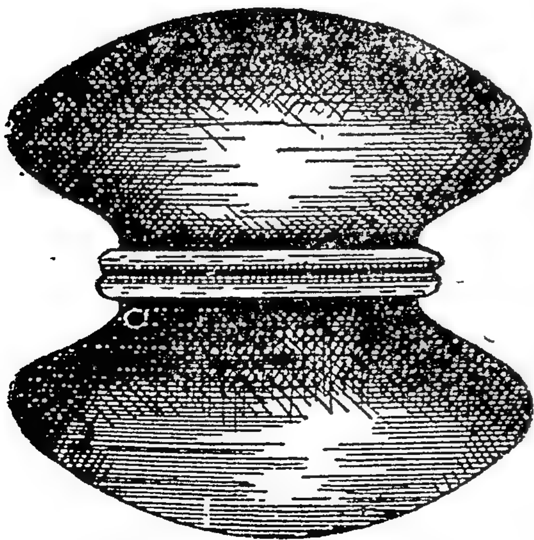
यन्त्र तैयार होनेसे चूल्हे पर चढाकर अग्नि जलाना आरंभ करें। ऊपरके बरतनमें जल भरें। जल उष्ण होनेपर बार-बार निकालते जाय, और शीतल जल भरते रहें। अर्क निकालनेकी नलीके ऊपरमें एक मुडे हुए सिरेवाली दूसरी नली लगा दें। उसका अंतिम भाग बोतलमें रक्खें। फिर इन दोनों नलियोंकी सन्धि पर एक कपडा लपेट दें, जिससे अर्क बोतलमें गिरता रहे। जब निकलते हुए अर्कमेंसे जली हुई गन्ध आने लगे तब अर्क निकालना बन्द करें।

सुदर्शन चूर्ण जैसी कड़वी औषधियोंका अर्क इस यन्त्र द्वारा निकालनेसे उनका कड़वापन दूर हो जाता है और लाभ सत्वर होता है।

सूचना—यदि हरताल, गन्धक आदिका तैल निकालना हो तो, दोनों पात्र मिट्टीके ही लेने चाहिये; और ऊपरके ढक्कनमें बांसकी मुड़ी हुई नलीको लगाना चाहिये। बाँसकी नलीका सम्बन्ध काँचकी नलीसे रखकर अर्क बोतलमें गिरे, ऐसी योजना करनी चाहिये। इस तरह शंखद्राव आदि तेजाब भी मिट्टीके बरतनोंका यन्त्र बनाकर निकालना चाहिय। धातुके बरतनोंका यन्त्र होगा, तो बर्तन खराब हो जायँगे और अर्क (तेजाब) भी दोषवाला बन जायगा।

(१६) **आकाशपातनयन्त्र**—एक मिट्टीकी खुले मुंहवाली हांडी लें। उसके पैंदेमें मिट्टीका लेप करके उस पर ईट अथवा केलूका टुकड़ा (Tile) जमावें। ईटके चारों ओर ओषधि डालें और ईट पर एक चीनी मिट्टीका गिलास रक्खें। फिर हाडी पर एक तांबेकी ऐसी डेगची रक्खें, जिसके बाहर कलई की हो। उस हांडी और डेगचीकी संधि पर, गेहूंका आटा या मिट्टी लगा दें, जिससे भाफ बाहर न निकल जाय। इस तरह यन्त्र तैयार होने पर उसे चूल्हे पर चढ़ावें इसके बाद डेगचीमें जल भर दें। उस जलके उष्ण होजाने पर उसको बार-बार निकालकर शीतल जल भरते रहे; जिससे अर्क डेगचीके पैंदेमे लगकर भीतरके गिलासमें टपकता रहे। इस रीतिसे ३ घण्टे अथवा कुछ अधिक समय तक आंच लगनेसे अर्क निकल जाता है। यन्त्र स्वयं शीतल होनेपर सम्हाल पूर्वक खोले और अर्कको निकाल कर फिल्टर पेपरसे बोतलमें छानलें।

(१७) भूधर यन्त्र—एक हांडीमें आधे हिस्से तक जल भरें और दूसरी हांडीमें पारा मिली हुई ओषधिका लेप कर देवें। फिर उस हांडीको पहिली हांडीके ऊपर औंधी रख सन्धि-स्थान, पर कपड़-मिट्टी लगा, अच्छी रीतिसे बन्द करें और जमीन में गड्ढा करके यन्त्रको दबादें। ऊपरकी हांडीके पैंदेका भाग बाहर दीखता रहे, उस तरह योजना करें। पश्चात् ऊपर वाली हांडीके ऊपर गोबरी जलावें। लगभग १०-१२ घण्टे तक अग्नि देनेसे पारद नीचे-वाली जलसे भरी हुई हांडीमें चला जायगा। पारेका अधःपातन करनेके लिये इस यंत्रका उपयोग किया जाता है।



द्वितीय विधि—जमीनमें १। हाथ का चौकोर खडडा कर उसके बीचमें भी एक बालिश्त चौकोर खड्डा करें। इसमें शराब रख ऊपर २-३ अंगुल मिट्टी दबा दें। फिर गड्ढे में गोबरी भरकर अग्नि देनी चाहिये।

एक सायमें होते हैं। काम करने वालोंको धुआं अथवा गर्मीसे विशेष त्रास नहीं होता और थोड़ी लकड़ीसे काम भी विशेष होता है। (रसायनसारके आधारसे)

(२२) सिद्धभ्राष्ट्री—इस भट्टी का उपयोग हम अनेक वर्षोंसे कर रहे हैं। इसके बनाने की विधि कूपीपक्व रसायन प्रकरणमें दी जायगी।

(२) औषधनिर्माण परिभाषा

(१) कषाय—इसके ५ भेद हैं। स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट। इन सबको बनानेकी विधि कषाय प्रकरणके प्रारंभमें दी गई है।

(२) अर्कनिकालनेकी विधि—गीली अथवा सूखी ओषधि का अर्क नालिका यन्त्र द्वारा निकल सकता है। सूखी ओषधिको २४ घण्टे पहिले ८ गुने जलमें भिगोदें और दूसरे दिन अर्कको निकाल लें। पलासकी जडको निकाल, छोटे-छोटे टुकडेकर उसी दिन अर्क निकालना पडता है, अन्यथा जड सूख जाने पर अर्क बहुत कम निकलता है। सुदर्शन चूर्ण जैसी कडवी ओषधियोंको एक दिन पहिले भिगाकर अर्क निकालनेसे अच्छा काम देता है, और कडवापन चला जानेसे सबके उपयोगमें भी आ सकता है।

(३) पुटपाक विधि—ओषधियोंका कल्क कर, उसके ऊपर गंभारी बड अथवा जामुन आदि के पत्तोंको अच्छी प्रकार से लपेट दें, फिर उसपर दो अंगुल मिट्टीका लेपकर अग्निमें रक्खें। जब दहकते अंगारे के सदृश वर्णवाला हो जाय तब, सपुट को निकाल लेवें पश्चात् मिट्टी और पत्तों को दूर कर, कल्कके रसको निचोड लेवें।

(४) अवलेह बनानेकी विधि—क्वाथ आदिको पुनः पकानेसे जो गाढा हो जाता है उसे रसक्रिया अवलेह और लेह कहते हैं। अवलेहमें चीनी डालनी हो तो, चूर्णसे चौगुनी, गुड डालना हो, तो चूर्णसे दूना और द्रव पदार्थ मिलाना हो तो, चूर्णसे चौगुना डालें। अवलेहमें जब चाशनीके सदृश तार निकलने लगे, पानीमें डालनेसे डूब जाय, चाशनी कडी हो जाय, अंगुलीसे दबानेसे अंगुलीकी रेखा उठ आवे और गंध तथा रस अपूर्व होजाय तब, अवलेह को भलीभांति पका हुआ जानें।

(५) घृत और तैल बनानेकी विधि—पहिले ओषधियोंका कल्क करें। पश्चात् उससे चौगुना घृत अथवा तैल और तैलसेचौगुने द्रव पदार्थ ले। सबको कलईकी हुई पीतलकी कढाईमें भर कर पकावें। द्रव-पदार्थके जल जाने पर घृत अथवा तैल शेष रहे, तब कढाईको चूल्हे परसे नीचे उतार लेवें और घृत या तैलको ऊपरसे सम्हालपूर्वक निकाल लेवें।

अथवा ओषधियोंके कल्क या चूर्णमें उससे चौगुना पानी डालकर पकावें, जब चौथा भाग शेष रहे तब, उसमें घृत अथवा तैल डालकर सम्पूर्ण पानी जल जाने तक पकावें। यहां जो चौगुना पानी डालनेको कहा है वह, गिलोय आदि कोमल पदार्थोंके लिये है, सोंठ आदि सूखे पदार्थोंके लिये अठगुना और देवदारु आदि कठिन सूखे पदार्थोंके लिये सोलह गुना जल डालें।

सूचना—घृत, तैल और गुड़पाकको एक ही दिनमें सिद्ध नहीं करना चाहिये।

घृत सिद्ध हो जानेके समय झाग बन्द होजाते हैं तब; सुगन्ध आने लगती है। परन्तु तैल सिद्ध होनेके पहिले झाग उत्पन्न होते है, तैल साफ दिखाई देने लगता है और सुवास आती है।

घृत और तैल पाककी परीक्षा-कल्कको अंगुलीसे दबाकर मसलें। बत्तीकी तरह होजाय और अग्निमे डालनेसे शब्द न होवे तो पाक सिद्ध समझें। विशेष विचार घृत तैल प्रकरणके आरंभमें दिया है।

(६) कांजी बनानेकी विधि—एक सेर चावल को १६ गुने जलमें उवालें, पकजाने पर ऊपरका मांड ले लें। फिर एक सेर कुलथीका क्वाथ कर, छान कर मिला लें। पश्चात् मांड और क्वाथको एक मिट्टीकी हांडीमें सरसोंका तैल चुपड़कर डालें। फिर उसमे राई, जीरा, सैंधानमक, हींग, सोंठ और हल्दीका चूर्ण पांच-पांच तोले तथा थोड़ेसे बांसके पत्ते और आधा सेर उड़दके बड़े डाल, मुह बाधकर तीन दिन रख दें। चौथे दिन जब खट्टी बास आने लगे तव, कांजी छानकर उपयोगमें लेवें।

द्वितीय विधि—१ सेर चावल या ज्वारको १६ गुने पानीमें उवालें। चतुर्थांश पानी जल जाय और ३ भाग शेष रहें तव उतारकर ३-४ दिन रहने दें। खट्टी गन्ध आनेपर छानकर उपयोगमें ले।

पीनेके लिये उपयोगमे लेना हो तो, प्रथम विधिमें लिखे अनुसार मसाला मिलाकर तैयार करें अथवा, प्रकृतिके अनुकूल मसाला मिलावें। ओषधियोंके शोधनके लिये सैंधानमकको छोडकर अन्य मसाला मिलानेका आग्रह नही है।

(७) चावलके धोवनकी विधि—दो तोले चावलको मोटा-मोटा कूटें। फिर जलसे धोकर ८ गुने जलमें भिगो दें। एक घण्टे वाद मसलकर छान लें।

(८) लोवानके फूल तैयार करनेकी विधि—दस तोले लोवानको तवे पर रखकर मन्दाग्नि दें। जव लोवान पतला हो जाय तब, ऊपर कांच का प्याला उलटा रक्खे और अग्नि थोड़ी तेज करें, जिससे थोड़े समयमें लोवानका फूल भाफ-रूप होकर प्यालेके नीचे लग जायगा। किन्तु भीमसेनी कर्पूर वनानेकी विधिके अनुसार पहिलेसे ही संधि वन्द करलेना विशेष लाभदायक है।

(९) भीमसेनी कर्पूरबनानेकी विधिः—कपूर २ तोले, छोटी इलायचीके वीज ६ माशे, समुद्रफेन, निर्मली, नागरमोथा, रसौत और अगर ३-३ माशे, केशर १॥ माशा और कस्तूरी ६ रत्ती लें। सबको खरवलमे डाल गुलाबजलमें घोटकर एक टिकिया वनाले। पश्चात् टिकियाको कांसीके कटोरेमें रक्खें और ऊपर कांसीका दूसरा कटोरा औंधा रखकर दोनोकी सधिको पानीसे ओसने हुए उर्दके आटेसे बन्द करें; वादमें संपुटको छोटेसे चूल्हेपर रखकर नीचे तिल्लीके तेलका मोटी वत्तीका दीपक जलावें; कटोरेके ऊपर खादीकी आठ दस तह कर पानीमें तर करके रखें। पांच-पांच मिनट बाद कपड़ा बदलते जायं: इस रीतिसे ३ घण्टे तक अग्नि दे। फिर ठण्डा होनेपर यन्त्रको खोल ऊपर

कटोरेमें लगे हुए पुष्पको निकाल लेवें । (र० मा०)

सूचना—अग्नि तीन घंटेसे अधिक समय तक देनेसे ऊपर लगे हुए पुष्प नीचे गिरने लगते हैं । अतः अग्नि ३ घंटे देकर बंद करें । यदि टिनिया में कपूर रह जाय तो, दूसरे समय अग्नि देकर उड़ालें ।

(१०) यवक्षार बनानेकी विधि—जौके पंचांगको गजपुटके गड्ढेमें जलाकर श्वेत राख करें, फिर १६ गुने जलमें रात्रिको भिगोदें । सुबह ऊपर-ऊपरसे जल सम्हालकर नितार लेवें और नीचेकी राख को फेंक देवें । इस जलका छान, कड़ाहीमें डाल, चूल्हेपर, चढ़ाकर अग्नि देवें । पानी जलकरके क्षार बन जायगा । कदाचित् क्षार काला हो जाय तो और थोड़ा जल मिलाकर छान लेवें । फिर उसी समय कड़ाहीमें डालकर क्षार बना लेवें, इसकी मात्रा २ रत्तीसे ८ रत्ती तक है ।

सूचना—जौके पञ्चाङ्गको खड्डेमें जलानसे विशेष परिणाममें राख मिलती है । बाहर जमीन पर जलानेसे वायुमें राख बहुत उड़ जाती है । राखके साथ काले कोयले रहे हों, उनको अलग निकाल डालें । सिर्फ सफेद राखका ही क्षार बनानेमें उपयोग करें ।

उपयोग—अनेक समय केवल जवाखार ही खानेकेलिये दिया जाता है । जवाखारसे मूत्र साफ आता है और अजीर्ण दूर होता है क्षार विशेष करके घृतमें मिलाकर चटाया जाता है, क्वचित् जल या दूधकी लस्सीमें दिया जाता है ।

सूचना—कोई भी क्षार अधिक दिनों तक सेवन करनेसे वीर्य और हड्डी सन्धियोंको नुकसान पहुँचाता है । अतः आवश्यकता पर क्षारका कुछ दिनों तक सेवन कर फिर छोड़ देना चाहिये ।

(११) अपामार्ग (ओंगीझाड़ा), केलेका खम्भा, तिल-पंचांग, पीपल, पलास, आक, इमलीकी छाल आदिका क्षार बनानेकी विधि—जवाखारके अनुसार जिस द्रव्यका क्षार बनाना हो, उसे जलाकर राख करें, फिर क्षार बनावें । पलास पुष्पका क्षार मूत्र रोग, उदर रोग, मलेरिया आदिमें लाभदायक है । केलेका क्षार अश्मरी और नेत्र-रोगमें उपयोगी है ।

(१२) स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार) बनानेकी विधि—कच्छ आदि देशोंमें सौवर्चल (लाणा-लूणगी) नामक पौदेको काटकर सुखा देते हैं । फिर गड्ढेमें भरकर जलाते हैं, बारबार ऊपरसे और सूखे पौदेको डालते हैं । जब गड्ढा राखसे भर जाता है, तब उसे मिट्टीसे बंद कर देते हैं । १०-१५ दिनोंमें क्षारका ढेला जम जानेपर निकाल लेते हैं ।

यदि वनौषधियोंमेंसे बनाये हुए क्षारोंका रासायनिक दृष्टिसे पृथक्करण किया जाय तो, उसमें विविध वायवीय द्रव्य, धातवीय द्रव्य और अधातवीय द्रव्य भिन्न-भिन्न मात्रामें प्रतीत होते हैं । सब क्षारोंमें किसी-न किसी अंशमें दूसरोंसे भेद रहा है । देश-काल-भेदसे

एकही ओषधके क्षारके द्रव्य-परिमाणमें भी भेद हो जाता है। अतः प्राचीन आचार्योंने ऊसर भूमि, दीमकवाली भूमि, शुष्क भूमि आदि स्थानोंसे वनौषधियाँ लानेका निषेध किया है। एवं कौन-कौन ओषधि वसन्त ऋतु, शरद ऋतु आदिमें लानी चाहिये; इस बातका भी विचार किया है।

सूचना—क्षार बनानेके लिये भस्मको मिट्टी, पत्थर या चीनी-मिट्टीके पात्रमें भिगोना चाहिये। लोहा पीतल आदि धातुओंके पात्र न लें।

भस्मको ८-१० गुने गरम जलके साथ मिला २-२ घंटेके अन्तरपर ४-६ वार डंडेसे चला देना चाहिये। फिर २४ घंटेके पश्चात् ऊपर-ऊपरसे स्वच्छ जल नितार, दूसरे मिट्टीके घड़ेमें छानकर एक दिन रख दें। पश्चात् सम्हालपूर्वक ऊपर-ऊपरसे साफ जलको नितार, मिट्टीके पात्रमें डाल, चूल्हेपर चढ़ाकर क्षार बना लेवें।

यदि क्षारको विशेष शुद्ध बनाना हो, तो आधा जल कम हो जानेपर उसमें एक-दो लोटे शीतल जल डालकर पात्रको नीचे उतार लेना चाहिये। ऐसा करनेसे मैल तलभागमें बैठ जाता है। फिर २-३ घण्टे पश्चात् स्वच्छ जलको ऊपर-ऊपरसे दूसरे पात्रमें नितार चूल्हे परचढ़ाकर क्षार बना लेना चाहिये। जब क्षारके रवे बंधने लगे, तब कुछ समय तक मन्द अग्नि देकर घोलको गाढ़ा होने देवें। रबड़ी सदृश होनेपर कड़ाहीको उतार दूसरे मिट्टी या चीनी मिट्टीके पात्रम डाल देवें। ताकि एक दो दिनमें ही सूर्यके तापसे सूखकर क्षार रवोंके रूपमें जम जाय।

यदि क्षारको सौम्य और विशुद्ध बनाना हो, तो उक्त क्षारमें जल डालकर जल्दी धो डालें। धोनेसे कुछ अंश क्षारका निकल भी जाता है; परन्तु विशेष अंश लवणका ही जलके साथ निकल जाता है। फिर उसे मन्द अग्निपर सम्हालपूर्वक चलाते रहें, जल न जाय यह सम्हालें। यदि अग्नि तेज लग जायगी या कड़ाही अधिक समय तक अग्निपर रह जायगी, तो क्षारका रंग बदलने लगेगा। ऐसा हो तो तुरन्त नीचे उतार लेना चाहिये। इस सौम्यक्षारका सेवन जलके साथ भी हो सकता है। इतर क्षारोंके समान घृतके साथ लेनेकी आवश्यकता नहीं है।

वर्त्तमान पाश्चात्य देशोंमें सज्जीक्षार (Soda bicarb) विशेषतः नमक, गंधकका तेजाब और चूनाके योगसे बनाया जाता है। इसी तरह यवक्षार (Potass bicarb) का निर्माण भी खनिज द्रव्योंसे किया जाता है। इनके गुण भौतिक रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे तो लगभग वानस्पतिक क्षारके सदृश हैं, जीवन रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे विभिन्नता या न्यूनता हो, तो इसका निर्णय दोनों प्रकारके क्षारों (वानस्पतिक और खनिज) का रोगियों पर प्रयोग करने पर ही हो सकेगा।

गुणधर्म—खनिज स्वर्जिकाक्षारके सेवनसे यकृत्, अग्न्याशय आदिके रसोंका स्राव बढ़ जाता है। तथा आमाशयिक रसकी तीक्ष्णता और अम्लता कम हो जाती है। इस हेतुसे उबाक, वमन, अपचन, दाह, विष्टब्धता, उदरके कृमिरोग, मूत्रमें अम्लता,

संधि स्थानोंमें पीडा आदि विकार शमन हो जाते हैं। वानस्पतिक स्वर्जिकाक्षारका परिणाम समानही है, या जीवनीय शक्ति पर अधिक लाभ पहुंचता है? इसका निर्णय अभी नहीं हुआ।

इस स्वर्जिका-क्षारकी उत्पत्ति सोडियम (Sodium or natr) उदजन (Hydrogen) और कार्बन (Carbon) के एक एक परमाणु और ओषजन (Oxygen) के ३ परमाणुओंके संयोगसे होती है। इसका रासायनिक संकेत " NaHCO 3 "है।

खनिज यवक्षारके गुण स्वर्जिकाक्षारके अनुरूप किन्तु कुछ भेद वाले हैं। यह क्षार रक्त या मूत्रमें अम्लता बढने पर विशेष हितकर है। अम्लता वृद्धिजन्य सन्धिपीडा, संधिशोथ, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, मूत्राश्मरी आदिको दूर करता है। फुफ्फुस और श्वास वाहिनियोंमें जब उष्णताकी वृद्धि होकर श्लेष्मा सूख जाता है, शुष्क कास चलने लगती, या बंधा हुआ कफ निकलने लगता है, तब इस क्षारका सेवन लाभदायक है।

इसकी उत्पत्ति रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे पोटाशियम (Potassium अर्थात् Kalium), उदजन और कार्बनके १-१ अणु और ओषजनके ३ परमाणुके संयोगसे होती है। इसका संकेत "KHCO 3" है।

यद्यपि सब क्षारोंके गुण कुछ-कुछ भेदवाले हैं, तथापि प्राचीन आचार्योंने सब क्षारोंको सामान्य रूपसे अग्नि सदृश तीक्ष्ण, पाचक, भेदक, लघु, दृष्टिनाशक, वीर्यको हानिकर और रक्तपित्तकारक माना है। सब क्षार सामान्य रूपसे विबंध, आनाह, पीनस, यकृत-विकार, प्लीहावृद्धि, आमवृद्धि, कफप्रकोप, गुल्म, ग्रहणी और कृमि आदि रोगोंके नाशक हैं।

(१३) सौवर्चल नमक विधि—सज्जी खार (सोडा बाई कार्ब) को, दूने जलमें मिलावें। फिर उसमें जितना सैंधानमक द्रव होकर गल जाय, उतना मिलावें। उस पात्रको चूल्हेपर चढाकर अग्नि देवें। जल सूखकर नमक अच्छीतरह गरम हो जाय, तब पात्रको नीचे उतार लेवें। शीतल होनेपर नमकको निकाल लेवें। (र०त०)

गुणधर्म—सौवर्चल नमक उष्ण, चरपरा, और लघु है। आमप्रकोप, उदरशूल, ऊर्ध्व वात, गुल्म, मलावरोध, अफारा और अरुचि आदिको दूर करता है। इतर नमकोंकी अपेक्षा यह अधिकतर उष्ण वीर्य है।

(१४) ६४ पहरी पिप्पली बनानेकी विधि—छोटी अच्छी जातिकी नयी पीपलोंको कूट कपडछान चूर्ण करें। फिर खरलमें डाल ८ दिन तक अहोरात्र मर्दन करानेसे ६४ प्रहरी पीपल तैयार होती है। अनेक चिकित्सकोंके मतानुसार खरलमें और बट्टेपर सुवर्णका पतरा लगाकर खरल करना चाहिये, जिससे सुवर्णका अंश भी पीपलमें मिल जाय। यह सुवर्णयुक्त विधि राजा-महाराजाओंके लिये है। सामान्य चिकित्सक, धर्मार्थ औषधालय और फार्मेसीवालोंके लिये नहीं है।

मात्रा—२से ६ रत्ती शहदके साथ या इतर भस्म और शहदके साथ दिनमें २ बार।

उपयोग—पीपलमें चरपरा, कड्आ, मधुर और स्निग्ध रस है; तथा लघु, अग्नि-प्रदीपक, मृदुविरेचक, मधुर विपाकयुक्त, अनुष्णवीर्य, वृष्य और रसायन गुण है। यह वातविकार, श्लेष्मप्रकोप, श्वास, कास, ज्वर, कृमि, गुल्म, अर्श, उदररोग, कुष्ठ, प्रमेह, प्लीहा, शूल, आमवृद्धि आदिको दूर करती है; तथा स्तन्य (दूध) की वृद्धि करती है। ६४ प्रहर तक खरल कराने पर यह तत्काल गुण दर्शाती है।

प्राचीन आचार्योंने पीपलका उपयोग कफज-कास, जीर्ण-ज्वर, प्लीहावृद्धि, अग्निमान्द्य, अरुचि, वातश्लेष्म ज्वर, अम्लपित्त, रक्तपित्त, कामला, हिक्का, मेदोवृद्धि, गृध्रसी, परिणामशूल, वातरक्त, कृमि, अर्श, प्रवाहिका, कफोदर और शोथरोग आदि पर किया है। बालकोंके मसूढे पर शहद-पीपल घिसते रहनेसे बिना कष्ट दांत बाहर निकल आते हैं।

आचार्योंने ताजी (कच्ची) पीपलको कफकर, स्निग्ध, शीतवीर्य, मधुर रसयुक्त, गुरुपाकी और पित्तनाशक कहा है, सूखी पीपलमें आमाशयके पित्त (Hydrochloric Acid) को नाश करनेका गुण कुछ कम हो जाता है।

पीपलको शहदके साथ सेवन करनेपर मेदोवृद्धि, कफ, श्वास, कास और ज्वर नष्ट होते हैं। यह अग्निवर्द्धक, वृष्य, मेधाजनक और रसायन है। द्विगुण गुड़ मिलाकर सेवन करनेपर जीर्ण ज्वर, अग्निमान्द्य, कास, अजीर्ण, अरुचि, पाण्डु और कृमि रोग दूर होते हैं।

पीपलमें डाक्टरी दृष्टि अनुसार हृदयोत्तेजक, यकृत्-उत्तेजक, सारक और रक्त-शोधक गुण अवस्थित है। इनमेंसे ६४ प्रहरी पीपलमे उत्तेजक गुण बढ़ जाता है। हृदयकी शिथिलता आ जाने पर इस पीपलके चूर्णको शहदके साथ देनेसे हृदय अपना कार्य बलपूर्वक करने लगता है। तन्द्रा और मूर्छा आ जाने पर पीपलका नस्य करानेसे रोगी तत्काल सचेत हो जाता है।

(१५) गिलोयका घन बनानेकी विधि—ताजी परिपक्व गिलोयको कूटकर चार गुने जलमे ६ घण्टे तक भिगोवें, पश्चात् खूब मसलकर गिलोयको निकाल देवें; फिर जलको छान, चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि देवें। अवलेहके समान गाढ़ा होने पर उतार लेवें।

सूचना—गिलोयमें सत्व रहा हो, तो फिर दूसरी बार जल मिलाकर उपरोक्त विधिसे घन बना लेवें।

(१६) गिलोयका सत्व निकालनेकी विधि—ताजी पक्की गिलोयको कूटकर चार गुने जलमें ३ घण्टे तक भिगो देवें। फिर अच्छी रीतिसे मसलकर जलको निकाल लें। पुनः दूसरी बार जल मिला, एक घण्टेतक मसलकर जल निकाल लें और

इसी तरह तीसरी वार भी करें। बाद सब जलको छानकर एक बरतनमें रख लेवें। जैसे-जैसे जल नितरता जाय, वैसे-वैसे सम्हालपूर्वक कटोरीसे ऊपरका जल निकालते जायें। अंतमें नीचेसे गिलोयका सत्व मिल जायगा। यदि सत्व मैला और कड़वा हो, तो और थोडा जल मिलाकर रख दें। फिर धीरे धीरे नितरे जलको निकाल देवें। इस तरह करनेसे गिलोयका सत्व स्वच्छ हो जायगा।

उपयोग—गिलोय सत्व अनुपान रूपसे अथवा अकेला शहद या दूधके साथ सेवन कराया जाता है। यह शीतवीर्य है। जीर्ण-ज्वर, निर्बलता, दाह, तृषा, प्रमेह, शिर-दर्द, अरुचि, पित्त-विकार धातुकी उष्णता, मूत्रका पीलापन आदिको दूर करता है।

मात्रा—२से ४ रत्ती दिनमें दो या तीन समय शहदके साथ।

सूचना—अधिक समय तक गिलोयको भिगोनेसे लसदार हो जाती है' जिससे सत्वका रंग मैला होजाता है। गिलोयके ऊपरका जो जल निकले उसका घन बनाकर उपयोगमें लेवें।

(१७) लाक्षा रस विधि—लाक्षादि तैल बनानेके समय लाक्षा (लाख) का रस बनाना पडता है। लाखको ८ गुने जलमें मिला दसवा हिस्सा लोद, दसवा हिस्सा सज्जीखार और थोडेसे बेरके पत्ते, जल गरम होने पर डालनेसे लाखका रस हो जाता है। फिर उसे कपडेसे छान तैलमें मिलाकर तैलको सिद्ध करें। इस तरह सोहागेका चूर्ण मिलानेसे भी लाखका रस हो जाता है।

(१८) लोबानके तैल बनानेकी विधि—लोबान और सफेद राल समभाग मिलाकर बोतलमें भरें। फिर बोतलके मुख पर लोहेके तारकी गोली लगाकर पाताल-यन्त्रसे तैल निकाल लेवें। अथवा एक छटांक लोबानको करौंदेके रसमें खरलकर पाच तोले गोघृत मिलाकर शीशीमें भरें। फिर पातालयन्त्रसे तैल निकाल लेवें। इस तैलका उपयोग शिरदर्दमें कपालपर लगाने और नपुंसकता दूर करनेके लिये इन्द्रियपर मालिश करनेमें होता है।

(१९) लोबानकी सत्वपातन विधि—लोहबान १६ तोले, वच्छनाग ४ तोले और सफेद सोमल ४ तोले लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर थूहरके एक बालिश्त लंबे और इतनेही मोटे डंडेके बीचमें खड्डाकर चूर्ण भरें, और उसे एक मिट्टीकी हांडीमें सम्हालकर रक्खें। पश्चात् हांडीके मुहपर दूसरी हांडीको रख, संधि बन्दकर डमरु यन्त्र बना लेवें फीर चूल्हे पर रखकर नीचे दीपाग्नि ४ पहर देकर सत्व उडा लेवें। ऊपरकी हांडी पर गीला कपडा रक्खें। कपडा सूखनेपर कपडेको वार वार बदलते रहे। ४ पहर पीछे स्वांग शीतल होने पर ऊपर लगा हुआ सत्व निकाल लेवें।

वर्तमानमें ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा लोहबानका पुष्प उडा लेते हैं, उसे लोहबान पुष्प (Benzoic Acid) कहते है। इसका उपयोग डाक्टरोमें अधिक होता है, मात्रा २॥ से ८ रत्ती। यह उत्तेजक है। इसकी क्रिया समस्त श्लैष्मिक कला पर होती है, इन सबमें

श्वास प्रणालिका और मूत्र यन्त्रकी श्लैष्मिक कलापर विशेष होती है, जिससे कफ निःसारण और मूत्रजनन कार्यके लिये इसका व्यवहार होता है। सेवन करनेपर यह शोषित होकर फिर पेशाबमें हिप्युरिक एसिड रूपसे कुछ-कुछ निकलता रहता है।

स्थानिक प्रयोगसे वह उग्रता साधक है, इसके धूम्रपानसे श्वासनलिका और नासिकामें उग्रता उत्पन्न होकर जुकाम और कासके रोगमें विलक्षण लाभ होता है। इसमें ज्वरघ्न गुण भी रहा है। एवं यह कीटाणुनाशक, शोधन और रोपण होनेसे इसे शतधौत घृतमें मिला मलहम बनाकर दुष्ट व्रण पर उपयोगमें लिया जाता है।

(२०) सिंगरफमेंसे पारा निकालनेकी विधि—सिंगरफको नीमके पत्तोंके रस या नींबू के रसमें ३ घण्टे खरल कर कपरौटी की हुई हांडीमें भरें। फिर डमरूयन्त्रमें लिखे अनुसार पारद निकालकर कपड़ेसे अच्छी रीतिसे छान लें। नीचे जो गंधककी राख रह जायगी। कदाचित् उसमें पारद रह जाय' तो पुनः संपुट करके निकाल लेवें। एक सेर सिगरफमेंसे प्रायः तीन पाव पारद निकलता है।

डमरू यन्त्रके बदलेमें जैसी एक मिट्टीकी हांडी डमरू यन्त्रकी विधिमें लिखी है, वैसी घिसी हुई लेवें और मिट्टीके दो तवे हाँडीके मुंहसे थोड़े बड़े लेवें, जो हांडीके ऊपर अच्छी तरह रह सकें और हांडीकी संधिपर बराबर मिल जायं। पश्चात् नींबूके रसकी भावना दिया हुआ सिंगरफका चूर्ण भरकर हांडीको चूल्हे पर चढ़ावें; और हांडी पर एक तवे को ढंक दें। किसी स्थानमें संधि खुली न रही हो, यह देख लेवें, १५-२० मिनट पर थोड़ा गरम होने पर, नीचे उतारकर किसी मिट्टीके बरतनमें औंधा रख दें और तत्काल दूसरे तवे को ढक दें। नीचे उतारे हुए तवेमे लगे हुए पारदको ५ मिनट पश्चात् कपड़ेसे सम्हालपूर्वक पोंछ लें, फिर दूसरा तवा गरम होनेपर उसे उतार लें और पहिले उतारे हुए तवेको ढक दें, इस रीतिसे लगभग १५-१५ मिनट पर तवे बदलते जायं। बार-बार तवेको हांडी पर रखनेके समय जलमें भिगोये हुए कपड़ेसे पोंछ करके रक्खें।

सिन्ध आयुर्वेदिक फार्मेसी वालोंकी कही हुई इस विधिसे पारद सुगमतासे निकलता है। डमरू यन्त्र बनानेमें जो त्रास पहुंचता है, वह इसमें नहीं। इसके अतिरिक्त डमरू यन्त्रमें सब पारद चढ़ गया या नहीं, इस बातका बोध समीचीन रूपसे नहीं होता। अनुमान मात्रसे अग्नि देनी पड़ती है। इस विधिसे पारद निकालनेमें यह शंका नहीं रहती। जब तक तवे पर पारद लगता रहे तब तक अग्नि देवें और पारद निकलना बन्द होने पर कार्यको समाप्त करें। कदाचित् हांडीमें सिंगरफ जम जाय और पारद ऊपर न उड़ सके, तो इस विधिमे कोईभी समय लोहशलाका चलाकर सिंगरफको बिखेर सकते है। ये सब डमरूयन्त्र की अपेक्षा विशेषताएं हैं। इस विधिसे निकालनेमें पारद पूर्ण परिमाणमें निकल आता है।

पारद निकालनेके समय सिंगरफ में शुद्ध लोहेका चूर्ण मिला लें, तो पारद जल्दी निकल आता है, और साथ-साथ लोह भस्म भी होने लगती है। इस तरह रौप्य या ताम्र भी मिला सकते है।

इनके अतिरिक्त सिंगरफके चूर्णको कपडेकी पट्टियोंमें या पुरानी रुईकी तहमें कन्दुक या वण्डल बना अग्नि देकर पारद निकालते हैं। कन्दुकको अग्नि निर्वात स्थान में देते हैं। ऊपर एक बडा घडा इस तरह रक्खा जाता है कि पारद उडकर घडेमें लगता रहे। पारद न उड जाय, ऐसे चौडे मुँहका घडा कन्दुकके ऊपर सम्हालपूर्वक रखना चाहिये। घडेको रखनेके समय उसके मुँहका कुछ भाग जमीनपर लगा रहे। एक ओर केलू या पत्थरका टुकडा रक्खें, जिससे वायु कन्दुकको मिलती रहे, और कन्दुककी अग्नि बुझ न जाय। इस तरह पारद निकालने पर एक सेर सिंगरफमेंसे ७० तोले पारद मिलता है। जो पारद ऊपर उडता है, वह पारद डमरु यन्त्रके समान शुद्ध होता है। किन्तु जो पारद नीचे राखमें मिल जाता है, उसे फिरसे उडा लेना चाहिये, क्योंकि उसमें अशुद्ध द्रव्य रह जानेका संदेह रहता है। इस क्रियामें घडा छोटा होगा, तो पारद बहुत चला जायगा। कितनेक चिकित्सक घडेको आटा रखते हैं। फिर मुँह पर गीला निचोडा हुआ कपडा डालते रहते हैं। बार-बार १-१ घण्टे पर कपडा बदलते हैं। इस प्रकारसे पारद घडेके पेटमें एक ओर लगता रहता है। घडा औंधा रखनेसे पारा ऊपरमें चारों ओर लग जाता है।

(२१) कज्जली बनानेकी विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक समभाग लेकर सम्यक् मर्दन करें। दोनों मिलकर काला चूर्ण हो जाय तथा पारदकी चमक बिल्कुल जाती रहे, तब कज्जली तैयार हुई जानें। औषध विशेषमें जहाँ गंधक दूना मिलाकर कज्जली बनानेकी विधि है, वहाँ पारदमें गन्धक दूना मिलावें।

उपयोग—भिन्न-भिन्न औषधियोंके स्वरसकी भावना देनेसे कज्जलीमें रोगशामक शक्ति बढ जाती है। बिना भावनाके भी कज्जली अकेली अनेक विकारोंको दूर करती है। कज्जली स्वभावतः जन्तुघ्न, वृष्य, अनटीके सन्द्रिय विषको दूर करनेवाली रसायन (सप्त धातुओंको व्यवस्थित करके शरीरको पुष्ट रखनेके गुणवाली,) है। गलेकी गाठ (Tonsils) पर सूजन आना, प्रतिश्याय, कास, गलेमें रही हुई घंटिका शिथिल होना फुफ्फुसोंमें पीडा होना, कफ और बुदबुदे सहित वमन, बालकोंका अपचन, अतिसार, विसर्प, स्त्रियोंके प्रदर रोग इत्यादिको दूर करती है। घृतमें मिला मलहम बनाकर खाज, दाद, मस्तकके फोडे-फुन्सी इत्यादि पर लगानेमें उपयोगी है।

बरनाके क्वाथकी ७ भावना देकर तैयारकी हुई कज्जली अन्तर्विद्रधिका प्रसादन (मासको मिलेर देना) करती है। नागरवेलके पानके रस और अदरखके रसकी भावना दी हुई कज्जली उत्तेजक होती है। आँवलेकी भावनायुक्त कज्जली मिश्रीके साथ देनेसे जीर्ण मदात्यय रोग (Chronic Alcoholism) को दूर करती है। द्विगुण गन्धक-की कज्जली गोघृतके साथ २१ दिन तक उपदंश रोगीको देनेसे उपदंश विकारका शमन होता है। भोजनमें गेहूं मात्र और घृत दें। नमक बिलकुल नहीं देना चाहिये।

मात्रा—१ से २ रत्ती खानेके लिये। मलहमके लिये ६ माशे कज्जलीको १० तोले शतधौत घृतमें मिला लेना चाहिये।

(२२) कलईके मैलमसे कलई निकालनेकी विधि—शोधन करनेपर कलईका

मैल निकलता है। उसके साथ थोड़ा-थोड़ा नौसादर और गुड़ मिला कड़ाहीमें गरम करनेसे कलई अलग निकल आती है।

इसी तरह शीशेके **और** जसद के मैलमेंसे शीशा और जसद निकाल लिया जाता है।

(२३) **अभ्रक निश्चन्द्रकरण विधि**—शुद्ध अभ्रकका चूर्ण १ सेर तथा कलमीशोरा और गुड़ आध-आध सेर लेकर मिला लेवें। पश्चात् हांडीमें भर तेज अग्नि पर रखकर १२ घण्टे अग्नि देनेसे अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है। शीतल होनेपर अभ्रक निकाल, कूटकर जलमें भिगो दे। ४-६ घण्टे पीछे सम्हालकर जल निकाल देवें फिर जल मिलाकर मल लेवें। जल स्थिर होनेसे ऊपर निकाल दें। इस रीतिसे ३-४ वार धोनेसे क्षार निकल कर अभ्रक मात्र शेष रह जाता है।

इस अभ्रकमसे भस्म वहुत जल्द तैयार होती है। यद्यपि धान्याभ्रकमेंसे बनाई हुई भस्म अधिक लाभदायक है, तथापि अच्छे अभ्रकके अभावमें समयपर इससे काम चल सकता है।

सूचना—अग्नि लगनेसे शोरा बड़ी आवाजके साथ उड़ता रहता है, इससे भय न मानें और हांडीमें ऊपर थोड़ी अभ्रक कच्ची रह जाय तो अलग निकाले लेवें। उसे दूसरे समय निश्चन्द्र कर लेवें। हांडीपर ढक्कन ऐसा लगावें कि जसमें अंगुली आ जाय। बिल्कुल वन्द होगा तो बरतन फूट जायगा।

(२४) **पोदीनेके फूल बनानेकी विधि**—हरे पोदीनेका स्वरस पांचतोले, कलमीशोरा, नौसादर और कपूर एक-एक तोला लें। सबको मिला छोटे-छोटे करवोंका डमरूयन्त्र वनाकर पैक करें। वड़े दीपककी वत्ती जैसी पतली लकड़ीकी आंच ३ घण्टे तक देनेसे फूल ऊपर लग जाते हैं। वार-वार गीला कपड़ा ऊपर बदलते रहना चाहिये। यदि दो संपुटके बीचमें लोहेके तारकी जाली बांध दी जाय, तो पीपरमेंटके फूलकी तरह कलमें जम जाती हैं। इसी तरह अजवायन और मूलीके स्वरसको भी फूल उड़ा लिया जाता है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, दिनमें २ से ३ समय तक।

उपयोग—यह फूल वमन, उवाक, अरुचि, अतिसार, मूत्रविकार और यकृत् दोष दूर करनेमें उपयोगी है।

(२५) **सत्यानाशीका तैल निकालनेकी विधि**—सत्यानाशीके पक्के सूखे बीजोंको कूटकर उवलते हुए जलमें डालकर ढक दें। जल उतना लेवें कि बीज अच्छी तरह डूब जायं। जल शीतल होनेपर बीजोंको दवाकर निचोड़ लेनेसे जल और तैल निकल आता है। तैल जलपर तैरता है। उसे सम्हालपूर्वक रूईके फोहेसे निकाल लेवें। यह तैल उपदंश और त्वचा रोगोंमें खाने और लगानेके लिये उपयोगी है।

अधिक परिमाणमें तैल निकालना हो, तो पातालयन्त्रसे अथवा तिल, सरसों आदिके समान कोल्हूसे निकाल लेवें।

(२६) रसांजन बनानेकी विधि—दारुहल्दीको कूटकर २४ घण्टे तक १६ गुने जलमें भिगो देवें। पश्चात् क्वाथ करके अष्टमांश जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवें। बादमें समभाग बकरीका दुग्ध मिलाकर कड़ाहीमें डालकर दुग्धके मावेकी तरह बनालें। तुरत उपयोगके लिये यह रसाञ्जन विशेष उपयोगी है। दुग्ध मिला हुआ होने से रसांजन एक माससे अधिक समय तक नहीं रह सकता। जन्तु हो जाते हैं, इसलिये थोड़े परिणाममें तैयार करें। दीर्घकाल तक रखनेके लिए रसांजन बनाना हो, तो दुग्ध न मिलावें केवल क्वाथका ही घन बना लेवें। यदि ताजी दारुहल्दीको मूलमेंसे रसांजन बनाया जाय, तो विशेष लाभ पहुंचता है। आयुर्वेद प्रकाशमें दुग्ध चौथा हिस्सा मिलानेको लिखा है।

रसांजन उष्ण, कड़वा, चरपरा, रसायन और छेदन गुण वाला है। कफ विष नेत्रविकार और व्रण दोषको दूर करता है।

(२७) एरण्ड तैल निकालने की विधि—लगभग १० सेर या अधिक छिलके निकाले हुए अरण्डीके बीजोंको कड़ाहीमें भून, कूटकर मैदा जैसा चूर्ण करें। फिर एक हांडीमें भर, १५ गुना जल मिलाकर उबालें। अच्छी तरह उबलने पर नीचे उतारकर हांडीको ठंडी होने दें। बादमें ऊपरसे नितरे तैलको सम्हालपूर्वक निकाल लें। पुन हांडीको चूल्हेपर चढ़ा जलको उबालकर तैल निकाल लें। पहिले समय निकाला हुआ तैल ओषधिके लिये उपयोगी है। दूसरे समयका तैल दीपक जलाने लायक होता है।

(३) अभाव वर्ग

एक ओषधिके अभावके समय, समान गुणवाली दूसरी ओषधि उपयोगमें लेना, उसे प्रतिनिधि कहते हैं। प्रतिनिधि उपयोगके विषयमें शास्त्रकारोंने जो नियम बनाया है उस नियमानुसार ही प्रतिनिधि ओषधि ली जाती है। अनेक ओषधियोंको मिलाकर प्रयोग तैयार करनेमें प्राय मुख्य और गौण, ऐसे दो विभाग होते ह। मुख्य ओषधि वह कही जाती है, जिसके बिना ओषधि प्रयोग तैयार न हो सके, अथवा इच्छित लाभ न दे सके। गौण ओषधि वे हैं, जिनके अभावमें समान गुणवाली ओषधि मिलाने पर प्रयोग द्वारा इच्छित लाभकी प्राप्ति हो सके। अत रोगको दूर कर स्वास्थ्य प्रदान करना अथवा शारीरिक और मानसिक निर्बलता दूर कर उनकी वृद्धि करना, यह मुख्य ओषधिका कार्य है, और मुख्य ओषधिके दोष अथवा उग्रताका शमन करना, उपद्रवोंको दूर करना गुण-वृद्धि और शीघ्र लाभ पहुंचानेमें सहायता करना, ये गौण ओषधियोंके कार्य हैं।

जैसे हिंग्वष्टक चूर्णमें हिंगु मुख्य ओषधि है, शेष ७ ओषधियां गौण सहायक हैं। जो हिंगु न हो, तो हिंग्वष्टक चूर्ण तैयार नहीं हो सकेगा और कोई गौण ओषधि न होवे, तो उसके स्थानमें प्रतिनिधि की योजना हो सकती है। किसी-किसी प्रयोगमें एक से अधिक ओषधियां भी मुख्य रहती हैं। कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, खरलीय रसायन और इतर अनेक प्रयोगोंमें एकसे अधिक ओषधियां मुख्य ह। जैसे—मल्लचन्द्रोदय रस, पञ्चामृत, पर्पटी,

अश्वकंचुकी रस, अमृत-संजीवनी वटी, त्रिफलापिप्पली चूर्ण, दशमूलाद्यरिष्ट, चन्दन-बलालाक्षादि तैल, इत्यादि ओषधियोंमें एकाधिक मुख्य ओषधियां हैं।

जहा अनेक ओषधियोमें संयोगजन्य गुण उत्पन्न होता है, वहां पर उनमेंसे किसीको भी गौण नहीं कह सकते। जैसे रसायन-चूर्णमें गिलोय, गोखरू और आंवलेके संयोगसे रसायनके समान गुण उत्पन्न होता है, ऐसे स्थानमे किसीके अभावमें प्रतिनिधि नही लिया जायगा। एवं त्रिफला, त्रिकटु, चातुर्जात, पंचलवण, दशमूल आदि ओषधियोमे प्राय;: सव समान भाववाली अर्थात् मुख्य ओषधियां मानी जाती है। ऐसी निश्चित ओषधियोंके मिश्रणसे निश्चित गुणकी उत्पत्ति होती है। अतः उनके स्थानमें प्रतिनिधिका उपयोग नही करना चाहिये।

शास्त्रमें प्रायः प्रयोगके नाममें मुख्य ओषधिका सम्बन्ध रक्खा है, जिससे मुख्य ओषधि कौनसी है, इस बातका सहजमें बोध हो सकता है। जैसे कस्तूरीभैरव रस, द्राक्षा-रिष्ट, खदिरारिष्ट, वासाद्य घृत, अमृताद्य तैल, हिंग्वादि चूर्ण, कुटजादि वटी, इन सबमें क्रमशः कस्तूरी, द्राक्षा, खदिर, वासापत्र, अमृता, हिंगु, कुटज, ये सब मुख्य हैं।

परन्तु आयुर्वेदीय वांगमयमें इस नियमका सर्वांशमें पालन नही हुआ। कतिपय प्रयोगोमें मुख्य औषधिका संवन्ध नामके साथ नही रक्खा। जैसे बच्छनाग प्रधान अनेक औपधियां ज्वरांकुश, ज्वरकेसरी वटी आदि एवं श्वासकुठार रस, कृमिमुद्गर रस, चन्द्रप्रभावटी. आरोग्यवर्धिनी, अमरसुन्दरी वटी, लक्ष्मीनारायण रस, अग्निरस इत्यादि में रोग संवन्ध, गुण सम्बन्ध और सामान्य संज्ञाकी प्रतीति होती है। कतिपय प्रयोगोंमें गौण औषधिका संबन्ध नाममें रक्खा गया है। जैसे चन्द्रप्रभावटीमें चन्द्रप्रभा संज्ञा ओपधिदर्शक मानें, गुणदर्शक न मानें। चन्द्रप्रभा (कपूर, कचूर, शतावरी, वायविडंग) ओषधि गौण है। मुख्य औषधि शीलाजीत और गूगल हैं। एवं हारीत संहितामें चन्दनाद्यवलेह, भैषज्य रत्नावलीका शुक्रमेह और प्रदरपर चन्दनादिचूर्ण, निघंटु रत्नाकरका ग्रहणीरोग पर चन्दनादिचूर्ण, इन सबमें चन्दन आद्य होने पर भी सामान्य ओषधि है, इन प्रयोगोंमें चन्दनके स्थान पर गौण ओषधि मिला दी जाय, तो भी प्रयोगमें विशेप क्षति नहीं पहुचेगी। इस तरह योगरत्नाकरके तालीसादि चूर्णमें तालीसपत्र गौण है। मुख्य भांग या हरड़ है। उपर्युक्त वातोंको समझकर जिस प्रयोगमें जिनको गौण सहायक ओपधियां मानी जायं, केवल उनकेही अभावमें समान गुण (रस-वीर्य-विपाक आदि) युक्त अन्य प्रतिनिधि ओषधि मिलाई जाती हैं।

द्रव्य शोधन

आयुर्वेद शास्त्रके नियमानुसार द्रव्योंका शोधन करना अर्थात् निर्दोषकर गुण वर्द्धन करना। अनावश्यक, बाधक अंश, विजातीय द्रव्य, अथवा मलको दूर करना या उसमें स्थित दोषको घटाकर गुणकी वृद्धि करना आदि हेतुओंमेंसे किसी एक या अनेक हेतुओंकी सिद्धिके लिये औषध द्रव्यपर जो संस्कार किया जाता है, उसे शोधन कहते हैं।

बच्छनागमें हृदयको अवसाद करनेका धर्म उपस्थित है, उस धर्मको नियमित करनेके लिये बच्छनागका शोधन गोमूत्रमें किया जाता है—अर्थात् बच्छनागमें गोमूत्रका प्रवेश कराया जाता है। शिलाजीत, खरिया मिट्टी आदिका शोधन पत्थर आदि विजातीय द्रव्योंको दूर करनेके लिये होता है। पारदका शोधन विविध प्रकारके मल, धातु मिश्रणको दूर करने और गुण वृद्धिके हेतुसे होता है। सुवर्ण आदि धातुका विजातीय द्रव्य और मल दूर करने तथा सुगमतासे मारण योग्य बनानेके लिये होता है।

धातु और उपधातुओंका शोधन करनेसे वे अन्य द्रव्योंके मिश्रण रूप दोषसे मुक्त हो जाती है, एवं उनकी भस्म भी अल्प परिश्रमसे तैयार होती है। यदि धातुओंके शोधनमें परिश्रम कम करें तो,भस्म बनानेमें अधिक श्रम पहुचता है, और भस्म भी सदोष बनती है। जितना शोधन अच्छा होता है, भस्में उतनी ही अधिक गुणयुक्त होती है। ऐसे ही रत्नोपरत्नका शोधन करनेसे उनकी भस्म जल्दी बनती है और विशेष लाभ दायक होती है।

सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, नाग आदि जिन धातुओंका शोधन और मारण करना हो, वे धातु दूसरी धातुके मिश्रणसे रहित लेनी चाहिये। दूसरी धातु का मिश्रण होनेसे नाना प्रकारके विकार होनेकी सभावना रहती है।

विष और उपविष शोधन, उनकी उग्रता या मारकताको दूर करनेके हेतुसे किया जाता है। परिपक्व हुए बिना रस-रक्त आदि धातुओंमें फैलना विषका स्वभाव है। पर शोधित विषोंकी उग्रता बहुत कुछ कम हो जानेसे वे (शुद्ध विष) मानव प्रकृतिको हानि नही पहुचा सकते।

कच्चा सोहागा और फिटकरी पित्तोत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करते है। पित्तोत्पत्ति बंद होनेपर पाचन क्रियाका कार्य रुक जाता है, इस दोषको दूर करनेके लिये फूला बनाया जाता है। इसेही शोधन कहा है। कच्ची हींग उग्र होनेसे गलेमें हानि पहुँचाती है। वमन लाती है। अत हींगको भूनकर प्रयोगमें लेनेका विधान किया है।

इस रीतिसे महर्षियोने मानव शरीर और शक्तिका विचारकर द्रव्योको शुद्ध करकेही उपयोगमें लेनेका नियम बनाया है। इस ग्रथमें औषधियोंकी जो शोधन और मारण विधि लिखी है, वह किस-किस ग्रथके आधारसे लिखी गई है, यह भी सूचित कर दिया है। धातुओंकी शोधन और मारण विधि प्राचीन ग्रथोमें नाना प्रकारकी लिखी है, उनमेंसे हमने जिनका अनुभव किया है, उन्ही मानको इस ग्रथमें स्थान दिया गया है। अत नये अनभिज्ञ

चिकित्सक भी निर्भय रूपसे यहां लिखी विधियोंको प्रयोगम ला सकते हैं।

(१) सुवर्ण और रौप्य शोधन—शुद्ध सोना और चांदीके पतरे अग्निमें तपा-तपाकर तैल, छाछ, कांजी, गोमूत्र और कुलथीके क्वाथमें ७-७ वार बुझानेसे शुद्ध होते हैं। (र० र० स०)

(२) लोह शोधन—लोहका सूक्ष्म चूर्ण तपा-तपाकर तैल, गोमूत्र, छाछ, कांजी और कुलथीके क्वाथमें ७-७ वार वुझानसे शुद्ध होता है। (र० र० स०)

पुरानी रेती या सुनारकी जन्त्रीको अग्निमें तपा वायुमें रखकर ठंडी करें (जलसे न बुझावें) फिर कट रेतासे घिसकर चूर्ण करें, अथवा लोहेके कारखानेमें लोहका चूर्ण तैयार मिल जाता है, उसे उपयोगमें लें।

(३) ताम्र शोधन—तांबे (वारीक बिजलीके तार) को अग्निमें गरम करके तैल, छाछ, कांजी, गोमूत्र, कुलथीके क्वाथ, अनारदानेके रस तथा आकके पत्तोंके रसमें ७-७ बार बुझावें। फिर इमामदस्तेमें कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। पश्चात् एक हांडीमें गोमूत्र भर, उसमें इमली और नमक डाल, उसके साथ इस चूर्ण को १२ घण्टेतक उबालें। शीतल होनेपर चूर्णको निकालकर जलसे धो लेनेसे ताम्र, भस्म करने लायक शुद्ध हो जाता है। बिजलीके तारका ताँबा शुद्ध होता है। पर जो ताँबेके पतरे आते हैं, वे शुद्ध नही होते। विजलीका तार न मिले, तो नीलेथोथेमेंसे ताँबा निकाल लेवें। नीलेथोथेमेंसे ताँबा निकालनेकी विधि ताम्र भस्मके साथमें लिखी है।

(४) वंग शोधन—कलईको कड़ाहीमें डाल, तेज आंच द्वारा गलाकर रस करें। फिर लोहेकी कलछीसे थोड़ा-थोड़ा (२ से ४ तोले) निकाल कर एकाध मिन2 हवा लगनेपर वुझाते जायं। प्रथम तैलमे तीन वार वुझावें। तैलमे वुझानेके समय कलईके सब रसको एकही वार डाल दिया जाय, तो भी हर्ज नहीं। किन्तु, छाछ, कांजी आदिमें एकसाथ न डाले। तैलके पीछे छाछ, कांजी, गोमूत्र और कुलथीके क्वाथमे क्रमशः तीन-तीन बार बुझावें। छाछ आदि पदार्थोंमें वहुत सम्हालकर वुझावें। कारण, कलई, शरीरपर उड़कर लग जाती है। इसीलिये कलछी हाथमें पकड़, दूरसे ऊंचा हाथ रखकर बाहरकी वायु लगनें पर वुझाते जायं। यदि कड़ाहीमे रही हुई कलईके रसमें जल, छाछ अथवा गोमूत्रकी एक बूंद भी गिर जायगी, तो एकदम कलई उछलकर वाहर आ जायगी। इसलिये सम्हाल रखें। शोधन होजाने पर कड़ाहीमें कलईका रस कर, थोड़ा तैल डालकर एक गोल चक्की वना लेवें, उसमेंसे कागज जैसे पतले पतर बनाकर चौथाई-चौथाई इंचके छोटे-छोटे टुकडे करा लेवें।

भस्म वनानेके लिये पाटकी कलई ले। वरतनको लगानेकी कलईमें शीशा, जसद आदि धातुओंका मिश्रण रहता है। पाटकी कलई शुद्ध होती है।

सूचना—शोधनके समय मैलको अलग निकालते जायं; जब मैल ज्यादा इकठ्ठा हो जाय, तब उसमें नौसादर और गुड़ मिला, रसकर, शुद्ध कलई निकाल ले।

जिसको ज्यादा कलई शोधन करनी हो, वे तक आदिमें बुझानेके समय पात्र पर चक्कीके ऊपरका पाट रखें। फिर उसके छेदोंमें रस डालें जिससे रसके उडनेका भय बिलकुल न रहे। अथवा ४ फीट (लगभग २॥ हाथ) बांस या लकड़ीकी नली बनाकर दीवारकी तरफ बांधें। ऊपरका भाग जमीनसे २ हाथ ऊंचा रहे और नीचेका भाग लगभग १। हाथ ऊंचा रहे इस तरह नलीको बांधें। पश्चात् नीचेके भागमें छाछ, गोमूत्र आदिसे भरा पात्र रखें। जब कलईका रस हो तब उसे दूसरी कड़ाहीमें निकालकर, नलीके ऊपरसे डालनेसे सब कलई नली द्वारा नीचेके बरतनमें चली जायगी। इस तरह शोधन करनेसे उडनेका भय बिलकुल नहीं रहता। कभी-कभी बांस फट जाता है। इसलिये दो नली और तैयार रखें और रस डालनेके समय नलीके नीचे हाथ अथवा पैर न आजाय, यह सम्हालें।

(५) शीशा शोधन—शीशेका शोधन कलईके समान करें।

सूचना—शोधनमें भूल होनेपर शीशा बन्दूककी गोलीकी तरह ऊंचा उछलता है। कड़ाहीमें पानीकी बूंद न गिर जाय, इसका ध्यान रखें।

(६) जसद शोधन—जसदको कड़ाहीमें डालकर तेज अग्निपर रस करें। रस होनेपर दुग्धमें बुझावें। इस तरह २१ बार गोदुग्धमें बुझानेसे जसद शुद्ध हो जाता है। जसदके बुझानेमें कलई या शीशेके समान उडनेका भय नहीं है। जसदमेंसे मैल बहुत निकलता है। मैलकी अलग भस्म करें। यह नेत्राञ्जनमें उपयोगी है। शुद्ध जसदमेंसे खानेके लिये भस्म बना लें।

(७) जर्मन सिल्वर, कांसी और पीतल शोधन—जर्मन सिल्वर, कांसी और पीतलको तपा-तपाकर तैल, छाछ, गोमूत्र, कांजी और कुलथीके क्वाथमें ७-७ बार बुझानेसे शुद्ध होते हैं। इस तरह शोधन होने पर भी फिर इमली और नमक मिले हुए गोमूत्रमें तीन घण्टे तक दोलायन्त्र विधिसे उबाल लेनेसे विशेष शुद्ध होते हैं। जर्मन सिल्वर, कांसी और पीतलमें रहे हुए ताम्रके दोष शमनार्थ शोधन जितना अधिक होगा, उतनी ही अधिक लाभदायक भस्म बनेगी।

कांसी और पीतलका शोधन और मारण ताम्रके समान होता है और गुण भी ताम्रके समान ही है, ऐसा शास्त्रकारोंका कथन है।

ताम्र, कलई, शीशा पीतल और कांसी, इन पांच धातुओंके मिश्रणसे जर्मन सिल्वर बनता है। ताम्रमें चतुर्थांश कलई मिलानेसे कांसी बनती है, तथा ताम्रमें जसद मिलाने पर पीतल बनती है। दो धातु मिश्रित होनेपर दोनोंके मूल गुण रहते हैं और संयोगजन्य नया गुणभी उत्पन्न होता है।

(८) मंडूर शोधन—सौ वर्ष पुराने मंडूरको अग्निपर तपा-तपाकर ७ बार गोमूत्रमें बुझानेसे उसकी शुद्धि होती है। मंडूर शोधनके लिये बहेडेकी लकडी जलानी चाहिये (यदि बहेडेकी लकडी न मिले, तो बबूलकी लकडी लेवें)। (र० र० स०)

सूचना—नया लोहकीट मण्डूर भस्म बनानेके लिये उपयोगमें नहीं लेना चाहिये। नये लोहकीटमें शास्त्रकारों ने अनेक दोष दिखाये हैं।

(९) सुवर्ण माक्षिक शोधन—सोनामुखीका चूर्ण ३ भाग, सैंधानमक १ भाग और नीबूका रस ५ भाग मिलाकर एक कडाहीमें डालकर, तेज अग्निपर लोहेकी कलछीसे चलाते रहें। नीबूका रस सूखनेके पश्चात् जब कडाही खूब लाल हो जाय, तब अग्नि देना बन्द करें। कडाही शीतल होनेपर सोनामुखीमें जल मिला, मल-मलकर धोवें।

४-६ बार धोनेसे सैंधानमक निकल जायगा। फिर सूर्यके तापमें सुखा लेनेसे सुवर्णमाक्षिक शुद्ध हो जाती है। जल सम्हालपूर्वक निकालें अन्यथा सुवर्णमाक्षिक भी जलमें चली जायगी।

औषधके लिये अति तेजस्वी सोनेके समान चमकवाली सुवर्णमाक्षिकको उपयोगमें लें। जो निस्तेज हो, उसमें गुण बहुत कम होता है। कसौटीपर रगड़नेसे जिसकी सुवर्ण समान रेखायें हो और टुकड़ा तोड़नेपर भीतर सुवर्ण समान तेजस्वी हो, उसे अच्छी मानी है। किन्तु वैसी अभी नहीं मिलती। अमेरिकासे यह अच्छी आती है।

(१०) मनःशिला शोधन—मैनसिलके चूर्णको मोटे कपड़ेकी थैलीमें भरकर बकरीके मूत्रके साथ दोलायंत्रमें ३ घंटेतक मन्द मन्द आंच दे। फिर तीन घण्टे तक हल्दीके क्वाथमें दोलायंत्रसे उबालें। पश्चात् अदरखके रसमें तीन घण्टे खरल करके धूपमें सुखा लेवे।

(११) सुरमा शोधन—सफेद या काले सुरमेके सूक्ष्म चूर्णको नीबूके रस, केलेके खम्भेके रस, भागरेके रस (या त्रिफलेके काढ़े) में ७-७ बार ३-३ घण्टे खरल करके सूर्यके तापमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है।

(१२) नौसादर शोधन—नौसादरके चूर्णको जलमें मिला, कपड़ेसे पीतलकी कड़ाहीमें छान, मंदाग्निसे जलको सुखा लेनेसे उसकी शुद्धि होती है।

सूचना—यदि लोहेकी कड़ाहीमें नौसादर पकाया जायगा, तो उसमें लोहेका रग मिल जानेसे नौसादर दूषित हो जायगा।

(१३) तुत्थ शोधन—२० से ४० तोले तूतियाको बड़े नीबके रसमें खरल कर लघुपुटमें पकावे। फिर ३ दिन दहीके पानीकी भावना देनेसे शुद्धि होती है।

नीलाथोथा दो प्रकारका होता है:—खानमेंसे निकलनेवाला और कृत्रिम। खानवाला उत्तम है। उसीको ओषधिके लिये उपयोगमें लेना चाहिये।

(१४) मल्ल शोधन—सफेद संखियाके चने समान टुकड़ेकर, बकरेके मूत्र या चौलाईके रसमें १ दिन मंदाग्निपर दोलायत्रसे उबालकर धो लेनेसे शुद्ध होता है।

संखिया ४ प्रकारका होता है—सफेद, काला, लाल, और पीला। ओषधिके लिये विशेष करके सफेद संखिया ही व्यवहारमें आता है। सफेदकी अपेक्षा अन्य विशेष जहरी है। सफेद संखियामें जो बिलौरी कांचके समान चमकीला हो, उसे अच्छा माना है। संखिया पुराना होनेपर चमक और गुण कम हो जाते है।

(१५) हरताल शोधन—तपकियाहरतालको जौकुटकर दोलायत्रकी विधिसे काँजी, पैठेके रस, तिलीके तैल और त्रिफलाके क्वाथमें तीन-तीन घण्टे तक उबालें। फिर कपड़ेमें बांधकर १२ घण्टे तक चूनेके पानीपर मन्दाग्निसे भाफ देनेसे हरताल शुद्ध होती है।

दूसरी विधि—हरतालके चूर्णको १६ गुने चनेके जलमें ७ दिन खरल कराने या तिलोंके क्षारके जलमें ३ घण्टे दोलायंत्रसे स्वेदन करानेपर शुद्ध हो जाती है। इस प्रकारसे शोधन करने पर मारणके समय हरतालमें रहे हुए गंधक और सोमलके उड़नेपर अंकुश आता है।

औषधि रूपसे उपयोग करनेके लिये सुवर्णके समान तेजस्वी वरकी हरताल लेनी चाहिये। पीली निस्तेज पिण्ड हरताल अथवा थोडी चमकवाली हरतालमें इच्छित लाभ नहीं मिलता। अच्छी हरतालमें सत्विया विशेष परिणाममें होनेसे उसमें गुण भी विशेष होता है।

(१६) हिंगुल शोधन—रूमी सिंगरफको १२ घण्टे नींबूके रसमें खरल करें। रस बिलकुल सूख जानेपर भेड अथवा भैंसके दुग्धमें १२ घण्टे खरल कर सुखा लेनेसे हिंगुल शुद्ध होता है।

प० श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्यके मतानुसार हिंगुलको पहले ३ घण्टे गोदुग्धमें खरल करें। फिर नींबूके रसकी ७ भावना दें। इस तरह शोधन करना विशेष लाभदायक माना जायगा।

शास्त्रमें सिंगरफको ७-७ दिन तक नींबूके रस और भेडके दुग्धमें खरल करनेको लिखा है। जितना अधिक खरल हो उतनाही हितकर माना जाता है। नींबूके रससे सिंगरफमें रहा हुआ पारद दोषमुक्त होकर प्रदीप्त बनता है, और दुग्धसे पुष्ट बनता है।

ऊपर चढा हुआ सिंगरफ रससिंदूर सदृश होनेसे थोडे ही शोधनमें दोषमुक्त होकर शुद्ध बन जाता है। इसलिये हमने स्वल्प शोधनको ही लिखा है।

मूलकालमें खनिज सिंगरफको विशेष उपयोगमें लाया जाता था। परन्तु वर्तमानमें अशुद्ध पारद और अशुद्ध गन्धक या गन्धकके तिजाब (Sulphuric acid) के संयोगसे बने हुए कृत्रिम सिंगरफका उपयोग होता है। कृत्रिम सिंगरफमें भी रूमी सिंगरफ हितकर है, और जो सिंगरफ, कम पारद और अधिक गन्धक मिलाकर तयार किया जाता है, और जो सफेद व मैले रंगवाला होता है, उसे खानेकी औषधिमें नहीं मिलाना चाहिये।

हिंगुल कटुवा, कसैला और चरपरा होता है। नेत्ररोग, कफपित्त विकार, उन्माद, कुष्ट, ज्वर, कामला, प्लीहावृद्धि, आमवात और सेन्द्रिय विष आदि विकारोंको नष्ट करता है। सामान्यतः कज्जलीको शीतल, शामक और हिंगुलको उष्ण, उत्तेजक माना है। इस हेतुसे शुष्क कासकी औषधिमें हिंगुलकी योजना नहीं की जाती। शुद्ध हिंगुलमें रससिन्दूरके समान, किन्तु कुछ न्यून गुण है कभी-कभी अकेले हिंगुलको ही रससिन्दूरके स्थानमें अनुपानके साथ दिया जाता है। मात्रा ½ से २ रत्ती।

(१७) गन्धक शोधन—आँवलासार गन्धक और घृत समान भाग लेकर लोहेकी कडाहीमें गरम करें। रस होनेपर तुरन्त उतारकर चारगुने दुग्धमें डाल दें। गन्धक डालनेसे पहिले दुग्धके बरतनके ऊपर एक कपडा बांधें। फिर उसपर पिघला हुआ गन्धक डालें। दुग्धके अभावमें मठा अथवा त्रिफलेका काढा लिया जाता है। एकाध घण्टेके बाद

जब गंधक पेंदेमें बैठ जाय, तब ऊपरसे सम्हालकर घृत और दुग्ध निकाल लें। पश्चात् गन्धकको निकाल, छोटे-छोटे टुकड़े कर अच्छी रीतिसे गरम जलसे धोकर धूपमें सुखा लेनेसे गंधक शुद्ध होता है। अथवा शोधित गन्धकके चूर्णको कड़ाहीमें डाल, ऊपरसे जल भर दें। पश्चात् चूल्हेपर चढ़ाकर गन्धक मिले जलको गरम करें। जल उबलने लगे, तब जल ऊपर-ऊपरसे कलछीसे निकालते जाय और शीतल जल डालते जायं। घृतका अंश बिलकुल निकल जाय, तबतक जलको निकालते जायं। बादमें कड़ाहीको उतार, गन्धकको सुखा लेनेसे शुद्ध हो जाता है।

गन्धकके शोधनमे जो घृत लिया जाय, उसे सम्हालकर निकाल लें और फिर इसे चूल्हे पर चढ़ाकर दुग्ध अथवा छाछका अंश जला डालें। केवल घृत शेष रहनेपर उतारकर छान लें। यह घृत मालिश करनेमें उपयोगी है। कितनेक आचार्योंने गन्धकको ऊपर लिखे अनुसार ७ बार शोधन करनेको लिखा है। अधिक बार शोधन करनके लिये वार-बार घृत और दुग्ध नया लेना चाहिये। शुद्ध गंधक अनेक रोगोंमें खिलाने और लगानेके लिये उपयोगमें आता है।

सूचना—यदि गन्धकका रस होनेके बाद ज्यादा समय तक कड़ाही चूल्हेपर रहेगी, तो गन्धक लाल होकर बिगड़ जायगा। इसलिये रस होनेपर तुरन्त कड़ाहीको उतार लेना चाहिये। तमाम गन्धक एक साथ पिघल जाय इसके लिये उसको कूटकर समान टुकड़े करले। यदि प्रमादवश गन्धक लाल हो जाय, तो उसका उपयोग पर्पटी बनानेमें हो सकता है।

अनुपान—रक्तशोधनार्थ गन्धक और मिश्री समभाग मिलाकर बारीक खरल करें। इसमेंसे ३-३ माशे लेकर ऊपर दूध पीवे। इस तरह दिनमें २ समय १५ दिन तक सेवन करनेसे रक्त शुद्ध होकर खाज, खुजली, फोड़ा, फुंसी आदि विकार शांत हो जाते है। केवल ३ या ७ दिन तक गन्धक सेवन करना हो, तो ४-६ माशे गन्धक भी ले सकते हैं अधिक मात्रासे किसीको पेचिश जैसा असर होवे, तो गन्धक २ ४ दिन बन्दकर, फिर कम मात्रामें पुनः लेना आरंभ करें।

नेत्ररोग और दृष्टिको कमजोरी दूर करनेके लिये शुद्ध गन्धक, त्रिफला, घृत और शहद मिलाकर सेवन करें और भोजनमें केवल दूध-भात लें।

मलावरोध दूर करनेके लिय ६ माशे गन्धक २॥ तोले गुलकन्दके साथ लेवें और ऊपर थोड़ा दूध या गुनगुना जल पीवें। प्रमेह रोगमें शुद्ध गन्धक १ से २ माशे तक गुड़के साथ दिनमें २ बार एकाध मास तक सेवन करें। इस प्रकार और रोगोंमें भी उचित अनुपानकी योजना कर लेनी चाहिये।

उपयोग—रक्तविकार, फोड़ा-फुंसी, खाज-खुजली, कुष्ट, वातविकार, कफदोप ज्वर, आम, मलावरोध, मन्दाग्नि, अरुचि, उदरशूल, उदररोग, अजीर्ण, प्रमेह आदि

रोगोंको दूर करता है। गन्धक उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक तथा वीर्यवर्द्धक है।

गन्धक सेवन करते समय नमक, खटाई, तैल, मिर्च, सगार, द्विदल (चना, उड़द अरहर आदि) धान्य और अपथ्य आहारका त्याग करे। दाहयुक्त रोगीको गन्धक विशेष अनुकूल रहता है।

नव्य मतानुसार गन्धक अल्प मात्रामें रसायन, स्वेदजनक, कफनिःसारक। पित्तनिःसारक और अधिक मात्रामें विरेचक है। गन्धक उत्तम सेन्द्रिय विष और कीटाणु-नाशक है। गन्धक मुखमें उत्पन्न रसमें द्रवीभूत नहीं होता। सेवन करनेपर इसका आमाशयमें कुछभी परिवर्तन नहीं होता। यह आमाशयकी श्लैष्मिक कलापर कुछ भी असर नहीं पहुंचाता। अन्त्रमें जानेपर उसकी श्लैष्मिक कला और मांसपेशिया उत्तेजित होती है और अन्त्रकी परिचालन क्रिया बढ़ती है, जिससे वह मृदु विरेचनक्रिया दर्शाता है। साथमें वायु उत्पन्न होती है, जिससे पाचन-यन्त्रमें आवाज और मन्द-मन्द उदरपीड़ा होती है दस्त ढीला और बिना वेदनाके साफ आजाता है। अधिक कालतक इसका सेवन करते रहनेसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलामेंभी प्रतिश्याय सदृश अवस्था उत्पन्न होजाती है फिर पचन क्रिया बिगड़तीहै। कितने ही चिकित्सकोंके मतानुसार यह हृदयकी गतिको बढ़ाता एवं प्रस्वेद लाता है। गन्धक सेवन करनेपर शोषण होकर स्वेद निःश्वास, स्तन्य, मूत्र और मलके साथ बाहर निकलता रहता है। यदि शरीर पर चांदीका जेवर हो, तो वह गन्धकके योगसे काला हो जाता है।

गन्धकका उपयोग नव्य मतानुसार बद्धकोष्ट, प्रवाहिका, अर्श, गुदनलिका निर्गमन गुदद्वार विदारण, गुदद्वारकी कण्डू तथा गुदनलिका संकोच (Stricture of the Rectum) रोगमें मृदु विरेचन देनेके लिये होता है, एवं यह छोटे बालक और वयोवृद्धके अर्शकी तीव्रावस्थामें उदरशुद्धिके लिये विशेष उपकारक है।

इनके अतिरिक्त कीटाणुनाशार्थ विसूचिका रोगमें कीटाणुनाशार्थ जीर्ण उपदंश, जीर्ण सुजाक, रक्तविकार आदि पर रक्तशोधनार्थ, एवं मासिक धर्ममें प्रतिबन्ध होनेपर वातवाहिनियोंके उत्तेजनार्थ व्यवहृत होता है। इनमे विद्रधि, तारुण्यपिटिका, दद्रु, व्युची, पामा आदि रोगोंमें उदर सेवन और बाह्य स्थानिक प्रयोगभी होता है। बाह्य प्रयोगमें लेप, मलहम और धावनके रूपमें उपयोग होता है।

शीशा धातु-जनित विषमें विपाक्त होनेपर इनके उपयोगसे अच्छा लाभ मिलता है। पारद विकारमें मस्त्र आने और पक्षाघात होनेपर इसका विरेचन दिया जाता है। एवं सक्रामक कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये कमरेमें इसका धुआँ भी किया जाता है।

(१८) पारद शोधन—इसका शोधन कूपीपक्व रसायनमें लिखा है। सिगरफमेंसे निकाला हुआ पारद शुद्ध होता है, इसलिये औषधि बनानेके उपयोगमें लिया जाता है। सिंगरफमेंसे पारद निकालनेकी विधि "आयुर्वेदीय-परिभाषा" प्रकरणमें लिखी है

(१९) रसकर्पूर शोधन—रसकर्पूर दोलायंत्रसे १२ घण्टे तक १६ गुने घृतमें मन्दाग्निपर उबाल लेनेसे शुद्ध होता है।

(२०) अभ्रक शोधन—अभ्रकको कड़ाहीमें डाल तेज अग्निपर तपाकरके दूध, काँजी, त्रिफलेके क्वाथ अथवा गोमूत्रमें ७ वार बुझानेसे शुद्ध होता है। इन सबमें गोदुग्ध विशेष गुणकारक है। फिर खरलमें सूक्ष्म चूर्ण करके, चौथा हिस्सा धान्य मिला, एक कम्वलमें बाँध, एक बरतनमें खूब जल अथवा काँजी डालकर तीन दिन तक भिगो दें। चौथे रोज हाथसे अथवा पैरसे मल-मलकर अभ्रकको कम्वलमेंसे छानकर निकाल लेवें। मसलनेके समय कम्वलवाली पोटलीको जलमें ही रखनी चाहिये। बार-बार जल निकालते और नया जल डालते जायं ताकि सब अभ्रक जलमें छन जाय। फिर थोड़े समय तक जल स्थिर रहनेसे अभ्रक पैदेमें बैठ जाती है, उसे सम्हाल कर ले लेवें। ऊपरका पानी सम्हालकर निकालना चाहिये, जिससे अभ्रक निकल न जाय। अन्तमें अभ्रकको धूपमें सुखा लेवें। यह शुद्ध धान्याभ्रक कहलाती है। (र० र० स०)

अभ्रक ४ प्रकारकी होती है—सफेद, लाल, पीली, और काली। वर्तमानमें इनके अतिरिक्त हरी अभ्रक भी राजपुतानेकी अनेक खानोंमेंसे निकलती है। काले अभ्रकमें भी ४ उपजाति हैं। नाग, पिनाग, दर्दुर और वज्र। इनमेंसे वज्राभ्रक मात्र लेनेकी शास्त्रकारोंकी आज्ञा है। अन्य अभ्रकके पतरे बड़े होते हैं। किन्तु वज्राभ्रकके पतरे वहुत छोटे होते हैं। अग्निमें डालनेपर किसी भी प्रकारका शब्द नहीं करते एवं इसके पतरे विखरते भी नही हैं।

(२१) चाक मिट्टी शोधन—खड़िया मिट्टीके चूर्णको २४ घण्टे जलमें भिगोकर कपड़ेसे छान लें। बार-वार जल मिलाते जांय और छानते जायं। जिससे सब मिट्टी जलमें छन जायगी और कपड़ेपर पत्थरका अंश शेष रह जायगा। जब ४-६ घण्टे बाद मिट्टी नीचे बैठ जाय, तब सम्हालपूर्वक ऊपरसे जल निकाल डालें और उसे सुखा लेवे।

(२२) गेरू शोधन—सोनागेरू (Kidney iron ore) को गायके घृतमें भून लेनेसे शुद्ध होता है। (यो० र०)

जो सुनारके काममें आताहै, वह सुवर्ण गैरिक (सोनागेरू) ही ओषधि कार्यके उपयोगमें आता है। अन्य गेरू विशेष लाभदायक नहीं है।

सोनागेरू आवश्यकतापर अकेला ही उपयोगमें लिया जाता है। सोंनागेरू शीतल, नेत्रोंके लिये हितकर, कसैला और रक्तपित्तनाशक है। विषविकार, हिचकी, वमन और रक्तकी उष्णताको दूर करता है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिनमें ३ वार शहद या दुग्धके साथ।

(२३) शिलाजीत शोधन—(अग्नितापी) आधा सेर त्रिफलेको कूटकर ३२ सेर पानीमें औटावें और चौथाई जल रहनेपर उतारकर छान लें। इन छने हुए

जलमें तीन पाव शिलाजीत डाल देवें और २४ घण्टे भीगने दें। फिर पानीको उबाल ऊपर-ऊपरसे शिलाजीत युक्त साफ जलको नितार लें। जल कड़ाहीमें औटानेसे रबड़ी जैसा गाढ़ा हो जाय तब कड़ाहीको चूल्हे परसे नीचे उतार लें। अगर शिलाजीत पत्थरोंके साथ रह गई हो तो पुनः उपरोक्त विधिसे जलमें मिला, उबालकर निकाल लें।

हरिद्वारसे बदरीनाथपुरीके रास्तेमें शुद्ध शिलाजीत बेचनेवाले व्योपारियोंकी सैंकड़ों दुकानें देखनेमें आती हैं। उनमेंसे २-४ व्योपारी कदाचित् शास्त्रोक्त विधिसे कुछ सूर्यतापी शिलाजीत तैयार करते होंगे। शेष सब मनघडन्त रीतिसे तैयारकी हुई अग्नितापीको ही सूर्यतापीके स्थानमें देकर ठगते हैं। कितने ही स्वार्थी लोग शिलाजीतमें गोमूत्र मिलाकर उबाल लेते हैं। कोई गोमूत्रमें नीम वृक्षका गोंद और गुड़ मिलाकर कृत्रिम शिलाजीत तैयार करते हैं। सूक्ष्म रीतिसे जांच करने पर गुड़ आदिकी मिलावट से रहित शास्त्रोक्तविधिसे तैयार की हुई शिलाजीत बहुत थोड़े औषधालयोंमें मिलती होगी। हृषिकेशसे बदरीनाथके रास्तेमें बहुत थोड़े दिन धूपमें तेजी रहती है। ठन्ड और वर्षा वाले दिन विशेष रहते हैं। इसी हेतुसे वे सूर्यतापी शिलाजीत तैयार नहीं करा सकते। २-४ बड़े बड़े व्योपारी यात्राके दिनोंमें सूर्यतापी शिलाजीत तैयार करानेके लिये मई और जूनमें (१-१॥ मास मात्र) सूर्यके तापमें यन्त्रको यात्रियोंकी श्रद्धाको दृढ करानेके लिए रखवाते हैं। जो व्योपारी प्रतिवर्ष मनोंके हिसाबसे शिलाजीत विक्री करते हैं, वे कदाचित २-४ सेर भी सूर्यतापी शिलाजीत तैयार कर लें, तो क्या?

दूसरी विधि—(सूर्यतापी) पहिले शिलाजीतको प्रथम विधिमें लिखे अनुसार त्रिफलेके १६ गुने गरम जलमें मिलाकर २४ घण्टे भिगो देवें। बादमें कड़ाहीको चूल्हेपर चढ़ाकर २-३ उफान आने तक उबालें, तत्पश्चात नीचे उतार लेवें। शीतल होनेपर जब जल नितर जाय तब ऊपरसे साफ नितरे हुए जलका एक कलई किये हुए भगोनेमें छानकर भर लेवें, उसे सूर्यकी धूपमें रखनेसे, रोज शामको या दूसरे दिन सुबह, ऊपरके भागमें दूधकी मलाईके समान शिलाजीतकी मलाई आ जाती है। उस मलाईको खुरप या कलछीसे अलग बरतनमें निकालकर सुखा लेनेसे शिलाजीत शुद्ध बन जाती है। शिलाजीतका भगोना, जिसमेंसे रोज मलाई उतारी जाती है, उसमें यदि मलाई आती हो और तेज धूपके कारणसे जल सूख जाय या कम हो जाय, तो पहिलेके समान जितने त्रिफलेके क्वाथकी आवश्यकता हो उतना मिला लें। जब शिलाजीत जलके ऊपर न आवे, तब शेष कचरेको फेंक दें।

तीसरी विधि—(सूर्यतापी) विशेषतः शिलाजीत शोधनार्थ - कुछ चिकित्सक *शार्ङ्गधर संहिताके पाठके अनुसार त्रिफला-क्वाथके स्थानपर केवल गरम जल ही लेते* हैं। शिलाजीतके पत्थरोंको जलमें एक प्रहर रख देते हैं। फिर पत्थरोंको फेंक देते हैं।

और जलको छानकर रूई या कपड़ेकी बत्ती द्वारा दूसरे पात्रमें नितार लेते हैं। एक-एक बूंद करके जल टपकता रहता है, उसमे शिलाजीत शुद्ध निकल जाता है और धूल ,पत्थर आदि कचरा तलस्थ रह जाता है। फिर नितरे हुए जलको सूर्यके तापमे सुखा लेनेपर शिलाजीत शुद्ध हो जाती है। इस तरह तैयार की हुई शिलाजीत त्रिफला-क्वाथसे शोधन की हुई शिलाजीतकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है, क्योकि त्रिफलेसे शोधन की हुई शिलाजीत मे त्रिफलेका अंश मिल जानेसे बहुत वजन बढ़ जाता है। पर जलसे शुद्धकी हुई शिलाजीतमें किसीका भी मिश्रण नही रहता।

सूचना—मच्छर, मक्षिका, धूल, वृक्षोंके पत्ते आदि गिरनेसे बचानेके लिये शिलाजीतके पात्रपर पतला वस्त्र बाँध देना चाहिये।

शिलाजीतके गुण—शिलाजीतमें स्नेह और लवण गुण होनेसे वातघ्न, सर गुण होनेसे पित्तघ्न, तीक्ष्ण गुण होनेसे श्लेष्मघ्न और मेदोघ्न, चरपरी और तीक्ष्ण गुणके हेतुसे दीपन, कड़वा रस होनेसे रक्तविकारनाशक, तथा चरपरा, तीक्ष्ण और उष्ण गुण होनेसे कृमिघ्न है। शिलाजीत स्निग्ध होनेसे पौष्टिक, बल्य, आयुवर्द्धक, वृष्य विषनाशक, मंगल (रसायन) और अमृत रूप (सत्ववर्द्धक) गुणोंकी प्राप्ति कराती है। शुद्ध शिलाजीत स्रोतसे, धातु, इन्द्रिय और बुद्धिकी शोधक और वर्णकर गुणयुक्त और वृष्य होनेसे मेध्य भी होती है।

भगवान् आत्रेयके मतानुसार शिलाजतु अनम्ल (खट्टी नही है), कसैली तथा विपाकमें चरपरी है, अति उष्ण या अति शीतल नही है। यह रसायन, वृष्य और सम्पूर्ण रोगोंकी नाशक है। रोग शमनार्थ आवश्यकतानुसार वातघ्न, पित्तघ्न, कफघ्न, द्विदोषघ्न या त्रिदोषघ्न औषधियोंकेक्वाथकी भावना देनेसे परम वीर्योत्कर्षको पाती है। महर्षि आत्रेय कहते हैं कि:—

न सोऽस्ति रोगो भुविसाध्यरुपः शिलाह्वयं यन्न जयेत् प्रसह्य।

अर्थात् संसारमें ऐसा एक भी रोग नहीं है, जो विधिपूर्वक शिलाजीतके सेवनसे नष्ट न हो सके।

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते है, कि सब प्रकारकी शिलाजीत कड़वी, चरपरी, कुछ कषाय रसयुक्त, सर (वात और मल प्रवर्त्तक या सर्वत्र पहुंच जानेवाली), विपाकमें चरपरी, उष्णवीर्य, कफ और मेदका शोषण करने और मलका छेदन करने वाली है। शिलाजीतके सेवनसे प्रमेह, कुष्ट, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, कृत्रिम विष, शोष (क्षय), शोथ, अर्श, गुल्म, पाण्डु और विषमज्वर आदि रोग थोड़ेही समयमें दूर हो जाते है। ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसे शिलाजीत हनन न कर सके। बहुत कालसे मूत्रमें आनेवाली शर्करा (कंकड़ी) और पथरीका भेदन करके उसे बाहर निकाल देती है।

रसरत्नसमुच्चयकारने लिखा कि, है शुद्ध शिलाजीतके सेवनसे ज्वर, पाण्डु, शोथ, मधुमेह, सब प्रकार के प्रमेह, अग्निमान्द्य, मेदवृद्धि, राजयक्ष्मा, अर्शरोग, गुल्म, प्लीहावृद्धि, सब प्रकारके उदररोग, हृदयशूल और सब प्रकारके त्वचाके रोग, ये सब निश्चयपूर्वक

जड़मूलसे नष्ट हो जाते हैं। अधिक कहा तक कहे, देहको नीरोग और सुदृढ बनानेके लिये शिलाजीत सर्वोत्तम रसायन है। अभ्रकादि महारस, गन्धक आदि उपरस, सूतेन्द्र (पारद), माणिक्य आदिरत्न और सुवर्ण आदि धातुओंमें जरा, मृत्यु (रोग समुदाय) को जीतनेके गुण हैं, वे सब गुण शिलाजीतमें भी होनेका निम्न श्लोकमें कहा है—

रसोपरस-सूतेन्द्र-रत्न-लोहेषु ये गुणा ।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरा-मृत्यु-जिगीषया ॥

सब प्रकारके जीर्ण दुःखदायी रोग, मेदोवृद्धि और मधुमेहके लिये शिलाजीतको अति हितकर माना है। इनके अतिरिक्त चोट लगनेपर शिलाजीतका लेप भी किया जाता है। शिलाजीतके सेवनसे अकालमृत्युका भय दूर होता है और आयुकी वृद्धि होती यह बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सगर्भा, प्रसूता सबके लिये लाभदायक है।

आधुनिक विज्ञानके विचारसे शिलाजतु पेराफीन जातीय द्रव्य है, जिसमें पेट्रोल भी निकलता है। देखें, अभ्रकादि खनिज विज्ञान।

विविध भावना—शिलाजीतको जिन द्रव्योंकी भावना दी जाय, उनके अनुसार गुणकी वृद्धि होती है। अन्य शास्त्रमें ओषधियोंके क्वाथ या स्वरसकी भावना देनेका निम्नानुसार विधान किया है—

वातरोग शमनार्थ—रास्ना, दशमूल, खरेंटी, पुनर्नवा, एरण्ड, सोंठ और मुलहठी आदि ओषधियोंके क्वाथकी भावना दें।

पित्तरोग शमनार्थ—मुनक्का, शतावरी, या मल्लिका पुष्प, परवल, त्रायमाण, गिलोय और जीवनीयगणकी ओषधियोंसे भावना दें।

कफरोगनाशार्थ—त्रिफला, वच, वायविडंग, करंज, नागरमोथा और बृहद् पञ्चमूल आदि ओषधियोंकी भावना दें।

वातपित्त शमनार्थ—लघुपंचमूल, सोंठ, द्राक्षा, गम्भारी और अश्वगंधाकी भावना देनी चाहिये। इस तरह गिलोय और खरेंटीके स्वरसकी भावना भी दी जाती है।

वातकफ शमनार्थ—नागरमोथा, कूठ, वच, त्रिफला, देवदारु, वायविडंग, पंचकोल, हल्दी, कालीमिर्च और अतीसकी भावना दें।

पित्तकफशमनार्थ—पाठा, परवल, निम्ब, त्रिफला, नागरमोथा, कूठ, सप्तपर्ण, त्रायमाण, गिलोय, अतीस आदि ओषधियोंके क्वाथोंकी भावना दें।

इस तरह भिन्न भिन्न रोग शमनार्थ रोगनाशक ओषधियोंकी भावना दी जाती है, या रोगनाशक अनुपानके साथ शिलाजीत सेवन कराई जाती है।

मात्रा—१ रत्तीसे १ माशा तक दिनमें १ अथवा २ बार, रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। मेदोवृद्धि, शोथ, मधुमेह, क्षय, अश्मरी, मूत्राघात आदि जीर्ण रोगोंमें मात्रा १ माशा तक शनैः शनैः प्रकृति और अग्निबलका विचार करके बढ़ानी चाहिये।

अनुपान

१—ज्वरशमनार्थ—नागरमोथा और पित्तपापड़ाका क्वाथ ।

२—शोष रोगमें—मयूर मांसका रस ।

३—रक्तपित्तपर—मुलहठीका क्वाथ ।

४—कार्श्य रोगमें—दुग्ध ।

५—मेदोवृद्धिपर—जल मिश्रित शहद ।

६—बुद्धि वृद्धिके लिये—गोदुग्ध ।

७—असाध्य शोथमें—गोमूत्र ।

८—पाण्डुसह उदर-रोगपर—भैंसका मूत्र ।

९—अश्मरीपर—वीरतर्वादिगणका क्वाथ ।

१०—कुष्टपर—खदिर क्वाथ ।

११—विषहरणार्थ —सोंठ, मिर्च, पीपल और स्वर्णमाक्षिक भस्म ।

१२—धातुक्षीणतामें—केशर और मिश्री मिला दूध ।

१३—पांडुरोगपर—लोहभस्म और त्रिफला ।

१४—मूत्ररोगमें—छोटी इलायची और पीपलका चूर्ण ।

१५—मूत्राघात—वीरतर्वादिगणका क्वाथ ।

१६—मधुमेहपर—शिलाजीतको सालसारादिगणके क्वाथकी ७ भावना देवें । फिर इसे अग्नि बलके अनुसार सालसारादिगणके क्वाथके साथ या गोमूत्रके साथ देवें ।

१७—प्रमेहपर—शिलाजीत और वंगभस्म समभाग मिला दूधके साथ सेवन करावें ।

१८—(अ) शुक्रमेहपर—शिलाजीत २ तोले, वंगभस्म २ तोले, लोह भस्म १ तोला और अभ्रक भस्म ६ माशे मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनालें। एक-एक गोली प्रातः सायं दूध या प्रकृतिके अनुकूल अनुपानके साथ देते रहनेसे शुक्रमेह और स्वप्नदोष दूर होते हैं।

(आ) शिलाजीत २॥ तोले, लोहभस्म १ तोला, केशर ६ माशे, कस्तूरी ३ माशे और अम्बर ३ माशे मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना ले। सुबह-शाम दूध या चन्दनके शर्वतके साथ सेवन करनेसे शुक्रमेह और स्वप्नदोष दूर होते हैं तथा पाचनशक्ति, स्फूर्ति और स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है।

१९—बहुमूत्रपर—शिलाजीत, वंगभस्म,छोटी इलायचीके दाने और वंशलोचन, इन चारोंको समभाग मिलाकर शहदके साथ खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लें। प्रातः सायं २-२ गोली धारोष्ण दूध या शीतलमिर्च और बड़े गोखरूके क्वाथके साथ सेवन करानेसे बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, शर्करा, प्रमेह और धातुविकार दूर होकर शरीर पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है ।

२०—मूत्रजठरपर—शुद्ध शिलाजीत, मिश्री और कपूरके साथ देनेमें मूत्राघात (मूत्रजठर और मूत्रातीत) रोग दूर होता है।

२१—क्षयपर—(अ) त्रिफला, गिलोय, दशमूल, स्थिरादि कषाय (वय स्थापन कषाय) और काकोल्यादिगणके क्वाथोंकी भावनावाली शिलाजीत २ से ८ रत्ती बकरीके दूधमें दिनमें दो बार दें।

(आ) शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म, त्रिकटु और शहदको मिलाकर चटावें। ऊपरसे बकरीका दूध पिलावें।

२२—त्रिदोषज शोथपर—शिलाजीत आधसे १ माशा तक त्रिफलाके क्वाथके साथ देवें।

२३—कुम्भकामलापर—गोमूत्रके साथ सेवन करावें।

२४—उरुस्तंभपर—शिलाजीतको गूगल, पीपल और सोंठके साथ मिला, दशमूल क्वाथ या गोमूत्रके साथ सेवन करावें।

२५—आयुवृद्धिके लिये—मिश्री मिले हुए गोदुग्धके साथ एक वर्ष या अधिक समय तक सेवन करावें। १ रत्तीसे आरंभ करके शनैः शनैः मात्रा १ माशे तक बढ़ावें।

२६—रक्तदबाव वृद्धिपर—रक्तदबाव अति बढ़ जानेपर शिलाजीतका उपयोग होता है। २-२ रत्ती शिलाजीतको काली सारिवा ६ माशे और मुलहठी १ तोलेके क्वाथके साथ दिनमें २ बार देवें, तथा रात्रिको स्वादिष्ट विरेचन या पंचसकार या अन्य सामान्य रेचक-चूर्ण ४-६ माशे जलके साथ देते रहनेसे रक्तदबाव एक सप्ताहमें कम हो जाता है।

२७—अर्दितपर—शुद्ध शिलाजीत १-१ रत्ती और सारिवा २-२ रत्ती मिला सुबह और दोपहरको देवें और कब्जको दूर करनेके लिये रात्रिको सेंधानमक मिली हुई हरड़का चूर्ण ३ माशे देते रहें। लगभग १ मास देनेपर अर्दित वात दूर होता है।

२८—शिरदर्दपर—वृहदन्त्र, कमर, नितम्ब, आदिके वात प्रकोपसे ज्वर सहित शिरदर्द उत्पन्न हो जाता हो, और उसका बार-बार दौरा होता हो, तो शिलाजीत ½ रत्ती अमृतासत्व १ रत्ती, मजीठ २ रत्ती मिलाकर, दिनमें ४ बार आमके मुरब्बाके साथ देते रहें।

अपथ्य—शिलाजीतके सेवनकालमें स्त्रीप्रसंग, लालमिर्च, विदाही तथा भारी भोजन, तैल, खटाई, गुड़, कुलथी, मलावरोध करनेवाले पदार्थ, अधिक नमक, सूर्यके तापका अधिक सेवन, रात्रिमें जागरण, दिनमें शयन, मलमूत्रादिके वेगको रोकना, मांस, मछली, शराब, व्यायाम, तेज वायुका सेवन, मानसिक संताप और प्रकृतिके प्रतिकूल या रोगमें हानिकर पदार्थोंका सेवन न करें। इसमें कुलथी, मकोय और कपोत के मांसका सेवन सदाके लिये त्याग देना चाहिये।

सूचना—जिनके नेत्रोंमें लाली और उष्णता रहती हो, ऐसे पित्तप्रधान प्रकृतिवालेको शिलाजीत सेवन नही करानी चाहिए।

२४—खर्पर (खपरिया) शोधन—खपरिया, कारवेलक अथवा दर्दुर (दूसरे प्रकारकी खपरिया) को ७ दिन तक दोलायंत्रसे गोमूत्रमें उवाल लेने और केलेमेना प्रिप्रेटा (Calamina Preparata—खपरिया) को गोमूत्रमें ६-६ घण्टे तक खरल कर ७ दिन तक धूपमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है। केलेमिना प्रिप्रेटा लघु मालिनीवसन्तमें अच्छा काम देता है। नेत्ररोगमें उपयोगी है या नहीं, यह अनिश्चित है।

अनेक वर्षो पर्यन्त वैद्यसमाजमें खर्परके उपयोगमें मतभेद रहा है। सुवर्ण मालिनीवसन्तमें संदिग्धताके हेतुसे खर्पर के स्थानमें जसदभस्मका उपयोग होता था। कराची वैद्यसम्मेलनके समयपर अध्यक्ष कविराज प्रतापसिंहजीने, कारवेलकको सच्चा खर्पर सिद्ध किया। तवसे कारवेलकका विशेष उपयोग हो रहा है। सुवर्णमालिनीवसन्त और नेत्ररोगकी ओषधिमें जहां खर्पर आता है: वहां कारवेलकका उपयोग निर्भयतापूर्वक हो सकता है। फिर भी कारवेलकको सच्चा खर्पर माननमें सन्देह हें। कारण, रसरत्नसमुच्चयकार लिखते है :—

रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशयः॥

जो रस (पारद) और रसक ,(खर्पर) इन दोनोंको अग्निमें स्थिर कर सकता है, उसके पास देहसिद्ध (अजरामरत्व) और स्वर्ण वनानेकी सिद्धि निःसन्देह दासी वनकर रहती है। इन वचनमें कहा हुआ अग्निसे उड़ जाना, यह गुण वर्तमानमें प्रचलित, कारवेलक और अन्य खर्परमें नही है। श्री कविराज प्रतापसिंहजी आदि विद्वानोंकी मान्यता है कि, जसद खर्परमेंसे निकलता है।

२५—गोदन्ती शोधन—गोदन्तीको दोलायंत्रसे नींबू, भांगरा या द्रोणपुष्पीके रसमें ३ घण्टे तक उवाल लेनेसे शुद्ध होती है।

२६—मृद्दारशृङ्ग शोधन—बिजौरा और अदरखके रसकी ३-३ भावना देनेसे मुर्दासिंग शुद्ध होता है। (र० च०)

मुर्दासिंग शीशेकी उपधातु है। कफ, उपदंश और गुह्येन्द्रियके अन्य रोगोंको दूर करती है। छोटे वच्चेको मिट्टी खानेसे उपद्रव हुआ हो, उसे मुर्दासिंगका जुलाव देनेसे विरेचन होकर मिट्टी निकल जाती है। मुर्दासिंग सेवनसे सफेद वाल काले हो जाते है। पारद वन्धनमें इसका उपयोग होता है तथा घाव सुखानेके लिये मलहम में भी मिलाया जाता। इसकी दूसरे प्रकारकी शोधनविधि प्रदरान्तक रसकी टिप्पणीमें दी गई है।

(२७) कासीश शोधन—कासीसको भांगरेके रसमे ३ घण्टे तक खरल करके धूपमें सुखानेसे शुद्ध होती है। (र० र० स०)

कासीस श्वेत और नीली दो जातिकी आती है। इनमेंसे भस्म बनानेके लिये नीली कासीस विशेष लाभदायक है। किंतु विलायती सल्फेट आफ आयरन (Sulphate of Iron) की भस्म बनाई जाय, तो वह सत्वर गुण दिखाती है। हम उसीको उपयोगमें लेते हैं।

(२८) वज्र शोधन—हीरा-वटेलीके मन्दमें बन्दकर कुल्थी और कोदो धान्यके क्वाथमें ३ दिन तक दोलायंत्र विधिसे उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (आ० प्र०)

(२९) माणिक्य शोधन—नीबूके रसमें २४ घण्टे तक दोलायंत्रमें उबाल लेनेसे शुद्ध होती है। (र० र० स०)

(३०) गोमेदमणि शोधन—गोमेदमणिको जयन्तीके रसमें ३ दिन तक दोलायंत्रसे उबालें। पश्चात् तपा-तपाकर आँवलेके स्वरसमें २१ बार बुझानेसे शुद्ध हो जाता है। (शा० स०)

(३१) पन्ना शोधन—पन्नाको कुलथी अथवा कोदों (कोद्रवधान्य) के क्वाथमें दोलायंत्रमें १२ घण्टे तक उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (र० र० स०)

(३२) वैडूर्य शोधन—लहसुनिया-त्रिफलाके क्वाथमें २८ घण्टे तक दोला-यन्त्रमें उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (यो० र०)

(३३) पुखराज शोधन—कुलथीका क्वाथ और कांजी समभाग मिलाकर उसके साथ पुखराजका दोलायंत्रमें ३ अहोरात्र उबालनेसे शुद्धि होती है। (र० र० स०)

(३४) नीलम शोधन—नीलम-नीलके क्वाथमें ३ दिन तक दोलायंत्रमें उबालनेसे शुद्ध होता है। (र० र० स०)

(३५) राजावर्त्त शोधन—गोमूत्र, नीबूका रस, जवाखार और पापडखार मिलाकर, उसमें दोलायंत्रसे ६ घण्टे तक उबालनेसे लाजवदकी शुद्धि होती है। (र० च०)

राजावर्तमें २ प्रकार हैं—एक जातिमें सुवर्ण समान छीटे और दूसरी जाति पर रौप्य समान छीटे रहते हैं। सुवर्ण समान छीटे वाला उत्तम है।

(३६) वैक्रान्त शोधन—हीरा शोधन विधिके अनुसार कुलथीके क्वाथमें दोलायंत्रसे शोधन करना चाहिये।

दूसरी विधि—वैक्रान्तको तपा-तपाकर २१ बार घोडेके मूत्रमें बुझानेसे शुद्ध होता है। दोनो रीतिसे शोधन किया जाय, तो भस्म सत्वर विशेष कोमल बनती है। (र० सा० स०)

वैक्रान्त श्वेत, रक्त, पीत आदि भेदसे आठ प्रकारके होते हैं। उनमेंसे रसरत्नसमुच्चयकार और अन्य ग्रन्थकारोंने काले रंगवालेको उत्तम माना है, आयुर्वेदप्रकाशमें भी षट्कोण या अष्टकोण और काले रंग वालेको श्रेष्ठ दर्शाया

है; और उसके नीचे लिखे श्लोकमें दोषवाले हीरेका (तोरमल्लीको) ही वैक्रान्त कहा है:—

"विकृता वज्रखण्डा ये वैक्रान्ताख्यां भजन्ति ते ।
जातयःशोधनं हिंसां गुणास्तेषां तु वज्रवत् ॥" अ०५।१५९॥

ज्योतिष शास्त्रने रत्नोंको धारण करने मात्रसे ग्रहोंकी कुछ दृष्टिसे उत्पन्न विविध रोगोंका निवारण माना है । एवं आयुर्वेदने रत्नोंकी पिष्टी और भस्मके सेवनका उल्लेख किया है । ज्योतिष शास्त्रमे भिन्न भिन्न ग्रहोंके लिये निम्नानुसार रत्नोंकी योजना की है ।

ग्रह	रत्न	रंग
सूर्य	माणिक्य	रक्त उज्वल पारदर्शक या गुलाबी; बैंजनी आभा ।
चन्द्र	मोती	श्वेत; पीली नीली प्रभा ।
मंगल	प्रवाल	मन्द लाल सादा अपारदर्शक ।
बुध	पन्ना	गहरा हरा, पारदर्शक ।
गुरु	पुखराज	सफेद, पीला ।
शुक्र	हीरा	सुफेद तेजस्वी ।
शनि	नीलम	गहरा नीला ।
राहु	गोमेद	गोमूत्र सदृश ।
केतु	लहसुनिया	बिल्ली और बाघकी आंखों जैसा ।
राहुकेतु	राजावर्त	नीला-लाल । सुनहरी अथवा सफेद छींटे ।

आचार्योंने जाति और स्वभाव विशिष्ट हीरेका सामर्थ्य भिन्न भिन्न दर्शाया है । हीरामें स्त्री, पुरुष और नपुंसक जाति है । उत्तम जातिका हीरा क्षयरोगनाशक, जरानाशक, रसायन और आयुवर्द्धक माना है । वह औषधि रूपसे अधिक व्यवहृत होता है ।

हीराकी खानमें उत्पन्न विकारयुक्त हीराके टुकड़े ही वैक्रान्त कहलाते हैं । यथार्थमें वे कनिष्ठ हीरा होनेसे उनके शोधन, मारण और गुण हीरेके समान ही हैं । इस वैक्रान्तको भाषामें तोरमल्ली—तरमरी कहते हैं । यह तुरमरी शब्द टुर्मलीन (TOURMALINE) शब्द का अपभ्रंश है (देखे अभ्रकादि खनिज विज्ञान)

वर्त्तमानमें अनेक चिकित्सकोंने अभ्रककी खानमें से निकालने वाले एक जातिके पत्थरोंको वैक्रान्त माना है । अन्य स्फटिकको वैक्रान्त कहते हैं ।

(३७) मौक्तिक शोधन—जयन्तीके रसमें ३ घंटे तक दोलायन्त्रसे मोतीको उबाल लेनेसे शुद्ध होते हैं । (धा० सं०)

वर्त्तमानमें जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि देशोंमें बनावटी मोती बहुत आते हैं, वे औषधिके कामके नहीं हैं । बसरासे आने वाले मोती अच्छे हैं । औषधिमें प्रायः अनविंधे मोती और बड़े मोतीके चूरेका उपयोग होता है । विंधनेके समय जो चूर्ण जलमें गिरता है । यह पूरा काम देता है

बाजारमे मोतीके जो छिलके मिलते हैं । वे शुक्तिके तेजस्वी अंशमे से निकाले हुए हैं । उसे खरीद करना हो तो शुक्तिके तेजस्वी अंशकी पिष्टी बना लेना ही अच्छा है । जिससे धनकी व्यर्थ हानि न हो ।

धन्वन्तरि निघण्टु, राजनिघण्टु, भावप्रकाश और चक्रपाणिदत्तके मतमे जयन्ती जाहीको कहते हैं । अमरकोषकारने अरणीको जयन्ती कहा है । इन दोनोंमे से विषनाशक गुण जाही (चमेली) में अधिक है । अतः मौक्तिक शोधनमे अरणीकी अपेक्षा जाही विशेष हितकर मानी जायगी ।

दूसरी विधि—पक्के ताजे नींबूके रसमे ४ गुना जल मिला उसमे १२ घंटे मोतीको भिगोकर धो लेनेसे शुद्ध हो जाते हैं । नींबूके जलमे से मोतीको सम्हाल कर निकाले कारण मोतीमेंसे कुछ चूर्णहोकर नींबूके रसमें मिल जाता है । (औ० गु० ध० शा०)

तीसरी–विधि—तपा-तपाकर सात-सात बार घी-कुवारके रस, ब्रदलोईके रस और स्तन्य (स्त्री दूध) में बुझानेसे मोतीकी शुद्धि होती है । यदि इस तरह शुद्धि करनी हो, तो तपनेके समय बरतन पर ढक्कन ढक देवें । अन्यथा मोती उछलकर पात्रसे बाहर निकल जाते हैं । किसी-किसी समय तो अग्निमें भी गिर जाते हैं । इसीलिये बहुत सम्हालकर शोधन करना चाहिये । (शा० स०)

(३८) शंख और शुक्तिशोधन—शंख और सीपको मठेमें ३ दिन तक भिगोवें । पात्रको दिनमें १२ घण्टे धूपमें तथा रातको १२ घण्टे खुला रखना चाहिये । मट्ठे को रोज बदल देवें ३ दिन बाद उसे मट्ठेमेंसे निकाल, जलसे धो लेनेपर शंख और शुक्तिकी शुद्धि होती है ।

शंख समुद्रमसे निकले हुए बड़े सफेद रंगके मजबूत देखकर उपयोगमें लेवें । मैले रंगके, जल्दी टूटनेवाले और नदीके छोटे शंखोंको उपयोगमें न ले ।

मोती जिसमें निकाल लिये हो, ऐसी बडी-सीपोंको उपयोग में लेना चाहिये । शोधन करनेके समय सीपके पीछे जो काला भाग होता है, उसे चाकूसे दूर करें । केवल सफेद तेजस्वी भाग को ही लें । नदीमें उत्पन्न होने वाली छोटी–छोटी सीपोंमें गुण बहुत कम होता है । अतः उनको न लें ।

शुक्तिको गरम करलेनेसे उसके पीछे का काल भाग आसानीसे अलग किया जासकता है ।

(३९) प्रवाल शोधन—जयन्तीके रसमें दोलायन्त्रमें ३ घण्टे तक स्वेदन करें, फिर गरम जलमे धो लेनेसे प्रवाल शुद्ध होती है । (शा० स०)

अथवा प्रवालका मठ्ठा, जो अधिक खट्टा न हो, उसमें ३ घण्टे भिगोकर गरम जलमें धोने पर भी शुद्धि हो जाती है । श्वेत वर्णयुक्त जीर्णनिस्तेज प्रवालकी शाखाओंको निकाल डालें ।

(४०) वराटिका शोधन—कौड़ियोंको मठ्ठा, चूकेका रस अथवा नीबूके रसम भिगो दें। जब कौड़ियोंका रंग श्वेत हो जाय, तब निकालकर धो लें। लगभग ७-८ दिन तक भिगोना पड़ता है। (र० र०)

औषध कार्यमे पीली कौडीका हीउपयोग होता है। वजनककी दृष्टिसे आधा तोले वजन वाली उत्तम १ तोले वजनकी मध्यम और ३ माशे वजनकी कौडियाँ कनिष्ठ मानी गई है।

(४१) अकीक शोधन —अकीकको तपा-तपाकर गुलाबजल या अर्क बेदमुश्क, अथवा दूधमें २१ बार बुझानेसे शुद्धि होती है।

(४२) जहरमोहरा शोधन—जहरमोहराको तपा-तपाकर २१ बार गोदुग्ध या आंवलोंके रसमें बुझानेसे शुद्धि होती है।

(४३) भस्मांग शोधन—पिरोजाको अग्निमें तपा-तपाकर गाय या बकरीके दूधमें ३ बार बुझानेसे शुद्ध होता है।

(४४) संगयसव शोधन —संगयसवको तपा-तपाकर २१ बार अर्क गाउजबां या गुलावजलमें बुझानेसे शुद्ध होता है।

(४५) संगयहूद (हजरुलयहुद)शोधन—संगयहूदको तपा-तपाकर ७ बार कुलथीके क्वाथमें बुझानेसे शुद्ध होता है।

(४६) उपपन्ना शोधन—पन्नाकी खानमेंसे निकलनेवाले तेजस्वी नीले रंगके पत्थरोंको तपा-तपाकर कुलथीके क्वाथ, गुलाबजल और केवड़के अर्कमें ७-७ बार बुझानेसे उनकी शुद्धि होती है।

(४७) बारहसिंगाशोधन—बारहसिंगेके छोटे-छोटे टुकड़े कर मठ्ठेमें डालें। फिर धूप लगती रहे, ऐसे स्थानपर ३ दिन तक बरतनको रखें। पश्चात् जलसे धोकर तेज धूपमें सुखा लेनेसे इसकी शुद्धि होती है।

(४८) फिटकरीऔर सुहागाशोधन—इनको लोहेकी कड़ाहीमें डालकर फूला बना लेनेसे शुद्धि होती है।

(४९) जयपाल शोधन —जमालगोटेके बीजोंको २४ घण्टे जलमें भिगो दें। फिर ऊपरके छिलके उतारकर गिरी निकाल लें। जयपालवाला हाथ नेत्रोंको न लग जाय, यह सम्हालें। कदाचित् भूलसे हाथ लगभी जाय तो घी लगा ले। पश्चात् गिरीको १६ गुने दूधमे दोलायंत्रसे उबालकर जलसे धो लेवे और बीचमेंसे जीभी निकालकर सूर्यके तापमें सुखा लेनेसे जयपाल शुद्ध होता है। (यो० र०)

सूचना—जयपालके विरेचन और वमन–धर्म उसमें अवस्थित तैलके हेतुसे प्रकाशित होते है। यदि तैल अत्यधिक कमकर दिया जायगा तो वह जयपाल मिश्रित औषधि योग्य मात्रा मे इच्छित आर्य नही कर सकेगी–।

(५०) वच्छनाग शोधन—सफेद या काले बच्छनागके छोटे-छोटे टुकड़ेकर ४ गुने बकरीके दूधमें ३ घण्टे उबाल, धोकर छायामें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है। (यो० र०)

बाजार में गोमूत्रकी गंधवाला काले रंगका बच्छनाग आता है। वह श्वेत रंगके बच्छनागको गोमूत्रमें उबालकर बनाया हुआ है। बच्छनाग गोमूत्रमें एक समय उबल जानके हेतुसे प्राय शुद्ध है। फिर भी अधिक शोधन करना हो, तोउसके छोटे-छोटे टुकड़े कर गोमूत्रमें एक दिन भिगोकर धो लेवें। गोमूत्रमें उबालने के समय बच्छनागमें सुई डालकर परीक्षा करें। यदि सुई पार निकल जाय, तो शुद्ध समझें। कसर हो तो आधे घंटे तक और अग्नि देनी चाहिये।

(५१) धत्तूरशोधन—काले धतूरेके पक्के बीजोंको गोमूत्रमें १२ घण्टे भिगोकर सुखा दें। फिर लकड़ीके डण्डेसे कूट वा शिलापर पीस, फटककर छिलकोंको दूर करनेसे बीजोंकी शुद्धि होती है। (यो० र०)

काले धत्तूरेके पक्के बीज विशेष लाभदायक है। कालेके अभावमें श्वेत धतूरेके बीज लेवें।

(५२) कुचिला शोधन—कुचिलाको ७ दिन तक गोमूत्रमें भिगोवें। प्रतिदिन गोमूत्र बदलते रहें। फिर छिलका नरम होने पर या कुचिलामें सुई लगानेपर पार निकल जाय, तब छिलकोंको उतार देवें और भीतरसे जीभीको भी निकाल डालें। पश्चात् कुचिलाका १६ गुने दुग्धमें दोलायन्त्रसे उबालें। दुग्ध, रबडी जैसा होजाने पर उतारकर धो लेवें। अथवा समभाग घृतमें भून लेनेसे भी कुचिला शुद्ध हो जाता है।

यदि ७ दिन भिगोनेपर भी छिलके नरम न हों, तो २-३ रोज ज्यादा भिगोवें। किन्तु छिलके नरम होनेपर अधिक दिन गोमूत्रमें न रखें। अन्यथा गुण कम होजाता है।

कुचिला शोधन करनेपर शेष रहे दुग्धका मावा बनाकर अफीम छुड़ानेके लिये हमने उपयोगमें लिया है। मात्रा अफीमके बराबर देते हैं। अथवा कुचिलेका शेष घृत अफीमसे आधे परिमाणमें देते है। इन दोनों प्रयोगोंसे अफीमका व्यसन ५-७ दिनमें छूट जाता है।

दूसरी विधि—१ सेर कुचिलाको कड़ाहीमें डाल ७॥ से पाच तोले तक एरण्ड तैल मिला, मसलकर मन्दाग्निसे भूनते हैं। बार-बार खुरपेसे चलाते रहते हैं। कुचिले फूल जाय, तब कडाहीको उतार लें। कदाचित् एकाध कुचिला उछलकर बाहर निकल जाता है। इस हेतुसे सम्हाल पूर्वक भूनें। कुचिलेको बाहर पत्थरपर रख मुठ्ठीसे तोड़नेपर टूट जाता है, तब पक्का माना जाता है। इस कुचिलेका उपयोग शुद्ध कुचिलेके स्थानपर किया जाताहै। छिल्के और जिह्वा न निकालनेपर भी बाधा नहीं पहुचती। कदाचित् कोई कुचिला कच्चा रह गया हो, तो उसे निकाल डालना चाहिये।

कोई कोई वैद्य बिना शोधन किये और बिना जीभी निकाले बढ़ईसे यन्त्र द्वारा कागज जैसे टुकड़े करा, कूटकर उपयोगमें लेते हैं। किन्तु ऐसे अशुद्ध कुचिलेको प्रयोगमें लाना, यह शास्त्रमर्यादाके विरुद्ध है।

(५३) रसांजन-शोधन—बाजारसे ली हुई रसौतको कूटकर जलमें २८

घण्टे भिगो देवे, फिर अच्छी तरह मसलकर कपड़ेसे छान लेवें। और जल मिलानेकी जरूरत पड़े तो और जल मिला लेवे। छाने हुए जलको सम्हाल कर ऊपरसे एक कड़ाहीमे निकाल लेवें। नीचेकी मिट्टीको रसोतके साथ न आने दे। फिर जलको उबालकर गाढ़ा करे। ऊपरके भागमे रसोत लग जाय उसे बार-बार खोलते रहे; नीचे भी न लगजाय इस प्रकार सम्हालपूर्वक चलाते रहें। अग्नि मंद देवे। जब रसोंत अवलेह के समान हो जाय या जलने लगे तब कड़ाहीको नीचे उतारकर सूर्यके तापमे सुखा लेनेकी अपेक्षा 'औषधि कृति' मे लिखे अनुसार तैयार कर लेना विशेष हितकर है।

(५४) गूगल शोधन विधि—एक पाव त्रिफला और आध पाव गिलोय को जौकुटकर ३-४ सेर पानीमें रातको भिगो देवें। सुबह काढ़ा करके आधा पानी रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर छने हुए काढ़ेको कड़ाहीमें रखकर चूल्हेपर चढ़ाकर मन्द-मन्द अग्नि दें। कडाहीके दोनों कुन्दोमे एक लम्बी लकड़ी आड़ी पिरो देवे। पश्चात् एक साफ कपड़ेमे एक पाव भैंसागूगल बांध पोटलीसी बना उसी लकड़ीमे बाध कर, कडाहीमें लटका देवें। पोटलीका मुह खुला रक्खे, और उसी कड़ाहीमें से कछलीसे काढ़ा भर-भरकर गूगलकी थैलीमे डालते रहे। साथ-साथ गूगलको चलाते भी रहे। दस-बारह बार काढ़ा डालनेपर सारा गूगल कड़ाहीमे छन जायगा। जब कपड़ा खाली हो जाय, तब कपडेको निकाल लेये। उसमें गूकगलका मैल रहे, उसे फेक देवें। कड़ाहीमे जो गूगल मिला काढ़ा है, उसे धीरे-धीरे धार बांधकर निकाल लेनेसे पेदेमे मैल रह जायगा। उसे भी दूर करें। केवल नितारे हुए काढ़ेको मन्दी आच पर पकावें। गाढ़ा हो जाय, तब उतार लेवें। शीतल होनेपर हाथोंमे घी लगा गूगलकी गोलियां बनाकर सुखा लेवे और कड़ाहीको गोबरसे साफ कर लेवे।

टिप्पणी—कितने ही चिकित्सक गूगलका शोधन गिलोय और दशमूलक्वाथके साथ करते हैं। आमशोधक कार्य गूगलसे लेना हो तब त्रिफला विशेष हितावह माना जायगा। आँमसंचय अधिक न हो एसे वात रोगियोंके लिए गिलोय और दशमूल क्वाथ लाभदायक रहेगा।

(५५) भांग शोधन—भांगकी पत्तीको जलमे उबाल, निचोड़कर सुखा लेवें। फिर कढ़ाहीमे डालकर सेक लेनेसे शुद्ध होती है।

(५६) लाङ्गली शोधन—कलिहारीके छोटे-छोटे टुकड़ोंको २४ घण्टे गोमूत्रमें भिगो, छायामें सूखा लेनेसे शुद्ध होते हैं। (र० चं०)

(५७) कनेरमूलकाशोधन—कनेरकी जड़के छोटे-छोटे टुकड़ेकर पोटलीमें बाधकर २ घण्टे तक गोदुग्धमें दोलायंत्रसे उबाल लेनेसे शुद्ध होते हैं। (र० चं०)

(५८) गुञ्जाशोधन—सफेद चिरमिटीको दोलायंत्रमें रखें कांजीमें १ प्रहर उबाल लेनेसे शुद्ध होती है। (र० चं०)

(५९) भल्लातक शोधन—पक्के भिलावे, जो पानीमें डालनेसे डूब जाय, वे ईंटके चूरासे घिसनेसे शुद्ध होते हैं। जब भिलावेका क्वाथ वा पाक आदिमें उपयोग करना हो, तब इस तरह शुद्ध कर लें।

दूसरी विधि—भिलावोंको एक कपड़ेकी पोटलीमें बांधकर भैंसके गोबरमें चौगुना जल मिलाकर दोलायंत्रसे मन्दाग्निसे १२ घण्टे तक उबालें। पश्चात् ४-८ प्रहर गोमूत्र और गोदुग्धमें उबालें। बादमें भिलावोंको गरम जलसे धोकर सबके ऊपरसे टोपीका सभाग दूर करें। फिर भिलावोंको नारियलके जलमें १२ घण्टे उबाल लेनेसे भिलावे चूर्णमें मिलाने लायक शुद्ध हो जाते हैं।

टिप्पणी—हम सिर्फ गोमूत्रमें उबाल कर शोधन करते हैं

(६०) अफीम शोधन—अफीमको पानीमें घोलकर कपड़ेकी दो तहोंसे छान लेनेसे वह पानीमें चली जाती है। फिर आगपर औटाकर पानीको गाढ़ा कर लेनेसे अफीम शुद्ध होती है। ८ तोले शुद्ध अफीमका शोधन करनेपर २ तोले रह जाती है। इस तरह शुद्ध की हुई अफीमको नेत्ररोगकी औषधिमें मिलानी चाहिये।

नेत्रोंकी औषधिमें अफीम ५-१० वर्षकी पुरानी विशेष हितकर है और खानेके लिये नवीन अफीम अच्छी होती है।

दूसरी विधि—अफीमको अदरखके रसकी २१ भावना देनेसे खानेकी औषधिमें मिलाने योग्य शुद्ध होती है। (यो० र०)

(६१) लहसुन शोधन—लहसुनके छिलकोंको निकाल, कुचलकर ३ दिन छाछमें भिगोवें। रोज छाछ बदल देवें। पश्चात् साफ जलसे धोकर छायामें सुखा लेनेसे लहसुन दुर्गन्धरहित शुद्ध होती है।

(६२) एरंड बीजका शोधन—अरंडके फलोंके ऊपरसे छिलके और भीतरसे जीभी निकाल दें। पश्चात् ८ गुने नारियलके जलमें दोलायंत्रसे मन्दाग्निपर ३ घण्टे उबालनेसे शुद्ध होते हैं।

(६३) हींग शोधन—हींग घीमें भून लेनेसे चूर्णमें मिलानेके लायक शुद्ध होती है किन्तु, रसायन पारदादिक आदि योगोंमें मिलानेके लिये हींगको सूर्यके तापमें कमलके पत्तोंके रसमें ६ घण्टे तक भावना देनेसे शुद्ध होती है। (यो० र०)

(६४) उसारेरेवन्द शोधन—उसारेरेवन्दको अदरखके रस या सोठके क्वाथकी ३ भावना देनसे शुद्ध होती है।

(६५) समुद्रफेन शोधन—समुद्रफेनको नीबूके रसमें ३ घण्टे खरलकर धूपमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है।

(६६) सर्पविष शोधन—काले सर्पके विषको पहिले चीनी मिट्टीकी प्यालीमें डाल, सरसोंके तेलमें मिलाकर सूर्यके तापमें १२ घण्टे रखें। पश्चात् नागरवेलके पानके रस, अगस्त पत्रके रस और कूटके क्वाथकी ३-३ भावना देनेसे शुद्धि होती है।

द्वितीय विधि—सर्वविषको गोमूत्रमें डालकर तीन दिन सूर्यके तापमे रखें। फिर सुखा लेनेपर वह शुद्ध हो जाता है। (र० चं०)

सर्पविष निकालनेवाले साँपको पकड़ मुंहको खोल, ऊपरके भागसे नीचेका भाग थोडा टेढ़ा कर मुहको उलटा कर देते हैं। फिर विषकी थैली पर अंगुष्ठको दबाकर विष निकाल लेते हैं। जीवित सर्पमेंसे २-३ मास पर वार-वार विष निकालते रहते हैं। मरे हुए सर्पमेंसे विष नहीं निकलता। अनेक सपेरे थैलीको चीरकर विष निकालते हैं। परन्तु उस विषमें रक्त मिल जाता। ऊपर कही हुई विधिसे दबाकर विष निकलने पर शुद्ध विष सहजमें ही मिल जाता है।

सर्पका विष सर्पको क्रोधितकर निकालनेसे उत्तम पीत वर्णका विष निकलता है। इसके लिये होंशियार सपेरा विषधर सर्पको पहिले पूंगीनादपर मस्त करता है। फिर कांच के प्यालेपर रबरका आवरण लगा, युक्तिसे उसे कटाता है। इससे १०-१५ बिन्दु या इससे भी न्यून विष प्राप्त होता है। सपेरा, सर्पके मुह और पूछको पकड़कर उसके मुहको अंगुष्ट और तर्जनीके दवावसे खोलकर रबरके ढक्कनवाला प्याला मुहमे घुसाकर दवाव शिथिल करता है। दबावके शिथिल होते ही सर्प वड़े वेगसे दांतोंसे रबरके आवरणमें छेद करता है और विष चू जाता है। इस प्रकार अनेक बार थोड़े थोड़े दिनोंके अन्तरालसे विष संग्रह करना चाहिये।

बम्बईके हाफविन्स इन्स्टीटयूट और पार्क डेविसके कोबरा फील्डमें यह क्रिया देखकर अनुभव प्राप्त करें। वहां शिक्षित सेवक यह कार्य वड़ी खूबीकेसे करते हैं।

सर्पविष थूकके समान निकलता है। फिर थोड़े ही समयमें सूखकर गोंदकी छोटी-छोटी डलीके समान सफेद रंगका हो जाता है।

सर्पविषकी परीक्षा—तुरन्त मारे हुए किसी पशुके शरीरकी वड़ी रक्तवाहिनीको काट दे। फिर बहते हुए रक्त प्रवाहमें नीचेकी ओर एक सरसों समान विपकण रखनेसे वह रक्त प्रवाहमें तेजीके साथ ऊपरको चढ़ने लगजाता है।

(६७) पित्त शुद्धि—पित्तको कड़वे नीमके पत्तोंके स्वरसको ३ भावना देकर जलसे धो लेनेपर उसकी शुद्धि होती है। (र० चं०)

(६८) गंधाबिरोजा शोधन—शोधन विधि मूत्रकृच्छ्रान्तक रसकी दूसरी विधिके साथमें दी गई है।

(६९) अंडेके छिलकोंका शोधन—अंडेके छिलकोंको सिरका या नमक, नौसादर मिलाये जलमे भिगो दें। ४-६ दिनमें कोमल होने पर भीतरकी झिल्लीको सम्हालकर निकाल देनेसे शुद्ध हो जाते हैं।

नमक और नौसादर मिलाना हो, तो छिलकोंकी अपेक्षा आठवां- आठवां हिस्सा लेवे। झिल्ली निकालनेके पश्चात् शुद्ध जलसे धोकर सूर्यके तापमें सुखा लेना चाहिये।

भस्म प्रकरण ।

धातु-उपधातुओंकी भस्म बनाने या मारण करने का अर्थ उनके सूक्ष्म परमाणुओंको अत्यन्त, सूक्ष्म, निरुत्थ और सेन्द्रिय घटक युक्त बनाना है, ताकि सेवन करने पर वे उपकारक हों, देहमें शल्य रूपसे अपकारक न हों। धातु-उपधातुओंके निरिन्द्रिय परमाणु अत्यन्त सूक्ष्मतम हो जायँ और उनके साथ दी हुई भावना द्रव्योंके गुणवर्द्धक सेन्द्रिय-परमाणु मिश्रित हो जाय, ऐसे सूक्ष्मतम सेन्द्रिय स्वरूपकी प्राप्ति करना ही भस्म करने या मारण करनेका उद्देश्य है। अथवा जड द्रव्योंकी जडताको दूर कर, उनमें शरीरके उपयोगी लघुत्व गुणको उत्पन्न करनामात्र, भस्म बनानेका उद्देश्य है।

धातु उपधातुओंकी भस्म बनाने अथवा मारण करनेका अर्थ इनके धातुत्वको बिलकुल नष्ट कर देना, ऐसा नहीं है। और न यह कदापि सम्भव ही है। भस्म चाहे जितनी सूक्ष्म बनाई जाय, कदाच पश्चात्य रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे इनका धातुत्व बिलकुल नष्ट हो जाय। फिरभी वह अपना मूल स्वभाव (गुणविशिष्टत्व) का त्याग नहीं कर सकती, यह प्रयोग सिद्ध है।

भस्मका अर्थ राख नहीं है। भस्म तथा राखमें महत्वपूर्ण अन्तर है। भस्म अति तेजस्वी, वीर्यवान, अति गतिमान होनेसे सत्वर फलदायक होती है। भस्म बनानेमें सेन्द्रिय-क्षारका संयोजन धातुके साथ इस प्रकार कराया जाता है जिससे भस्म सेन्द्रिय बन जाती है। एलोपैथिक विधि अनुसार बनाई हुई लोह भस्म और आयुर्वेदिक लोह भस्ममें यही अंतर है विलायती भस्म निरिन्द्रिय है जबकि, आयुर्वेदिक सेन्द्रिय है। इसी बातको अब समझकर डाक्टरीमें सोमलके सेन्द्रिय कल्प बनाये गये है। जसदके पुष्प, जसदकी राख हैं, अत इसे जसदकी भस्म कहना बडी भारी भूल है। इसका उपयोग भस्मरूपसे नहीं किया जा सकता। राख और भस्मके वजनमें एवं धात्वीय परमाणुओंमें भी अंतर रहता है।

धातु उपधातु रत्न, उपरत्न आदि की भस्म बनानेके पहिले, शोधन प्रकरणमें लिखे अनुसार उनको शुद्ध कर लेवें। जितना शोधन अच्छा होगा, उतनी ही भस्म अधिक सौम्य होती है। धातु उपधातुओंकीभस्म बनानेके लिये अनेक प्रकारकी औषधियोंकी भावना दी जाती हैं, जिससे भावना-द्रव्योंके रसके क्षारके अनुरूप उनके गुणोंमें वृद्धि हो जाती है।

सुवर्ण, रौप्य, लोह, वंग जसद, शीशा, मंडूर, मुक्ता, शुक्ति, प्रवाल, अभ्रक और अन्य रत्नोपरत्न स्वभावसे सौम्य हैं, तथा ताम्र, मल्लिया, हरताल आदि उग्र हैं। परन्तु भावना रूप संस्कारसे गुणोंमें कुछ परिवर्तन हो सकता है। मूल स्वभाव पूर्णरूपसे नहीं बदलता। अत भस्म तयार करनेके पहिले किन किन औषधियोंकी भावना अनुकूल है, इस बातको सम्यक प्रकारसे जान लेना चाहिये। जैसे रसायन गुणके लिये अभ्रक भस्मको विरेचन और लेखन औषधियोंके पुट न्यून परिमाणमें और बृंहण औषधियोंके पुट विशेष परिमाणमें देना चाहिये। किन्तु किसी रोगको दूर करनेका उद्देश्य हो, तो उस रोगको शमन करनेवाली औषधियोंकी ही भावना ज्यादा देनी चाहिये। उष्ण, मारक, वात-

श्लेष्मघ्न, कोष्ठविकारघ्न आदि गुणोंके लिये अभ्रक भस्मको अर्क दुग्ध या अर्कपत्रके रसकी भावना देना लाभदायक है; ऐसे गुणोंके लिये यदि शीतवीर्य, रक्तपित्तशामक और कफक्षयनाशक अडूसेके पानके स्वरसकी भावना दी जायगी, तो लाभ कम होगा। मधुमेहपर लोह भस्मका उपयोग करना हो तो, जामुन वृक्षकी छालके क्वाथसे ४-६ या अधिक पुट देवें। एवं कफनाशके लिये अभ्रकको कटेली आदि कफघ्न ओषधियोंके पुट देवें। इसी तरह अन्य रोगशामक ओषधियोंके लिये विचारपूर्वक योजना करें।

वनौषधि द्वारा तैयार की हुई वंगभस्म सौम्य होनेसे शुक्र स्थानको पुष्ट बनानेमें विशेष लाभ दायक है और हरताल-मारित वंगभस्म उग्र होनेसे दूषित रस-रक्त आदि धातुओंको शुद्ध करने, जन्तुओंका नाश करने, उपदंशके रोगीके बिगड़े हुए शुक्रको शुद्ध करनेके लिये और उपदंशजनित चर्मरोगमें विशेष हितकारक मानी गई है। अतः भावना विषयक विचार करके भस्मका उपयोग करना चाहिये। धातु-उपधातुकी भस्म निम्न पांच प्रकारसे तैयार होती है—

(१) पारद, गन्धक, अथवा सिंगरफके योगसे।

(२) वनौषधियोंके स्वरसकी भावना द्वारा।

(३) सोमल, हरताल, मैनसिल आदि उग्र द्रव्योंके योगसे।

(४) गन्धक, सज्जीखार, शोरा या अन्य क्षारसे।

(५) धातुओंके अन्य विरोधी धातुसे मारण द्वारा।

इनमें पहिले दो प्रकारके श्रेष्ठ और निर्दोष हैं। तीसरे प्रकारकी विधिसे भस्म उग्र बनती है, तथा चौथी और पांचवी विधिसे बनाई हुई भस्म न्यून गुणयुक्त होती है। रसरत्न समुच्चय और आयुर्वेद प्रकाशमें लिखा है कि:—

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः।
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम्॥

सुवर्ण आदि धातुओंका पारद योगसे मारण श्रेष्ठ; वनौषधियोंसे मारण मध्यम गुणयुक्त, गन्धक और अन्य क्षार आदिसे मारण कनिष्ठ; तथा विरोधी धातुओंसे मारण करना हानिकारक है। अन्य आचार्योंने भी लिखा है:—

लोहं सूतयुतं दोषान्स्त्यजेत्सूतस्तु लोहयुक्।
अतः स्वर्णादिलोहानि विनासूतं न मारयेत्॥

सुवर्णादि धातु पारद संयोगसे दोषोंको त्याग देती है और पारद भी सुवर्णादिके योग से दोषमुक्त होता है। अतः विना पारद, धातुका मारण न करे।

जबतक भस्म निरुत्थ न बन जाय, तबतक उपयोगमें नहीं लेनी चाहिये, इस शास्त्राज्ञाका वर्त्तमान समयमें पूर्णरूपसे पालन नहीं होता। यूनानी हकीम तो कच्चे वंग और शीशेको मिश्रीके साथ खरल करकेही उपयोगमें लाते हैं। उनके सिद्धांतानुसार कच्ची धातुके उप-

हानि नही पहुचाती । अपनी शक्ति अनुसार लाभ ही पहुचाती हैं । फिर भी अधिक पुट दिये जायें, तो विशेष लाभदायक बनती हैं ।

अभ्रक, लोह, मण्डूर, बग और माक्षिक भस्में जब तक कच्ची हो, तबतक उनको अग्नि तेज देनी चाहिये । भस्म पक्व हो जाने पर विशेष पुट देना हो, तब अग्नि मन्द देनी चाहिये । यदि अतके पुटोमें अग्नि तेज होगी तो, भस्म कठोर हो जायगी । मृदु नही बनेगी इसके विपरीत नाग, रौप्य और सुवर्ण जबतक कच्चे हो, तबतक अग्नि कम देनीचाहिये अधिक अग्नि देनेपर वे फिरसे जीवित हो जाते है, इनकी भस्म जैसे-जैसे बनती जाय वैसे-वैसे अग्नि बढाते जायें । भस्मोंके वर्णका भी ध्यान रखना आवश्यक हैं । उत्तम सुन्दर वर्ण पैदा होना चाहिये । भस्मोके वर्ण योग रत्नाकरमें लिखे हैं ।

भस्म बनानेके लिये धातु, उपधातु आदि औषधियोकी टिकिया अथवा गोलेका सपुट मजबूत करना चाहिये । जिससे अग्निकी उष्णता, जो सपुटके भीतर प्रवेश करती हैं वह शीघ्र नही निकल सकती । इस हेतुसे भस्म थोडे ही पुटमें विशेष मुलायम हो जाती है ।

भस्मका सपुट विशेषत हाडियोमें करते हैं । यदि भस्मकी टिकियाओंको बडे गोल तवेपर रखकर सपुट किया जाय, तो गजपुटमें अग्नि विशेष लगती हैं । गजपुट आदिमें अग्नि देनेके बाद जब तक सपुट स्वाग शीतल न हो, तब तक खड्डेमेंसे न निकालें । अन्यथा भस्मकी गरम टिकियाओंको बाहरकी शीतल वायु लगने पर भस्म दूषित (कठोर) हो जाती हैं ।

रत्नोंकी भस्म बनानेके बदले पिष्टी बनाई जाय, तो विशेष लाभ करती है । परन्तु किसी किसी समय पिष्टी अनुकूल नही रहती, तब भस्म दी जाती है । अत भस्म तथा पिष्टी दोनोंके ही बनानेकी विधि दी गई है । ४-५ प्रकारके यूनानी पत्थरो की भस्म और पिष्टी विशेष उपयोगी होनेसे उनकी विधि भी साथ साथ दी गई है ।

सुवर्ण, रौप्य, आदि धातुएँ अन्य धातुके मिश्रणसे रहित शुद्ध ही लें । दूषित धातुकी भस्मसे बल्वीयका नाश और अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती हैं । इन धातुओ का परिचय योगरत्नाकरमें निम्नवचनोंसे दर्शाया है —

स्वर्ण चम्पकवर्णाभ कृष्णत्व तारताम्रयो ।
कास्य धूसरवर्ण स्यान्नाग पारावतप्रभ ॥१॥
वङ्गशुभ्रत्वमायाति तीक्ष्णजम्बूफलोपमम् ।
अभ्रक चेष्टिकाभ स्याद्धातूना वर्णनिर्णय ॥२॥

औषधि कार्यमें मडूर १०० वर्षसे ज्यादा पुराना ही लेना चाहिये । नये मडूरकी भस्मके सेवनसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं । कासीस भस्म बनानेके लिये विलायती कासीस लिया जाय, तो लाभ अधिक होता है ।

भस्मकी टिकिया सुखानेके लिये कलईकी हुई थाली, एनेमल (लोहे पर सफेदी लगी है) की थाली, चीनी मिट्टीके पात्र अथवा पत्थर के पात्रोंका उपयोग करना चाहिये ।

पत्थर अथवा धातुपात्र होनेसे टिकिया जल्दी सूख जाती है। यदि तांबा या पीतल का पात्र लेना हो, तो कलई किया हुआ ही लेना चाहिये, बिना कलईके पात्रमें टिकियां सुखानेसे पात्रमें रहा हुआ नीलाथोथा टिकियोंको लगकर भस्मको दूषित बना देता है।

टिकियां बांधनेके पश्चात्, खरल, बत्ताको और टिकियां जिस थालीमें सुखाईहो उस थालीको भी भावना देनेसे स्वरससे धोकर रसको सुखा लेवें, या दूसरी भावना देनेके समय उस रसको मिला लें, जिससे भस्म कम न हो।

जबतक भस्म मुलायम न बने, कच्ची धातुका अंश प्रतीत हो, तबतक लोहेके खरलका उपयोग करें फत्थरकी खरलमें कच्ची धातुओंको खरल करनेसे खरल और भस्म दोनों खराब होते है। पत्थर घिसकर भस्ममें कुछ अंशमें मिल जाता है। एवं नींबूका रस,लोह-विरोधी अन्य स्वरस अथवा नौसादर आदि क्षारयुक्त औषध लोह खरल में घोटनेसे लोहेका जंग बनता है, जो औषधिको दूषित बनाता है। इसलिये विचारपूर्वक खरलका उपयोग करना चाहिये।

हीरा, माणिक्य, मोती, पन्ना, नीलम आदि रत्नोंकी पिष्टी चीनी मिट्टीके खरल (Mortar with Pestle) या सिमाक पत्थरके खरलमें घोटनी चाहिये। भस्म और रस आदि औषधियों के लिये टोली, तामडा, लोहिया आदि पत्थरोंके खरल आते हैं, वे सब रत्नोंके घोटनेसे खराब हो जाते है।

आयुर्वेदप्रकाशकारने रस पद्धतिके वचनोंका प्रमाण देकर लिखा है कि, "रौप्य भस्म, नाग भस्म और उपधातुओंकी भस्मोंमेंसे किसी एक अकेलीका उपयोग करना विशेष हितकर नहीं है। रससिंदूर या अभ्रक आदि अन्य भस्मके साथ मिलाकर सेवन करना चाहिये।"

भस्मोंके भीतर मूलधातुके साथ विविध वनौषधियोंके क्षारका मिश्रण होता है। एवं शहद, दूध या क्वाथ आदि विविध, रोगनाशक अनुपान मिलाये जाते हैं। इन क्षार और अनुपान सह भस्म आमाशयमेंसे ही सूक्ष्म रसायनियों द्वारा शोषित होकर रक्तमे प्रवेश कर जाती है। फिर क्षार और अनुपानके गुणधर्म अनुरूप तत्काल प्रभाव दर्शाती है। इस हेतुसे शास्त्रमें विविध अनुपानोंकी योजना की है। तथा भस्म और रसायनोंकी योगवाही कहा है।

महाराष्ट्रमे आयुर्वेदसेवासंघने आयुर्वेदीय औषधि संशोधन कार्य प्रारम्भ किया है। उसने भस्मेंका विश्लेषण किया है। उसका विवरण निम्नानुसार है।

सुधा (केल्शियम) दर्शक कोष्ठकः—

भस्म	सुधाप्रतिशत	भस्म	सुधाप्रतिशत
कांतलोह	१.७८	मधुमंडूर	२·३२
तीक्ष्णलोह	३·७२	मंडूर	८·३१
"	८·३१	मंडूर	१६·१५
"	१·७८	शृंग	१२·६८
नाग	३·६८	मुण्डलोह	१·६

ताम्रमंडूर	१ ६८	स्वयमग्निलोह	३ ८०
लौहमंडूर	२ १६	सुवर्ण माक्षिक	१ ८४

अभ्रक भस्म विश्लेषण

कुल सिलिकेट्स अघुल		अल्युमिनियम आक्साइड	आयर्न आक्साइड	कैल्शियम आक्साइड	मैग्नेशियम आक्साइड	वाटर सॉल्युबल
कच्चा	५० ७	१२ ६	१८ ८	४ ३४	९ ८५	
१००	२७ ५	११ १	३८ ०	३·८८	१ ८६	१६·२
५००	२६ ६	३१ ८	१२ १	७ १५	० ५७	
१०००	३१ ८२	१३ ५	३१ ६	१ ३८५	५ ६	
"	२४ ८	८१ ७	५·०	९ ६	१ ३	१८ ०

मुक्ताप्रवालादि सुधा विश्लेषण

भस्म	सिलिकन	कैल्शियम ऑक्साइड	कैल्शियम कार्बोनेट	मैग्नेशियम ऑक्साइड	अल्युमिनियम ऑक्साइड
मुक्ता			९५ ५		० ९२
प्रवाल	२ १०	३ ८६	९१ १	३ ०	
शुक्ति	० ८५		९५ २	■ ८९	
शंख	० ७५	१ ९६	९६ ७	१ २१	
वराटिका		००९७	९९ ५	स्वल्प	

भस्म तैयार करनेमें जो भावना द्रव्य लिया जाता है, वह अनिश्चित होनेपर, अग्निप्रमाण अनिर्णीत होने पर और मूल द्रव्योंके भेदसे गुण आदि के परिमाणमें न्यूनाधिकता हो जाती है। अतः मूल द्रव्य, भावना, द्रव्य, अग्नि आदिके विशेष विधानकी आवश्यकता उत्पन्न हुई है। ताकि औषधि गु० निश्चित दर्जा सके।

भस्मोंकी कसौटीके लिये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, धूम, चन्द्रिका, पुनर्भव, लघुत्व, स्थिरत्व, सूक्ष्मत्व और विद्रवता ये १२ प्रकार हैं। इन सब परीक्षाके अतिरिक्त आधुनिक परीक्षण पद्धति है। आयुर्वेदके महारथियोंको चाहिये कि, जैसा इन सबका निर्णय हो वैसा विधि विधान तैयार करें।

(१) सुवर्ण भस्म।

प्रथम विधि—चन्द्रोदय बनानेके समय शीशेके तल भागमें गन्धक मिली हुई सुवर्णकी काली भस्म रह जाती है। उसमें जल मिला कर चीनीके बरतनमें दो-तीन घण्टे रख देवें। फिर सम्हालपूर्वक जलको निकाल डालें। पुनः जल मिलावें और दो तीन घण्टे बाद फेंक देवें। इस तरह ३-४ समय धोनेसे पानी साफ निकलेगा और सुवर्णकी भस्म मात्र शेष रहेगी। उसे तुलसी, वनतुलसी (नगदबावची) अथवा कुकरौंधाके २० तोले रसमें खरल करें। जब भस्म गाढी होवे, तब एक कांचकी प्लेट (तश्तरी) में फैलाकर

धूपमें सुखावें । फिर सुवर्णकी फैली हुई पपड़ीको खोल संपुट कर १६ इंचके खड्डेमें अग्नि देवें । पुनः तुलसी अथवा कुकुरौधाके रसमें घोट संपुट करके फूंक दें । इस तरह ८ पुट देनेसे मुलायम, हलके वजनवाली और हलके लाल रंगकी भस्म तैयार हो जाती है।।

मात्रा—$\frac{1}{4}$ से १ रत्ती तक दिनमें दो समय शहद, पीपल और शहद, मक्खन-मिश्री, गिलोय सत्त्व और शहद, च्यवनप्राशावलेह अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें । शास्त्रकारोंने भिन्न-भिन्न रोगोंके लिये नीचे लिखे अनुपानोंकी योजना की है:—

१—रसायनगुणके लिये—(अ) कमलगट्टा (जीभी निकाला हुआ), धानकी खील और प्रियंगुके चूर्ण और शहदके साथ सुवर्ण भस्म देवें, ऊपर गोदुग्ध पिलावें ।
(आ) काले तिलोंके चूर्णके साथ देवें । ऊपरसे नीलकमलके क्वाथसें पकाया हुआ गोदुग्ध पिलावें ।
(इ) आँवलेके चूर्ण और शहदके साथ देवें ।
(ई) शतावरी घृत ६ माशे और शहद ३ माशेके साथ ।
(उ) भाँगरेके रसके साथ दें ।

२—उन्माद पर—ब्राह्मीका स्वरस ३ माशे, वच ३ रत्ती, कूठ और शंखपुष्पी ३-३ माशे और मिश्री ६ माशेके साथ देवें या धमासेके अर्कके साथ देवे ।

३—बुद्धि-वृद्धिके लिये—वचके चूर्ण ३ रत्तीके साथ ।

४—कांति-वृद्धिके लिये—पद्मकेसरके चूर्णके साथ ।

५—तारुण्य प्राप्तिके लिये—शंखपुष्पीके चूर्णके साथ ।

६—वाजीकरण के लिये—विदारीकन्दके चूर्णके साथ ।

७—राजयक्ष्मा पर—मक्खन, मिश्री और शहदसे दें । या सुवर्ण भस्म आधा रत्ती, शुद्ध सोनागेरू ३ रत्ती, मोतीपिष्टी १ रत्ती मिलाकर शहदके साथ देनेसे क्षयमें वमन, अतिसार, कृमि, कास, रक्तपित्त, अरुचि, उबाक आदि लक्षण दूर होते है।

८—क्षयमें अतिसार पर—दाड़िमावलेहके साथ ।

९—दाह शमनके लिये—मिश्रीके साथ ।

१०—नेत्रोंकी निर्बलतामें—पुनर्नवाके चूर्णके साथ ।

११—जीर्ण नेत्रदाहमें—मुक्तापिष्टी और गिलोय-सत्त्वके साथ ।

१२—श्वासमें—त्रिकट और घृतके साथ ।

१३—भयंकर प्रदरमें—चौलाईकी जड़के अर्कके साथ ।

१४—खाँसीमें—हल्दी, पीपलका चूर्ण और शहदके साथ ।

१५—जीर्ण कासपर—द्राक्षासवके साथ ।

१६—सुजाक और मूत्रकृच्छ्रमें-छोटी इलायची, कपूर और मिश्रीके चूर्णके साथ ।

१७—रजोधर्म शुद्ध करनेके लिये—मकोयके अर्कके साथ ।

उपयोग—यह भस्म क्षय, धातुक्षीणता, जीर्णज्वर, त्रिदोष, वातवाहिनियोंकी निर्बलता, पुराना श्वास, कास, दाह, नेत्रजलन, पित्तरोग, पित्तज उन्माद, भूतबाधा,

विषविकार, पित्तप्रधान प्रमेह, और नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करती है। इसमें, स्निग्ध, मधुर, कषाय, किञ्चित् तिक्त शीतवीर्य और रसायन गुण हैं। यह प्रज्ञा, वीर्य, बल, स्मृति और कांतिको बढ़ानेवाली, वृष्य, पाककालमें मधुर, बृंहण, हृद्य तथा वाणीको स्थिर व शुद्ध करने वाली है। सर्व धातुओंमें सुवर्ण अधिकतर स्थिर गुणयुक्त निर्मल और प्रसन्नता उत्पादक है।

सुवर्ण भस्मके सेवनसे हृदयको शक्ति मिलती है। यह सुवर्णका हृद्य गुण कुचिलाके समान सत्वर वातवाहिनियोंको उत्तेजना देनेवाला, कर्पूरके समान रक्तवाहिनियोंको विकसित करनेवाला, या पणबीज, अर्जुन आदि औषधियोंके समान रक्तवाहिनियोंको संकुचित करने वाला भी नहीं है। किन्तु इसका कार्य रक्तको निर्विष बना रक्तका प्रसादनकर हृदयको पुष्ट बनाना तथा रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियोंको शक्ति देना। सुवर्णका यह हृद्य गुण अन्य औषधियोंसे विशेष है। इस गुणके लिये अदरखके रसके साथ सेवन करना चाहिये।

विष, उपविष, शरीरमें उत्पन्न होनेवाला सेन्द्रिय विष, और इसको उत्पन्न करनेवाले कीटाणु, इन सबसे शरीरपर होनेवाले दुष्परिणामको दूर करनेका अद्भुत गुण सुवर्णमें है। जब विषकी तीव्रावस्था शमन हो जाती है, और सूक्ष्मावस्था शेष रह जाती है, तब सुवर्णका उपयोग करनेसे शरीर पूर्णरूपसे निर्विष हो जाता है। ऐसे प्रसंगपर स्वल्प मात्रामें सुवर्ण बार-बार दिया जाता है। ऐसे ही कृत्रिम विषका तीव्र वेग दूर होनेपर शेष विकृतिकी शांतिके लिये सुवर्णका उपयोग करना चाहिये। कारण, सुवर्ण भस्ममें जन्तुघ्न और प्रतिविषोत्पादक (विषघ्न) गुण रहते हैं। इस गुणकी प्राप्तिके लिये सुवर्ण भस्मका उपयोग कम मात्रामें दिनमें ३-४ बार करना चाहिये।

जन्तुघ्न और प्रतिविषोत्पादक गुणके कारण, सुवर्ण क्षयमें बहुत लाभ पहुंचाता है। इस हेतुसे आयुर्वेदने सुवर्णके प्रयोगका क्षय रोगमें स्थान-स्थानपर उपयोग किया है। सुवर्ण-मिश्रित औषधिका प्रयोग क्षयकी सब अवस्थाओंमें होता है। आयुर्वेदने अवस्था दोष, दूष्य, स्थान आदिका विचार करके सुवर्णके अनेक प्रयोग निर्माण किये हैं। प्रथमा और द्वितीया अवस्थामें उनका अच्छा उपयोग होता है। तीसरी अवस्था मात्रमें जब बड़े-बड़े उरःक्षत, बल-मांसका क्षय और भयंकर सन्निपात आदि लक्षण हो जाते हैं, तब सुवर्ण या अन्य किसीभी औषधिसे लाभ नहीं हो सकता। रोग निरोधक शक्तिका अधिक क्षय न हुआ हो, तभी तक सुवर्णका अच्छा उपयोग होता है।

क्षय रोगमें जब ज्वरका वेग तीव्र हो, उस समय सुवर्ण नहीं देना चाहिये। एवं सुवर्णकी मात्रा रोगीकी शक्तिसे ज्यादा होनेसे क्षय के कीटाणुओंका अधिक नाश होता है। फिर उन मृत कीटाणुओंसे सेन्द्रिय विष विशेषांशमें उत्पन्न होकर तुरन्त ज्वर बढ़ने लगता और वह मर्यादासे बाहर हो जाता है। अतः सुवर्णकी मात्रा रोगावस्था और प्रकृति-भेदका विचार करके देनी चाहिये। अनेक समय तो सुवर्ण भस्मका प्रयोग इतनी कम मात्रामें किया जाता है कि, $\frac{1}{50}$ रत्ती तक देनी पड़ती है।

बार-बार शुष्क कास, सारे शरीरमें व्यथा, सायंकालमें नित्य प्रति सम्हाल रखते हुए भी ज्वर आ जाना, और उतनेमें ही भयंकर शक्तिपात होना, मन अस्वस्थ, उदासीन और क्रोधी बनना इत्यादि लक्षण होनेपर सुवर्ण भस्म, शृंग भस्म, प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्त्वको मिलाकर दूध-मिश्रीके साथ देते रहनेसे थोड़ेही दिनोंमे प्रकृति सुधरने लगती है। (शुष्क कासमें शृंग भस्मकी मात्रा कम दें।)

सहन होसके उतने अंशमें ताप, हाथ पैरमें जलन, स्वरभेद, स्कंध और पार्श्व भागका संकोच, दिनमे ३-४ बार पतले-पतले दस्त, अत्यन्त शुष्क कास, श्वास, कंठमें पीड़ा, कफके साथ रक्त गिरना इत्यादि लक्षण होनेपर सुवर्ण भस्मका उपयोग प्रवाल-पिष्टी, शृंगभस्म, और दाड़िमावलेह के साथ करना लाभदायक है।

उरःक्षतमें सुवर्णका उत्तम उपयोग होता है। ज्यादा रक्तस्राव होता हो, तो रक्त-पित्त चिकित्साके साथ साथ थोड़े परिमाणमे सुवर्ण भस्म देते रहने से ज्यादा अशक्ति नहीं आती; रक्तमें रहे हुए मधुरत्व, स्निग्धत्व, प्रसन्नत्व आदि गुणोंकी न्यूनताकी पूर्ति सुवर्ण द्वारा हो जानेसे शक्तिपात नही होता और रोग सत्वर काबूमे आ जाता है।

निर्जन्तुक क्षयकी सब अवस्थाओंमे शरीरके घटकोंके क्षयको रोकनेके लिये सुवर्णका योग लाभदायक है। रस, रक्त आदि धातुओंके अनुलोम क्षय (रसक्षय-Sprue) और प्रतिलोम क्षय, इन दोनोमें सुवर्ण भस्मका उपयोग जीवनीयगुणकी ओषधिके सगा करनेसे शीघ्र लाभ पहुंचता है।

उन्माद रोगमें पैत्तिक और श्लैष्मिक लक्षण अधिक होनेपर सुवर्ण भस्मका उपयो भलीभांति होता है। अर्थात् सर्वागमें दाह, असहिष्णुता, बालकका रोना या सामान्य आवाज भी सहन न होना; प्रकाश, उष्णता और उष्णपदार्थके स्पर्शसे दुःखका भान होना; हाथ-पैर पटकते रहना; अति व्याकुलता; मुख, नेत्र, कपोल, अंगुलियों आदि पर शोथ; जोर-जोर से चिल्लाना, दूसरोंको मारनेके लिये दौड़ना, नग्न रहना, बीभत्स चेष्टा करना इत्यादि पैत्तिक लक्षण हों; या मनकी विलक्षण चंचलता, बार-बार दिङ्मूढ़ हो जाना, जड़ता, अन्नपर अरुचि, स्त्री-सम्बन्धी बातोंपर प्रेम, एकान्तमें रहने की इच्छा जीवनसे उपरामता इत्यादि श्लैष्मिक लक्षण प्रतीत होते है तो. सुवर्ण भस्मको धमासाके, क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे लाभ होता है।

अनेक मासकी पुरानी खाँसी और श्वासमें जब पित्तकी प्रधानता, या वातपित्तकी प्रधानता हो; तब सुवर्ण भस्म द्राक्षारिष्ट या द्राक्षासवके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुंचता है।

राजयक्ष्मा रोगमें सेन्द्रिय विष—दोषदुष्टीका परिणाम लघु अन्त्र और बृहदन्त्र पर होनेसे फिर वे दुष्ट हो जाते हैं। बार-बार बुदबुदेवाले पतले दस्त होते रहते हैं। क्वचित् दस्तके साथ रक्त भी जाता है। कितनेही रोगियोंके सारे उदरमें दोष-दुष्टीका प्रकोप होजानेसे बड़े-बड़े दस्त लगते हैं; और भयंकर अशक्ति आजाती है। इस अवस्थामें सुवर्ण भस्म दाड़िमावलेहके साथ देनी चाहिये।

सुवर्णके योगसे रक्तप्रसादन कार्य अच्छा होता है। त्वचा मुलायम और तेजस्वी बनती है। त्वचागत पित्तविकार अच्छी तरहसे शमन हो जाता है। मुखमण्डलपर कान्ति बढ जाती है, क्षुद्र कुष्ठ या त्वचाके रोग नष्ट हो जाते हैं, एवं महाकुष्ठके उत्पादक कीटाणुओंका सुवर्णके सेवनसे विनाश होता है। इस प्रकार कुष्ठ रोगोंमें भी सुवर्णका उपयोग लाभदायक है।

पैत्तिक प्रमेह रोगमें सुवर्ण भस्मका उपयोग अच्छा होता है।

आमिक ज्वर आदि मुद्दती बुखारोंमें औषधिकी दो प्रकारकी योजना की जाती है। पहला कार्य रक्तमें रहे हुए ज्वरोत्पादक कीटाणुओंका नाश कर, सेंद्रिय विषका जलाकर रक्तको निर्विष करनेका है। दूसरा कार्य हृदय आदि इन्द्रियोंको भलीभांति कार्यक्षम बनानेका है। ये दोनों कार्य सुवर्ण भस्मके योगसे सहज हो जाते हैं।

सुवर्णमें उत्तम वृष्य गुण है। अतः इस भस्मके सेवनसे अण्डकोषकी ग्रंथियाँ बलवान बनती हैं, और नपुंसकता दूर होती है।

सुवर्णका उपयोग नेत्रके पुराने जिद्दी रोगोंमें बहुत अच्छा होता है। विशेषतः आँखोंके नीचे बाजरीके समान हो जाना, नेत्र लाल रहना, नेत्र, हृदय, हाथ पैर आदिमें दाह और व्याकुलता आदि पित्त प्रधान लक्षण अधिक होने पर सुवर्ण भस्मका सेवन मुक्तापिष्टी और गिलोय सत्वके साथ करना हितकर है।

सुवर्णका उपयोग वात, पित्त दोष और रस, रक्त, मांस, शुक्र, ये दूष्य, तथा हृदय, वातवाहिनियां, रक्तवाहिनियां, नेत्र, श्वसनेन्द्रिय, लघुअन्त्र, बृहदन्त्र, अण्डकोष और मनोदेश इत्यादि स्थानों पर अधिकांश में होता है। (औ० गु० ध० शा०)

गुरु भोजन और अति भोजन करनेवालोंकी अन्त्रमें विष संगृहीत होता है। वह अत्यधिक बढ जानेपर जब अत्यधिक भोजन किया जाता है, तब वह प्रकुपित होकर समग्र भोजनको विषरूप बना देता है। फिर वमन, विरेचन, हिक्का, उदर पीडा देहमें स्थान-स्थानपर शीतपित्तके ददोरे, अति ज्वर, घबराहट आदि उपस्थित होते हैं। ऐसे समयपर पहिले शोधन (वमन विरेचन) देकर सुवर्ण भस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती चौलाईकी जड १ तोलेके क्वाथके साथ दिनमें दो बार देनेसे शेष उपद्रव-वमन, हिक्का, निद्रानाश आदि दूर हो जाते हैं। भोजनमें मुनक्काका फाण्ट देनेसे सत्वर लाभ होता है।

सूचना —राजयक्ष्मा रोगमें सुवर्ण भस्मकी मात्रा $\frac{1}{32}$ से $\frac{1}{16}$ रत्ती तक देनी चाहिये। यदि इतनेमें भी ज्वर बढ जाय, तो मात्रा इससे भी कम करें। अधिक मात्रा देनेसे क्षयके कीटाणु अधिक परिमाणमें एक साथ मरकर ज्वरको बढा देते हैं। जब क्षय रोगमें तीव्र ज्वर (९९ डिग्रीसे अधिक) हो तब स्वर्णका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध सुवर्ण और शुद्ध पारद २-२ तोले मिलाकर नीबूके रसमें ६ घण्टे खरल करें। पश्चात् ४ तोले शुद्ध गंधक मिलाकर कज्जली करें। फिर नीबूके रस मर्दन कर टिकिया बाँध, सुखाकर सराव-सम्पुट करके २ सेर कण्डोंमें फूंक देवें। इस

तरह सुवर्णकी काली भस्म होजाय, तबतक (४-६ पुट) तक फूके। फिर पारद २ तोले और गन्धक ४ तोलेकी कज्जली मिलाकर कचनारकी छालके क्वाथमें पुट देवें। इस तरह कचनारकी छालके क्वाथके लगभग १०-१२ पुट देनेसे सुवर्णका अणु बिलकुल नहीं दीखेगा; काली भस्म हो जायगी। फिर पारद मिलाये बिना कचनार-क्वाथके ३-४ पुट देवें। पश्चात् घृत मिलाकर टिकिया बांध, संपुट करके ५ सेर आरन्यकंडोंमें फूंक देनेसे गहरे लालरंगकी हलके वजनवाली मुलायम भस्म बन जाती है। या कचनार क्वाथके बदले कुकरौंधेके स्वरसके ४-८ पुट देकर भस्मको मुलायम बना लेवें। अथवा कांटेवाली चौलाईके स्वरसके ७ पुट देकर लाल रंगकी भस्म बना लेवें।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—स्वर्णको शुद्ध करके १ तोला वर्क तैयार करें। पश्चात् सत्यानाशीके रसमे २४ घण्टे खरलकर टिकियां बांधकर धूपमें सुखा लेवे। बादमें सम्पुट कर ३० आरन्य कंडोंमे फूक देवें। स्वांग शीतल होने पर पुनः निकालकर सत्यानाशीके रसमें खरलकर टिकियां बांधकर फूंक देवे। इस विधिसे ४ से ६ पुट देनेसे काले रंगकी मुलायम स्वर्ण भस्म तैयार होजाती है। (पं० गंगादत्तजी पन्त, काशीपुर)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

भावना दृष्टिसे जिन ओषधियोंकी भावना दी जाय; उनके गुण शामिल होते हैं। इस भस्मको लाल बनानी हो; तो ४-६ पुट चौलाईके रसके देने चाहिये।

चौथी विधि—२ तोले सुवर्णके शुद्ध पतले पतरे लेवें। फिर हींग और हिंगुल २-२ तोले लेकर तिधारा थूहरके दूधमें खरलकर, इन पतरोंके ऊपर लेप कर (वर्कमें मिलाकर) के सुखा दे पश्चात् सरावसंपुट करके कुक्कुट पुटमें फूंक देवें। पुनः उपरोक्त विधिसे लेप करके फूंक दें। इस तरह १० कुक्कुट पुट देनेसे गेरू जैसे लाल रंगकी मुलायम भस्म तैयार होती है। (र० चं०)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

पाँचवी विधि—१ तोले स्वर्णके वर्कको ग्रीष्मऋतुमें ३ दिन तक तुलसीके स्वरसमे अच्छी तरह खरल करें। फिर सूख जानेपर नागरबेलके २५ बड़े-बड़े पानोंके स्वरसमे खरलकर १ पतली टिकिया (पूरी सदृश) बना लेवें। इस टिकियाके सूखने पर २५ नागरबेलके पानोके कल्कमे रखे संपुट कर ५ सेर गोवरीकी अग्निमें फूक देवें। फिर निकाल नागरबेलके २५ पानोके रसमें खरलकर टिकिया बना लेवें। सूखनेपर संपुट कर ५ सेर गोवरीकी अग्नि देवे। इस तरह १० पुट देनेसे उत्तम मुलायम फीके लाल रंगकी भस्म बन जाती है। इसका वजन लगभग १। तोला होता है।

(पं० रघुवरदयालजी, देहली)

मात्रा और उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार। यह भस्म उपयोग करनेपर प्रथम विधिकी अपेक्षा विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है।

(२) रौप्य भस्म

प्रथम विधि—शुद्ध चांदीके कटकवेधी पतरे और शुद्ध पारद, दोनों १०-१० तोले लेकर नीबूके रसमें खरल करें। पारा मिल जानेपर १० तोले शुद्ध गंधक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् १० तोले शुद्ध हरताल मिला नीबूके रसमें खरलकर गोला बनावें। गोला सूखनेपर १० तोले गन्धकको नीबूके रसमें खरल कर गोलेके ऊपर लेप करें। लेप सूखने पर कपरौटी की हुई छोटी हांडीमें मजबूत बन्द कर ५ सेर कण्डोंकी आंच दें। प्रारम्भमें अधिक कण्डोंकी अग्नि नहीं देनी चाहिये। हांडी स्वांग शीतल होने पर चांदीको निकाल पुनः १ तोला हरताल मिला, नीबूके रसमें खरलकर गोला बनावें। फिर गोलेको सुखा, हांडीमें बन्दकर ५ सेर कंडोंकी आंच दें। इस तरह दसवां हिस्सा हरताल मिला-मिलाकर २०-३० पुट देवें। हल्का गुलाबी रंग आने पर अन्तमें घीकुंवारके रसमें खरल करके एक बड़ा गजपुट दें।

अनेक ग्रन्थकारोंने मात्र ३ पुटमें ही भस्म होजानेका लिखा है, परन्तु ३ पुटमें निरुत्थ भस्म नहिं बन सकती।

मात्रा—½ से १ रत्ती तक दिनमें २ बार शहद, मलाई-मिश्री, गोदुग्ध, सितोपलादि चूर्ण, नागकेशर और मक्खन, आंवलेका मुरब्बा, त्रिफला अथवा अन्य रोगानुसार अनुकरनके साथ दें। रौप्य भस्मके साथमें अभ्रक, लोह या अन्य अनुकूल भस्मको मिलाकर उपयोग करना विशेष लाभदायक है।

अनुपान—१, प्रमेहपर—रौप्य भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, अदरखका रस २ मासे और शहद ४ मासेके साथ।

२—पित्त-प्रधान प्रमेहपर—हरताल मारित रजत भस्म १ रत्ती दालचीनी, इलायची और तेजपातके चूर्णके साथ।

३—क्षयमें ज्वर—हरतालमारित रौप्य भस्म त्रिकटु और शहदके साथ।

४—तिमिरमें—रौप्य भस्म और लोह भस्म १-१ रत्ती, पीपल २ रत्ती और ६ मासे शहद मिलाकर देवें।

५—वातशमनार्थ—अभ्रक भस्म, इलायची, वंशलोचन, गिलोयसत्व और शहदके साथ रौप्य भस्म देवें।

६—पित्तविकार पर—आंवलेके मुरब्बेके साथ।

७—वातपित्त विकारपर—त्रिफलाके चूर्णके साथ।

८—उन्माद, शिरोरोग, पित्तप्रमेह, ज्वर और दाहपर—इलायची, घृत और मिश्रीके साथ।

९—२० प्रमेहोंपर—१ तोला ईसबगोलकी भूसीको आधसेर गोदुग्धमें खीर बनाकर उसमें एक छटांक मिश्री मिलावें। फिर इस खीरके साथ देवें। या शहद, मलाई या मक्खनके साथ देकर ऊपरसे खीर खिलावें। २१ दिनमें प्रमेह दूर होता है। क्षुधा लगने पर भोजन करें, चाहे प्रातःकाल भोजन छोड दे, मात्र शामको ही भोजन करें। अथवा रौप्य भस्म और शिलाजीतके साथ शहद मिलाकर देवें और आंवलेका स्वरस या हिम वें

उपयोग—यह भस्म नेत्ररोग, क्षय, गुदाके रोग, पित्त-प्रधान कास, जीर्ण प्रमेह, पाण्डु, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, धातुक्षीणता, अपस्मार, हिस्टीरिया और वातपित्तप्रधान विकारोंको दूर करती है। मूत्रपिण्डोंका शोधनकर उन्हें शुद्ध और बलवान बनाती है। उपदंश अथवा सुजाक हो जानेके पश्चात् अंडकोश और वातवाहिनी नाड़ियां अथवा अन्य स्रोतस संकुचित होकर नपुसकता आई हो, तो रौप्य भस्म उत्तम औषध है। यह भस्म वात को शमन करती है। मांसपेशियां और रक्तवाहिनियों को बृंहण करती है; एवं आयु, वीर्य, वद्धि और कांतिको बढ़ाती है।

रौप्य भस्म मधुर विपाकवाली, कषाय और अम्ल रसात्मक, शीतल, सारक; लेखन, रुचिप्रद और स्निग्ध है। बृंहण गुण युक्त होनेसे वातप्रकोपका शमन करती है। यह शमन कार्य कलायखंज और पक्षाघातकी जीर्णावस्थामे अत्यन्त उत्तम प्रकारका देखनेमे आता है। रक्तवाहिनी-गत वातप्रकोप होनेपर शूल, रक्तवाहिनियोंका संकोच, रक्तवाहिनी मोटी-सी होना तथा अन्तरायाम, बहिरायाम, खल्ली, कौब्ज आदि वातरोग उत्पन्न होते है। इस वातप्रकोपका शमन रौप्य भस्मके सेवनसे उत्तम होता है। केवल वातप्रकोप हो, तो रौप्य भस्मसे लाभ होता है। किन्तु वातप्रकोपके साथ यदि आमानुबन्ध हो, तो रौप्य भस्मकी अपेक्षा योगराज गूगलका उपयोग विशेष हितंकर है। यह अन्तर आयुर्वेदकी दृष्टि से अति महत्त्वका है।

जैसे ताम्रका प्रभाव यकृत्, प्लीहा आदि इन्द्रियोमे रहे हुए दोष और धातुपर स्पष्ट दीखता है; वैसे ही रौप्य भस्म मूत्रपिण्ड, मस्तिष्क, वातवाहिनियों और वातदोषपर शामक प्रभाव दर्शाती है।

अति श्रम, अति वाचन, अति जागरण, मनन, शोक, भय, आदिका अतियोग होनेसे वातवृद्धि होती है तथा मस्तिष्ककी शक्ति भी क्षीण होती है। इन हेतुओसे थकावट, बेहोशी समान भासना, चक्कर आना इत्यादि लक्षण होते है, तो रौप्य भस्मका अच्छा उपयोग होता है। इन कारणों से उत्पन्न शिरदर्द और मस्तिष्कमें शूल चलनेपर भी रौप्य भस्म लाभदायक है। वेदना कुछ काल तक तीव्र और कुछ काल तक मर्यादामें हो उसपर रौप्य का उपयोग होता है। परन्तु यदि उक्त स्थितिमें पित्ताधिक्य हो, पित्त प्रकुपित हुआ हो, तो मुक्तापिष्टीका उपयोग करना चाहिये। अर्थात् वाताधिक्य उपद्रवोंमें रौप्य और पित्ताधिक्यमें मुक्ता देना चाहिये। एवं ये लक्षण अस्राभिनोदन (रक्तके दबाव) की वृद्धि होनेसे हुए हों, तो शिलाजीतका ही उपयोग विशेष हितकर है। शिलाजीतके साथ आरग्वधादि क्वाथके समान सौम्य विरेचन औषधि भी देनी चाहिये।

रौप्यके उपयोगसे वातवाहिनियोंका क्षोभ शमन होता है; जिससे अपस्मार, उन्माद और विशेषतः आक्षेपककी तीव्रावस्थामें रौप्य लाभदायक है। स्त्रियोंके भूतोन्मादमे यदि वातप्रधान लक्षण ज्यादा हों, तो रौप्य भस्म उसे भी शमन करती है।

वातप्रधान और वातपित्तप्रधान नेत्ररोगमें रौप्य भस्म का सेवन गुणदायक है। शोक, क्रोध, श्रम या सूर्यके तापका अतियोग होनेसे दृष्टिकी विकृति हुई हो तो ऐसे

रोगियोंके लिये मात्र रौप्य भस्म ही एक औषध है। नेत्ररोगमें हरतालमारित रौप्य भस्मकी अपेक्षा सुवर्णमाक्षिक और गन्धकके मिश्रणसे या वनौषधिसे बनी हुई रौप्य भस्म विशेष लाभदायक है।

क्षयज विशेषत शुक्रक्षयज व्याधिमें वंगभस्म और रौप्यभस्म, ये दो औषधि उपयोगी हैं। यदि शुक्रक्षयमें वातप्रकोप होकर कमर, पिण्डी आदि स्थानोंमें खिंचाव या शूल अथवा सामान्य वेदना, मूत्रमार्गमें और शुक्रमार्गमें अति दाह और व्यथा आदि लक्षण हों, तो रौप्य भस्म का सेवन कराया जाता है। परन्तु शिथिलता, शक्तिपात आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, तो वंगभस्म उपकारक होती है।

कीटाणुजन्य क्षयमें सुवर्ण भस्म सर्वोत्तम औषधि है। तथापि सर्वांगमें दाह, विशेषत नेत्र और मूत्रपिण्डमें जलन आदि लक्षण हों, तो प्रथम रौप्य भस्म दाहशमनार्थ दी जाती है। पश्चात् सुवर्ण भस्म देना हितकर है, अथवा दोनों का मिश्रण दिया जाता है।

पित्तज, वातज और वातपित्तज अर्श रोगमें रौप्य भस्मका उपयोग किया जाता है। रक्त गिरने पर भी अर्शमें रौप्यसे अच्छा लाभ पहुंचता है। यदि अर्शके मस्से बहुत बड़े हो गये हों, तो पहिले उनको निकलवा देना चाहिये। फिर रौप्य भस्म देवे। रक्तार्शमें यदि शूल, वेदना या तीव्र पीडा होती हो, तो रौप्य भस्मके सेवनसे इनका शमन हो जाता है। यदि दाह बहुत ज्यादा हो और त्वचा भी श्याम, निस्तेज और कठोर हो गई हो, तो गन्धक रसायन सेवन कराना चाहिये।

पित्तज उदर रोगमें ज्वर, बार-बार मूर्च्छा, सर्वांगमें दाह, मुहमें जलन का भास, चक्कर, अतिसार, त्वचा और उदरकी शिराएं हरी, लाल, पीली हो जाना, ज्यादा प्रस्वेद आना, साथमें त्वचामें दाह और कण्ठमें सेधुआ निकलनेका भास होना, उदरमें जल्दी जल भर जाना, या जलोदर हो जाना इत्यादि लक्षणोंके साथ वातवाहिनियों और रक्तवाहिनियोंमें एक प्रकार की विलक्षण व्यथा बनी रहती है, तो रौप्य भस्मका उपयोग करना चाहिये।

अम्लपित्त व्याधिमें रौप्य भस्मका उपयोग अच्छा होता है। वातज अम्लपित्तमें मुख्यत उदर या आमाशयकी वातवाहिनियोंमें क्षोभ उत्पन्न हुआ हो, तो रौप्य भस्मका सेवन कराना चाहिये। इस अम्लपित्त व्याधिमें थोड़े दिन तक बिल्कुल प्रकृति स्वस्थ रहती है, और थोड़े दिनमें पुन विकार बलपूर्वक उत्पन्न होता है। ऐसे अम्लपित्त रोगमें रौप्य भस्मका सेवन लाभदायक है। इसके अतिरिक्त आमाशयकी वृद्धि होकर अम्लपित्त रोग हुआ हो और उसमें वेदना तीव्र रहती हो, तो वह भी रौप्य भस्मके सेवनसे शमन होती है। परन्तु शिथिलता और इन्द्रियोंकी अशक्ति अधिक होती हो, तो वंगभस्मका सेवन कराना चाहिये।

वातप्रधान शुष्ककासमें रौप्य भस्म लाभ पहुंचाती है। जब शुष्ककासमें पीडा, क्षत, कण्ठके भीतरके भागमें भी रूक्ष त्वचा, कठ और उपजिह्वा (घण्टिका) में भी रूक्षता तथा कंठ मार्गमें छोटी-छोटी फुंसियां या शोथ-सा हो गया हो, तो रौप्य भस्म

का सेवन हितकर है।

पाण्डु रोगमें रक्तके भीतर रक्तकणोंकी न्यूनता हो जाती है। रक्त कणोंके न्यून होनेमें मनपर ,आघात या मानसिक चिन्ता आदि कारण हो, अथवा वातप्रधान या वातपित्तप्रधान लक्षण प्रतीत होते हों, तो ऐसे पाण्डुरोगियोंको रौप्य भस्मका सेवन अति हितकर है।

मानसिक चिंता, शोक या अन्य वातप्रकोपक कारणोंसे अरुचि उत्पन्न हुई हो, तो रौप्य भस्मका सेवन गुणदायक है। वातप्रकोपके कारणसे जठराग्नि मन्द होनेपर वातके कार्यको सुव्यवस्थित करनेके लिये एवं जठराग्निकी मन्दता दूर करनेके लिये रौप्य भस्म उपयोगी है।

शरीरके घटक धीरे-धीरे गलते जाते हों ; दूषित होनेवाले अवयवोंमें दाह और शूल होता हो; उस स्थानकी त्वचा काली हो गई हो; क्वचित् ज्वर भी रहताहो; या विकार सुजाक, प्रमेह या मधुमेहके उपद्रव रूप हो या अन्य रोगोंके उपद्रव रूप हो और वातज या पित्तवातज दुष्टी हों, तो इस कोथ रोग (Gangrene) में रौप्य भस्मका सेवन हितकर है। छोटी इलायची, ऑवले, वंशलोचन, अमृतासत्व और शहदसे देवें अथवा चोपचिन्यादि चूर्णके साथ देवे।

यदि फिरंग (उपदंश) और पूयमेह (सुजाक) होजाने के पश्चात् अंडकोष और उसके समीपमें रही हुई वातवाहिनियां या अन्य स्त्रोतसे संकुचित होकर नपुंसकता आई हो, तो रौप्य कृभस्मके सेवनसे वातवाहिनिरोंका संकोच दूर होकर अंडकोषऔर उसके समीपमें रही हुई वातवाहिनियाँ या अन्य स्रोतसे संकुचित होकर नपुंसकता आई हो, तो रोप्य भस्मके सेवनसे वातवाहिनियोंका संकोच दूर होकर लंडको में रक्त आदि धातु आवश्यक परिणाममें पहुंच जाती है और नपुसकता दूर हो जाती है।

रौप्य भस्म वल्य गुणके लिये भी उपयोगमें आती है। जब स्त्रोतसोंका संकोच हो जानेसे रक्त आदि धातुओंका परिभ्रमण व्यवस्थित रूपसे न होता हो; इन्द्रियोंको और वाह्य अवयवोंको थोड़े-थोड़े श्रमसे थकावट आ जाती हो; शक्ति क्षीण हो जाती हो; तव निर्बलताको दूर करनेके लिये रौप्य भस्म उत्तम प्रकारसे कार्य करती है।

रौप्य भस्म मेध्य (बुद्धिवर्द्धक) है। बुद्धिका कार्य साधक नामक पित्तके योगसे सम्यक् होता है। इस पित्तके विकृत होनेसे बुद्धिके कार्य में अव्यवस्था होती साधक पित्तके कार्य को सुव्यवस्थित बनानेके लिये रौप्य भस्म उपयोगी है।

ऐसे समयपर रौप्य भस्मका उपयोग सूतिका ज्वरमें बहुत अंशम होता है। यदि ज्वर मर्यादा में हो; परन्तु सारे शरीर मे वेदना, भ्रम, प्रलाप आदि लक्षण ज्यादा परिणाममें हों, तो रौप्य भस्म देना हितकर है।

रौप्य भस्म वात और वातपित्त मिश्रित दोष; रस, मांस और अस्थियें दूष्य; तथा मूत्रपिण्ड, मस्तिष्क, वातवाहिनी नाड़ियाँ, नेत्र, मांसपेशियाँ, कफस्थान, पचनेन्द्रिय, जननेन्द्रिय,मनोदेश और वुद्धि, इन सबपर विशेष रूपसे लाभ पहुचाती है। (औ. गु. ध शा.)

वात प्रकोप होकर मस्तिष्कमें दोष जानेपर चक्कर आना, नेत्रमें दाह और पुतली भीतर खिंच जायगी या ऐसी भयंकर पीड़ा होना और मस्तिष्क शूल उपस्थित होते हैं। नेत्रके ऊपर हाथोंसे दबाने पर अच्छा लगता हो, बद्धकोष्ठ और अन्त्रवृद्धि न हो, तो शतावर, आँवले, नागरमोथा और गिलोयसत्त्वके मिश्रणके साथ रौप्य भस्म देना चाहिये। विशेषत यह मिश्रण भोजनके प्रारंभ में घी और शहदसे देना विशेष हितावह है।

मधुराके दूसरे सप्ताहमें अन्त्रमें प्रदाह विशेष होनेपर पतले दस्त होने लगते हैं। किसी-किसी को मधुरा दूर होनेपर भी अतिसार रह जाता है। फिर आहार-विहारमें भी विशेष नहीं सम्हाले तो अधिक भोजन करने और ज्यादा फिरते रहनेपर मल-मूत्र और शुक्रको धारण करनेकी शक्ति शिथिल हो जाती है। दिनमें ५-७ बार पतले दस्त लगते हैं और बार-बार पेशाब करना पड़ता है। शुक्र भी पतला होकर मूत्रके साथ जाता रहता है। इस विकारपर रौप्य भस्म और रससिंदूर मिलाकर शतावरी घृतके साथ भोजनके प्रारंभमें दिनमें २ बार देनेसे विकृति दूर हो जाती है।

कभी प्रसूताके बालककी प्रकृति अस्वस्थ होजानेपर माता को भी मानसिक आघात पहुँचकर उन्माद का असर होजाता है। प्रलाप, रुदन, भय लगना, हाथपैरोंमें कम्प, निस्तेज मुखमंडल, उदासीनता, अनिमेष दृष्टि, भोजनकी इच्छा न होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर रौप्य भस्म ¼ रत्ती मात्रामें दिनमें ३ बार ब्राह्मी शर्बत या आँवलोंके मुरब्बाके साथ देते रहनेसे विकार शमन होता है।

दूसरी-विधि—पहली विधिमें लिखे अनुसार शुद्ध चाँदीके वर्क ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले, शुद्ध गन्धक २० तोले और शुद्ध हरताल ५ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर आतशी शीशीमें वालु यंत्रमें रखकर तीन दिन तक अग्नि देनेसे पेंदेमें चाँदीकी भस्म और गलेमें तालसिंदूर बन जाता है। नीचेसे मिली हुई चाँदीकी भस्मको जलमें धोकर गुलाबके फूलोंके रसमें खरल कर १६ इंचके खड्डेमें फूँक दें। इस तरह गुलाबके अर्कके ८ से ६ (१५ से २०) पुट देनेसे उत्तम गुलाबी रंगकी भस्म बन जानी जायगी। (रसा सा)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी-विधि—शुद्ध चाँदी ३६ तोलेके पतले पतरेको कतर-कतर कर छोटे-छोटे टुकड़े बनावें। पश्चात् एक चीनी मिट्टीके प्यालेमें २० तोले शोरेके तेजाव (Nitric Acid) के साथ मिलाकर खुले स्थानमें जलती हुई अँगीठीपर रखें और लकड़ीसे चलाते रहें। धुआँ न लगे, इस बात का ध्यान रखें। लगभग आध घण्टेमें सफेद भस्म होजायगी। पश्चात् भस्मको ४-६ बार जलसे धोकर १२ वाँ हिस्सा (३ तोले) हरताल मिलाकर घीकुवारके रसमें खरल कर टिकिया बनावें। फिर सुखाकर मजबूत सराव-सम्पुट कर ५ सेर कंडोंकी अग्नि दें। पुनः-पुनः हरताल मिलाकर ५-५ सेर कंडोंके १० पुट दें। अंतमें घीकुवारके रसमें खरल करके ३ गजपुट अग्नि देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म तैयार होती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार ।

सूचना—गन्धकके तिजाबसे चांदीकी कलमें हो जाती हैं । उसकी भीऊमर लिखी विधिसे भस्म बन सकती है; परन्तु तिजाबके संसर्गसे भस्मकुछ न्यून गुण-वाली होती है।

(३) ताम्र भस्म

वनावट—शोधन प्रकरणमें लिखे अनुसार अच्छी रीतिसे शुद्ध किये हुए ताँवेको कूटकर बारीक चूर्ण करें फिर चौथा हस्सा शुद्ध पारद मिलाकर तीन घण्टे नीबूके रसमें खरल करें। पश्चात् फिर ताँवेके वजनसे दुगुनो शुद्ध गन्धककी नीबूके रसमें घुटाई करे उसमें इस पारदयुक्त तावेके चूर्णको मिलाकर गोला बनावें। पश्चात् मीनाक्षी (मछेछी), खट्टा चूका (चांगेरी)अथवा सांठीको पीसकर चटनी बनावें । इस चटनीका तावेके गोले पर दो-दो अंगुल मोटा लेप करे । फिर गोलेको हांडीमें रख, ऊपर रेत भर, मुहपर ढक्कन ढककर राख और नमकसे संधि बन्द करें । तत्पश्चात् चूल्हे पर चढ़ाकर वारह घण्टे तक आच दे । पहले मन्द, पीछे कुछ तेज अन्तमें खूब तेज करे । १२ घण्टे बाद स्वाग शीतल होनेपर हाडीको खोल, सम्हाल कर रेत और कल्ककी राखको दूर कर, तावेकी भस्मके गोलेको निकाले । फिर ६घण्टे सूरण (जमीकन्द) के रसमे खरलकर गोला बना सूरणके भीतर रख, कपड़मिट्टी कर गजपुटमे आच देनेसे उत्तम प्रकारकी (मोरके कंठके रंग जैसी) नील ताम्रभस्म बन जाती है । कदाचित् सूरण न मिले तो नीवूके रसमें ही गोला वनाकर फूक देवे । (भावप्रकाश)

मात्रा— से रत्ती दिनमें २ वार शहद, पीपल-शहद, पुनर्नवाक्वाथ, अनारदानेका स्वरस, नीवूका रस, दही, कुमार्यासव, शिलाजीत या रोगानुसार अनुपान से देवें ।

अनुपान १—कफप्रधान सन्निपातपर—अदरखके रस और मिर्चके साथ ।

२—हिचकी पर—नीवूका रस या १ रत्ती काकड़ासिगी और २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ मिलाकर शहदमें दें ।

३—आम संग्रहणीपर—सोंठके चूर्ण और घृतके साथ ।

४—आमातिसारपर—ऑवलेका चूर्ण २ माशे और पीपल ३ रत्तीके साथ । या सोंठके चूर्ण और मठ्ठेके साथ ।

५—कफ-प्रमेहपर—गूलरके फलके चूर्णके साथ ।

६—यकृत्दाहपर—मीठे अनारके रसके साथ ।

७—अग्निमान्द्यपर—पीपल और शहद या हल्दीके साथ खिलाकर ऊपर अदरखका रस पिलावें ।

८—जलोदरमें—शहदके साथ चटाकर ऊपर चित्रकमूलका क्वाथ, कांजी या हल्दीका क्वाथ पिलावें ।

९—गुल्मपर—अदरख या नागरवेलके पानका रस अथवा कुमार्यासवके साथ दें ।

ताम्र भस्मके सेवनसे रक्तका दबाव बढता है, जिसमे अनेकोंके कंठ या नाकमेंसे रक्त गिरने लगता है। इसी हेतुसे मूत्रपिण्ड विकृतिसे होनेवाले जलोदरमें ताम्र भस्मसे मूत्रपिण्डका शोथ बढने लगता है। मूत्रोत्सर्ग क्रिया कम होती है, फिर उदरमें जलका संचय अधिक होता है। इसलिये ऐसे समयपर इस भस्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। केवल मूत्रपिण्डके पूयवृक्क (गुरदेमेंसे पीप निकलना) विकारमें ताम्रभस्मके उपयोगसे पूयकी कमी होती है और शनैः शनैः मूत्रपिण्ड पूर्वस्थितिमें आजाता है। अतः इस रोगमें इस भस्मका प्रयोग बहुत कम मात्रामें करना चाहिये। हो सके, तब तक वृक्कके रोगोमें इसका उपयोग न करना ही अच्छा माना जाता है। उदर रोगोंमें यकृतोदर, कफोदर, प्लीहोदर इत्यादिमें कफप्रधान या कफवातप्रधान दुष्टी हो, तो ताम्र भस्मका उपयोग अच्छी रीतिसे हो सकता है।

विसूचिकामें अनेक दस्त हो जानेपर हाथ-पैरकी नाडियोमें अति खिंचाव होने लगता और पिण्डियोमें भयंकर पीडा होती है। वह ताम्रके सेवनसे तुरन्त दूर होती है ऐसे समय पर ⅛ रत्ती ताम्र भस्मका प्रयोग आध-आध घण्टे पर करना चाहिये। यदि साथ-साथ वमन, शूल, भ्रम, ये लक्षण हो तो, वे भी इस योगसे कम हो जाते हैं नाडियोका खिंचाव दूर होनेपर सुवर्णमाक्षिक भस्म, शंख भस्म, काम-दूधा रस आदि वमननिवारक ओषधियाँ देनी चाहिये।

ताम्र भस्मका उपयोग अम्लपित्त व्याधिमें होता है। बिल्कुल थोडे परिमाणमें अतिशय जलती हुई पित्तकी वमन मात्र होती हो, चक्कर, उदर-पीडा, ये उपद्रव अति बलिष्ठ और अति त्रासदायक हो, तो ताम्र भस्मका उपयोग हितकर है। यदि अम्लपित्तम बडी बडी वमन, और अकस्मात् होती हो, तो सुवर्णमाक्षिक देनी चाहिये। वमन कडवी, खट्टी और मीठी हो, एवं पित्त का संचय अधिक हुआ हो तो, सुवर्णमाक्षिक भस्म दी जाती है। ताम्र भस्मका सेवन करानेमें अम्लपित्तके पित्तका स्राव कम, परन्तु पित्तकी तीव्रता तीक्ष्णता और उग्रता अत्यधिक होनी चाहिये। स्मरण रहे कि, पित्तस्राव करानेकेलिये ही ताम्र भस्म दी जाती है। यह एक प्रकार की पित्तस्राव करानेवाली विरेचन ओषधि है। इसका उपयोग सम्हालकर करना चाहिये और इसके साथ घृत आदि स्नेह देना चाहिये। यकृत् पित्तका स्राव कम होने पर एक प्रकार का अतिसार (श्वेत वर्णका मल) हो जाता है, उसमे ताम्र भस्मका सेवन हितकारक है।

मदोत्पादक (Delmant) विष या कृत्रिम विष (गर) जो मदोत्पादक हो, या सेन्द्रिय विष उदरमें आ जाय, तो उसका संशोधन करनेके लिये ताम्र भस्मका सेवन हितकर है। सेन्द्रिय विषमे यदि मद उत्पन्न होता हो, तो भी ताम्र भस्मका सेवन हितकर है। कफप्रधान दोषोमें ताम्र भस्मसे आमाशय और पक्वाशयका संशोधन उत्तम प्रकारसे हो जाता है। इसलिये कफप्रधान वृत्तिमें शोधन आवश्यक होने पर ताम्र भस्म का उपयोग करना चाहिये।

अन्नद्रवशूल किंवा अन्य कोष्ठशूलमें अष्ठीला आदि उदरगत ग्रंथि बढ़ी हो या, उदरगत ग्रंथि शूलका कारण हो तो, ताम्र भस्म देनी चाहिये । इसके सेवनसे कठिन और उन्नत ग्रंथि शनैः शनैः छोटी हो जाती है ।

पाण्डुरोगमें प्लीहा और यकृत्, इन दोनोकी अथवा इन दोनोंमेंसे एककी वृद्धि होनेपर ताम्र भस्मकी योजना करनी चाहिये । पाण्डुवर्णकी अपेक्षा निस्तेजता अधिक हो, त्वचा चिकनीसी भासती हो, मुंहपर शोथका आभास होता हो; और मुखका वर्ण श्वेत होगया हो, समस्त शरीरमें थोड़ा थोड़ा शोथ, इनमें भी यकृत् प्लीहा विकृति कारण हो, तथा पित्त क्षीण हो और कफ वृद्धि हो, तो ताम्रभस्म देनी चाहिये ।

कफज गुल्म अथवा अष्ठीलाकी वृद्धि बहुत जल्दी होगई हो, तो ताम्रभस्मका उपयोग करना चाहिये ।

मांस खाने वालेको होनेवाले प्रमेह रोगमें अन्य औषधियोंकी अपेक्षा ताम्र भस्म विशेष हितकर है । ताम्र भस्मके योगसे मांस-घटकोंको पचानेके लिये उपयोगी पित्तकी उत्पत्ति होती है । इस तरह ताम्रभस्मका उपयोग प्रमेह रोगमें भी होता है ।

ग्रहणी विकारमें पित्तकी उत्पत्ति कम होती है और जो पित्त उत्पन्न होता है, उसमें भी तीक्ष्णत्व कम होनसे निर्बल होता है । ऐसी अवस्थामें जलमें मिले हुए बाजरीके आटेके समान सफेद; मैले रंगका और लसदार दस्त होता है, दस्तमें दुर्गन्ध आती है उबाक आती है, कभी वमन भी होती है; वह भी लसदार, फ़ीकी और दुर्गन्धवाली, ऐसे विकारमें ताम्रभस्मका प्रयोग बहुत अच्छा होता है ।

लौकिक व्यवहारमें ताम्रभस्म नपुंसकता नाशक मानी गई है; परन्तु ऐसा गुण अनुभवमे नही आया ।

ताम्रभस्मकाकार्य—ताम्रभस्म कफ दोष; रस, रक्त, मांस, ये दूष्य; तथा यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी पक्वाशय बृहदन्त्र और कोष्ठग्रंथि पर लाभ पहुंचाती है। इस सेवनसे पित्तस्राव अधिक होता है । पित्तमे तीक्ष्ण और उष्ण गुण बढ़ते है । रक्ताभिसरण क्रिया जोरसे होने लगती है । रक्तस्राव ज्यादा होता है । यह कफ-दोष पर अधिक उपयुक्त कार्य करती है । (औ. गु. ध. शा.)

किसी कारणवश रक्तमें विकार होकर मासग्रंथिया उत्पन्न हो जाती है । ये ग्रंन्थियाँ भिन्न भिन्न स्थानोंमे हाथ, पैर, मस्तिष्क, उदर आदि पर हो जाती हैं दुखती नही किन्तु धीरे-धीरे वढ़ती जाती और नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है । इन ग्रंथियोंके नाश और नयी उत्पत्तिको रोकनेके लिये ताम्रभस्म अर्कक्षीर चूर्ण (आकके दुग्धको वाष्प पर सुखाकर किये हुए चूर्ण) ४४ रत्तीके साथ दिनमें ३ वार शहदमें मिलाकर देते रहने और वाहर वच्छनाग ३ माशे वच और राई १-१ माशे और कपूर ५ रत्तीके चूर्ण को गोंदके जलमें मिलाकर लेप करते रहनेसे १-२ मासमें ग्रंथि नष्ट हो जाती है ।

सूचना—ताम्र भस्म, अत्यन्त उग्र, तीक्ष्ण, उष्ण, भेदी और पित्तस्रावी है ।

अतइसका प्रयोग अति सम्हालकर करना चाहिये। क्वचित् इसके सेवनसे पित्तस्राव अधिक होकर अतिसार हो जाय, तो भयमानकर उसे बन्द न करें। जिस रोगीको शुष्क कास, दाह, या वृक्कप्रदाह हो और जिसे शांत निद्रा न आती हो, उसे यह भस्म नहीं देनी चाहिये।

ताम्रभस्म निरुत्थ ही उपयोगमें लेनी चाहिये। कच्ची भस्मका उपयोग कदापि नहीं करना चाहिये। कच्ची भस्मके सेवनसे भ्रम, प्रलाप, वमन, क्वचित् ज्वर, अतिसार शूल और रक्तस्राव आदिके विकार उत्पन्न होते हैं। यदि उग्रतादि दोषोंके हेतुसे उत्पन्न विकारोंको शमन करनेकी आवश्यकता हो तो, मुक्तापिष्टी अति लाभदायक है।

ताम्रभस्म सेवनकालमें मिर्च आदि चरपरी वस्तुएँ, तेज खटाई, सम्पूर्ण पित्तवर्द्धक, वस्तुएँ, अग्निसेवन, सूर्यके तापमें घूमना और रोग-विरुद्ध अपथ्य भोजन इत्यादिका त्याग करें। एवं बालक वृद्ध, क्षयरोगी, सूतिका गर्भिणी, रक्तार्श रोगी और मूत्रपिण्डके सूजनयुक्त उदर रोगीको ताम्रभस्म नदें।

ताम्रभस्मकी परीक्षा—थोड़ेसे दहीमें ताम्रभस्म मिलाकर काँचकी शीशीमें १२ घण्टे रहने दें। फिर दहीके रंग में नीलापन दीखे, तो भस्मको दोषवाली समझकर सूरण अथवा अन्य औषधके रसमें खरल करके पुनः गजपुटमें अग्नि देनी चाहिये।

ताम्रभस्म सूर्य की किरणों द्वारा देखनेसे चन्द्रिका रहित मालूम होनेपर पूर्णपक्व जाने। चंद्रिका हो, तो और २-३ पुट देवें। सदोष भस्मसे वमन, रक्तविकार, कुष्ठ आदि विविध विकार उत्पन्न होते हैं।

दूसरी विधि—नीलाथोथा एक सेर लें, बारीक पीसकर एक लोहे की कड़ाहीमें डालें। फिर उसे थथुवेके रसमें भिगो देवें। २४ घण्टे बाद रसको निकाल ताम्र खुरचकर निकाल लेवें। फिर नीलाथोथा और जो रस निकला है उसे पुनः कड़ाहीमें डाल साथमें वथुवेका और रस मिला देवें, २४ घण्टे बाद फिर निकालें। इस तरह ३-४ बार करें। प्रायः एक सेर नीलाथोथामेंसे आधा पाव ताम्र निकलता है। फिर ताम्रको खरलमें नीबूके रसके साथ ३ घण्टे तक घोटकर धो लेवें। पश्चात् आकके दूधमें खरलकर टिकिया बनाकर सुखालें। फिर उन टिकियाओंको थूहरके डंडेमें रख, कपडमिट्टीकर गजपुटमें फूक दें। पश्चात् भस्मको निकाल, वनगोभीके रसमें खरलकर टिकिया बनावें, और उसकी लुगदीमें रख कपड-मिट्टीकर गजपुटमें फूक देनेसे ताम्र भस्मभीके सफेद रंग की होजाती है। (धन्वन्तरि)

या बथुवेके समान नीलेथोथेको ४ गुने त्रिफलेके साथ १६ गुने जलमें भिगोकर ४० दिन तक तेज सूर्यके तापमें रख देवें। जल घट जानेपर पुनः मिलायें। पश्चात् जलको स्याही रूपसे या व्रण प्रक्षालनके कार्यमें लेवें, और कड़ाहीमें लगे हुए ताम्रकी भस्म

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—शुद्ध ताम्र चूर्ण, शुद्धपारद और शुद्ध गंधक, तीनों २०-२० तोले, शुद्ध हरताल १० तोले और शुद्ध मैनसिल ५ तोले लें। पहिले ताम्र और पारदको नीबूके रसके साथ खरल करें। ताम्र चूर्ण श्वेत बननेपर जलसे धो गंधक मिलाकर कज्जली करे। पश्चात् हरताल और मैनसिलको मिलाकर खरल करें। फिर सरावमें भरकर कपड़ मिट्टी करें। इस संपुटको धूपमें सुखा बालुका यंत्रमें रख, मुहको अच्छी तरह बन्दकर चूल्हेपर चढ़ाकर १२ घण्टे अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर यंत्रमेंसे संपुटको निकालें। पश्चात् सम्हालकर भस्मके गोलेको निकालकर खरल कर लें। इस भस्मको 'सोमनाथी ताम्रभस्म' कहते हैं। (र. र. स.)

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें २ बार शहद-पीपल, जवाखार और घृत अथवा अदरखके रसके साथ दें।

गुण—यह भस्म परिणामशूल, कास, श्वास, मन्दाग्नि, गुदाके रोग, अनेक प्रकारके पाण्डु, प्लीहावृद्धि, उरःक्षत, मलमूत्रावरोध, उदर-रोग, वातरक्त और कफ प्रधान रोगोंको नष्ट करती है। शेष गुण प्रथम विधिके अनुसार है।

सूचना—इस भस्मका उपयोग परीक्षा करनेपर करें। सदोष हो, तो फिरसे पकावें।

(४) लोह भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध लोह चूर्ण (या १० पुटी लोह भस्म) २० तोले सफेद संखिया, तबकिया हरताल, शुद्ध गंधक और शुद्ध पारद, प्रत्येक ४-४ तोले और शुद्ध कर्पूर २ तोले लें। पहिले लोह चूर्ण या लोह भस्मके साथ सोमल १ तोले और कर्पूर १॥ माशे मिला घीकुंवारके रसमें ३ घण्टे खरलकर, दो-दो तोलेकी टिकिया बाँधकर तेज धूपमेंसुखावें। पश्चात् मिट्टीके कूजेमें बन्द कर ५ सेर कण्डोंकी आँच दें। दूसरी बार उसी लोहमें हरताल १ तोला और कर्पूर १॥ माशा मिला घीकुंवारके रसमें ३ घण्टे तक खरलकर ५ सेर कंडोंमें फूंक देवें। तीसरी बार गंधक १ तोला और कर्पूर १॥ माशा मिला, घीकुंवारके रसमें खरलकर टिकिया बाधकर उपरोक्त प्रकारसे आंच दे। चौथी बार पारद १ तोला और कपूर १॥ माशा मिलाकर उपरोक्त रीतिसे खरल करके आंच दे। इसी क्रमसे १६ बार आंच दें। फिर भस्मको लोहेकी कढ़ाईमें डाल, समभाग वीरवहूटी मिलाकर नीचे मन्द-मन्द आंच दें और हिलाते रहें जब वीरवहूटी जल जायं; तब भस्मको लोहेके तवेसे ढक दें; और ३ घण्टे तक तीव्र अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल लें। यह लोहभस्म अति मुलायम खील हो जाती है। इस भस्मको अनेक चिकित्सकोंने वाजीकर लोहभस्मभी नाम दिया है। (अ. यो.)

सूचना—१६ पुटके स्थानमें ६४ पुट दिये जायं, तो भस्म विशेष लाभदायक बनती है। वीरवहूटीमें कंकड़, मिट्टी या अभ्रक मिला हो तो निकाल देना चाहिये। अन्यथा भस्म दूषित हो जायगी।

मलाईमें लपेटकर खावें, ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें। अथवा लोह भस्म पूर्णचन्द्रोदय रस (या रससिंदूर) और वृद्धदण्डहर चूर्ण मिलाकर मिश्री मिले दूधके साथ दिनमें दो बार देवें। या लोह भस्म, शुद्ध कुचिलेके चूर्ण १ रत्ती और अश्वगंधादि चूर्ण २ माशे के साथ मिलाकर दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह लोहभस्म नपुंसकता, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, मूत्रदोष, पाण्डु और शारीरिक निर्बलताको दूर करनेमें अक्सीर है।

लोह भस्मका प्रभाव रक्तपर सत्वर पहुँचता है, जिससे पाण्डु रोगादि अनेक व्याधियाँ दूर हो जाती है। परन्तु इस भस्ममें भावना ऐसे उग्र द्रव्योंकी दी गई है, कि यह भस्म रक्ताभिसरण क्रियामें शिथिलताजन्य या शुक्रोत्पादक कोषोंकी निर्बलताके हेतुसे नपुंसकता आई हो, तो विशेष लाभदायक होती है। यह भस्म अण्डकोष, वीर्यस्थान, मूत्रवाहिनियों और अन्य नसोंको कुछ उत्तेजना देती है।

लोह भस्मके गुणोंका विशेष विवेचन दूसरी विधिके साथ किया गया है। वह इस भस्मकेलिये भी समझ लेना चाहिये।

शास्त्रकारोंने लोह भस्मके विवचनमें लिखा है कि—

"आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्ता रोगापहर्ता मदनस्य कर्ता।
अयःसमानं न हि किञ्चिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम्॥"

लोहभस्म आयुवर्द्धक, बल और वीर्यको बढ़ानेवाली, रोगोंका नाश करनेवाली और कामोत्तेजक गुणवाली है। इस लोहभस्मके समान उत्तम रसायनरूप अन्य एक भी ओषधि मनुष्योंके लिये नहीं है।

अपथ्य—लोहभस्म अथवा लोहभस्म-मिश्रित औषधि सेवनकालमें तिलका तेल, उड़दके बने हुए पदार्थ, राई, शराब, खट्टे पदार्थ, अनूप देशके जीवोंका मांस, ककारपूर्वक द्रव्य (कूष्माण्ड ककड़ी, कलिंग, अर्थात् तरबूज, करेला, कशेरू, करीर, ककोड़ा ककन्धु अर्थात् छोटे बेर, कांजी, कुलथी, कड़वा तैल, करेला, कैथ, कामल शाक अर्थात् नाडीशाक, कुक्कुट अर्थात् मुर्गेका मांस और कचरी आदि), सूर्यके तापमें भ्रमण, मैथुन, धूम्रपान, विदाही पदार्थ, तेजमिर्च, लहसुन, प्रकृति-विरुद्ध, देश-विरुद्ध, काल-विरुद्ध, संयोग से विरुद्ध या रोगमें अपथ्य हो, ऐसे आहार-विहारका त्याग करना चाहिये।

सूचना—६४ पुटी लोह भस्मके उग्र होनेसे इसका उपयोग उष्णकालमें और अति तेज पित्तवालोंके लिये नहीं करना चाहिये। या सम्हालकर करना चाहिये। इस भस्मके सेवन करनेवालोंको दूध घृत आदि पौष्टिक पदार्थ ज्यादा मात्रामें लेने चाहियें।

दूसरी विधि—शुद्ध लोहका बारीक चूर्ण ४८ तोला और बारहवां भाग सिंगरफ मिला, घीकुवारके रसमें १२ घण्टे घुटाई कर, २-२ तोलेकी टिकिया बांधकर तेज धूपमें फिर सरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दें। इस तरह १२ बार गजपुट दें।

बारबार सिंगरफ मिलाते जायं । यदि लोह चूर्ण मोटा हो, तो पहले त्रिफला, गोमूत्र और केले अथवा घीकुंवारके रसके ४-६ पुट देना चाहिये । फिर सिंगरफके पुट देवें । अन्तमें जामुनकी छालके क्वाथके ३ पुट देनेसे नीले रंगकी उत्तम लोहभस्म बनती है ।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक दिनमें २ वार पीपल और शहद, मक्खन-मिश्री त्रिफला, घृत-मिश्री, मलाई या च्यवनप्राशावलेहमें मिला चाटकर ऊपरसे मिश्री मिला हुआ दूध पीवें; अथवा रोगानुसार अन्य अनुपानके साथ लें । लोह भस्म संग्राही गुण होनेसे मलावरोध हो, तो च्यवनप्राशावलेह या त्रिफलाके साथ देना चाहिये ।

अनुपान—प्रमेहपर —हरड़ और गोखरू २-२ माशे, तालमखाने ४ माशे तथा मिश्री ६ माशेके साथ दें । ऊपर शीतल जल पिलावें । या ३ माशे त्रिफलाके चूर्णके साथ मिला, शहदके साथ देकर गिलोयका स्वरस पिलावें ।

२—दारुण अश्मरीपर—शहदके साथ देवें । ऊपरसे ४ तोले गोखरूका क्वाथ पिलावें ।

३—कफयुक्त श्वास—रससिंदूर-मिश्री या त्रिकटु-शहदसे ।

४—जीर्णज्वरमें—शहद और पीपलके साथ ।

५—वातवृद्धिमें—लहसुन और घृतके साथ ।

६—पित्तज्वरमें—शहदके साथ ।

७—कफपित्तज्वरमें—अदरखके रसके साथ ।

८—पाण्डुपर—लोहभस्मको ७ दिन तक गोमूत्रमें खरल कर ३-३ रत्ती दिनमें २ बार दूधके साथ देनी चाहिये ।

९—मंडलकुष्ठ, पामा और खुजलीपर —आँवला, शक्कर और नीम पंचांगके साथ २१दिन ३-३ रत्ती दिनमें २ बार ।

१०—उदावर्तनें—शक्करके साथ ।

११—सर्वांगशूलमें—शम्बूकभस्म और शक्करके साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावे ।

१२—श्वास और हिक्कापर कचूर, पुष्करमूल और आँवलोका चूर्ण २ माशे, लोहभस्म २ रत्ती और शहद ६ माशे दें ।

१३—उदरशूल पर—गोमूत्रमें पकाई हुई छोटी हरड़का चूर्ण और गुड़के साथ दें । ऊपर निवाया जल पिलावें ।

१४—८० प्रकारके वात पर—निर्गुण्डीके रसके साथ ।

१५—कफवृद्धिमे—शहद, पीपल या कज्जली और शहदके साथ ।

१६—पित्तरोगमें—दालचीनी, इलायची और तेजपातके साथ ।

१७—रक्तपित्तपर—चातुर्जात और मिश्रीके साथ, या आँवला, पीपल और मिश्रीके साथ मिलाकर अदरखके रसमें दें ।

१८—पाण्डु और हलीमकपर—पुनर्नवाके रसमे या नागरमोथाके चूर्णके साथ

देकर रोगकी छाछका बजाय पिलावें।

१९—२० प्रकारके प्रमेहों पर—हल्दी, पीपल और शहदके साथ।

२०—मूत्रकृच्छ्र पर—शिलाजीतके साथ।

२१—मन्दाग्निमें—नागरबेलके पानके साथ।

२२—रसायनके लिये—त्रिफला और शहदके साथ।

२३—वातुदोष पर—त्रिकटु, भारगी और शहदके साथ।

२४—जलवृद्धिके लिये—पुनर्नवाके चूर्ण और गोदुग्धके साथ।

२५—श्वासपर—आमा भस्म, पीपल, मुलहठी और शहदके साथ।

२६—त्रिदोषज शूलपर—त्रिफला चूर्ण, घृत और शहदके साथ।

उपयोग—यह लोह भस्म पाण्डु, पित्तविकार, पित्तज और कफज प्रमेह, उन्माद, धातु निर्बलता, संग्रहणी, मन्दाग्नि, प्रदर, मेदवृद्धि, कृमिरोग, कुष्ठ, उदररोग, उदरशूल, आमविकार, क्षय, विष, हृद्रोग, श्वासकास, अर्श, नेत्रकी उष्णता, रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करती है।

लोह सेवनसे रक्तमें रक्तकण बढ़ते हैं। रक्तकी निस्तेजता दूर होती है। इस लिये भस्मका उपयोग पाण्डुरोगमें होता है। पाण्डुरोगीके लिये लोहभस्म प्रशस्त और प्रसिद्ध औषधि है।

पाण्डु रोगमें भी विशेषतः पित्तज पाण्डु और हलीमकपर लोहभस्मका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है। कृमिजन्य पाण्डु रोगमें अन्य कृमिघ्न औषधियोंके साथ लोहभस्म देनेसे लाभ होता है। आंतोंमें उत्पन्न होनेवाले कितनेक प्रकारके कीटाणुओंसे पाण्डु रोगकी उत्पत्ति होती है। ऐसे पाण्डु रोगमें लोहभस्मको वायविडंग और अजवायनके फूल (थाईमोल) के साथ देनेसे अच्छा लाभ करती है।

वातवाहिनियां, मानसिकधरा या स्नायुओंके सकोच अथवा वात विकारके कारण तीव्र वेदना उत्पन्न होती हो, उसका शमन करनेके लिये वाजीकरण लोह भस्म और सिगरफसे मारण की हुई लोहभस्म अति उपयोगी है। परिणाममें अधिक रक्तस्राव होनेसे रक्तवाहिनियों, मस्तिष्क अथवा अन्य अवयवोंमें शून्यता आजाने, तथा घबराहट निर्बलता, चक्कर आदि लक्षण प्रतीत होनेपर इसका सेवन अतिहितकर है। यदि ये उपद्रव रक्तपित्तमें हुए हों, तो लोहभस्म रक्तचन्दनादि क्वाथके साथ दें, अथवा चरकोक्त लोहासवका सेवन करावें।

पित्तप्रकोप होना, जिससे नेत्र लाल-लाल हो जाना, मुंह और हाथ-पैरोंपर तुरन्त प्रस्वेद आ जाना, शरीर लाल हो जाना, थोड़े समय बाद घबराहट होकर शरीर निस्तेज और गरम हो जाना, सारे शरीर तथा रक्तवाहिनियोंमें अति वेगसे रक्त प्रवाह चलना, हृदयकी गति और नाड़ीके वेगमें वृद्धि हो जाना, मानसिक बेचैनी होना और त्वचा उष्ण हो जाना इत्यादि पित्तप्रकोपके लक्षण होनेपर, लोह भस्म उत्तम प्रकारसे सत्वर कार्य करती है।

पित्ताशयको आवश्यक रक्त न मिलने अथवा पित्तके परिमाणमें कमी हो जाने से अपचन, आफरा, बारबार खट्टी, और खराब डकार आना तथा चिकनी, पित्त-कफ मिश्रित थोडी-थोड़ी वमन होना इत्यादि लक्षण होने पर लोह भस्म अति उपयोगी है।

अतिसार अथवा ग्रहणी रोगमें ग्रहणी और पक्वाशय अशक्त हो जानेसे बार-बार बड़े-बडे दुर्गन्धयुक्त श्वेत या मैले रगके दस्त अनायास ही होते रहते हैं। ऐसे अतिसारमें लोहभस्मका शक्तिवर्द्धक औषध रूपसे उपयोग होता है। संग्रहणी मे यदि अत्यन्त अशक्तता और बलमास विहीनत्व आ गये हों, तो लोहभस्मका उपयोग करनेसे बलकी वृद्धि होकर निर्बलता दूर हो जाती है।

रक्तार्शके रक्त गिरनेके प्रारभमें लोह भस्मका उपयोग नही करना चाहिये। फिर भी पित्तार्श अथवा वातार्शके प्रारंभमें विशेषतः जब अधिक क्षीणता आ गई हो; तब लोह भस्मका उत्तम रीतिसे उपयोग होता हैं। एवं रक्तार्शमें रक्त बहुत बह जानेके बाद हृदय-व्यथा, शोथ, पाण्डुता आदि लक्षण होनेपर लोह भस्म (दूसरी विधिवाली) का उपयोग अतिहितकर माना गया है।

लोह भस्ममें कषाय गुण होनेसे कफनाशक है, परन्तु उसके साथ पाण्डुता रूप लक्षण होना चाहिये। हृदयव्यथा होनेपर यदि श्वास हो, तो लोह भस्मका अच्छा उपयोग होता है। एवं पित्तप्रधान तमक श्वासमें भी इस भस्मसे अच्छा लाभ होता है। जबकि छातीमें खूब श्वास भरा हुवा मालूम देता हो; साथमें निस्तेजता, बेचैनी और नाड़ी तेज हो, ऐसी परिस्थितिमें लोह का सेवन अत्यन्त हितकर है।

विषम ज्वर अथवा ठंड लगकर आनेवाले ज्वर अधिक दिन तक रहने या अधिक ज्वर होनेपर भोजन करते रहनेसे प्लीहावृद्धि हो जाती है; एवं क्विनाईन युक्त औषधिका ज्यादा परिमाणमें सेवन करनेसे घबराहट, श्वास, मुह पर शोथ-सा हो जाना, मुखमण्डल श्वेत और निस्तेज होना, कानमे बधिरता आना आदि लक्षण होते है। इसपर लोह भस्म के सेवनसे उत्तम लाभ होता है। परन्तु जिनसे लोहभस्म सहन न हो सके, उनको स्वर्ण-माक्षिक भस्म दी जाती है। प्लीहावृद्धिमे पाण्डुता अधिक होनेपर लोह भस्मका सेवन विशेष लाभदायक है।

लोह भस्म सर्वाङ्ग शोथ विकारमें अत्यन्त उपयोगी औषधि है। सर्वाङ्गमे शोथ त्वचाके नीचेके भागमें लसीकाका संचय हो जाना, यहां तक कि शोथ पर अंगुली दबाने-से गहरा गड्ढा हो जाता है, फिर भरनेमें समय लगता है; तथा अन्त्यन्त पाण्डुता, अतिशय घबराहट, मुंहपर अधिक शुष्कता, सारे शरीरकी शिराए उड़ती हो ऐसा आभास होना. रोगीसे पूरा बोला भी न जाय, मूत्र सामान्य रीतिसे ठीक रहता हो, परन्तु मूत्राशय अशक्त होनेसे पेशाब अनेक समय करना पड़ता हो, ऐसे प्रकारके शोथ रोगमें यदि यकृत्प्लीहावृद्धिका अनुबन्ध हो, तो ताम्र भस्म और लोह भस्म मिलाकर देना अति प्रशस्त है।

पचन शक्तिकी निर्बलता या सर्वत्र धातु परिपोषण क्रम (Metabolism)

की अशक्तिके कारण शरीरमें सेन्द्रिय विषका संचय होता है, यह विष लोह भस्मके सेवनसे नष्ट हो जाता है।

पैत्तिक और श्लैष्मिक प्रमेहमें लोह भस्मका उपयोग होता है। इसके सेवनसे प्रमेह रोगमें आई हुई निर्बलता दूर होती है। जिस रोगीको मूत्र बार-बार होता हो, परन्तु कम समय और प्रत्येक समय अधिक परिमाणमें होता हो, तथा त्वचा निस्तेज हो, उसे लोह भस्मका सेवन हितकर है। परन्तु बार-बार पेशाब थोड़ा-थोड़ा होता हो अंतरमें दाह हो और त्वचा चिकनी हो, तो जसद भस्म देनी चाहिये।

गुल्म, अष्ठीला, प्लीहा और यकृत्‌में वृद्धिमें रक्तके रक्ताणु न्यून होकर पाण्डुता आई हो, तो लोह या मंडूर भस्मकी योजना करनी चाहिये।

किसी भी महाव्याधिसे मुक्त होनेके पश्चात् रोगीका बल कम हो जाता है। रक्तके रक्ताणु निर्बल हो जाते हैं। एवं बड़े रोगमें दोषप्रकोपसे लड़ाई और धातुसाम्य प्रस्थापित करते रहनेसे सब इन्द्रिय-समूह बिल्कुल थक जाते हैं, तथा बलमांस-क्षीणत्व की प्राप्ति होती है। यह क्षीणता लोह भस्मके सेवनसे सत्वर कम हो जाती है। विशेषतः रक्तकी अशक्तताके कारण निर्बलता आई हो, तो निःसन्देह लोहभस्मका उपयोग कराना चाहिये। इस दृष्टिसे लोहभस्म बलवर्द्धक है।

पित्तप्रधान कुष्ठरोगमें दोषोंके कारणसे रक्त और त्वचा दुष्ट हुए, तो लोह भस्मका सेवन करना अति हितकर है। पित्तप्रधान कुष्ठमें दाह, लाली तथा त्वचा, अंगुली, फाले या व्रणोंमेंसे जलके समान पतला स्राव, थोड़ा घावहीन पर पक जाना, फूटना उसमेंसे दुर्गन्धयुक्त चिकना पीप निकलना, कभी-कभी अंगुलियोंकी त्वचा निकल जाना, टूट जाना आदि लक्षण होते हैं। इस रोगमें यदि त्वचा परव्रण लाल काला-सा हो, उसमें छोटी-छोटी फुन्सियां हो खाज चलती हो और दाह आदि लक्षण हों, तो लोह भस्म और त्रिफला चूर्ण या अन्य कुष्ठघ्न औषधि देनी चाहिये। अथवा आरोग्यवर्धिनी देनी चाहिये। कुष्ठरोगमें पहिले प्रधान लक्षणात्मक दोषकी योजना करनेके पश्चात् अन्य जिस दोषका अनुबंध हो अथवा अनुबंध रूपसे दोष शेष रहा हो, उसकी योजना की जाती है। इस न्यायसे पित्त दोषकी चिकित्सा करनेसे कुष्ठ रोगका शमन होना शक्य है।

लोह भस्म रसायन है अर्थात् इसके सेवनसे रस आदि सब धातुकी प्रशस्त उत्पत्ति होती है, जिससे सब इन्द्रियाँ और घटक उत्तम प्रकारसे पुष्ट होते हैं। यह भस्म रसायन विधानसे अर्थात् उठने उलटने क्रमसे सेवन करनी चाहिए। अथवा शिलाजीत, अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म त्रिफला, इनमेंसे किसीके साथ सेवन करनी चाहिये।

इस शरीरमें सब धातुओंको योग्य परिमाणमें आवश्यक द्रव्य यथासमय पहुंचाने वाली धातु रक्त है। रक्त धातुके रक्त कण और घटक, शरीर-पोषण के लिये विशेष उपयोगी है। ये सब लोह भस्मके सेवनसे सुदृढ होते हैं। इस तरह अन्य पांचभौतिक द्रव्य भी शरीर पोषणके लिये आवश्यक है। वह भी इसके सेवनसे शुद्ध और सुदृढ होता है।

इस दृष्टिसे विचार करे, तो लोह भस्मके सेवनसे देह अतिदृढ़ होती है । इससे देहसिद्धि होती है, यह कथन बिलकुल सत्य है ।

मनुष्यके लिये लोहभस्म और छोटे बच्चोंके लिये मंडूर भस्म हितकर है । निरोगी मनुष्यको बिना हेतु निर्बलता का भास होता है, तो लोह भस्मका सेवन कराना चाहिये। 'इस दृष्टिसे शास्त्रकारोंने लोहभस्मको मन और शरीरसे निरोगी मनुष्यके लिये दीर्घायु प्राप्त करानेवाली उत्तम रसायन औषधि कहा है,वह युक्त ही है । आयुको नदीके ओर सदृश मान लें, तो जब तक उसे आवश्यक अनुकूलता मिलती रहेगी; तब तक जीवित ओघ चलता ही रहेगा । यह सुविधा इसके सेवनसे पूर्ण होती रहती है । अतएव लोह भस्म को दीर्घ-जीवन प्राप्त कराने वाली कहा है । यह शास्त्र-वचन युक्तियुक्त ही है ।

यदि वातवाहिनियों या रक्तवाहिनियोंके संकोचसे शूल उत्पन्न हूआ हो, तो लोह भस्मके सेवनसे रक्ताभिसरण-क्रियाकी वृद्धि होकर शूलका शमन होजाता है । यदि शूल आमवात अथवा वातरक्त जन्य हो, तो महायोगराजगूगल; आक्षेपक समान हो, तो महावातविध्वंसनरस; वातपित्तप्रधान आमरहित शूल हो,तो सूतशेखर; और पित्तप्रधान हो, तो ताप्यादि लोह देना चाहिये ।

लोहभस्म अंडकोशोंको शक्ति देती है । इस हेतुसे अंडकोशकी निर्बलतासे उत्पन्न नपुंसकता और हीनवीर्यता इसके सेवनसे दूर होती है । अलावा सब धातु पुष्ट और शुद्ध होनेसे शरीरकी कांति बढती है, तथा सब अवयव बलवान बनते हैं। विशेषत: उदर उत्तम बलवान होनेपर अर्थात् कोष्ठके अवयव प्रतिकारक्षम होनेपर, सेन्द्रिय विषका प्रभाव अधिक नही पड़ता । इस दृष्टिसे लोह भस्म विपहर है ।

यदि लोह भस्म सामान्य मुण्ड लोहमेंसे बनाई जाय, तो मृदु बनती है; जिससे कोमल प्रकृतिके सुकुमार रोगियोंको देनेमें अच्छी उपयोगी होती है । कोष्ठगतशूल, आमजन्यशूल और अर्शके कारणसे ज्यादा रक्त बह जानेसे पश्चात्‌के शूलपर मुण्ड लोहभस्म अच्छा लाभ पहुंचाती है । एवं प्रमेहरोगमें जिनसे लोह भस्म सहन नहीं होती; उनके लिये मुण्ड लोहभस्मका सेवन हितकर होता है ।

कामला विकारमें पित्त, पित्ताशयमेसे कोष्ठमें नही जाता; किन्तु रक्तमें मिल जाता है । ऐसे समयपर पित्ताशय प्रायः निर्बल होता है । त्वचा, नख, मूत्र आदि पीले होते हैं । इस विकारमें यदि निर्बलता अधिक है, तो मुण्ड लोहभस्मका सेवन विशेष हितकर है ।

आमवातका विकार अच्छा हो जानेपर इस रोगके कारण उत्पन्न हुई निबलता नष्ट करनेके लिये आमविकारके मूल कारण आमकी उत्पत्तिको रोकना चाहिये । इस आमकी उत्पत्ति अग्निकी मन्दताके हेतुसे होती है । जब पाचक अग्नि (पाचक पित्त) सबल और कार्यक्षम हो जाय; तब नया आम नही बनता । पित्तको कार्यक्षम बनानेका यह कार्य मुण्डलोहभस्मसे होता है । ऐसे ही पाचक पित्तकी अशक्तिके कारण, कोष्ठशूल मन्दाग्नि आदि विकार उत्पन्न हुए हों; वे भी मुण्ड लोहसे दूर होते हैं ।

मुण्ड लोह भस्मकी विशेषता—अन्य लोह भस्ममें ग्राही गुण अधिक है, जिससे शौच शुद्धि बराबर नहीं होती। अतः जिनको मलावरोध रहता हो, उनको कान्त लोह भस्म मलावरोधमें वृद्धि करती है, किन्तु मुण्ड लोहभस्ममें ही ग्राही गुण या विरेचक गुण नहीं है। फिर भी कोष्ठशामक है, अर्थात् कोष्ठ की शक्ति और क्रिया का सुधार उसमेंसे सबसे उत्तम प्रकारसे नियमन करती है। इसलिये ऐसे मृदुकोष्ठके पाण्डुरोगियो अथवा अशक्त व्यक्तियोंको मुण्ड लोहभस्मका सेवन हितकर है।

लोह भस्म पित्त और वात दोष, रक्त, मांस विशेषतः, और सामान्यतः सब धातु, इन दूष्यों, और हृदय, यकृत्, पचनेन्द्रिय तथा बृहदन्त्र, इन स्थानोंमें विशेष लाभ पहुंचाती है। (औ. गु. ध. शा.)

सूचना—ज्वरागमके समय शिरदर्दके आरम्भमें लोह भस्म नहीं देना चाहिये। लोह भस्म अति मुलायम होनेपर रस-रक्त आदिमें सात्म्य शीघ्र मिल सकती है। अतः लोह भस्म मुलायम हो जाय, तबतक गजपुट देते रहना चाहिये। जबतक लोह भस्म आँखोंपर मसलनेसे आँखोंका रंग काला हो जाता है। ऐसी लोह भस्म सेवन नहीं करना चाहिये।

तीसरी विधि—शुद्ध लोहेका सूक्ष्म चूर्ण ३० तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक २० तोले लें। पहिले पारद और लोहेके चूर्ण को मिला घीकुमारके रस ६ घण्टे खरलकर जलसे धो लें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें, और १२ घण्टे घीकुमारके रसमें खरलकर गोला बांधें। पश्चात् अरण्डके पत्तोंमें लपेट ऊपर सूत बांधकर ताम्रके डिब्बेमें रखें। सन्धिपर मिट्टीका मजबूत लेप करके सूर्यके तापमें ६ घण्टे सुखावें। फिर अनाजके गाढेके भीतर ४० दिन तक दबा देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। ४१वें रोज भस्मको निकाल कपडेमें छानकर सम्हाल रखें। यह भस्म काले रंगकी बारिक और मुलायम हो जाती है। इस भस्मका नाम शास्त्रकारोंने "सामामृत लोह भस्म" रखा है। (र० र०)

मात्रा और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार।

चौथी विधि—शुद्ध सूक्ष्म लोहचूर्णको कुमारीके रसमें १२ घण्टे तक खरल करके गजपुट दें। इस तरह पुनः पुनः खरल कर १० पुट देनेसे लाल सिंदूर रंगकी मुलायम भस्म तैयार होती है। इस तरह जामुनकी छालके क्वाथ, बबूलकी फलीके रस, हस्तीशुण्डीके रस, अपक्व आंवलेके रस और गोमूत्र आदि ओषधियोंके पुटोंसे भी लोह भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार।

(५) वङ्ग भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध बङ्गके वागज जैसे पतले पतले बनाकर नखके मुताबिक

बारीक-बारीक टुकड़े करें। फिर गोबरी लगभग २॥ सेर वजनवाली लेवे। जिसमे चारों ओर एक-एक इंच भागको छोड़कर बीचमे गहरा एक इंच का खड्डा करें। पश्चात् उसमे इमलीकी छालका चूर्ण और तिल मिलाकर तैयार किया हुआ चूर्ण लगभग १० तोले डालें। फिर कलईके छोटे-छोटे टुकड़ोंको एक-एक करके चारों ओर बिछा दें। पुनः ऊपरसे इमलीकी छालवाला चूर्ण लगभग १० तोले डालकर उसपर कलईके टुकड़ोको बिछावें। इस तरह ३ से ४ तह करें। एक गोबरीकी जोड़ीमें लगभग १०-१२ तोले कलई बन्द करनी चाहिये, तथा सब मिलाकर इमलीका चूर्ण तिल मिला हुआ लगभग ४० से ५० तोले डालना चाहिये। ऊपर और नीचे इमली वाला चूर्ण ही रक्खे। इस तरह चूर्ण और कलईके पतरे रखकर समान गोलाईवाली भीतरसे खड्डाकी हुई दूसरी गोबरी ऊपर ढककर गोबरसे दोनोकी संधि बन्द करें। सूख जाने पर एक कड़ाई या परातमे नीचे ऊपर लगभग १ सेर गोबरी रखकरनिर्वात स्थानमें अग्नि देवें। ठंडा होनेपर सम्हालकर कलईकी भस्म के एक-एक फूलको चुन लेवें। फिर भस्मको लोहेकी खरलमे खरलकर कपड़ेसे छान लें। जो भस्म कच्चीरही होगी; वह कपड़ेके ऊपर रह जायगी उसे अलग कर दें। पक्की भस्म, जो छनकर नीचे चली जाती है, वह चूनेके समान सफेद रंगकी मुलायम और बहुत हलकी होती है

इमली तिलके बदलेमें भाग मिलानेसे भी भस्म उत्तम बनती है। गोबरीके बदलेमें टाटमे लपेट करके अग्नि देनेसे भी भस्म हो सकतीहै। टाटमे लपेट कर भस्म करना हो, तो टाटका दृढ़ गोला बना चारों ओर ५ सेर गोबरी रख, निर्वात स्थानमें अग्निदेनेसे भस्म तैयार हो जाती है। टाटके गोलेकी ऊंचाई ८-९ इंच से अधिक नही रखनी चाहिये। १०-१२ तोले कलईकी एक बार भस्म करें। ज्यादा मात्रामें कलई लेनेसे कच्चा भाग विशेष रह जाता है। जो कच्ची भस्म शेष रह जाय, उसकी भस्म तीसरी विधिके अनुसार बनाई जाती है। (आ. प्र.)

सूचना—कच्ची भस्मको लोहेकी खरलमें खरल करना चाहिये। पत्थर की खरलमें घोटनेसे खरल खराब होती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें २ समय मलाई-मिश्री, बादाम की खीर, ईसबगोलकी भूसी-मिश्री, मक्खन-मिश्री या रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये।

अनुपान—१. प्रमेहमें—शहदके साथ देकर, शुद्ध गंधक पुराना गुड़ मिलाकर खिलावें, या मोचरस और हलदीका चूर्ण मिलाकर शहदके साथ; अथवा अभ्रक भस्म और शिलाजीतके साथ या गिलोय सत्त्व और शहदके साथ।

२—मूत्राघातमें—वंगभस्म, शिलाजीत, गिलोय-सत्व ३-३ रत्ती और मिश्री ९ रत्ती मिलाकर शहदके साथ।

३—मुख-दुर्गन्ध नाशके लिये—कपूरके साथ।

४—कांतिवृद्धि और पुष्टिके लिये—जायफल और गोदुग्ध या शहदके साथ कुछ

दिनों तक सेवन करानी चाहिये।

५—कफप्रधान प्रमेहमें—तुलसीके पत्तोंके साथ या मिश्री और शहदके साथ देनी चाहिये।

६—गुल्ममें—सोहागेके फूलके साथ सेवन करानी चाहिये।

७—रक्तपित्त और ऊर्ध्वश्वासपर—हल्दीके चूर्ण और शहदके साथ दिनमें २ या ३ बार कुछ दिनों तक देते रहें।

८—पित्तशमनके लिये—मिश्रीके साथ।

९—वीर्यस्तम्भनके लिये—नागरबेलके पानमें या भाँग अथवा धत्तूरेके साथ प्रातः सायं दिनमें दो बार देनी चाहिये।

अथवा वंशलोचन, छोटी इलायचीके दाने, मुल्तानी मिट्टी, तीनों १-१ तोला तथा वंगभस्म ६ माशे मिलाकर खरल करें। फिर उसमेंसे १॥ से ३ माशे तक दिनमें २ बार आवलेके जलके साथ देवें। रात्रिको आवला १ तोला १० तोले जलमें भिगो सुबह मसल कर छान लेवें। एवं सुबह भिगोकर शामको उपयोगमें लेवे। इस तरह ७ दिन तक वंगभस्मका सेवन करानेसे घोर वीर्यस्रावमें आशातीत लाभ पहुँचता है। यह प्रयोग ग्रीष्म आदि ऋतुओंमें निर्भयतापूर्वक किया जाता है। शीतकालमें देना हो, तो आवलेके जलको निवाया करके उपयोगमें लें।

१०—मंदाग्निमें—पीपलके साथ।

११—दाहपर—नीबूके रसके साथ।

१२—अजीर्णपर—आँवला अथवा सुपारीके साथ।

१३—अस्थिगत ज्वरपर—सितोपलादि चूर्ण, मक्खन और शहद, या गिलोय सत्व और शहदके साथ।

१४—कुष्ठपर—निर्गुण्डीके पत्तोंके रसके साथ।

१५—वात रोगमें—अजवायन अथवा असगन्धके साथ।

१६—उदरव्यथामें—छोटी हरडके साथ।

१७—वातगुल्ममें—मट्ठाके साथ।

१८—श्वासमें—जायफल, लौंग, और शहदके साथ।

१९—स्वप्नदोषमें—१ तोला ईसबगोलकी भूसीके साथ।

२०—बहुमूत्रमें सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ।

२१—सुजाक पर—वंग भस्म, मोती पिष्टी, चांदीका वर्क, इलायची और वंशलोचन को मिलाकर शहदके साथ दें।

२२—नासूरमें—नागवल्लीके साथ।

२३—जीर्णज्वरपर—पीपल और शहदके साथ।

२४—चर्मरोगपर—खदिर छालक्वाथके साथ ।

२५—उपदंशजनित शुक्रदोषपर—हरतालमारित वंगभस्म २-२ रत्ती चोपचिन्यादि चूर्णके साथ एक दो मास तक देव ।

२६—कृमिपर—शहदके साथ चटाकर ऊपर पूतिकरंजका रस अथवा पीपलामूलको दहीके तोड़मे मिलाकर पिलावें।

उपयोग—वंगभस्म लघु, सर, रुक्ष, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, रुचिकर, वर्णकारक,कफघ्न, किंचित् वातप्रकोपक और किंचित् पित्तकारक गुणवाली है । सब प्रकारके प्रमेह, कफ, कृमि, मन्दाग्नि, वमन, क्षय, पाण्डु, श्वास और नेत्ररोगोंको दूर करती है । शरीरके बलको बढ़ाती है । कलईमे तीक्ष्ण और उष्णगुण बहुत है, इस हेतुसे वंगभस्म वातघ्न है । परन्तु इसका रुक्षत्व आदि गुणोंका परिणाम क्वचित् वातप्रकोपक कारक भी होता है; तथा यह भस्म गुरु (जड़) होनेसे अनेक कफप्रधान प्रकृतिवालोंकी पचन-क्रियापर ज्यादा लाभ प्रतीत नही होता ।

वंगभस्मके मुख्य गुणधर्मके वर्णनके शास्त्र कारोंने कहा है :—

"वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्यप्नेऽपि शुक्रक्षयः ।"

वंगभस्मके गुणधर्मका यह बिलकुल यथार्थ वर्णन है । इसे अधिकरण सूत्र कहो तो भी कह सकते हैं । कारण, वंगके गुणोंकी मालिका इस केन्द्रके चारों ओर गूंथी हुई है । शुक्र ओर शुक्र स्थानकी अशक्तता प्राप्त होनेमे जो अनेक कारण हैं; उनपर वंगभस्म का उत्तम उपयोग होता हैं । यह मुख्यतः शुक्रस्थानको शक्ति प्राप्त करानेवाली होनेसे उस स्थान की निर्बलताको दूर करती है ।इस शिथिलतामें भी अनेक प्रकार है । फिर भी सब प्रकारके शैथिल्यके मूलमें प्रायः वातवाहिनियोंका शैथिल्य होता है । यह शैथिल्य वापवाहिनियों या मांसपेशियोंको प्राप्त होनेका कारण विशेषतः स्त्रीसेवन अथवा अन्य रीतिसे वीर्य दुरुपयोग होता है । इस तरह बार-बार वातवाहिनियों और स्नायुओंका उपयोग होते रहनेसे वे बिलकुल शक्तिहीन बन जाते हैं । किसीकिसी समय तो परिणाम यहां तक आ जाता है कि, मनमें स्त्रीकी भावनामात्र हुई या स्त्रीका दर्शन हुआ या शृंगार चेष्टा मात्र मनमें आई, बस तुरन्त शुक्रस्खलन होजाता है । स्वप्नावस्थामें ग्राम्य धर्म का चित्र मनम आया, बस तत्काल किंचित् क्षोभ होकर वीर्यस्राव हो जाता है । ऐसे विकारों में वंगभस्म का उपयोग अच्छा होता है ।

कितने ही मनुष्योंका तो शुक्रस्खलन नियमित रोज रात्रिको होता ही रहता है । इसका दुष्परिणाम इतने दूर पर पहुंच जाता है कि, कितनेक बिलकुल पागल हो जाते है । कितनोहीको अर्द्ध पागलावस्था प्राप्त हो जाती है । कितनेही नपुंसक, कितनेही शुष्क मुरदार, कितनेही जन्मरोगी, तथा अनेक दीन, हीन और अपने जीवनसे बिलकुल उपराम हुए हों, ऐसे बन जाते हैं । अनेकोंको झटके आतेरहते है । किसी सुन्दरीका दर्शन होनेके साथ मनमें विकृति होने लगती है । यहां तक कि झटके आकर मुंहमें झाग आने लगते है और जब शुक्रस्राव हो जाता है; तब इन विकारोंका गमन होता है । इन सब

प्रकारके विकारोंमें वंग भस्मका उत्तम उपयोग होता है। स्वप्नावस्थाके समान पेशाबके साथ शुक्रस्राव होता हो, तो भी वंगभस्मके सेवन से लाभ होजाता है।

वंगभस्मके गुणके लिये शास्त्रमें लिखा है कि —

"सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम्"

अर्थात् जैसे सिंह हाथियोंके समुदायका नाश करता है, वैसे ही वंगभस्म समस्त प्रमेह वर्ग का दमन करती है। यथार्थमें विचार किया जाय, तो वंगभस्म समस्त प्रमेहों पर पूर्णरूपसे लाभ नहीं पहुंचा सकती। विशेषतः वातज प्रमेहोंपर इसका उपयोग न करना, यही अच्छा मालूम होता है। सान्द्र, पिष्ट, शुक्र, हस्ति आदि प्रमेहों पर इसका उपयोग ज्यादा होता है। विशेषतः आरम्भमें दुष्ट स्त्रियोंके सहवाससे बारम्बार शुक्रस्राव करानेकी आदत होनेसे निस्तेज, निर्बल और गुप्त रोगियोंको होनेवाले सब जातिके प्रमेहोंपर वंगभस्मका उत्तम उपयोग होता है, अर्थात् शुक्रपात अथवा शुक्रक्षय, यह प्रमेहका निमित्त कारण होवे, तो ऐसे रोगियोंके शुक्रस्थानको शक्ति देनेके लिये वंगभस्म उत्तम औषधि है।

वृद्धावस्थामें प्रमेहका विकार होनेपर बारम्बार मूत्रोत्सर्ग ज्यादा परिमाणमें होने लगता है। वृद्धावस्थाके कारण मूत्रपिण्ड, मूत्रवह स्रोतसें और मूत्राशय, सब अवयव निर्बल होकर थक जाते हैं, जिससे बारम्बार पेशाब करना पड़ता है। इस विकारमें वंगका अच्छा उपयोग होता है। यदि तरुणावस्थामें शुक्रस्रावका अतियोग इस विकारका कारण हो, एवं वृद्धावस्थामें वातप्रधान लक्षण ज्यादा हों, तो वंगभस्मके साथ वातशामक औषधिकी योजना करनी चाहिये।

बस्ति (मूत्राशय) के मुखके पिण्ड (पौरुषग्रन्थि) की विकृति होनेसे मूत्रकृच्छ्रमें बस्तिके मुखके पास मूत्र आनेपर जलन होने लगती है। उसमें एक प्रकारकी वेदना होती है। इस विकार पर वंग भस्मका अच्छा उपयोग होता है। यदि यह रोग बहुत बढ़ गया हो और जीर्ण हो गया हो, तो शस्त्रकर्म (आपरेशन) ही कराना पड़ता है।

यह उपद्रव बहुधा प्रमेहके पश्चात् उत्पन्न होता है। वंग भस्ममें मेहनाशकत्व गुण होनेसे वंगका उपयोग इस विकारपर भी होता है। प्रमेहके विकारमें सब दोष और मेद, मांस आदि सब शरीरके घटकोंमें विकृति हो जाती है। फिर उस हेतुसे धातु परिपोषण क्रम बिगड़ता है, जिससे मल भाग शरीरमें संचित होता रहता है। उसे बाहर निकालनेके लिये बारम्बार मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग होते हैं। वंगभस्मके सेवनसे यह शारीरिक घटकोंकी ह्रास सदृश विकृति कम होती है, तथा मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्गकी अधिकता दूर होती है। यदि मधुमेहके रोगमें यह विकृति है, तो वंगभस्मकी अपेक्षा नाग भस्मका उपयोग विशेष लाभदायक है। परन्तु मधुमेहमें भी शुक्रपात रूप कारणकी प्रधानता हो, तो वंगभस्म या वंग-नाग मिश्रणका सेवन हितकर है। अनुपान रूपमें गुड़मारका अर्क देवें।

यदि मैथुनके अतियोग या अन्य रीतिसे अधिक शुक्रपातके हेतुसे क्षयरोग उत्पन्न

हुआ हो, तो उसकी बढ़ी हुई अवस्थामें भी वंग भस्म लाभ पहुंचाती है। यदि यह कारण न होनेपर भी छाती बिलकुल पोकळ निर्बल हो गई हो; छातीका संकोच हो जानेका आभास होता हो; एवं अति कष्टसे स फेद, पीला दुर्गन्धयुक्त कफ गिरना आदि लक्षण हों, तो भी उनपर वंगभस्मके अच्छा उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं । इस स्थानमें वंगमें रहा हुआ विशिष्ट धर्म अर्थात् क्षयनाशक धर्मका उपयोग होता है । वंगभस्मके साथ शृंगभस्म और रससिंदूर मिश्रित करके अथवा पृथक्-पृथक् भी दिये जाते हैं ।

वंग कृमिघ्न होनेसे कृमिजन्य ज्वर, कृमिज हृद्रोग, अथवा कृमिजन्य अन्य रोग पर इसका अच्छा उपयोग होता हैं । कृमिजन्य ज्वरके लक्षण प्रायः विषम-ज्वरके समान होते है । अनेक समय कृमिजन्य ज्वर और सन्तत आदि विषम—ज्वरके निदानमें कठिनता हो जाती है; परन्तु कृमिके विशिष्ट लक्षणोंसे इस ज्वरका परिचय हो जाता है। कृमिजन्य ज्वरमे उदर पीड़ा, वार-बार उवासी आना, उवाक और वमन होना आदि लक्षण ज्यादा होते हैं । यह ज्वर अनेक समय तो ४०-४२ दिन तक रहता है । ऐसे विकारमें बड़े उदर कृमि नही होते। बारीक, गोळ, चपटे, अथवा धान्यके अंकुर सदृश छोटे होते है। वंगभस्मका उपयोग इन सब छोटे कृमियोंपर होता है। वंगभस्मके सेवनसे कृमि मूर्छित हो जाते हैं; या परिपोषक द्रव्यके अभावमेंसे मर जाते हैं; परन्तु वे गिरते नही है । इसलिये वंग-भस्मके साथ आरग्वधादि क्वाथ या सनायका क्वाथ देवें, जिससे कृमि बाहर निकल जायं ।

शुक्रपातके भयंकर दुष्ट स्वभावके कारण अनेक नवयुवकोंकी पाण्डु रोगीके समान स्थिति हो जाती है । कोई भी कार्य करने का उत्साह नही होता । शरीर निस्तेज, पीळासा, शुष्क और कृश हो जाता हैं । पाचन शक्ति मंद हो जाती है । इस पाण्डुतामें रक्तकणोंकी साक्षात् न्यूनता नहीं होती; परन्तु यह पाण्डुता शुक्रधातुकी निर्बलताके कारणसे होती है; अर्थात् शुक्रोत्पत्ति करनेके लिये जो आवश्यक रक्तकी और वातवाहिनियोंका प्रेरक है, उस आवश्यक प्राणवायुकी अनुकूलता चाहिये । इन सबका पहिले अतियोग हुआ है । फलतः वे सब क्षीणहोनेसे रक्त बलहीन हो जाता है । इसी कारणसे त्वचा और सब अंगोंमें पाण्डुता आ जाती है । ऐसी स्थिति में लोह भस्म नाग भस्म, और जसद भस्मकी अपेक्षा वंग भस्मका उपयोग विशेष लाभदायक हैं । इसपर वंग भस्म, प्रवालभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण अथवा वंग, शिलाजीत और लोह भस्मका मिश्रण देना चाहिए । यदि केवल मानसिक निर्बलता ही हो और पाण्डुता न हो, तो वंगभस्म और अभ्रक भस्मका मिश्रण ब्राह्मीके अवलेह या अर्कके साथ देना चाहिये ।

मैथुनातियोग किंवा अधिक शुक्रपातके कारण कास रोग उत्पन्न होता है, वह शुष्क और त्रासदायक होता है । अनेक समय खांसते-खांसते चक्कर आ जाता है। इस रोगमें अत्यन्त निर्बलता होती है । इनमें भी यदि पहिले उपदंश रोग हो गया हो और कासके साथ श्वास रोगभी हो, तो हरतालमारित वंगभस्मका अच्छा उपयोग होता है । उपदंशके विषपर वंगका साक्षात कार्य यदि न होता हो, तो भी उसका शुक्रस्थानपर जो परिणाम

हुआ है उसपर इसका कार्य होता है।

वंगभस्म मन्दाग्निनाशक और दीपन-पाचन है। यह दीपनत्व मल्ल या वंगादिकाके समान या हींग, अजवायन, चित्रक आदिके समान अथवा नींबू, इमली आदिके समान नहीं है। इन सब द्रव्योंका कार्य साक्षात् पाचक पित्तके गुणोंको बढ़ाकर होता है। मल्लका कार्य भी पाचक पित्तके गुण बढ़ा करके ही होता है। फिर भी यह गुणवृद्धि साक्षात् पित्तपर कार्य कर नहीं होती। वंगभस्म पित्तज है; परन्तु साक्षात् कार्य नहीं होता। वंगका कार्य प्रारम्भमें शुक्रस्थान पर होता है। शुक्रस्थानके बलवान् होनेसे देहके समस्त अवयवोंको बलकी प्राप्ति होती है। इस तरह परंपरागत पचनेन्द्रिय संस्थान सशक्त बनती है, और मन्दाग्नि दूर होती है।

शुक्रकी निर्बलता-जनित अग्निमांद्य रोग अन्य प्रकारके अग्निमांद्य रोगोंकी अपेक्षा अति भयंकर त्रासदायक होता है। इस प्रकार अन्न पर ज्यादा अरुचि हो जाती है। अनेकोंको अन्नकी वास भी सहन नहीं होती। ऐसी परिस्थितिमें वंगभस्म अच्छा कार्य करती है। इस प्रकार और उसके परिणाम स्वरूप वमन-रोगमें वंगका अच्छा उपयोग होता है।

उदरमें कर्कस्फोट (Caucer) उत्पन्न होनेसे यदि वमन होती रहती हो, तो उसमें वंगभस्म लाभदायक है। इससे कर्कस्फोटके विषप्रकोपका शमन होता है। इस रोगमें आयुर्वेदीय औषधि उपयोगी है—वंग और ताम्र। इनमें ताम्र उग्र होनेसे कफ-प्रधान अथवा वातकफप्रधान दोषमें लाभदायक है। वंग इनसे अन्य दोषप्रकोपमें देनी चाहिये कर्कस्फोटकी रक्तवाहिनियोंकी विकृति वंगभस्मके सेवनसे दूर होती है। इस विकृति पर नागभस्मका भी उपयोग होता है।

हस्तमैथुन आदिके व्यसनका अतियोग या अन्य रीतिसे अधिक शुक्रपातके पश्चात् शक्तिपात होता है, उसे वंगभस्म दूर करती है। इसके सेवनसे इन्द्रिय समूहको शक्ति प्राप्त होने पर दुष्ट लालसा भी स्वयमेव न्यून हो जाती है।

वंगभस्म उत्तेजक औषधि नहीं है फिर भी शक्तिवर्द्धक है, और इसी गुणके हेतुसे वह वृष्य मानी गई है। शुक्रपातके अतियोगसे नपुंसकता आई हो, तो उसे यह दूर करती है। कितनेही मनुष्योंमें पुरुषत्व होनेपर भी मनकी भावना रतिके प्रतिकूल होती है, अर्थात् रति करनेमें प्रेम नहीं है, और अनेकोंको अंडकोष आदि इन्द्रियोंकी वृद्धि योग्य परिमाणमें न होनेसे पुरुषत्वमें कुछ न्यूनता रहती है। इन सब प्रकारोंमें वंगभस्म अच्छा काम करती है।

वंगभस्म शुक्रस्थान और शुक्रधातु, दोनोंको शक्ति और पुष्टि देनेवाली है। अतः इसके सेवनसे शुक्रस्थान सशक्त बनता है, और शुक्र धातु सम और यथायोग्य उत्पन्न होने लगती है। परिणाममें सब धातु पुष्ट हो जाती हैं। समस्त देहको पुष्टिकी प्राप्ति होती है। शुक्र धातुका कार्य, बल और बुद्धि उत्पन्न करनेका है। इन कार्योंकी सिद्धिसे सारा शरीर और सब इन्द्रियां प्रबल हो जाती है। सब धातु और इन्द्रियें सबल और दृढ होनेसे देहका वर्ण सुन्दर हो जाता है। शरीर तेजस्वी, स्फूर्तिवान और विश्वासप्रतीत होता

है; बुद्धि तेजस्वी बनती है; और स्मरण-शक्ति बढ़ जाती है।

वंगभस्मका कार्य पूय उत्पन्न करनेवाले जन्तुओं पर जन्तुघ्न है। व्रणमेंसे पूय गाढ़ा पीले रंगका निकलता हो, ऐसे रोगियोंकी व्रणरोपणार्थ अन्य क्रिया करनेके साथ वंगभस्म का सेवन करानेसे सत्वर ज्यादा लाभ होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

शुक्रधातुके २ कार्य हैं—गर्भसंजनन और बुद्धिवर्धन। गर्भसंजननके लिये उपयोग न होने पर जो वीर्य संचित रूपसे रहता है, उससे बुद्धि और स्मरण-शक्तिको लाभ पहुंचता है। इस दृष्टिसे बंगभस्मको बुद्धि और प्रज्ञा बढ़ाने वाली कहा है, यह योग्य ही है।

स्त्रियोंके जननेन्द्रिय-सम्बन्धी विकारों पर वंगभस्मका अच्छा उपयोग होता है। अंडकोष (बीजाधार) की फलवाहिनियोंकी अशक्तिसे स्त्री-जननेन्द्रिय निर्बल रहती हो और इसी कारणसे मासिकधर्म न आता हो तो बंग भस्म और लोह भस्म एलुआके साथ मिला, गोली करके देनी चाहिये। अथवा वंगभस्मका सेवन कन्यालोहादि वटीके साथ कराना चाहिये।

वन्ध्यापन दूर करनेके लिये वंग भस्मका उपयोग होता है। वंध्यत्व अनेक कारणोंसे होता है। उनमेंसे यदि स्त्रियोंके बीज-कोषोंमें उत्पन्न होनेवाला स्त्रीबीज-डिम्ब (Ova) निर्बल हो; या बीजाधार अशक्त होनेसे बलवान स्त्री-बीजोंकी उत्पत्ति न हो सकती हो; अथवा स्त्रियोंकी मनोवृत्ति विकृत होनेसे वंध्यत्व रहता हो; प्रदरका विकार अतिशय बढ़जानेसे निर्बलता रहती हो; पूयमेह (सुजाक) के हेतुसे अत्यन्त अशक्ति आकर बन्ध्यत्व आया हो; अथवा फिरंग (उपदंश) के संसर्गसे अन्तरेन्द्रियकी शिथिलता, व्रण या अन्य विकृति हो जानेके पश्चात् बन्ध्यत्व आया हो, तो इन सब दोषोंपर बंग भस्मके उपयोगसे अच्छा लाभ पहुंचता है। गर्भाशय और बीजाधार सुदृढ़ होते हैं; रज शुद्ध होता है; बीज सबल होते हैं; निर्बलता दूर होती है; मन बलवान बनता है और गर्भ धारण हो जाता है।

अनेक स्त्रियोंको रजोदर्शनकालमें बस्ति भाग (गर्भाशय) में भयंकर शूल चलता है। इसमें अनेक कारण है। इनमें बीजाधारोंकी शिथिलता, रजस्राव रुक-रुक कर होना या रजस्रावका बिलकुल मार्गसे बाहर न होना, भीतर ही संचित होते रहना; इन कारणोंसे बस्ति भागमें पीड़ा होती हो; तो बंगभस्मके सेवनसे लाभ हो जाता है। विशेषकरके क्रोधी, दुराग्रही, निर्बल मनवाली, कोमल प्रकृति और कोमल स्वभाववाली अशक्त स्त्रियोंको वंग भस्म विशेष हितकर है।

बंग भस्म जीर्ण त्वचाके रोगोंपर भी अच्छा प्रभाव दिखाती है। हरतालमारित बंग भस्मका उपयोग उपदंशजनित त्वग्रोगमें अधिक होता है। त्वचाके रोगोंमें भी पुराना व्युची रोग (Eczema), जिसमें बहुत खाज आती रहती है; त्वचा काली और शुष्क हो जाती है; या छोटी-छोटी फुन्सियां और पीले-पीले फोड़े होकर पतला पीले रंगका जल जैसा स्राव या पूय जैसा गाढ़ा स्राव होता रहता है। इस रोगपर बाह्य

उपचारके साथ वंग भस्मका सेवन करानेसे सत्वर लाभ पहुंचता है। विकार जितना जीर्ण हो, उतना ही वंग भस्मका कार्य अधिक स्पष्ट होता है। मात्रा $\frac{1}{10}$ रत्ती जितनी सूक्ष्म देनी चाहिये। (औ गु ध शा के आधारसे)

वंग भस्म कफ और पित्त दोष, रस, रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र दूष्य, एवं आमाशय, यकृत्, प्लीहा, अन्त्र, त्वचा, वातवाहिनिया, वृक्कस्थान, मूत्राशय, गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, शुक्रस्थान, वृषण, हृदय, फुफ्फुस, मनोदेश और बुद्धि, इन स्थानोंपर प्रभाव दिखाती है। इनमें शुक्रस्थान पर अपना विशेष प्रभाव पहुंचाती है।

देहका योग्य विकास होनेके पहिले लडकियोंका पुरुष समागम होता है, तब स्थानिक शिथिलता उत्पन्न होती है। उस हेतुसे प्रदर रोग उत्पन्न हुआ हो, पतला स्राव होता रहता हो, तो वंगभस्म, फिटकरीके फूले, माजूफल और बबूलकी कच्ची फलीके चूर्णको मिला वर्ति बनाकर योनिमें रखनेसे शिथिलता दूर होकर प्रदर रोग निवृत्त होजाता है साथमें वंगभस्म, रससिंदूर और बबूलकी फलीके चूर्णका सेवन कराया जाय, तो विशेष लाभ पहुंचता है।

यदि वात पित्त प्रकोप सह प्रदर उत्पन्न हुआ हो, स्राव पतला, उष्ण, झागयुक्त हो, देहमें स्थान-स्थान पर वातज पीडा होती रहती हो, देह निस्तेज और निर्बल होगयी हो, तो वंग भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, गोदन्ती भस्म तथा असगंध, शतावर और गोखरू के चूर्णको मिलाकर प्रात साय दूधके साथ देते रहनेसे कुछ दिनोंमें रोग शमन हो जाता है।

कीटाणुजन्य कर्णपाक होनेपर कानमेंसे पूय निकलकर जहां लग जाता है, वहां पर ही फोडे हो जाते हैं। एवं बाह्य उपचार करने पर दीर्घकाल तक अच्छा नहीं होता। एक स्थानके फोडे दूर होते है, उतनेमें दूसरे स्थानमें फोडे तैयार हो जाते है। धीरे-धीरे विष अधिकाधिक स्थानमें फैलता जाता है। ऐसे विकार पर बाह्य उपचार (दशांगलेप आदि) के साथ अन्तरोपचारके लिये वंग भस्मका सेवन कराना विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

कभी कर्णपाक शमन होजाने पर कानके पीछे कफमेदज ग्रंथि उत्पन्न होजाती है। उसका उपचार न करने पर वह बहुत बढ जाती है। उसपर वंग भस्म १ रत्ती और ताम्र भस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती मिला उसमेंसे ३ विभाग कर ४-४ घण्टे पर दिनमें ३ बार शहदके साथ देते रहने और ग्रंथि पर निवाये सरसोंके तैलका मर्दन दिनमें दो बार करते रहनेसे थोडेही दिनोंमें ग्रंथि बैठ जाती है।

वातवृद्धिसे उत्पन्न वाताक्षेप पर वंग भस्म १-२ रत्ती और लौंग जायफल, दालचीनी, इन तीनोंकी काली राख ८ रत्ती मिलाकर २-२ घण्टेपर २-३ बार देनेसे चमत्कारिक लाभ हो जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध कलईको एक कडाहीमें डालकर चूल्हे पर चढावें। कलईका रस होनेपर उसमें पलास-पुष्प (केसूला) का चूर्ण थोडा-थोडा डालते जाय और लोहेकी कलछीसे हिलाते रहे। चलानेके लिये कलछी पर लकडीका दस्ता लगवा

लेनेसे हाथ नही जलेगा । ६ घण्टे तक तेज अग्नि देनेसे भस्म सफेद होजाती है। फिर अग्नि देना बन्द करें; और भस्मको कड़ाहीमें एक थाल रखकर ढक देवें । ठण्डा होने पर कपड़ेसे छानकर कच्ची भस्मको अलग करें। पक्की भस्मको घीकुंवारके रसमें ६ घण्टे खरल कर दो-दो तोलेकी टिकियां बनावे। प्रत्येक टिकियाको आकके पत्तोंमें लपेटकर ऊपर डोरा बाधें । फिर हांडीमें बन्द कर गजपुट देनेसे एक ही पुटमे भस्म सफेद होजाती है। यदि भस्म मुलायम न हुई हो, तो दूसरी बार गजपुट दें । (वै. चि. स.)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ समय मलाई और मिश्रीके साथया रोगानुसार अनुपानके साथ देवे ।

उपयोग—यह भस्म प्रमेह, प्रदर, धातुक्षीणता, बहुमूत्र, वीर्यस्राव, स्वप्नदोष श्वास, रक्तपित्त, पाण्डु आदि रोगोंको दूर करती है। स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, अत्यार्तव और कष्टार्तवमेंभी लाभदायक, वातनाशक, और शुक्रवर्द्धक है । विशेष वर्णन प्रथम विधि में लिखा है ।

तीसरी विधि—१ सेर शुद्ध कलईको कढ़ाहीमें डालकर रस करें । फिर हल्दी, अजवायन, जीरा, इमलीकी छाल और पीपल (अश्वत्थवृक्ष) की छालका अलग-अलग चूर्ण एक-एक सेर लेवे । पहिले थोड़ा-थोड़ा हल्दीका चूर्ण डालते जायं और बड़े कलछेसे चलाते रहें । अग्नि तेज देवे । हल्दीके चूर्णके समाप्त हो जाने पर अजवायनका चूर्ण डालते जाय, पश्चात् जीरा, इमलीकी छाल और पीपलकी छालका चूर्ण अनुक्रमसे डाले । इस तरह सब चूर्ण समाप्त होने पर कलईकी भस्म हो जाती है। फिर कढ़ाही भस्मको इकठ्ठी कर ऊपरसे मिट्टीका सराव ढक देवें और लगभग ६ घण्टे तक तेज अग्नि देनेसे भस्म सफेद रंगकी हो जाती है । पश्चात् कढ़ाही ठंडी होने पर भस्मको कपड़ेसे छान लेवें । सेर भर कलईमेंसे कोई-कोई समय १-२ तोले जितनी छोटी-छोटी कच्ची कलईकी गोलियां रह जाती है, उनको अलग करें । भस्मका रंग लगभग खड़िया मिट्टी जैसा सफेद होता है । (र. चं.)

वक्तव्य—इस भस्मको घीकुंवारके रसमे खरल कर दूसरी विधिमे लिखे अनुसार ४-६ गजपुट दें, तो मुलायम बन जाती है ।

मात्रा और उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार ।

चौथी विधि—तीसरी विधिकी वंगभस्मके साथ १२ वां हिस्सा हरताल मिल घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे तक खरल कर, टिकिया बना, सराव-सम्पुट करके गजपुटकी अग्नि दें । स्वांग शीतल होने पर पुनः हरताल मिला, घीकुंवारके रसमें खरल करा गजपुट दें। इस रीतिसे ७ गजपुट देनेसे काले रंगकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ रत्ती रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

उपयोग—यह भस्म हरतालके योगसे तैयार होनेसे उग्र स्वभाववाली है । जिसका शुक्र उपदंश आदि रोगसे दूषित हो गया हो; उसके लिये यह अति हितकर है ।

पुराना चर्मरोग, त्वचादोष, कृमिविकार, मोतीझरा, पुराना ज्वरविकार, सूक्ष्म ज्वर, जीर्णज्वर, पूयमेह (सुजाक), मन्दाग्नि आदि रोगोंको दूर करनेमें अन्य प्रकारकी वंग भस्मकी अपेक्षा यह अधिक हितकर है। शेष गुण प्रथम विधिमें लिखे हैं।

(६) त्रिवंग भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध कलई, शुद्ध सीसा और शुद्ध जसद, तीनों १५-१५ तोले लेकर कड़ाहीमें डालकर तेज अग्नि पर गरम करें। फिर घीकुवारके मूलके डंडेसे घोटते रहें। जब तीनों धातुओंका चूर्ण हो जाय तब हल्दीका चूर्ण ७। सेर लेकर, थोड़ा-थोड़ा डालते जाय और डंडेसे चलाते रहें। फिर भस्मको तवेसे ढककर १२ घण्टे तेज अग्नि देवें। स्वाङ्ग शीतल होने पर भस्मको धोलकर हल्दीके क्वाथ और घीकुवारके रसकी १४-१४ भावना देवें। बार-बार १२-१२ घंटे खरल करके छोटी-छोटी टिकिया बांध फिर धूपमें तापसे सुखा, सम्पुट कर गजपुट अग्नि देवें। इस तरह २८ पुट देनेसे मुलायम सुन्दर, पीले रंगकी उत्तम भस्म बनती है। (औ. गु. ध. शा.)

मात्रा—१ से २ रत्ती शहद, शर्बत बनफ्सा, शर्बत नीलोफर, आंवलेका मुरब्बा, दूध, घृत या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—त्रिवंगभस्म शक्तिदायक होनेसे नपुंसकत्व, मांसपेशियां और रक्तवाहिनियोंगत विकारपर उत्तम लाभदायक है। यह भस्म प्रमेहोंमें इक्षुमेह, हरिद्रामेह और लालामेह पर अधिक गुण पहुंचाती है। इसके सेवनसे बार-बार मूत्रोत्सर्गकी शंका होना, मवादकी उत्पत्ति ज्यादा होना ये विकार दूर होते हैं। मूत्रोत्सर्ग क्रिया पर इसका मुख्य उपयोग होता है। इस हेतुसे मधुमेहमें भी इसका उपयोग किया जाता है। परन्तु अकेली नागभस्मके सेवनसे मधुमेहमें प्राय अधिक लाभ होता है। मधुमेह सन्धिवातके पश्चात् उत्पन्न हुआ हो, या मधुमेही रोगीको बहुत समय पहिले सन्धिवात हुआ हो अथवा शिर दर्द, उदर पीड़ा, या अन्य जीर्णरोग पहिलेसे रहा हो और पश्चात मधुमेहकी उत्पत्ति हुई हो, तो नागकी अपेक्षा त्रिवंग अधिकतर हितकारक है। मधुमेहकी अत्यन्त वृद्धावस्था प्राप्त हो गई हो, और उसमें प्रमेहपिडिका (अदीठ, फोड़ा आदि) हो गई हो। तो त्रिवंग और नागकी अपेक्षा अकेले शिलाजीतका ही उत्तम उपयोग होता है।

त्रिवंग उत्तम वाजीकरण है। नपुंसकताको दूर करनेमें अच्छी उपयोगी है। अति वीर्यपात या अति स्त्री सेवनसे मांसपेशियां शिथिल होकर नपुंसकता हुई हो, बार-बार स्वप्नावस्था होनेसे नपुंसकता आई हो, या कामेच्छा तृप्त करनेको, बड़ी हुई लालसासे नपुंसकता आई हो, आदि कारण होने पर त्रिवंगका उपयोग उत्कृष्ट है।

यह भस्म वीर्यवर्द्धक होनेसे जननेन्द्रियकी मांसपेशियोंको शक्ति प्रदान करती है। इस कारण नपुंसकत्व न होनेपर भी स्वप्नावस्था या अन्य कारणोंसे स्वयं शुक्रस्राव होता हो, तो उस विकारपर त्रिवंगभस्मका उत्तम उपयोग होता है। नपुंसकत्वका एक प्रकार ऐसा है कि, पहिले पुरुषार्थ प्रतीत होता है, परन्तु स्त्री दृष्टिगोचर होने पर तुरन्त

नष्ट हो जाता है। भीति; अवराहट, लज्जा और चिन्ता अधिक होना आदि लक्षण होते हैं। इस विकारपर यह लाभदायक है।

स्त्रियोंके वंध्यत्वमें त्रिवंगका उपयोग होता है। गर्भाशय या योनि मार्ग में शारीरिक प्रतिबन्ध आनेसे वंध्यत्व आया हो, तो उस प्रतिबन्धको बाह्य क्रिया या शस्त्रसे दूर करना ही ही अच्छा है। ऐसा प्रतिबन्ध न हो, बीजाधारों (Ovaries) को अशक्ति, या संकोच अथवा फलवाहिनियों (Oviducts) की अशक्ति या संकोच हो, किंवा इन अवयवोंका पूरा विकास न होनेसे वंध्यत्व आया हो, तो इसके सेवनसे लाभ हो जाता है। जब बीजकोषोंका विकास नहीं होता; तब शरीर सुन्दर नहीं दीखता; नितंब भाग पूर्ण भरा हुआ नहीं भासता; बिल्कुल शुष्क बैठा हुआ होता है। ऐसे ही छाती भी योग्य परिमाणमें उठी हुई नही दीखती; संकुचित होती है। मासिक-धर्म प्रारंभ हो जानेपर भी चेहरेपर योग्य स्त्रीभाव नहीं आता; इन लक्षणोंसे अन्तर अवयव पूर्ण विकसित नहीं है, ऐसा जानकर त्रिवंगका सेवन कराना चाहिये।

यह भस्म स्त्रियोंकी प्रजननेन्द्रियको उत्तम शक्तिदायक है। ज्यादा संतति या थोड़े-थोड़े समयमें संतानोत्पत्ति होने और बार-बार गर्भपात होनेका स्वभाव हो जानेसे स्त्रियोंकी अंतरेन्द्रियमें निर्बलता आ जाती है। इस कारण बाह्य अवयव और शरीर भी कमजोर हो जाते हैं; ऐसे समय पर त्रिवंग भस्मका उत्तम उपयोग होता है।

बाल अवस्थामें असमय पर मासिक-धर्मका प्रारंभ होने या किशोरावस्थामें अधिक पुरुष-समागम होनेसे स्त्रियोंकी अंतरेन्द्रिय पीड़ित और निर्बल हो जाती है। इस कारणसे गर्भ नहीं रहता और कदाचित रह जाय, तो भी गर्भकी वृद्धि योग्य परिमाणमें न होकर गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है। प्रसव पूर्ण समय पर नहीं होता। यदि पूर्ण समयपर प्रसव हुआ, तो भी संतान बिलकुल कृश और टेढ़ी-बांकी जन्मती है। ऐसी स्त्रियोंकी अंतरेन्द्रियको शक्ति देने और कार्यक्षम बनानेके लिये त्रिवंग भस्मका सेवन लाभदायक माना है।

कामेच्छा मर्यादा बाहर होनेसे या अधिक समय पुरुष-समागम होनेसे स्त्रियोंके योनिमुखमेंसे सफेद, चिपचिपा या पतला स्राव (श्वेतप्रदर) होता है; यह स्राव कतिपय समय इतना अधिक होता है, कि इस स्रावके कारण स्त्री लाचार हो जाती है। इनमेंसे अनेकोंके मनमें उपभोग-चित्र आनेपर तत्काल अति स्राव हो जाता है; एवं आनुषंगिक कृत्य देखने, सुनने या स्मरण आ जानेपर भी स्राव हो जाता है। इस रोगमें त्रिवंगका अच्छा उपयोग होता है।

छोटी लड़कियोंकी खराब आदतके कारण या ऋतुस्नाता होनेके पहिले पुरुष समागम होनेसे अंतरेन्द्रिय निर्बल हो जाती है, जिससे थोड़े-थोड़े श्रममें थक जाती है योनिमुखमें से जल जैसा पतला स्राव सारे दिन होता रहता है। यह स्राव त्रिवंग भस्मके सेवनसे बन्द हो जाता है; और शरीरमें बल भी आजाता है। अनुपान रूपसे गिलोय

सत्व, शीतल मिर्च और गोमरका चूर्ण देवें। ऊपरमें दिनमें दो बार दूध पिलावें।

मांसपेशियों और रक्तवाहिनियोंकी विकृतिमें सर्वांगमें विशेषतः मस्तिष्कमें शूल निकलता रहता है। भीतरमें रक्तवाहिनियोंका आकुंचन होता है, और शूल भी निकलता है। क्वचित् ऊपरमें रक्तवाहिनी मोटी बनकर अशक्त हो जाती है। एवं जीवनीय शक्ति का इन रक्तवाहिनियोंके ऊपरका अधिकार नष्ट होनेसे हाथ-पैर उठाना या अन्य क्रिया करना अशक्यप्राय हो जाता है, हाथ-पैरकी शक्ति नष्ट होनेसे हाथ-पैरोंमें कम्प होता है, और शरीर कुब्ज बन जाता है। इस विकारपर त्रिवंग भस्मका अच्छा उपयोग होता है।

त्रिवंग भस्म वात और वातपित्त दोष, रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र, ये दूष्य; तथा मगज, वातवाहिनियां, वातवहमंडल, शुक्रस्थान, गर्भाशय, अण्डकोष और स्त्री बीजकोष, इन स्थानोंमें विशेष लाभ पहुंचाती हैं। (औ ग ध शा)

दूसरी-विधि—शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद, तीनों १५-१५ तोले लेकर कडाहीमें तेज अग्निपर रस करें। रस होनेपर हल्दी, इमलीकी छाल और पीपलकी छालका चूर्ण अलग-अलग ६०-६० तोले लेकर, क्रमशः थोडा-थोडा चूर्ण डालते जायं और बडे डंडेसे चलाते जायं। एक प्रकारका चूर्ण समाप्त होनेपर दूसरा और तीसरा चूर्ण डालें। फिर भस्मको तवेसे ढक, १२ घण्टे तक तेज अग्नि दें। स्वांग शीतल होनेपर भस्मको आम जडकी जटाके क्वाथके ३ और घीकुवारके रसके ८ पुट देनेसे उत्तम पीले रंगकी मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

तीसरी-विधि—शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद, तीनोंको समभाग मिला कडाहीमें डाल, चूल्हेपर चढाकर अग्नि तेज दें, और घीकुवारके मूलके डण्डेसे घोंटते रहें। चूर्ण हो जानेपर घीकुवारका रस डालते जायं और घोंटते रहें। ६ घण्टे बाद भस्म काली होनेपर अग्नि देना बन्द करें। स्वांग शीतल होनेपर कपडेसे छान लें। छनी हुई भस्मको घीकुवारके रसमें खरल कर, टिकिया बांध, सम्पुट करके गजपुट दें। इस तरह ३ गजपुट देनेसे मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा, अनुपान और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

(७) जसद भस्म

बनावट—शुद्ध जसद १ सेर कडाहीमें डाल, चूल्हेपर चढाकर तेज आग देवें, और लोहेके कलछेसे चलाते रहें। आगकी लपट उठनेपर नीमके पत्तोंका स्वरस २० तोले डालें। फिर आगकी लपटें उठें, तब पुनः २० तोले रस डालें। इस तरह ४ समयमें एक सेर स्वरस डालें। पश्चात् कडाहीमें मिट्टी अथवा लोहेका ढक्कन ढक कर ३ घण्टे तेज अग्नि देनेसे भस्म होजाती है। कडाही ठंडी होनेपर भस्मको कपडेसे छान ६ घण्टे घीकुवारके रसमें खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बनावें। पश्चात सूर्यके तापमें सुखा

सराव-सम्पुटमें रखकर गजपुट दें । इस तरह ३ गजपुट देनेसे भस्म मुलायम और गुण-कारी बनती है ।

सूचना—स्वरस निकालनेके पहिले पत्तोंको जलसे धो लेवें । फिर कूट स्वरस-यन्त्रमें बन्द कर बाष्पपर पकाकर यथाविधि स्वरस निकाल लेवें ।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ समय मक्खन-मिश्री, दूध-घृत, मिश्री या मलाईके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानसे । नेत्ररोगमें अंजनार्थ २ रत्ती जसद भस्म २ तोला गायके मक्खनमें मिलाकर लेवें ।

उपयोग—जसद भस्म कषाय और अति शीतल गुणवाली है । रसवाहिनी और रसवहापिण्डकी विकृतिमें यह भस्म उत्तम ओषधि मानी गयी है; और कफपित्त शामक है । जसद भस्म नेत्र रोग, दाह, प्रदर, पित्तप्रमेह, खांसी, अतिसार, संग्रहणी, धातुक्षय, जीर्णज्वर, आदि रोगोंको दूर करती है । नेत्रोंको अत्यन्त हितकर है । इस भस्मके सेवनसे प्रमेह, पाण्डु और श्वासके रोग दूर होते हैं ।

ज्वर रोग, जिसमें सारे शरीरमें दाह और व्याकुलता हो और क्षयकी प्रथमावस्थामें सूक्ष्म ज्वर रहता हो, इन दोनोंपर जसद भस्मका अच्छा उपयोग होता है । कंठरोग, गंडमाला, अपची, अन्तरेन्द्रियमें शोथ, इन सब व्याधियोंमें इस भस्मके सेवनसे लाभ होता है ।

आंतोंमें शोथ होनेपर एक प्रकारका अतिसार होता है, साथमें वमन भी होती है । इस अन्त्रशोथके हेतुसे ज्वर भी आता है । उदरमें भयंकर शूल चलता है । इस रोगमें जीभ फटी हुई या धुले और रंगे हुए चमड़ेके समान मुलायम रहती है। आवाज बिल्कुल क्षीण हो जाती है । रोगी बिल्कुल कृश होजाता है । हाथ उठानेकी भी शक्ति नहीं रहती ऐसी भयंकर स्थितिमें भी जसद भस्मका बहुत अच्छा उपयोग होता है । इस रोगमें जसद भस्म १ रत्तीको ६ रत्ती मिश्रीके साथ मिलाकर ६ विभाग करें, और २-२ घण्टेपर एक-एक पुड़ियाको छाछ या दूधके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ होने लगता है। छाछ या दूध सहन न कर सकें, ऐसे रोगीको जवका यूष या चावलकी खीलोंका यूष देनेसे लाभ पहुंच सकता है। इसके साथ तालमखानेका जल देते रहनेसे अन्त्र को अच्छी सहायता मिलती है । (किसीको आंतोंमें शोथ आनेपर उस स्थानमें स्पर्श भी सहन नहीं होता; ज्वर १०१°-१०२° रहता है; बारम्बार वमन होना; अति तृषा, पतले दस्त लगते रहना, निद्रानाश और अति अशक्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं उनपर यह जसद भस्म मिश्रीके साथ दी जाती है तथा उदरपर दशांग लेप लगाया जाता है ।)

कंठमें रही हुई गांठोंके जीर्णशोथ और पुराने कंठरोग में जसद भस्म अच्छी लाभदायक है । वलय, वृन्द और बलास इन कंठरोगोंमें तो जसद भस्मका उपयोग नहीं होता; परन्तु स्वरघ्न, विदारिका, गिलायु, अधिजिह्व, उपजिह्व, इन विकारोंपर जसद भस्मका उपयोग होता है । इनके अतिरिक्त स्वरसाद और स्वरभंग, इन विकारोंमें

जसद भस्मका अच्छा उपयोग होता है। यदि ये विकार उपदंशजनित हों, तो जसद भस्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। क्षयजन्य या कफजन्य अथवा रसवहापिण्ड (लसीका ग्रन्थियों) की विकृतिमें उपद्रवस्वरूप उत्पन्न हुए हों, तो जसद भस्मके सेवनसे लाभ हो जाता है।

जन्मकालमें बालकोंकी शरीर रचनामें न्यूनता रह जानेपर किसीको स्तन, पीठ, मस्तिष्क आदि प्रदेशपर ग्रंथि होजाती है। फिर उसमेंसे रस निकलता है या रस न निकलते हुएभी ग्रंथि रसौलीके सदृश बढती जाती है। उसपर जसद भस्म, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व शहदके साथ देवें और ग्रंथिभेदन लेप (दन्तीमूल, चित्रकमूलकी छाल, सेहुंडका दूध, आकका दूध, गुड, गोडबी, कासीस और भिलावेका लेप) करनेसे गाठ बिखर जाती है।

पोथकी, अभिष्यंद, वर्त्म, शुण्डिका आदि नेत्ररोगोंपर जसद भस्मका उत्तम उपयोग होता है। इन रोगोंमें अंजनके लिये १ रत्ती जसद भस्मको आधे तोले शतधौत गोघृत या मक्खनमें मिलाकर दिनमें दो बार प्रातः सायं अंजन करना चाहिये। इस अंजनसे कनीनिका या तारेके पास पडा हुआ व्रण भी भर जाता है।

नाडीव्रण, भगंदर, दुष्ट व्रण आदि विकारोंमे बाह्य उपचारके साथ इस भस्मका सेवन करानेसे अच्छा लाभ पहुंचता है।

जसद भस्मका उपयोग क्षयकी विशिष्ट अवस्थामें होता है जब उरःक्षत होकर फुफ्फुसका कुछ भाग नष्ट हुआ सा भासता है, सारे शरीरमें विष फैलकर रक्त दूषित होकर तीव्र ज्वर आता है, प्रातःकालके समय प्रस्वेद आता है, अंग गल जाता है, बलमांसका क्षय होजाता है, ऐसे समयपर शिलाजतुके साथ इस भस्मका सेवन कराना लाभदायक है। इस औषधिके योगसे क्षयसे बना विष बननेकी क्रिया कम होजाती है और रोगीको शांति मिलती है।

जसद भस्म प्रमेहमें उपयोगी है। मेहके अन्य प्रकार और मधुमेह, इनमें आयुर्वेदकी दृष्टिसे अन्तर है। इस भस्मका उपयोग प्रमेह और मधुमेह, दोनोंमें होता है, विशेषतः पित्तप्रधान लक्षण होनेपर इसका उपयोग करना चाहिये। अंग टूटना, हाथ-पैरोंमें दाह सारा शरीर गरम रहना, अधिक तृषा, परन्तु उसका थोडे जलपानसे शमन होजाना, शरीरमें स्थान-स्थानपर सुई चुभानेके समान पीडाहोना, जिह्वा कठोर और शुष्क हो जाना, कंठमें रही हुई गांठा पर शोथ-सा हो जाना, भयंकर थकावट, थोडा-सा काम करने पर थक जाना, मूत्रमें मधु (शकरा) का परिमाण मर्यादामें होनेपर भी थकावट अधिक आना मस्तिष्कमें अस्वस्थता, निस्मृति, विचार शक्तिका ह्रास, थोडा-सा विचार करनेपर मन उपराम हो जाना, मस्तिष्क गरमसा होजाना, अनेक समय विचार करते-करते मन शून्य होजाना इत्यादि लक्षण पित्तजन्य क्षार, नील, काल, पीत (हारिद्र), रक्त, मांजिष्ठ, इन ६ जातिके प्रमेहोंमें होते हैं। इन सबपर इसका उत्तम उपयोग होता है।

मधुमेहकी आधुनिक उत्पति अनुसार इन्सूलिन (Insuline) नामक मधुपिण्डोंमेंसे निकाला हुआ द्रव्य मधुमेहमें उपयोगी है। इन्सूलिनकी पूर्ति कम हो जानेपर रक्तमें शक्कर (मधु) अधिक हो जाती है। पश्चात् वह रक्तमेंसे मूत्र द्वारा बाहर निकलती है। इस हेतुसे इन्सूलिन शरीरमें बाहरसे डालनेपर निःसर्गतः कमी हुए या उत्पन्न हुए जो इन्सूलिन द्रव्य, वह बाहरसे मिल जानेपर उसका शर्करा (मधु) नियमनका कार्य अच्छी रीतिसे हो सकता है। मधुमेहमे मूत्रमें मिलने वाली या रक्तमें संचित होने वाली शर्करा अग्न्याशय (Pancreas) से उत्पन्न अन्तरस्राव (Internal Secretion) अर्थात् इन्सूलिन द्रव्यके अभाव का परिणाम है। यह आधुनिक मान्यता है।

सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर अन्य उपाय भी मधुमेहमें करनेकी आवश्यकता है। अर्थात् अग्न्याशयमे मधुद्रावक द्रव्यका अभाव क्यों हुआ ? इस बातका निर्णय दोष-दूष्यके विचारसे अधिक स्पष्ट हो सकता है। जब दोष-दूष्योके वैषम्यके कारणसे ही यह उत्पन्न हुआ है, तब दोष-दूष्योंकी विषमता दूर करना ही इसके नाशका अंतिम और श्रेष्ठ उपाय है। इस उपायके लिये जसद भस्म उपयोगी औषध है।

पाण्डुरोगमे हाथ-पैरका टूटना, रसवाहिनी और रसवह पिण्डों की विकृति अधिक हो और पित्त दोषकी प्रधानता हो, तो जसद भस्मका उपयोग करना चाहिये।

गलेकी गांठ या उदरग्रंथि बढ़नेपर श्वासका दौरा होता हो; या श्वास रोग और इन गांठोंका साहचर्य हो, तो जसद भस्मका सेवन कराना चाहिये। अनुपान-शहद-पीपल या सितोपलादि अवलेह।

जसद भस्म कफ और पित्त दोष, रस और मांस दूष्य; तथा रसवाहिनी, रसवहा ग्रथियां, आंत, कण्ठ, नेत्र, वृक्क, अग्न्याशय, यकृत् और उरपर लाभ पहुंचाती है।

(औ. गु. ध. शा.)

सूचना—जसद भस्म जल पर तैरने लगे और नींबूके रसमें डालनेसे बुदबुदे न उठे, उसे निरुत्थ समझना चाहिये।

दूसरी विधि—पहिली विधि अनुसार कड़ाहीमें तैयारकर कपड़ेसे छानी हुई जसद भस्मको नींबूका रस, हल्दीका क्वाथ और घीकुंवारका रस, इन ३ ओषधियोंकी क्रमशः ३-३ भावना देकर बारबार गजपुट देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म तैयार होती है।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार। प्रथम विधिकी अपेक्षा यह भस्म अधिक गुणदायक होती है।

इस भस्मको कतिपय चिकित्सक ९ पुटके स्थानमें ४२ पुट देते हैं। अधिक पुट देनेसे अधिक गुणवाली होती है।

(८) नाग-भस्म।

प्रथम विधि—एक सेर शुद्ध शीशेको कड़ाहीमे डाल चूल्हेपर चढ़ाकर तेज अग्नि दें। रस होनेपर शुद्ध थोड़ा-थोड़ा मैनशिल डालते जायं; और ताजे अड़सेके मोटे डंडेसे चलाते रहें। इस रीतिसे धीरे-धीरे समान मैनशिल डाल देनेसे धूल जैसी सूक्ष्म

भस्म हो जाती है। पश्चात् लोहेके तवेसे भस्मको ढककर ६ घण्टे तक तेज अग्नि देवें। फिर कड़ाही ठंडी होनेपर उतार, छानकर कच्ची भस्मको अलग निकाल देवें। पश्चात् छनी हुई शीशा भस्ममें १ सेर शुद्ध गंधक मिलाकर ६ घण्टे नीबूके रसमें खरलकर शिवलिंगके सदृश लम्बा गोला बनाकर सूर्यके तापमें सुखावें। फिर सराव-संपुटमें रखकर गजपुटमें फूक देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। यह भस्म काली होती है, परन्तु अति गुणकारी है। इस भस्ममें अष्टमांश मैनशिल मिला-मिलाकर अडूसेके पत्तोंके रसके साथ १२-१२ घण्टे खरलकर २१ गजपुट दिये जाय तो, आशु फलप्रद बनती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय शहद, दूध, मक्खन मिश्री, त्रिफलादि चूर्ण और घृत, हल्दी, आंवला और शहद या रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

अनुपान—१ घोर-प्रदरपर-वंशलोचन, जीरा, इलायची और मिश्री।
२—आमातिसारमें—सोंठ और सौंफका चूर्ण।
३—गुल्ममें—सोंठ और कालानमक।
४—कफ, वायु और जलोदर पर—अजवायन, पीपल और शहद।
५—उपदंशपर—शीतलचीनी और इलायचीका चूर्ण।
६—धातुक्षीणता पर—मक्खन और मिश्री।
७—मधुमेहमें—शिलाजीत।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे प्रमेह, नेत्ररोग, गुल्म, प्लीहावृद्धि, प्रदर, अतिसार, ज्वर, रक्तगुल्म, आमाशय वृद्धिसे होनेवाला अम्लपित्त, मन्दाग्नि, अपची, गण्डमाल, धातुक्षय, श्वासनलिकाकी सूजनसे होनेवाली खांसी, आमवात, निर्बलता, शिरदर्द, यकृत् रोग, श्वास रोग, सब प्रकारके नेत्ररोग, धनुर्वात आदि वात रोग, पाण्डु, ये सब रोग दूर होते हैं। इस नागभस्मके सेवनसे रस धातुसे लेकर शुक्र धातु तक, सब धातु क्रमसे पुष्ट होकर उत्तम शक्ति आती है। सब अवयव पुष्ट और अग्नि प्रदीप्त होती है।

जब आमाशयका आकार बढ़नेसे अम्लपित्त हो जाता है तब प्रायः दाह, अतिशय तृषा, तुरन्त वमन करनेकी इच्छा होना, इत्यादि लक्षण होते हैं। ये विकार अन्त परिमार्जनसे कम हो जाते हैं। इस लिये एक समय अन्त परिमार्जन (वमन आदि शोधन) करके नागभस्म देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है। नागभस्मके योगसे आमाशयके आकुंचन होनेमें सहायता मिलती है। उदरमें व्रण होकर अम्लपित्तके समान उत्पन्न हुआ विकार भी नागभस्मके सेवनसे दूर हो जाता है। इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है, यदि रोग जीर्ण हो गया हो तो, नागभस्मका उपयोग अवश्य करना चाहिये।

अपची और गण्डमाला रोगमें गांठ सूज जाती है, उतनी ही दोषोंकी दुष्टी नहीं है, परन्तु यह विकार प्राकृतिक है, अर्थात् सारे शरीरमें दोष-दुष्टी फैलनेपर होता है। इस विकारमें एक ऐसी अवस्था आती है कि, सब धातु शुष्क और त्वचा भी शुष्क

हो जाती है। अस्थिपर त्वचा लपेटी हुई हो, ऐसी बाह्य अवयवोंकी अवस्था भासती है। कंठमाला-अपचीकी गांठ कठोर या सूजी हुई और ऊपर अधिक उठी हुई भासती हो तो, उसपर अन्य ओषधियोंकी अपेक्षा इस भस्मका उपयोग अच्छा होता है। इसके सेवनका आरम्भ होनेपर थोड़े ही दिनोंमें गाठोंकी कठोरताका ह्रास होता है। सब धातु शनैःशनैः पुष्ट होने लगती है। इस तरह वह गंडमालाके उत्पादक विकारको कम करानेके लिये भी उपयोगी है। नागभस्म प्राकृतिक रोगकी उत्तम औषधि है। प्राकृतिक रोगके दो प्रकार हैं। पहिले प्रकारका रोग अति दृढ़ जड़ वाला, दीर्घ काल पर्यन्त रहने वाला, त्रास देनेवाला, एवं एक समय मिट जानेपर पुनः पुनः उठनेवाला होता है। क्वचित् कुछ काल तक बिल्कुल नष्ट हो जानेका भास होता है परन्तु, थोड़ासा कारण मिलनेपर पुनः दर्शन देता है। दूसरे प्रकारका रोग न्यूनाधिक परिमाणमें एकसा बना रहता है। पहले प्रकारकी व्याधियां—उन्माद, अपस्मार आदि हैं। दूसरे प्रकारके रोग मधुमेह, गंडमाला क्षय आदि हैं। इनमें नित्य टिकनेवाले दूसरे प्रकारके रोगोंपर नागभस्मका अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रथम प्रकारके रोगोंमें अभ्रक भस्म तथा द्वितीय प्रकारके रोगोंमें नाग भस्म लाभदायक है।

नागभस्मका उपयोग मधुमेहमें उत्तम होता है। मधुमेह विकार सारे शरीरमें व्यापक दोष और सब धातुओंकी विकृति होनेपर उत्पन्न होता है। आयुर्वेदकी दृष्टिसे मधुमेहमें वात, पित्त, कफ, तीनों दोष और रस, रक्त, मांस, मेद, वसा, लसिका, मज्जा, शुक्र और ओज, ये सब धातुएं दुष्ट हो जाती हैं। इन सबकी क्रिया परस्पर एक दूसरेपर होनेके पश्चात् मधुमेह उत्पन्न होता है। इस सिद्धातके अनुरोधसे चिकित्सा करनी चाहिये। अर्थात् त्रिदोष अथवा चैतन्याणु भवनक्रियामें जो विकार हुआ हो, उसे दूर करना प्रथम कर्त्तव्य है। इस तरह जब त्रिदोषमें उत्पन्न हुई विकृति दूर होती है, तभी उस-उस अणुकी बनी हुई पृथक् पृथक् धातुओंमेंसे दुष्टी दूर होती है। त्रिदोषमें इस रीतिकी दुष्टिके दो प्रकार हैं। एक अब्धातु उत्पादक, दूसरी अब्धातु शोषक। मधुमेहमें पहिले प्रकारकी दुष्टी होती है। नागभस्मका उपयोग इस प्रथम प्रकारकी दुष्टीके शमनार्थ होता है। इसका सेवन करनेपर प्रथम तृषा कम होती है। द्वितीय कार्य मधु (शर्करा) कम करनेका है, वह भी सत्वर होने लगता है। यह कार्य इस भस्ममें शक्तिवर्द्धक गुण होनेसे सत्वर प्रतीत होता है। ऐसे समयपर गोदुग्ध मात्रका पथ्य रखनेसे अति शीघ्रतासे अच्छा लाभ पहुंचाता है। मधुमेहमें अन्य (कोथ आदि) उपद्रवोंके शमनके लिए इस भस्मके साथ शिलाजीत देनेसे ही विशेष फायदा होता है।

मधुमेहके अनेक रोगी स्थूल और अनेक कृश होते हैं। स्थूल रोगीमें मेदकी दुष्टी अधिक होती है। ऐसे रोगियोंका शरीरके परिमाणकी अपेक्षा बल भी कम होता है।

मेदस्वी मधुमेही रोगियोंके लिए नाग भस्मका उपयोग ज्यादा हितकर है और कृश रोगियोंको दाह आदि लक्षण अधिक परिमाणमें होनेपर जसद भस्म लाभदायक है।

नागभस्म कोष्ठशूलपर उपयोगी है। यह शूल एक विशिष्ट प्रकारका होना चाहिये। इसमें अन्न और सब कोष्ठांत अवयव बिलकुल अशक्त हो जाते हैं और उनका व्यापार शिथिल हो जाता है। यह शूल वातप्रधान या वातपित्तानुबन्धी होता है। इस रोगमें थोडी-थोडी वमन अधिक त्रासमे होती है और वमनका वेग मन्द होता है। ऐसे समय पर नाग भस्मका अच्छा उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त रंगके कारखानोंमें काम करनेवालोंको जो उदरशूल उत्पन्न होता है, उसमें भी नागभस्म लाभदायक है।

बद्धकोष्ठके हेतुमें शास्त्र शुद्धि नही होती। वह विशेषत आंतोंकी निर्बलताके कारण से होता है। इसका हेतु अनेक समय शुक्र क्षीणहोनेसे बद्धकोष्ठ होताहै। एव अन्य धातुओंमें क्षीणता हाजानेसे भी कोष्ठबद्धता होती है। इसमें शौचका वेग निर्बल हो जाता है। वेग उत्पन्न होनेपर भी अन्त्रकी बहिर्निसरण शक्ति न्यून हो जानेसे मल-प्रवृत्ति नहीं होती, ऐसे प्रकारके बद्धकोष्ठमें नागभस्म उत्तम कार्य करती है, आंतोको शनै शनै सबल बनाकर नियमित मल त्याग कराती है।*

अस्थिगत व्रणमें इस भस्मका अच्छा उपयोग होता है। अस्थि-धातुकी पुष्टिके लिये पार्थिव आदि घटकोंकी यह पूर्ति करती है।

मज्जागत दोषोंके योगसे अस्थि क्षीण और नरम होकर टेढी-बाँकी हो जाती हैं तथा, मज्जा भी दुष्ट हो जाती है। अस्थियोंके संधिस्थानमें हड्डी बढी-सी या दबीसी भासती है। कभी-कभी इस विकारके प्रारभमें और पश्चात्‌में भी भयकर वेदना होती है अस्थि और संधि स्थानोंमें तीव्र शूल उत्पन्न होता है। ज्वर, वमन, बेचैनी आदि लक्षण होते ह। ऐसी दशा प्रसूतावस्था और सगर्भावस्थामें भी हो जाती है। यह विकार अस्थिमज्जागत वातप्रकोपसे होता है, ऐसा आयुर्वेदका सिद्धात है। इसपर नागभस्मका अच्छा उपयोग होता है। अनुपान—आँवले, गोखरू और मिश्रीका चूर्ण देवें।

*नागभस्म अन्त्रको बल देती है, किन्तु इसके सेवन करने पर तुरत लाभ नहीं पहुंच सकता। अति कम मात्रामें अन्त्रको सबल बनाने वाली अन्य औषधि (अभ्रक भस्म और कुचिला) के साथ मिला देनी चाहिये और पथ्यपालन सह शांतिपूर्वक सेवन करानी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो रात्रिको मलको आगे सरकानेवाली इसबगोलकी भूसी या अन्य औषधिभी देते रहना चाहिये। नागभस्म अधिक मात्रामें अधिक दिनोतक नहीं दी जाती अन्यथा प्रतिक्रिया द्वारा रक्ताणुओंको हानि पहुंच जाती है। वृद्धोंको बिना नागा लम्बे समय तक देनेपर पाण्डुता आ जाती है। नाथसिंह

अशक्तिसे मलावरोध होकर अर्शरोग उत्पन्न हुआ हो, तो वह नागभस्मके सेवनसे दूर होता है । इस रोगमें शोथ होकर भीतरका हिस्सा बाहर निकलता है । वह कितनीही खटपट करने पर भीतर नही जाता, बाहर ही रहता है । अर्शके मस्से बिल्कुल मुलायम और निर्बल होते है । शौचके समय मलको बाहर निकालनेकी भी शक्ति नही रहती कृत्रिम उपायोंसे शौच-शुद्धि करनी पड़ती है । ऐसे विकारमें स्नायुओंका शैथिल्य हो तो नागभस्म देनी चाहिये । परन्तु शुक्रके अति दुरुपयोगके कारण अशक्ति, मलावरोध और अर्श हुए हों, तो, नागभस्मकी अपेक्षा वंगभस्मका उपयोग विशेष हितकर है ।

पित्तज गुल्म और रक्तज गुल्म, इन विकारोंपर नागभस्मका शक्तिवर्द्धक रूपसे उपयोग होता है । पित्तगुल्मके प्रारंभ-कालमें ही नागभस्मका सेवन कराया जाय, तो अधिक वृद्धि नहीं होती । रक्तगुल्मके प्रारंभमें तो किसी भी प्रकारकी योजना नहीं की जाती । रक्तगुल्म के प्रारंभमें तो किसी भी प्रकार की योजना नहीं की जाती । रक्तगुल्म जीर्ण होने पर (१० मास होजाने पर) ही उसका साध्यत्व होता है—("रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्") ।

ग्रहणी और अतिसार, इन व्याधियोंमें शरीर-बल क्षीण हुआ हो, तो रोगको दूर करनेके लिये जो प्रतिकार होना चाहिये, वैसा रोगनिवारक शक्तिसे नही होता; जिससे रोग दीर्घकाल-पर्यन्त बढ़ता जाता है । रोगी दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक क्षीण होता जाता है । ऐसे समय पर यदि ज्वर आदि लक्षण न हो, तो नागभस्म दी जाती है ।

नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्णभस्म, ये सब औषधियां जीवनीय (जीवनके लिये उपकारक) है । ये सब भस्में शरीरके घटकोंमें नया जीवन उत्पन्न करती है; और घटकोंको अन्नादिकोमेसे मूल अंशको उत्तम प्रकारके शोषण करनेकी शक्ति प्रदान करती है । यह इन औषधियोंमें विशेष गुण है । इनमेंनाग भस्म मांसपेशी आदिके लिये जीवनीय है । अतः इनकी शक्ति क्षीण होनेपर नागभस्मका उपयोग करना चाहिये ।

नागभस्मका वृष्यत्व (नपुंसकत्व नाशक) गुण जन्म षंढोके लिये तो प्रतीतिमें नही आता । परन्तु मधुमेहके समान क्षीणता उत्पन्न करनेवाले रोगोंमें यदि षंढता आई हो, तो नागभस्मके सेवनसे दूर होती है । यदि यह नपुंसकत्व स्नायुओंकी निर्बलताके कारण आया हो, तो भी नागभस्मका उपयोग होता है । एवं अंडकोषकी ग्रंथियोंकी निर्बलता से यह रोग उत्पन्न हुआ हो, तो इसके साथ शिलाजतु और स्वर्णभस्म आदि औषधका उपयोग करना चाहिये । पुष्पधन्वा रसमें नागभस्म है. यह रस नपुंसकत्व दूर करनेमें उत्तम है ।

यदि वातवाहिनी या मानसिक क्षीणता आदि कारणोसे पाण्डुरोग उत्पन्न हुआ हो, तो अभ्रकभस्मका सेवन अधिक लाभदायक है । रक्तस्राव या रजःस्रावकी अधिकतासे या मिट्टी खानेसे या कृमि आदि कारणोसे रक्तके रक्ताणु न्यून होकर पाण्डुरोग उत्पन्न

हुआ हो, तो लोहभस्म उपयोगी है। परन्तु अणुभवन क्रिया या धातुपरिपोषण क्रिया, हृदय आदि सब इन्द्रियां निर्बल हो जानेसे पाण्डुरोग हुआ हो, तो नागभस्म उत्तम कार्य करती है। इस भस्मको लोहभस्म और अभ्रकभस्मके साथ मिलाकर भी दे सकते हैं।

जीर्ण पक्षाघातके रोगमें अधिक अनुत्साह, विशेष करके शाखाश्रित, रक्तवाहिनियां, स्नायु, कण्डरा, सबमें ज्यादा निर्बलता आई हो और इसी कारणसे हाथ-पैरों और अंगुलियोंकी शक्ति क्षीण हो गई हो, तो नागभस्म देनी चाहिये।

मधुमेह, अन्य मेह और क्षीणता उत्पन्न करनेवाली अन्य व्याधियोंके अन्तमें भ्रम-सा होना, यह लक्षण होता है। मनमें निकम्मा-निकम्मा विचार आकर मनशून्य-सा हो जाता है। यह स्थिति ज्ञानेन्द्रिया अशक्त होने अथवा रक्तकी पूर्ति न होने या निर्बल हो जानेसे होती है। कितनेही रोगी विचारोंमें लीन हो जाते हैं, कितनेही अनैच्छिक कर्म ही भूल जाते हैं, व्यवस्थापूर्वक नहीं कर सकते। जैसे पेशाब करने की इच्छा उत्पन्न है, फिर भी उठनेकी अनिच्छा, या इसके लिये मिनटों या घण्टों तक विचार करते रहना, इस रीतिसे मूत्रको रोकनेसे शून्य-सी अवस्था हो जाती है। परन्तु उतना होनेपर भी मूत्रोत्सर्गकी सुध नहीं। ऐसे प्रकारके रोगियो पर नागभस्मका इतना अच्छा उपयोग होता है कि, अनेक समय एकाध दिनमें ही मनुष्यकी विचारोंमें मग्न होजाने वाली स्थिति दूर होकर मन और इन्द्रिया कार्यक्षम होजाते हैं। मधुमेहकी अंतिम अवस्था में सन्यास (मूर्च्छा) रूप उपद्रवकी प्राप्ति होजाती है। इसमें नागभस्म अनेक औषधियों मेंसे एक उत्तम औषधि है। अनेक समय इसके सेवनसे सन्यासके अति त्वरित दूर होनेके उदाहरण देखनेमें आये हैं।

हृदय और फुफ्फुस अशक्त होने से एक प्रकारकी शुष्क त्रासदायक कास, जिसमें आवाज गहरी हो जानेके समान खासना होता है। इस कास रोगमें कफ बिल्कुल नहीं गिरता। बारबार खांसीका वेग उठता रहता है ऐसे रोगमें नागभस्म अच्छा काम देती है। चिकित्सकोंको कर्कस्फोट (Cancer) में नागभस्मका उपयोग करके देखना चाहिये। वातप्रधान कर्कस्फोट होनेपर विशेष उपयोग हो सकेगा। वेदना अधिक हो, तो नागभस्म अच्छा कार्य करती है।

नागभस्म वात—विशेषतः व्यानवायु, दोष,—रससे लेकर शुक्रपर्यन्त सातों धातु, ये दूष्य, और मस्तिष्क, वातवाहिनियां (मज्जावाहिनी और आज्ञावाहिनी), स्नायु, आमाशय और अन्तःस्रावक पिण्ड, इन स्थानों पर विशेष लाभ पहुंचाती है।

नागभस्मके लिये शास्त्र मे लिखा है, कि:—

नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति
व्याधिविनाशयति जीवनमातनोति।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति
मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवितः सः॥

नागभस्मका सतत सेवन करनेसे सौ हाथीके समान बलकी प्राप्ति होती है; सब रोगोंका विनाश होता है; आयुकी वृद्धि होती है; जठराग्नि प्रदीप्त होती है; कामोत्तेजना होती है; एवं मृत्युका भी नाश होता है।

सूचना—कोई-कोई समय नागभस्मसे कोष्ठशूल उत्पन्न होता है। ऐसे समय पर थोड़े दिनोंके लिये भस्म बन्द कर देनी चाहिये।

यह भस्म अच्छी निरुत्थ न हुई हो, तो उपयोगमें नहीं लेनी चाहिये। कच्ची भस्मसे उदरशूल होनेकी विशेष संभावना है।

दूसरीविधि—एक सेर शुद्ध शीशेको कड़ाहीमें डाल, चूल्हेपर चढ़ा, तेज अग्नि देकर रस करें। फिर आकके फूल थोड़े-थोड़े डालते जांय और आककी जड़ोंके डण्डेसे चलाते रहें। ४ सेर आकके फूल लगभग ४ घण्टेमें डालनेसे भस्म होजाती है। पश्चात् कड़ाहीपर ढक्कन ढककर ६ घण्टे तक तेज अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर कड़ाही उतारकर भस्मको कपड़ेसे छान लेवें। कच्चे भागको अलग निकाल डालें और छनी हुई भस्ममें बारहवाँ हिस्सा मैनसिल मिलाकर अडूसेके पत्तोंके रसमें ६ घण्टे खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखा, गजपुट देवें। इस तरह १० गजपुट देनेसे पीले रंगकी उत्तम नागभस्म तैयार होती है। (वै. जि. सा.)

श्रीवैद्यराज सुखरामदासजी टी. ओझा इस प्रकारकी भस्म बनाते हैं। वे मिट्टीके कपालमें अर्क मूलके डण्डेसे शीशेको घोटते हैं। भस्म होनेपर घीकुंवारके रसमें ३ घण्टे खरल करा पेड़ेके समान एक टिकियाँ बांधते हैं। उसे मिट्टीके तवेके बीचमें ५ सेर गोबरीकी निर्धूम कुटी हुई अग्निके भीतर रख बाटी सदृश पका लेते हैं। इस तरह ४०-५० पुट देकर भस्म बना लेते हैं।

मात्रा—½ रत्तीसे २ रत्ती तक दिनमे दो समय देवें।

अनुपान—मुजाकमें बिहीदानेके लुआबके साथ अथवा गिलोयके रस और शहदके साथ। रक्तार्श (बवासीर) में अनारके रसके साथ। इस तरह और अनुपानोंकी योजना करें। विशेष उपयोग पहिली विधिमें लिखे अनुसार करना चाहिये।

सूचना—इस भस्मके सेवन-कालमें खटाईको बिल्कुल छोड़ दें।

तीसरी-विधि—लोहेकी कड़ाहीमें शुद्ध शीशेको रखकर पलासमूलके डण्डेसे ८ प्रहर घोटते रहें। अग्नि तेज देते रहनेसे लाल रंगकी भस्म तैयार होती है। (र च)

मात्रा,अनुपान और उपयोग—पहिली विधिमें लिखे अनुसार।

यद्यपि यह भस्म निरुत्थ नहीं होती, फिर भी अन्य भस्मके साथ उपयोग करनेमें अनेक ग्रंथकारोंने बाधा नहीं मानी। अग्नि ८ प्रहरके स्थानमें ८ प्रहर देनी चाहिये। यह भस्म स्त्रियोंके प्रदर रोग, नेत्र रोग और कफ प्रधान प्रमेहमें अच्छा काम देती है

श्री,वैद्यराज सुन्दरामदास टी ओझा इस प्रकारकी अनेक भस्म वर्षोंसे बनवाते रहते हैं। वे कड़ाहीमें पलास या वड़के डंडेसे शीशेका पाटवर बनाते हैं। फिर घीकुवारके रस में खरलकर २-२ तोलेकी टिकिया बांधते हैं। उनको सुखा सराव सम्पुटकर गजपुट देते हैं गजपुट देनेपर शीशा सजीव होता है और कुछ नीचे राखमें चला जाता है। यदि कड़ाहीमें तवेसे ढककर ६ घण्टे अग्नि देवें, तो शीशा सब कड़ाहीमें ही रह सकेगा। पुन डण्डेसे घोट भस्मकर ऊपरकी विधि अनुसार गजपुट देवें। इस तरह ४० पुट तक शीशा सजीव होता रहता है। शीशा मृत होने पर ६० पुट और दे देनेसे अति मुलायम शीशा भस्म बन जाती है।

यह भस्म मधुमेहमें जावसे १ रत्ती मक्खनके साथ १० दिनतक देनेसे मूत्रके साथ शक्कर का जाना बन्द हो जाता है। फिर १० दिन छोड़कर पुन १० दिनतक दें।

(३) पारद भस्म।

बनावट—शुद्ध पारद एक तोलेको कपरोटी की हुई अंग्रेजी पक्की आतशी शीशी (Flssk) में डालकर ऊपरसे ५ तोले एसिड सल्फ्यूरिक (गन्धकका तिजाब) डालें। शीशीको खुले मैदानमें सिलगते हुऐ कोयलोंकी अंगीठीपर धर दें। आधे घण्टे बाद शीशीके मुंहसे धुवां निकलना बन्द होनेपर शीशी उठा लें, और ठण्डी होनेपर शीशीसे श्वेत रंगकी पारद भस्म निकाल लें। भस्मका वजन २ माशे बढ़ जाता है। (सू० चि०)

डाक्टरोंमें इस भस्मको परसलफेट ऑफ मर्करी (Persulphate of murcury) कहते हैं। इसकी बनानेकी विधि रसकर्पूरमें देखें।

मात्रा—एकसे चार चावल तक मुनक्कामें रखकर निगल जाय। अथवा फीके दलिये (मिश्री अथवा नमक रहित) में रखकर निगल जाय। दांतको भस्म लगेगी तो दांत निर्बल हो जायगा।

उपयोग—यह भस्म उपदंश (Syphilis) और कुष्ठको दूर करनेमें अति उपयोगी है। उपदंशमें ३ से ७ दिन और कुष्ठ रोगमें १५ से २० दिन देनी पड़ती है। उपदंश दूर हो जानेके पीछे भविष्यमें पारदका विकार कभी देखनेमें नहीं आया। उपदंशमें १ समय और कुष्ठके रोगीको दिनमें २ समय देनी चाहिये।

सूचना—(१) किसीको वमन, विरेचन हो, तो भय न मानें।

(२) जिनको मसूढे या दांतोंमेंसे पूय निकलता हो, उनको यह भस्म न दें, अन्यथा दांत गिर जायगा।

(३) तिजाब शुद्ध लें। जल या तेल मला हुआ न लेवें।

(४) दूध दहीसे बने हुए पेड़ा, बर्फी, कलाकन्द आदि पदार्थ उपयोगमें न लें। घृतका सेवनखूब करें। फीका दलिया मात्र (थुली) और मूगकी दाल खावें। नमक, मिर्च, खटाई न लें।

(५) यह भस्म अन्य धातुओंकी भस्मके साथ मिलानेमें उपयोगी नहीं है। कारण, खटाई लगनेसे पुनः पारा मूल रूपमें आ जाता है। उपदंशके हजारों रोगियोंको हमने दी है; किसीको हानि नहीं हुई।

(६) इस भस्मको चीनी मिट्टीके प्यालेमे डाल ऊपर जल भर दें। ३ घंटे बाद जलको निकाल देवें। फिर ८-१० बार जल मिला-मिलाकर धोवें, जिससे गन्धकके तिजाबकी अम्लता निकल जायगी। फिर भस्मको सुखा लेनेसे पीले रंगकी बन जाती है। इस पीत भस्मको ४ गुने मक्खनमें मिलाकर मलहम बना लेवें। इसमेंसे रात्रिको सोनेके समय कांचकी सलाईसे अञ्जन करनेसे नेत्रमें जलस्राव होना और रोहे कटने, दोनों विकार दूर हो जाते हैं।

(१०) सुवर्णमाक्षिक भस्म।

बनावट—शुद्ध सोनामुखीको कुलथीके काढ़ेमें १२ घण्टे खरल कर, टिकिया बांध, सूर्यके तापमे सुखावें। पश्चात् सरावसंपुट करके गजपुटमें फूक दें। इस तरह अरंडीका तैल, मठ्ठे और बकरेके मूत्रमू क्रमशः खरलकर एक-एक गजपुट देनेसे भी भस्म तैयार होती है। यदि इस भस्मको बकरेके मूत्रके ३ पुट ज्यादा दिये जांय, तो भस्म विशेष लाभदायक बनती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार दूध शहद, गुलकन्द, गिलोय सत्व, त्रिफला, कुटकी, मक्खन मिश्री, या रोगानुसार अनुपानसे दें।

अनुपान—१—मसूरिका पर—कचनारकी छालके क्वाथके साथ देनेसे अन्तर्गत बाहर निकलता है।

२—पाण्डु, हलीमक, कामला पर—शहद-पीपल या मूलीके रससे।

३—स्वप्नदोष, जीर्णज्वर, मस्तकशूल पित्त प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र पर—मक्खन-मिश्री या शहद मिश्रीके साथ।

४—वमन पर—जीरा, मिश्री और शहदके साथ।

५—निद्रानाशमें-सोंठऔर आंवलेके मुरब्बाके।

६—वृद्धावस्थाकी निर्बलता, कुष्ठ, प्रमेह, पाण्डु और क्षय पर—गोदुग्धसे

उपयोग—यह भस्म पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर, निद्रानाश, मस्तिष्ककी उष्णता, पित्तविकार, नेत्रजलन, नेत्रकी लाली, वमन, उबाक, व्रणदोष, पित्तप्रमेह, प्रदर, मूत्र-

कृच्छ्र, शीर्षशूल, विषविकार, पार्श्व, उदर रोग, पाण्डु, कुष्ठ, कृमि और अश्मरी आदि रोगोंको दूर करती है। कफ पित्तविकृतिमें यह भस्म विशेष लाभदायक है।

सुवर्णमाक्षिक, यह लोहका सौम्य स्वरूप है। सुवर्णमाक्षिक भस्म स्वादु, तिक्त, वृष्य, रसायन, योगवाही, शामक, शक्तिवर्धक, पित्तशामक, शीतवीर्य, स्तम्भक और रक्तप्रसादक है। इसके योगसे रक्तप्रसादन होनेसे रक्ताणु शुद्ध होते और रक्त धातु सबल बनती है। लोहके अन्य कल्पोंमें जो उष्णता और तीव्रता आदि गुण हैं, वे इस भस्ममें नहीं हैं। यह कल्प अति सौम्य होनेसे कोमल प्रकृति, सुकुमार और अशक्त-स्त्री पुरुषोंके लिये विशेष रूपसे उपयोगमें आता है।

केवल पित्तविकृति अथवा कफपित्तप्रधान विकृतिमें माक्षिकका अच्छा उपयोग होता है। इसलिये इस भस्मका पित्तज शीर्षशूल, पित्तज अम्लपित्त, पित्तज परिणामशूल, पित्तज गुल्म, इन व्याधियों पर अवस्था-भेद और अनुपान-भेदसे उपयोग होता है।

पित्तज शीर्षशूलमें सूतशेखरका भी उपयोग होता है, परन्तु सूतशेखर देनेमें मुख्य लक्षण भ्रम (चक्कर) होना चाहिये। सूतशेखर वातपित्तात्मक विकारोंमें उपयोगी होता है। परन्तु जिस शीर्षशूलमें उबाक, मुँहमें कड़वापन, कोई भी अच्छा प्रिय पदार्थ खानेमें रुचि न हो और वमन होनेपर शीर्षशूल कम हो जाना आदि लक्षण हों, उसपर सुवर्णमाक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है। जीर्णशीर्षशूलमें भी अच्छा इलाज हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

बार-बार चक्कर आना, विचार करते-करते मन गुम हो जाना और चक्कर आना एवं सूर्यके तापमें फिरने, किसी भी उष्णवीर्य पदार्थके सेवन, जागरण, मगजके बड़े श्रम, शक्तिसे थोड़ा ज्यादा विचार होने आदि थोड़ी-थोड़ी बातोंसे चक्कर आ जाना, इन सब प्रकारके चक्करपर सुवर्णमाक्षिक भस्म देनी चाहिये। अनुपान रूपसे अनारका रस, मोसम्बीका रस, या अनार शर्बत आदिका उपयोग करें।

नेत्रशोथ, लाली, नेत्रदाह, ये सब अधिक, परन्तु परिमाणमें वेदना कम, अथवा नेत्रके अन्य दोष कम होने पर भी भयङ्कर दाह होना, यहाँ तक कि रोगीको ऐसी इच्छा हो कि, नेत्र पर बर्फ बाँध दूँ या शीतल जल छिड़कता ही रहूँ, इन सब लक्षणोंका कारण पित्त-दोष ही है। वात अथवा कफकी प्रधानता नहीं है। ऐसे पित्ताभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्द रोगोंमें सुवर्णमाक्षिकभस्मका सेवन लाभदायक है। खाने और अंजन करने, दोनों रीतिसे उपयोगी है। इस तरह उपयोग करनेसे भलीभाँति रक्त-प्रसादन हो जाता है। पित्तप्रधान जीर्ण नेत्ररोग (मोतियाबिन्दु, लिंगनाश और पापणीके नीचे बड़ी बड़ी फुंसियाँ हो जाना और मांस बढ़ना, इन विकारोंको छोड़कर शेष नेत्ररोगमें माक्षिक भस्मका सेवन कराया जाता है। माक्षिक भस्मके साथ प्रवालपिष्टी मिलाकर दिनमें दो बार देते रहने और रात्रिको सोते समय त्रिफला चूर्ण १-१ माशा शहदके साथ देते रहनेसे नेत्र-लाली और अन्य जीर्ण दोष शमन हो जाते हैं।

आगन्तुक कारण क्रोध आदि, अति जागरण और अति गरम पदार्थके सेवनसे

पित्तवृद्धि होकर रोगके वेगकी वृद्धि होजाती है । थोड़ी हलचल करने पर घबराहट हो जाती है । इस पर माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है ।

पित्त दोष दुष्टी होनेके पश्चात् उसका आश्रय, रक्त, रक्तवाहिनिया और हृदय, स्थान दुष्ट होते हैं । इन दोष, दूष्य और स्थान दुष्टीके कारण अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं । फिर जब ये रोग जीर्ण होते हैं, तब हाथ पैर और मुंह पर शोथ आता है । यह माक्षिकके योगसे अच्छा हो जाता है । सुवर्णमाक्षिक हृद्य, स्तम्भन, और रक्त-प्रसादन होनेसे, इन विकारोंपर अच्छा कार्य करती है । यह पर्णबीजकी जातिकी औषधि है; परन्तु पर्णबीजमे बेचैनी लानेका गुण होनेसे, वह लेनेपर अनेकोका मन खराब हो जाता है और वमन हो जाती है । माक्षिक ऐसी न होनेसे वह शरीरमे टहरती है; पचन हो जाती है और अपना हृदयकार्य अच्छी रीतिसे करती है ।

रक्तमे विदग्ध पित्तमिश्रित होनेसे पित्तके तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और द्रवत्व गुण बढ़ जाते हैं । इस हेतुसे रक्तवाहिनियोकी त्वचा पतली हो जाती है । इस तरह रक्तपित्त जब रक्तमे उष्णता आदि गुण बढ़कर और रक्तवाहिनियोकी अन्तर त्वचा पतली होकर रुधिरवाहिनयां फूटती हैं, और उनमेसे रक्तस्राव शुरू हो जाता है; तब वह आयुर्वेदके मतानुसार रक्तपित्त रोग कहलाता है । यह व्याधि अधोमार्ग और ऊर्ध्वमार्ग, दोनों ओरसे प्रवृत्त होती है । इस पर माक्षिक का अच्छा उपयोग होता है । इसके साथ प्रवाल-पिष्टी, हल्दी और सोनागेरू मिश्रित करके देनेसे अति शीघ्र और अच्छा लाभ होता है । इस रोगमे केवल माक्षिकके सेवनसे अच्छी चिकित्सा होनेके भी अनेक उदाहरण मिले हैं । भोजनमें दुग्धाशन कराना चाहिये । विशेपतः बकरीका दूध अधिक हितकर है । माक्षिक अधो रक्तपित की अपेक्षा उर्ध्वरक्तपित्तमे ज्यादा उपयोगी है।

आमाशय बढंने (आमाशकी अन्तर त्वचा विकृत होने एवं उदरमें व्रण होनेमे अम्लपित्त रोग हो जाता है । आयुर्वेदने इन सबका अन्तर्भाव अम्लपित्तमे (मतान्तर मे उदरशूलमें) किया है । इन अम्लपित्तोंमें कर्कट ग्रन्थि और उदरव्रण, इन दोको कम करके शेष अम्लपित्तोमें माक्षिक भस्म उत्तम कार्य करती है । उदरकी आकृति बढनेसे होनेवाले अम्लपित्तमे अपना स्तम्भक, शामक और स्वादुगुण पहुंचाकर पित्तका नियमन करती है, और साम्यावस्थाको स्थापित करती है । अन्तर पिच्छल त्वचा विकृत होनेसे होने वाले अम्लपित्तमे माक्षिकके लवणत्व अँशका उपयोग होता है । उदरमे पित्तोत्पादक अथवा रसोत्पादक पिण्डकी विकृति होनेसे उत्पन्न रोगमें माक्षिक भस्म में रहे हुए लोह अंश और बल्यत्व गुणके कारणसे आकुञ्चन होकर तय बलको प्राप्ति होकर कार्य होता है । इनके अतिरिक्त अम्लपित्त ज्यादा बढ़ने, अथवा पित्तकी तीव्रता ज्यादा बढ़नेसे होनेवाली उदरपीड़ा अथवा शिरदर्द, जो वमन होनेपर कम होजाता हो. उसपर सुवर्णमाक्षिक लाभदायक है । यदि वान्ति होने पर भी अच्छा न लगना, और शूल अधिक होना, ये लक्षण हों; अर्थात वातपित्तसंसर्गज दुष्टी हो, तो इसकी अपेक्षा सूतशेखर विशेप लाभदायक है।

अम्लपित्तमें कोई भी चिकित्सा चालू होनेके पहले अत्र परिमार्जन (वमन आदि संशोधन) करना अच्छा है। यह अपनी प्राचीन पद्धति अनुसार या नूतन पद्धति अनुसार किया जाय, तो भी चल सकता है। अम्लपित्त अत्यन्त ज्यादा परिमाणमें बढ गया हो, और इसीसे उदरमें व्रण होकर रक्तवाहिनियाँ टूटकर वमन होने लगती हो, वमनमें रक्त आता हो, तो इस विकारमें सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल पिष्टी, गिलोय सत्व और सोनागेरू मिलाकर देना लाभदायक है।

सुवर्णमाक्षिकको सर्वसामान्य रूपसे शक्तिवर्द्धक मान करके भी उपयोग होता है। इसमें लोहका अंश होने और यह लोह सौम्य होनेसे माक्षिकमें शीतल शक्तिवर्द्धक गुण आया है। इस हेतु नाकमेंसे रक्त गिरने और रक्त गिरकर चक्कर आनेपर सुवर्णमाक्षिक अनन्तमूल, रक्तचन्दन और पद्मकाष्ठके क्वाथके साथ दी जाती है।

निर्बलता, ज्यादा विचार या मनोभ्याघात, इनमेंसे किसी भी कारणसे भ्रम होना हो और चक्कर आता हो, इनमेंसे कभी-कभी तो भ्रम अत्यन्तावस्था तक चला गया हो, इतने तक कि यह मनुष्य तो पागल हो गया है, ऐसा दूसरोंको भासता हो, ऐसे बढ़े हुए लक्षणोंमें भी सुवर्णमाक्षिक कुष्माण्डके रसके साथ देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

नैतिक-उन्माद-रोगमें जबतक रोग नहीं बढा है, तब तक सुवर्णमाक्षिकका अच्छा उपयोग हुआ है, और इसे जटामांसी, नेत्रवाला और रक्तचन्दनके क्वाथके साथ देनी चाहिये।

शराबके अतियोग होनेसे मदात्यय व्याधि होकर चक्कर आने लगते हैं। वमन होना, वमनमें रक्त आना, नेत्र लाल हो जाना, दृष्टि मन्द होना, मन्दाग्नि, निद्रानाश, मुंह और सारा शरीर निस्तेज हो जाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस स्थितिमें माक्षिक भस्म कुटकी, पुनर्नवा और गिलोयके क्वाथके साथ देनेसे लाभ होता है।

रक्तार्श या पित्तार्शमें रक्त बहुत चले जानेसे सारे शरीरकी रक्तवाहिनियां तडतड उडने लगती हैं, शरीर निस्तेज हो जाता है, कितनोंहीको शोथ आ जाता है, ऐसे समयपर माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है। इस भस्मके सेवनसे रक्तकी उष्णता और पतलापन कम हो जाता है। अनुपानमें मिश्री, नागकेशर, तेजपात और इलायची देवें।

अपचन-जनित विसूचिकामें वमन बन्द करनेके लिये माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु माक्षिकका उपयोग विसूचिकाकी विषघ्न औषधिके साथ करना चाहिये। सुवर्णमाक्षिक भस्म और सूतशेखरका मिश्रण बार-बार अदरखके रसके साथ चटाया जाता है।

विसूचिका रोग शमन हो जानेपर जो निर्बलता रह जाती है, तथा अवशिष्ट लक्षणोंमें विशेषतः चक्कर, बार-बार वमन होना, कभी-कभी पतले दस्त हो जाना आदि त्रास रहनेपर माक्षिक भस्म और शंख भस्म मिश्रितकर आम के या आंवलेके मुरब्बेके

सुवर्णमाक्षिक स्वादु, रसोत्पादक, तिक्त और बल्य है । इस बल्यत्व गुण के कारणसे रस आदि धातुओंकी योग्य परिमाणमें उत्पत्ति कराती है । इस हेतुसे यह रसायन भी है ।

बस्तिका नियामक स्नायुओंकी अशक्तिसे बस्ति (मूत्राशय) में जितना चाहिये उतने परिमाणमें मूत्र भरा नहीं रह सकता; बूंद बूंद टपकता रहता है । इस विकारमें माक्षिक और शिलाजीत मिलाकर उपयोग होता है । पेठा,अश्वगंधा और मंजिष्ठाके साथ देना चाहिये ।

वातज या वातपित्तज हृद्रोगमें हृदयेन्द्रियकी चंचलता, बार-बार घबराहट, उबासी आना; प्रस्वेद, दाह, सर्वांगमें कम्प आदि लक्षण होनेपर सुवर्णमाक्षिक देनी चाहिये । यह भस्म हृदयपर शक्तिदायक होनेसे जीर्ण हृदरोगमें भी लाभदायक है । हृद्रोगोंमें हृदयके परदो (Valves) की विकृति मात्रमें यह कुछ भी उपयोगी नही है, शेष-सब वातज और वातपित्तात्मक रोगोमे हितकर है ।

कंठशालूक (गलेकी गांठ)-(Tonsils), लालापिण्ड (Sblivary glands),कण्ठ इत्यादि भागोंमे विकार होनेपर वेदना, शोथ, लाली, दाह आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो माक्षिक भस्म दी जाती है । यदि तीव्र ज्वर हो, तो माक्षिक भस्म नही देनी चाहिये, अन्यथा हानि होती है ।

शीतज्वरमे अनेक दिनों तक क्विनाइनका सेवन किया हो; क्विनाइन सेवन करने पर प्लीहावृद्धि हुई हो; फिर प्लीहा-वृद्धिसे उदर बढ़ गया हो; शरीरमें शोथ, घबराहट, वमन आदि लक्षण भी उपस्थित हुए हों; तो ऐसी स्थितिमें सुवर्णमाक्षिकका अच्छा उपयोग होता है । क्विनाइनके दुष्ट परिणामको शमन करनेके लिये यह उत्तम ओषधि है । क्विनाइनके अतियोग या क्विनाइन सहन न होनेसे उपन्न होनेवाले निद्रानाश, बधिरता, नेत्रदाह, मस्तिष्ककी निर्बलता, यकृद् विकार, मूत्रमे पीलापन, मूत्रमेदाह आदि लक्षणोको शमन करनेमे इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है । यह कार्य ओषधि प्रभावसे होता है ।

हृदयेन्द्रियकी व्याधिसे उत्पन्न शोथ या शीतज्वरके पश्चात् फीकापन होकर आई हुई पाण्डुता और पाण्डुतासे उत्पन्न शोथ या अन्य कारणसे पाण्डुता आकर आई हुई सूजन, साथ-साथ घबराहट, चक्कर, भ्रम, शीर्षशूल आदि लक्षण होनेपर माक्षिक अच्छी उपयोगी है ।

पित्तोत्पादक, तीव्र, दाहकारक, गर (अन्तरोत्पन्न विष) के कारण या विरुद्ध अन्नपानके कारण पित्तप्रकोप अधिक होनेपर माक्षिकका बहुत अच्छा उपयोग होता है; परन्तु गरघ्न चिकित्सा (संशोधन) करनेके पश्चात् माक्षिक देनी चाहिये ।

सर्वांगमे बारीक-बारीक फुंसियां होना, खाज चलना, सर्वांग, नाखून, त्वचा, **ओष्ठ** आदि निस्तेज होजाना; **इस** [illegible] नेक समय रक्तस्रावके पश्चात् **या अतिसारके**

पश्चात् ज्यादा अशक्ति आकर त्वचा पर छोटी-छोटी फुंसियां होना, त्वचा रूक्ष और कठोर होकर उसमें खाज चलना आदि विकारों पर सुवर्णमाक्षिकका बहुत अच्छा उपयोग होता है। अनुपान अनन्तमूल का क्वाथ दें। इस चर्मरोगमें ताप्यादि लोहका भी उपयोग होता है।

मूत्रातिसार (मधुमेहका पूर्व लक्षण विशेषरूप न होनेपर उत्पन्न हुआ मेह समान विकार), जिसमें मूत्र पीला, त्वचा पीली और फीके नाखून आदि लक्षण होते हैं; साथ-साथ दिन-रात ज्यादा परिमाणमें और अधिक बार पेशाब होता है, ऐसी परिस्थितिमें सुवर्णमाक्षिक भस्म अति लाभदायक है। जामुनके रसके साथ देनी चाहिये और पित्तज प्रमेहों पर अनुपान रूपसे गिलोय सत्व देना चाहिये।

शुक्रक्षय या रजःक्षयके विकारमें वंगभस्मके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म देनेसे ज्यादा लाभ होता है। त्रासदायक प्रदर विकारमें भी माक्षिक मधुकाद्यवलेह या शतावरी घनसत्वके साथ देनेसे उत्तम कार्य होता है। यदि रक्ता अतिवृद्ध न होगई हो, तो गोदन्ती भस्म भी साथमें मिला देनी चाहिये।

त्वचाका कालापन आकर उस पर छोटी-छोटी फुंसियां हो जाना, हाथ-पैरकी अंगुलियां मोटी होकर शून्यसी हो जाना, उनका स्पर्शज्ञान नष्ट हो जाना, शरीर पर जहां-तहां चकत्ते उठना, ऐसे विकारमें सुवर्णमाक्षिक भस्म गन्धक रसायनके साथ मिलाकर देनी चाहिये। अथवा सुवर्णमाक्षिक मात्र तुलसीके रसमें देनी चाहिये।

सुवर्णमाक्षिक भस्म पित्तज मानस रोगमें उत्तम कार्य करनेवाली औषधि है। सब प्रकारके मानसिक रोगपर इस औषधिका उत्तम उपयोग होता है। प्रवाल भस्म, शुक्ति भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण कर मलीके रसके साथ देनेमें अति उत्तम कार्य होता है।

सुवर्णमाक्षिक भस्म पाचक और रंजक पित्त, ये दोष; रस, रक्त, मज्जा और शुक्र, ये दूष्य; शिर, नेत्र, हृदय, आमाशय, यकृत, आन्त्र, बस्ति, अन्तःस्रावक पिण्ड (**Ductless Glands**), त्वचा, [illegible] और मलाशय, ये स्थान, सब पर लाभ पहुंचाती है।

(औ. गु. ध. शा.)

आक्षेपक वातके झटके बार-बार आते हों, उनके साथ वमन भी होती हो, जो आक्षेप दूर होने पर भी रह जाती है। उसपर सुवर्णमाक्षिक और सितोपलादि मिलाकर आमलेके मुरब्बेके साथ दिनमें ८ बार ३-३ घण्टेतक देनेसे वमनकी सत्वर निवृत्ति होती है।

अधिक धूम्रपान, उष्ण आहार अथवा अधिक नेत्रश्रमके हेतुसे नेत्रकी वात नाड़ियां दूषित होती हैं। फिर दृष्टि मन्द हो जाती है, किसीको नेत्रमें दाह होने लगता है, किसीको एक वस्तुकी दो वस्तु भासती हैं। इन विविध दृष्टि-विकृतिपर सुवर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण १ माशा, घी २ माशा और शहद ३ माशे मिलाकर प्रातःकाल और रात्रिको सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ हो जाता है।

सूचना—इस भस्ममें चमक नहीं रहनी चाहिये। सूर्यके तापमें देखनेपर चमक दीखे, तो कच्ची समझकर पुनः १-२ पुट दें।

नूतन और तीव्र ज्वरमें इस भस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये । इस भस्मके सेवन करनेवालोंको अम्लविपाक वाले पदार्थ, कबूतरका माँस, कुलथी, नये चावल और खट्टे पदार्थका त्याग करना चाहिये ।

दूसरी विधि—शुद्ध सुवर्णमाक्षिक, बकरेका मूत्र, मट्ठा, गोघृत और बिजौरेका रस १-१ सेर लेवें । सुवर्णमाक्षिकको कड़ाहीमें डाल चूल्हे पर चढ़ाकर तेज अग्नि देवें । और क्रमशः बकरेके मूत्र आदिको मिलाकर जला डालें । फिर भस्मको ढककर ६ घण्टे तेज अग्नि दें । स्वांग शीतल होनेपर भस्मको निकाल, अरंडीके तेलके ३ पुट देनेसे भस्म खूब सुन्दर और मुलायम बन जाती है ।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार ।

(११) मंडूर भस्म ।

बनावट—शुद्ध मंडूरको चौगने त्रिफलेके क्वाथके साथ कड़ाहीमें मिलाकर पकावें । त्रिफलेका क्वाथ सूखजाने पर भस्म हो जाती है । जब मंडूर और कड़ाही दोनोंका रंग लाल हो जाय तब आग देना बन्द करें । स्वांग शीतल होने पर भस्मको निकाल, गोमूत्र और घीकुंवारके रसके ३-३ पुट देनेसे विशेष गुणकारी और मुलायम भस्म बन जाती है ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें दो वार पीपल-शहद, आमका मुरब्बा, कुमार्यासव या अन्य अनुपानके साथ । बालकोंको माताके दूधमें ।

शोथ रोग में—मूत्रल ओषधिके साथ ।

त्रिदोषज शूल पर—त्रिफला चूर्ण, घृत और शहदके साथ ।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे पांडु, प्रमेह, शोथ, संग्रहणी आदि रोग मिटते हैं । बालक और कमजोर शरीर वालेको लोह भस्मकी अपेक्षा मंडूर भस्म विशेष हितकारी है; छोटे बालककी निर्बलता, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मिट्टी खानेसे होनेवाला पाण्डु, स्त्रियोके गर्भाशय और बीजकोषों की निर्बलता, युवावस्था होनेपर मासिकधर्म न आना आदि विकृतियाँ इसके सेवनसे नष्ट होती है । एवं यह हलीमक, कामला और कुम्भकामलाको भी दूर करती है ।

मंडूर शीतल, सौम्य और कषाय गुणवाला है । जो गुण लोहमें हैं, वे ही गुण मंडूर के भीतर न्यून अंशमें रहे हैं । मंडूरभस्म लोह भस्मकी अपेक्षा शरीरमें सत्वर पचन होती है और सम्मिलित हो जाती है । इसके अतिरिक्त मंडूर (लोह कीट) का कीटत्व अनेक वर्षो पर्यन्त रह जानेसे इसका रक्तपर, विशेषतः रक्ताणुपर सत्वर अच्छा परिणाम होता है । यह भस्म छोटे-छोटे बच्चोंके लिये अधिक उपयोगी है; यह इसका विशेष गुण है ।

मंडूरके योगसे रक्तमें रक्ताणु ज्यादा उत्पन्न होते है । अनेक भिन्न-भिन्न कारणोंसे रक्तके रक्ताणु कम होनेपर जब रक्त फीका बन जाता और त्वचाका वर्ण पाण्डु हो

जाता है तब पाण्डुरोग कहलाता है। इस रोगमें रक्ताणुओंकी न्यूनता होजानेसे हृदय के वेगकी वृद्धि हो जाती है। इस कारणसे नाडी तेज होजाती है नाडीके ठोके ज्यादा होते हैं। कारण, जितने रक्ताणु रक्तमें होंगे, उतने ही सारे शरीरमें शीघ्र-शीघ्र फिरते रहेंगे। शारीरिक इन्द्रियों और घटकोंको इन रक्ताणुओंका सान्निध्य प्राप्त होता रहे, और उसके द्वारा प्राणतत्त्वकी पूर्ति होती रहे, इसी कारणसे पाण्डु रोगमें नाडी तेज हो जाती है। इसलिये रक्ताणुओंकी वृद्धि करके इस विकृतिको दूर करना चाहिये। यह कार्य आयुर्वेदके मतानुसार लोहभस्म अथवा मण्डूरके योगसे रजक पित्त सम्यक् बनकर होता है। किन्तु आधुनिक शास्त्र कहते हैं कि, मज्जा धातु भी रक्ताणुओंको बढानेके लिये उत्तेजित होनी चाहिये। उससे भी रक्ताणु उत्पन्न होते हैं। कुछ भी हो, मण्डूर रक्ताणुओंको बढाता है, यह कथन बिलकुल सत्य है। पैत्तिक पाण्डुरोगमें इस भस्मका विशेष उपयोग होता है। इसके कषायत्व गुणके कारण नाडीका वेग भी मर्यादामें आ जाता, और पाण्डुता कम हो जाती है। पाण्डुरोगपर कोई भी औषधि लें, उसमें न्यूनाधिक परिमाणमें लोह अथवा विशेषतः मण्डूर भस्म अवश्य होती है।

कामला विकारमें पित्त लक्षण ज्यादा होनेपर मण्डूर भस्मका उत्तम उपयोग होता है। हाथ-पैर, नेत्र और मूत्रमें पीलापन, मूत्रेन्द्रियके चारों ओरकी त्वचा काली-सी होना, मल सफेद मैले रंग का होना। इत्यादि लक्षण हों तो, मण्डूर भस्म अवश्य देनी चाहिये। अनुपान कुमार्यासव या मूलीका रस और मिश्री। इस भस्मके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म मिला देनेसे और भी अच्छा कार्य होता है।

पाण्डुरोग जीर्ण होने अथवा बढनेपर एवं कुम्भकामला अधिक दिन रहनेपर सर्वांग शोथ उत्पन्न होता है। त्वचाके नीचे जलका संचय होता है, इसमें रक्ताणुओंकी न्यूनताही कारण है। यह शोथ नेत्र, उदर, गालऔर हाथ-पैरके ऊपरके भागमें होता है। शोथपर जोरसे अंगुली दबानेसे गड्डा हो जाता है। वह बहुत समय तक नहीं भरता। ऐसे रोगमें पाण्डुरोगके लक्षण होनेपर अथवा पाण्डुता कारण होनेपर मण्डूर भस्म अति उत्तम कार्य करती है। मण्डूरके सेवनसे रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है। रक्ताणु बढने पर हृदयकी गति नियमित और बलवान् बनती है, जिससे रक्तका पतलापन कम होकर त्वचाके नीचे संचित हुआ जल रक्तमें शोषित हो जाता और शोथ शमन हो जाता है। यह शोथ कामला के पश्चात् भी हो सकता है। कामला जब ज्यादा दिन तक रह जाता है तब, पाण्डुरोग के समान शोथ उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्थामें मण्डूरभस्मके साथ पुनर्नवा और शिलाजीत का उपयोग अति हितकर है।

कामला रोग अधिक दिन टिकनेपर सारे शरीरमें शुष्कता आ जाती है, त्वचा कठोर काली-सी हो जाती है, हाथ-पैरमें स्थान-स्थानपर त्वचा फट जाती है, उसे कुम्भ-कामला कहते हैं। उसपर भी मण्डूरका उत्तम उपयोग होता है। यकृत्के अनेक विकारमें कामला उत्पन्न हो जाता है। यकृत्के मांसार्बुदसे कुम्भकामला हुआ हो, तो मण्डूरकी अपेक्षा ताप्यादि लोह, ताम्रभस्म और वंगभस्मका ज्यादा उपयोग होता है। यथार्थमें तो यह प्रकार

साध्य होना अति दुष्कर है।

पाण्डु रोगके लाघरक, आलस, पालिक, कुम्भस आदि अनेक प्रकार हैं। इन सब पर न्यूनाधिक लक्षणोंके उपस्थित होनेपर मंडूर भस्मका उपयोग होता है। पाण्डु-रोगमें जब त्वचाका वर्ण हरा, श्याम, पीला, काला होकर-बल-उत्साह नष्ट हो जाता है; आलस्य, मन्दाग्नि, अरुचि, क्वचित् दुर्गन्धयुक्त वमन, दाह, तृषा, भ्रम, चक्कर, नेत्र पर बोझ-सा लगना, सूक्ष्म ज्वर, पौरुष कम हो जाना, अंग टूटना आदि लक्षण हो जाते हैं, त हलीमक कह जाता है। इस रोगमें भी मंडूर भस्मका उत्तम उपयोग होता है।

तरुण स्त्रियोंके हारिद्रक (पाण्डु) रोगमें मंडूरका उत्तम उपयोग होता है। यदि यह विकार मानसिक कारणसे हो, तो अभ्रक भस्म देनी चाहिये। अन्य कारणोंसे हो तो लोहभस्म अथवा मंडूर योग तानुसार देना चाहिये।

छोटे बच्चोंको यकृद्वृद्धि और प्लीहावृद्धि रोग होनेपर उस रोगकी नाशक योजनाके साथ शक्तिवर्द्धक और रक्तवर्द्धक रूपसे मडूर भस्मका उपयोग करना चाहिये। मंडूर भस्म मात्र देनेकी अपेक्षा लघुमालिनी वसंतके साथ देना विशेष हितकर है। फुफ्फुसा-वरणके जीर्ण विकारमें पाण्डुता विशेष होनेपर भी लघुमालिनी और मंडूरमिश्रण विशेष लाभदायक होता है।

बालकोंके अस्थिवक्रता रोगमें प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वके साथ मंडूर भस्म देना विशेष लाभदायक है। इस मिश्रणका २-२ मासके बच्चोंके लिये भी उपयोग हुआ है।

बालकों और स्त्रियोंको मिट्टी खानेसे होनेवाले पाण्डुरोगकी उत्पत्ति मिट्टी आँतोंमें संचित हो जानेसे होती है। इस विकारमें मंडूर भस्म लाभदायक है। पहिले मिट्टी का विरेचन करानेके पश्चात् मंडूर भस्म देनी चाहिये। पित्तात्मक और कफात्मक, दोनों प्रकारके रोगोंपर इसका उपयोग होता है।

कितनी ही लड़कियोंकी आयु बड़ी होनेपर अंग नहीं भरता; और न रजोदर्शन होता है; चेहरा और सर्वांग निस्तेज रहता है; गाल कुछ सूजेसे रहते हे और सूक्ष्म ज्वर आता रहता है इत्यादि लक्षण किसी एक रोगके कारणसे नहीं होते। इसके अनेक कारण हैं:—

(१) कन्याका बाल्यावस्थामें अति कमजोर रहना।

(२) मृद्वस्थि या देहको निर्बल बनानेवाला प्राकृतिक रोग।

(३) अतिसार, संग्रहणी आदिमेंसे अन्त्रकी कोई चिरव्याधि।

(४) यकृत्-प्लीहाके रोग।

इत्यादि कारणोंसे रोग हो जानेपर उनका अधिक त्रास या प्रादुर्भाव उस कालमें न हुआ हो, प्रथम व्याधिमात्र होजानेसे धातुक्रिया एक समय अशक्त और विकृत हुई हो, जिसके परिणामस्वरूप निर्बलता एक समान टिकी हो; संक्षेपमें पूर्व विकारके परिणाम हेतुओंसे रक्त जितना सुदृढ़ चाहिये उतना न हुआ हो; इनमेंसे एक या अनेक हेतुओंमें

लडकीका अंग पुष्ट नही बनता । एवं स्त्री-बीजकोषो और गर्भाशय आदि अवयवोका योग्य विकास न होनेसे रजोदर्शन नही होता। इस वस्तुस्थितिके लिये अन्य भी कारण हो सकते हैं । यदि उपरोक्त कारण हो तो, मंडूरको त्रिफले और घृतमें मिला पश्चात् शहद मिलाकर देनी चाहिये ।

शीतसह ज्वर अथवा विषमज्वर या अन्य प्रकारका ज्वर अनेक दिनो तक आता रहनेसे पाण्डुता उत्पन्न हुई हो, उसपर मंडूर का उत्तम उपयोग होता है ।

तीव्र पाण्डुरोगका प्रारंभ प्रायः ज्वर आकर होता है । क्वचित् साथ-साथ ज्वर भी बहुधा एक समान रहता है, वमन होती है, अनेकोको एक समान पतले-पतले दस्त होते रहते है, तथा चेहरा निस्तेज, श्वेत फीके रंगका हो जाता है । इस प्रकारमे मंडूरका उपयोग होता है । इस अवस्थामें मंडूरके साथ प्रवाल-पिष्टी और गिलोय सत्व या अमृतारिष्ट देना चाहिये ।

ज्यादा रक्तस्राव होनेपर आई हुई पाण्डुतामें मंडूर भस्मका उपयोग माक्षिक भस्मके साथ किया जाता है। रक्तस्रावके समान ज्यादा रजःस्राव होजाने या प्रसूतावस्थामें अधिक रक्तस्राव होजानेसे पाण्डुता आई हो, तो भी मंडूरका उपयोग करना चाहिये, विशेषतः पाण्डुता और शोथ एक साथ होनेसे मंडूरका अच्छा उपयोग होता है ।

कृमिजन्य पाण्डु रोगमें पहले अजवायनका फूल (थाईमल) और कर्पूरके समान कृमिघ्न औषधि देनी चाहिये। पश्चात् मंडूर भस्म अकेली या त्रिफलेके साथ देनी चाहिये ।

रक्तका परिमाण न्यून होजाने या रक्तमें रक्ताणुओका ह्रास होजानेसे अनेकोकी मानसिक स्थिति विलक्षण हो जाती है । वे अधिक विचार नही कर सकते। स्वभाव क्रोधी और सनकी बन जाता है । थोडासा भी इच्छा-विरुद्ध कार्य होनेपर सहन नही होता । मस्तिष्क और नेत्रोंमें निस्तेजता आजाती है। बेहोशी या जडता रहती है। ऐसी स्थितिमें मंडूर भस्म देनेसे उत्तम कार्य होता है ।

मंडूर भस्म रंजक पित्त, दोष, रक्त, मांस, मज्जा, ये दूष्य, तथा यकृत्, प्लीहा, फुफ्फुस, हृदय और आमाशय, ये स्थान, इन सब पर विशेष लाभ पहुंचाती है ।

(औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—शुद्ध मंडूर ३२ तोले लेकर १२८ तोले गोमूत्रमें पचन करें । सूखा चूर्ण होजाने पर ६४ तोले गोदुग्ध मिलाकर पचन करें। फिर कडाहीमें मंडूरको मिट्टीके तवेसे ढककर ६ घण्टे तक तीव्र अग्नि देनेसे मंडूर भस्म तैयार होती है । इस भस्मको "क्षीरमंडूर" भी कहते है । (वृ० मा०)

मात्रा और उपयोग—ऊपर लिखे अनुसार । यह भस्म परिणामशूलके लिये विशेष उपकारक है ।

सूचना—मंडूरसे किसीको उबाक या वमन होजाय, तो सुवर्णमाक्षिक भस्म के साथ मिलाकर देनेसे दोष शमन होकर गुण की वृद्धि होती है ।

तीसरी विधि—उपरोक्त मंडूर भस्मको त्रिफलेके क्वाथकी ३, गोमूत्रकी ३, भांगराके रसकी ८ और पत्रामृत औषधि (गिलोय, ममरी, मोठ, गोखरू और शतावरी), के क्वाथकी ३ भावना देवें। प्रत्येक भावनाके अन्तमें गजपुट देवें । इस तरह १७

भावना देनेसे उत्तम प्रकारकी मंडूर भस्म तैयार होती है। इस भस्मका नाम रसरत्न समुच्चयकारने 'मधुमंडूर' रक्खा है। (र० र० स०)

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक शहद और पीपलके साथ।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे पाण्डु, गुल्म, प्लीहा, संग्रहणी, आमवृद्धि, सूतिका-रोग, कृमि रोग, अरुचि, श्वास, कास, रक्तकी निर्बलता, श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर, कुम्भ कामला, सूजन, अन्तड़ीकी निर्बलता, धातुक्षीणता और हृदय रोग दूर होते हैं। यह स्त्रियों और बालकोंको निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। विशेष विवेचन प्रथम विधिके साथ। यह प्रथम विधिकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है।

चौथी-विधि—शुद्ध मंडूर ४० तोलेके कपड़छान चूर्णको बोतलमें डाल ऊपरसे अंगूरका सिरका भर देवें। मंडूरके ऊपर २ अंगुल सिरका रहे, उतना सिरका डालें। दिनमें ३-४ बार बोतलको चला दिया करे। ४१ दिन तक इस तरह बोतलमें रखें। फिर ७ दिन तक घीकुंवारके रसमें खरल कर गजपुट अग्नि देनेसे सुन्दर लाल रंगकी मुलायम भस्म बन जाती है। कसर हो तो फिरसे घीकुंवार के रसमें खरलकर गजपुट देवें।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधि अनुसार। इस तरह अभ्रक आदिकी भस्म भी सरलतासे बनाई जाती है।

(१२) मण्डूरमाक्षिक भस्म।

बनावट—शुद्ध मंडूर और शुद्ध सुवर्णमाक्षिक २०-२० तोले मिला गोमूत्रमें १२ घण्टे खरलकर टिकियाएं बांधकर सूर्यके तापमें सुखावें। फिर शराव-सपुट करके गज-पुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर निकाल पुनः गोमूत्रमें खरल करके गजपुट देवें। इस तरह ३ गजपुट देनेसे मुलायम भस्म तैयार होती है। इस भस्मको अनेक वैद्य "भौम मंडूर" भी कहते हैं।

मात्रा—१ से ३ रत्ती शहद, दूध-मिश्री या अनारके शर्बतके साथ।

उपयोग—यह भस्म सगर्भा स्त्रियोंका पीलापन, पित्ताधिक संग्रहणी, पाण्डु कामला, परिणामशूल, शिरदर्द आदि को दूर करती है। जिनको मंडूर मात्र अनुकूल रहता हो उनके लिये और सगर्भा स्त्रियोंके लिये यह भस्म विशेष उपयोगी है। इस भस्ममें सुवर्णमाक्षिक और मण्डूर, दोनोंके मिश्रित गुण अवस्थित हैं।

(१३) अभ्रक भस्म।

प्रथम विधि—(सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्म)—शुद्ध धान्याभ्रकको निम्न ७२ ओषधियोंमेंसे जो-जो मिल जायं; उनकी १६-१६ भावना देकर १००० पुट पूरे करें। प्रत्येक भावनाके अंतमें छोटी-छोटी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखा सम्पुट करके गजपुट अग्नि दें। इन ओषधियोंके अतिरिक्त किसी रोग विशेषको शमन करनेवाली ओषधियोंकी

भावना देनी हो, तो भी दी सकती है। यदि रसायन गुणके लिये अभ्रकभस्म तैयार करना हो, तो भावना देनेकी ओषधियोंमें तीक्ष्ण और लेखन गुणवाली ओषधियाँ कम लें, और विरेचन ओषधियोंकी भावना भी अधिक नहीं देनी चाहिये।

आकका दूध, थूहरका दूध, बडकी जटाका क्वाथ, घीकुवारका रस, अरंडीके पत्तोंका रस, नागरमोथाका क्वाथ, गिलोयका स्वरस, छोटी कटेलीका क्वाथ, बडी कटेलीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, भांगका क्वाथ, कुकरोंधाका स्वरस, सहदेईका रस, नागबलाका क्वाथ, आंवलाका क्वाथ, चिरचीटाका क्वाथ, तुलसीका रस, शालपर्णीका क्वाथ, पृष्ठपर्णीका क्वाथ, मेंहदीके पत्तोंका स्वरस, अरणीके छालका क्वाथ, बेलके पत्तोंका क्वाथ, देवदारका क्वाथ, कालीमिर्चका क्वाथ, अदरखका स्वरस, पीपलका क्वाथ चित्रकमूलका क्वाथ, इन्द्रायणकी जडका क्वाथ, लोदका क्वाथ, कुटकीका क्वाथ, जामुनकी छालका क्वाथ, आंवलेका स्वरस, हरडका क्वाथ, बहेडेका क्वाथ, अडसेका स्वरस, तेंदूकी छालका क्वाथ, मतवनकी छालका क्वाथ, धतूरेके पत्तोंका स्वरस सफेद सरसोंका क्वाथ, अपामार्गका क्वाथ, मौलसरीकी छालका क्वाथ, भांगरेका स्वरस, गाढुग्ध, अगस्त्यके पत्तोंका रस, बडी तार्म्बीका रस, गोमूत्र, पाढलका क्वाथ, तालीसपत्रका क्वाथ, केलेके गामेका रस, बकरेका रक्त, मूसलीका क्वाथ, असगंधका क्वाथ, दूर्वाका क्वाथ, देवदारु क्वाथका क्वाथ, मछछी (मत्स्याक्षी) का रस, मकोयका रस, पुनर्नवाका रस, मलपुष्पीका रस, नागरबेलके पानोंका रस, खैरकी छालका क्वाथ, ब्राह्मीका रस, जटामांसीका क्वाथ, धमासेका क्वाथ, अमलतासकी फलीका क्वाथ, आकाशबेलका क्वाथ, चमेलीके पत्तोंका क्वाथ, काकजंघेका क्वाथ, गोरखमुण्डीका क्वाथ, मूषाकर्णीके पत्तोंका स्वरस, भारंगीका क्वाथ, शतावरीका रस, विदारीकंदका रस, इन ७२ ओषधियोंमें से जो-जो मिल जाय, इनके पुट १००० पर्यन्त दें। इन ओषधियोंके अतिरिक्त अन्य रोगनाशक ओषधियोंका भी पुट दे सकते हैं, प्रतिकूल ओषधियोंका पुट नहीं देना चाहिये।

सूचना—गजपुटमें गोवरी कम डाली जाय, तो ३००-४०० पुटतक भी अभ्रककी चमक नहीं जाती और अग्नि अच्छी तरह देनेपर केवल ७ पुटोंमें ही अभ्रककी भस्म निश्चन्द्र हो जाती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय।

अनुपान—१—प्रदरमें—सोनागेरू २ रत्ती और गिलोय सत्व ४ रत्तीके साथ, ऊपर चावलोंका धोवन पिलावें।

२—पित्त-प्रकोपमें—सोनागेरू, गिलोय सत्व और शक्करके साथ देकर मिश्री मिला हुआ दूध पिलावें। या प्रवाल-पिष्टी और गिलोय-सत्वके साथ दें।

३—पित्त-प्रधान प्रमेहोंपर—सोनागेरू, गिलोय सत्व, पीपल, और शहदके साथ, या गिलोय स्वरस और मिश्रीके साथ।

४—नेत्रोंकी निर्बलतामें—त्रिफलाका चूर्ण और शहदके साथ ।

५—श्वास, कास, कफवृद्धि, जीर्णज्वर, भ्रम, प्रमेह, संग्रहणी, पाण्डु, क्षय, विष-विकार, कामला और गुल्ममें—पीपल-शहदके साथ ।

६—क्षय, पाण्डु, संग्रहणी, शूल, आम, कुष्ठ, श्वास, प्रमेह, कास, मंदाग्नि और उदरव्यथापर -वायविडंग,और त्रिकटुके साथ ।

७—२० प्रमेहों पर—शिलाजीत और शहद-पीपल अथवा हल्दी, पीपल और शहदके साथ ।

८—क्षय पर—आध रत्ती सुवर्णके वर्क और सितोपलादि चूर्ण या च्यवनप्राशावलहे अथवा सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ ।

९—धातुवृद्धिके लिये—सुवर्णके वर्क या चांदीके वर्क और आंवलोंके मुरब्बेके साथ; या लौंग और शहदके साथ ।

१०—रक्तपित्त पर—हरड़ और शक्कर; या इलायची और मिश्रीके साथ ।

११—क्षय, पाण्डु और अर्श पर—त्रिकटु, त्रिफला, चातुर्जात, मिश्री और शहदके साथ ।

१२—प्रमेह और मूत्रच्छ्रमें—इलायची, गोखरू, भूमिआंवला और मिश्रीके साथ देकर ऊपर गोदुग्ध पिलावें ।

१३—जीर्णज्वरमे—गिलोय सत्व और मिश्री अथवा शहद-पीपल ।

१४—अर्शपर—नागरबेलके पानमे भिलावा और अभ्रक भस्म डालकर खिलावें ।

१५—वात रोगमें—सोंठ, पुष्करमूल, भारंगमूल और असगंधके चूर्ण तथा शहदके साथ ।

१६—पित्तरोगमें—गोदुग्ध और मिश्री या चातुर्जात और मिश्रीके साथ ।

१७—कफरोगमें—कायफल, पीपल और शहदके साथ ।

१८—शुक्रस्तम्भनके लिये—भांगके साथ ।

१९—रक्त, मांस और अन्य धातुओंकी निर्बलतामें—लोह भस्म और शहद पीपलके साथ ।

२०—संग्रहणीमें—अनार शर्बत या कुटजादि अवलेहके साथ ।

२१—कफज्वर और कास पर—अभ्रकभस्म, शृंगभस्म, मुलहठी और सितोपलादि मिलाकर शहदके साथ दिनमे ३ बार ।

२२—नूतन कफकास पर—अभ्रक, शृंगभस्म और लवंगादि चूर्णके साथ ।

उपयोग—अभ्रक भस्म कषाय, मधुर, शीतल, आयुवर्द्धक और धातुवर्द्धक होनेसे त्रिदोष, वर्ण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहावृद्धि; उदरग्रंथि, विष और कृमि आदि रोगोंको दूर करती है, शरीरको दृढ़ बनातीहै, और वीर्यकी वृद्धि करती है । इसके सेवनसे

युवावस्थाकी प्राप्ति होती है, और सौ स्त्रियोंमें रमण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। इसके सेवन करनेवालोंके पुत्र दीर्घायु और इन्द्र सदृश पराक्रमी होते हैं, तथा अकाल मृत्युकी भीति भी दूर होती है।

इनके अतिरिक्त यह क्षय, पाण्डु, ग्रहणी, शूल, आम, श्वास, अरुचि, दुर्धर कास, मन्दाग्नि, उदर व्यथा, कामला, ज्वर, गुल्म, अर्श आदि रोगोंको अनुपान-भेदसे दूर करती है। एवं वातवाहिनी नाड़ियोंमें क्षोभ या निर्बलता, श्वास, उरःक्षत, क्षय (Phthisis) की प्रथमावस्था, मानसिक दुर्बलता, अपस्मार, उन्माद, हृद्रोग (Heart Disease) पुरानी खांसी, प्रसूति रोग, पाण्डु रोग, धातुक्षीणता, संग्रहणी और ज्वर आदि सब रोगोंमें भी अभ्रक भस्म अति उपयोगी है।

सगर्भा स्त्रीको प्रवाल और सितोपलादि चूर्णके साथ अभ्रक भस्म ३-४ मास तक सेवन करानेसे गर्भ बलवान और निरोगी बनता है। क्षयरोगी, जो बिलकुल हाड़-पिंजर हो गये हों, जिनके जीवनकी आशा भी न रही हो, डाक्टर और हकीमोंने जिनको जवाब दे दिया हो, वैसे रोगी भी सहस्र पुटी अभ्रक, सुवर्ण भस्म और च्यवनप्राशावलेह के योगसे बिलकुल तन्दुरुस्त हो गये हैं।

अभ्रकभस्म मस्तिष्क, वातवह मंडल, वातवाहिनियां फुफ्फुस, हृदय और शरीरके सब भागोंमें मांस-ग्रंथियोंके लिये बल्य, जीवनीय और शामक गुण दर्शाती है। फुफ्फुस्थान (उर) के लिये बल्य है। अभ्रक कफ और वात दोष और रस, रक्त, मांस, अस्थि, इन दूष्योंके विकारोंमें लाभदायक है। अभ्रक भस्मको सेवन करनेके समय शहदमें पाव-आध घण्टे तक खरल करके उपयोगमें लिया जाय, तो धातुपरिपोषण क्रम और अन्तःस्रावपर त्वरित लाभ होता है।

अभ्रकभस्मके मुख्य कार्य—चित्परमाणुओंको तरल और तरलतर बनानेमें सहायता करना, सञ्चालक इन्द्रियोंको शक्ति देना, और इनके पोषक द्रव्योंकी पूर्ति करना, वातवाहिनी नाड़ीके क्षोभको दूर करना, तथा स्नायु शैथिल्य, इन्द्रियोंकी दुर्बलता, और वातवाहिनियोंकी क्षीणता दूरकर शरीर-सञ्चालक प्राणोंको उत्तेजना देना, और सब इन्द्रियसमूहको कार्यक्षम बनाना आदि कार्य हैं।

अभ्रक भस्म उत्तम रसायन, वृष्य, मेधाजनक और योगवाही है। रसायन गुणयुक्त होनेसे रस आदि धातुओंको सुदृढ़ बनानेमें बहुत सहायक है। यद्यपि अभ्रकका वृष्यत्व प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अप्रत्यक्ष रूपसे सब धातुओंकी समता होनेपर वृष्यत्व उत्पन्न होता है। यह वृष्यत्व विशेष काल स्थायी और श्रेष्ठ प्रकारका है।

अभ्रक भस्म योगवाही है, अर्थात् (१) अन्य ओषधियोंके गुणोंको बढ़ाती है (२) अन्य ओषधियोंके गुणोंमें बाधा न पहुंचाते हुए सम्मिलित ओषधिके दोषको दूर करती है, (३) और दोष दूर करते हुए गुणमें वृद्धि करती है, इन तीन गुणोंके हेतुसे

अभ्रकका उपयोग अत्यन्त विरुद्ध प्रकारके भिन्न-भिन्न योगोंमें किया जाता है; और परिणाममें अभ्रक-मिश्रित सब प्रयोग वीर्यवान बनते है।

अभ्रकका मुख्य कार्य तरल और तरलतर परमाणु बनानेका है। अतः संचालक इन्द्रियोंके भीतर जो तरल परमाणुओंकी न्यूनता हुई हो, उसे यह दूर करती है। किसी भी रोगमें शारीरिक घटक और परमाणु शनैः शनैः क्षीण होते जाते हों; इन्द्रियोंकी शक्तिका शोषण होता रहता हो; और इनकी कार्यक्षमताका ह्रास होता हो, ऐसे शोषरोगमें अभ्रकका उत्तम उपयोग हुआ है। अनेक बार घटक निर्बल होकर क्षीण हो जाते है; और अनेक बार सड़कर मृतवत् हो जाते है। इनमेसे जहां घटक क्षीण हुए हों, वहां पर यह उपयोगी है; सड़े हुए घटकोंपर इसका कार्य उतना अधिक नहीं हो सकता।

अनेक व्यक्तियोंको ऐसा संदेह हो जाता है कि, मुझे क्षय हो गया है। फिर बार-बार उदासीन-से रहते है, किसी कार्यमें उत्साहित नही होते; आनन्दके प्रसंगोमें भी वह चिन्तातुर और व्याकुल रहते है। ऐसे मनुष्योंको थोड़े ही दिनों तक अभ्रकका सेवन करानेपर उनके मन और इन्द्रियां सबल बन जाती है; तथा वे स्वस्थ हो जाते है।

मस्तिष्ककी निर्बलता जब अत्यधिक हो जाती है; कार्य करनेका उत्साह नष्ट हो जाता है; बार-बार चक्कर आता है; कपालपर प्रस्वेद आता रहता है; मन अस्थिर रहता है; रोगी निस्तेज, चिन्ताग्रस्त, क्रोधी स्वभाववाला और शुष्क हो जाता है, तब अभ्रक भस्मका सेवन करनेसे थोड़े ही दिनोंमे प्रकृति स्वस्थ हो जाती है। मुखमंडल पर पाण्डुता प्रतीत होती हो और धमनियां कूदती हों, तो लोह भस्म देनी चाहिये; तथा मानसिक निरुत्साह हो, तो अभ्रक भस्म देनी चाहिये।

अपस्मार, उन्माद, स्मृतिनाश, बुद्धिविभ्रम, इन सबमे मानसिक यन्त्र निर्बल हो जाता है। रस आदि धातुओंमे आवश्यक पोषक पदार्थ इन इन्द्रियसमूहोंसे ग्रहण नही हो सकता। इस हेतुसे ऐसी परिस्थिति उपस्थित होती है। इन विकारोंमे मानस-यंत्र को पोषण पूर्णरूपसे मिल जाय, तो ये सब रोग शमन हो जायं। परन्तु वर्तमानमें चिकित्सा इस तत्त्वके अनुसार नहीं करते। केवल रोगशामक ओषधिसे वातवाहिनियोंका क्षोभ निवृत्त करते है। इस हेतुसे चिकित्सा फलप्रद नही होती। उपरोक्त तत्त्वको लक्ष्यमे रखकर चिकित्सा करें, तो अच्छा लाभ पहुचता है; ऐसा अनुभव हुआ है।

जब किसी इन्द्रियके घटकोंको योग्य पोषण नही मिलता; तब वह क्षीण होती है। सामान्यतः घटकोंके लिये आवश्यक द्रव्य रक्तमें शोषण कर उसे अपना बना लेनेका शारीरिक परमाणुओंका प्रयत्न सतत चालू रहता है; उसका अभाव होनेपर इन्द्रिय क्षीण होती जाती है। इस वैगुण्यका निवारण अत्यत वीर्यवान् तथा रस-रक्त आदि धातुओंको ओज और तेज समर्पक औषध द्वारा हो सकता है, ऐसी औषधि अभ्रक भस्म है।

अभ्रक भस्मके सेवनसे थोड़े ही दिनोंमें शारीरिक परमाणुओंको ओजकी प्राप्ति हो जानेसे वे सुदृढ़ बन जाते हैं। ऐसे समयपर स्मृतिकेन्द्रकी क्षीणता नष्ट कर उसे पूर्व स्थितिकी प्राप्ति कराना, यही सच्ची चिकित्सा कहलाती है।

अभ्रक भस्मसे मनका तरल अंश शनैः शनैः सबल हो जाता है। फिर मज्जावाहिनियां और आज्ञावाहिनियोंकी क्षीणता कम होने लगती है। तत्पश्चात् अपस्मार आदिकी क्षोभ प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

अपस्मार और उन्मादकी जीर्णावस्थामें जब रोगी निस्तेज, दुर्बल, निर्बल और चिन्तातुर हो गया हो, स्मरण-शक्ति नष्ट हो गई हो, तब अभ्रक भस्म एक आध-मास तक सेवन करानेसे रोगीकी इन्द्रियां बलवान् बन जाती हैं और रोग शमन हो जाता है।

अर्धाङ्ग वातकी जीर्णावस्थामें रक्तवाहिनियोंके विकृत और मानसिक क्षोभ होते हैं, तब रोगशामक ओषधिके साथ अभ्रक भस्मका उपयोग करनेसे सत्वर लाभ होता है।

छोटे बालकोंकी बुद्धिका विकास, आयुके परिमाणमें जब न हुआ हो, या मूढ़ता बढ़ती जाती हो, शरीर कृश, निर्बल और निस्तेज रहता हो, शुद्ध बोल भी न सकता हो या अच्छी रीतिसे न चल सकता हो, तथा मुंहसे लार गिरती रहती हो, तब अभ्रक भस्मसे लाभ हो जाता है। यदि माता पिताको उपदंश रोग होनेके पश्चात् बालकका जन्म हुआ हो, तो अभ्रक भस्मके साथ गन्धक रसायन (प्रथम विधि वाला) देना चाहिये। बार-बार वमन होती हो, तो प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वको मिला देना चाहिये। कफ-विकृति अधिक हो, तो शृंग भस्म और रक्तकी कमीमें मण्डूर भस्म मिश्रित करनी चाहिये।

मस्तिष्कके किसी एक भागका उचित विकास न होनेसे बाल्यावस्थामें वैगुण्य उपस्थित होता है। इस हेतुसे बालक मस्तिष्कको सीधा नहीं रख सकता। उसका हाथ पैर पर अधिकार न होनेसे वह चल नहीं सकता। एवं अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता ऐसी स्थितिमें अकेली अभ्रक भस्म या अन्य सहायक ओषधिके मिश्रण सहित सेवन करानेसे बालक स्वस्थ हो जाता है।

अभ्रकमें रसायन गुण होनेसे धातु-परिपोषण क्रमको सुव्यवस्थित करती है। इसी कारणसे पाण्डु, रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षतक्षय आदि तीव्र और जीर्ण व्याधियोंमें इसके सेवनसे लाभ होता है।

रक्तमें रक्ताणुओंकी न्यूनता और मानसिक चिंताके कारण नवयुवा स्त्रीको हारिद्रक रोग हुआ हो, ज्वर रहता हो, शरीर पीला, शुष्क, निस्तेज हो, तथा कभी-कभी वमन आदि लक्षण होते हों, तो अभ्रक और लोह मिलाकर देनेसे रोग थोड़े ही दिनोंमें चला जाता है।

पाण्डु रोगमें मानसिक चिंताका कारण हो; अथवा अर्शमें बार-बार रक्त जानेसे पाण्डुता आई हो, तो इसका उपयोग लाभदायक है। ऐसे ही अंत्रमें निर्बलता आनेपर गुद-त्रिवली पर बोझा आकर शोथ आगया हो। फिर शौचमें रक्तस्राव होकर निर्बलता आई हो, तो अभ्रकका उपयोग करनेसे अन्त्र बलवान् होकर रोगका शमन होता है। किन्तु यकृत्के समीप रुधिराभिसरणके दबावमें वृद्धि होनेसे इस स्थितिकी प्राप्ति हुई हो, तो अभ्रक भस्मके सेवनसे यथोचित लाभ नहीं हो सकेगा। ऐसी परिस्थितिमें विरेचन या रक्तके दबावकी शामक औषधिकी योजना करनी चाहिये।

अनेक बार रक्तार्श उत्पन्न होकर पुराना हो जाता है। फिर बार-बार रक्त गिरता रहता है। इस रक्त गिरनेके अभ्यासको नष्ट करनेके लिये अभ्रकभस्म-घटित औषधिका उपयोग किया जाता है। अभ्रकसे अर्शके मस्से तो नष्ट नही होते; परन्तु रक्त गिरना कम हो जाता है; और शरीरमें निर्बलता नहीं आती।

अर्शके मस्सेका आपरेशन करानेके पश्चात् अनेक समय भगन्दर या नाड़ी-व्रण हो जाता है। ऐसे समय पर व्रणको भरनेके लिये अभ्रकका सेवन सहायक होता है। ऐसे ही जीर्ण व्रण रोगमें शारीरिक शक्तिको स्थिर रखनेवाली और व्रणको सत्वर भरनेमें सहायता पहुंचानेवाली ओषधियोंमें अभ्रक भस्म उत्तम ओषधि है।

यदि फुफ्फुसोंकी अशक्तिसे कफविकार हुआ हो; एवं आघात, मानसिक चिंता, ज्वर ज्यादा समयतक रहने या अन्य कारणसे हृदय निर्बल हो गया हो तो फुफ्फुस और हृदयको शक्ति देनेवाली ओषधियोंमें अभ्रक भस्म, सबसे उत्तम है। इस तरह किसी भी रोगमें रोगीकी बोलनेकी शक्ति क्षीण होगई हो, तो अभ्रक भस्मसे लाभ पहुंचता है। यदि अशक्तताकी अपेक्षा अनिच्छा हेतुकी प्रधानता हो, तो ऐसे स्वर-भेदमें जसद भस्म देनी चाहिये।

आयुर्वेदमें कहे हुए निर्जन्तुक, अनुलोम और प्रतिलोम क्षयमें अभ्रक भस्मको शृंग भस्म और गिलोय सत्वके साथ देते रहनेसे रोग शमन हो जाता है; अर्थात् अभ्रकके अणुभवन क्रिया सुधरकर घटकोंका ह्रास नष्ट हो जाता है। परन्तु आधुनिक युगमें फैले हुए कीटाणुजन्य क्षयकी सब अवस्थाओंमें अभ्रक भस्मसे उपयोग होता ही है; ऐसे नहीं कह सकेंगे। प्रथमावस्थामें ज्वर बिल्कुल कम रहता हो; उस समय तो अभ्रक भस्मका उपयोग निःसंदेह होता है। इस प्राथमिक अवस्थामें फुफ्फुस और अन्य शारीरिक घटकोंको सबल बना देनेसे क्षयके विषकी प्रगतिका अवरोध हो जाता है।

जीर्ण कफप्रकोप, जीर्ण कास, कफात्मक और कफ-वातात्मक जीर्ण श्वास, जिसमें श्वास-वाहिनियां विकृत होगई हों, और उनमें व्रण होगये हों; अति खांसनेपर सफेद चिकना कफ निकलता हो; थोड़े श्रममें प्रस्वेद आता हो, रोगी अत्यन्त अशक्त हो गया हो, तो ऐसे समय पर कफघ्न अनुपानके साथ या शहद-पीपलके साथ अभ्रक भस्म देनेसे रोग निर्मूल होजाता है।

हृदयकी निर्बलतासे एवं वयोवृद्ध और निर्बल मनुष्योंको वर्षाऋतुमें या शीतकालमें बादल होनेपर श्वास रोग होजाता है; जितनाहीको बैठनेसे श्वास शमन होजाता है, और थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाता है, उन सबके लिये अभ्रक अति लाभदायक है।

पाण्डु-रोगिणी स्त्रियोंको श्वास-वाहिनियोंके संकोच होनेसे अतिशय घबराहट और श्वासरोग होजाता है, पंखासे हवा करने पर अच्छा लगता है, अन्यथा दिन-रात बेचैनी रहती है, शीतल या उष्ण औषधि सहन नहीं होती, ऐसे समय पर श्वासवाहिनियोंको विकसित करनेवाली और पित्तको शमन करनेवाली औषधियोंमें अभ्रक भस्म उत्तम है। ऐसे प्रसंग पर कार्यकर औषधियां-अभ्रक भस्म, रुद्रवन्ती, शिलाजीत, चन्द्रप्रभा और आरोग्यवर्धिनी हैं। उनमें मानसिक क्षोभ दूर करनेके लिए अभ्रक है, विष मूत्र द्वारा बाहर निकालने और विकारका शोषण करनेके लिये रुद्रवन्ती, शिलाजीत और चंद्रप्रभा है, एवं मलशुद्धिकी आवश्यकता हो, तो आरोग्यवर्धिनीका उपयोग किया जाता है। इन सब प्रयोगोंमें जीर्ण दोष या स्वभावको नष्ट करनेके लिये बार-बार शहदके साथ अभ्रकका सेवन कराना चाहिये।

हृदयकी अशक्तिके कारणसे बार-बार थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाता हो, नाड़ी क्षीण, मन्द और बार-बार अनियमित रहती हो, तो अभ्रकके सेवनसे प्रकृति स्वस्थ हो जाती है। यदि रक्तवाहिनियोंकी दीवार पतली हो गई हो, फिर उन स्थानोंमें रक्त संगृहीत हो गया हो, तो इस विकारमें एवं इससे उत्पन्न रक्तपित्तमें भी यह हितकर है। प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व मिलाना अधिकतर लाभदायक है। यदि इस रोगकी उत्पत्ति उपदंशसे हुई हो, तो अनुपान अनन्तमूलक अवलेह अथवा रक्तशोधक अरिष्ट या रक्तशोधक क्वाथ दें।

अभ्रक भस्म निमोनिया रोगमें दालचीनीके साथ देनेसे रोगके कारणभूत कीटाणुओंको नष्ट करती है। लोहभस्मके साथ देनेसे रक्ताणुओंको बढ़ाती है। इस कारण पाण्डुरोगमें अभ्रक भस्म, लोह भस्म, त्रिफला और शहद मिलाकर दिया जाता है।

अभ्रक भस्म हृदयोत्तेजक है। फिर भी कुचिला अथवा कर्पूरके समान हृदय-उत्तेजक नहीं है। अभ्रक भस्म तो हृदयके स्नायुमय घटकोंको शक्ति देकर हृदयको उत्तेजना देती है। इस कारण हृदय-विकारसे होनेवाले शोथ रोगमें इसके सेवन से लाभ होता है।

उदरकी अशक्ति और पित्तोत्पादक पिण्डकी अशक्तिके कारणसे पित्तकी उत्पत्ति समयपर न होती हो, फिर इसीसे अपचन और मन्दाग्नि रोग हुआ हो, तो पित्तोत्पादक पिण्ड और उदरके अवयवोंको शक्ति देकर रोगको दूर करनेका काम अभ्रक करती है।

अरुचि अर्थात् जिसमें भोजन करनेमें प्रीति न हो; स्वादिष्ट वस्तु भी बेस्वादु लगती हो; यह विकार उदरविकृति और अशक्ति होनेके पश्चात् या अरुचि रूप उपद्रव क्षय, पाण्डु, कामला, ज्वर आदि रोगोंके पश्चात्, हुआ हो, तो इस भस्मका उपयोग लाभदायक है ।

जीर्ण अम्लपित्त रोगमें यदि सूतशेखर आदि औषधिसे लाभ न होता हो; सर्वदा उबाक बनी रहती हो; उदरमें पीड़ा रहती हो; और वमनके साथ रक्त निकलता हो; परन्तु उदरमें कर्कस्फोट न हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग करना हितकर है । एवं पेटकी आकृति बड़ी हो गई हो; और भोजनके पश्चात् वमन हो जाती हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग वंग भस्मके साथ करना लाभदायक है ।

क्षय रोगके अतिसारमें अन्य जन्तुघ्न औषधिके साथ अभ्रकके उपयोगसे लाभ होता है । उस समय अभ्रक भस्म, मुक्ता-पिष्टी, शंख भस्म और वराटिका भस्मका मिश्रण घृतके साथ दिया जाता है । ऐसे ही अन्त्रकी निर्बलताके कारणसे बहुत दिनोंके पुराने त्रासदायक अतिसारमें बार-बार झाग सहित थोड़ा-थोड़ा दस्त होता हो; अन्त्रकी साधारण शक्ति क्षीण हो गई हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग वराटिका भस्म, सोंठका चूर्ण और घृत (या शहद) के साथ करना हितकारक है । ग्रहणीकी अशक्तताके कारणसे जीर्ण ग्रहणी रोगमें यदि अंत्रमें स्थान-स्थान पर व्रण हो गये हो, बार-बार रक्त गिरता हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग पर्पटीके साथ करना चाहिये ।

उदरमें रसवाहिनी और रसोत्पादक पिण्डकी विकृति अथवा रसवहन कार्यमें प्रतिबन्ध होनेसे उदर-ग्रंथिया बढ़ गई हो; साथ-साथ मन्द-मन्द शूल घण्टो तक बार-बार चलता रहता हो; रोगी अशक्त हो जाता हो; मन्द ज्वर, मलावरोध और अपचन भी रहते हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग हितकारक माना गया है ।

छोटी आंत और बड़ी आंतकी निर्बलताके कारण मलावरोध रहता हो; फिर रोग जीर्ण होनेपर मलमें दुर्गन्ध, रक्तविकार, फोड़े-फुसिया, छोटे-छोटे दूषित रक्तके मंडल आदि भीषण स्वरूपकी प्राप्ति हुई हो, तो इस भस्मका सेवन रक्तशोधक अनुपानके साथ हितकर है ।

मूत्राशयकी अशक्तिके कारण बूंद-बूंद मूत्र होता रहता हो और बार-बार पेशाब करना पड़ता हो; अथवा मूत्रमें रक्त भी जाता हो, एवं मूत्रकृच्छ्ररोग जीर्ण हुआ हो, तो इस भस्मके सेवनसे मूत्राशय बलवान बन जाता है । मधुमेहमें अभ्रक, शिलाजीत और जामुनके बीजकी गिरीके साथ देते रहनेसे शक्ति क्षीण नहीं होती और व्याधिबल भी धीरे-धीरे न्यून होकर अनेकांगमें रोग दब जाता है ।

वातवाहिनियोंकी निर्बलताके कारण या मानसिक आघात पहुंचनेसे नपुंसकता आई हो; वह अभ्रक भस्मके सेवनसे दूर होती है । अभ्रक भस्म जननेन्द्रियके स्नायु,

जननेन्द्रिय के घटक, जननेन्द्रियको उत्तेजना देनेवाली वातवहा नाडियोंके केन्द्र और वात-वाहिनिया, इन सबको शक्ति देकर नपुंसकताको दूर करती है।

योगवाही होनेसे अभ्रक भस्मका कार्य संयोजित द्रव्य अनुसार त्वरित और मन्द वेगवाला हो जाता है। लक्ष्मीविलास रस (सन्निपात-नाशक और हृदयपौष्टिक रसायन) में कर्पूरादि ओषधिका संयोग होनेसे यह तीव्र और शीघ्र गुण करती है। आरोग्य-वर्द्धिनीमें ताम्र आदि ओषधि संयुक्त होनेसे गुण शनै शनै दर्शाती है। लक्ष्मीविलासमें उत्तेजक कार्य और आरोग्यवर्द्धिनीमें निर्बल बने हुए घटकोंको दूर कर नये सबल घटकोको तयार करनेका कार्य अभ्रक भस्मके संयोगसे होता है। इसतरह संयोगजन्य गुण न्यूनाधिक परिमाण और पृथक्-पृथक् रूपमें होता है।

अभ्रकभस्म का उपयोग कफकास पर उत्तम होता है। किन्तु शुष्क कासमें व्यवहृत नही होती। फुफ्फुस प्रणालिकाए और वायुकोष निर्बल बनने पर उनमें कफ संगृहीत होजाता है। उसके साथ कण्ठमें शुष्कता हो, तो शुष्क कास चलती रहती है और सरलतासे कफ नही निकलता। रोगी अति बेचैन होजाता है प्रस्वेद आ जाता है, कण्ठ सूख जाता है, फिर थोडा कफ गिरता है। ऐसी अवस्थामें अभ्रकभस्म, शृग भस्म, छोटी इलायचीके दाने और प्रवालपिष्टी १-१ रत्ती, गिलोय सत्व और वंश-लोचन २-२ रत्ती मिला, उसकी ८ मात्रा बनाकर दिनमें ४ बार आमके मरब्बाके साथ सेवन करानेपर पहिलेही दिनसे आराम होने लगता है।*

सूचना—अभ्रक भस्म किसीको भी हानि नही पहुंचाती, फिर भी किसी-किसीको इसकी मात्रा ज्यादा लेनेसे नाडीका वेग बढ जाता है और रक्ताभिसरण क्रिया भी ज्यादा वेगसे होने लगती है। ऐसे समयपर अभ्रक भस्म थोडे दिनोके लिये बन्द कर देनी चाहिये। पश्चात् थोडे परिमाणमें सेवन करानी चाहिये और मुक्ता या प्रवाल-पिष्टी साथमें मिला लेनी चाहिये।

अभ्रक भस्मको १० से १००० गजपुट तक देनेका शास्त्रविधान है। जितने अधिक पुट देनेमें आवें उतने परिमाणमें गुणकी वृद्धि होती है। अभ्रकके सेवन करने-वाले अकाल मृत्युसे बच जाते हैं। अनुपान-भेदसे यह सब रोगोपर उपयोगी है। इसलिये इसे मनुष्य लोकका अमृत माना है।

श्वेत अभ्रकको अंग्रेजीमें माइका (Mica) और कृष्ण अभ्रकको बाइओ-टाइट (Biotite) कहते हैं। रसायन-शास्त्रकी दृष्टिसे अभ्रक डवल सिलिकेट आफ्

---

*अभ्रकमें गुणाधिक्य होनेका कारण उसके प्राकृतिक संगठनमें वज्रलोह (Meteroic iorn) है। इसलिए ये सूक्ष्मकणवाले ढेलेदार अभ्रक की भस्म लेवें - संशोधक।

एल्युमिना एन्ड पोटाश-सोडियम (Double Silicate of Alumina and Potash-Sodium) है कतिपय जाति मे लोहका अंश मिलता है और कितनेही प्रकारके अभ्रकमे मेगनेशिया प्रतीत होता है ।

श्वेताभ्र—$K_2O, 3Al_2O_3\ 4SiO_2$, (२ पोटाशियम ऑक्साईड, ३ एल्युमिनियम् ऑक्साईड, ४ सिलिकन ऑक्साईड)

कृष्णाभ्र—वज्राभ्र—$3MgO, Al_2O_2\ 3SiO_2$ (३ मेगनेशियम् ऑक्सा- , एल्युमिनियम् ऑक्साईड और ३ सिलिकन ऑक्साईड) । कृष्णाभ्रामें कुछ-न-कुछ लोहका अंश रहता ही है ।

श्वेताभ्र—Muscovite (मस्कोवाईट) Potash Mica.

कृष्णाभ्र—Biotite (बायोटाइट) Ferromagnesian Mica.

रासायनिक पृथक्करण:—(१) सिलिका, (२) लोह, (३) एल्युमिनियम, (४) पोटाशियम, (५) मैगनेशियम । (औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—(१०० पुटी) शुद्ध धान्याभ्रकको आकका दूध, थूहरका दूध, धतूरेके पत्तोंका रस, केलेके खंभेका रस, चित्रकमूलका क्वाथ, नागरमोथाका क्वाथ, शतावरीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, कौंचका क्वाथ, गिलोयका स्वरस, नागरबेलके पानोका रस, गोदुग्ध, गोमूत्र, घीकुंवारका रस और बड़के अंकुरोंका क्वाथ, इनके रस और क्वाथके साथ १२–१२ घण्टे खरल करके छोटी–छोटी टिकिया बाँधें । पश्चात् सूर्यकी तेज धूपमे सुखा, संपुट करके गजपुट अग्नि दें । इस रीतिसे इन सबके क्रमश: ७–७ पुट देनेसे १०५ पुटी भस्म तैयार होती है । सहस्त्रपुटीके अभावमें यह भस्म उपयोगमें आती है ।

मात्रा और उदयोग—पहिली विधिके अनुसार ।

तीसरी विधि—(४० पुटी अभ्रक भस्म) शुद्ध धान्याभ्रकको नागरमोथेका क्वाथ, पुनर्नवाका रस कसौदीके पत्तोंका रस, नागरबेलके पानोका स्वरस, आकका दूध, गोमूत्र, लोधका क्वाथ, सफेद मुसलीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, कौंचका क्वाथ, केलेके खम्भेका रस, तालमखानोका क्वाथ, घीकुँवारका रस, और बड़की जटाका क्वाथ, इन १४ ओषधियोंकी क्रमशः ३-३ भावना देवे । बार-बार टिकिया बाँध सूर्यके तापमे सुखा, संपुट करके गजपुट अग्नि दें । इस रीतिसे प्रत्येक भावनाके पश्चात् गजपुट देनेसे ४२ पुटी अभ्रक भस्म तैयार होती है ।

मात्रा और उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार ।

चौथी विधि—(२० पुटी) धान्याभ्रकको कुकरौंधाके स्वरसमें खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बाँध, तेज धूपमें सूखा, एक हाँडीमे बन्द करके गजपुट अग्नि

दे। इस प्रकारके १० गजपुट देनेके बाद आकके पीले पत्तोंके रसके ७ और बटके अंकुरोंके क्वाथके ३ गजपुट देनेसे अति मुलायम २० पुटी अभ्रक बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

पाँचवी विधि—"औषधिकृति" में कहे अनुसार अभ्रकको निश्चन्द्र बना, आकके दूध (अभावमें पत्तोंके रस) में १२ घण्टे खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बाँधें। सूर्यकी तेज धूपमें सुखा, संपुटकर एक गजपुट देनेसे लाल रंगकी निर्दोष भस्म बन जाती है। (र सा०)

सूचना—जब तक अभ्रकका चमकीले अणु नष्ट हो जाय तब तक उस भस्मको व्यवहारमें नहीं लेना चाहिये।

मात्रा अनुपान और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

(१४) कासीस भस्म।

बनावट—विलायती कासीस (Ferri Sulph.) को भांगरेके रसमें १२ घण्टे तक खरल कर टिकिया बांधकर, सूर्यके तापमें सुखावें। फिर संपुट करके लघुपुट देवें। इस तरह ३ पुट देनेसे लाल रंगकी मुलायम भस्म बन जाती है। अन्य कासीसकी भस्म ऐसी मुलायम नहीं बनती। विलायती कासीस ४० तोलेमेंसे भस्म केवल १० तोले बनती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ समय।

अनुपान—नष्टार्त्तवमें—एलवा और हींगके साथ।

प्लीहा, गुल्म, शूल और पाण्डुमें—त्रिफला और घृतके साथ।

पाण्डु, कफ, आम, उदररोग, प्लीहामें—शहद-पीपलके साथ।

संग्रहणीमें—नागकेशर और मिश्रीके साथ।

मधुमेहमें—जामुनकी गुठलीके चूर्णके साथ।

गर्भाशय और बीजाशयके दोषमें—शर्बत बनफशाके साथ।

नेत्ररोगमें—त्रिफला और घृत या त्रिफला और शहदके साथ

उपयोग—यह भस्म पाण्डु, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, यकृत्‌वृद्धि, प्लीहोदर, उदरवातयुक्त संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका मधुमेह आम विकार, कफप्रकोप, अश, शूल, वातज गुल्म, और स्त्रियोंके गर्भाशय दोषको दूर करनेमें उपयोगी है। एवं किसी रोगके हेतुसे या चिंतासे अकालमें आई हुई निर्बलताको भी दूर करके शरीरको सुदृढ और कांतिवान बनाती है।

कासीस भस्म किंचित् उष्ण, कषायस्त था अम्ल गुणयुक्त है। नेत्रोंके लिये हितकर है। आमसंशोषक और कफनाशक होनेसे मंदाग्निको दूर करके अग्नि प्रदीप्त करती है, तथा रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओंकी वृद्धि करती है। शतधौत घृतके साथ मिलाकर

अभिष्यंद (नेत्रकी लाली), पूयाभिष्यंद; नेत्रव्रण, नेत्रकी पुतली पर व्रण आदि रोगोंमें अंजन करनेमें उपयोगी है। इस भस्ममें कषाय गुण होनेसे यह रक्तप्रसादन कार्य करके नेत्रविकारको शमन करती है। यह कार्य केवल मृदु त्वचापर और सु-कुमार इन्द्रियोंपर बहुत अच्छी प्रकारसे होता है।

कासीस भस्म आमसंशोषक होनेसे अग्निको प्रदीप्त करती है। यह कार्य रसायन विधानसे घृत और शहदके साथ लेनेसे प्रतीत होता है। कासीस भस्म मात्रके सेवनसे आमका पाचन होता है। पचनेन्द्रिय अथवा पचनेन्द्रियकी सन्निधिके भागके रक्त धातुमें विकृति अथवा रक्तकी आमदनी उस-उस इन्द्रियके लिये न्यून होना, यह मंदाग्नि और आम संजननके अनेक कारणोंमेंसे एक कारण हो सकता है। पित्तका आश्रय या आधार रक्त है; और पित्त आश्रयी अथवा आधेय है। इस कारण रक्तका परिमाण न्यून होनेपर पित्तधातुसे उत्पन्न होनेवाले पाचक द्रव्यकी उत्पत्ति भी न्यून होजाती है। रक्तकी यह न्यूनता इस भस्मके सेवनसे दूर होती है।

कासीस भस्म अग्निप्रदीपक है; अर्थात् पाचक रस का पाचकत्व कम होनेपर, पचनेन्द्रियको उत्तेजना देकर पाचक-रसकी तीव्रता प्रस्थापित करानेवाली औषधि है। पाचन-क्रिया पचनेन्द्रियके भिन्न-भिन्न रसोंके परिमाणके ऊपर और उसके घटकोंपर अवलम्बित है। यह कार्य पित्त धातुके योगसे होता है; और कासीस भस्मका कार्य पित्तधातुमें साम्य लानेका है। अतः इसके सेवनसे पचनेन्द्रिय और पाचक रस व्यवस्थित होता है।

अन्त्रमें रहे हुए आमपर इस भस्मका कार्य होता है। इसलिये आमजन्य अजीर्ण या जीर्ण, अजीर्ण रोग और उनसे होनेवाले विकारपर यह उपयोगी है।

शरीर अकालमे निर्बल और निस्तेज होजानेपर इस भस्मका सेवन कराया जाता है। यदि अकालमें बाल पक कर सफेद हो जाते हैं; और वृद्धावस्थाके समान कमजोरीकी प्राप्ति होती है, तो कासीस भस्म, लोह भस्म, और त्रिफला, तीनोंको मिला कर परिस्थिति अनुसार योग्य परिमाणमें घृत और शहदके साथ देनेसे अच्छा उपयोग होता है। यह योग पाण्डुरोगकी प्रथमावस्थामें भी दिया जाता है। बार-बार अजीर्ण होनेकी आदत हो और पाण्डुता आई हो, तो इस योग का अवश्य प्रयोग करना चाहिये।

धातुगत पचन अर्थात रस और रक्तमें आवश्यक अंशको लेकर उसमेंसे अपने अंश को बढ़ानेकी प्रत्येक धातुकी प्रवृत्ति नियमित रीतिसे हो रही है। उसमें शिथिलता होजाय, तो प्रत्येक धातु क्षीण होने लगती है। ऐसी परिस्थितिमें रोगीके शरीरमें क्षयके कीटाणु होने ही चाहिये, ऐसा नियम नही है। इस विकारपर इस भस्म का उपयोग करना चाहिये। उपरोक्त योग इसमें अति प्रशस्त है।

वातज गुल्म और शूलपर कासीस भस्मका उपयोग होना है। यह अग्निप्रदीपन करके गुल्म और शूलको नष्ट करती है।

वृहदन्त्रमें सेन्द्रिय विषको रूपान्तरित करनेवाली औषधियोंमें कासीस भस्मकी गणना होती है। इस स्थानपर दो प्रकारकी औषधियां उपयोगी हैं—आरोग्यवर्द्धिनी वराटिका भस्म, ताम्रभस्म आदि उष्ण, तीक्ष्ण और रसायन गुणयुक्त औषधियां। और दूसरी कासीस भस्मके समान कषाय, रसात्मक और शामक रसायन औषधियां। इनमेंसे कासीस भस्मका उपयोग विशेषतः सेन्द्रिय विषके योगसे दाह होनेपर अच्छा होता है। दाहके साथ उदरमें वात भी उत्पन्न होता है, दुष्ट अपानवायु बार बार निकलता हो, और उदरमें गुडगुडाहट आदि लक्षण हों तो कासीस भस्मका उपयोग किया जाता है।

जीर्ण व्रणोंमें कासीस भस्मका उपयोग होता है। यदि व्रण रक्त और मांस धातुगत हो, उसमें पित्त-दुष्टीके लक्षण हो, तो इस भस्मका सेवन कराना चाहिये। दाह, लाल व्रण, किनारीपर शोथ, भीतरसे स्राव कम होना, बारबार रक्त आते रहना, इत्यादि लक्षण होने पर बाह्य उपचारके साथ इस भस्मका सेवन लाभदायक है।

कासीस भस्म वात और कफ दोष, रस और रक्त दूष्य, तथा यकृत्, प्लीहा, आमाशय, ग्रहणी और नेत्र स्थान, इन सब पर लाभ पहुंचाती है। इसके सेवनसे रक्तके रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है। यह इसका विशेष धर्म है। (औ० गु० ध० शा)

सूचना—कासीस भस्मसे किसी-किसीको वमन होती है, और चक्कर आता है। ऐसा होनेपर मात्रा कम करें, और सुवर्णमाक्षिक मिलाकर देवें।

कासीसमें गन्धकाम्लके रूपमें गंधकांश रहता है, इसलिये भस्म होनेपर लिटमिस पेपरसे परीक्षाकर अम्लनाश होनेतक पुट देते रहना चाहिये। निरम्ल भस्म से वमनादिक नहीं होते (संशोधक)

(१५) कासीस-गोदन्ती भस्म।

विधि—विलायती कासीस और गोदन्ती १०-१० तोले मिला घीकुवारके रस में ६ घण्टे घोटकर छोटी-छोटी टिकिया बांधें। फिर टिकियोंको सुखा, संपुट करके गजपुटमें फूंक देवें। इस रीतिसे दो-तीन पुट देनेसे सिंदूर जैसी लाल भस्म हो जाती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती मिश्री और दूध या शहदके साथ दें। विषय ज्वरमें अदरखके रस और शहदके साथ।

उपयोग—यह भस्म आमप्रकोपसे उत्पन्न नवीन ज्वर, मलेरिया (विषम ज्वर, जीर्णज्वर, पाण्डु, श्वेतप्रदर, मन्दाग्नि और आमवृद्धिको दूर करके शरीरमें रक्तकी वृद्धि करती है। सगर्भा और प्रसूता स्त्रियों और बालकोंके लिए भी हितकारी है। मलेरिया आनेके ४ घण्टे पहिले एक मात्रा और दूसरी मात्रा दो घण्टे पहिले देनेसे ज्वर रुक जाता है।

कासीस भस्मके विवेचनमें दर्शाये गुणोंसे विशेष गुण इस भस्ममें रहते हैं। क्योंकि गोदन्तीका संमिश्रण हो जानेसे कतिपय नूतन गुणोंकी उत्पत्ति होती है।

कितनक नाजुक प्रकृतिके रोगी, पित्तप्रधान प्रकृतिवाले, बालक, प्रसूता और सगर्भा आदिको विषमज्वर आनेपर तीव्र औषधि नही दे सकते, उनके लिये कासीसगोदन्ती भस्म अदरखके रस और शहदके साथ दिनमें २ या ३ बार देनेसे लाभ पहुंच जाता है।

विषमज्वर प्रकुपित होनेपर उसका विष मांस आदि धातुओंमें लीन हो जाता है। फिर तीव्र दवा देने पर रोगी को व्याकुलता बढ़ती है और अनेकोको कान, आंख और वृक्क आदि अवयवोंपर बुरा असर पड़ता है। एवं रक्तदबाव भी बढ़ जाता है। ऐसे रोगियों को कासीसगोदन्ती भस्म देते रहनेसे कुछ दिनोमें दूषित [तीव्र औषधियोंका विष और रोगविष जल जाता है फिर ज्वर शमन होकर शरीर सबल हो जाता है।*

विषमज्वर जीर्ण होनेपर सुवर्णवसन्त और लघुवसन्त आदि औषधियां उत्तम कार्य करती है; किन्तु आम प्रकोपसे पीड़ित रोगियोको वसंतकी अपेक्षा कासीसगोदन्ती भस्म विशेष हितावह होती है। यदि धातुओंकी क्षीणता अधिक हो तो सुवर्णवसन्तके साथ, कासीसगोदन्ती भस्म मिला देनेसे सत्वर लाभ होता है।

विषमज्वर अधिक दिन रहने पर प्लीहा बढ़ जाती है और मंदमंद ज्वर बना रहताहै। थोड़ा-सा अपथ्य या आहार विहारमें भूल होनेपर ज्वर बढ़ जाता है। उन रोगियोंको पथ्य पालनसह कासीसगोदन्ती भस्म ४ से ६ रत्ती मात्रामें अमृतारिष्टके साथ थोड़े दिनों तक देते रहनेपर प्लीहागत कीटाणु और विष नष्ट होकर स्वास्थ्यकी प्राप्ति हो जाती है।*

मसूढोंमे पूय (Pyorrhoea) होनेपर भोजनके साथ पूय आमाशयमे जाता है। फिर आमाशय और लघु अन्त्र आदि भाग दूषित हो जाते हैं। पश्चात् अग्निमांद्य, उदरशूल, बेचैनी, पाण्डुता, शिरमें भारीपन और निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं तथा शांत निद्रा भी नही मिलती। ऐसे रोगियोंको चाहिये कि दूषित दांत निकलवा देवें अथवा दांतों का स्थानिक योग्य उपचार करावें। इसके साथ कासीसगोदन्ती भस्म का उदरसेवन करानेपर सब उपद्रव दूर होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

आमाशय, अन्त्र, वृक्क अथवा अन्य स्थानमे क्षत हो जानेपर रक्त में पूय प्रवेश होता है। फिर हृल्लास, उदरमें वेदना, पाण्डुता, शारीरिक कृशता, अग्निमांद्य और मन्दमन्द ज्वर रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं और निर्बलता शनैः शनैः बढती जाती

---

*प्लीहा अत्यधिक बढ़ गई हो, नाभितक पहुंचगई हो, उसपर एक अनुभवी महात्मा कासीस ६-६ माशे १०-१० तोले दहीके साथ देते रहते हैं। स्थूल दृष्टिसे मात्रा अत्यधिक भासती है। किन्तु इस प्रयोगसे डाक्टरोंने आपरेशन करानेकी अनुमति दिये हुए अनेक रोगी भी मात्र ४ दिनके प्रयोगसे स्वस्थ हो जानेके उदाहरण मिले हैं।

है। यदि पूयका प्रवेश अधिक मात्रामें होता है, तो पूयज्वर (Pyaemia) की सम्प्राप्ति होती है। फिर दिनमें २-३ वार शीत लगती है ज्वर बढ़ जाता है और स्वेद आकर ज्वर कम हो जाता है, किन्तु शरीर निर्बल हो जाता है। इस विकारमें कासीसगोदन्ती भस्म सफलतापूर्वक प्रयुक्त होती है।

मासिकधर्ममें विकृति होनेपर अनेक युवतियोंको बाहर निकलने योग्य दूषित रजका स्राव योग्य नहीं होता। कुछ न कुछ अंशमें स्तम्भ शोषित हो जाता है। फिर गर्भाशय शोथ या बीजाशय शोथ, श्वेतप्रदर, पाण्डुता, दृष्टिमांद्य शिरदर्द, कटिवेदना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इस रोगमें कासीसगोदन्ती भस्म अशोकारिष्ट या कुमार्यासवके साथ देते रहनेपर २-३ मासमें मासिकधर्मकी शुद्धि होती है और नियमित बन जाता है।

अधिक धूम्रपान, पाचनक्रिया विकृति होनेसे रसोत्पत्ति होकर अथवा कीटाणुओंका आक्रमण होनेपर गलग्रथियां बढ़ जाती हैं और वात प्रकोपसे बार बार आक्षेप आने लग जाते हैं। इस विकारपर कासीसगोदन्ती भस्म को जसद भस्म या वसन्तमालतीके साथ मिलाकर देनेसे थोड़े ही दिनोंमें विकार दूर हो जाता है।

(१६) गोदन्ती भस्म।

विधि—४० तोले गोदन्ती (Gypsum) के टुकड़ोंको बारह गिमें लिखे अनुसार आकके पत्तोंकी लुगदी या ग्वारपाठेके गूदेमें संपुट कर गजपुट अग्नि देनेसे सफेद रंगकी मुलायम भस्म तयार होती है।

मात्रा—२ से ८ रत्ती सुदर्शन चूर्णके क्वाथ, मिश्री या शहदके साथ दें। बालकोंको एक रत्ती माताके दूध या शहदके साथ दें।

उपयोग—इस खनिजमें गन्धकाम्ल गंधकाम्लके रूपमें रहता है। इस भस्म पित्तज्वर, आमज्वर, शिरदर्द, जीर्णज्वर, विषमज्वर, स्त्रियोंके श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, रक्तस्राव और सूखी खांसीमें अति लाभदायक है। दाह, तृषा, रक्त-दबाव-वृद्धिजन्य शिरदर्द निद्रानाश, व्याकुलता आदि लक्षणोंको तुरन्त शमन कर देती है।

मस्तिष्कको शांत और हृदयको प्रबल बनाती है। बालकोंके ज्वर, कास, श्वास हड्डियोंकी निर्बलता, अग्निमांद्य, दूध फेंकना, कब्ज और अजीर्ण आदिपर निर्भयता पूर्वक बार-बार उपयोगमें आती है। बढ़े हुए विषम-ज्वरमें सुदर्शन चूर्णके क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे तुरन्त लाभप्रद होती है। सन्निपातमें तुलसीके स्वरस और शहदके साथ २-२ घण्टे पर देते रहनेसे चेतना आ जाती है और त्रिदोषज लक्षण शान्त होजाते हैं।

रक्तप्रदरपर गोदन्ती भस्म दिनमें तीन बार आवले और ईसबगोल, तथा श्वेतप्रदरमें संगजराहत भस्म, जीरा और माजूफलके साथ मिलाकर दिनमें ३ बार दी जाती

है। शिरशूल, सूर्यावर्त, आधाशीशी, और मस्तिष्कमें उष्णता रहनेपर १-१ माशा भस्म १ तोला घी और १ तोला शक्करके साथ मिलाकर दिनमें २ या ३ बार देनेसे लाभ हो जाता है। किन्तु शिरःशूलके रोगीको कफकी अधिकता रहती हो, तो गोदन्तीके साथ आध-आध रत्ती समीरपन्नग मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

गोदन्ती भस्ममें जीर्ण ज्वर, विषमज्वर, पित्त-प्रकोप और प्रदरको दूर करनेका गुण अमृतासत्वके सदृश्य होनेसे आज-कल कुछ चिकित्सक अमृतासत्वके स्थानपर (प्रतिनिधि रूपसे) गोदन्ती भस्मका उपयोग करते हैं। यह सगर्भा और बालकोंकेलिये अति निर्भयतासे प्रयोगकी जा सकती है। यदि जीर्णज्वरमें पित्त प्रकोप अधिक हो, शुष्क कास भी रहती हो तो, प्रवाल पिष्टी मिला लेवें और अनुपान स्वरूप शर्बत वनफशा मिलाकर दिनमें २-३ बार देवे।

वक्तव्य—भस्म बनानेके लिये गोदन्ती उज्ज्वल, पारदर्शक अच्छी देखकर उपयोगमें लेनी चाहिये। मैले रंगवाली कच्ची गोदन्ती हानिकारक है। अच्छी गोदन्तीकी बनाई हुई भस्म बालक, सगर्भा स्त्री प्रसुता वृद्धा आदि सबके लिये लाभदायक है। इन सबमें बालकोंके लिये यह उत्तम औषधि है। स्तन्यदोषसे जिन बच्चोंका शरीर कृष हो गया हो, उनको यह भस्म थोड़े दिन तक देते रहनेसे शरीर पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है।

गोदन्ती यह गन्धकका भेद होनेपर भी हरतालके समान लाभ पहुँचाती है। इसलिये गोदन्तीको गोदन्ती हरतालभी कहते हैं। गोदन्तीका उपयोग अधिक मात्रामें बार-बार करते रहनेसे यकृतको हानी पहुँचाती है। इसलिये मात्रा कम देनी चाहिये।

(१७) वज्र (हीरा) भस्म।

प्रथमविधि—हीरा (Diamond) यह शुद्ध कोकिल (Carbon) जातिका खनिज है। इसकी कठोरता १० संख्यासे व्यक्त करते हैं। अबतकके ज्ञात द्रव्योंमें यह सब से कठोर द्रव्य है। इसकी भस्म बनाना सहज नही है। शास्त्रोंमें अनेक विधान भस्म बनानेके लिखे हैं पर सिद्धि एक या दो योगोंसे ही मिलती है।

हीराशोधन—नीचे लिखा विधानशास्त्र परंपरासे अनेक बारका अनुभूत है। हीरेकी रज (Diamond Dust) को सुनारकी सोना पिघलानेकी एक मूषामें रख खूब तेज आंचपर लालकर शुद्ध पारद भरे हुए चीनीके कटोरेमें बुझावें। मलमलके कपड़ेसे छानकर हीरक रज प्राप्त करें। इस प्रकार सोबार करनेसे हीरा शुद्ध होकर भस्म के योग्य बन जाता है। हीरेकी रज न मिले तो कण भी इस विधिसे भस्म योग्य हो जाते हैं। हीरेका बारीक चूर्ण बेलजियमसे आता है। संसारमें सबसे अधिक हीरेके रत्न बनानेकी घिसाईका कार्य बेलजियममें होता है। भारतवर्षमें पन्ना स्टेट (बुन्देलखण्ड) और दक्षिणहैद्राबादमेंभी यह कार्य अल्पमात्रामें होता है।

हीराभस्म विधान—शुद्ध हीरकको शुद्ध ताल (हरिताल), शुद्ध गन्धक शुद्ध हिंगुल, सुवर्णमाक्षिक भस्म, समान भागमें मिलाकर सीसाकी खरलमें बड़े बेर (राजकोल) और पिप्पली छालके क्वाथकी ७-७ भावना देवें। प्रत्येक बार सुखाकर गजपुट दें। इस तरह १८ या अधिक गजपुट, भस्म होनेतक देते रहें।

वक्तव्य—सुवर्णमाक्षिक भस्म केवल एक ही बार मिलावें। शेष द्रव्य अन्यपुटोंमें बराबर देते रहें।

यह भस्म अत्यन्त उग्र होती है। अतः अति सम्हालपूर्वक उपयोगमें लेनी चाहिये।

(वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंहजी)

द्वितीय विधि—शुद्ध किये हुए हीरेके कणोंको अभ्रकके पतरेपर रख, अग्निमें तपा-तपाकर मेंढकके मूत्रमें बार-बार बुझाते जाय। लगभग २०-२५ बार बुझानेसे हीरेका रंग बदल जाता है। चमक मिट जाने तक तपा-तपाकर बुझाते रहें। अभ्रकके पतरे सहित हीरेके कणोंको मेंढकके मूत्रमें डुबोनेसे हीरेके कणोंको एक पतरेसे दूसरे पतरेपर रखनेमें आसानी रहती है। इन कणोंको चीमटेसे उठाना चाहिये। हाथ न लगावें अन्यथा हीरेका जहर अंगुलियोंमें प्रवेशकर जाता है। फिर वहाँपर कुष्ठके समान सफेद दाग हो जाते हैं। बार-बार अभ्रकका पतरा बदल देना चाहिये।। (यो० र०)

मूत्र लेनेके लिये एक बड़े मेंढकके चारों पैर बाँधकर काँसीकी थालीमें चित्त रखकर थालीको अंगारोंपर टेढी रखें। मेंढककी पीठको उष्णता लगनेपर वह मूत्र कर देता है। बादमें मेंढकको खोल दें। एक ही बड़े मेंढकके मूत्रसे हीरा निस्तेज होजाता है।

इस विधिसे ८-६ मासे हीरेके कणोंको निस्तेजकर सुनारकी सोहागा मिली हुई मिट्टीकी छोटी कटोरीमें नीमका आधा पत्ता रख, उसपर हीरेके कणोंको रखें। बादमें नीमका आधा पत्ता ऊपर रखकर दूसरी समान नापवाली कटोरी ढककर मजबूत कपड-मिट्टीकर सूर्यके तापमें सुखा लेवें। फिर एक मिट्टीके घडेमें चारों ओर अनेक छिद्रकर २॥ सेर बबूलके कोयले भरें। उसके बीचमें संपुट रखकर अग्नि देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। स्वांग शीतल होनेपर सपुटमेंसे सम्हालकर भस्म निकाल लेवें। इस भस्मको हींग और सेंधानमक मिलाये हुए कुलथीके क्वाथमें खरलकर टिकिया बनावें। पश्चात् सराव-संपुट करके २-३ गोवरीकी अग्नि देवें। इस तरह ७ पुट देनेसे हीराकी मुलायम भस्म बन जायगी। (श्री० पण्डित नन्हे मिश्र)

मात्रा—$\frac{1}{64}$से$\frac{1}{32}$रत्ती सुवर्ण या अभ्रक भस्मके साथ अथवा पूर्णचन्द्रोदय रसके साथ देवें।

तीसरी विधि—हीराके कण १ तोले को लोहेकी कटोरी या कलछीमें रख कर गरम करें। फिर १० तोले गुलाबजलमें बुझावें। पुनः बिना हाथ लगाये निकाल, गरम करके बुझावें। इस तरह १०८ बार बुझानेसे हीराके कणोंका सरलतासे चूर्ण हो सकता है। उसका चूर्ण करनेपर चूर्ण काला चमकीला अद्रिकायुक्तसा होता है। इसे गुलाब जलमें खरलकर टिकिया बना सपुट कर

२ सेर गोबरीकी अग्नि देवें। फिर निकाल उसी तरह खरलकर अग्नि देवें। इस तरह १४ पुट देवें। फिर घीकुंवारके रसका १४ पुट देवें। कमी हो तो घीकुंवारके २१ पुटतक देने पड़ते हैं। इस तरह २८ से ३५ पुट देने पर चंद्रिका रहित मुलायम और मैले लाल रंगकी भस्म तैयार हो जाती है। (र० यो० सा०)

मांत्रा--- $\frac{1}{100}$ से $\frac{1}{10}$ रत्ती दुग्ध शर्कराके साथ या अन्य औषधियोंके साथ मिला कर देवें।

उपयोग---वज्र भस्म सब प्रकारके वातरोग, पित्तप्रकोप, कफवृद्धि, त्रिदोष, शोष, क्षय, भ्रम, भगंदर, प्रमेह, मेद, पाण्डु, उदररोग, नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करती है। क्षयकी दूसरी अवस्थामें तो लाभ पहुंचाता ही है, परन्तु तीसरी अवस्थामें भी बज्रभस्मवाला रसायन त्वरित लाभ पहुँचाता है, विविध रोगोंके कीटाणुओंको नष्ट करता है; वातवाहिनियों और उनके केन्द्र स्थानको दृढ़ बनाता है; और जीवनीय शक्तिको सबल बनाता है। इन कारणोंसे वज्र भस्म मिश्रित प्रयोग अनेक कठिन रोगोंमें उपकार दर्शाते है। संक्षेपमें वज्र भस्म शारीरिक और मानसिक निर्बलताको दूरकर शरीरको वज्र समान बलवान् और कांतिवान् बनाती है, तथा आयुकी वृद्धि करती है।

हीरा भस्म उत्तम हृद्य, उत्तेजक और शूलहर होनेसे हृच्छूल (Angina pectoris) जिसमें छातीमें तीक्ष्ण शूल चलकर मूर्च्छा आजाती है तथा मिथ्या हृच्छल (Angina pectoris Vasomotoria) जो हृदय यंत्रके बाहर चलता है दोनों पर तत्काल गुण दर्शाती है। धमनीमें यदि रक्तसग्रह हो गया हो या अवरोध होता हो, तो उसे भी यह दूर करती है। एवं वात नाड़ियोंको बल देकर रोगको निवृत्त करती है।

(१८) माणिक्य भस्म (कुश्ता याकूत)।

प्रथम विधि—शुद्ध माणिक्य (Ruby) को सिमाकके खरलमें पीस, सूक्ष्म चूर्ण करे। फिर पत्थरके पक्के खरल या चीनी मिट्टीके खरलमें समभाग गन्धक, मैन-

*वैद्यराज पं० श्री सुखरामदास टी० ओझा माणिक्यादि रत्नोंकी भस्म बार बार बनाते रहते हैं। वे माणिक्य, पन्ना, पुखराज, नीलम, वैक्रांत, गोमेदमणि, राजावर्त और वडूर्यमेसे जिसकी भस्म बनानी हो, उसे ४० तोले लेकर सुवर्ण गलानेके मूसके भीतर भरते हैं। फिर तीव्राग्निमें रखकर खूब तपाकर गुलाबजलमें बुझाते हैं। उसे निकाल पुनः मूसमें भर, तीव्राग्निमें रखकर खूब तपाकर गुलाबजलमें बुझाते हैं। इस तरह गुलाबजल या केवड़ेके अर्कमे ५० से १०० बारतक बुझाकर गुलाबजलमें एक सप्ताह खरलकर छोटी छोटी टिकिया बना संपुटकर १० सेर गोबरीकी अग्नि देते हैं। इस तरह ७ पुट देनेपर उत्तम प्रकारकी भस्म होती है। यह भस्म तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है।

निल आर हरतालको मिला, कटहलके रसमें १२ घण्टे घोट, टिकिया बायकर सूर्यके तापमें सुखावें। फिर सराव-संपुटकर २ सेर उपलोंकी अग्नि दें। इस रीतिसे १० बार अग्नि देनेसे उत्तम भस्म बन जाती है। सुनार जिस सरावको सोहागा और मिट्टी मिलाकर बनाते हैं, उसका उपयोग करना चाहिये। (र० त० म०)

माणिक्यका रंग लाल होता है। जो माणिक्य लाल रंगका होनेपर भी बैंजनी आभावाला हो उसे उत्तम माना है। गुलाबी रंगवालेको न्यून माना है। यह रत्न कठोर है। इसकी कठोरता हीरे से कुछ कम है। इस रत्नके टुकडे गोल, त्रिकोण, चौकोण, अष्टकोण आदि होते हैं। भस्म बनानेके लिये छोटे कणोंका उपयोग होता है।

अनुपान और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार

दूसरी विधि—शुद्ध माणिक्यके चूर्णको गुलाबजलमें १५ दिनतक खरल करनेसे पिष्टी तैयार होती है। यह पिष्टी भस्मके स्थानपर उपयोगमें आती है। अनेक यूनानी हकीम केवडा, चन्दन और गुलाबको साथमें मिलाकर अर्क निकालते हैं। फिर उसमें १०-२० समय बुझा, उसी अर्कमें खरल करके पिष्टी बना लेते हैं।

(रसा० सा० स०)

मात्रा—आधीसे १ रत्ती तक मलाईके साथ दिनमें एकसे दो बार या सुवर्णके वर्क और शहदके साथ देवें।

आचार्योंने निम्नवचनसे माणिक्य आदि रत्नोंकी पिष्टीको भस्मकी अपेक्षा अधिक गुणप्रद माना है

रत्नाना शोधन श्रेष्ठ मारण न गुणप्रदम्।
भस्मना वीर्यहानि स्यात्तस्मात्तानि विशोधयेत्॥

अर्थात् भस्म बनानेपर वीर्यह्रास होता है, पिष्टी बनानेमें नहीं।

उपयोग—यह भस्म नपुंसकता, धातुक्षीणता, हृदरोग, वातपित्तविकार, पित्तविकार रक्तपित्त, वातदोष, ग्रहबाधा और क्षयको दूरकर सब धातुओंको पुष्ट बनाती है। यह दीपन होनेसे कफवातज विकारोंको शान्त करती है, तथा सूर्यग्रहकी पीडाको दूर करती है।

मधुमेह जनित निर्बलतापर मुक्तापिष्टी और गुडमारके अर्कके साथ माणिक्य पिष्टी देते रहनेसे निर्बलता दूर होती है; मस्तिष्क और हृदय सबल बनते हैं तथा, रक्तमेंसे विष कम होजाता है।

(१९) गोमेदमणि भस्म।

प्रथम विधि—मैनसिल, हरताल और गन्धकको सम भाग लें, और सबके बराबर शुद्ध गोमेदमणि (Hircon) का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर कटहलके रसमें १२ घंटे

खरलकर २ सेर आरन्य कन्डोंकी आँच देवें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे भस्म वन जाती है। (र० र० सा०)

रसचूडामणिकारने गोमेदमणिको कटहलके रसमें ७ वार वुझाकर समान गंधक मिला कटहलके रसमें मर्दनकर १० गजपुट देनेको लिखा है।

मात्रा—½से १रत्ती मलाई या शहदके साथ देवे।

उपयोग—गोमेदमणि लंका (सीलोन) से भारतमें आता है। यह भस्म कफपित्तघ्न होनेसे क्षय और पान्डुरोगका नाश करती है। दीपनपाचन होनेसे मन्दाग्नि ओर अरूचिको दूर करती है; अम्ल और उष्ण गुणवाली होनेसे वातप्रकोपको शमन करती है; तथा त्वचाके वर्णको सुन्दर वनाती है। एवं यह बुद्धिप्रवोधक है। गोमेदमणिके सेवनसे वल, वीर्य और आयुकी वृद्धि तथा राहु ग्रहकी वाधा शान्त होती है।

दूसरी विधि——माणिक्यमें कही रीतिसे चन्दन,गुला-के फूल और केवड़ेको मिला अर्क निकाल, उसमें पिष्टी वनालेवें।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार। भस्मकी अपेक्षा पिष्टी विशेप सौम्य होती है।

[२०] तार्क्ष्य [पन्ना] भस्म [कुश्ता ज़मुर्रद]

वनावट—मैनफलके रस में अलसी और सोंठको पीसकर कल्क वनावें। इस कल्कके वीचमें पन्नाकोरख, संपुट कर २ सेर गोवरीमें फूंक दें। इस रीतिसे २० पुट देनसे उत्तम प्रकारकी भस्म वनती है। पन्ना विखर जाय तव मैनफलके रसमें टिकिया वाँध, संपुट करके गजपुट देना चाहिये। (रसा० सा० सं०)

पन्ना (Emerald), यह रत्न पट्कोण आकृतिका मिलता है। दक्षिण अमेरिकाकी खानोंमेंसे अधिक निकलता है। इसका रंग हरा है। तपाने पर पहिले सफेद फिर मैले रंगका वन जाता है। यह रत्न अति कठोर है। भस्म बनानेमें प्राय: छोटे-छोटे टुकड़ोंका उपयोग होता है।

दूसरी विधि——पन्नाके वारीक चूर्णमें समभाग मैनसिल, हरताल और गन्धक मिला कटहलके रसमें खरल कर, टिकिया वांध, सूर्यके तापमें सुखाकर २ सेर आरण्य कण्डोंकी अग्नि दें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म वनती है। (र० र० स०)

यूनानी हकीम पन्नेको घीकुँवारके रसमें खरल कर टिकिया वाँध १० सेर आरण्यकण्डोंमें केवल एक ही समय फूंककर भस्मको उपयोगमें लेते हैं।

तीसरी विधि—माणिक्य पिष्टीके समान पिष्टी वना लेवे।

मात्रा—आधसे १ रत्ती शहद और पीपलके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म ओजवर्द्धक है। ज्वर, सन्निपात, वमन, तृषा, विषविकार, अम्लपित्त, श्वास, पाण्डु, मलावरोध, अर्श और शोथ आदिको दूर करती है, तथा अग्नि प्रदीप्त करके ओजको बढाती है। यह शीतल गुणवाली है। इसलिये उष्ण प्रकृतिवालेके लिये अति हितकर है। आमाशय और हृदयकी निर्बलताको दूर करती है। क्षय, बहुमूत्र और मधुमेहमें लाभदायक है। आयु और स्मरणशक्तिकी वृद्धि करती है। भूतबाधा और बुधग्रहकी पीडाको शांत करती है। इस भस्मको सर्पविषकी उत्तम औषधि माना है।

[२१] वैडूर्य भस्म।

बनावट—वैडूर्य (लसुनिया) को माणिक्यमें लिखी विधि अनुसार भस्म अथवा पिष्टी बना लेवें।

यह रत्न अन्य रत्नोंकी अपेक्षा न्यून महत्व वाला है। यह रत्न हरे-पीले, सफेद, सोना सदृश, काले नीले, आदि अनेक रंगके प्रतीत होते हैं। इस रत्नको वस्त्र आदि पर घिसनेसे विद्युत् उत्पन्न होती है।

मात्रा—आधासे १ रत्ती घृत-मिश्री या रोगानुसार अनुपानके साथ।

उपयोग—यह भस्म पित्तविकार और रक्तपित्तमें गिरनेवाले रक्तको शांत कर, अग्निको प्रदीप्त करती है, और आयुको बढाती है। क्षय और संग्रहणीमें अति लाभदायक है। केतुग्रहकी पीडाको दूर करती है।

[२२] पुष्पराग [पुखराज] भस्म।

बनावट—पुखराजके सूक्ष्म चूर्णमें समभाग गन्धक हरताल और मैनसिलको मिलाकर पक्के कटहलके रसमें १२ घण्टे खरल कर, टिकिया बांध, सूर्यके तापमें सुखा संपुटकर ५ सेर गोबरीकी अग्नि देवें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे भस्म हो जाती है, अथवा माणिक्यमें लिखी रीतिसे पिष्टी बना लेवें। (र० र० स०)

मात्रा—आधसे १ रत्ती शहद या रोगानुसार अनुपानके साथ।

उपयोग—यह भस्म हरताल और मनशिलके योगसे बनने पर उग्र बनती है। यह भस्म कीटाणुनाशक, पित्तवर्द्धक और बल्य है। पिष्टी बनाने पर सौम्य होती है। पुखराज विषविकार, वमन, वातप्रकोप, कफविकार, दाह, रक्तविकार, अर्श, कुष्ठ और मन्दाग्निको दूर करता है, तथा अग्निको प्रदीप्त करता है। क्षय और धातुशोषमें अति हितकर है। पुखराजसे गुरुग्रहकी बाधा दूर होती है।

[२३] नीलमणि [नीलम] भस्म

बनावट—पुष्परागमें लिखी रीतिसे भस्म या पिष्टी बना लेवें। यह रत्न माणिक्यकी खानमें से मिलता है, इसके विविध आकारके स्फटिक निकलते हैं। यह काश्मीर पटियाला, ब्रह्मदेश, लंका (सीलोन) और स्यामदेशमें मिलता है।

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें २ बार शहद और पीपलके चूर्णके साथ अथवा मक्खन-मिश्रीके साथ ।

उपयोग—यह भस्म वृष्य, पाचक और त्रिदोषघ्न है। श्वास, कास, त्रिदोष, विषमज्वर, अर्श आदि रोगोंको दूर करती है; अग्नि प्रदीप्त करती है; और सर्व धातुओंको पुष्ट बनाती है। नीलम धारण या सेवनसे शनिग्रहकी व्यथा दूर होकर आयु और कांति बढ़ती है ।

(२४) राजावर्त भस्म ।

बनावट—शुद्ध राजावर्तको इमामदस्तेमें कूट, सम भाग गंधक मिला, बिजौरेके रसमें १२ घण्टे खरल कर, टिकिया बनाकर सूर्यके तापमें सुखावें। फिर संपुटकर गजपुटमें फूकें। इस रीतिसे ७ पुट देनेसे उत्तम मुलायम मैले लाल रंगकी भस्म बन जाती है । (र० र० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ से ३ बार मलाई-मिश्री, मक्खन-मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये ।

उपयोग—राजावर्त शीतल, गुरु, दीपन, पाचन, वृष्य और रसायन है। इस हेतुसे यह भस्म पित्तप्रकोप, अतिसार, अर्श, क्षय, पाण्डु, कफदोष, वातविकार और पित्त-प्रधान प्रमेह आदि रोगोंको दूर करती है; और पचनशक्ति बढ़ाती है।

दूसरी विधि—शुद्ध राजावर्तको कूट, सूक्ष्म चूर्ण कर सेवके स्वरसके साथ १४ दिन तक खरल करें। फिर खरलमें सेवका स्वरस पिष्टीके ऊपर १ अंगुल रहे उतना भर देवें; और सम्हालकर ३-३ घण्टे तक ३ दिन तक चलाते रहें । बादमें स्वच्छ स्वरस ऊपर-ऊपरसे निकल सके, उतना निकाल लेवें। फिर खरल करके पिष्टी बना लेवें। (पं० नन्ने मिश्र)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें २-३ बार शहद, गुलकंद अथवा आंवलोंके मुरब्बेके साथ देवें ।

उपयोग—यह पिष्टी क्षयरोगमें, कफ, दाह और पित्तवृद्धि होकर होनेवाले अतिसार, अर्श, पाण्डु, पित्तप्रमेह और शारीरिक निर्बलताको दूर कर शरीरको बलवान बनाती है; तथा मदात्यय रोगमें निद्रा न आना, अरुचि, नेत्रलाली, दाह, बेचैनी आदि लक्षणोंको शमन करती है।

(२५) वैक्रान्त भस्म ।

बनावट—शुद्ध वैक्रांतको सावधानीसे कूट या खरलकर बारीक चूर्ण करें। फिर सम भाग गन्धक, मिला खट्टे नीबूके रसमें राजावर्त्तके समान खरलकर गजपुट दें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे मुलायम मैले लाल रंगकी भस्म तैयार होती है। मुलायम न हो, तो दो पुट अधिक देने चाहिये । (आ० प्र०)

मात्रा—$\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक रोगानुसार अनुपानके साथ।

उपयोग—वैक्रान्तको उत्तम गुणके हेतुसे हीरेका उपरत्न माना जाता है। इसकी भस्म त्रिदोषघ्न, षड्रस युक्त और रसायन गुणवाली है। सब धातुओंकी निर्बलता, उदररोग, पाण्डु, ज्वर, श्वास, कास, धातुविकार क्षय, प्रमेह, वात, पित्त और कफ प्रकोपको दूरकर आयुकी वृद्धि करती है। हीरा भस्मके अभावमें वैक्रान्त भस्म ली जाती है

(२६) मुक्ता भस्म।

प्रथम विधि—२ तोला मोतीको पहिले सीमाकके खरलमें घोटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर पत्थरके पक्के खरल या चीनी मिट्टीके खरलमें १२ घण्टे घीकुवारके रसमें घोट टिकिया बना कर धूपमें सुखावें। पश्चात् सरावसंपुटकर २ सेर गोबरीकी आंच देवें। दूसरी बार गायके दूधमें खरल करी, टिकिया बाध, सराव-संपुट करके २ सेर अरण्यकण्डोंकी अग्नि देनेसे श्वेत मुलायम भस्म तैयार होती है।

मात्रा—आधासे १ रत्ती तक दिनमें २ बार दूध-मिश्री, मलाई, मक्खन, गुलकन्द, आवलेंका मुरब्बा, च्यवनप्राशावलेह या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग—मुक्ताभस्म कफ, पित्त, क्षय, कास, श्वास, अग्निमांद्य, दाह, उन्माद, वातरोग, नपुंसकता आदि रोगोंको दूर कर शरीरको पुष्ट बनाती है, और आयुकी वृद्धि करती है।

अग्निपुटी मुक्ताभस्मकी अपेक्षा मोतीपिष्टी बनाना विशेष हितकर है। अग्निपुटी भस्मका उपयोग शंख, वराटिका, शुक्तिकी अपेक्षा तो अधिक होता है, परन्तु अत्यधिक अंतर नहीं है। अतः गुलाबजलमें खरलकर मुक्तापिष्टी तैयार करनेकी पद्धति अच्छी है। पिष्टीमें ही सच्चे मुक्ताके गुण दीखते हैं।

दूसरी विधि—मोतीको पहिले सीमाकके खरलमें सूक्ष्म चूर्णकर सीमाकके या चीनी मिट्टीके खरलमें गुलाबजलके साथ २१ दिनतक खरल करनेसे पिष्टी तैयार होती है।

मात्रा—आधीसे १ रत्ती दूध, गुलकन्द, चन्दनका शर्बत, गुलाबका शर्बत या सितोपलादि चूर्ण, चांदीके वर्क और शहदके साथ।

उपयोग—यह पिष्टी नेत्ररोग, धातुक्षीणता, क्षय, उरःक्षत, हृदयकी निर्बलता, कासी, जीर्णज्वर, हिक्का, भ्रम, नाकमें से रक्त गिरना मस्तिष्ककी निर्बलता, नेत्रदाह, सिरदर्द, पित्तवृद्धि, दाह, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि दोषोंको दूर करती है। मोतीके सेवनसे पित्तकी तीव्रता और अम्लता कम होती है। तथा नेत्रज्योति बढ़ती है। यह पिष्टी शीतवीर्य और मृदुल है। मूत्रमार्ग और सर्वांगका दाह और

पित्तवृद्धिको शमन करती है। निद्रानाशके समय किसीभी रोगमें मुक्तापिष्टीसे निद्रा लानेमें सहायता भी मिलती है।

अत्यन्त त्रास, अत्यन्त क्रोध, अति जागरण, अति अभ्यास, अतिमानसिक श्रम, अति उष्ण पदार्थ सेवन, सूर्यके तापका सेवन, इन कारणोंसे मस्तिष्कको त्रास होता है, यह शिथिलता और मामूली कारणसे क्रोध करना, विचारहीनता, ऊंचा शब्द, कठोर स्पर्श, तीव्र वास, थोड़ा वेस्वादु भोजन, विचित्र या भयानक रूप, बड़ी आवाज, स्पर्श आदि विषयोंका असहनत्व, थोड़े विचारमें ही मस्तिष्क फिर जाना सर्वांग और मस्तिष्कसे दाह, निद्रानाश इत्यादि अधिक बढ़े हुए विकारों पर मुक्तापिष्टीका उपयोग बहुत अच्छा होता है।

बहुत बड़ा मानसिक आघात पहुँचने या शराब, गांजा, धत्तूरा आदि तीक्ष्णवीर्यउष्ण, और विकाशी पिदार्थके अति सेवनसे मस्तिष्ककी विकृति होकर उन्मादका विकार (विशेषतः पित्तज उन्माद) होनेसे मुक्तापिष्टीका बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस विकारमें मुक्तापिष्टी और सुवर्णमाक्षिक भस्म अथवा मोती और प्रवाल पिष्टीका मिश्रण कूष्मांड पाक, ब्राह्मीलेह अथवा घृतके साथ देना चाहिये। ऐसेही भूतोन्मादमें भी अति त्रास देनेवाले, क्रोधी और लड़ाकू रोगियोके लिये भी मुक्ता उत्तम ओषध है।

मुक्ताके उत्तम शीतवीर्य धर्मका गर्मीके दिनोमें होनेवाले दाह पर अच्छा उपयोग होता है। कितने ही श्रीमत लोग गरमीके दिनोमें बहुत व्याकुल हो जाते हैं। अर्थात् शरीरकी बाह्य उष्णताके साथ समधर्म होनेकी पात्रता कम होकर समस्त शरीर विशेषतः संज्ञावाहिनियोकी बाह्य शिरायें (अन्तभाग) बिल्कुल मृदु हो जाती हैं। इस स्थितिमें दाह- शामक अन्य ओषधियोकी अपेक्षा मुक्ताका उत्तम उपयोग होता है। कारण, यह पिष्टी वातवाहिनियोके लिये भी शामक गुण दर्शाती है।

गरमीके दिनोमें तेज धूप, अग्निके पास ज्यादा समय काम करने, धूपमे ज्यादा समय फिरने, अधिक जागरण करने या अपथ्य आहारसे नाक, मुह, गुदा, मूत्र, या अन्य मार्गसे रक्त गिरने लगता है। साथ-साथ हाथ-पैर और सर्वांगमें दाह, व्याकुलता आदि लक्षण होते हैं; तब रक्तस्राव बन्द कर मस्तिष्कको शांति देनेके लिये इस पिष्टीका उत्तम उपयोग होता है।

उपदंश या सुजाक होनेके पश्चात् पित्तप्रकोप होकर मूत्रमार्गका दाह होने या अन्य कारणोसे पित्त बढ़कर मूत्रका दाह होने अथवा मूत्रकी तीव्रता, तीक्ष्णता आदि बढ़नेके हेतुसे मूत्रमार्गमें दाह होनेपर मुक्ताका सेवन अति हितकारक है।

रक्त ज्यादा जानेसे उत्पन्न अन्तर्दाह अथवा अन्य कारणोंसे उत्पन्न अन्तर्दाहमें मुक्ता लाभदायक है। परन्तु स्त्रियोंके योनिस्रावमें अथवा इसके पश्चात् उत्पन्न अन्तर्दाहमें

८—हारिद्र मेहपर—चावलके धोवन और मिश्रीके साथ ।
९—प्रदरपर—धारोष्ण गोदुग्ध या आवलेके रसके साथ ।
१०—वात रोगपर—तुलसीके रस, मिश्री और शहदके साथ ।
११—पित्तज कासमें—अनारके रस और मिश्रीके साथ ।
१२—अस्थिभगमें—शहदके साथ ।
१३—पित्तप्रकोप और भ्रमपर—प्रवाल पिष्टी, आवलोंका मुरब्बा, घृत और मिश्री, सबको मिलाकर देवें ।
१४—उरःक्षतपर—सितोपलादि चूर्ण घी और शहदके साथ ।
१५—मूत्रकृच्छ्रपर—चावलके धोवनके साथ ।
१६—नेत्रजलन और सुजाकपर—घृत और शक्करके साथ, या मिश्री मिले धारोष्ण दुग्धके साथ ।
१७—मस्तकशूलपर—बादामकी खीरके साथ ।
१८—पित्तोद्भव पाण्डुपर—घी शक्करके साथ ।
१९—रक्तपित्तपर—आवलेके मुरब्बेमें ।
२०—मस्तिष्ककी निर्बलता पर—बादामकी खीरमें ।
२१—धातुक्षीणतामें—मलाईके साथ देवे ।

उपयोग—प्रवाल भस्म क्षय, रक्तपित्त, कास, धातुदोष, मूत्रविकार, पित्तविकार, मूत्रबाधा, शिरोरोग, नेत्रदाह, रक्तार्श, अम्लता, यकृद्विकार यकृद्-दोषजनित वमन आदि रोगोंको दूर करती है ।

मुक्ता, प्रवाल, वराटिका, शुक्ति, शंख, ये सब सेन्द्रिय चूनाके कल्प हैं । इनमें प्रवाल चूनेका कल्प होनेपर भी अति सौम्य और शीतवीर्य है । किन्तु अग्निपुटी प्रवालमें प्रवालपिष्टीकी अपेक्षा सौम्यत्व गुण कम है, और दीपनत्व गुण ज्यादा है ।

प्रवाल भस्म या प्रवालपिष्टी नीबूके रसके साथ देनेसे उत्तम पाचन होता है । अग्निमांद्य या अग्निसाद, अरोचक, ये विकार पित्त-दुष्टी और कफ दुष्टीसे भी होते हैं । पित्तदुष्टीसे हो, तो प्रवाल भस्म, कामदूधारस या प्रवालपंचामृत रस देना चाहिये, कफदुष्टीसे हो, तो अग्निकुमार, हिंग्वादि चूर्ण इत्यादि औषधि उपयोगी होती हैं । विशेषतः मुहमें बेस्वादुपना, मुहमें विलक्षण गन्ध, कंठमें विदाह, मुहमें फोडे आदि लक्षण होनेपर प्रवाल भस्म देनी चाहिये । इसके योगसे पाचक पित्तका उत्तम और व्यवस्थित स्राव होकर पचन-क्रियाकी वृद्धि होती है, और अग्निमांद्य दूर होता है ।

अनेक समय अग्निमांद्य आदि रोगोंके परिणामस्वरूप रसाजीर्ण हो जाता है । उसमें अन्न सामने आया कि, उसपर अरुचि आने लगती है, अनेकोंको अन्नकी वास भी सहन नहीं होती, अनेक भोजनका नाम लेनेपर रोने लगते हैं, उबाक सदाकेलिये बनी रहती

है; उदर जड़ समान हो जाता है; इनपर अग्निपुटी प्रवाल सत्वर लाभ पहुँचाती है।

प्रवाल भस्म उत्तम दीपन ओषधि है। इसके योगसे उदरमें पाचक रसका उत्तम कार्य होता है। पित्त-दुष्टीसे अग्निसाद उत्पन्न होनसे प्रबाल भस्मका अच्छा उपयोग होता है। इस भस्मके योगसे पित्तधातु (आमाशयिक रस--Gastric Juice) की दुष्टी दूर होकर साम्य प्रस्थापित होता है। इस तरह दीपन कार्य भी इस ओषधिसे होता है। (पित्त प्रकारका विवेचन औषध गुणधर्म विवेचनमें किया है)।

आमाशय अथवा पक्काशयमें शूल, दाह, अपचन आदि हेतुसे पतले-पतले दस्त होते हैं। ऐसे लक्षण होनेपर प्रवाल भस्मका उत्तम उपयोग होता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

ज्वर जीर्ण होनेपर निर्बलता अधिक आ जाती है, एवं ज्वर धातुमें लीन हो जाता है। जब मज्जागत ज्वर बनता है, तब चक्कर आना, मन्द-मन्द ज्वर बना रहना; सांधा-सांधाओमें दर्द-सा होना हाथ-पैरोंकी नाडिया खिचना, अरुचि, खानेपर वान्ति हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उसपर प्रवाल भस्म १ रत्ती, गिलोय सत्व २ रत्ती, आंवले, गिलोय, और नागरमोथा ४-४ रत्ती शहदके साथ देवे। इस तरह दिनमें २ या ३वार शहदमें देनेसे ज्वर निवृत्त हो जाता है।

दूसरी विधि--२० तोले प्रवाल, २० तोले सूखी मेंहदीके पत्ते, १० तोले मिश्री, तीनोंको मिला हाडीमे सपुट करके गजपुट दे। दूसरे दिन हांडीको निकालकर प्रवालको चुन लें। फिर भैंसका दूध मिला, ३ घण्टेतक घुटाईकर, छोटी-छोटी टिकियां वना, धूपमें सुखाकर संपुट करे। हाडी वड़ी लेनी चाहिये, कारण, टिकिया गजपुट देनेसे फूल जाती है। यह भस्म चूना जैसी मुलायम बन जाती है।

(ब्र० स्वा० सदानन्दगिरिजी)

मात्रा और उपयोग--पहिली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि--प्रवालका सूक्ष्म चूर्णकर गुलाबजलसे २१ दिनतक १२-१२ घण्टे घुटाई करें, इसे चन्द्रपुटी प्रवाल भस्म और प्रवालपिष्टी कहते हैं। कितनेही चिकित्सक केवल ७ दिन तक खरल करते हैं; परन्तु जितनी ज्यादा खरल होती है; उतना ही गुण अधिक होता है। पिष्टी अच्छी प्रकारका खरल होनेपर वारितर हो जाती है; और सत्वर लाभ पहुंचाती है।

सूचना--शुद्ध प्रवालको पहिले इमामदस्तेमें कूटकर एक लोहेके खरलमें खरल करें। पश्चात् २१ दिन तक गुलाबजलमे चीनी मिट्टीके खरलमें घोटना चाहिये। सामान्य पत्थरके खरलमे घोटनेसे खरल घिसकर पत्थरके अणु पिष्टीमें मिल जानेसे पिष्टी दूषित हो जाती है।

मात्रा और अनुपान--पहिली विधिके अनुसार।

उपयोग—प्रवालपिष्टी क्षय, पित्तविकार, रक्तपित्त, कास, श्वास, विष, मूत्रबाधा, उन्माद, नेत्ररोग, इन सबको दूर करती हैं। प्रवाल मधुर, अम्ल, कफपित्तादि दोषोंकी नाशक, शुक्र और कांतिकी वर्द्धक है। यह पिष्टी भस्मकी अपेक्षा विशेष पित्त-शामक, पित्तविकारघ्न और सौम्य होनेसे पित्तयुक्त शुष्ककास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, अम्लपित्त, नेत्रदाह, वमन आदि विकारोंमें विशेष हितकर है, तथा यह मधुर और अम्ल होने पर भी दीपन पाचन हैं। प्रवाल मधुर है, अर्थात् मिश्री समान मधुर नहीं, परन्तु प्रवालका परिणाम मधुर रसके अनुसार, शामक, बृंहण, प्रसादन आदि होता हैं। प्रवालके शामक, शीतवीर्य और प्रसादन गुणका उपयोग भिन्न-भिन्न रोगोंमें उत्तम प्रकारसे होता हैं।

ज्वरके आरम्भमें आमावस्था हो, तो लंघन कराना चाहिये। लंघनके पश्चात् पाचन औषधि रूपसे प्रवालका बहुत अच्छा उपयोग होता हैं। ज्वरादि पाचन कषायके स्थानमें प्रवालपिष्टी दे सकते हैं। ज्वरका वेग तीव्र होने पर प्रवालका अच्छा उपयोग होता है। पित्तप्रधान ज्वरमें दाह, तृषा, प्रस्वेद, शीरःशूल, निद्रानाश, प्रलाप, चक्कर, वमन आदि लक्षण हो, तो यह बहुत अच्छा कार्य करती हैं। ऐसे समय पर इसे गिलोय सत्वके साथ देना चाहिये। अन्य संक्रामक ज्वर या विषम ज्वरमें पित्त-प्रधान लक्षण अधिक होने पर (ज्वर-वेग तीव्र होने पर) अर्थात् १०३°-१०६°-तक होने पर प्रवालपिष्टीका ही उपयोग करना चाहिये। उतना अधिक पित्तज्वर होनेपर त्रिभुवनकीर्ति समान तीव्र और स्वेदल औषधि न देना ही अच्छा माना जायगा। यदि देना हो, तो सम्हालपूर्वक दें, और उसके साथ या स्वतन्त्र रूपसे प्रवालपिष्टी दें। पित्त प्रधान सन्निपात ज्वरमें सन्निपात-दोषघ्न औषधि देनेसे साथ पित्त-दोष कम होनेके और ज्वरवेगको मर्यादामें लानेके लिये प्रवालपिष्टीकी योजना अवश्य करनी चाहिये।

शीतला, छोटी माता रोमान्तिका, अन्य संक्रामक ज्वर, या कीटाणुजन्य-दूषितज्वर या आगन्तुक ज्वरमें रोगीको भयंकर दाह, व्याकुलता और तीव्र ज्वर हो, तो प्रवालकी योजना करनी चाहिये। एवं सेन्द्रिय विषकी तीव्रतासे उत्पन्न ज्वरमें भी प्रवाल दी जाती है। प्रवालके सेवनसे विषप्रकोप और ज्वर, दोनों शान्त होजाते हैं। संक्षेपमें जब जब ज्वर में पित्तकी प्रधानता हो, तब तब इसका उत्कृष्ट उपयोग होता हैं।

क्षयकी बिल्कुल प्रथमावस्थासे लेकर तीसरी अवस्थातक प्रवालपिष्टीका उपयोग होता हैं। क्षयके प्रारम्भमें बहुधा सारे शरीरमें नाड़िया खिचना, शुष्क कास, और मन्द ज्वर आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थाकी शंका होनेके साथ प्रवालपिष्टी देना प्रारंभ कर देनेसे सब अरिष्ट टल जाते हैं। परन्तु यह अवस्था विशेषतः अनेकों के लक्ष्यमें नहीं आती। जब एक समान ज्वर और कास बढ़ने लगते हैं, और रोगी क्षीण होता जाता है, तब इस राजयक्ष्माका संशय होने लगता है। इस अवस्थामें ज्वर ज्यादा, शुष्कता, शुष्ककास, फुफ्फुस दूषित होनेका भरपूर लक्षण अर्थात् श्वास, कास, फुफ्फुसोंमें व्यथा

आदि चिन्ह जिन रोगियोंमें दीखने लगे; उनको प्रवालपिष्टी देना लाभदायक है। ऐसे समयपर प्रवालको शृंगभस्म और गिलोय सत्वके साथ देना चाहिये। क्षयकी तीसरी अवस्थामें भी यह मिश्रण देना हितकर है। जब ज्वर अधिक त्रासदायक, भयंकर कास, उरःक्षत होकर उसमेंसे रक्त गिरना, पीला-हरा और दुर्गन्धयुक्त कफ, सर्वागमें विशेषतः कपालपर स्वेद आना, बहुधा प्रातःकाल प्रस्वेद आना, बेचैनी और तृषा अधिक, रोगीकी मुख-कांति निस्तेज और त्रस्त तथा भयंकर क्षीणता आदि लक्षण होगये हों, तो भी प्रवालको सुवर्ण भस्म और अमृतासत्वके साथ उपयोगमें लेना लाभदायक है। इतना लक्ष्यमें रक्खें कि तीसरी अवस्थामें किसी भी ओषधिका निश्चित रूपसे उपयोग नहीं होता। फिर भी प्रवालसे वेदनामें न्यूनता होती है।

चन्द्रपुटी प्रवाल रक्तपित्तमें बहुत उपयोगी होनेवाली ओषधि है। रक्तपित्त-विकार पित्तप्रकोपसे उत्पन्न होता है। पहले पित्तदोषका विदाह होता है; फिर पित्तके आश्रय रक्तका भी विदाह होता है—(पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम्)। रक्तका विदाह होनेसे रक्त दुष्ट होकर उसमें पित्तका उष्णत्व गुण बढ़ जाता है, जिससे रक्तवाहिनियां दुष्ट होकर पतली होजाती हैं; और उनका स्थितिस्थापकत्व गुण न्यून होजाता है। पश्चात् इनमेंसे फूटकर रक्त बाहर आने लगता है। यह रक्त मुंह, नाक, गुदा, योनि या रोम-रोममेंसे निकलने लगता है। कितनोंहीको स्राव चालू ही रहता है; और कितनोंही को थोड़े समय रुक-रुक कर स्राव होता रहता है। इस रोगमें भिन्न-भिन्न प्रकृतिमें भिन्न-भिन्न दोषोंके अनुषंगसे पृथक्-पृथक् लक्षण उत्पन्न होते हैं। उसमें विशेष दोषके अनुषंगके अनुरोधसे अन्य ओषधि देसकते हैं। परन्तु इसके मूलमें रहा हुआ विदग्ध पित्त, प्रवालपिष्टीके योग मात्रसे ही नियमित होता है। इस पिष्टीके योगसे पित्तकी उष्णता आदि गुण शमन होकर उस में साम्यावस्था उत्पन्न होती है; एवं रक्तका प्रसादन भी हो ही जाता है। इस रोगमें प्रवालको सुवर्णमाक्षिक भस्म और हल्दीके साथ देना चाहिये। हल्दीमें स्तम्भक गुण है; इस कारणसे रक्तपित्तके बिल्कुल प्रारंभमें हल्दीको न देना, यह अच्छा है। रक्तपित्त संकर अर्थात् उपद्रव रूपसे रक्तस्राव होता हो, (आंत्रिक सन्निपात आदि रोगोंमें) तो प्रवाल अच्छा कार्य करती है।

रक्तपित्तमें एक प्राकृतिक भेद (हिमोफाइलिया Haemophilia) है। वह यह है कि कितनेही लोगोंकी प्रकृति एसी होती है कि जरा कहीं लगा, घाव हुआ या गरमीके दिनोंमें नाकमेंसे रक्तस्राव हुआ, तो रक्तप्रवाह जल्दी बन्द नही होता। रक्तका जो मुख्य धर्म रक्ताशयमेंसे बाहर निकलनेके साथ तुरन्त जम जाना, और दृढ़ हो जाना, वह नष्ट हो जाता है, जिससे घावोंमेंसे रक्त निकलता ही रहता है। यह विकार या ऐसी प्रकृति स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषोमे ज्यादा दृष्टि गोचर होती है। यदि स्त्रियोंकी यह प्रकृति हो, तो उनको मासिकधर्म के समय रजःस्राव अधिक होता है, और अधिक दिनतक रहता है। इसहेतुसे उनको अति त्रास होता है। ऐसी प्रकृतिवाले रोगी और निरोगी

मनुष्योंको प्रवाल अति उपयोगी होती है। प्रवाल सुवर्णमाक्षिक भस्मके साथ दीर्घकाल तक देनेसे अमृत सदृश लाभ हो जाता है।

रक्तपित्तके तीव्र विकारमें प्रवाल बहुत परिमाणमें बार-बार देना चाहिये। परन्तु जीर्ण विकार और प्राकृतिक भेदमें प्रवाल बहुत कम मात्रामें देनेसे अच्छा उपयोग होता है। अनुपान भिन्न-भिन्न अनुपयोगमें भिन्न-भिन्न देना चाहिये।

अनेक व्यक्तियोंको प्रकृति-भेदसे बार-बार नाकमेंसे रक्त गिरता रहता है, इनमें बहुतोंके तो यह केवल गरमीके दिनोंमें ही ज्यादा जाता है। बहुतसी स्त्रियोंके मासिक-धर्मके समय नाकमेंसे रक्त गिरने लगता है और बहुत-सी स्त्रियोंके सगर्भावस्थामें रक्त गिरता है। इन सब प्रकारकी विकृतिमें प्रवालपिष्टी अमृत रूप है। ज्यादा समय तक लेनेसे यह जीर्ण विकृति दूर हो जाती है।

प्रवाल विशेषतः पित्तजन्य कासमें अच्छी लाभदायक है। उदरमें विदाह, सूक्ष्म ज्वर, मुँहमें शुष्कता और कडवापन, सतत तृषा, व्याकुलता, पीली, खट्टी और गरम वमन, विशेषतः खाँस-खाँस कर ऐसी वमन होना, निस्तेजता, सर्वांगमें विशेषतः हाथ-पैरमें भयंकर जलन, कितनेही समय तो जलन यहाँ तक बढ़ जाती है कि मनुष्यका व्याकुल हो जाना, हाथ-पैरोंपर मिर्च लगनेके समान वेदना होना, सब त्वचा शुष्क हो जाना आदि लक्षणयुक्त पैत्तिक कासमें प्रवालपिष्टी मीठे अनारके रस अथवा मिश्रीके साथ देनी चाहिये।

अधिजिह्वा, उपजिह्वा या गलशुण्डिका, इन विकारोंसे कंठमें जलन होती है, शुष्क त्रासदायक खाँसी आती है, तथा खाँसते खाँसते गरम और कडवी वमन हो जाती है। इन पर प्रवालका अच्छा उपयोग होता है।

छोटे बच्चोंकी काली खाँसीमें प्रवालपिष्टी बहुत उत्तम औषधि है। विशेषतः खाँसी बहुत जोरकी हो, खाँसीके कारण नाक, मुँह और कानसे रक्त गिरता हो, साथ साथ बच्चेका मुँह लाल हो जाता हो, चेहरा फूला हुआ अथवा सूजा हो, ऐसे लक्षण प्रतीत होनेपर इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। कारण, इसके योगसे कंठ और स्वरपथ (Pharynx) का क्षोभ त्वरित उपशम हो जाता है। काली खाँसीपर प्रवालपिष्टी शृंगभस्म, वंशलोचन, इलायचीके दाने और अमृतासत्वका मिश्रण विशेष गुणदायक है।

उरःक्षतजन्य कासमें प्रवाल उत्तम लाभदायक है। उरःक्षतमें शुष्क कास विदाह रक्त गिरना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपिष्टी अवश्य देनी चाहिये, जिससे क्षतरोपणमें भी सहायता मिले। कतिपय समय इसके साथ लाक्षा अथवा उसका रस देना पड़ता है। तब कितनेही समय प्रवाल मात्रसे कार्य हो जाता है।

सगर्भा स्त्रियोंको होनेवाली कास और उसके साथ वमन, प्रवालपिष्टीके योगसे शमन हो जाती है। सगर्भावस्थामें स्त्रीको अपने शरीरिक घटकोंसे बालकके अस्थि-

पोषणार्थ अस्थि उत्पन्न करनेवाला द्रव्य देना पड़ता है। उसका परिणाम स्त्रीके रक्त, पचनेन्द्रिय और अस्थि पर होता है; जिससे वह स्त्री निस्तेज हो जाती है। चलनेसे उसके पैर दूखने लगते हैं। गोड़ों (घुटनो) पर शोथ आ जाता है। थोड़ा खाया हुआ भी सुखसे नहीं पचता। पेट फूल जाता है और वमन होती है। ऐसी अवस्थामें या ऐसी जिनकी प्रकृति हो उनपर यह बहुत अच्छा कार्य करती है। जिस स्त्रीके वालक जन्मसे वार-बार रोने वाले, निर्बल, निस्तेज और दुर्बल होते हैं; और जिनकी त्वचामें स्थान-स्थान पर सल पड़ते हों; वे थोड़े ही समयमें दगा दे देते हैं। ऐसी स्त्रियोंको गर्भावस्थाके प्रारंभसे अंततक गिलोय सत्व और प्रवालपिष्टी, सितोप्लादि चूर्णके साथ देनेसे बहुत अच्छा लाभ होता है। माताकी ऐसी निर्बल स्थितिमें संतानके अस्थि, मांस और रक्तके अंशको योग्य परिमाणमे पोषण नही मिलता। यह विकार प्रवालके सेवनसे दूर होता ह। गर्भपाल रसका कार्य इसकी अपेक्षा अलग जाति का है।

रसक्षय (अनुलोमक्षय) में प्रवालपिष्टी अति हितावह है। इसके योगसे रस आदि धातुमे पचनकी वृद्धि होकर सब धातु उत्तम प्रकारसे वनती है।

पित्ताभिष्यंद विकारमें नेत्रोंमें लाली, जलन, वेदना, नेत्र फूलनेके समान ऊपर आ जाना और रात्रि-दिनमें दाहके कारण निद्रा न आना, आदि लक्षण होते हैं। इस पर प्रवालपिष्टीका उत्तम उपयोग होता है। इस रोगमें प्रवाल और सुवर्णमाक्षिक भस्मक। मिलाकर मिश्री और घृत या दुग्धके साथ देना चाहिये।

नेत्र, हाथ, पैर, मूत्र, इन सबमें दाह (पूयशुक्र या पूयप्रमेहका दाहे छोड़कर), मूत्रका वर्ण लाल अथवा बहुत पीला, सर्वांग और त्वचामें भी दाह हो, विशेषतः गर्मीके दिनोंमें उष्ण पदार्थके सेवनसे या जागरणसे इन विकारकी उत्पत्ति हुई हो; तो प्रवालपिष्टी का उपयोग करना चाहिये। इस अवस्थामें मुक्तापिष्टी भी उपयोगी ह ती है। परन्तु वह अतिशीतवीर्य होनेसे अत्यन्त तीव्र दाहमें उपयोगी है।

प्रवालका उपयोग पित्तोन्माद और भूतोन्माद पर होता है। उन्मादका कारण प्रथम मानसिक और पश्चात् में शरीरिक होता है,। अथवा प्रथम शारीरिक कारण उपस्थित होकर पश्चात् वह मनोदेशको दूषित करता है; परिणाममें उन्माद उत्पन्न होताहै, गर तीव्र शराब, गाजा, आदिके सेवनसे घोर शरीरिक दोष उत्पन्न होकर उन्मादहो जाता है। यह दूसरे प्रकारके उन्मादका उदाहरण है। केवल मानसिक आघात, शोक और मनोव्याघातसे असह्य मानसिक क्लेश होकर जो उन्माद होताहै, उसे पहिले प्रकार का उन्माद कहेगे। जो दूसरे प्रकार का उन्माद है, जिसमे पित्तदुष्टी हेतु हैं; तीव्र शराव या तीव्र विषके सेवनसे पित्तदुष्टी होती है; वह प्रवालपिष्टीके सेवनसे दूर होती है। इस रीतिसे उन्मादपर प्रवाल लाभदायक है।

कोष्ठगत सेन्द्रिय विष (गर) के योगसे विशेषतः उसमें पित्तदुष्टी होनेपर उन्माद होता है। कितने ही रोगी बिल्कुल पागल हो जाते है। ऐसे विकारमें प्रवालपिष्टीके साथ

आरोग्यवर्द्धिनी, चन्द्रप्रभा या शिलाजीत देना चाहिये ।

भूतोन्मादमें पित्तका अनुबन्ध हो, तो प्रवालपिष्टी देनी चाहिये । विशेषतः क्रोधी, लडाकू साहसी और दूसराको सन्ताप देनेवाली स्त्रियोंको यह औषधि बहुत उपयोगी होती है । उन्मादके झटकेके साथ नाकमेंसे रक्त गिरना, चेहरा बिल्कुल लाल हो जाना, शिरायें खिंच जाना आदि लक्षण होनेपर प्रवालका बहुत अच्छा उपयोग हुआ है ।

बालकोंके अस्थिमृदुता रोग (Rickets) पर प्रवालपिष्टी अति उपयुक्त है । बिल्कुल छोटे ३-४ मासके बच्चेसे लेकर बड़े बच्चोंतक सबके लिये यह उपयोगी है । इस रोगमें बालकोंके नितम्ब (चूतड) आदि स्थानोंपर सल (सिकुडन) पड जाना, पैर और हाथकी, इनमेंभी विशेषतः पैरकी हड्डी मुड जाना, बार-बार थोडे-थोडे दस्त होना, ज्वर भी रहना इत्यादि लक्षणहोनेपर प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्वको मिलाकर देना चाहिये । यदि खासी हो, तो शृंग भस्म भी मिला देवें । प्रवालपिष्टी चूनेका सेन्द्रिय सौम्य कल्प होनेसे अस्थि-मार्दव रोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है । इस रोगमें चूनेकी न्यूनता मूल कारण है । जिस द्रव्यकी इस विकारमें न्यूनता हुई है, उसी-उसी द्रव्यकी प्रवालपिष्टीके साक्षीत्वके कारणसे प्राप्ति हो जाती है । इस रोगकी प्रथमावस्था से लेकर अन्तमावस्थापर्यन्त प्रवालका उत्तम उपयोग होता है ।

पारिगर्भिक रोगमें बालक अति अशक्त हो जाते हैं । वमन, कभी-कभी अतिसार, अत्यन्त कृशता, ज्वर रहना, सारे दिन रोते रहना, आदि लक्षण होतेहैं । इसपर प्रवाल अति उपयोगी है । यदि अपचन और अतिसार हो, तो सर्वाङ्गसुन्दर रस देना चाहिए ।

बालकोंके दांत आनेके समय होनेवाले विकारों में प्रवाल अति उपयुक्त है । विशेषतः यह रोग ज्यादा दिनतक रहा हो, ज्वर, वमन, पीले पतले दुर्गंधयुक्त दस्त आदि लक्षण हो, तो प्रवाल देना चाहिये । जिस बच्चोंके दांत अति कठोर हो, उसके लिये भी प्रवाल अति उपयोगी है । यदि दन्तोद्भव विकारमें वातप्रधान लक्षण और दस्तका रंग हरा दाँवणयुक्त पतला हो, तो कनकसुन्दर रस देना चाहिये ।

बालकके स्तनपानके कारण अनेक सुकुमार स्त्रियोंका शरीर ज्यादा कृश, निस्तेज और निर्बल हो जाता है । हाथ-पैरोंकी सन्धियोंमें पीडा होने लगती है । कितनीही स्त्रियोंकी सन्तानें एक पीछे एक, मृद्रस्थि रोगमें मरती हैं । ऐसे दोषोंमें प्रवालका सेवन अधिक प्रशस्त है ।

पित्तदोषकी दुष्टीको दूर करके उसमें साम्यावस्था प्रस्थापित करनेका धर्म प्रवालका अति महत्वका है, जिससे पित्तजन्य विशेषतः पित्तके तीक्ष्ण उष्ण आदि गुण बढनेसे उत्पन्न हुए अनेक विकारोंमें इस पिष्टीका अति उत्तम उपयोग होता है । पैत्तिक शीर्षशूल, वमन, दाह आदि पित्त प्रधान लक्षण हो, तो

प्रवालपिष्टी देनी चाहिये।

पित्तज अम्लपित्तमें बार-वार अत्यन्त कड़वी, पीली, जलती हुई वमन, चक्कर, व्याकुलता, शिरदर्द आदि लक्षण हों, तो प्रवाल देवें।

प्रवालपिष्टीसे पित्तकी तीव्रता और अम्लता दूर होकर दाह शमन होजाता है। अर्थात् प्रवालके योगसे माधुर्य उत्पन्न होता है। कामदुघा रससे भी यह कार्य होता है; परन्तु वह स्तम्भक है।

प्रवालपिष्टी शुक्रस्थानकी विकृतिमें उपयोगी है। शुक्रदोष कहनेकी अपेक्षा, शुक्रस्थानके दोषमें उपयोगी है, ऐसा कहना अधिक सयुक्तिक होगा। ग्रन्थिशुक्र या पूयशुक्र आदि पर इसका लाभ बहुत थोडा होता है। परन्तु थोड़ी धूप लगी, अग्निके पास बैठे, थोड़ा-सा जागरण किया, किञ्चित् उत्तेजक पदार्थ, गरम मसाला या खटाई खाई, तो रात्रिको स्वप्नावस्था में शुक्रस्राव होता है। इस पर अच्छा उपयोग होता है।

खराब आदतोंके कारण शुक्रस्थान इतने निर्बल होजाते हैं कि, मनको थोड़ा-सा आघात भी सहन नहीं होता। स्त्री-विषयक बात मन मात्रमें आई कि तुरन्त शुक्रस्राव होने लगता है। वस्तुतः ऐसे लोगोंको सच्ची कामेच्छाका बोध ही नहीं है। इन्द्रियोंकी लालसा मात्र होती है यह इन्द्रिय-लालसा या मनकी खराब स्थिति यहाँ तक बढ़ जाती है कि, कुछ कह नहीं सकते। स्त्री-जातिमेंसे चाहे बहन-बेटी क्यों न हो; कोई दृष्टीगोचर हुई कि, तुरन्त इच्छा न होने पर भी मनमें विकृति होकर शुक्रस्राव होजाता है। स्त्रियों के जेवरोंकी आवाज सुनी कि, शुक्रस्राव हुआ। किसी सुन्दरीका दर्शन हुआ कि, मन विकृत होकर शुक्रस्राव हो जाता है। यह स्थिति, विशेषतः मानसिक स्थिति, प्रवालपिष्टीके योगसे अति उत्तम प्रकारसे सुधर जाती है। वंगभस्म शुक्रस्थान को शक्तिदायक है; और प्रवाल शामक है। इस कारण अनेक समय इन दोनोंको मिश्रित करके देनेकी अवश्यकता रहती है।

जीर्ण सुजाक और उपदंश रोगका परिणाम मूत्रमार्गपर होनेसे बारबार मूत्रदाह होता है। मूत्रका रंग पीला-लाल होजाता है। मूत्र बहुत गरम होजाता है। साथ-साथ--सारे शरीरमें विशेषतः हाथ, पैर और नेत्रोंमें अधिक दाह, दांतोंसे रक्त गिरना, बार-बार मसूढे फूलना आदि लक्षण होते हैं। इस प्रकारमें प्रवाल पिष्टी अनन्तमूलके साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है। यदि स्त्रियोंको भी अति पुरुष-प्रसंग, जीर्ण सुजाक या उपदंशके विकारके पश्चात् मूत्रमार्गका ऐसा ही विकार हुआ हो, तो उनको भी प्रवाल देनी चाहिये।

सुजाक, उपदंश या अन्य कारणोंसे स्त्रियों के अपत्य मार्गपर दाह होकर स्फोट उत्पन्न होजाते हैं। फिर गर्भाशयमें दाह होता है। इस कारणसे गर्भाशयका

कार्य भी यथोचित-रूपसे न होकर गर्भस्राव या गर्भपात होजाता है या समयके पहले प्रसव होजाता है। ऐसे लक्षण होने पर प्रवालपिष्टीका अति उत्तम उपयोग होता है।

स्त्रियोंके गर्भाशय और योनिमार्गमें अनेक प्रकारकी विकृति होनेसे प्रदर रोगकी उत्पत्ति होती है। भीतरकी रक्तवाहिनियाँ फूट जानेसे रक्तप्रदर होता है। श्वेतप्रदररोगमें स्राव रक्तवाहिनियोंमेंसे न होकर श्लैष्मिक कलामेंसे होता है। इस की चिकित्सा करनेके समय भीतरसे क्या विकृति हुई है, यह अच्छी रीतिसे जान करके उपचार करना चाहिये। उपचार दो रीतिसे किया जाता है—(१) उत्तम बस्ति द्वारा योनिमार्गको शुद्ध और स्वच्छ बनाना, तथा (२) पेटमें औषध देकर। प्रदरमें जल समान बिलकुल पतला दुर्गन्धयुक्त भयंकर गरम, दाहयुक्तस्राव होना, जहाँ प्रदरका जल लगे वहाँ पर फुन्सियाँ होजाना, या त्वचा फटकर उसमें पीड़ा होना, खुजली चलना, दाह होना (क्वचित् जलन यहाँ तक बढ़ जाती है कि, संसार-कर्म असह्य हो जाता है) और भयंकर त्रास होना, इत्यादि लक्षण हों, तो उस पर प्रवालपिष्टी देनी चाहिये। प्रवालको उशीरासवके साथ देनेसे उत्तम इलाज होजानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। इस तरह उपरोक्त लक्षणवाले रक्तप्रदर और अन्यार्तवमें भी इसके सेवनसे अच्छा लाभ पहुँचता है। रक्तप्रदरपर प्रवालपिष्टी, सुवर्णमाक्षिक भस्म और वङ्गभस्म मिलाकर दाडिमावलेहके साथ दी जाती है।

रक्तार्श और पित्तार्श, दोनों प्रकारके अर्शमें पित्त लक्षण अधिक होनेपर प्रवालपिष्टीका उपयोग करना चाहिये। इन दोनों प्रकारोंके लिये प्रवाल, गिलोय सत्त्व और नागकेशरको मिलाकर मक्खन-मिश्री अथवा बकरीके दूधके साथ देनेसे अच्छा लाभ होता है।

विष शमन होजानेके पश्चात् विषका परिणाम (लेश) शेष रह जाता है। यह अनेकोंको आजन्म त्रास देता है। विशेषतः सोमल, रसकपूर आदि तीक्ष्ण और तीव्र विषका परिणाम अति त्रासदायक होता है। विषका लक्षण तीव्र नहीं होता, परन्तु व्याकुलता बनी रहती है, लघुशंका मूत्र गरम होती है, उदर, छाती, पीठ किंवहुना सर्वाङ्गमें दाह, हाथ पैरोंमें ज्यादा जलन, नाकमेंसे बार-बार रक्त गिरना, और मस्तिष्क फिरना ऐसे लक्षण होते हैं इन पर प्रवाल अति लाभ-दायक है। (अनुपान पसे रमामा और गोखरू १-१ तोले और मिश्री दो तोले मिला अष्टमांश क्वाथकर १-१ तोला गोघृत मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहें।)

प्रवाल पित्तदोषके तीक्ष्णत्व, उष्णत्व, अम्लत्व आदि गुणोंकी वृद्धिको शमन करनेमें उपयोगी है। अस्थि, मज्जा, शुक्र, रक्त, मांस ये दूष्य और आमाशय, पक्व-नेन्द्रिय, वातवह मंडल, मन आदि इन सब स्थानों पर असर पहुँचाती है।

(जी० गु० घ० शा०)

यकृत् पित्त (पित्ताशयमेंसे निकलनेवाला पित्त) तीव्र हो जाने और अधिक मात्रा में निकलने पर पैत्तिक शूल उत्पन्न होता है। यह शूल भोजनके पहिले रहता है भोजन कर लेने पर स्तम्भित होता है। नलिकाकी श्लैष्मिक कलामें व्रणहो जानेसे या छिल जानेसे बाहरसे दबानेपर दर्द होता है। उस विकारपर प्रवालपिष्टी अमृता सत्वके साथ मिला आँवलोंके रसमें भोजनके १ घण्टे पहिले दिनमें दो बार देनेसे शूल शमन हो जाता है। साथमें पित्त नलिकाकी श्लैष्मिक कलाकी विकृतिको दूर करनेके लिये रोज रात्री को भोजन करनेके प्रारंभमें १-१ तोला त्रिफला घृत लेते रहना चाहिये।

(२८) शुक्तिभस्म

बनावट—शुद्ध मोतीकी सीपके ऊपर लगे हुए उज्ज्वल भागको हाँडीमें घीकुँवारका गूदा ऊपर नीचे रख सम्पुटकर गजपुट दें। स्वांग शीतल होने पर-निकाल पुनः नींबूके रसमें ६ घन्टे खरल कर, टिकिया बाँध सम्पुट कर गजपुट देनेसे मुलायम सफेद रंगकी उत्तम भस्म बन जाती है। २० तोले सीप हो, तो ८०-तोले घीकुँवारका गूदा लेवें।

श्री पं० यादवजी विक्रमजी आचार्यने मोतीपिष्टी के समान शुक्तिकी पिष्टी बनानेका लिखा है। उसका उपयोग मुक्तापिष्टी के समान होता है।

मात्रा—१ रत्तीसे ३ रत्ती दिनमें २ बार मक्खन मिश्री अथवा शहद या पान में अथवा क्षितोपलादि चूर्ण, घी और शहद मिलाकर देवें।

उपयोग—यह भस्म क्षय, खाँसी, जीर्णज्वर, नेत्रदाह, उदरवात, पित्तज गुल्म, श्वास, हृद्रोग (पित्तप्रकोपज), पित्त प्रधान अरुचि, पित्तज परिणामशूल, यकृत्शूल पित्तज वमन, पित्तातिसार, अम्लपित्त, विदग्धाजीर्ण उद्गार (डकार आना), रक्त-प्रदर और निर्बलताको दूर करती है। शुक्तामें मुक्ताकी अपेक्षा न्यून गुण है।

शुक्ति भस्ममे शंखभस्मकी अपेक्षा तीव्रता कम है। वस्तुतः शुक्ति, शंख वराटिका, तीनो भस्म स्थूल रसायनशास्त्रकी दृष्टिसे एक ही प्रकारकी हैं। तीनों ही चूनेके सेन्द्रिय कल्प है। परन्तु जीवनरसायन शास्त्र या गुणधर्म शास्त्रकी दृष्टिसे तीनोमे कुछ कुछ अन्तर है। शंख और वराटिकामे अधिक साधर्म्य है, एवं शुक्ति और मुक्तामे भी विशेष साधर्म्य है। इस हेतुसे सीप यदि मोतीपिष्टीके अनुसार केवल शीत भावनापुट विधिसे की हो, तो उसका धर्म मुक्तासे किञ्चित् न्यून देखने-में आवेगा। परन्तु उस रीतिसे शुक्ति पिष्टी बनानेका रिवाज नहीं है। शुक्तिकी भस्म गजपुट विधिसे तैयार करते हैं। यह कुछ तीव्र बनती है। फिर भी वराटिका और शंख भस्मसे तीव्रता न्यून ही है। इसी हेतुसे शुक्ति भस्म छोटे बच्चों, सुकुमार तथा नाजुक प्रकृतिके स्त्री-पुरुषों को दी जाती है।

शुक्तिके सेवनसे स्वादुता उत्पन्न होती है, जिससे अम्लपित्त, पित्तज शूल, परिणामशूल, और अन्नद्रवशूलमें पित्तकी तीव्रता कम होती है

अम्लपित्तमें शुक्ति और माक्षिकका अच्छा उपयोग होता है। विदग्धाजीर्णमें दूषित डकारें बहुत आती हो और कंठमें दाह होता हो, तो शंखकी अपेक्षा शुक्ति विशेष हितकर है। रसाजीर्णकी तीव्र और जीर्ण अवस्थामें नाजुक मनुष्योंको शुक्तिसे ज्यादा लाभ होता है।

पित्तातिसारमें बारबार दस्त होते हों, दस्तका रंग पीला, नीला, अथवा लाल-नीला हो, साथमें विलक्षण तृषा बारबार, चक्कर आना, मूर्च्छा, सर्वाङ्गमें दाह, गुदाके बाहरके अंशमें त्वचा फटना, छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाना आदि लक्षण हों, तो शुक्ति भस्म देनी चाहिये। अनुपान—अनारपाक, आमका मुरब्बा, मक्खन या अनार शर्बत।

पित्तजन्य वमनमें शुक्तिका उपयोग होता है। अत्यन्त गरम-गरम कड़वी, पीली, नीली वमन, कंठमें जलन, उदरमें दाह, नेत्रके समक्ष अन्धकार, चक्कर आना आदि लक्षण हों, तो यह हितावह है।

पित्तगुल्ममें यह भस्म हितकर है। मुँह, नेत्र और सारा शरीर लाल हो जाना, ज्वर, तृषा, अन्नका पाचन होनेपर कोष्ठमें भयंकर शूल, व्रणके समान गुल्म-पर हाथ या अन्य वस्तुका स्पर्श सहन न होना आदि लक्षणोंसे युक्त गुल्ममें शुक्ति दी जाती है। यह गुल्म अष्ठीला या विद्रधिके अनुसार मांस आदिकी वृद्धि होकर नहीं होता।

रक्तगुल्ममें शुक्तिका उपयोग होता है। केवल उसमें अन्य दोषकी अपेक्षा पित्ताधिक्य होना चाहिये। पित्तज शीर्षशूलमें भी इसका उपयोग होता है। मूत्रकृच्छ्र, दाँत या अन्य मार्गसे रक्तस्राव होनेकी प्रकृति हो, तो शंख या वराटिका भस्म दी जाती है। परन्तु कोमल प्रकृतिवालोंके लिये इस भस्मका उपयोग करना चाहिये।

शुक्तिसे कोष्ठगत वातका शमन होता है। कोष्ठगत वातके साथ श्वास हो, तो भी इसका उपयोग लाभदायक है। हृदयमें वातकी रुकावट होना, हृदयमें वातके योगसे बोझा-सा मालूम होना, पीडा होना, शूल चलना, कोष्ठमें जलन होनेके समान भासना, हाथ-पैर शून्यसे होकर झनझनाहट होना, हाथ पैरमें शीतलताका भास होना, इत्यादि लक्षण होते हैं, और डकार आनेपर व्यथा कम हो जाती है या बिल्कुल शमन हो जाती है। ऐसी स्थितिमें शंख तथा वराटिकाकी अपेक्षा शुक्तिका अधिक उपयोग होता है।

अरुचिमें, विशेषतः पित्तप्रधान अरुचिमें, शुक्तिका उपयोग किया जाता है। इस भस्मके सेवनसे मुँहकी बेस्वादुता, मुँहमेंसे दुर्गंध आना, मुँहका कड़वा,

खट्टा, खारा या चरपरा हो जाना, मुँहमें से गरम-गरम भाप निकलना, ये सब लक्षण दूर होते हैं।

शुक्ति भस्म पित्त और किञ्चित् कफ दोष; रस, रक्त, माँस, अस्थि ये दूष्य; और आमाशय, यकृत्, प्लीहा और ग्रहणी, इन सब पर लाभ पहुँचाती है।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शंख, इनकी भस्में क्षार-रूप होनेसे सूखी ओषधियोंके साथ सेवन करनेपर किसी-किसीके मुखमें छाले हो जाते हैं। अतः घी मिलाकर सेवन करें या गिलोय सत्व और शहद को अच्छी तरह मिला लें। अथवा मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी सेवन करें।

(२६) वराटिका (कपर्दिका) भस्म।

बनावट—४० तोले शोधन की हुई पीले रंगकी कौड़ियोंको निर्धूम तेज अग्निमें लाल हो जायँ तब तक रखें। अच्छी रीति से फूल जानेपर सम्हालपूर्वक उठा घीकुँवार या निम्बू के रस में डुबो दें। पश्चात् उसी रसमें खरलकर दो-दो तोलेकी टिकियाँ बना, सूर्यके तापमें सुखा, संपुटकर गजपुट अग्नि देनेसे वराटिका भस्म तैयार हो जाती है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिनमें दो से तीन समय घृत-मिश्री, निवाये जल, नींबू का रस, शहद, नागरबेलके पान या अन्य अनुकूल अनुपानके साथ देवें। कान पकनेपर भस्म डाल ऊपर नींबूका रस डालें।

उपयोग—यह भस्म परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, रसाजीर्ण, अम्लपित्त, रसक्षय, आफरा, श्वास, गुल्म, उदरवात, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर और कानसे पीप निकलना आदि रोगों को दूर करती है। इस भस्समें पित्तकी अम्लताको कम करनेका मुख्य गुण होनेसे इसके सेवनसे नेत्रकी उष्णता भी शान्त होती है।

कपर्दिका भस्म चूनेका सेन्द्रिय कल्प है। इसमें सेन्द्रियत्व होनेसे अन्य निरिन्द्रिय कल्पकी अपेक्षा सत्वर और सुखपूर्वक शरीर में शोषण हो जाती है। कपर्दिका भस्म उदरमें स्वादुता उत्पन्न करती है। शंख और शुक्तिकी अपेक्षा वराटिकामें यह गुण विशेष रूपसे रहा है। इस हेतुसे कोष्ठगत वात-वृद्धि होकर आफरा आना, पेट दुखना, पेटमें शूल चलना, भोजन जहाँका तहाँ स्थिर-सा रह जाना, बार-बार शुष्क डकार या दुर्गन्धयुक्त भोजनकी वासवाली डकार आना, व्याकुलता, विशेषतः वातुल, जड़ और तले हुए पदार्थोंके सेवनसे अजीर्ण हो जाना आदि लक्षणयुक्त अपचनमें वराटिका भस्मका उपयोग हितकर है। यदि इस स्थितिमें ज्यादा वमन भी होती हो; और वमनके साथ आफरा बढ़ता हो और शूल ज्यादा चलता

हो, तो इसे अनारके रस या दाडिमावलेहके साथ देनी चाहिये। ऐसे ही रसाजीर्ण होनेकी जिनकी प्रवृत्ति हो, उनको भी यह भस्म देना हितकर है।

परिणामशूल—विशेषतः पित्तज, वातज, अथवा वातपित्तज होनेपर इस भस्मका सेवन कराना चाहिये। परिणामशूलमें बहुत करके ग्रहणी स्थानमें ज्यादा विकृति होती है। वराटिकासे यह दुष्टी दूर होती है। इस रीतिसे मुद्रिका द्वार-पर व्रण हो और वह बहुत न बढ़ा हो, तो व्रणरोपणरूप महत्वका कार्य इसमें हो जाता है।

अन्नद्रवशूल में यह भस्म हितकारक है। अन्नद्रवशूलमें वातप्रकोपके कारण से आफरा होता हो, तो कपर्दिका भस्म और शंख भस्मको मिलाकर देना चाहिये।

अम्लपित्तके प्रारम्भकालमें झागयुक्त खट्टी वमन होती हो, तो वराटिका भस्म दी जाती है। साथमें स्वर्णमाक्षिक भस्म देनेसे ज्यादा लाभ होता है।

ग्रहणी रोगके बिल्कुल प्रारम्भकालमें और आमातिसारमें आमपाचनके लिये कपर्दिका भस्मका उपयोग होता है। प्रारम्भमें एक दो उपवास करा कपर्दिका अथवा जिसमें यह भस्म मिली हो, ऐसी जातिफलादिवटी, ग्रहणीकपाट रस या अन्य औषधि देनी चाहिये। जातिफलादि और ग्रहणीकपाटमें अफीम मिलाई जाती है, जिससे वे तीव्र स्तम्भक हैं, इसलिये इनका उपयोग बहुत सम्भालपूर्वक करें। आमातिसार और ग्रहणीमें तीव्रशूल अर्थात् आमजन्य शूल हो, तो कपर्दिकासे अति उत्तम कार्य होता है, किन्तु ग्रहणीरोगकी जीर्णावस्थामें उसका उपयोग अच्छा नहीं होता। विशेषतः रक्तमिश्रित आम गिरते हो, तो इस औषधिका उपयोग न करना ही अच्छा माना जायगा। नूतन रोगमें भी रक्त मिश्रित आमपर कपर्दिका नहीं देनी चाहिये। यदि देनी हो, तो अन्य स्तम्भक और रक्तप्रसादक औषधके साथ देनी चाहिये।

रसक्षयके प्रारम्भमें जब थोडा भोजन करनेपर भी पचन न होता हो। मीठी, खट्टी और खाये हुये भोजनकी विकृत डकार बार-बार आती हो, मलावरोध भी रहता हो, तब इस भस्मसे लाभ होजाता है।

रक्तपित्त और क्षतक्षयपर वराटिका, प्रवाल और सोनागेरू मिलाकर देना चाहिये। इसमें चूना और माधुर्य उत्पादक धर्म होनेसे, रक्त और रक्तवाहिनियोंका स्तम्भन होकर रक्त गिरना बन्द हो जाता है।

जीर्ण अग्निमांद्यमें वराटिका भस्म घृत या अन्य पाचक औषधिके साथ देनी चाहिये। जीर्णज्वर और प्लीहावृद्धिमें मंदाग्नि हो, तो भी इसका उपयोग हितकर है।

चिपचिपा, स्फोटयुक्त तीव्र व्रणस्राव हो, तो वराटिकाका उपयोग करना

चाहिये । कानमें थोड़ी बराटिका भस्म डालें, फिर गरम कर शीतल किया हुआ तेल, बिल्वादि तेल, या क्षार तेल डालना चाहिये; और वराटिका भस्म दूधके साथ सेवन करानी चाहिये ।

अग्निदग्ध त्वचापर बराटिका भस्मका उत्कृष्ट उपयोग होता है । वराटिका भस्म, मुर्दासंग, सोनागेरू, गिलोय सत्व, श्वेत चन्दन और वंशलोचन, सबको समभाग मिला, अरंडीके तेलमें खरलकर मृदु ब्रुश या रुईके फोहेसे जले हुए स्थान पर मोटा मोटा लेप करें । जैसे-जैसे लेप लगाते जायँगे; वैसे-वैसे शीतलता होती जायगी; फोड़े नही उठेंगे, और त्वचा उत्तम प्रकारसे अच्छी हो जाती है ।

वराटिका भस्म पित्तशामक, विशेषत: पित्तकी अम्लता शामक, कोष्ठस्थ वातहर, शूलघ्न और पाचक है । इसका कार्य यकृत्, प्लीहा, आमाशय और ग्रहणीपर होता है । पित्तदोष तथा रस और क्वचित् रक्त, इन दूष्योंपर लाभ पहुँचाती है ।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना---वराटिका भस्मके सेवनसे जिह्वा फट जाती है । इस हेतुसे घृत गिलोय सत्व और शहद या अन्य ओषधिके साथ मिलाकर चाहिये ।

(३०) शंख भस्म

विधि---शुद्ध शंखके टुकड़ोको कोयलेकी तेज अग्निपर अच्छी तरह तपाकर नीबूके रसमें बुझा देनेपर भस्म हो जाती है । फिर उसे खरलकर बोतलोंमें भर लेवें ।

यदि इस भस्मका उदररोग अथवा नारुरोगपर उपयोग करना हो, तो आकके पीले पानोके रसमें ६ घंटे खरलकर टिकिया बना संपुट करके गजपुट अग्नि देनी चाहिये ।

मात्रा---१ से ४ रत्ती दिनमें दो समय, अजीर्णपर नीबूके रस और मिश्री अथवा गरम जलके साथ या १ रत्ती हींग और ६ माशे घृतके साथ दें । अतिसार और संग्रहणीमें बेलके मुरब्बेके साथ । नेत्रके फूलेपर दिनमें २ समय अंजन करें । हिक्कामें १ रत्ती काकड़ासिगी और २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ १-१ घण्टेपर ३-४ बार दें । त्रिदोषज शूलपर कालानमक, भूनी हींग और त्रिकटुके साथ मिलाकर निवाये जलके साथ देवें ।

उपयोग---यह भस्म उदरवात, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गुल्म, मन्दाग्नि, अतिसार, अजीर्ण, अफारा, शूल, संग्रहणी और नेत्रके फूले आदि रोगोंमें अति उपयोगी है । स्नायु (नारु) निकला होवे, तब १-१ माशे भस्म दिनमें २ समय चार दिनतक देते रहनेसे रक्तमें रहे हुए (किन्तु बाहर न निकले हुए) नारु जल जाते हैं ।

शंखभस्म एक प्रकारका क्षार है। क्षारके गुणधर्म बहुत अंशमें इस भस्ममें प्रतीत होते हैं। शंख और वराटिकामें गुण-सादृश्य अधिक हैं। कारण, दोनों चूनेके सेन्द्रिय कल्प हैं। तथापि शंखमें कुछ पृथक् गुण भी हैं। उन्हींको यहांपर दिखाया है। शंखभस्ममें ग्राही अर्थात् स्तम्भक गुण हैं, जिससे अतिसारमें, विशेषतः पक्वातिसारमें, अच्छी उपयोगी है। पक्वातिसारमें शंखभस्म, सोहागेका फूला, अफीम और जायफलको योग्य परिमाणमें मिश्रण करके देना अति हितकर है। इस योगको शंखोदर कहते हैं। ग्रहणीके विकारमें शंखभस्मका उपयोग होता है। विशेषतः ग्रहणीमें बार-बार पतले विरेचन होते हों, कोष्ठशूल हो और शूलके वेगके साथ पतले थोड़े-थोड़े दस्त होते हों, तो शंख भस्मका अच्छा उपयोग होता है।

पैत्तिक कोष्ठशूल, पित्तज अतिसार और कफपित्तज कोष्ठशूलमें शंखभस्मका उपयोग योग्य अनुपानके साथ होता है। उदरमें वात उत्पन्न होकर आफरा-सा हो जाना, शूल निकलना, कोष्ठकी क्रिया स्तम्भित-सी होकर अन्न जहांका तहां स्थिर हो जाना, मीठी या जली हुई अथवा अन्नकी दूषित स्वादवाली डकार आना, आदि लक्षण होने पर शंखभस्मके उपयोगसे उदरवातका शमन होकर, अन्न पचन होने लगता है, और आफरा तत्काल दूर होता है।

अन्न पचन ठीक न होनेसे आमाशय या पक्वाशयमें शूल उत्पन्न होने पर शंखभस्म घृत या नीबूके रसके साथ देनी चाहिये। ऐसे ही रसाजीर्णके पुराने रोगियोंके लिये भी शंखभस्म अति लाभदायक है। किन्तु उष्ण प्रकृतिवाले रोगी को यह भस्म नहीं देनी चाहिये।

शंखभस्मका उपयोग यकृत् और प्लीहाकी क्रिया मन्द होनेसे उत्पन्न होनेवाले विकारोंमें अच्छा होता है। यकृत् और प्लीहावृद्धिमें क्षारका अच्छा उपयोग होता है। किन्तु मलावरोध हो, तो इसके साथ एलुवा या अन्य विरेचक औषधिका उपयोग करना चाहिये, अथवा अन्य क्षार देना चाहिये। उदरस्थ गुल्म और अष्ठीला रोग पर शंखभस्म अति उपयोगी है। अपामार्ग क्षार, जवाखार और अन्य क्षारों की अपेक्षा इस भस्ममें तीव्रता न्यून है।

कालज (ऋतु परिवर्तनसे होनेवाला) अतिसार, अपचनजनित और कीटाणु-जनित विसूचिका (कॉलेरा) में तीव्र वेग कम होनेपर इस भस्मका अच्छा उपयोग होता है। कॉलेराकी सुधारवाली अवस्था में (जुलाब, वमन आदि लक्षण कम होने पर) थोड़-थोड़े परिमाणमें दस्त होने और निर्बलता शेष रहनेपर शंखभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका उत्तम उपयोग हुआ है।

नेत्रके फूलेमें शंखभस्म उपयोगी है। इसके अंजनसे फूले नष्ट होते हैं। इस स्थानमें इसके रोपण धर्मका उपयोग हुआ है।

तरुण स्त्री पुरुषोंके मुखदूषिका (तारुण्यपिटिका—मुंहपर फुन्सियां हो

जाना) में शंखभस्म खिलानेसे उत्तम उपयोग होता है।

शंखभस्म, पित्त दोष, रस, रक्त और अस्थि, ये दूष्य; एवं यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी, पक्वाशय, बृहदन्त्र, कोष्ठग्रन्थि, पचनेन्द्रिय नेत्र और मुख ये स्थान, इन सब पर असर पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

अम्लपित्त रोगमें अपचन, उदरमें भारीपन, खट्टी वान्ति और कण्ठमें दाह रहता हो, तब शंखभस्मके साथ नारिकेल क्षार और नौसादर मिलाकर भोजन कर लेनेपर घी या नींबूके रसके साथ देनेसे विशेष लाभ होता है। किन्तु जिनको भोजनके बाद दाह बढ़ जाता हो, मुखपाक भी रहता हो, उनको भोजनके पश्चात् ३-३ घण्टेपर शंख-भस्म, शुक्तिभस्म और अमृतासत्व मिलाकर अनारके शर्वतके साथ देवें।

हिक्का रोगमें वेग बढ़ गया हो; शिरदर्द, दाह और वातपित्तप्रधान लक्षण प्रतीत होते हों; तो शंखभस्म १-१ घण्टे पर देते रहने और सोंठका कपड़छान चूर्ण सुँघाते रहनेसे हिक्का रोग एक ही दिनमें शमन हो जाता है।

इनके अतिरिक्त यह भस्म पित्तविदग्धज उदावर्त रोगमें लाभदायक है। इस रोगमें शूल, अफारा, दाह, पतले दस्त, व्याकुलता, शिरदर्द आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इनपर इस भस्मका सेवन पुराने गुड़के साथ करानेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग दूर हो जाता है।

(३१) अकीक भस्म

प्रथम विधि—शुद्ध अकीकको इमामदस्तेमें कूटकर चूर्ण करें। फिर सिरकेसे जब तक लोहाशकी कालिमा नष्ट न हो, तब तक धोना चाहिये। फिर गुलाब-जल या घीकुँवारके रसमें खरलकर टिकिया बांध सम्पुटकर गजपुट देनेसे भस्म हो जाती है। फिर दूधमें खरलकर टिकिया बाँधकर गजपुट देवें। दूधकी भावनाके बाद गजपुटमें रखनेसे सम्पुटमें भस्म फूलती है। इसलिये सम्पुट थोड़ा खाली रहे, ऐसा बड़ा सराव लेना चाहिये। इस तरह ३ पुट देनेसे भस्म मुलायम बन जाती है। कितने ही चिकित्सक इसे चौथा पुट दूधका भी देते हैं।

दूसरी विधि—शुद्ध अकीकको गुलाबजलमें ७ दिनतक खरल करके पिष्टी बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें दो समय शहद के साथ दें।

उपयोग—यह भस्म हृदयकी सब प्रकारकी निर्बलता, उष्णता, हृदय-रोग नेत्र-रोग रक्तप्रदर आदिको दूरकर शरीरको बलवान् बनाती है। थूकमें रक्त आता हो, तो उसे बन्द करती है। एवं मस्तिष्कको शान्त बनाती है। रक्तस्रावके रोधके लिये अकीक पिष्टी, तृणकान्तमणि पिष्टी, अभ्रक भस्म और अमृतासत्व मिलाकर देनेसे सत्वर लाभ पहुँचाती है।

(३२) जहरमोहरा भस्म

बनावट—हलके वजनवाले जहरमोहराको इमामदस्तेमें कूट कपड़छान चूर्ण तैयार करें। फिर दूधमें ६ घण्टे खरलकर टिकिया बांध, सूर्यके तापमें सुखा, सम्पुटकर अग्नि देनेसे भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिनमें ३ समय शहदके साथ।

उपयोग—यह भस्म शीतल और हृदय पौष्टिक है। बालकोंके हरे पीले दस्त, अपचन-जनित विसूचिका, वमन, अतिसार आदिको दूर करती है। वात-वाहिनियाँ तथा हृदयको बलवान बनाती है। कॉलेरामें आध-आध घण्टेपर देते रहें। बालकोंको मात्रा आधा-आधा रत्ती।

स्त्रियोंके अति रज स्राव और निर्बलतामें जहरमोहरा पिष्टि, प्रवालपिष्टि, अभ्रक भस्म, अमृतासत्व और अभ्रक मिलाकर शहदके साथ दिनमें २ या ३ बार देते रहनेसे रोग निर्मूल हो जाता है।

रक्तदबाववृद्धि-से शिरमें भारीपन, नेत्रमें लाली, घबराहट आदि लक्षण प्रकाशित होतो जहरमोहरा पिष्टि, सोडाबाई कार्ब और गुलकन्दके साथ दिनमें ३ या ४ बार देने से दबाव कम हो जाता है। कीटाणुजनित तीव्र वान्ति होती हो, बार-बार वमन होती रहे तथा द्रव्य दुर्गन्धयुक्त हो तो मयूरपुच्छ भस्म और जहरमोहरा पिष्टि २-२ रत्ती मिला पोदीनेके अर्कके साथ आध-आध घण्टे पर देते रहना चाहिये। कीटाणुओंको नष्ट करके वान्तिके वेगको शमन करने और आमाशयको निर्दोष तथा सबल बनानेके लिये यह उत्तम औषध है।

(३३) तृणकांतमणि (केहरवा) पिष्टी

बनावट—केहरवाका बारीक चूर्ण कर गुलाबजलमें ४-६ दिन खरल करनेसे पिष्टी हो जाती है। (सि० भे० म० मा०)

मात्रा—२ से ६ रत्ती जलके साथ दिनमें ३ समय दें।

उपयोग—यह पिष्टी पित्तविकार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, अन्त्रके रोग, अर्श और रक्तपित्त आदि रोगमें रक्तका प्रवाह बन्द करनेके लिये उत्तम और निर्भय है। मस्तिष्कमें कीड़े पड़ जाने के कारण निरन्तर शिरमें दर्द बना रहना, नाकमेंसे रक्तगीरला, शिनाकमें से दुर्गन्ध आना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, अरुचि, दाह, प्रस्वेद, चक्कर आना, आदि लक्षण होनेपर तृणकान्तमणि पिष्टी दी जाती है। इसमें नाकमें कीड़ गिरने लगते हैं और थोड़े ही दिनोंमें दर्द शान्त हो जाता है।

अर्शका रक्तस्राव बन्द करनेके लिये इस पिष्टीके साथ लाल बोलकी पपटी मिला द्राक्षावलेहके साथ देना विशेष हितकारक होता है। यदि निर्बलता अधिक हो

और कब्ज न रहता हो, तो इस पिष्टीके साथ अभ्रकभस्म, अमृतासत्व और नागकेसरका चूर्ण मिश्रितकर देना चाहिये।

यूनानी हकीम केहरबा २ से ४ रत्तीतक देते हैं। केहरबा मस्तिष्कके लिये हानिकारक मानते हैं। अधिक मात्रामें लेनेसे शिरदर्द होजाता है। पित्तवृद्धिसे हृदयके वेगकी वृद्धि हुई हो तो तृणकांतमणि पिष्टी लेनेसे शमन हो जाती है। सगर्भा स्त्रीके गलेमें केहरबाकी माला पहनानेसे हृदयकी निर्बलता दूर होती है; और गर्भस्राव या गर्भपात नहीं होता। इस पिष्टीको घावपर भुरभुराने से रक्तप्रवाह बन्द होकर घाव भर जाता है।

सूचना—तृणकांतमणि अधिक मात्रामें लेनेसे मस्तिष्कमें पीड़ा हो, तो शर्बत बनफसा पिलावें।

(३४) पिरोजा भस्म

बनावट—४० तोले पिरोजाका हिमामदस्तेमें चूराकर सिरकेसे धोकर लोहांश निकाल दें। फिर सावधानीसे सीमाककी खरलमें गिलोयके स्वरस के साथ १२ घंटे खरलकर २-२ तोलेकी टिकिया बनावें। उनको सूर्यके तापमें सुखाकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर निकाल घीकुंवारके रसमें १२ घंटे खरलकर टिकिया बना सुखाकर गजपुट देनेसे मुलायम और गुणदायक भस्म बन जाती है।

मात्रा—आधी रत्तीसे २ रत्ती तक गायके घी और कालीमिर्चके चूर्णके साथ मिलाकर दिनमें २-३ समय दें।

उपयोग—पिरोजाके सेवनसे विस्फोटकके फोड़े शीघ्र शान्त होते हैं। विषविकारमें भी यह उपयोगी है। पिरोजा कसैला, मधुर, दीपन और सारक है। स्थावर-जंगम विष और संयोगजन्य विषविकारको शीघ्र नाश करके शरीरको नीरोग बनाता है।

(३५) हरताल भस्म।

प्रथम विधि—क्षारजलसे शुद्धकी हुई तपकिया हरताल ५ तोलेको आकके दूधमें ७ दिनतक खरलकर पूरी जैसी चौड़ी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखावे। फिर एक हांडीमें छानी हुई पीपल या ढाककी राख भर, ऊपर हरतालकी पूरीके चारों ओर शहद लगाकर रख देवें। फिर उसपर ४—५ अंगुल राख दवा देवें। इस हांडी को चूल्हेपर रख बेरकी लकड़ीकी १२ घंटे अग्नि देवें और देखते रहें कि हरताल का धुआं राखमेंसे तो नहीं निकलता। यदि धुआं निकले, तो तुरन्त और थोड़ी राख दबा देवें। फिर स्वांग शीतल होनेपर ऊपरमें लगी हुई राखको सम्हालपूर्वक हटाकर अर्धपक्व हरताल भस्मको निकाललेवें। फिर पुनर्नवाके जलमें १२ घंटे खरलकर टिकिया बनावें। उसे सुखा सराव सम्पुटकर २ सेर गोबरीके चूर्णकी अग्निमें फूंक

देनेसे मुलायम सफेद भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से २ चावलतक प्रात सायं या आवश्यकतापर देवे।

अनुपान—१—विषम ज्वर, और कफवात-प्रधान ज्वरपर अदरखका रस।
२—कुष्ठमे —बावचीके चूर्ण अथवा मजिष्ठादि अर्कके साथ।
३—तमक श्वासमे —शहद और पीपलके चूर्णके साथ।
४—ज्वर, क्षय और पाडु पर—शक्करके साथ।
५—प्रसूताके शूल और वातरोग पर—अदरखके रसमे।
६—शैत्यपर—केशर और जावित्रीके साथ।
७—सधिवातमे —चोपचिन्यादि चूर्ण और शहदके साथ।
८—रक्तविकृतिमे —आमाहल्दीके साथ।
९—कुष्ठ और वातरक्तपर—गिलोयके क्वाथके साथ।
१०—वातरोगमे शक्करके साथ।

उपयोग—यह भस्म विविध उपद्रवो सह वातरक्त, सब प्रकारके कुष्ठ, फिरंग-जनित कुष्ठ, विसर्प, कण्डू, पामा, विस्फोटक, ८० प्रकारके वातरोग, कफरोग, प्रमेह और गुदाके रोगोको दूर करती है। इस भस्मके सेवन-कालमे नमक और खटाईको त्याग देना चाहिये।

यह भस्म गलत्कुष्ठ (Nodular Leprosy), सुप्तकुष्ठ (Nervous Leprosy), व्युची, उपदश (Syphilis), उलट-उलटकर बार-बार आनेवाला ज्वर (Relapsing Fever), शीताङ्ग सन्निपात, श्वास, कफप्रकोप आदिपर अति हितावह है।

हरताल भस्म स्निग्ध, उष्ण, कटु, अग्निदीपक और कुष्ठघ्न है। यह एक उत्कृष्ट रसायन होनेसे रसायन विधान अनुसार सेवन करनेपर जरावस्थाकी निरर्तताको नष्ट करती है, कान्ति बढाती है, तथा अकाल मृत्युको दूर करके आयुकी वृद्धि करती है।

वातरक्तपर यह भस्म अच्छी उपयोगी है। विशेषत वातप्रधान वातरक्त और कफप्रधान वातरक्तपर यह अधिक लाभदायक है। वातरक्तका प्रारम्भ पैर अथवा हाथके अगुष्ठके पाससे होता है। पहले अगूठे सूजते है, उनमे पीडा होती पश्चात् धीरे-धीरे सारे शरीरमे वातरक्तका प्रादुर्भाव होता है। वातरक्त और कुष्ठ, दोनों रोग भिन्न है। दोनोंके दोष-दूष्यमे महदन्तर है। वातरक्त होनेपर सर्वाङ्गमे —सधियों, धमनियों और अंगुलियोमे बार-बार अति त्रासदायक शूल, हाड-हाड टूटनेके समान पीडा शोथ, शोथमे भी त्वचा फटी-सी हो जाना, त्वचाका रंग मैला, काला या काला-सफेद हो जाना, हाथ या पैरकी वातवाहिनियोका सकोच होना, हाथ या पैरोकी अगुलियाँ टेढी होना, हाथ-पैरका सन्धि-बन्धन,

भीतरसे खिचना (जिससे चलनादि क्रिया यथोचित न होना) सारा अङ्ग जकड़ जाना, कम्प आना, शोथ वाला भाग शून्य-सा हो जाना स्पर्शका वोध न होना, शीतल वायु, शीतल जल, शीतल भोजन आदिपर रुचि न होना, शीत-स्पर्श आदिसे रोगकी वृद्धि होना, इन लक्षणयुक्त वातप्रधान वातरक्तपर घीके साथ तालभस्म सेवन करानी चाहिये

यदि वातरक्त रोगमें शोथवाले भागमें व सारे शरीरमें जड़ता, शीतलता, शक्ति नाश और शून्यता, हाथ-पैंरपर अग्नि स्पर्श आदिके असरका भी भान न होना, हाथ पैरकी त्वचा स्निग्ध सी भासना, सारे शरीरमें खुजली चलना, शरीर शीतल और वेदना कम, ये कफप्रधान लक्षण हों, तो हरताल भस्मको काँटेवाले करंजके पत्तोंके रसमें घी या मिश्री मिलाकर देनी चाहिये, ।

पित्तप्रधान वातरक्तमें हरतालका उपयोग नहीं करना चाहिये, अन्यथा रोगोंका त्रास बढ़ता है; और पित्तप्रकोप होकर रक्तपित्त हो जाता है ।

वातरक्तके समान वातरक्तके उपद्रवोंमें भी हरताल उपयोगी है । अनिद्रा, अरुचि, श्वास, वातजन्य मांसकोथ (पित्तज कोथहो तो ताप्यादि लोह), मस्तिष्ककी शिरा खिचना, बार-बार मूर्च्छा, बेहोशी, दृष्टिमान्द्य, शूल ज्यादा निकलना, तृषा, ज्वर, विचारोंमें लीन-सा हो जाना, सारे शरीरमें थर-थर कम्प, हिक्का, पंगुता विसर्प, शोथ पककर फूटना, शोथस्थानमें सुई चुभनेके समान पीड़ा, चक्कर आना, थकावट, अंगुलियाँ टेढ़ी हो जाना, शरीर पर फोडे फुन्सियाँ हो जाना, शिरदर्द, शिराओंका सकोच, इन सब त्रासदायक उपद्रवोंको भी तालभस्म दूर करती है । इन उपद्रवोंमें बार-बार बेहोशी या मूर्च्छा हो जाना अति कष्ट-प्रद है । इसे असाध्य कहें, तो भी बाधा नहीं ।

वातरक्तका विकार अति त्रासदायक और दीर्घकाल टिकनेवाला है, कुछ दिनतक अच्छा होगया ऐसा भासता है; परन्तु थोड़ा-सा कारण मिलने पर पुन: बलपूर्वक उछल आता है । सारे लक्षण विलक्षण वेगसह उपस्थित होते हैं । कितनेही रोगियोंको वातरक्त शमन होकर विसर्प, व्युची, फोडे-फुन्सियाँ, खाज, सारे शरीरमें सूखी खुजली, स्थान-स्थानपर रक्त दूषित होकर चकते होजाना, गाँठ होजाना, सारा शरीर काला होजाना इत्यादि लक्षण होते हैं । इन सब पर तालभस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है । अनुपान रूपसे अनन्तमूल, चोपचीनी आदि रक्तशोधक औषध देनी चाहिये ।

तालभस्मका उपयोग वातरक्तके समान कुष्ठ रोगमें भी होता है । आयुर्वेदने अनेक त्वचाके रोगोंका कुष्ठ अंतर्भाव किया है । इनमेंसे पामा, कच्छू, उग्रा, दद्रु आदि उपकुष्ठों (त्वचाके रोगों) में हरतालकी अपेक्षा गंधक रसायनका ही उपयोग करना अच्छा है । यदि इनमें भी कोई रोग जीर्ण, दृढ़मूल

वाला और अति त्रासदायक हो, तो उस पर हरतालका उपयोग मंजिष्ठादि अर्कके साथ किया जाता है। शेष महाकुष्ठोंमें दोष-दूष्यको देखकर हरतालका उपयोग करना चाहिये। तालभस्म कुष्ठ रोगोंमें अति प्रशस्त औषधि है। पित्तप्रधान दुष्टी मात्र या केवल रक्तविशिष्ट दुष्टी होनेपर तालभस्मका चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता। शेष वात-कफ, ये दो दोष-प्रधान दुष्टी और त्वचा, मांस, लसीका, ये दूष्य होनेपर कुष्ठरोगमें तालभस्म अमृत रूप है। योग्य परिमाण और योग्य अवस्थामें तालभस्मकी योजनाकी जाय, तो कुष्ठ रोग निःसंदेह दूर होते हैं।

त्वचा काली या लाल-काली, रूक्ष कठोर, स्थान-स्थानपर फटी सी और अत्यन्त वेदनायुक्त हो ऐसे कुष्ठको वात-प्रधान दोष-दुष्टीसे उत्पन्न हुआ समझकर उस पर तालभस्मका उपयोग करना चाहिये। कपाल, उदुम्बर, मंडल, पुंडरीक ऋष्यजिह्व, ये सात महाकुष्ठ हैं। इनमें उदुम्बर कुष्ठमें दाह, लाली, खाज अत्यन्त वेदना और रोंगटे मुरझाये हुये मलिनसे होते हैं, तथा कुष्टका भाग पक्के गूलरके फलके समान लाल, ऊपर उठा हुआ होता है। इस कुष्ठ मात्र पर तालभस्म नहीं दी जाती। शेष महाकुष्ठोंपर दोष दूष्योंका विचार करके देनी चाहिये।

जिस कुष्ठका रंग श्वेत या लाल हो, स्थान घट्ट और प्रस्वेद आता ही रहता हो, तथा ऊपर उठा हुआ और तेजस्वी मंडल समान जो भासता हो, वह मंडल कुष्ठ है। इस कुष्ठको कष्टसाध्य माना है, तथापि इस पर भी तालभस्मका उपयोग होता है।

जिस कुष्ठकी त्वचा फटी-सी, किनारी लाल वर्णकी, भीतरका भाग काला, अति वेदना वाला और लम्बा मण्डल हो वह ऋष्यजिह्व है। जिस कुष्ठका भाग श्वेत-सा लाल वर्णका, किनारी लाल और कमलके पत्तेके समान सर्वाङ्गपर फैला हुआ और ऊपर उठा हुआ हो, उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहा है। जिस कुष्ठका वर्ण बिलकुल गुञ्जाके समान लाल और भयङ्कर वेदना वाला हो, वह काकण कुष्ठ है। इन सब पर तालभस्म का सेवन हितकर है।

फिरंग रोगकी तीव्र और जीर्ण, दोनों अवस्थाओंमें हरतालका अच्छा उपयोग होता है। इस रोगकी प्रथमावस्थामें चट्टा कहीं भी न हो ऐसी स्थितिमें तो पारद भस्म, रसकपूर और अमीर रस, इनका ही उपयोग अच्छा होता है। परन्तु तमाम उपद्रवोंका प्रादुर्भाव हुआ हो अथवा होनेकी संभावना हो, तो तालभस्मका उपयोग करना चाहिये यदि उपदंशका विष दोष-दूष्योंमें अधिक गहरा न गया हो, तब तक तो पारद कल्पका उपयोग हितकर है। परन्तु जब विष गहराईमें जाकर त्वचा मांस आदि दूष्योंको दूषित कर देता है; तब तालभस्मका उपयोग अच्छा होता है। तीव्र विकारमें पारद

तथा जीर्णावस्थामें तालभस्म और मल्ल कल्पकी औषधियाँ अवस्था-क्रमसे उपयोगमें ली जाती हैं। विकारमें दोष-दूष्यादिकके तारतम्यको देखकर ओषधि-योजना की जाती है; अर्थात् पित्त-दोष और रक्त दूष्य (इनकी प्रधानता) होने पर पित्त-शामक और रक्तप्रसादन करनेवाली ओषधि (अनुपान)के साथ हरताल देनी चाहिये।

उपदंशके भी अनेक उपद्रव होते हैं—उपद्रव अर्थात् व्याधिके पश्चात् उत्पन्न होने वाले अन्य स्पष्ट रोग। ऐसे उपदंशके अनेक उपद्रवोंमें गलत्कुष्ठ और गुदशूक (मांसकीलक-Condyloma), इन दोनों पर हरतालका विशेष अच्छा प्रभाव पड़ता है। अन्य उपद्रवोंपर हरतालका उपयोग नहीं होता, ऐसा नही परन्तु अन्य विकारों पर भी हरताल हितावह ही है। हरताल अन्य कुष्ठकी अपेक्षा उपदंशजन्य कुष्ठ पर सत्वर अच्छा लाभ पहुँचाती है। उपदंशज कुष्ठ और अन्य कुष्ठ, इनमें बहुत अन्तर है। यह कुष्ठ उपदंशके पश्चात् होता है। अन्य कुष्ठ के समान-इसमें अपने दोष-दूष्य नही होते। कुष्ठके अवस्थाभेद अथवा जाति और लक्षणके अनुरोधसे भेद नहीं होते। केवल एक ही प्रकारके लक्षण होकर और बढ़कर अन्तमें गलत्कुष्ठकी प्राप्ति होजाती है। प्रथमत: कानकी पाली, नाकके अग्रभाग और गाल पर लाल चकते हो जाते हैं। पश्चात् सारे शरीरपर वैसे चकते होने लगते हैं। हाथ पैरोंकी अँगुलियाँ सूज जाती हैं। हाथ-पैरोंकी समवेदना-शक्ति कम होती जाती है; अर्थात् चुटकी भरने या अग्नि-स्पर्शका भी पूरा बोध नहीं होता। संज्ञावाहिनियाँ बधिर हो जाती हैं। पश्चात् शोथ फूटने लगते हैं; उनमेंसे पूय निकलता रहता है। सारा शरीर सूज जाता है। सम्पूर्ण चेहरा और अंग आदि भयानक विचित्र दीखने लगते हैं। इस अवस्थामें भी हरतालका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु गलत्कुष्ठमें जब तक शोथ फूटकर उसमेंसे पूय मात्र निकलत रहता है; तब तक ही ओषधि या अन्य उपचार होसकता है। एक समय अवयवा जीर्ण होकर खण्डश: टूट कर गिरने लगें; तब जैसा चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता। यही न्याय आनुवंशिक कुष्ठको भी लागू होता है।

वातादिक दोषोंके दुष्ट होनेसे होनेवाला कुष्ठ निज और उपदंशज कुष्ठ दोनोंमें अनेक समय रोग बढ़नेपर वातवाहिनियाँ दुष्ट होकर स्पर्शासहत्व होता है; अर्थात् थोड़ा-सा आघात होनेपर भी भयङ्कर पीड़ा होने लगती है। थोड़ा-सा धक्का भी सहन नही होता। सहनशक्ति नष्ट होनेसे सारे शरीरसें झनझनाहट होती रहती है। अनेक समय तो रोगी रोने लगता है; या कतिपयोंकी वातवाहिनियाँ आकुञ्चित होजाती हैं; जिससे स्नायु और मांसका भी संकोच होजाता है। जिस भागमें दुष्टी हुई होगी; वह भाग सूखनेके समान होजाता है। इस प्रकारके लक्षणोंमें हरताल भस्मका उपयोग अच्छा होता है। एवं उपदंशके

उपद्रव-रूप उत्पन्न हुए प्रमेह और अर्श रोग भी तालभस्म सेवनसे अच्छे होजानेके अनेक उदाहरण है ।

उलट-उलट कर बार-बार आनेवाला ज्वर (परिवर्तित ज्वर) पर हरतालका विशेष उपयोग होता है । एवं साधारण शीतपूर्वक ज्वर (विषम ज्वर और कफ-प्रधान-ज्वर), पर भी यह दी जाती है ।

सन्निपातमें कफ और वात-प्रकोप दूर करनेके लिये इसका उपयोग होता है । इसके सेवनसे शीत और बेहोशी जल्दी शमन होती है, वातवाहिनियां सशक्त बनती हैं, और रोगी सचेत होजाता है । सन्निपातमे अदरखके रसके साथ देनी चाहिये ।

यह भस्म वात और कफ दोष, रस, रक्त, मांस, ये दूष्य, तथा त्वचा, शाखा (हाथ-पैर), यकृत्, इन स्थानो पर अधिक लाभ पहुँचाती है ।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—पित्तप्रधान कुष्ठ और पित्तप्रधान वातरक्तमे हरताल नही देनी चाहिये । हरताल सेवन कालमे सूर्यका ताप, नमक, खटाई, मिर्च, तेल आदि हानिकर वस्तुओंका त्याग कर देना चाहिये । आवश्यकता पर भोजनमे थोडा सैंधानमक और कालीमिर्च मिलालें ।

बद्धकोष्ठ या मूत्रावरोध रहने पर हरताल विशेष लाभ नही पहुँचा सकती । अत पहले कोष्ठ-शुद्धि कर लेनी चाहिये ।

जीर्णविकारमे मात्रा कम देनी चाहिये एवं बार-बार १०-१५ दिनके पश्चात् ३-३ रोज सेवन बन्द करना चाहिये, जिससे ओषधि सत्व रस, रक्त आदिमें अच्छी रीति से मिलजाय ।

दूसरी विधि—क्षार जलसे शोधित तबकिया हरताल २ तोले और शुक्ति भस्म २ तोले को ३ घण्टे घीकुवारके रसमे खरलकर पूरी जैसी टिकिया बनाकर धूपमे सुखावे । फिर सरावमे संपुटकर २ सेर कन्डोकी अग्नि देवे । शीतल होने पर भस्म निकाल लेवे । इसमे से हरताल कुछ उड जाती है, तो भी काम अच्छा देती है । (र० त०)

मात्रा— ॥से २ रती दिनमे २ समय ।

उपयोग—यह भस्म कुष्ठ, नवीन ज्वर, जीर्ण ज्वर और विषम ज्वरको दूर करती है । विषमज्वर आनेके ३ घन्टे पहले ३ मासे मिश्री-के साथ देवे । पुन दो घन्टे बाद देवें । इसे कुष्ठ रोगपर विशेष हितावह माना है ।

(३६) मल्लभस्म

प्रथमविधि—१६ तोले शोरेकी वर्षाके जलमे खरल करके पोली नली

बनावें। फिर उसमें उतना ही हाथी दाँतका बुरादा भर हंडियामें रखकर चूल्हे पर चढावें। नीचे अग्नि देनेसे दोनों मिश्रित होकर निर्धूम भस्म बन जायगी। फिर नीचे उतार पीसकर भस्मको बोतलमें भरें। इस भस्ममेंसे २ तोले भस्मको सराव में रख ऊपर १ तोला मल्लका टुकड़ा रखें। पुन: ऊपर २ तोले भस्म डाल, सराव संपुटकर लावक पुट देवें। अर्थात ९ इञ्च ऊँचाईवाली तुषोंकी या गोबरीके चूर्णकी अग्निमें फूंक देनेसे सफेद मुलायम भस्म बन जाती हैं। (र० त०)

वक्तव्य—अ॰ यह मल्ल भस्म तेजस्वी सफेद रंगकी बन जाती हैं, कुछ क्षार मिल जानेसे वजन बढ जाता है। परन्तु कार्य अच्छा देती हैं। मल्ल भस्मके बाहर क्षार मिश्रित मलिन सफेद रंगवाली भस्म लगी रहती है, जो सरलतासे बिखर जाती है। उसे हटा देनी चाहिये।

आ॰ जिसभस्ममेसे मल्ल पूरा पूरा उड़ जाय, वह निर्धूम बन जाती है। मल्ल जिसमें पूर्णांशमें रहा हो, वह निर्धूम नहीं बनती। उसका निर्णय, रोगियोंको कितना लाभ हुआ है उस परसे करना चाहिये।

मात्रा—आधे चावलसे एक चावल तक मुनक्कामें रखकर निगल जायँ। ऊपर दूधमें घी मिलाकर पीवें। अथवा पहिले घी पिलाकर ओषधि देवें। अन्य रोगोमें रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे कास, श्वास, शीतज्वर, कोढ़, पक्षाघात और नामर्दी आदि रोग नष्ट होते हैं।

सामान्यत: सोमल तीक्ष्ण और उष्ण-वीर्य होनेसे कफ और आमका शमन करता हैं; पित्तकी वृद्धि करता है; तथा रक्ताभिसरण क्रियाको बढ़ाता हैं। एवं कीटाणुनाशक होनेसे रक्त, मांस, अस्थि और मज्जामें रहे हुए विषम ज्वर, उपदंश और कुष्ठ आदिके कीटाणुओंको नष्ट करता है, तथा उपदंशसे उत्पन्न उपद्रव-गुदशूक (Condyloma). नासाव्रण, तालुव्रण, पक्ष्मव्रण, नेत्रव्रण, नाड़ीव्रण, अतिसार अन्त्रविकार, पक्षाघात आदिको भी दूर करता है। फुफ्फुस, हृदय और वातवाहिनीको उत्तेजना देता हैं। यदि कफ-प्रधान सन्निपातमें आरम्भसे ही सोमलका उपयोग किया जाय, तो रोगका बल नही बढ सकता। बेहोशी, गलेमें कफका बोलना, नाड़ी मन्द, शरीर शीतल और भ्रम आदि लक्षण हों, कफको बाहर फेकनेकी वातावाहिनियोंमें शक्ति न रही हो, ऐसे समय पर सोमल अपना प्रभाव तत्काल दिखाता हैं। किन्तु यदि ज्वर १०१ डिग्रीसे ज्यादा हो, नेत्र लाल हों, पित्त-प्रधान अन्य लक्षण भी प्रतीत होते हों, तो तो स्थितिमें सोमलका उपयोग नही करना चाहिये। अन्यथा रक्ताभिसरण क्रियाके वेगकी वृद्धि होकर मस्तकपर रक्त अधिक चढ़ता हैं।

सूचना—श्वास श्वासादि रोगोंमें अधिक कफवृद्धि होनेपर सोमलकी मात्रा कम देनी चाहिये। अन्यथा कफप्रकोप, हृदयावरोध, नेत्रदाह, उदरपीडा, शिरदर्द, सन्धिस्थानोंमें पीडा, वृक्कस्थानमें उष्णता इत्यादि विकृति होने लगती है एवं पेशाब थोडा और पीला होकर ज्वर हो जाता है। कदाच ऐसा हो, तो मोती और शिलाजीत देकर उपद्रवको शमन करें। तत्पश्चात् ३ दिनके बाद आवश्यकता हो, तो पुनः स्वल्प मात्रामें सोमल देना आरम्भ करें।

द्वितीय विधि—संगिया, कलमीशोरा, चूना, सीप भस्म सोहागाका फूला, हरएक दो-दो तोले और नौसादर १६ तोले लेवें। सबको महीन पीस आठ तोले आकके दूधमें खरलकर दो-दो तोलेकी टिकियाँ बना, सरावसंपुटमें रख कपडमिट्टी करें। सूखने पर २॥ सेर कण्डोकी अग्नि देनेसे सफेद रंगकी भस्म बन जाती है। भस्म वजनमें कम उतरती है पर लाभ अच्छा करती है।

(धन्वन्तरि)

मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक अदरखके रस या दूध मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म वातव्याधि, अर्धाङ्गवायु, गठिया, जीर्णज्वर तथा वात-ज्वर, कफज्वर, सन्निपात आदिको मिटाती है। निमोनिया रोगमें खूब फायदा करती है, स्वेद लाकर ज्वरको घटाती है एवं गलगंड और कंठमालमें भी लाभ-दायक है।

तृतीय विधि—सफेद संगिया १ तोला और शुक्तिभस्म दो तोले लेकर आकके पत्तोंके रसमें १२ घण्टे घोंटकर टिकिया बाँधें। फिर सुखा संपुट कर दो सेर गोबरीकी अग्निमें फूँक देवें।

मात्रा—आध-आध रत्ती दिनमें दो बार शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म कफपित्तात्मक श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, उदररोग, स्तनवि-कार, नारू और चर्मरोगमें लाभदायक है। अत्यधिक शराब पीनेपर होनेवाली उबाक, वमन आमाशय-दाह और बेचैनी आदिको दूर करती है।

सूचना—श्वासके रोगीको सुबह १ से २ तोले घी पिलाकर भस्म देवें। शामको घी पिलानेकी जरूरत नहीं है। अथवा घीके बदले शहद और पीपलके साथ देकर ऊपर दूध पिलावें।

(३७) शृंग भस्म।

बनावट—बारहसिंगेके शुद्ध सूखे टुकडोंसे वजनसे ८ गुने आकके पत्तोंको कूटकर लुगदी बनावें। इसमेंसे आधी लुगदी कपडे पर बिछा ऊपर बारहसिंगेके टुकडे रख, शेष आधी लुगदीको ऊपर रख पोटली बाँधकर मजबूत कपडमिट्टी करें। पोटलीमें बारहसिंगेके टुकडे एक दूसरेसे न मिल जायँ यह सम्हालें। कपडमिट्टी

सूखने पर गजपुट अग्नि देनेसे सफेद रंगकी मुलायम भस्म होजाती है। कदाचित् भस्ममेंसे कोई टुकड़ा काला या कच्चा रह जाय तो उसे आकके रसमें ३ घन्टे खरल कर टिकिया बना सपुटकर दूसरी बार गजपुट देनेसे उत्तम भस्म बन जाती है।

(बृ० स्वा० सदानन्दगिरिजी)

उपर्युक्त विधिसे घीकुंवारके गर्भको बिछा उसमें बारहसिंगेके टुकड़े रख कर भी भस्म बनाई जाती है।

सूचना—शुष्क कासमें शृङ्ग-भस्म नहीं देनी चाहिये। आकके पत्तोंकी लुगदीकी अपेक्षा घीकुंवारके गर्भमें संपुट करके बनाई हुई भस्म सौम्य होती है। तीक्ष्ण रोगोंमे उग्रभस्म लाभदायक है। परन्तु कोमल प्रकृतिवालोंके लिये सौम्य भस्म हितकर है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें २ समय। कफको बाहर निकालनेके लिये मिश्रीके साथ। पतले कफके शोषणके लिये शहद या नागरवेलके पानके साथ। शूलपर पीपलके चूर्ण और शहदके साथ। क्षयके तापमें प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वके साथ। मूढ़स्थि रोगमें प्रवालपिष्टी या गोदन्तीके साथ। श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया) पर शृङ्गभस्म, मोरकी चन्द्रिकाकी भस्म और १-१ तोला अष्टागावलेहके साथ दे कर ऊपर सोंठ मिलीहुई चाय पिलावे।

उपयोग—शृङ्ग भस्म श्वास, खाँसी, पार्श्वशूल, फुफ्फुस सन्निपात (निमोनिया Pneumonia fever), बालकोंका पसली रोग (Broncho Pneumonia), नया फुफ्फुसावरण शोथ (उरूस्तोय Pleurisy), वातश्लेष्मज्वर (Influenza), जीर्णज्वर, सेन्द्रियविष जनित अस्थिविकार, राजयक्ष्मामें ज्वर, जुकाम, हृदयशूल मंदाग्नि, वृक्कव्रण, दाँतमेंसे पूय निकलना (Pyorrhoea) और बालकोंके अस्थिवक्रता रोग (Rickets) आदिको शमन करती है।

शृङ्ग भस्मका मुख्य गुण ज्वरघ्न, शक्तिवर्द्धक, कफस्त्रावका नियमन करना, फुफ्फुसोंमे रहे हुए कफदोषकी साम्यावस्था प्रस्थापित करके फुफ्फुस कोसोंको शक्ति देना, हृदयको शक्ति देना, क्षयकी प्रथमावस्थामे क्षयके कीटाणुओंका नियमनकर क्षयको बढ़ने न देना इत्यादिहै। इनमेंसे अन्तिम कार्य शृङ्गभस्मके योगसे फुफ्फुसके अथवा अन्य स्थानके शारीरिक घटक सुदृढ़ होकर क्षयके कीटाणु या क्षयजन्य विष नष्ट होनेपर होता है। शृङ्ग भस्मसे क्षयका विष बिल्कुल नष्ट होजाता है; ऐसा नही। क्षयजन्य विषको निर्विष करनेवाली अथवा क्षयज कीटाणुओंको मारनेवाली कीटाणुनाशक ओषधि सुवर्ण भस्म है। परन्तु शृङ्गभस्मका उपयोग ऊपर लिखे अनुसार (कीटाणुओंकी वृद्धिको रोक देना) होनेसे क्षय हो जानेका सन्देह होने पर तुरन्त शृङ्गभस्म और प्रवाल भस्मको मिलाकर देते रहनेसे क्षय नही होता और रोगी क्षय रोगसे बच जाता है। ऐसे समय पर इस भस्मको १ रत्तीसे प्रारंभ कर क्रमशः ६ रत्ती

तक बढ़ानी चाहिये।

श्वासनलिकामें से कफका परिमाणमें अधिक स्राव होता हो, तो उसे शृङ्ग-भस्म नियमित कर कफविकारको दूर करती है। वासा (अडूसा) श्वासवाहिनियोंमें से कफस्राव ज्यादा करानेवाला है। मुलहठी श्वासवाहिनियोंके उपतापका शमन करती है। अर्थात् यह मधुर चिपचिपा, पतला और कोमल रस उत्पन्न करनेवाली होनेसे उपताप कम हो जाता है। जब कण्ठदाह, कण्ठशोथ, फुन्सियाँ और उपजिह्व आदिके दोषसे खाँसी आती है। तब बहेड़ेमें स्तम्भक गुण होनेसे वह उपयोगी होता है। इस रीतिसे खाँसीमें पृथक्-पृथक् कारणोंके अनुरोधसे भिन्न-भिन्न औषधि उपयोगमें लीजाती है।

शृङ्गभस्म वातजन्य शुष्क कासमें नहीं देनी चाहिये, अन्यथा श्वासवाहिनियाँ शुष्क होकर खाँसी बढ़ जायगी। परन्तु बालकोंकी कालो खाँसी (Whooping cough) और उसके समान संक्रामक कासमें शृङ्गभस्मका अच्छा उपयोग होता है। फुफ्फुसों या श्वास वाहिनियोंके प्रदाहके पश्चात् उत्पन्न होनेवाली खाँसीमें एवं कफ सञ्चयजनित कासमें शृङ्गभस्म उत्तम लाभदायक है। साँभरके सींगोंकी अपेक्षा छोटे बच्चोंके लिये हरिणके सींगोंकी भस्म विशेष उपयोगी है। हरिणके सींगोंकी भस्म भी साँभर सींगोंके समान की जाती है।

फुफ्फुस सन्निपात (निमोनियाँ Pneumonia) के पश्चात् प्रायः उरस्थ कफ सञ्चय ज्यादा होता है। यह सञ्चय अनेक समय कई दिनोंतक त्रास पहुँचाता रहता है। कफ दुर्गन्धयुक्त, चिपचिपा, पीले रंगका निकलता है। ऐसे कफको सत्वर निकाल देना चाहिये, तथा फिर से नया दूषित कफ उत्पत्तिको रोकनेके लिये भीतरके अवयवोंको निर्दोष और बलवान बनाना चाहिये। इन सब कार्योंके लिये उत्तम औषधकी योजना करें, तो शृङ्गभस्म और रससिंदूरको मिला अडूसा, मुलहठी, बहेड़ा और मिश्रीके क्वाथके साथ दिनमें ३ बार देना चाहिये, तथा पंचगुणतैल और नारायण तैलको मिला गुनगुना कर, छातीपर मालिश करने और गरम जलसे सेक करनेपर सत्वर लाभ होता है।

कतिपय समय इस प्रकारका कफस्राव न्यून होनेपर या कफकी दुर्गन्ध न्यून होनेपर भी अन्तरमें कोई एकाध भाग दुष्ट बना हुआ शेष रह जाता है, जिससे कुछ कालके पश्चात् उस भागमें दोष सञ्चयकी वृद्धि होती है और दोषदुष्टी बढ़कर ज्वर आने लगता है। इस प्रकारके ज्वरमें त्रास ज्यादा नहीं होता, तथापि रोगीकी शक्ति क्षीण होती जाती है। ऐसी परिस्थितिमें अन्य ज्वरघ्न औषधिकी अपेक्षा शृङ्गभस्म विशेष हितकर है। उसके साथ रससिन्दूर स्वल्प परिमाणमें मिलाकर देनेसे फुफ्फुसोंमें से मल-द्रव्य और दोष-दुष्टी नष्ट होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है। यह दुष्टी दूर होनेपर सूक्ष्म ज्वर

स्वयमेव शमन होजाता है।

श्रृङ्ग भस्म हृदयपौष्टिक है। हृदयके शूलका विकार जीर्ण होनेपर हृदयमें विशेष विकृति न हो; हृदयेन्द्रिय मात्रकी सामान्य निर्बलता ही कारण हो; और स्नायु निर्बल हुए हों, तो ऐसी स्थितिमें श्रृङ्गभस्म अवश्य देनी चाहिये। अनेक दिवसोंके उपवासों या मार्ग चलनेके कारण या मस्तिष्क का श्रम अतिशय होनेसे हृदयमें निर्वलता आई हो, तो भी श्रृङ्ग भस्म हितकर है। ऐसी अशक्तिके समय थोड़ा-सा कारण मिलनेपर उत्पन्न होनेवाली घबराहट, हृदयके वेगकी वृद्धि, कानमें आवाज और नाड़ियां उडती हों, ऐसा रोगीको भास होता हो, तो शृंगभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण देना लाभदायक है। हृदयकी निर्वलतासे उत्पन्न कास, रक्तमें आई हुई निर्बलता, मुँह और सारे शरीरपर आया हुआ कफजन्य शोथ अथवा शोथ समान मुँह फूला हुआ-सा भासना आदि विकृतिमें यह हितकारक है।

शृंगभस्मका उपयोग करके निर्जन्तुक क्षय एवं जन्तुजन्य क्षय, दोनों पर अनेक समय अनुभव किया है। इसके योगसे क्षय रोगके ज्वर और कास, दोनों जल्दी दूर होते हैं। इतना ही नहीं, क्षयके कीटाणुओंका नियमन, वृद्धि न होने देन, ऐसा राजयक्ष्माके कीटाणुओं पर भी परिणाम होता हैं। इस भस्मका सेवन आरम्भ होनेपर उसी समयसे क्षयके कीटाणुओंका आगे बढ़नेवाला पैर पीछे पडता लगता है। राजयक्ष्मामें रोगी बिल्कुल घबरा न गया हो; बलमांसविहीनत्व स्थिति न हुई हो, तो शृंग भस्मका बहुत अच्छा उपयोग होता है। क्षयकी बिल्कुल प्रथमावस्था में इस भस्मका उपयोग करने लगे, तो रोगी बहुत करके अच्छा हो ही जाता है। इस कारणसे क्षयरोगमें शृंग भस्म अनेक ओषधियोंमें से एक उत्तम ओषधि है; ऐसा कहनेमें अतिशयोक्ति नही है। क्षयरोगमें अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म और शृंग-भस्म, तीनो एकत्र करके देनेसे सत्वर अधिक लाभ पहुँचता है। तद्वत् शरीरमे रहे हुए सूक्ष्म ज्वरपर भी इसका उपयोग अच्छा होता है।

बालकोकी बालशोष व्याधि, जिससे अस्थि बहुत कमजोर, हाथ-पैर शुष्क और पेट घड़े के समान हो जाता है; इसपर शृंग भस्म और प्रवालपिष्टीके मिश्रण का अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रपिण्डके विकार पूयवृक्क और वृक्कव्रणमें वंग भस्म या अन्य ओषधिके साथ शृंग देनेसे पूय सत्वर सूखने लगता है; रोगीको अधिक त्रास होता हो, तो वह कम होकर रोग शीघ्र काबूमें आजाता है।

शृंग भस्म विशेषत: कफदोष; रस, रक्त, अस्थि, मज्जा इन दूष्यों और श्वसनेन्द्रिय, हृदय, वृक्क (मूत्रपिण्ड), इन स्थानोंपर लाभ पहुचाती है।

(औ० गु० ध० शा०)

शृंग भस्म १ रत्ती और शुद्ध नौसादर ८ रत्ती गुनगुने जलके साथ देनेसे नूतन प्रतिश्यायमें कफस्राव जल्दी होकर थोड़े ही समयमें प्रतिश्याय और सिरदर्द दूर हो जाता है।

यदि श्वास रोगमें कफसंग्रहीन हो जानेसे अति श्रम होता हो, तो शृंगभस्मके साथ मल्लसिंदूर (नं० २) और त्रिकटु मिलाकर ४-४ घण्टेपर शहदके साथ देते रहें और ऊपर चाय पिलाते रहें, तो एक दिनमें घबराहट दूर हो जाती है। किन्तु जिनका कफ अधिक गाढा हो उनको मल्लसिंदूर न देकर शृंग, अभ्रक, समीरपन्नग और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर ८-८ घण्टेपर देना चाहिये। समीरपन्नग मिलानेसे कफ सरलतासे बाहर निकल आता है।

सेन्द्रिय विष या कीटाणुका रक्तमें प्रवेश होनेपर नसोंकी रचना अव्यवस्थित और विकृत होने लगती है। बहुधा फिरंग रोगके विषमें ऐसा होता ही है, एवं उदरमें सूक्ष्म कृमि दीर्घकाल पर्यन्त रह जानेपर भी नस बैठे हुए विकृत और अनियमित मोटे-से बन जाते हैं। उसपर यह भस्म दोपहरको भोजनके समय अमृतासत्त्व, नागरमोथा और आँवलेके चूर्णके साथ सेवन करा ऊपर भृङ्गराज तैल ६ माशे पिलाया जाता है। इस तरह सेवन करनेपर १-२ मासमें नसविकृति दूर हो जाती है।

कास रोगके साथ कितनाही का श्वासरोग भी होता है। रोग जीर्ण होनेपर बार बार कास चलती रहती है और १०-२० बार खाँसनेपर कफ गिरता है, कभी-कभी भागदार वान्ति हो जाती है, बोलनेसे श्वास भर जाता है, और शीतकालमें बैठे-बैठे रात्रि काटनी पडती है। गर्मीके दिनोंमें श्रास कम रहता है। इस विकारपर शृङ्ग भस्म २ रत्तीके साथ रससिन्दूर १ रत्ती मिला तुलसीके रस और शहदके साथ दिनमें दो बार देते रहनेसे शनैः शनैः छाती सबल होकर कास और श्वास, दोनों रोग निवृत्त हो जाते हैं।

(३८) संगयशब भस्म।

वर्नावट—शुद्ध संगयशबको गावजबाके क्वाथमें ६ घण्टे खरलकर २-२ तोलेकी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखा, सरावमें ऊपर-नीचे गावजबाका कल्क रख, संपुट करके सुखा लेवे। बादमें गजपुट अग्नि देवे। इस रीतिसे ६ समय गजपुट देनेसे भस्म मुलायम हो जाती है।

(पं० श्री० गंगादत्तजी पन्त वैद्यराज)

दूसरी विधि—शुद्ध संगयशबको गावजबाके क्वाथमें १४ समय बुझा, अर्क गावजबा या केवड़ाके साथ ७ दिन खरल करके पिष्टी बना लेवे।

मात्रा—१ से तीन रत्ती दिनमें २ समय शहदके साथ देवे।

उपयोग—यह भस्म हृदयकी धड़कन और उष्णताको दूर करके हृदयको बलवान बनाती है। वातवाहिनियोंकी निर्बलता, मस्तिष्ककी उष्णता, आमाशयकी अशक्ति और धातुकी निर्बलताको दूर करती है; तथा स्मरणशक्तिको बढ़ाती है।

हृदय निर्बल हो जानेपर हृदय स्पन्दन बढ़ जाता है मुखमण्डल निस्तेज हो जाता है। पचन क्रिया मन्द बन जाती है। थोड़ा-सा परिश्रम करनेसे श्वास भर जाता है। अनेकोंको शिरमें भारीपन हो जाता है। कितनोंहीको कफवृद्धि होती है। उसके लिये संगयशब भस्म, जहरमोहरा पिष्टी, रससिंदूर और लवंगादि चूर्ण का मिश्रणकर मक्खन-मिश्रीके साथ देना हितकर है।

संगयशबको जलमें पीस, दूध-मिश्री मिलाकर भी पिलाया जाता है। अनेक मुसलमान संगयशबका तावीज बनाकर हृदयके रक्षणके लिये बालकोंके गलेमें बांधते हैं।

(३६) संगजराहत भस्म

बनावट—गावजबाँके क्वाथमें १४ समय बुझाये हुए गोदन्तीके समान उज्वल संगजराहतके टुकड़े ४० तोलको ऊपर नीचे हाँडीमें २ सेर घीकुँवारके गूदेके बीचमें रख सपुटकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर भस्म निकालकर पीस लेवें।

वक्तव्य—दंत प्रभाकर मंजनमें मिलानेके लिये घीकुँवारका गूदा रखनेकी जरूरत नहीं है। संगजराहत १-१ सेर की अलग-अलग ४-६ हाँडी भरकर गजपुट में रख देनेसे दंतमंजनमें मिलाने योग्य मुलायम भस्म हो जाती है, यदि मुलायम न हुई हो, तो फिरसे गजपुट में रखनी चाहिये।

मात्रा—४ से ८ रत्ती तक दिनमें दो समय देवें।

अनुपान—पूयमेहमें मक्खनके साथ सुबह २१ दिन तक। प्रदरमें चावलके धोवनके साथ। अंतड़ीमें क्षत और शोथ होकर रक्त और पूयसहित अतिसार हुआ हो, तो गिलोयके सत्व और शहद या मट्ठे अथवा बकरी के दूधके साथ। उरःक्षत जीर्णज्वर, रक्तपित्त और रक्तसह कफकासमें मलाई-मिश्री अथवा समान सोनागेरू मिलाकर अनार शर्बतके साथ। छुरी आदि लगनेसे होने वाले रक्तस्रावको बन्द करानेके लिये घावके ऊपर इस भस्मको दवा देनी चाहिये।

उपयोग—यह भस्म पूयमेह (सुजाक), श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर, धातुदौर्बल्य, उरःक्षत, अतिसार, मुँहके छाले, दाह, रक्तपित्त आदिको दूर करती है। दन्तमंजनमें मिलानेसे दाँतको सफेद बनाती है और पूयको बन्द करती है। कर्णस्रावमें इस भस्मको कानमें डाल ऊपर नींबूका रस २-२ बूंद डालते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें आराम हो जाता है।

(४०) संगयहूद (हजरुल्यहूद) भस्म।

बनावट—शुद्ध संगयहूदको घमासेकी लुगदीमें रखकर संपुट करें। २० तोले संगयहूदके लिये ८० तोले घमासेकी लुगदी लेवें। संपुट सूखनेपर गजपुटमें फूँक देवें। स्वांग शीतल होनेपर संपुटमेंसे संगयहूदको निकाल, मूलीके पत्तोंके रसमें १२ घन्टे घोट, छोटी-छोटी टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखा लेवें। फिर सराव-संपुट कर गजपुट अग्नि देनेसे मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती शर्बत बजूरी या शहदमें जलके साथ १-१ घन्टे बाद २-३ बार दें।

उपयोग—अश्मरी, शर्करा, मूत्रावरोध आदिको दूर करती है। मूत्राशयकी पथरीको तोड़कर मूत्रके साथ बाहर निकाल देती है। अश्मरी बहुत बड़ी हो, तो इसे अधिक मात्रासे ८-१० दिन तक रोज सुबह देते रहनेसे बिना आपरेशन पथरी कटकर रोग शमन हो जाता है।

वक्तव्य—अनेक हकीम संगयहूदको जलके साथ घिसकरके उपयोगमें लेते हैं। ऐसे ही पिष्टी बनाकर भी प्रयुक्त करते हैं।

(४१) पीतल भस्म

बनावट—१० तोले शुद्ध पीतलके पतले पतरेके छोटे छोटे टुकड़े करें। फिर मनसिल और गन्धक १०-१० तोलेको नीबूके रसमें खरलकर टुकड़ोंपर लेप कर सुखा लेवें। यदि पीतलका बुरादा कर लिया हो, तो मैनसिल और गन्धक मिलाकर नीबूके रसमें खरल कर गोला बाँधें। फिर सूर्यके तापमें सुखा गोलेको या उन लेप किये हुए टुकड़ोंको सराव-संपुटकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर निकाल, पुनः उपरोक्त विधि अनुसार मैनसिल गन्धकके साथ मिला नीबूके रसमें खरलकर, गोला बाँध गजपुट अग्नि देवें। इस तरह ८ गजपुट देवें। पश्चात् ४ पुट बड़े नीबूके रसका देनेसे भस्म निर्दोष और विशेष लाभदायक बनती है। (र० र० स०)

मात्रा—½ से १ रत्ती शहद, सौंफ अनारदानेके रस या रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग—पीतल भस्म उष्णवीर्य और शीतल है। रूक्ष लवण रसवाली तिक्त (कड़वी) और दीपन पाचन है। रक्तपित्त, श्वेतकुष्ठ, यकृत्के दोष, प्लीहावृद्धि, रक्तविकार, प्रमेह, अर्श, संग्रहणी, शूल, पाण्डु और कृमिरोगोंका नाश करती है। विशेषतः कफपित्त जनित रोगोंमें यह उपयोगी है। इस भस्मका व्यवहार चिकित्सकवर्ग बहुत कम करते हैं। इस भस्ममें ताम्र और जसद भस्मके मिश्रित गुण हैं। यह भस्म ताम्र समान उग्र या जसद समान शीतल भी नहीं है। जिन

रोगियोंसे उदर रोगमे ताम्र भस्म सहन नहीं होती, एवं रसायनियोंकी विकृति तथा शूल, संग्रहणी आदिमे जसद भस्म लाभ नही पहुँचा सकती, उन रोगियोंके लिये पीतल भस्म लाभदायक है।

(४२) कांस्य भस्म

बनावट—शुद्ध कांसीके २० तोले बुरादेके साथ समान गन्धक और चौथा हिस्सा हरताल मिला, नींबूके रसमे खरलकर गोला बना, सूर्यके तापमे सुखा मजबूत संपुट करके ५ सेर अरन्य कडोंकी अग्नि देवें। स्वाग शीतल होने पर निकाल पुनः पुनः उपरोक्त विधिसे ५—५ सेर अरन्य कंडोंकी अग्नि देवें। इस रीतिसे ५ पुट देनेके पश्चात् ३ गजपुट देनेसे उत्तम मुलायम भस्म तैयार होती है।

(र० र० स०)

मात्रा—१ रत्ती दिनमे दो समय, शहद, गुलकन्द अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—कांसी भस्म लघु, तिक्त (कड़वी), उष्ण, लेखन, दृष्टि शुद्ध करनेवाली, दीपन हितकर और विशेषतः वातपित्तजनित रोगोंकी नाशक है। कृमि, कुष्ठ और रक्त-विकार आदि रोगोंको दमन करती है। कांस्य भस्मसे त्वचा मुलायम बनती है। बहुमूत्र, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्र रोगोमे लाभदायक और नेत्रके लिये हितकर है।

इस भस्ममे ताम्र और बंगके गुण सम्मिलित है। यह नेत्रोंके लिये अति हितकर है। रक्तस्रावयुक्त रोग—रक्तपित्त, अर्श, रक्तातिसार, रक्तवमन, कफमे रक्त आना, मूत्रमे रक्त जाना आदि पर प्रयुक्त होती है। आमका शोषण करती है आँतमे संचित सेन्द्रिय विष और कीटाणुओंको नष्ट करती है। अन्तर-विद्रधिके पूयको सुखाती है, तथा पक्वाशय, मूत्राशय आदिकी श्लैष्मिक कलाको मुलायम करती है।

सूचना—कांस्य भस्म प्रातः लेनेके ३ घन्टे बाद भोजन करें। सायंकालको भी ३ घन्टेका अन्तर रखे। कांस्य भस्मके सेवन करनेपर ३ घन्टे तक घी वाला पदार्थ न खायँ। रोगके कारण दूध अपथ्य न हो, तो अधिक मात्रामें सेवन करें। नीबू और तिल तैलका सेवन रोगमें अपथ्य न हो, तो कर सकते हैं।

(४३) वर्तलोह (भरत) की भस्म

बनावट—शुद्ध भरतको कांस्य भस्ममे लिखी विधिसे गन्धक और हरताल मिला मिलाकर नीबूके रस या अर्क दुग्धके साथ खरल कर ५ गजपुट देनेसे भस्म बन जाती है।

(र० र० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती शहद, शहद-पीपल, घृत, गिलोय-सत्व या रोगानुसार

अनुपानके साथ देवे ।

उपयोग—कांसी, तांबा, पीतल, कलई और शीशा इन ५ धातुओंके मिश्रण से भरत बनती है जिससे इस भस्ममें पांचोंके मिश्रित गुण और संयोग-जन्य गुण रहते हैं । इस भस्मको शास्त्रकारोंने शीतल, अम्ल, चरपरी, रूक्ष, कफपित्त-नाशक रुचिकर त्वचाके रोगोंको नाश करनेवाली, कृमिघ्न, नेत्रोंके लिये हित-कारक तथा योगवाही माना है । अनुपान भेदसे अनेक रोगोंको शमन कर सकती है । फिर भी इस भस्मका उपयोग बहुत कम अंशमें होता है ।

सूचना—इस भस्मके सेवनकालमें खट्टे पदार्थ नहीं खाने चाहिये ।

(४४) तुत्थ भस्म

बनावट—नीलेथोथेकी ३-४ तोले वजनकी १ डली और २० तोले गोठा लें । गोठोंके ऊपरके छिल्केका सूक्ष्म चूर्ण करें । फिर समान नापवाले दो सरावोंमें से एकमें आधा चूर्ण नीचे, आधा ऊपर रख बीचमें नीलाथोथा रखें । पश्चात् दूसरा सराव ऊपर ढककर कपडमिट्टी करें । सराव संपुटमें खाली जगह न रहनी चाहिये, संपुट सूखने पर १॥ सेर गोवरीकी आंच देनेसे भस्म हो जाती है ।

(श्री० पं० रामनाथजी त्रिवेदी)

मात्रा—३ से ६ रत्ती रोटी अथवा बाटीके गर्भमें रखकर निगल जायें, ऊपर से १० तोले घी पीवे । लगभग दो घण्टे पीछे एक दस्त होने पर पुनः ५-तोले घी पीवे । दूसरी बार दस्त होनेपर फिर पांच तोले घी पीवे । इस रीतिसे वार-बार ५-५ तोले घी पीते रहे । जब अच्छा विरेचन लगकर दस्तमें केवल घी निकले, तब चावल-मूंगकी खिचडी खावे ।

घी किसी-किसीको १०-१२ समय पिलाना पडता है । जल व खिचडीके सिवाय दूसरी चीज न देवे । दूसरे दिन भी केवल खिचडी खिलावे प्रकृतिके अनुकूल भोजन करे ।

उपयोग—तुत्थभस्मके सेवनसे उपदंश रोग एक ही दिनमें चला जाता है । अशुद्ध रस-कपूर वाली औषधिके सेवन करनेसे नाना प्रकारके उपद्रव उत्पन्न होगये हों, उनके लिये यह औषधि लाभदायक है ।

उपदंश रोगमें मास तक दूषित हो गये हों, पित्तप्रकोप विशेष परिमाणमें हो ऐसे समयपर तुत्थभस्म अति उपयोगी है । एवं विषविकार, दूषी विष-प्रकोप हृदयदाह, हृदयशूल कुष्ठ, चित्रकुष्ठ, अम्लपित्त, मलावरोध और अर्श आदि को वमन और विरेचन करा दूर करती है और शरीरको शुद्ध करती है ।

सर्पविषपर नेत्रमें अंजन करनेसे बेहोशी और निद्रा नहीं आने देती, जलमिश्रित करके सुंघानेसे मस्तकमें गया हुआ जहर नाकमें से टपक-टपककर दूर

हो जाता है, खिलानेसे वमन विरेचन होकर दूर होता है दंशस्थानमे नौसादरका चूर्ण डालते रहें जिससे जहर दूषित रक्तके साथ बाहर निकलता रहे। दंशस्थानके ऊपरकी ओर बन्धन बँधा हो, वहाँ तक नौसादर मिले जलमे कपड़ा भिगो-भिगोकर वार-बार पोंछते रहें; जिससे जहरवाला रक्त साफ होता रहे।

कितने ही चिकित्सक तुत्थ भस्मके साथ और ओषधियाँ मिलाकर उपदंश-कुठार वटी वना लेते हैं, जो बहुत अच्छा लाभ पहुँचाती है। श्री० वैद्यराज श्रीरामसिंहजी चौहान (शेगाँव) नीलेथोथेको ४ गुने आमके अचारके साथ खरलकर टिकिया बाँधते हैं। फिर लघु गजपुट देकर भस्म बना लेते हैं जो लाल काली भस्म बनती है। फिर वह भस्म कत्था और छोटी हरड़ ५-५ तोले तथा समुद्रफेन २॥ तोले मिला ६० नीबूके रसके साथ खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनाते हैं। इन गोलियोंमेंसे एक-एक या दो-दो रोग और रोगीकी शक्ति अनुसार प्रातःकाल १ समय अथवा प्रातःसायं दिनमें दो समय अचारके आधे नीबूके साथ देते हैं। ऊपरसे २० तोले दही पिलाते हैं। फिर ५-७ उड़दके वड़े तैलमें तले हुए खिलाते हैं। इस तरह उपयोग करनेपर विविध उपद्रवोंसह असाध्य उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। नया उपदंश, जीर्ण उपदंश, कोथसह उपदंश जिसमें मूत्रेन्द्रियका मांस गल गया हो, उपदंजनित कुष्ठ, विद्रधि नाड़ीव्रण मस्से आदि सब उपद्रव इन गोलियोंके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं। नया विकार ५-७ दिनमें दूर हो जाता है तथा जीर्ण बढ़े हुए विकारके लिये १४ दिन ओषधि देनी पड़ती है।

यदि कच्चा रसकपूर या हिंगुलका धूम्रपान करने या अपथ्य सेवन करनेपर रसायन फूट निकला हो या भयंकर दाह होता हो, तो उन रसायन सेवियोंको पहिले जुलाब देकर उदर शोधन करें। फिर एक दिन रोटी या भातके साथ गोजिव्हा (जंगली गावजबांन) का शाक खिलावें। तत्पश्चात् इन गोलियोंका सेवन करानेसे रसायनकालीन विष और उपदंशज विकृति दोनों दूर होते हैं। वैद्यराज श्रीरामसिंहजीने इस ओषधिका हजारों रोगियोंपर उपयोग किया है, किसीको हानि नही पहुँची। यह अति निरापद और उत्तम ओपधि है।

सूचना—इन गोलियोंके सेवन करनेपर १ मासतक दूध नहीं लेना चाहिये शक्कर, गुड़, माँस और मैथुनका दो मास तक त्याग करना चाहिये, तथा आम और चनेके पदार्थोंको एक वर्ष तक छोड़ देना चाहिये।

यदि किसीने इस औषध-सेवन-कालमें आहार-विहारके नियमोंको भंग किया तो साँधो-साँधोमें दर्द हो जाता है; एवं कितने हीकी सन्धियोंपर शोथ भी हो जाता है। यह उपद्रव सोंठ और नमकके सेवनसे ४-६ दिनमें शान्त हो जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध गन्धक और सोहागेका फूला, तीनो २-२ तोले मिला, लकुच (बड़हर-Artocarpus Lakoocha) के पक्के फलके रसमे १२ घण्टे खरलकर टिकिया बनावें। सूर्यके तापमे सुखा सराव-सपुटकर कुक्कुट पुट देनेसे भस्म होजाती है। (र० र० स०)

मात्रा—४-८ रत्ती दही, जीरा-मिश्री या गुलकन्दके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। वमन-विरेचनके लिये १ माशा गुनगुने जलके साथ देनी चाहिये।

उपयोग—यह भस्म सब प्रकारके दोष, विषविकार, हृद्रोग, शूल, अर्श, कुष्ठ, अम्लपित्त, मलकी गाँठ बँध जाना, इत्यादिको दूर करती है, वमन और विरेचन कराती है, तथा चित्री (सफेद कुष्ठ) और दूषी विषको नष्ट करती है।

सूचना—नीलाथोथा सहन न होनेसे कुछ विकार होजाय, तो ३ दिन नीबूका रस या चावलकी खीलो (लाजा) का क्वाथ लेवें।

(४५) हरताल गोदन्ती (मिश्रित) भस्म।

बनावट—५ तोले उत्तम वरकी हरतालके एक टुकडेको पीले फूलवाली हुलहुल (कागलाका खेत) के १ सेर स्वरसमें डालकर एक मिट्टीकी हाँडीमें भरें। हाँडीको छोटे चूल्हेपर चढाकर बहुत मन्द आँच १२ घण्टे तक देवें। कदाच बीचमें रस समाप्त हो जाय, तो और डालें। पश्चात् एक सरावमें गोदन्ती भस्म ७५ तोलेके बीच हरतालको रख ऊपर दूसरा सराव ढककर, मजबूत कपडमिट्टी करें। उसे सूर्यके तापमें सुखाकर ५ सेर अरन्यकण्डोकी आँच दें। स्वाग शीतल होनेपर निकाल घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे खरलकर गोला बाँध, सुखा, सपुटकर ५ सेर कडाकी अग्नि दें। इस रीतिसे ३ बार गजपुट देनेसे भस्म तैयार होजाती है। टिकिया कठोर प्रतीत होती है परन्तु पीसनेसे भस्म मुलायम होजाती है।

(श्री० पं० नन्हे मिश्र)

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से ८ रत्ती तक दिनमें ३ बार देवें।

अनुपान—सन्निपातमें अदरखके रस और शहद मिलाकर चटावें। एक ही बार देना हो, तो ८ से ८ रत्ती तक देवें। अधिक समय देनेके लिए २-२ रत्ती २-२ घण्टे पर देते रहे। बालकोकी काली खासीमें दडायूटरके पत्तोको गरम कर निकाले हुए रसके साथ आधी-आधी रत्ती दिनमें २ समय देते रहनेसे ३-४ दिनमें खासी शान्त होजाती है। विषम ज्वरमें तुलसी, सहदेई या द्रोणपुष्पीके रससे साथ देवें। इस तरह अन्य रोगोके लिये समयानुकूल अनुपानकी योजना करें।

उपयोग—यह भस्म नूतन ज्वर शीतज्वर (Malaria) श्वसनक

(Pneumonia), प्रलापक सन्निपात (Typhus) मोतीझरा (Typhoid Fever), उलट-उलटकर आनेवाला ज्वर (Relapsing Fever), कुष्ठ, रक्त-विकार, विस्फोटक, उपदंश, वातरक्त, श्वास, कास, बालकोंकी काली खांसी आदि रोगोंको दूर करती है। सब प्रकारके सन्निपातमें तुरन्त अपना प्रभाव दिखाती है। हरतालकी उग्रताका गोदन्तीके संयोगसे शमन होजानेसे इस भस्मका उपयोग निर्भयतापूर्वक होता है।

(४६) शम्बुक घोंघा भस्म।

बनावट---शम्बुक (नदीमें उत्पन्न होनेवाले छोटे छोटे शंख) का शोधन (शंखशोधनमें लिखी विधिसे) करें। फिर कूट सूक्ष्म चूर्णकर पित्तपापड़ाके क्वाथमें ३ दिन खरलकर टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखावें। सूखने पर शराव-सम्पुट कर गजपुट अग्नि देनेसे सफेद रङ्गकी मुलायम भस्म बन जाती है। इस तरह नदीमें उत्पन्न छोटी-छोटी सींपोंकी भस्म भी शम्बुक भस्मके समान की जाती है।

मात्रा---१ से ६ रत्ती दिनमें २ समय दें।

अनुपान १---परिणामशूल पर—गुनगुने जलके साथ।

२—विषम ज्वरमें—तुलसीके रसके साथ।

३—संग्रहणी और रक्तातिसारमें—बेलके मुरब्बेके साथ।

४—मन्दाग्नि पर—घृत या शहदके साथ।

५—अजीर्णमें—नींबूके रसके साथ।

६—गुल्म पर—जवाखार या अपामार्ग क्षारके साथ।

उपयोग---यह भस्म कफज्वर, ठण्डी सहित विषमज्वर (मलेरिया), अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी, कफपित्तात्मक परिणामशूल, मन्दाग्नि, शीतपित्त, विस्फोटक आदिको दूर करती है। अंजन करनेसे नेत्ररोग और फूलेका नाश होता है। यह भस्म शीतल, नेत्रपीड़ानाशक, तीक्ष्ण, ग्राही, दीपन और पाचन है। फोड़े पर लगानेमें भी उपयोगी है। विशेष गुण शंखभस्मके समान किन्तु न्यून हैं। इसको १ माशा सैंधानमक मिला ६ माशे शहदके साथ लेनेसे दुःसह संग्रहणी नष्ट होती है।

सूचना---परिणामशूलमें मद्यपान, मैथुन, व्यायाम, ईर्ष्या, भारी भोजन तथा मल-मूत्र आदि वेगोंका धारण, सबका त्याग करावें।

(४७) कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म।

बनावट---५ तोले अण्डेके शुद्ध छिलकोंको कूट चूर्णकर एक शरावमें डाल, भींग जाय इतना चाँगेरीका रस मिला देवें। पश्चात् दूसरा शराव ढक,

सन्धि लेपकर ५ सेर गोबरीकी अग्निमें फूँक दें। स्वांग शीतल होने पर सम्पुटको खोलकर मुलायम श्वेतभस्म निकाल लेवें। अग्नि कम लगने पर रंग श्याम हो-जाता है। ऐसा होनेपर पुनः चांगेरीके रसमें खरलकर टिकिया बना, अग्निमें फूँक देनेसे उत्तम श्वेत रंगकी मुलायम भस्म बन जाती है। इस भस्मके साथ १॥ तोले सिंगरफ मिला घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे खरलकर टिकिया बना, सूर्यके तापमें सुखा, सम्पुट कर गजपुट अग्नि देवें। इस तरह पुनः पुनः १॥-१॥ तोले सिंगरफ मिला, खरलकर आँच देनेसे ८ पुटमें अत्यन्त मुलायम और गुण-दायक भस्म बन जाती है। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१ से २ रत्ती मक्खन-मिश्री, मलाई, दूध, च्यवनप्राशावलेह, आंवलोंके रस या अनारके साथ।

उपयोग—यह भस्म उत्तम रसायन और वाजीकरण है। सब प्रकारके शुक्रविकारको दूर करती है। सब प्रकारके प्रमेहोंमें गुणदायक है। कफप्रकोप, वातविकार, शुक्रकी निर्बलता और पतलापन, स्वप्नदोष, हृदय और मस्तिष्ककी निर्बलता तथा नपुंसकताको दूर करती है।

स्त्रियोंके रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर बहुमूत्र और सोमरोगको नष्ट करती है। स्त्रियोंको प्रसवके पश्चात् कुछ दिनों तक सेवन करानेसे वे सुदृढ़ स्वरूपवान्, बलवान् और कुमारी सदृश बन जाती है।

इस भस्मका २१ दिन तक पथ्य-पालन (ब्रह्मचर्य) सह सेवन करनेसे निस्तेज और वृद्ध मनुष्य भी तेजस्वी तथा सबल बन जाता है। रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है, पाचन-शक्ति प्रबल हो जाती है, और मानसिक प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है। बहुधा यह भस्म सब प्रकृति व आयु वालोंको लाभ पहुँचाती है।

(४८) शुभ्रा भस्म

बनावट—१० तोले श्वेत फिटकरीको ३ घण्टे भेंडके मूत्रमें खरलकर टिकिया बना, सूर्यके तापमें सुखा लेवें। फिर ६० तोले या अधिक जल रह सके, उतने बड़े मिट्टीके सरावमें रख सम्पुटकर गजपुटमें फूँक दें। स्वांग शीतल होनेपर मुलायम श्वेत वर्णकी भस्म बन जाती है। ध्यान रहे सम्पुटका पात्र छोटा होगा तो फूट जायगा।

मात्रा—१ से ४ रत्ती शक्कर, शहद, शरबत बनफशा या रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २-३ बार देते रहना चाहिये।

उपयोग—यह भस्म पार्श्वशूल, न्युमोनियामें शूल, कटिशूल, जीर्ण कास, खाँसी, राजयक्ष्मामें वमन, रक्तवमन, कफके साथ रक्तका आना, वेगपूर्वक खाँसीका चलना, अधिक खाँसीके हेतुसे पार्श्वपीडा होना, सुजाक, मासिकधर्ममें अधिक रक्त

जाना, रक्त प्रदर, श्वित्र (कुष्ठभेद), विसर्प, योनि शिथिलता आदि विकारोंको दूर करती है। आंत्रिक ज्वर, नागविषजन्यशूल, जीर्ण अतिसार आदिमें हितकर है।

यह भस्म उत्तम प्रभावशाली है। इसके प्रधान गुण श्रोतसंकोचक और रक्त स्तम्भक है। यह रक्तवाहिनियोंकी परिधिको संकुचित करती है। और नाड़ियोंके भीतर रहे हुए दोषको बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाती है, बढ़े हुए श्वास और कासके वेगको सत्वर घटाती है। सेवन करनेके साथ ही अनेक बार आवेगका दमन हो जाता हैं न्युमोनियाकी द्वितीयावस्थामें फुफ्फुसकोष लसीका-स्रावसे भर जाते है, फुफ्फुस पत्थर-सा बन जाता है; प्रारम्भमें कफ पतला निकलता है; फिर चिकने पीले रंगका निकलने लगता है; किसी किसीको रक्त भी आता है और शूल भी चलता है; इन दोनों अवस्थाओंमें कफका संशोधन होकर अनेक लक्षण इस भस्मके सेवनसे शमन हो जाते हैं।

अनेकोको जीर्णकास रोगमें कफ चिकना पीला आता है; सरलतासे बाहर नहीं निकलता; उनको यह भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती हैं।

कतिपय रोगियोंको राजयक्ष्मा रोगमें खाँसीके प्रकोपसे दुर्दम वान्ति होती रहती है; उसे यह भस्म सत्वर बन्द कर देती है।

काली खाँसी चिरकारी दु:खदायी व्याधि है। इस विकारसे बालक अति निर्बल बन जाता है। भोजन करनेपर तुरन्त खाँसी चलकर वमन हो जाती है। और बालक अति व्याकुल हो जाता है। इस तरह बारबार खाँसीका वेग प्रबल होकर बडे मनुष्योंको भी वमन होती हो, तो उनको भी यह भस्म देनेसे वमन बन्द हो जाती है और कीटाणुओंका नाश होकर थोड़े ही दिनोंमें खाँसीकी निवृत्ति हो जाती है।

मधुरा रोगमें अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला शिथिल बन जाती है। उसमें क्षत हो जाते है, क्वचित् दस्तमें रक्त भी आने लगता है। ऐसे समयपर यह भस्म १-१ रत्ती शक्करके साथ दिनमें ४ या अधिक समय देनेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है, क्षत दूर होता है; श्लैष्मिक कला सबल होती है और अन्त्र-विकारका भी शोधन होजाता हैं।

नाग (सीसा) धातुजन्य उदरशूल होनेपर इस भस्मका उपयोग अफीम और कर्पूरके साथ ३-३ घन्टेके अन्तर पर किया जाता है। फिर रात्रिको या सुबह मृदुविरेचन देकर कोष्ठको शुद्ध कर लिया जाता है। नागविषजन्यशूलमें और ओषधियाँ भी दी जाती हैं; परन्तु यह शुभ्राभस्म महोषध मानी गई है।

चिरकारी अतिसार दिनों तक रहनेपर अन्त्र शिथिल होजाते हैं, तब दाड़िमावलेह, लघुगंगाधर या अन्य ग्राही अनुपानके साथ शुभ्रा देनेसे अन्त्रमार्ग संकुचित होकर नियमित कार्य करने लगता है।

पूयमेहमें यह भस्म छोटी इलायची, शीतलमिर्च और मिश्रीके साथ देने एवं पिचकारी द्वारा फिटकरीके जलसे मूत्रप्रसेक नलिका धोते रहने से ३—४ दिनमें ही तीव्र व्यथा शमन होजाती हैं। इस तरह नूतन तीव्र श्वेत प्रदररोगमें भी यह भस्म १ माशा जवाखार और घीके साथ मिलाकर दिनमें ३ बार देनेमें तीक्ष्णता और दाह शमन होजाता हैं।

मासिकधर्ममें अधिक रक्तस्राव होनेपर इस भस्मका दिन में तीन बार मोलसरीकी छालके चूर्णके साथ प्रयोग करने और फिटकरी के जलकी गर्भाशयमें उत्तर बस्ति देनेमें सत्वर लाभ होजाता हैं।

सूचना—इस भस्मका अधिक मात्रामें अधिक दिनो तक उपयोग नही करना चाहिये। अतियोग होनेपर आमाशय और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें उग्रता और प्रदाहकी प्राप्ति होती है।

लाल फिटकरीकी भस्म—श्वेत फिटकरीके समान ही लाल फिटकरीकी भस्मकी जाती है। वह आन्त्रिक ज्वरमें हितकर है। इसके अतिरिक्त लाल फिटकरी २ तोलेमें १ तोला सिंगरफ मिला १ दिन घीकुँवारके रसमें खरलकर टिकिया बाँधें। फिर दृढ शराव-संपुटकर २॥ सेर गोबरीमें फूंककर भस्म तैयार करें। वह आन्त्रिक ज्वर, ज्वरके पीछेकी निर्बलता, शारीरिक निर्बलता, कास, रक्त स्राव प्रमेह और शुक्रकी निर्बलता, आदिपर विशेष हितकारक है। सिंगरफ मिला रक्त स्फटिकाकी भस्मके उपयोगमे हमने अनेक बार लाभ उठाया है।

फिटकरीका फूला—यदि फिटकरीका फूला बनाकर उपयोगमें लिया जाय, तो नेत्रपुष्पपर अंजन रूपसे प्रयोजित होता है। नेत्रस्राव होनेपर ४ रत्ती फूलेको २॥ तोला गुलाबजलमें मिलाकर प्रातः साय नेत्रमें २—२ बूंद डालते रहनेसे नेत्रस्राव बन्द हो जाता है। एवं कर्णपाकमें फूलके सूक्ष्म चूर्णको प्रातः-साय कानमें डालने और सम्हालपूर्वक साफ करते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें रोग निवृत्त होता है।

कच्ची फिटकरी—कच्ची फिटकरी की मात्रा १ से २ रत्तीतक आवश्यकता पर १—१ घण्टेपर दी जाती है। कच्ची फिटकरीमें ग्राही, रक्तरोधक, वमनकारक और क्षत आदिका दाहक गुण अधिक है। शरीरके किसी स्थानपर लगानेसे उस स्थानको आकुञ्चित करती है। उस स्थानकी शिरा आदिकी परिधिका ह्रास कराती है। वह स्थान कठिन और पाण्डुवर्णका हो जाता है, एवं उस स्थानसे रसस्राव आदि क्रिया बन्द हो जाती है। मुख और कण्ठमें यह स्थानिक संकोचक क्रिया दर्शाती है। मुहमे डालनेपर स्वाद अतिशय कसैला लगता है, और कण्ठ-नलिका शुष्क हो जाती है। खानेपर आमाशयमें रक्त-रस (Plsama) को

संयत और श्लैष्मिक कलाका आकुंचन करती है। एवं आमाशय और अन्त्रके श्लैष्मिक स्रावका ह्रास कराती है। रसस्राव होता हो, तो उसका रोध होता है। परन्तु इस निग्रह-क्रियाकी अपेक्षा स्थानिक संकोचन क्रिया अति प्रबल होती है। अन्त्रमें से फिटकरीका देहमें शोषण नहीं होता। फिर वमन करानेका प्रयत्न करती है।

यह नागविषज शूलकी महौषध है। ५-५ रत्ती मात्रामें २-२ घण्टेपर ३-४ समय देनेसे नागविषज शूलकी निवृत्ति होती है। इस तरह जीर्ण प्रवाहिका और जीर्ण अतिसारमें २ से ५ रत्ती तक बीजबोलके चूर्णमें मिलाकर दिनमें ३ समय दी जाती है। अर्श रक्तस्रावको बन्द करनेके लिये इसके जलकी पिचकारी देते हैं। कण्ठरोहिणीमें प्रतिश्यायके शमनार्थ फिटकरीका स्थानिक प्रयोग होता है। चूर्ण लगाया जाता है; या कुल्ले कराये जाते हैं। तीव्र विकार हो, तो फिटकरीके चूर्णको कण्ठमें फूंक देना चाहिये। चिरकारी विकारमें कुल्ले ही कराने चाहिये।

उपजिह्वाका प्रदाह (Uvulitis). कण्ठशालूक (Tonsillitis) पर और रक्तज्वरमें गलेके भीतर क्षत होने पर फिटकरी के चूर्णको शहदमें मिलाकर लगाते हैं।

पारद-जनित मसूढ़ोंकी शिथिलता, मुखसे विष-लार गिरना क्षत और रक्तस्राव होनेपर फिटकरीके जलके कुल्ले कराये जाते हैं।

जुकाम (चिरकारी प्रतिश्याय) में फिटकरीके फूलेका नस्यरूपसे प्रयोग करनेसे श्लेष्मस्राव बन्द होजाता है।

मूत्राशयमें से रक्तस्राव, गर्भाशयमें से रक्तस्राव, श्वेतप्रदर और पूयमेहमें फिटकरीसे धावनकी पिचकारी लगानेसे रक्त, दूषित रस और पूयका स्राव कम होजाता है।

योनिकण्डू रोगमें फिटकरीके गाढ़े द्रवसे धोने पर खुजलीकी निवृत्ति होजाती है। योनिदाह होनेपर फिटकरीको जलमें मिला पिचकारी लगाकर धोनेसे दाह शमन होता है।

योनिमें से कमल बाहर निकल आने पर १ तोला फिटकरी और ४ तोले माजूफलके चूर्णको मिला छोटी-छोटी पोटली बाँध योनिमें धारण करनेपर कमलका निकलना बन्द होजाता है। पोटलीको लम्बे डोरेसे बाँधनी चाहिये, जिससे डोरा लटका रहे। नया रोग होने पर यह प्रयोग हितकर है। जीर्ण विकारमें औषधि-प्रयोगसे लाभ नहीं होता।

विविध चक्षुप्रदाहमें फिटकरी महोपकारक है। २ रत्ती कच्ची फिटकरी या ४ रत्ती फूलेको २॥ तोले गुलाबजलमें मिलाकर प्रातः साय २-२ बूँद डालते रहनेसे नेत्रप्रदाह शमन होजाता है। बालकोंके पूययुक्त चक्षुप्रदाहकमें फिटकरीके

जलकी बूँद डाली जाती है। इस तरह फिटकरी नेत्ररोगमे बाहरके लेपके लिये भी प्रयोजित होती है। फिटकरी को कडाहीमे डाल अग्नि पर रखें, गम होनेपर जम्बीरी नींबूका रस थोडा-थोडा डालते जायें, जिससे काले रंगका कीचड बन जायगा। फिर गुनगुना रहने पर नेत्रके चारो ओर लेप कर देनेसे, एव इसकी पुल्टिस नेत्र पर बांध देनेसे रक्तसंग्रहका जल्दी निवारण होकर विकार नष्ट होजाता है।

राजयक्ष्माकी दुदमन वमनमे भस्मके अभावमे फिटकरीका चूर्ण २ से ५ रत्ती मिश्रीमे मिलाकर देनेसे वमन बन्द होती है।

व्युची रोगमें फिटकरी और अफीमको जलमें मिलाकर लेप करनेमे व्युचीके कीटाणु नष्ट होते हैं, और रक्तस्राव बन्द होता है।

रक्तस्राव पर फिटकरीका चूर्ण डाल पट्टी बाध देनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है और घाव भी नही पकता।

दतवेष्ठज [शोथपर फिटकरीको गुनगुने जलमें मिलाकर कुल्ले करनेसे शोथकी निवृत्ति होती है। रक्तस्राव बन्द होता है, तथा दात और दाढ दृढ होते हैं।

गुदभ्रंशमें फिटकरीके गुनगुने जलमें मिलाकर आबदस्त लेनेसे गुदभ्रंश दूर होता है।

क्षौर कराने पर फिटकरीके गोले (जो घिसकर चिकना किया हो) को मुख-मण्डल पर फिरा लेनेसे उस्तरेकी तेजी या कीटाणु आदिसे उत्पन्न विकृति नष्ट हो जाती है। इस हेतुसे फुन्सिया या अन्य विकारकी उत्पत्ति नही होती।

पित्तप्रकोपमें फिटकरी ६ माशे जलमें मिलाकर पिला देनेसे वमन होकर विषकी निवृत्ति होजाती है।

वर्षाका जल या कभी प्रवासमें मलिन जल मिलने पर जलमें किञ्चित् फिटकरी डाल देनेसे दोष तलेमें बैठ जाता है, या ऊपर आजाता है, छान लेनेसे जल स्वच्छ होजाता है।

फिटकरीके चूर्णमे अर्कदुग्ध मिला ३ घण्टे खरल कर सुखा बारीक चूर्ण बना लेवे। फिर दन्तमंजन रूपसे उपयोग करनेसे दात और दाढका दर्द शमन होता है और मसूढे दृढ होते है।

सूचना—फिटकरीकी आभ्यन्तरिक अधिक मात्रा देनेपर आभ्यन्तरिक और स्थानिक अधिक मात्रासे स्थानिक उग्रता उत्पन्न होती है। स्थानिक लेपको अधिक समय तक रखा जाय, तो प्रदाहकी उत्पत्ति होती है। यह प्रदाह बाह्य त्वचा पर नही होता, श्लैष्मिक कला या क्षत स्थान पर होता है।

नेत्रकी श्लैष्मिक कलाके तीव्र प्रदाहमे कच्ची फिटकरीका उपयोग नही करना चाहिये।

४ माशे या इससे अधिक मात्रामें सेवन करने पर उबाक, वमन आमाशयमें

वेदना और विरेचनकी उत्पत्ति होती है।

कुछ दिनों तक प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करते रहनेसे आमाशयमें भारीपन और वेदना प्रतीत होती हैं; तथा आमाशयका रक्तस्राव कम होजानेसे जठराग्नि मन्द होजाती है।

(४९) स्फटिकमणि भस्म।

विधि—राजावर्तकी विधिसे शुद्ध किये हुए स्फटिमणिको इमामदस्तमें कूट, समभाग गन्धक मिला १२ घण्टे नींबूके रसमें खरलकर २-२ तोलेकी टिकिया वनाकर सूर्यके तापमें सुखावें। फिर संपुट कर गजपुट देवें। इस तरह ७ पुट देनेसे मुलायम मैले लाल रंगकी भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ बार मक्खन-मिश्री, मलाई या वासावलेहके साथ सेवन करावें।

उपयोग—स्फटिकमणि भस्म रसमें मधुर, विपाक मधुर, शीतवीर्य, वल्य, चक्षुष्य, हृद्य, ज्वरघ्न, उरःक्षतहर और दाह शामक है। ज्वर, दाह, रक्तपित्त, उरःक्षत, रक्तवमन, विषप्रकोप और रक्तस्रावको रोकनेके लिये सहायक औषधि रूपसे इसका उपयोग होता है।

कूपीपक्व रसायनाधिकार

रसायनमें रस पारदका नाम है और अयन मार्गको कहते हैं। इसलिये जिन-जिन ओषधियोंमें पारद है वे सब रसायन कहलाती है। एवं जिस ओषधिसे जरा और व्याधिका नाश होकर बल, ओज, मेधा आदिकी वृद्धि होकर शरीर सुदृढ बने और आयु स्थिर हो, उसे रसायन कहते हैं। ये सब गुण पारदमें अवस्थित होनेसे पारद-मिश्रित ओषधियोको रसायन कहा है। शुद्ध पारद अतिशय चंचल और अक्षय वीर्यवान है। पारद अति सूक्ष्म परमाणु रूप बनकर शरीरके सब स्थानोमें अति शीघ्र पहुँचकर इच्छित लाभकी प्राप्ति कराता है। पारदयुक्त ओषधियोकी मात्रा स्वल्प है; अरुचि भी नहीं करता और असाध्य रोगोको भी सत्वर शमन करता है। इसलिये शास्त्रकारोने रसायनको अन्य ओषधियोंमें श्रेष्ठ माना है

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादोषधिभ्योऽधिको रसः॥

भूतकालमें महर्षियोंने अति परिश्रम करके पारदको अनेक प्रकारसे उपयुक्त किया है। उन्होंने अनेक प्रकारकी शरीर-स्वास्थ्यकर ओषधियोंकी योजना, सुवर्ण बनानेकी विधि, आयुष्य-वृद्धि और नाना प्रकारकी सिद्धि प्राप्त करनेकी रीति

निर्माण की हैं। उनमें से साधारण ओषधिबनानेकी कुछ विधियाँ वर्तमान सामयिक समाजमें प्रचलित हैं, और अन्य दिव्य क्रियायें भारत सन्तानोंके दुर्भाग्यवश प्रायः लुप्त होगई हैं। प्राचीन आचार्योंने पारदके अनेक प्रकारके दिव्य गुणोंका अनुभव करके संस्कृत भाषामें गुणोंके अनुसार अनेक नाम रक्खे हैं। उन नामोंका उल्लेख कोष ग्रन्थोंमें मिलता है, किन्तु उनके अलौकिक गुणोंको प्राप्त करनेकी विधिका लोप होगया है।

खनिज पारदके चार प्रकार हैं- लाल, पीला, काला और सफेद। लाल पारा निर्बलता दूर करके शरीरको पुष्ट बनाता है। पीला सुवर्ण आदि धातुओं में उपयोगी है। काला सिद्धिकी प्राप्ति कराता है, और सफेद सब रोगोंका नाश करता है। इन चार जातिके पारदमें से सम्प्रति तो श्वेत पारद को काममें लाते हैं।

मूर्च्छित (कज्जली किया हुआ) पारा सब प्रकारके रोगोंका नाश करता है। जारित (पूर्णचन्द्रोदय-रस आदि) वृद्धावस्थाको दूर कर शरीर को तेजस्वी बनाता है। बद्धपारा (पारदकी आणविक गोली) आकाशगमन आदि की सिद्धि देता है। मारा हुआ पारद (पारद भस्म) अजर अमर बनाता है, और कामित तथा रंजित (साधन भक्तिसे प्रसन्न किया हुआ) पारद पराभक्ति और मुक्तिकी प्राप्ति कराता है। मनुष्य और पशुओंके असाध्य रोग जो दूसरी ओषधिसे दूर न हो सकें, वे भी सब पारदसे नष्ट होते हैं। इसी हेतुसे पारदको अन्य औषधियोंमें श्रेष्ठ कहा है।

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्ववेदिभिः।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते॥

भूमिमेंसे निकले हुए पारदमें मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता दोष स्वभावसिद्ध रहते हैं, कलई और शीशेके सम्बन्धसे दो प्रकारके संयोगजन्य आगन्तुक दोष भी मिले हुएहैं। इन ७ दोषोंमेंसे मलसे मूर्च्छा, विषसे मृत्यु, अग्निसे शरीरमें दाह (संताप), गिरिदोषसे जडता, चपलतासे वीर्यनाश, कलईके योगसे कुष्ठ, रक्तविकार और शीशेके सम्बन्धसे नपुंसकताकी प्राप्तिहोती है। इसलिये पारदको शुद्धकरके उपयोगमें लेना चाहिये। साधारण रोग दूर करनेवाली ओषधिमें सिंगरफमेंसे निकाला हुआ पारद मिलाया जाता है। गन्धक पारदके दोषको खा जाता है। इसलिये सिंगरफसे निकले पारदको शुद्ध माना है। किन्तु रसायन या दिव्य गुणोंकी प्राप्तिकी चाह हो, असाध्य रोग दूर करना हो तो पारदके आठ संस्कार कर बुभुक्षित करें। बुभुक्षित होनेसे वह सुवर्णको पाचन कर असाध्य रोग दूर करनेमें समर्थ होता है, एवं रसायन गुणकी प्राप्ति कराता है।

रसायने तु या शुद्धिः सा व्याधावपि कीर्तिता।
रसायनस्य या शुद्धिः सैव कष्टतरा मता॥

अष्ट संस्कारवाली शुद्धि जो रसायनके लिये कही है, वह कठिनतर है। वही सब व्याधियोंमें हितकारक है।

शुद्धपारदके संयोगसे दो प्रकारके रसायन तैयार किये जाते हैं।— (१) अग्निसंस्कार द्वारा (२) अग्निसंस्काररहित, गंधक मात्र आदि ओषधियोंके साथ खरल करके। पहिले प्रकारमें दो भेद हैं—कूपीपक्व और पर्पटी। इनमेंसे कूपीपक्व रसायनका इस प्रकरणमें विवेचन करेंगे। अग्निसंस्काररहित को खरलीय रसायन कहते हैं, उसका विवेचन पृथक् प्रकरणमें किया जायगा।

कूपीपक्व रसायन बनानेके लिये सिद्धभ्राष्ट्री (भट्टी) वालुकायन्त्र, अग्नि देना, डाट बन्द करना, बोतल तोड़ना इत्यादि कार्यके लिये निश्चित विधिका उपयोग होता है। यदि मनगढन्त रीतिसे कार्य किया जायगा तो कूपीपक्व रसायन नहीं बन सकेगा। भट्टी जैसी वर्त्तमानमें प्रचलित है वैसी भूतकालमें नहीं थी। पहिले सामान्य चूल्हे पर कूपीपक्व रसायन बना लेते थे; परन्तु उसमें लड़कीका खर्च अधिक होता था। एवं कभी-कभी अकस्मात् बोतल फटनेसे कार्य करनेवाले को चोट लग जाती थी या पारदमिश्रित गंधकका जहरी धुआँ श्वासके साथ फुफ्फुसमें प्रवेश कर हानि पहुँचा देता था। इस कारण वर्त्तमानमें विद्वानोंने विशेष अनुकूल भट्टीका प्रबन्ध किया है। इसमें बोतल न फूटनेके लिये अनेक अनुकूल साधनोंकी योजना की है।

पारदमिश्रित अनेक ओषधियाँ वालुकायन्त्र द्वारा काँचकी शीशीमें तैयार की जाती हैं, उनको कूपीपक्व रसायन कहते हैं। उन कूपीपक्व रसायनोंकी कृति अन्य सब प्रकारकी ओषधिकृतियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और शीघ्र फलप्रद है। कूपीपक्व रसायनोंमें पारद गंधक और मुख्य द्रव्य हैं। तैयार करनेके लिये पारद गंधक और अन्य ओषधियाँ विशुद्ध मिलानी चाहिये। दूषित ओषधियोंके उपयोगसे लाभके बदले हानि होनेकी संभावना है।

सुवर्णवंगको छोड़कर शेष कूपीपक्व रसायन प्रायः वात और कफ प्रकृति वालोंको विशेष अनुकूल तथा पित्त प्रकृति वालोंको कम अनुकूल है। पित्त प्रकृतिवालोंको पित्तवर्द्धक, ऋतुमें या पित्तप्रकोपमें देनेकी आवश्यता हो, तो दूसरी शीतल ओषधि मिश्रित करके दें; और थोड़े दिन देकर ४–६ रोज बन्द करें फिर पुनः देवें।

सिद्धभ्राष्टी—कूपीपक्व रसायनके लिये भट्टी बाहरसे चौकोन और भीतरसे गोल बननी चाहिये। नीचे गोलाई कुछ कम रक्खे जिससे अग्निकी लपटें अच्छी

लोहेकी शलाका छातेकी साटीकी या छातेकी ताडीसे दुगुनी मोटी १। हाथ लम्बी और ऊपरके भागमें लकडीका दस्ता लगा होना चाहिये, एवं शलाकाके नीचेके भागको थोडा तीक्ष्ण बनवा लेना चाहिये ।

(३) मिट्टीकी एक खेलडी (घडेके नीचेका आधा भाग) पेंदेमें छेदवाली— जिस छेदमें शीशीका मुख बराबर आ जाय—ऐसी वालुकायन्त्र पर रखनी चाहिये, जिससे कभी उफान आजाय, तो औषधिका रक्षण होजाय, अन्यथा रेतमें गिरकर औषधि निकम्मी होजाती हैं । साथ ही खेलडी होनेसे बोतलके ऊपरके भागमें अग्निकी लपटसे नुकसान भी नहीं पहुँचता ।

(४) भट्टी बिल्कुल खुले भागमें नहीं बनानी चाहिये, अन्यथा वर्षा ऋतुमें वर्षाका भय और गरमीके दिनोंमें धूपका त्रास भोगना पडेगा । तथा खुले भागमें किसी-किसी समय वायु लगनेसे अग्निभी बराबर नहीं लगेगी ।

(५) लोहेकी छड़ें जो दीवारमें रखनेकी हैं, वे पतली होंगी, तो वालुकायन्त्रके बोझ और अग्निकी लपटें लगनेसे मुड जायेंगी ।

वालुकायन्त्र—मिट्टी अथवा लोहेकी हाडी भट्टीके भीतर आजाय, और चारों ओर एक-एक अंगुल जगह खाली रहे, ऐसी लेनी चाहिये । १-१ अंगुल जगह होनेसे अग्निकी लपटें चारों ओर समान लगती रहती हैं, और धुँआ निकलता रहता हैं । हाडी लगभग १२ इन्च ऊँची और चौडाई शीशी को भीतर रखनेपर चारों ओर लगभग २ इन्च जगह खाली रहे वैसी लेनी चाहिये । कितनेही मिट्टीके बरतन तेज आंचके समय गल जाते हैं और लोहेके बरतनमें मन्दाग्निके समय भी आंच तेज लगजानेकी सम्भावना हैं । इसलिये समयानुकूल लोह-पात्र अथवा मिट्टीकी पक्की हाडी लेवे ।यदि लोह-पात्र या मिट्टीकी कच्ची हाडी हो, तो उस पर दो तीन कपडमिट्टी करले, और मिट्टीके बरतनके मुँहपर लोहेका तार बांधें, जिससे फूटनेका भय न रहे । लोहेके बरतनमें अथवा मिट्टीकी हाडीके पेंदेमें बराबर बीचमें एक पैसा आजाय उतना बडा छेद करालें और छेदके अन्दर ३ इन्च गोल कटा हुआ अभ्रक अथवा केलु (Tile) का पतला टुकडा रखकर चारों ओर थोडी मिट्टी (शीशी स्थिर रहने और रेतके रक्षणके लिये) लगादें । मिट्टी सूखने पर कपडमिट्टीकी हुई

१४—वालुकायन्त्र, जिसमें अभ्रकके पतरोंके ऊपर शीशी रखी है ।

१५—शीशीके कण्ठका भाग, जो यन्त्रसे बाहर प्रतीत होता है ।

१६—शीशीके ऊपर मिट्टीके घडेके नीचेका आधा हिस्सा पहिनाया है । यह औषधि उफान आकर बाहर न निकलने और अग्निकी लपटोंसे कण्ठमें लगी हुई औषधि की रक्षाके लिए रखा हैं ।

१७–१८—भट्टीके ऊपरकी दीवार । चौडाई २५ इन्च ।

१९–२०—पिछली दीवार, जो भाग आगेसे दीख सकता है ।

आतशी शीशी अभ्रकके टुकड़े पर सीधी रखकर, चारों ओर थोड़ी मिट्टी लगादें। पश्चात् यन्त्रमें शीशीके इर्दगिर्द रेत भरें। कितनेही चिकित्सक २ इञ्च चौड़ा छेद करते हैं। एवं अभ्रकका पतरा भी नही रखते। उस विधिसे योजना करने पर रसायन जल्दी पकती है।

रेत नदीमेंसे मँगाकर वहुत मोटी और वहुत वारीक निकाल, मध्यम परिमाणकी उपयोगमें लें। समुद्रके किनारेकी खरी रेतको न लेवें। रेत भट्टीमें ३-४ समय काम देती है। किसी समय अकस्मात् वालुकायन्त्र टूट जाय, तो भी रेतके लिये दौड़ना न पड़े; इसलिये एक दो पीपा अधिक भरकर तैयार रक्खें। यन्त्रमें शीशी रखनेके वाद पेंदेकी मिट्टी सूखने पर रेत शीशीके गले तक भरें; शीशीके गलेसे ऊपरका भाग खाली रक्खें। रेत भरनेके समय शीशीके मुँह पर डाट लगा दें, ताकि शीशीमें रेत न गिरे। कज्जली भरनेके समय कांचकी कीप (Funnel) या कागजके चोगाको शीशीपर रख करके भरें, ताकि कज्जली रेतमें न गिरे।

आतशी शीशी—कूपीपक्व रसायन वनानेके लिये शीशी समतल वाली अथवा नीचेसे फूली हुई लेनी चाहिये। तलेमें खड्डेवाली शीशी न लें। विलायती शराबकी शीशी चल सकती है। विलायती पक्की आतशी शीशी (Flask) के फूटनेका डर वहुत कम रहता है। किन्तु अग्नि तेज लगाने पर वह मुड़ जाती है। यदि उसे लेना हो तो १ सेर जल रहे उतनी वड़ी लें। एक साथमें ज्यादा गन्धक मिलाकर कूपीपक्व रसायन वनाना हो, तो विलायती अथवा देशी वड़ी शीशीमेंसे अनुकूल रहे उसको उपयोग में लेवें।

शीशीके ऊपरमें एक-एक वालिश्तके छोटे-छोटे कपड़ेके टुकड़ोंको मिट्टीमें भिगोकर कपड़मिट्टी करें। ७ कपड़मिट्टी करके शीशीको उपयोगमें लेवें। पतली आतशी शीशी हो, तो ३ कपड़मिट्टी ज्यादा करें। एक कपड़मिट्टी सूखे तब दूसरी करें। एक साथ ७ या १० कपड़मिट्टी नही करनी चाहिये। कारण क्वचित् पतली शीशी मिट्टीके वोझसे टूट जाती है। एवं एक साथ की हुई कपड़मिट्टी मजबूत भी नही होती। ७कपड़मिट्टीमे लगभग आधेसे पौन इञ्च तक मोटाई शीशी पर होती है वार-वार ज्यादा मिट्टी नही लगनी चाहिये।

कपड़मिट्टी करनेमें छनी हुई चिकनी मिट्टीके साथ थोड़ा गोवर और घोड़ेकी लीद मिला लेनेसे विशेष मजबूत होती है। अथवा भिगोकर छानी हुई मिट्टी ८ सेर, रेत २ सेर, राख १ सेर, नमक ऽ। सेर मिलाकर कीचड़ करें। फिर छोटे-छोटे (८-९ इञ्चके) कपड़ोंके टुकड़ोको भिगोकर शीशी पर लपेटें। अथवा मुलतानी मिट्टीसे कपड़मिट्टी करें। कितनेही चिकित्सक कपड़ेके स्थान

पर रुईको मिट्टीमें मिलाकर एकही कपडमिट्टी करते हैं वह भी दृढ होती है।

सूचना—शीशीमें ओषधि तीसरे हिस्सेमें आवे भागके भीतर रहे, उतनी भरे। शेष जगह खाली रक्खें। ज्यादा ओषधि भरनेमें क्वचित् उफान आकर औषध बाहर निकल जाती है। शीशीमें कज्जलीयुक्त ओषधि बिल्कुल सूखी डालें। गीली ओषधिसे शीशी फूटनेका भय रहता है।

अग्नि देनेकी विधि—अग्नि देनेके लिये बबूलकी सूखी लकडी हाथके काडे जैसी मोटी ले। पहले लकडी इकट्ठी करके रक्खें, जिससे रात्रिके समय एकाएक लकडी लानेके लिए दौडना न पडे। तीन दिन अग्नि देनेके लिये लगभग ५ मन लकडी लगेगी। पहले दिन लगभग १ मन, दूसरे दिन १॥ मन, और तीसरे दिन २॥ मन, यह साधारण अनुमान है। यदि चूल्हा ठीक नही होगा, तो लकडी ज्यादा जलेगी। एव अन्तमें तेज अग्नि दी जाती है, वह नियमसे कम लगेगी, तो ओषधि कच्ची रह जायगी, और अति तेज हो जायगी, तो शीशी गल जायगी, या ओषधि जलकर उड जायगी। इसलिये मर्यादानुसार अग्नि दें। इस बातको भी लक्ष्य में रखें कि, विलायती पतली शीशीको अग्नि थोडी मन्द देनी पडती है, अग्नि तेज होनेपर उसके गलनेका भय है, सादी काली शीशीको तेज अग्नि ज्यादा परिमाणमें देनी पडती है।

अग्नि प्रथम मन्द, फिर मध्यम और अन्तमें तेज दें। अग्नि देनेके दो-तीन घण्टेके बाद यन्त्र गरम होकर शीशीमेंसे गन्धकका धुआ निकलना शुरू होता है। ६ घण्टे पीछे गन्धक पिघल जाती है, तब अग्नि थोडी तेज करें। यदि अग्नि ज्यादा तेज होजायगी, तो शीशीमें कज्जली उफान आकर बाहर निकल जायगी। कभी ऐसा होकर कज्जली बाहर निकलने लगे, तो भट्टीमें की लकडी बाहर खीच लें और तुरन्त लोहेकी शलाकाको शीशीमें चलावे जिससे उफान तुरन्त बैठ जाय। जो भूल होजायगी और १५-२० मिनट निकल जायेंगे, तो ऊपर छप्परमें शीशी लगकर घर जला देगी, और काम करने वालोको भी बाधा पहुँचेगी, अथवा कज्जली रेतमें गिरकर निकम्मी हो जायगी।

लगभग १२ घण्टे पीछे जब धुआ ज्यादा परिमाणमें जोरसे निकलता दीखे, तब लोहेकी शलाकाको अग्निमें तपा, शीशीके मुँहमें डालकर परीक्षा करें। बराबर रस हो जानेपर, मुँहपर गन्धककी बत्ती जलती रहेगी, अन्यथा बत्ती तुरत बुझ जायगी। बत्ती चालू रहे तो ताप और थोडा तेज करें। बत्ती जलनेकी शुरुआत हो जाने के बाद लगभग १२ घण्टेतक बत्ती जलती रहती है। पहले बत्ती मुँहपर दीखती है, वह कुछ समय पीछे गलेके भीतर चली जाती है। जिस तरह ओषधि पकती जाय और धुआं कम होता जाय उस तरह अग्नि थोडी थोडी तेज करनी चाहिये, जिससे समय पर ओषधि तैयार हो जाय।

जब सब गन्धक जलकर बत्ती बन्द हो जाती है; और धुआँ थोड़ा-थोड़ा निकलता हुआ देखनेमें आता है; तब लोहेकी शलाकाको तपाकर बार-बार आध-आध घण्टे पर शीशीमें डालकर गलेको साफ करते रहें। यदि ओषधिमें क्षार मिलाया हो, तो गन्धकमेंसे क्षार निकलकर बार;बार गलेमें लगता रहता है। कदाच इस क्षारसे मुँह बन्द हो जाय, तो शीशेके फट जाने या उछल जानेका भय रहता है। इसलिए सावधानीसे लोहेकी तप्त शलाकासे गलेमें लगे हुए क्षारको गिराते रहें। इस तरह बार-बार मुँहको साफ किया जायगा, तो ओषधिमें क्षार मिश्रण कम होगा; और ओषधि भी जल्द पकेगी।

इस बातको भी स्मरणमें रखें कि, शलाकासे बार-बार तलस्थ ओषधिका चालन नहीं करना चाहिये। केवल गलेको साफ करें। तप्त शलाकासे तलस्थ ओषधिका बार-बार चालन न करनेसे ओषधिके पाकमें थोडा अधिक समय लगता है; तथापि ओषधि बननेमें जितना समय अधिक लगता है उतना ही गुण अधिक होता है।

ओषधि पाकका निश्चय करनेके लिये तप्त शलाकाको चला बाहर निकालकर तुरन्त सूँघें। यदि गन्धककी गन्ध बिल्कुल न आती हो, तो समझ लें कि औषधिका पाक हो गया। पाक तैयार होने लगे, तब बोतलके भीतर शलाकाको न चलावें। कारण, आसन्न पाकके समय बार-बार शलाकासे ओषधि चालन करते रहनेसे तैयार हुई ओषधिमेंसे पारद का अंश उड़ने लगता है।

सूचना—(१) यदि ओषधिमें नौसादर या कोई क्षार मिलाया हो, तो धुआँ निकलनेकी शुरूआतसे ही शीशेके मुँहको साफ करते रहें। कारण, नीचे रहा हुआ क्षार धुआँ निकलनेके प्रारम्भसे ही ऊपर चढ़ने लगता है।

(२) यदि अग्नि कम लगेगी तो पैंदेमें कच्चा द्रव्य रह जायगा और ऊपर नलीमें लगी हुई ओषधिको भी खोलनेमें बड़ी कठिनता होगी।

(३) बार-बार बोतलके भीतर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये, अन्यथा नेत्रज्योतिको हानि पहुँचती है।

डाट लगानेकी विधि—सब गन्धक जलकर और धुआँ बन्द होकर जब औषध उपरसे लाल दीखती है. तब चूना और शहद मिला उसमें कपडेका टुकडा भिगोईट या चाकके डांटके ऊपर लपेटकर शीशीपर लगा दें। कदाचित थोडा धुआँ रह जानेके कारण किसी समय जोरसे डाट उड़ जाय, तो घबराना नहीं चाहिये आध घण्टा बाद पुन: डाट लगा दे। डाट लगानेके बाद मुँहपर एक कपड़ेकी पट्टी चूना और शहदमें डुबोकर लगा दे, जिससे सन्धि अच्छी तरहसे बन्द हो जाय।शीशीपर लगानेके पहिले १।-१।। इन्च लम्बाडाट चाक अथवा मिट्टीको घिस कर पहलेसे तैयार कर लें। १ ईंच डाट शीशीके भीतर जाय, शेष भाग बाहर रहे; वैसा डाट होना चाहिये।

परीक्षाके लिये शीशीके भीतर तप्त लोह शलाका डालनेसे औषधि पक गई हो तो एकदम लाल अग्निकी लपट उठती है। गन्धक रहनेपर लपटमें नीला रंग भासता है। यदि संखिया, हरताल या मैनसिल मिश्रित औषधि होगी, तो लाल बत्ती नहीं बनेगी, सफेद बनेगी। इस तरह परीक्षा करके लाल या सफेद बत्ती नहीं दीखनेपर डाट लगा दें। यदि डाट समयपर नहीं लगाया जायगा, तो चन्द्रोदय आदि औषधिमेंसे बहुत भाग उड़ जायगा।

कलकत्तेके अनेक बड़े-बड़े कविराज शीशीपर डाट नहीं लगाते, केवल आँच कम कर देते हैं। विशेष करके वे लोग पत्थरके कोयलोंकी अग्नि देते हैं, जिससे औषधि जल्दी (केवल २०-२२ घण्टेमें) तैयार हो जाती है। डाट न लगानेकी जो विधि है, उसमें औषधि कुछकम निकलती है। वे लोग लोह शलाकासे औषधि-चालन नहीं करते, और पाक-कालमें ६ माशे शोरा डालते हैं, जिससे गलेमें सत्वर औषधि लग मुँह बन्द होकर ऊपरमें औषधि पकती है, फिर ऊपरमें औषधिशुद्ध होनेसे वे लोग अग्नि बन्द कर देते हैं। इस तरह तैयार की हुई औषधि न्यून गुणयुक्त होती है।

शीशीके मुँह पर डाट लगानेके समय नवीन वैद्योंको चाहिये कि, धुआँ न दीखे तब ऐसा ही एक समय डाट लगा देवें। आधे घण्टे पीछे डाट निकालकर देखनेसे धुआँ रहा होगा, तो एक दम निकल जायगा। धुआँ नहीं होगा, तो डाटके मुँह पर थोड़ीसी पारावाली औषधि लग जायगी। ऐसा निश्चय कर तुरन्त डाट लगा देना चाहिये। मुँह पर डाट लगानेके पीछे एकाध घण्टा अग्नि मन्द करें। पश्चात धीरे धीरे तेज करते जायँ। अन्तमें तेज अग्नि १२ से ३६ घण्टे तक देनेसे औषधि तैयार होजाती है।

औषधि निकालनेकी विधि—अग्नि बन्द करके दो दिन बाद यन्त्र स्वांग शीतल होने पर नीचे उतार कर शीशी निकालें। उपरकी कपड़मिट्टी साफ कर शीशीको तोड़ें। तोड़नेके लिये एक सूतलीका टुकड़ा मिट्टीके तेलमें भिगो कर शीशीका पेट बाँधकर जलावें। जब अग्नि बुझने लगे, तब सूतलीकी जगह पर थोड़ा बूँद जल टपकावें, जिससे शीशीके दो टुकड़े होजायँगे। छोटे-छोटे टुकड़े होकर औषधिमें काच न मिल जाय, इस बातका सम्हाल रखें यदि काचका टुकड़ा औषधि के साथ खानेमें आजाय, तो अतडीमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। शीशी तोड़नेके समय साफ जमीन पर एक बड़ी थालीमें शीशीको रखकर तोड़ें। शीशीमेंसे धुआ निकलकर, श्वासोच्छ्वासमें न चला जाय, यह भी सम्हालें अन्यथा कास श्वास रोग होजाता है।

शीशीके मुखपर जो तैयार औषधिकी नली लगती है, उसे सम्हालकर निकालें। यदि नली पर थोड़ा मैलवाला भाग हो, तो उसे चाकूसे खोलकर अलग रखें। उसे दूसरी बार जब इस प्रकारकी औषधि तैयार करनी हो, तब कज्जलीमें मिलाले।

जो नीचे पैंदेमें थोड़ी गन्धककी काली राख शेष रह जाती है; वह निकम्मी है। वजनदार राख हो, तो उसमें पारदका अंश रहता है। अग्नि कम लगनेसे नीचे पैंदमें वज़नदार नीली, काली भस्म या गठा शेष रह जाय, तो उसे दूसरे समय कज्जलीमें मिलाकर ओषधि बना लेनी चाहिये।

यदि सोना कज्जलीमें मिलाया हो तो उसकी काली भस्म बनकर पैंदेमें रह जाती है। उसे ३–४ समय सुवर्ण भस्ममें कही विधिसे जलसे धोकर भस्म बनालें; या एसिडके योगसे शोधन कर शुद्ध सुवर्ण बनालें।

औषध-परीक्षा—जो कूपीपक्व रसायन बोतलमेंसे सरलतापूर्वक खुल जाय, वह पक्का माना जाता है। जिस रसायनको खोलनेमें अधिक परिश्रम पड़े, एक साथ विशेषांशमें न खुले; अति कठिनतासे थोड़ा-थोड़ा खुले; वह अपक्व माना जाता है। यदि भली-भांतिसे परिपक्व न हुआ हो; ऐसे रसायन का सेवन किया जायगा, तो मुँह में थूकका प्रवाह बढना, मसूढ़ेमें शोथ आना और दांत हिलना आदि विकार उत्पन्न हो जायँगे।

जो रसायन कच्चा रह गया हो; उसे दूसरी बार समभाग गन्धक मिला आतशी शीशीमें भर २४ घण्टे अग्नि देकर तैयार कर लेना चाहिये।

पारद-शोधन विधि—शास्त्रमें पारद शोधनके १८ संस्कार कहे हैं। उनमें ८ संस्कार औषध-कार्यके हेतुसे कहे हैं। शेष संस्कार सुवर्ण आदि धातुअर्थ कहे हैं। अतः स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन (अधःपातन, ऊर्ध्वपातन और तिर्यक्-पातन), बोधन, नियमन और सन्दीपन इन आठ संस्कारोंका यहाँ वर्णन किया है।

(१) स्वेदन विधि—चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, सैंधानमक, राई, मूली और अदरख, सबको समभाग मिलाकर ४० तोले ले। फिर पारद ८० तोलेमें मिलाकर कांजीके साथ ३ दिन खरल करके गोला बांधें। पश्चात् केले या कमलके पत्तोंमें अच्छी रीतिसे लपेट ऊपर सूत बाधकर, चौगुने मजबूत कपड़ेकी थैलीमें रखें और कांजीसे एक इञ्च ऊपर रहे, उस तरह लटकावे। काँजी पारदको न लगे केवल वाष्प लगती रहे, उस तरह दोलायन्त्र विधिसे तीन अहोरात्र स्वेदन करें। बार-बार कांजी डालते जायं। लगभग १ मन कांजी लगेगी। इसलिए पहिलेसे कांजी आवश्यकतानुसार तैयार करा लेनी चाहिये। फिर पारदको निकाल डमरूयन्त्रमें डालकर ५–७ तोले उड़ालें। शेप पारद हांडी-शीतल होने पर स्वयमेव काष्ठादि ओषधियों की राखसे अलग हो जायगा। कदाचित् राखमें कुछ अंश शेष रह जाय, तो डमरूयन्त्र द्वारा पुनः उड़ाले। इस तरह पारदको स्वेदित करलेने पर प्रथम संस्कार पूर्ण होता है।

(२) मर्दन विधि—लाल ईंटका चूर्ण, हल्दी, रसोईघरका धुआँ, कंवल या ऊनकी काली राख और कड़वी तूम्बीके बीज सबको पारदसे १६वाँ १६वाँ

हिस्साले, पारदके साथ मिला, नीबूका रस डालकर ३ दिन तक खरल करें। पश्चात् डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेनेसे पारद शीशेके दोषसे मुक्त होजाता है।

पश्चात् उस पारदमें इन्द्रायनके मूलका चूर्ण और अङ्कोल्के मूलका चूर्ण १६ वां-१६वां हिस्सा मिला कांजीके साथ १ दिन खरल कर डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेनेसे पारद वंगदोषसे मुक्त होजाता है।

(३) मूर्च्छन विधि—घीकुंवारके रस, त्रिफलाके क्वाथ और चित्रक-मूलके क्वाथमें ७-७ दिन तक अनुक्रमसे मर्दन करें। घीकुंवारसे मलका नाश, त्रिफलासे दाहनाश और चित्रकमूलसे विषदोष दूर होता है इस रीतिसे २१ दिन तक खरल करनेसे पारा मूर्च्छित होता है।

(४) उत्थापन विधि—मूर्च्छित पारदको १२ घण्टे नीबूके रसके साथ सूर्यके तापमें खरल करें। फिर डमरूयन्त्र द्वारा पारदको उड़ा लेवे।

(५) पातन संस्कार—ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् भेदसे त्रिविध है।

ऊर्ध्व पातन विधि—पारदमें $\frac{1}{3}$ तांबका चूर्ण मिला लोहेके खरलमें नीबूके रसके साथ ६ घण्टे खरल कर गोला बनावें। फिर डमरूयन्त्र द्वारा पारद उड़ालें।

अधःपातन विधि—हरड़, बहेड़े, आंवले, चित्रकमूल, नमक, राई और सुहिं-जने की छाल, सबको समभाग मिलाकर पारदसे आधा ले। फिर इन औषधियों और पारदको घीकुंवारके रसके साथ मिलाकर खरल करें। जब पारदका अणु देखनेमें न आवे तब मिट्टीके घड़ेमें लेप कर डमरूयन्त्र बनालें। लेपवाले घड़ेको ऊपर रखें। नीचेका घड़ा जमीनमें दबा दें। ऊपरके घड़ेका केवल चतुर्थांश भाग ही जमीनसे ऊपर रक्खें। नीचेका घड़ा जलमें डूबा रहे और ठंडा जल बार-बार बरतनके चारों ओर जमके, इसलिये एक बांसकी नली दो हाथ लम्बी जमीनमें दबावें। जिसका १ मुंह नीचेके घड़ेके साथ लगा रहे, और दूसरा जमीनके ऊपर घड़ेसे १-१॥ हाथ दूर रहे। इस नलीको जलसे भरी रखें। नली खाली होती जाय, वैसे-वैसे जल डालते जायें। इस तरह योजना करके ऊपरके घड़ेपर गोबरी जलावें। १२ घण्टे मध्याग्नि देनेसे पारद नीचे आजाता है, या भूधर यन्त्र द्वारा पारदका अध पातन करें।

तिर्यक् पातन विधि—पारदको चतुर्थांश धान्याभ्रकमें मिला, कांजीके साथ १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् ताड़मेंसे झरती मद्य (ताड़ी) भरने के फूले हुए पेटवाले और लम्बी गर्दनवाले मिट्टी के घड़े आते हैं, ऐसे दो घड़े लेवें। इनमें से एक घड़ेके भीतर लेप कर, दूसरा समान मुंहवाला घड़ा मिलाकर डमरूयन्त्र बनावें अर्थात् दोनोंके मुंहको मिलाकर मजबूत कपड़ मिट्टीसे बन्द करें। पारेवाला घड़ा चूल्हेपर रखें, और दूसरा खाली घड़ा जलसे भरी हुई कड़ाही या बाल्टीमें

रखे। कड़ाहीको भी थोड़ी ऊँची रखें। वार-बार उसपर जल छिड़कते रहे अथवा गीला कपड़ा फेरते रहें। या खाली घड़ेमें आधें भाग तक जल भरे। पारद वाले घड़ेके ऊपर कपड़मिट्टी करें; और भीतर सोहागा और लाखका रस चारों तरफ इस तरह लगाले कि, पारदवाले घड़े पर जलवाला कपड़ा फिरानेसे भी वह न फूटे। ऐसी योजना नही होगी, तो पारद वहुत उड़ जायगा। अथवा चित्रमे दिखाये हैं, वैसे मिट्टी या चीनी मिट्टीके यन्त्र वनवाकर तिर्यक्पातन करे। इस रीतिसे १२ घण्टे तक युक्तिसे अग्नि देनेसे पारद दूसरे घड़ेमें चला जाता है।



अग्निकी लपट घड़ेके ऊपरके भागमे न लगे, इस वातका पहिलेसे प्रवन्ध करलेना चाहिये इस तरह तीन संस्कार (ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक पातन) होनेसे पातन संस्कार पूरा होता है।

वर्त्तमानमे विदेशसे लम्वी मुड़ीहुई गर्दनवाली शीशी (Retort) आती है, उसके मुंहके साथ अन्य शीशी (Receiver) को जोड़ उसमें पारद भर स्पिरिट लैम्पपर तिर्यक्पातन कर लेनेसे पारदकी हानि नही होती, और सरलतासे शोधन क्रिया होजाती है।

(६) वोधन विधि—उपरोक्त संस्कारोंसे पारद शुद्ध होनेपर षंड हो जाता है। इसलिये शक्तिवृद्धिके हेतुसे वोधन संस्कार करना चाहिय। पृष्ठपर्णीका पंचांग और कमलकन्द सम भाग ले, जलमें पीसकर कल्क वनावें। इस कल्कमेंसे एक कटोरे जैसा आकार वना, उसमें पारद भरें और ऊपर कल्कसे ही वन्दकर गोला वना लें। गोले के चारों ओर भोजपत्र या कमलपत्रको अच्छी तरह लपेट कर सूतसे वांधें। पश्चात् चौगुने कपड़ेकी थैलीमें भर, दोलायन्त्रमे लटकाकर तीन दिन तक कांजीसे स्वेदन कर फिर पारदको निकाल गरम जलसे धो लेनेसे वोधित संस्कारकी समाप्ति होती है।

(७) नियमन विधि—गन्धनाकुली (सर्पाक्षी. अभावमे रास्नामूल) का कन्द, इमली, वांझ कटाली (वांझ ककोड़ा) का कन्द, भागरा, नागरमोथा और

देव नामक आचार्यने कहा है।

जिस रसमें ककारादि गणके पदार्थोंके सेवनका निषेध किया गया हो, उस रस पर इन ककारादि गणके पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये, और अन्यान्य गुणहीन पदार्थोंको भी त्याग देना चाहिये। (र० र० स०)

समे गन्धे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित् ।
जीर्णे तु त्रिगुणे गन्धे कामिनीदर्पनाशन ॥
चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रार्थसिद्धद ।
भवेत् पञ्चगुणे सिद्ध षड्गुणे मृत्युजिद् भवेत् ॥

गन्धक जारित पारदके गुण—समान गन्धक जारण करनेसे पारदका गुण सौगुना बढता है, और सर्व साधारण रोगोंका नाश करता है। दुगना गन्धक जारण करने पर कफ, क्षय और कुष्टको दूर करता है। तिगुना गन्धक जारण करनेसे नपुंसकता और दुर्बलताको दूर करता है। चार गुने गन्धक जारण करनेसे वृद्धावस्थाकी निर्बलताको दूर कर शरीरको तेजस्वी बनाता है। पाँच गुना गन्धक जारण करनेसे क्षयका नाश करता है, और सकल्पसिद्ध बनता है। छ गुना गन्धक जारण करनेसे इस पारदके समक्ष कोई भी रोग नहीं टिक सकता। यह सम्पूर्ण रोगोंका नाशक है, एव मनुष्यको मृत्यजित बनाता है।

नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार पारद-मिश्रित ओषधि खाने (ग्रे आइल आदिके इन्जेक्शन करने) और मलहम-लेप आदि बाह्य प्रयोग करने पर पारद रक्तमें मिलकर रक्त शोधन करता है, रक्ताभिसरण क्रिया बढाता है, और रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि कराता है। रक्ताणुओंकी वृद्धिके लिये अति न्यून मात्रामें कुछ दिनों तक सेवन करना चाहिये। किन्तु यदि दूषित पारदका सेवन किया जाय, या शुद्ध पारदका अत्यधिक कालतक निरन्तर व्यवहार किया जाय अथवा मात्रा अधिक ली जाय, तो रक्ताणुओंका नाश होता है, पौष्टिक तत्व (Fibrin) न्यून हो जाता है, तथा कितनेही विपरीत लक्षण भी प्रकाशित होते है। यथा मुँहमें छाले, मुँहका स्वाद पित्त-प्रकोप-सूचक होना, दातोंकी जडमें शिथिलता और वेदना होना, लालास्रावमें वृद्धि और दुर्गन्ध निकलना, नाकमेंसे उष्ण नि श्वास निकलना, कन्ठमें लसीका ग्रन्थियोंकी वृद्धि, पारद शोषित हो जानेपर शरीरकी समस्त ग्रन्थियोंके स्रावकी वृद्धि होना, अति प्रस्वेदन आना, किसी-किसी को दस्त पतला होना, किसीको वृक्क स्थानमें पीडा, हाथ-पैरका चलते समय कम्प, देहमें शुष्कता और निस्तेजता आ जाना आदि प्रकाशित होते है।

क्वचित् वात सस्थान आक्रान्त होनेपर हाथ-पैर और मस्तिष्ककी मास-पेशियोंमे स्पन्दन होना, या पक्षाघातके प्रारम्भिक लक्षण या मन्द वेदना होती है।

किसीको प्रलाप होता है। अतः पारदका व्यवहार दीर्घकालतक करना हो, तो बीच-बीचमे थोड़े-थोड़े दिन बन्द करते रहना चाहिये। डाक्टरी पारद कृतिमें जितना हानिका भय है, उतना आयुर्वेदिक कृतिमें नहीं है। फिर भी सम्हालते रहना, यह लाभदायक है।

बड़े मनुष्यकी अपेक्षा बालक-बालिकाओंको पारद विशेष सहन होता है। बाल्यवस्थामें पारद मिश्रित ओषधि सेवन करनेसे थोड़े ही दिनोंमे शरीर मोटा बन जाता है।

सूचना—पारद सेवन कालमे ४–४ या ६–६ दिन पर मसूढोंको देख लेना चाहिये कि, मसूढोपर नील वर्णकी रेखाएँ तो नही है? एवं लाला निःसरण वृद्धि तो नही हुई है? ऐसा कदाच प्रतीत हो, तो तत्काल औषधि बन्द कर देनी चाहिये। एवं इसके विपरीत प्रवाल, मुक्ता, सुवर्णमाक्षिक, अमृतासत्व, सितोपलादि, च्यवनप्राश आदि प्रकोपशामक ओषधिका सेवन करना चाहिये। आवश्यकतापर पहिले विरेचन ले लेना चाहिये।

(१) पूर्णचन्द्रोदय रस।

बनावट—घीरबहटी और ७ उपविषोंसे बुभुक्षित किया हुआ पारद ८ तोले सुवर्णके वर्क १ तोला और शुद्ध गन्धक १६ तोले लेवें। पहले पारद और सुवर्णके वर्कोको मिलाकर ३ दिन तक नींबूके रसमें खरल करें। रोज प्रातः एक-एक तोला सैंधानमक साथमें मिला लेवें। चौथे रोज पारदको ३-४ समय जलसे धोकर क्षार दूर करें। पश्चात् गन्धक मिला, कज्जली कर लाल कपासके फूलोंके रस (फूलो का रस स्वरस-यन्त्रसे निकालें) और घीकुँवारके रसकी ३ दिन तक भावना दे, सुखा, आतशी शीशीमें भरकर ६० घण्टेकी आंच देवें। लगभग ३६ घण्टेमें डाट लगाना पड़ेगा। फिर २४ घण्टे तीव्र अग्नि देनेसे ओषधि पक जाती है। नीचे गन्धक और क्षार मिश्रित थोड़ी पीली भस्म मिलेगी। पारद बुभुक्षित नहीं होगा, तो तल भागमें सुवर्ण की काली भस्म शेष रह जायगी। सुवर्ण ऊपर नहीं चढ़ेगा।

कपासका वृक्ष, जो अनेक वर्षो तक जीवित रहता है, उसके लाल फूलोंका स्वरस लेना चाहिये। वर्षायु कपासके फूलोंका रस उपयोगी नही है।

सेवन विधि—चन्द्रोदय और कपूर ४-४ तोले खरल करके मिला लेवें। बाद में जायफल, समुद्रशोष (वृद्धदारु) के बीज, लौंग और कस्तूरी ३-३ माशे मिला खरल करके बोतलमें भर लेवें।

बाजारमें कपूर, मिक्सड केम्फर, प्योर कैम्फर, रिफाइन्ड केम्फर, तीन जातिका मिलता है। इनमेसे रिफाइन्ड केम्फरमेसे भीमसेनी कपूर बनाकर उपयोगमें लेना चाहिये। अथवा सुमात्रा और बोर्नियों से आनेवाले भीमसेनी कपूरको उपयोगमें लेवें। यह

भीमसेनी कपूर सबमें विशेष लाभदायक है।

(२) चन्द्रोदय, अभ्रकभस्म, शुद्धकपूर, केशर, अकलकरा, समुद्रशोष, छोटी पीपल प्रत्येक १-१ तोले और कस्तूरी ३ माशे मिलाकर खरल कर शीशीमें भर लेवें। अथवा नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—चन्द्रोदय मिश्रण की मात्रा १ से ३ रत्ती दिनमें १ या २ बार शहद या नागरवेलके पानके साथ लेवें। अथवा गोली खाकर ऊपरसे दूध पीवें। ज्वरादि रोगोमें हृदयपौष्टिक रूपसे देना हो, तो दिनमें २ या ३ समय आधेसे १ रत्ती चन्द्रोदय को शहद-पीपलके साथ मिलाकर दें।

उपयोग—यह पूर्ण चन्द्रोदय रस हृदयपौष्टिक, वाजीकर, रसायन, बल्य रक्तप्रसादक, जन्तुघ्न, सेन्द्रिय विषशामक और योगवाही है। राजयक्ष्मा, कफप्रकोपजन्य, व्याधियों और शुक्रकी निर्बलताके नाश करनेमें अत्यन्त लाभदायक है। वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुक्षीणता, मानसिक निर्बलता, नपुंसकता हृदयकी निर्बलता, जीर्णज्वर, क्षय, श्वास, प्रमेह, विषविकार, मन्दाग्नि, अपस्मार, आदिको दूर करके बलवीर्यकी वृद्धि करता और आयुको बढाता है।

इस चन्द्रोदयका सेवन यदि रतिकालमें या रतिके अन्तमें किया जाय, तो सौ मदोन्मत्त स्त्रियोंके गर्वका हरण करने योग्य बल देता है। इस रसायनके सेवन कालमें घी, औटा कर गाढा किया हुआ दूध, जड-मांस,मांसरस, उडदके पदार्थ और अन्य आनन्दवर्द्धक आहार-विहार पथ्य हैं। इस रसायनका एक वर्ष पर्यन्त सेवन करने पर कृत्रिम, स्थावर या जंगम कोई भी प्रकारका विष बाधा नहीं पहुंचा सकता। जिस तरह मृत्युञ्जय क्रिया या मन्त्रके अभ्याससे मृत्युका निवारण होता है, उसी तरह मनुष्यको इस रसायनके नित्य सेवनसे जरा और मृत्युका भय नहीं सता सकता।

सुवर्ण और सुवर्ण मिश्रित ओषधियाँ हृदयको शक्ति देती और रक्तको निर्विष बनाती हैं। सुवर्ण योगवाही होनेसे, हेमगर्भ-पोटली रस आदि उत्तेजक ओषधियोंके संयोगसे हृदय पर उत्तेजक गुण और शामक असर दर्शाता है। पूर्ण चन्द्रोदय रसमें भी उत्तेजक गुण रहता है। सुवर्णके योगसे इस रसायनका उपयोग कीटाणुजन्य क्षयमें होता है। राजयक्ष्माकी द्वितीयावस्थामें अनेक समय उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। इस रसायनका क्षयके कीटाणुओं पर साक्षात् परिणाम होता है। अतः क्षयकी तीव्र अवस्थाओंमें यह सत्वर लाभ पहुंचाता है।

केवल राजयक्ष्माका समय उत्पन्न होनेपर ही पूर्णचन्द्रोदय रसका सेवन प्रारम्भ किया जाय, तो उत्तेजक होनेसे कुछ समय तक रक्तवाहिनियों, स्रोतों और रक्त आदि धातुओं पर उत्तेजकता दर्शाता है, जिससे कभी-कभी लक्षण बढ जानेका भास होता है। परन्तु जैसे-जैसे सुवर्णक्षारका रक्तमें मिश्रण होता जाता है, वैसे-वैसे रक्त सबल बनता जाता है, और शनैः-शनैः क्षय कीटाणु नष्ट होते जाते हैं। क्वचित्

पूर्णचन्द्रोदयके सेवनसे ज्वर बढ़ जाता है, ऐसा होनेपर पूर्णचन्द्रोदयकी मात्रा कम कर देनी चाहिये।

यह कल्प शारीरिक घटकों (Tissues) का नाश नहीं करता, केवल शरीरको हानि पहुँचाने वाले कीटाणुओंका नाश करता है। इस दृष्टिसे कीटाणु-नाशक औषधियोंमें पूर्णचन्द्रोदय रस उत्तम ओषधि है। यह रसायन जीर्ण उरःक्षतमें रक्त गिरनेकी अवस्थामें रक्त को शक्ति देकर रक्तवाहिनियोंको सुदढ़ बनाता है एवं व्रण रोपण रूप महत्वका कार्य भी करता है। क्षयकी भिन्न–भिन्न अवस्थाओंमें होनेवाले उरःक्षत मेंसे अनेकमें इस कल्पका उपयोग होता है।

कीटाणुजन्य अन्य व्याधियोंमें रक्तमें मिले हुए कीटाणुओंको नष्ट कर रक्तको सबल बनानेका इस रसायनमें मुख्य धर्म है। इस हेतुसे आन्त्रिक सन्निपात, फुफ्फुस सन्निपात, फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय) और इस तरहके अन्य संक्रामक ज्वरोंमें जब-जब हृदयक्रिया कीटाणुओंके विषके हेतुसे विकृत, मंद या क्षोण होती है, तब-तब अन्य किसी भी ओषधिकी अपेक्षा पूर्णचन्दोदय रस देना विशेष हित-कारक है। जब आयु-वद्धिके साथ शरीरकी वृद्धि नहीं होती, तब शरीर नाटा या ठिगना प्रतीत होता है, मुखमण्डल निस्तेज और सूजा-सा भासता है, त्वचा, नाखून आदि शुष्क प्रतीत होते हैं, जननेन्द्रिय और नितम्ब भागकी वृद्धि न होनेसे आयु वृद्धि होने पर भी युवा स्त्री सामान्य छोटी लड़की सदृश दीखती है, अर्थात् इन इन्द्रियोंका व्यवहार आयु अनुसार नही होता और इसी तरह स्तन आदि इन्द्रियोंका विकास भी नहीं होता। पुरुषोंके अण्डकोषका यथोचित विकास न होनेसे योग्य शुक्रोत्पत्ति क्रिया नहीं होती, शरीर पर तेज नही आता, समस्त अवयवोंकी योग्य वृद्धि न होनेसे अवयव संकुचित जैसे भासते है, स्फूर्ति नहीं रहती, नेत्र पर निस्तेजता भासती है और नाड़ी मन्दगति से चलती है। इस स्थितिमें आयुर्वैदिकमें ओषधियां उत्तम कार्य करती है---एक पूर्ण चन्द्रोदय रस, दूसरी आरोग्यवर्द्धिनी। वात-प्रधान विकार वालोंको आरोग्यवर्द्धिनी और कफप्रधान विकृतिवालोंको पूर्णचन्द्रोदय रस उपयोगी है।

किसी भी कारणसे आई हुई इन्द्रिय-शिथिलताको यह रसायन दूर करता है। यहां पर इन्द्रियका अर्थ ज्ञानग्रहण-सामर्थ्य और आज्ञा-प्रदान सामर्थ्य क्रिया है। शरीर अवयव इन्द्रियोंके अधीन हैं। जैसे नेत्र नेत्रेन्द्रियके अधीन हैं। जिव्हा रसने-न्द्रियके और त्वचा त्वकेन्द्रियके अधिकारमें रहती है। इन ज्ञानेन्द्रियोंके सामर्थ्यसे मनुष्यको शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुणका बोध होता है। इनकी शिथिलता होने पर नेत्रसे दर्शन-क्रिया और कर्णसे श्रवण-किया यथोचित नहीं होती। यह शिथिलता वात और पित्त धातुओंकी विकृतिके हेतुसे होती है धातुओंका कार्य जिस तरह शरीर-अवयव और शरीर-घटक पर होता है, उस त [illegible] मन, मनोदेश

और ज्ञानेन्द्रिय पर भी होता है। फिर धातु साम्य प्रस्थापित होकर इन्द्रियोंकी शिथिलता दूर होती है, और शरीर-अवयव व्यवस्थित रूपसे काम करने लग जाते हैं।

ज्ञानेन्द्रियके समान अन्य अवयवोंमें रही हुई इन्द्रिय (शक्ति) का पराभव हो जाता है, यह भी इससे उत्तेजित हो जाती है। इस हेतुसे नपुंसकता प्राप्त होनेपर पूर्णचन्द्रोदयसे लाभ होता है। इसके सेवनसे इन्द्रिय-शैथिल्यका नाश होता है, और मनमें भी स्फूर्तिकी प्राप्ति होती है।

इस रसमें कपूर अत्यधिक मात्रामें मिलता है। एवं जायफल, समुद्रशोष आदि अन्य औषधियोंके संयोगसे वृष्यत्व गुण अत्यधिक परिमाणमें बढ जाता है। योग्य विचार किया जाय, तो यह गुण नहीं किन्तु दोष माना जायगा। कारण, इस गुणकी प्राप्ति होने पर पुरुषको कामवासनाके अतिरिक्त अन्य विचार ही नहीं आता। रतिलालसाकी तृप्ति नहीं होती इस हेतुसे अत्यन्त कामोत्तेजक औषधिका उपयोग करना हो, तो सम्हालपूर्वक ही करना चाहिये।

कृत्रिम विष (गर), शरीरमें उत्पन्न विष या स्थावर, जंगमात्मक विष, इनकी तीव्रता होने पर विषघ्न चिकित्सा करनेके पश्चात् उनके लीन अंशका प्रकोप दीर्घ काल तक न रहनेके लिये पूर्णचन्द्रोदयका सेवन हितकर है। इस रसायनसे रक्तका प्रसादन होकर शरीर निर्विष बनता है। (औ० गु० ध० शा०)

सन्निपातमें कफप्रकोप होनेपर पूर्णचन्द्रोदय रसका अच्छा उपयोग होता है। कफ दूषित और संगृहीत हो जाने पर रोगीके कमरेमें जानेसे साथ दुर्गन्धिका भास होता है, कण्ठमें घर-घर आवाज, नेत्रमें लाली, कोष्ठबद्धता, कफ और दस्तमें रक्त-स्राव, निद्रानाश, जिव्हा काली और कांटेदार, चित्तविभ्रम, प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, क्वचित् किसीको मस्तिष्कावरण का प्रदाह होता है, उस स्थितिमें कण्ठ हिलाना, करनीके भीतर शोथ और अधिक उन्माद जैसे बर्ताव आदि लक्षण प्रकाशित होते है, ऐसी अवस्थामें पूर्णचन्द्रोदय, शृङ्गभस्म, प्रवालपिष्टी और सुवर्ण-माक्षिक भस्म मिलाकर शहदके साथ दिनमें ३ बार थोडी-थोडी मात्रामें दिया जाता है। इनके अतिरिक्त मुलहठी, बहेडा, मुनक्का, अडूसा और मिश्रीका अष्टमांश क्वाथ करके देते रहनेसे कफ शुद्धि सत्वर होनेमें सहायता मिल जाती है (इस विकारमें उदर शुद्धिके लिये तीव्र विरेचन कदापि नहीं देना चाहिये)।

सूचना—पूर्णचन्द्रोदय रसके सेवन-समयमें घृतयुक्त मधुर पदार्थ विशेष रूपसे लेनसे विशेष लाभ पहुँचता है। जिसकी नाडी और हृदय गति मन्द हो और कफप्रधान प्रकृति हो, उसके लिये यह रसायन विशेष अनुकूल रहता है। पित्त-प्रधान प्रकृति वाले, जिनकी नाडी और हृदयकी गतिमें विशेष तेजी रहती हो, अन्तरमें उष्णता रहती हो, उनको यह रसायन नहीं देना चाहिये।

(२) रससिन्दूर ।

प्रथम विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक ९६ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुंवारके रसकी भावना दे, सुखा आतशी शीशीमें भरकर वालुकायन्त्रमें ४ अहोरात्र अग्नि देनेसे रससिंदूर तैयार हो जाता है। लगभग ६० घन्टे पर डाट लगेगा, पश्चात् २४ घन्टे तीव्र अग्नि देनेसे रसायन परिपक्व हो जाता है। एक साथ ६ गुना गन्धक जारण करनेकी अपेक्षा दो-दो गुना गन्धक तीन समय जारण किया जाय, तो रससिन्दूर अधिक लाभदायक बनता है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें दो बार, अभ्रक भस्म, पीपल और शहदके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ।

विविध अनुपान—१—वातरोगमें—पीपल, शहद, मांसरस, तेल या लहशुनके साथ।

२—पित्त रोगमें—आँवलेके चूर्ण और मिश्रीके साथ।

३—कफ रोगमें—अदरखके रस और शहदके साथ।

४—रक्तविकारमें—शहद अथवा हल्दी और मिश्रीके साथ।

५—अतिसार और पेचिशमें—चंदलोईके रस, कच्चे बेलफल या लौंग, हिंगुल अफीम और भाँगके साथ।

६—कामला, पान्डु और मन्दाग्नि पर—त्रिकटु, त्रिफला और वासाके स्वरसके साथ।

७—मूत्रकृच्छ्र पर—शिलाजीत, इलायची और मिश्रीके साथ।

८—धातुवृद्धिकेलिये—लौंग, केशर मिले नागरबेलके पानमें या विदारीकन्दके चूर्ण के साथ।

९—वमन-शमनके लिये—भाँग और अजवायनके ३-३ रत्ती चूर्णके साथ अथवा लाजाचूर्णके साथ।

१०—उदर रोगपर—कालानमक, हल्दी, भाँग और अजवायनके चूर्ण १॥ माशेके साथ।

११—कृमिपर—२ रत्ती पलासफलके चूर्ण और गुड़में।

१२—मन्दाग्निपर—काला नमक और अजवायनके साथ।

१३—बलवृद्धिके लिये—गिलोयसत्वके साथ।

१४—हृदयकी निर्बलतापर—पीपल और शहदके साथ।

१५—वातज प्रमेह पर—शहद-पीपलके साथ।

१६—पित्तज प्रमेह पर—त्रिफला और मिश्रीके साथ।

१७—कास, श्वास और शूल पर—त्रिकटु, भारंगी और शहद; शहद और पीपल; या भाँगरेके रसके साथ।

१८—मन्दाग्नि, मलावरोध और हृद्रोग पर—पीपल, चित्रकमूल, हरड और काले नमकके साथ।

१९—शुक्रवृद्धिके लिये—कपूर आधा रत्ती, लौंग, केशर, जावित्री, अकरकरा, पीपल और भांग २-२ रत्ती, तथा मिश्री १ माशाके साथ १ से २ रत्ती रससिन्दूर देवें। अथवा केलेके साथ।

२०—सब प्रकारके ज्वर पर—लौंग, चिरायता, हरड और कालेनमकके साथ या जीरा और पीपलके साथ।

२१—ज्वरकी सन्निपातावस्थामें औचित्य देखकर चतुःसमचूर्ण (चन्दन, अगर, कस्तूरी और केशर) के साथ, या निर्गुण्डीके पत्तोंके साथ।

२२—रक्तपित्तमें—शक्करयुक्त द्राक्षाके साथ।

२३—राजयक्ष्मामें—घृतके साथ।

२४—धातुक्षयमें—बमोंदी और अदरखके स्वरसके साथ।

२५—अरुचिमें—बिजौरेके रसके साथ।

२६—मदात्ययमें—नीमका मद (जल) और शक्करके साथ।

२७—मूर्च्छामें—नारियलके जल या पित्तपापडाके क्वाथसे।

२८—अपस्मारमें—कल्याण घृतके साथ।

२९—विसूचिकामें—सोठ, जीरा और जावित्रीके साथ।

३०—अजीर्ण और हडफूटनमें—धनिया तथा सोठके क्वाथसे।

३१—ग्रहणीमें—चांगेरीका रस, भुनी हरड या सोठके साथ।

३२—पीनसमें—कालीमिर्चके चूर्णके साथ।

३३—कुष्ठोंमें—बावची और पुवाडके बीज अथवा खैरके क्वाथके साथ।

३४—मूत्रपाकमें—सफेद चन्दनके क्वाथसे।

३५—वातरक्तमें—तालमखानेके चूर्णके साथ।

३६—दन्त रोगोंमें—दन्तधावन वृक्षोंके रसमें।

३७—विबन्धमें—एलुवाके चूर्णके साथ।

३८—हिचकी और आध्मानमें—कुलथीके क्वाथसे।

३९—हृद्रोग, रक्तस्राव और उदररोगमें—अर्जुन छालके रस और शहदके साथ।

उपयोग—धातुक्षीणता, हृद्रोग, कफप्रधान प्रमेह, क्षय, श्वास, कास, वातरोग, उदररोग मूर्च्छा, अर्श भगंदर, पाण्डु, दुष्ट व्रण, शूल, वमन, ज्वर, संग्रहणी, सन्निपात, मंदाग्नि, मगजकी निर्बलता, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, शोथ, गुल्म, प्लीहाविकार और त्रिदोष प्रकोप आदि रोगो पर अति लाभदायक है।

रससिंदूरका कार्य विशेषतः फुफ्फुस और श्वास वाहिनियोंपर होनेसे कफस्रावी औषधियोंके साथ देनेसे दूषित कफ, जो संचित हुआ हो, वह सरलतासे छूटकर

बाहर आ जाता है। कफ धातु निर्दोष बनती है; और फुफ्फुस-शोथ नष्ट होकर फुफ्फुस बलवान बनते हैं। इसलिये कफप्रधान सन्निपात, फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia), इन्फ्लुएन्जा, श्वास रोग, जीर्ण कफकास और जुखाममें कफ संचय होने पर विषघ्न और कफघ्न रूपसे रससिंदूरका उपयोग हितकर है।

कफस्राव करानेके लिये रससिंदूरके उत्तेजक गुणका कार्य होता है। इस कफप्रकोपके विरुद्ध जब शुष्क कास हो, तब इस रसायनका उपयोग बिलकुल नहीं करना चाहिये। अन्यथा कास बढ़ जायगा, क्षोभ अधिक होगा। शुष्क कास युक्त अवस्थामें प्रवालपिष्टी, ब्राह्मी, मुलहठी, इलायची आदि शामक कफस्रावी ओषधि देनी चाहिये।

कफसंचय होकर कास हो रही हो, तो रससिंदूरको कफस्रावी अनुपानके साथ देनेसे कफस्राव दूर होता है; और कास भी कम हो जाती है। यदि कफ संचयको दूर न किया जाय, तो भीतरके स्रोत दुष्ट हो जाते हैं। फिर ज्वरकी उत्पत्ति हो जानेकी संभावना रहती है। ऐसा अनेक बार श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) में प्रतीत हुआ है श्लैष्मिक सन्निपातकी तीव्रावस्था नष्ट होकर जब पुनः पूर्व स्थितिकी प्राप्ति होती है, तब फुफ्फुसोंके किसी स्थानमें कफ संचित रह जाता है, तो कुछ समयमें पूयमय दुर्गन्ध युक्त बन जाता है, फिर कफ निकलता है, वह हरा-पीला दुर्गन्धमय निकलता है। जो पूय भावकी प्राप्ति न हो सके, तो कफ श्वेत; चिपचिपा और गाढ़ा निकलता है। इस तरह कफ विकृति होने पर ज्वर आने लगता है। यह ज्वर कफसंचय और कफदुष्टिके अनुरूप न्यूनाधिक परिमाणमें होता है। इस विकृति पर रससिंदूर और श्रृङ्गभस्म मिलाकर दिये जाते हैं।

कितने ही मनुष्योंको बार-बार प्रतिश्याय हो जाता है, उनको विशेषतः नासिकाकी श्लैष्मिक कला, स्वरयन्त्र और ग्रसनिकामें क्षोभ उत्पन्न होकर जुकाम हो जाता है, ऐसी प्रकृतिवालोंको रससिंदूरका सेवन करनेसे क्षोभ दूर होकर व्याधिका निवारण हो जाता है।

उरस्तोय (Pleurisy) होने पर फुफ्फुसावरणमें जल संचय होता है। इस जलकी विकृति होने पर ज्वर आने लगता है। यदि जल संचय अधिक हो, तो शस्त्र क्रिया द्वारा निकलवा देना चाहिये; और जल संचय मर्यादामें हो तो, रससिंदूरको आरोग्यवर्द्धिनी, श्रृङ्गभस्म और लघुमालिनी वसन्तके साथ मिलाकर देना चाहिये। कफवृद्धि और ज्वर होने पर रससिंदूर अच्छा उपयोगी होता है।

उरःक्षतमें यदि रक्त न पड़ता हो, पीला दुर्गन्धवाला कफ मात्रा गिरता हो, तो वासावलेह या अन्य व्रणरोपण ओषधिके साथ रससिंदूर देनेसे शीघ्र क्षत भर जाता है। ऐसे ही कीटाणुजन्य क्षय आदि रोगोंमें सुवर्णके वर्क और अभ्रकके साथ रससिंदूर देनेसे कीटाणुओंका नाश होता है और शारीरिक शक्तिका रक्षण होता है

यद्यपि कीटाणुजन्य क्षयकी तृतीयावस्थामें उरःक्षत होनेपर किसी भी औषधिका उपयोग नहीं होता, परन्तु द्वितीयावस्था पर्यन्त या तृतीयावस्थाके प्रारम्भकालमें कफकी प्रधानता होनेपर सुवर्ण, अभ्रकभस्म और रससिन्दूरसे लाभ होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। इस स्थानपर रससिंदूरका उपयोग कीटाणुनाशक रूपमें होता है।

रससिंदूर हृदयके बलको बढाना, रक्ताभिसरण क्रियाको उत्तेजना देता और स्नायुओंको भी दृढ बनाता है। इस कारण जब हृदयबलके सरक्षणकी आवश्यकता हो तब अनेक रोगोंमें इसका उपयोग होता है।

विष्टब्धाजीर्ण या आमाजीर्णके कारण होनेवाले जीर्ण मन्दाग्नि रोगपर रससिंदूरका प्रयोग विशेष हितकर है। एवं जीर्ण आमातिसार या जीर्ण आमसंग्रहणीमें भी कफकी प्रधानता हो, तो कुटजारिष्ट या अन्य ग्राही औषधियोंके साथ रससिंदूर देना लाभदायक है।

रससिंदूर कफदोष, रस, रक्त और मांस, ये दूष्य, एवं फुफ्फुस श्वासवाहिनी, हृदय और आमाशय आदि कफ स्थानोंपर विशेष प्रभाव दिखाता है।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको या पित्तप्रधान शुष्क कालमें या अन्य) पित्तप्रधान रोगमें रससिंदूरका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक ३२ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुँवारके रसकी भावना दे आतशी शीशीमें भर, तीन दिन अग्नि देकर औषधि सिद्ध करें। इस रसायनको द्विगुण गन्धकजारित रससिंदूर कहते हैं। (र० च०

तीसरी विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक १६ तोले मिलाकर कज्जलीकर बडके अंकुरोंके क्वाथ या घीकुंवारके रसकी भावना दें। फिर कपडमिट्टी की हुई शीशीमें भर, ४८ घण्टे अग्नि देकर वालुकायन्त्र द्वारा तैयार करें। इस रसायनको समगुण गन्धक जारित रससिंदूर कहते हैं। (यो० र०)

चौथी विधि—शुद्ध पारद ८ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, नौसादर ६ माशे मिला, कज्जली कर नीबूके रसकी भावना दें। फिर सुखा, आतशी शीशीमें भर, ३६ घण्टे अग्नि देकर रससिंदूर तैयार करें। (यो० र०)

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

सूचना—क्षार मिलाकर रससिंदूर बनानेमें धुआं निकलनेकी शुरुआतसे तप्त शलाका द्वारा गला, बारबार साफ करते रहना चाहिये। यदि गला क्षारसे बन्द हो जायगा, तो शीशी फूट जायगी।

(३) हरगौरी रस।

विधि—शुद्ध पारद १५ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले मिलाकर कज्जली करें।

फिर नौसादर १॥ तोले मिला धतूरेके पत्तोंके रसकी ३ भावना दे सुखा, आतशी शीशीमें भर वालुकायन्त्रमें रखकर ३६ घण्टे की अग्नि देनेसे हरगौरीरस तैयार होता-है । १२ घण्टे मन्दाग्नि देनेसे गन्धक जीर्ण हो जायगा । पश्चात् डाट लगाकर धीरे धीरे अग्नि बढ़ावें । इस तरह २४ घण्टे अग्नि देनेसे रसायन बन जाता है । (र० का०)

मात्रा और उपयोग—रससिंदूरके अनुसार। किन्तु हरगौरी रसमें धतूरेके क्षारका असर रहनेसे, रससिंदूरकी अपेक्षा कफको बाहर निकालनेमें, वातको दूर करनेमें, आमशोधनमें और ज्वर-शमनमें अधिक काम देता है । यह हृदयको उत्तेजना अधिक देता है । इनके अतिरिक्त इस रसायनमें कुछ वाजीकरण गुण होनेसे अन्य कामोत्तेजक पौष्टिक औषधिके साथ देनेसे शीघ्र लाभ पहुँचता है । यह रसायन वात और कफ प्रकृतिवालोंके लिये हितकर हैं । मूल (रसकामधेनु) ग्रन्थकारने इस रसको वातव्याधि-मे लिखा है, और इसमें वातशामक गुण अधिक दर्शाया है ।

सूचना—इस रसायनको बनानेमें पहिलेसे क्षार गलेपर जमने लगता है । अतः सावधानीसे बार-बार खोलते रहना चाहिये ।

(४) मल्लसिंदूर

प्रथम विधि —शुद्ध सोमल ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्धगन्धक १० तोले लें। पहिले पारद और गन्धककी कज्जली करें । फिर सोम-लका बारीक चूर्ण मिलाकर ६ घण्टेखरल करें । पश्चात् घीकुंवारके रसकी भावना दे, सुखा, आतशी शीशीमें भर वालुकायंत्रमें रख ३६ से ४८ घण्टे तक अग्नि देकर ओषधिको सिद्ध करें ।

मल्लसिंदूर बनानेमें बार-बार सावधानतापूर्वक शीशीका गला साफ करते रहना चाहिये । लगभग १२ घण्टे बाद जब गन्धकका धुंआँ बन्द होकर सोमलका धुंआँ निकलने लगे; और तप्त शलाकासे बत्ती सफेद रंगकी दीखे; तब तुरन्त डाट लगा देवें । देर होगी तो सोमल उड़ जायगा; और जल्दी होगी तो डाट धुंआँके बलसे उड़ जायगा । डाट लगानेके पश्चात् २४ घण्टे से ३६ घण्टे तक ओषधिका विचार करके तेज अग्नि देनी चाहिये । जब तक गन्धकका धुआँ रहता है; तबतक शीशीमें काला कीचड़ जैसा दिखाई देता है । गन्धक जल जानेपर ऐसा कीचड़ नहीं रहता । मल्लसिंदूर काले चिलकते रंगका और कठोर होता है ।

मात्रा—पावसे आधी रत्तीतक दिनमें दो समय शहद और पीपलके साथ । अथवा खरलीय रसायन प्रकरणमें लिखे अनुसार मल्लसिंदूर वटी बनाकर प्रयोगमे लावें ।

हिस्टीरियापर—मल्लसिंदूर, कस्तूरी, केशर, कुचिला, सफेदमिर्च और अकरकराके साथ देवे । ऊपर जटामांसीका अर्क पिलावें ।

जीर्णपक्षाघातपर—मल्लसिंदूर, शुद्ध कुचिला और असगन्धको मिलाकर दिनमें दो बार घी-शहदसे देवें, ऊपर रास्नादि क्वाथ पिलावें।

उपयोग—मल्लसिंदूर श्वास, कास, सन्निपात, उन्माद, अपतन्त्रक, हिस्टीरिया, आमवात, बालकोंका डब्बारोग, विसूचिका, वातरोग, प्रमेह और सब प्रकारके कफ रोगोंका नाश करता है।

मल्लसिंदूर तीक्ष्ण और उग्रवीर्य है। फुफ्फुस, वातवाहिनी और हृदयपर उत्तेजक असर पहुंचाता है। इस रसायनका उपयोग कफवृद्धि और आमवृद्धिसे उत्पन्न दोष और वातप्रकोप पर होता है। जब कफोल्वण सन्निपात, जीर्णश्वास या कासके तीक्ष्ण कफप्रकोपमें देश और ऋतुके प्रतिकूल होनेसे या प्रकृति निर्बल होनेसे, मल्लभस्म या मल्लपुष्पको अधिक उग्रताके कारण न दिया जाय, वहां पर मल्लचन्द्रोदय और मल्लसिन्दूर देनेमें अधिक भय नहीं रहता। मल्लसिंदूर कफ और आमका शमन करके रोगको शांत भी कर देता है।

ज्वर १०० डिग्रीसे अधिक न हो, सर्वांगमें प्रस्वेद, श्वासकी घड-घड, छातीमें कफसंग्रह, नाडीमें क्षीणता, तन्द्रावृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होने पर मल्लसिंदूर दिया जाता है। यदि वाताक्षेपकके झटके साथमें हो, तो मल्लसिंदूरके बदले पंचसूत देना चाहिये इस तरह शुष्क कफ और श्वास हो, तो समीरपन्नग हितकारक माना जाता है।

उपदंशजनित पक्षाघात और अन्य हेतुसे उत्पन्न पक्षाघातमें बार-बार आनेवाले आक्षेपको रोकनेके लिये यह रसायन उत्तम लाभदायक है। इसके सेवनसे विष और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। जिससे झटके आनेमें प्रतिबन्ध होता है। इसी तरह इसके सेवनसे हिस्टीरियाका दौरा रुक जाता है।

यह रसायन कीटाणुनाशक होनेसे रक्तमें रहे हुए जीर्णज्वर और परिवर्तित ज्वरके कीटाणुओंका नाश कर ज्वरको शमन करता है। जीर्ण आमवातमें जब तीक्ष्ण प्रकोप हो, ज्वर साधारण रहता हो, तब कोष्ठ शुद्ध करके मल्लसिंदूर देना लाभदायक है। अजीर्ण जनित कीटाणु रहित विसूचिका और कीटाणुजन्य विसूचिकामें भी जब जीवनीय शक्तिके रक्षणकी आवश्यकता हो, तब इस रसायनका उपयोग लाभदायक है। इसके सेवनसे हृदयमें उत्तेजना आती है, नाडीका वेग बढता है, शीतलता कम होती है और आमाशय दोषकी निवृत्ति होती है।

बालकोंके पसलीरोगमें फुफ्फुस और श्वासनलिका कफसे बहुत भरे हों, गलेमें कफ घरघर बोल रहा हो, किन्तु ज्वरकी कमी हो तो अन्य रोगशामक औषधिके साथ 1/10 रत्ती मल्लसिंदूर मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

सूचना—१ पित्तप्रधानरोगमें इस रसायनका उपयोग न करें।

२ ज्वरकी उष्णता बहुत बढी हो, तब यह रसायन न दें।

३ वृक्क विकारके रोगी, जिनको मूत्रशुद्धि न होती हो, उनको यह

रसायन नही देना चाहिये ।

४. सोमलवाला धुआं आंखको न लगे यह सम्हालें। जब तक गंधक जलता है; तबतक सोमल नहीं उड़ता । गंधक जलजाने पर सम्हालना चाहिये ।

५. मल्लसिंदूर बनानेके समय पारदके साथ पारदसे चौथा हिस्सा सुवर्ण मिलाया जाय, तो मल्लचन्द्रोदय कहलाता है। मल्लचन्द्रोदय, सुवर्णके संयोगके कारण मल्लसिंदूरकी अपेक्षा कुछ सौम्य होता है। यदि मल्लचन्द्रोदयमें बुभुक्षित पारदके साथ सुवर्ण मिलाकर बनाया जाय, तो मल्लचन्द्रोदय अधिक गुणदायी बनता है ।

दूसरी विधि--शुद्ध सोमल ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले, शुद्ध गन्धक १० तोले और रसकपूर १० तोले मिला, कज्जली करके घीकुंवारके रसकी भावना देवें। पश्चात् सुखा, शीशीमें भर, उपरोक्त विधिसे वालुकायन्त्रमें ३६ से ४८ घण्टे अग्नि देकर मल्लसिंदूर बना लेवें ।

मात्रा--पाव,से आध रत्ती घृत और शहद या अदरखका रस और शहदके साथ।

उपयोग--उपदंश (फिरंग), पक्षाघात, आदिमें कुष्ठ, रक्तविकार, फिरंग-अनुबन्धयुक्त मृगी, सन्निपात, कफादिसह तमक श्वास, कास, जीर्ण प्रतिश्याय और संधिवात आदि सब प्रकारके वातरोगोंका नाश करता है ।

पहिली विधिके मल्लसिंदूरकी ओषधियोंके साथ रसकपूरको मिलाकर इस रसायनको तैयार किया है । अतः इस रसायनमें रसकपूरका गुण भी सम्मिलित हुआ है । यह रसायन प्रलापक, भुग्ननेत्र, कफष्ठीवी आदि कफोल्वण सन्निपातमें नाडियों और फुफ्फुसोके भीतर रहे हुए दूषित कफको बाहर निकालनेमे सहायता पहुचाता है; कीटाणुओंका नाश करता है, तथा फुफ्फुस और हृदयको उत्तेजना देकर रोगको शमन करता है ।

जब ज्वर कफप्रधान सान्निपातिक है, ऐसा निर्णय हो जाय; तभीसे योग्य अनुपान के साथ मल्लसिंदूरका प्रयोग करनेसे सन्निपात की सर्व अवस्थाओमे रोगीको अधिक त्रास नही होता; और सन्निपात का बल अधिक नही बढ़ता है । परन्तु ओषधि सेवनके साथ लंघन आदि सहायताकीभीआवश्यकता है। कण्ठमे कफकी घर-घर आवाज,थोडी-सी कास, नेत्र आधे खुले या नेत्रकी पुतली ऊंची चढ़ी हुई तन्द्रासी अवस्था, प्रलाप, भ्रम, वेहोशी, बीच-बीचमे कुछ निद्रा लगजाना आदि लक्षण प्रतीत होते हो, और ज्वर मर्यादामें हो, तो मल्लसिंदूर देना चाहिये ।

न्युमोनिया और इन्फ्लुएंजाकी कफ संचयावस्थामे रसायन अधिक लाभदायक यहै। कफ संचय होनेपर जब फुफ्फुसोंकी अशक्ति या फुफ्फुसोंकी वातवाहिनियोकी अशक्तिके हेतुसे कफको बाहर निकालनेमे त्रास होता हो, तो ऐसी अवस्थामें इस

रसायनका प्रयोग करना चाहिये ।

इन्फ्लुएंजाके अन्तमें फुफ्फुसोंके बलका क्षय होनेपर श्वासोच्छ्वास मन्द और मन्दतर होता जाता है । ऐसे समय पर मल्लसिंदूरका अच्छा उपयोग होता है । मल्लसिंदूरसे हृदय और फुफ्फुसोंको उत्तेजना मिलती है । एवं इन अवयवोंके करनेवाले ज्ञानवहानाडीकेन्द्र और वातवाहिनियां भी उत्तेजित होती हैं, जिससे रोगीकी गिरती हुई हालत सुधरने लग जाती है । किन्तु पित्तकी प्रधानता होनेसे थूकके साथ रक्त गिरता हो और उदरमें आग, वमन आदि लक्षण हो, तो मल्लसिंदूर नहीं देना चाहिये ।

ज्वर-वेग अधिक होनेपर इस रसायनका प्रयोग नहीं करना चाहिये अन्यथा रक्ताभिसरण क्रिया बढ़कर मस्तिष्कमें रक्तका दबाव अधिक हो जाता है ।

यदि आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा) में न्यूमोनिया या कफ-प्रकोप होकर प्रलाप, भ्रम, तन्द्रा आदि लक्षण हो, तो १-२ मात्रा मल्लसिंदूरकी देनी चाहिये ।

मल्लसिंदूर उत्तम कफसंशोषक है । इस हेतुसे फुफ्फुसोंमें कफ संचय, श्वासोच्छ्वासमें घर-घर आवाज, श्वास ग्रहण या त्यागमें कष्ट, नाडी मन्द, कपालपर प्रस्वेद, हाथ-पैर शीतल, तन्द्रा, बेसुधि, नेत्रकी पुतली ऊपर चढी हुई तथा जिह्वाके जड होनेसे उच्चारण स्पष्ट न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हो, तो रोगीका जीवन अनिश्चित हो जाता है । ऐसी अवस्थामें यदि उरस्थ कफमें न्यूनता हुई, तो रोगीके बच जानेकी आशा है । यह कार्य मल्लसिंदूरसे होता है ।

परिवर्तित ज्वरमें यदि समवायी कारण कफदोष हो, तो मल्लसिंदूरका सेवन करानेसे उसके कीटाणुओं (Spirochaeta Obermeieri) का नाश होकर रोग शमन हो जाता है । (औ० गु० ध० शा०)

उपदंश और सुजाक रोगका शमन होनेपर भी उनके विषका असर रह जाता है, जिससे रक्तविकार, सन्धिवात, पक्षाघात, गुदशूक, नेत्रदाह, कुष्ठ, व्रण आदि अनेक उपद्रव बार-बार होते रहते हैं । इन उपद्रवोंके मूल कारण रूप विषको यह रसायन शमन कर देता है, जिससे शरीर नीरोग बन जाता है ।

सूचना—जब जीर्ण उपदंश आदि रोगोंमें इस रसायनको १५ दिनसे अधिक दिनतक सेवन करना हो, तब १५ दिनके बाद ५-७ रोज इस औषधिको बन्द कर प्रवाल आदि शीतल और विषनाशक औषधि सेवन करनी चाहिये । पश्चात् पुन १५ दिन तक इस रसायनको लेवें । इस रीतिसे बीच बीचमें छोडकर सम्हालपूर्वक लेवें । किसीको नेत्र पर सूजन, नेत्र लाली या दाह बढ जाय, तो इसे तुरन्त बन्द करे ।

उपदंश और सुजाक रोगीको मल्लसिंदूरके साथ शिलाजीतभी दिया जाय, तो विशेष हितकर है ।

(५) तालसिंदूर ।

विधि—शुद्ध हरताल ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले

मिलाकर कज्जली करें । फिर घीकुंवारके रसमें खरलकर सुखा, आतशी शीशीमें भर, वालुकायंत्रमें रखकर ४८ घण्टेकी अग्नि देनेसे तालसिन्दूर तैयार होता है । तालसिन्दूरमें मल्लसिंदूरके समान १२ से १५ घण्टे बाद सफेद बत्ती दीखने पर डाट लगाया जाता है । डाट लगानेके बाद ३६ घण्टे तक तीव्र अग्नि देनी पड़ती है । क्योंकि हरताल जल्दी नही उड़ती । तालसिदूरमे यदि पहिले पारेके साथ सुवर्णका वर्क मिलावें, तो वह तालचन्द्रोदय कहलाता है । (रसा० सा० संग्रह)

सूचना--घीकुंवारके रसकी भावना मूलग्रंथमें नहीं है; परन्तु हितकर होनेसे हमने बढ़ाई है । गन्धक जल जानेपर डाट तुरन्त लगा देना चाहिये । अन्यथा हरताल उड़ने लगती है ।

मात्रा--१ से २ रत्ती अदरखका रस और शहद या घीके साथ लेवें । अथवा खरलीय रसायन प्रकरणमें लिखे अनुसार लवंगादि तालसिन्दूर या मंजिष्ठादि ताल-सिन्दूर बनाकर उपयोगमें लेवें ।

उपयोग--यह रसायन कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश, रक्तविकार, त्वचादोष, शोथ, श्वास, क्षय, कास, उरःक्षत, कफप्रधान जलोदर, विषमज्वर, परिवर्तित ज्वर आदि रोगोको दूर करता है। इस रसायनमे मुख्य द्रव्य हरताल है । हरताल रस और विपाकमे कटु (चरपरी), स्निग्ध, कषाय रसवाली, कफघ्न, कण्डुघ्न और कुष्ठघ्न है । हरतालके ये सब गुण इस रसायनमें आते है ।यह तालसिदूर, तालभस्म और तालपुष्पकी अपेक्षा कम उग्र होनेसे तालभस्म या तालपुष्पका उपयोग जहां न हो सके, वहां पर इसका उपयोग निर्भयतापूर्वक हो सकता है । इस रसायनमे कुष्ठघ्न, कफघ्न और कण्डुघ्न गुण होनेसे कफप्रधान और कफवातप्रधान कुष्ठरोग, उपदशज कुष्ठरोग और उपदंशज अन्य उप-द्रव--रक्तविकार, सन्धिवात, वातरक्त, त्वचादोष--आदिमे अच्छा काम देता है । एवं कफघ्न गुणके कारण, फुफ्फुस कोषोंके स्रोतोंमे कफ भर जानेसे जब हृदयकी मन्दगति, सारे शरीरमें शूल, अरुचि, व्याकुलता और निर्बलता आ जाती है; तब यह रसायन अति लाभदायक है ।

कफघ्न और जन्तुघ्न गुण होनेसे यह रसायन श्वास, कास और क्षयकी प्रथम या द्वितीयावस्थामें फुफ्फुस और स्रोतको शोधन, तापका शमन और कीटाणुओंको नष्ट करना, इन सब कार्योमे सहायता पहुंचाता है । जबतक क्षयके प्रारंभमें शुष्क कास हो; तब तक इसे उपयोगमें नही लेना चाहिये । कदाच उपयोगमें लेना हो, तो प्रवालपिष्टी मिलाले तथा कफस्राव होनेपर तालसिदूरका उपयोग करना हो, तब श्रृंगभस्म और मिश्रीके साथ देनेसे कफ और कीटाणुओंका नाश सत्वर होता है ।

यह रसायन ज्वरघ्न, जन्तुघ्न, कफघ्न और उष्ण होनेसे शीतांग सन्निपात, बार-बार उलटकर आनेवाले परिवर्तित ज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक आदि विषमज्वर और शीत सहित आनेवाले जीर्णज्वरमें कीटाणुओंको नष्ट करता है;

आम और दूषित कफको जला देता है, तथा रक्तको निर्विष बनाकर ज्वरको दूर करता है। इस विष-निवृत्ति हो जानेपर जीर्ण ज्वरमें उत्पन्न वातप्रकोप, अनुताप, आक्षेप, शूल आदि लक्षण भी निवृत्त हो जाते हैं।

इस रसायनमें उष्ण, यकृत् और हृदयोत्तेजक गुण होनेसे यकृत् या हृदय-विकृतिसे उत्पन्न शोथ और जलोदर रोगमें इसे देने पर हृदय और यकृत् क्रिया बढ जाती है, जिससे रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है, और दुष्ट रसका शोषण हो जाता है।

उरस्थानमें कफ संगृहीत होनेसे श्वासोंका अवरोध हुआ हो, फिर उस हेतुसे हृदयकी क्रियामें मन्दता, सारे शरीरमें शूल चलना, अरुचि, जिह्वापर श्वेत मलका आवरण, उन्माद, हाथ-पैर शून्य हो जाना, जडता, पसीनेमें आलस्य, हाथ-पैरोंके तलोंकी शक्तिका ह्रास होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो ताल्सिंदूरका उपयोग किया जाता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

अनेक वातप्रकोप और कफप्रकोपके रोगियोंको जब बृहाविकार होनेसे मल्लसिंदूर या मल्लमिश्रित अन्य औषधि सहन नहीं होती, तब इस तालसिंदूरका सेवन कराया जाता है।

इस रसायनके सेवनकालमें भोजनमें घी अधिक लें। मिर्च, तैल, नमक, गुड, और खटाईका त्याग करें। कुष्ठरोगमें नमक और दूधका भी निषेध है। शोथरोगमें नमक नहीं देना चाहिये।

(६) शिलासिन्दूर

विधि—शुद्ध मैनसिल ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुवारके रसकी भावना दे सुखा, आतशी शीशीमें भर वालुकायन्त्रमें रख २॥ दिन अग्नि देकर मल्लसिंदूरमें लिखी विधिसे शिला-सिंदूर बना लेवें। गलाबासे सफेद बत्ती दीखने पर डाट लगावें। फिर ३६ घण्टे तक अग्नि तेज देवें। स्मरण रखें कि, मैनसिल अत्यन्त कठोर पदार्थ होनेसे मन्दाग्नि देनेसे नहीं उडता। इस औषधिमें सुवर्ण वर्क मिलाकर बनानेपर शिलाचन्द्रोदय कहलाता है। शिला-सिंदूरका रंग लालमयुक्त चमकदार होता है। (आ० नि० मा०)

मात्रा—एकसे दो रत्ती शहदके साथ देवें, या शिलासिंदूर वटी बनाकर उपयोगमें लेवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे श्वास, कास, मेद, कुष्ठ, विसर्प, कंठमाल, रक्तविकार आदि दोष दूर होते हैं।

इस रसायनमें मुख्य औषधि मैनसिल है। मैनसिल गुरु, वर्ण्य, सारक, उष्ण, लेखन, कटु (चरपरे) विपाकवाला, तिक्त (कडुवा) और स्निग्ध है, तथा विष, श्वास, कास, भूतबाधा और रक्तविकार नाशक है। इसके ये सब गुण इस रसायनमें प्रतीत होते हैं

इसमें कटु, लेखन, कफघ्न गुण होनेसे मेदका शमन होता है; तथा नाड़ियोंमे रहे हुए कफको जलाकर श्वास और कासको दूर करता है।

मेदोवृद्धि होनेपर उदर्य्याकलापर मेदका अत्यधिक संग्रह होजाता है। थोड़ा-सा चलनेपर श्वास भर जाता है; प्रस्वेदमे दुर्गन्ध आती है; क्षुधा और तृषाके वेगको सहन करनेकी शक्तिका ह्रास होजाता है; तथा आलस्य और निद्रा बढ़ जाते हैं। उसपर इस रसायनके सेवनसे पचनक्रिया सबल बनती है; शनैः शनैः मेद पचन होता है और रोगनिवारणमे सहायता मिल जाती है। रोगीको चाहिये कि भोजनमें घी, शक्कर और चावल यथा संभव परिमाणमें कम करें, बार-बार भोजन न करे; तथा शक्ति अनुसार शारीरिक श्रम (घूमना फिरना या और कुछ कार्य करना) लेते रहें।

इस रसायनमे कीटाणुनाशक और विषघ्न गुण होनेसे यह कण्ठमाल, अपची, रसौली, विसर्प, कफप्रधान कुष्ठ, व्युची, रक्तवाहिनियोंमें स्थान-स्थानपर रक्त जम जाना, रक्तविकृति और त्वचाविकृति आदि व्याधियोमें लाभदायक है। इसके सेवनसे कण्ठ-माल, कुष्ठ आदिके कीटाणु नष्ट होते है; विषकी निवृत्ति होती है; दुष्टकफ और दुष्ट आमका शोषण होता है; तथा रक्तका प्रसादन होकर उक्त रोगोंका शनैः शनैः निवा-रण होता है। कण्ठमाला, अपची और गलगण्डरोग बहुत पुराने न हुए हो; जब तक रक्तमे विषप्रकोप अत्यन्त न होगया हो; तबतक औषधियोंसे लाभ होता है। रोग अति बढ़ जानेपर बहुधा औषधि सेवन करनेपर भी उसकी निवृत्ति नही हो सकती।

यह रसायन उत्तेजक, जन्तुघ्न, सारक और स्निग्ध होनेसे आमाशय और अन्त्रमें संगृहीत आम, जन्तु और विषको नष्ट करता है; एवं अन्त्रशक्तिको सबल बनाकर कोष्ठ बद्धताको दूर करता है। इसमें भूतबाधाशामक गुण होनेसे वातवाहिनियोंके क्षोभमे होनेवाले उन्माद रोगमें रोगशामक अन्य औषधियोंके साथ शिलासिंदूरको मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है। (औ० गु० ध० शा०)

(७) माणिक्य रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल और शुद्ध शीशा ८-८ तोले लें। शीशेको कड़ाहीमे रखकर पारा मिलावे। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् मैनसिल मिला ६ घण्टे खरलकर घीकुंवारके रसकी भावना देवे। सूखनेपर आतशी शीशीमे भर, वालुकायन्त्रमे रखकर २॥ दिन अग्नि देवे। स्वांग शीतल होनेपर शीशी के गलेमे लगे हुए माणिक्यके समान लाल रंगके सिंदूरको निकाल लेवे। (र० चं०)

सूचना—कितनेही ग्रंथकारोने इस रसायनमे हरताल भी मिलायी है। हम बिना हरताल मिलाये तैयार करते है। नीचे जो शीशा भस्म बच जाती है, उसे अधिक पुट देकर उत्तम नाग भस्म बना लेते हैं।

मात्रा—आधसे एक रत्ती मक्खन और मिश्री; शहद या नागरवेलके पान

अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन क्षयरोगमें ज्वर और कास दूर करके शरीरका वजन और बल बढ़ाता है। एवं कास, श्वास, धातुक्षीणता आदि रोगोंको भी दूर करता है। इसके सेवनसे शुक्रस्तम्भन होता है, विविध रोग दूर होते हैं, राजयक्ष्मा समूल नष्ट होता है और वृद्ध भी तरुण बनते हैं।

शुष्क कास जो बार-बार आव-आव घटेतक आती रहती है, जिसमें कफ सरलतासे नहीं निकलता और रात्रिको सोनेके समय रोगीको त्रास पहुंचता है, उसपर यह रसायन अच्छा लाभ पहुंचाता है। इस रसायनके योगसे कफ सत्वर छूट जाता है। उरस्तोय-म फुफ्फुस आवरणके भीतर जल भरना, शुष्क कास होना और ज्वर बढ़ना आदि लक्षणों-को शमन करता है। क्षयरोगमें कफको पतलाकर सत्वर बाहर निकालता है, और बढ़े हुए ज्वरको कम करता है।

यकृत्के पित्तका अम्लत्व गुण बढ़ने पर यकृत्में पीड़ा, पित्तका स्राव, पतले दस्त, मूत्रका कम होना, मुंहमें छाले, ज्वर आना इत्यादि लक्षण होते हैं। ये सब इस रसायनके सेवनसे दूर होते हैं।

वृद्धावस्थामें बहुमूत्र बहुधा वातवाहिनियोंकी विकृतिके कारण होता है। मूत्रका विशिष्ट गुरुत्व (Specific Gravity) कम होनेसे बार-बार थोडा-थोडा पीले रंगका पेशाब होता रहता है, विष या क्षार रक्तमें शेष रहता है, जिससे शरीर निर्बल बनता जाता है। यह विकार इस रसायनके सेवनसे शांत होजाता है। कारण,इस ओषधिके योगसे मूत्रपिंड, मूत्रवहनलिका और मूत्रवहस्रोतोंको उत्तेजना मिलती है, वातवाहिनियां सबल बनती हैं, और योग्य परिमाणमें क्षारका निःसरण होता है।

इस रसायनका कार्य उत्तेजक और शक्तिवर्द्धक होनेसे वृद्ध और निर्बलोंके लिये यह अमृतरूप है। यह रसायन कफ और वात दोष, रस, रक्त और मांस, ये दूष्य, तथा यकृत्, फुफ्फुस, आमाशय, वातवाहिनियां और मूत्रस्थान, इन सबपर विशेष असर पहुंचाता है।

(८) सुवर्णवंग

विधि—शुद्ध कलई ५ तोले, शुद्ध पारद ५ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले, नौसादर ८ तोले और कलमीशोरा १ तोला लेवें। पहिले कड़ाहीमें कलईको रस करके पारद मिलावें। फिर सैंधानमकका जल मिलाकर दो दिन खरल करनेके बाद ५-७ बार जलसे धो क्षारका अंश निकालकर सुखादें। पश्चात् गन्धक मिलाकर कज्जली करें। तत्पश्चात् नौसादर और शोरा मिला खरल कर आतशी शीशीमें भरें। फिर वालुकायन्त्रमें रख २४ घण्टे अग्नि देकर ओषधि तैयार करें। रोगीके गलेमें पहिलेसे क्षार लगता है, इसलिये सावधानतापूर्वक बार-बार तप्त शलाकासे गला साफ करते रहे। ८-१० घण्टेमें गन्धक जारण होजाने पर डाट लगाकर १६ घण्टे अग्नि देनेसे तैयार होजाती है। इस

सुवर्णवंगको मस्क मृगांक भी कहते हैं । शीशीके तोड़नेसे पैदेमें से वर्णके समान तेजस्वी, हलके वजनवाला सुवर्ण वंग और गलेमेंसे क्षार और वंगसिंदूर मिलेंगे । ये तीनों ओषधि उपयोगमें आती हैं । (रसा० सा० सं०)

सूचना—सुवर्णवंगको अग्नि अधिक तेज नहीं देनी चाहिये, अन्यथा शोरेमें अग्नि लग जाती है; जिससे वंग जलकर काली होजाती है । कदाच प्रमादवश अग्नि लग जाय तो तुरन्त शीशीके मुंहपर दो-चार मिनटके लिये डाट लगा देना चाहिये, जिससे अग्नि बुझ जाय ।

यदि गन्धक जीर्ण होनेपर शोरा डालें, तो बोतलमें अग्नि लगनेका भय नहीं रहता । इस रसायनका रंग गिन्नीगोल्ड जैसा कुछ लाल प्रभायुक्त पीला होता है । यदि रंग शुद्ध सुवर्ण जैसा पीला बनाना हो, तो सुवर्ण वंगको कपडेमें रख गरम जलमें डुबो तुरन्त निकाल फिर सुखा देवें । इस प्रकार धोनेपर रंगमें कुछ न्यूनता आती है; किन्तु क्षार निकल जानेसे गुणवृद्धि होती है ।

सुवर्णवंग काली हो जाय, तो उसे २-४ वार जलसे धो, सुखा पुनः कज्जली नौसादर मिला विधि अनुसार बना लेवें ।

मात्रा—२ से ३ रत्ती शहद, मलाई या मक्खन-मिश्रीके साथ ।

उपयोग—यह ओषधि बल्य, प्रमेहघ्न, कान्ति, मेधा तथा अग्नि बलको बढानेवाली है । मधुमेह, प्रमेह, स्वप्नदोष, खांसी, धातुक्षीणता आदि दोष दूरकर शरीरको बलवान बनाती है । क्षार, शहदमें देनेसे सूखी खांसी गीली होजातीहै; तथा मन्दाग्नि, यकृत्दोष और मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं । वंगसिंदूर मलाई या मक्खनके साथ देनेसे कास और श्वासको दूरकर शरीरको पुष्ट बनाता है ।

वंगभस्मकी अपेक्षा सुवर्णवंगका रंग तो सुन्दर है; और संसारमें महिमा भी बहुत गाईहै; परन्तु हमें सुवर्ण वंगके गुणमे वंग भस्मकी अपेक्षा विशेषताका अनुभव नही हुआ; ऐसा रसायोगसागरकार का कथन है । हमें भी वैसाही अनुभव मिला है । इसके विरुद्ध ओषधिगुणधर्मशास्त्रकारका लेखहै । सत्य क्या है, इस बातका निर्णय चिकित्सक वर्ग ही करेंगे ।

इस सुवर्ण वंगका उपयोग जीर्ण पूयमेहमे अच्छा होता है । पूयमेहके लीन विषको यह दूर करता है; और अपने रसायन गुणके हेतुसे शरीरको सबल बनाता है । एवं पूयमेहयुक्त उपदंश, नपुंसकता, चर्मविकार आदिको भी दूर करता है ।

यह भस्म रक्तमे संचित विषको मूत्रद्वारा बाहर निकाल देती है । मूत्रेन्द्रिय और मूत्रयन्त्रको बलवान् बनाती है, तथा मूत्राशय विकृतिको शनैः शनैः दूर करती है । पचनेन्द्रियमे विकार होनेपर सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है; एव वृक्क-यन्त्र निर्बल हो जानेपर विष बाहर नही निकल सकता । परिणाममे बहुमूत्र या प्रमेह (मधु-

मेहके अनियमित प्रमेह) होजाते हैं । फिर शनैः शनैः गलता जाता है । इनपर विषकी उत्पत्ति रोकने और सचित विषको बाहर निकालनेवाली ओषधि देनी चाहिये । ये दोनों कार्य इस रसायनसे होते हैं । इनपर भूलसे स्तम्भक ओषधि दीजाय, तो लाभके स्थान पर हानि पहुंचती है ।

प्रमेह और पूयमेह, दोनों रोगोंकी प्रतीति मूत्रस्थानमें होती है । परन्तु दोनोंमें अति भिन्नता है । मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग करानेवाले अवयवोंमें निज दोष-विकृति होनेपर प्रमेह रोगकी उत्पत्ति होती है, और पूयमेहकी प्राप्ति-अण्डाकृति कीटाणु गोनोकोकस (Gonococcus) द्वारा होती है । यह पूयमेह किसी स्त्री या पुरुषको होनेपर उससे समागम करनेवाले अन्य स्त्री-पुरुषोंको होजाता है । इस व्याधिमें मूत्रनलिकाके भीतर प्रदाह, शोथ, व्रण और पूयोत्पत्ति होजाती है । इसकी तीव्रावस्थामें तो इस ओषधिका उपयोग नहीं होता, परन्तु पूयकी कमी होनेपर इसके सेवनसे अच्छा लाभ होता है, आन्तरिक क्षतिकी पूर्ति होती है, तथा दाह, हाथ पैर टूटना, मूत्रावयवमें जलन और व्याकुलता आदिकी निवृत्ति होती है ।

जीर्णावस्थामें सुवर्णवंग, प्रवालपिष्टी, शिलाजीत, गंधाबिरोजा और अमृतासत्व मिलाकर दिनमें दो बार देते रहनेसे विष शमन होकर स्वास्थ्यकी प्राप्ति होजाती है । यदि पूय बिल्कुल न आता हो, तो सुवर्णवंग, रौप्यभस्म, वंशलोचन और अमृतासत्व मिलाकर मलाई मिश्रीके साथ दिया जाता है ।

यह रसायन पूयमेहयुक्त उपदंशकी द्वितीयावस्था और तृतीयावस्थामें अच्छा उपयोगी होता है । इसके साथ अष्टमूर्ति रसायन या मल्लसिंदूर द्वितीय प्रकारकी योजना करनी चाहिये । इसके सेवनसे शरीरपर उत्पन्न पिटिकाएं और चकत्ते जल्दी अच्छे होजाते हैं । प्रथमावस्थामें तो पारद भस्म, समीर रस और व्याधिहरण रस विशेष हितकारक है, तथा द्वितीय और तृतीयावस्थामें जब विकार अस्थितक पहुंच जाता है, तब अष्टमूर्ति रसायन और उपदंशसूय विशेष हितकर माने जाते हैं । उस समय सुवर्ण वंगसे लाभ नहीं होता । परन्तु जीर्ण लीन उपदंश विकारमें सुवर्णवंगको सारिवा और मंजिष्ठादि क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे अच्छा लाभ होता है ।

अन्य प्रकारके विषसे उत्पन्न चर्मरोगोंमें सुवर्णवंगका अच्छा उपयोग होता है । इस हेतुसे पुराना पामा रोग, बार-बार होनेवाले व्रण, प्रस्वेद स्रावयुक्त व्युची, अरुंषिका आदि त्रासदायक और अड्डा जमाकर बैठे हुए त्वचा रोगोंमें इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है । इस प्रकारके रोगोंमें ७ दिनतक देवें । फिर ७ दिन छोड़ दें । पुनः ७ दिन दें । और ७ दिन बन्द करें । इस तरह ओषध देते रहना चाहिये । एवं कोष्ठशुद्धिके लिये एरंड तैल या अन्य सौम्य विरेचन देना चाहिये । कितनेही पूयमेहके रोगियोंको नपुंसकताकी प्राप्ति होती है । यह नपुंसकता इस सुवर्ण-वंगके सेवनसे दूर होती है ।

सुवर्णवंग सन्धिवातपर उत्तम औषध है । संधिवात और आमवातमें महदन्तर

है। पूयमेह, उपदंश, दंतवेष्ट (Pyorrhoea) आदि विकारोंसे उत्पन्न संधिवातमें पूय हेतु है; तथा आमवातमें आम हेतु है। आमवातमें महायोगराज गूगल, रास्नादिकषाय श्योनाक छाल आदि आमनाशक ओषधियां लाभदायक है। संधिवातमें पूयनाशक गुण-प्रद सुवर्णवंग उपयोगी है। यदि पूयमेहका रोग जीर्ण होनेपर शोथ उत्पन्न हुआ हो, तो वह भी इस औषधके सेवनसे निवृत्त होता है। इस तरह पूयमेहसे उत्पन्न नेत्रके पूयाभिष्यन्द रोगमें भी इसका उत्तम उपयोग होता है।

सुवर्णवंगका उपयोग पित्तप्रधान कासमें उत्तम होता है; । सूखी खांसी, कण्ठमें दाह, खांस-खांसकर वमन होजाना, नेत्र, कण्ठ और नाकमें स्राव होना, दाह, चक्कर; स्वरयन्त्र, ग्रसनिका, उपजिहवा, मुखके आगेका हिस्सा, ये सब लाल होजाना इत्यादि लक्षण होनेपर सुवर्णवंग आमके मुरब्बेके साथ देनेसे सत्वर लाभ होता है।

किसी भी स्थानमें वात या पित्तकी दोषज वृद्धि, विशेषतः पित्तज वृद्धि होने पर वंगेश्वर बहुत अच्छा काम करता है। इसी प्रकार किसी ग्रथिकी वृद्धि होनेपर भी वंगेश्वर दिया जाता है।

धातु-परिपोषण-क्रममें शरीरकी क्षतिकी पूर्ति करना यह मुख्य कार्य है। नित्य होने-वाले शारीरिक व्यापारसे जो क्षति होती है, वह धातुके उत्पादन द्वारा पूर्ण होती है। इस तरह धातु-साम्य बना रहता है। इसी साम्यपर आरोग्यका आधार है। परन्तु कभी-कभी अनेक भिन्न-भिन्न कारणोंसे इस न्यूनताकी पूर्ति नही होती; बल्कि अधिकाधिक ह्रास होता जाता है। इस तरह शरीरस्थ रक्त आदि धातुओंका परिमाण भी न्यून होने लगता है। प्रतिदिन उत्पत्ति कम और नाश अधिक होते रहनेसे देह शुष्क हो जाती है इस स्थितिके अनेक कारण है। जो कारण हो, उसे निर्णीत कर दूर कर देना चाहिये। परन्तु जब कोई निश्चित कारण नही मिलता और शरीर कृश होता जाता है; तव सुवर्ण वंग देना, यह उत्तम मार्ग है। इससे शारिरिक व्यापार नियमित बनता है और शारी-रिक कृशता कम होने लगती है। इस दृष्टिसे यह रसायन जीवनीय औषध है।

इस रसायनके साथ शिलाजतु, लोह भस्म, प्रवालपिष्टी मिश्रित करनेका भी रिवाज है। इनके मिश्रणसे अच्छा लाभ होता है। तथापि इनकी अपेक्षा वंगेश्वर को स्वतंत्र देना विशेष हितकर है।

सुवर्णवंग शक्तिवर्द्धक, धातु-परिपोषण-क्रम नियमित करनेवाली और सुधारने-वाली, पूयनाशक, जीर्ण सुजाक और उपदंशमे लाभदायक है; एवं यह मूत्रेन्द्रियको निर्विष वनाती है।

यह रसायन पित्त, वात, ये दोष; रक्त-मांस, ये दूष्य; तथा मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, मूत्राशय और वृक्क स्थानपर लाभ पहुचाता है। (औ० गु० ध० शा०)

श्वेतप्रदर जनित निर्बलता आने तथा पाण्डुता और उष्णता रहनेपर सुवर्णवंग सुवर्णमाक्षिक भस्म और गोदन्ती भस्मके साथ मिलाकर मधुकाद्यवलेहके साथ देनेसे

प्रदर और उससे उत्पन्न सब उपद्रव दूर हो जाते हैं।

कासरोगमें कफको बाहर निकालनेके लिए सुवर्णवंग, वासाक्षार, मुलहठी और बहेडेके चूर्णके साथ दी जाती है। एवं बार-बार कास आती रहती हो, तो जहरमोहरा पिष्टी और लोहबान पुष्पके साथ देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है। अग्निमान्द्य, घबराहट, कफकी उत्पत्तिको रोकनेके लिए पीपलामूल और शहदके साथ देनेसे रात्रिको त्रास कम हो जाता और घबराहट दूर होती है।

त्वचागत वायु कुपित होनेपर चमकील रोग हो जाता है। इनके मस्से त्वचाके रंगके कठिन, छोटे-छोटे और कभी-कभी समीप-समीप अनेक हो जाते हैं। फिर रोगी दीर्घकाल तक उपचार नहीं करते। ऐसे जीर्ण रोगपर पीलूके पानोंकी पुल्टिस या लेप लगाते रहनेके साथ सुवर्णवंग $\frac{1}{2}$ रत्ती, यवक्षार और त्रिफला चूर्ण २-२ रत्ती मिला दिनमें दो बार भोजनके बाद देते रहनेसे सत्वर लाभ हो जाता है। यदि नये-नये उत्पन्न होते हैं, तो वे बन्द हो जाते हैं।

दूसरी विधि—नौसादर, सेंधानमक और पारद, तीनों ओषधियां ५-५ तोले मिला खरलकर डमरूयन्त्रमें बन्द करें। फिर ४ प्रहर तक अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर यन्त्रको खोलकर ऊपर लगे हुए पारदमिश्रित नौसादरके फूलको ले लेवें। इस फूलके बराबर शुद्ध कलईका रेतीसे किया हुआ चूर्ण (या भस्म) और दोनोंके बराबर शुद्ध गंधक मिलाकर कपड मिट्टीकी हुई आतशी शीशीमें भरें। पश्चात् वालुकायन्त्रमें रखकर १॥ से २ दिन तक अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर सुवर्णके सदृश सुवर्णवंग (मृगांक) को निकाल लेवें। कितनेही ग्रंथकारोंने इसे मस्क मृगांक और सुवर्णराज वंगेश्वर नाम भी दिया है। (र० यो० सा०)

मात्रा—२-२ रत्ती इलायचीके चूर्ण और शहदके साथ।

उपयोग—किसी ग्रंथकारने लिखा है कि यह भस्म सुवर्णभस्मसे सौगुना लाभ पहुंचाती है। यह वृष्य, आयुवर्द्धक और कामोत्तेजक है। सब प्रकारके प्रमेह और मधुमेहका नाश करती है।

(९) समीर पन्नग रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्धसोमल, शुद्धमैनसिल और शुद्धहरताल प्रत्येक १०-१० तोले लेकर कज्जली करें। फिर तुलसीके रस या घीकुवारके रस की ३ दिन तक भावना देकर सुपारी आतशी शीशीमें भरकर ५० से ६० घण्टेतक अग्नि देनेसे काला, तेजस्वी और कठोर समीरपन्नग रस शीशीके गलेमें तैयार होता है। लगभग १६ घण्टेतक मन्दाग्नि देनेसे गन्धक जारण होता है। फिर डाट लगाकर ३६ घण्टे तेज अग्नि देनी पड़ती है। मूल ग्रंथकारने ८ प्रहर तक क्रमाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनानेको लिखा है। (औ० गु० ध० शा०)

वक्तव्य–कितनेही चिकित्सक २॥ तोले स्वर्ण वर्क मिला ४८ घण्टेकी मन्दाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनाते हैं। उसे 'सुवर्ण समीर पन्नग' कहते हैं। उसमें सुवर्ण मिलजाने और मन्दाग्निपर पाक होनेसे रसायनकी उग्रता विशेष नहीं होती। उपयोग करनेपर वह विशेष गुणदायक विदित हुआ है।

मात्रा–$\frac{1}{2}$ से २ रत्ती तक दिनमे २ से ३ समय, नागरवेलके पानमें या अदरखके रसमे और शहदके साथ। श्वासावरोध या श्वासमें कफस्राव करानेके लिये वासाके पत्ते, मुलहठी, बहेड़ा, भारंगी और मिश्रीके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग–यह रसायन त्रिदोष और निमोनियामें घबराहट, संधिवात, उन्माद, कास, श्वास, ज्वर, जुखाम आदि रोगोंको शांत करता है। इसमें सोमल, हरताल और मैनसिल मिलाया है। ये तीनों अत्यन्त उग्र और उष्णवीर्य है। तीनोंमें भी सोमलकी ही प्रधानता है; फिर भी मल्लभस्म, मल्लपुष्प और मल्लसिंदूरकी अपेक्षा यह रसायन कम तीव्र है। जहा मल्लभस्म देनेमे हानि होनेका भय रहता है, वहांपर समीरपन्नग देनेमे अधिक भय नही है।

इस रसायनमे सोमल मिला हुआ है, तथापि इस रसायनकी बड़ी मात्रा देनेपर (सोमलका परिमाण अधिक होजाने पर भी) विषविकारके लक्षण प्रतीत नही होते। उग्रताकी यह न्यूनता रसायनिक सम्मिश्रणसे होती है। समीरपन्नग, मल्लसिंदूर और पंचसूत, तीनोंमें सोमल मिलाया है। अतः तीनो वीर्यवान औषध है; तीनोके गुण धर्ममे साधर्म्य है; और वैशिष्टच भी। मल्लसिंदूर अत्यन्त तीक्ष्ण, विस्फोटकारी और श्लैष्मिक कलापर उग्रता उत्पादक है। पंचसूतमें मल्लसिंदूरकी अपेक्षा तीक्ष्णता न्यून है; और श्लैष्मिक कलाको कम हानि पहुंचाता है; तथा संचित कफका शोषण करके रूपान्तर कराता है। समीरपन्नग मल्लकल्प होनेपर भी दोनोंकी अपेक्षा कम तीव्र गुणयुक्त, कम स्फोटोत्पादक और कम दाहक है।

समीरपन्नग श्वासवाहिनियो और फुफ्फुस कोषोंके भीतर श्लैष्मिक कलापर शोथ न लाकर कफका स्राव कराता है; और दोष निकल जानेपर उस स्थानके घटकोंको सशक्त बनानेमे सहायक होता है।

समीरपन्नगके प्रयोगसे श्वासनलिकाके अन्तरमे उत्पन्न दुष्ट व्रण कफात्मक या वातात्मक होनेपर कफस्राव कराकर उसे नष्ट कर देता है। इस हेतुसे जीर्णकास या कफाधिक्य विकारमे वात और कफकी प्रधानता होनेपर समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है।

मल्लसिंदूरसे कफका शोषण होता है; कण्ठ और श्वासवाहिनियां शुष्क हो जाते हैं। पंचसूतसे संचित कफमेसे दुर्गन्ध कम होती है। जल द्रव्यका रूपान्तर होकर कफ कम हो जाता है। समीरपन्नगसे श्वासवाहिनियां और फुफ्फुस कोष उत्तेजित होते हैं; कफ छूटकर कफस्थानकी शुद्धि होती है। इस हेतुसे जिस स्थानपर कफस्राव कराना इष्ट हो; उस स्थानपर कफवातज कास-श्वासमे समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है।

यदि उरस्तोय और कुक्षिशूल हो, तो वहां पर समीरपन्नगकी अपेक्षा पंचसूत अधिक हितकारक है। कारण, उरस्तोयमें संचित द्रवका रूपान्तर और सशोषण करानेमें महत्त्वका गुण जैसा पंचसूतमें है, वैसा समीरपन्नगमें नहीं है।

वातकफभूयिष्ठ श्वास रोगमें समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है। पंचसूतका अधिक उपयोग नहीं होता। ऐसे श्वासमें समीरपन्नग देनेपर तत्काल कफस्राव होने लगता है। इसके लिये समीरपन्नग ½ से १ रत्ती और सोहागेका फूला ३ रत्ती मिलाकर, शहदके साथ देवें। ऊपर मुलहठी, बहेडा, मिश्री और अडूसेके पत्तेका क्वाथ पिलावें। आवश्यकता पर क्वाथ आध-आध घन्टेपर २-३ बार देवें। यह क्वाथ वेगशामक और कफस्राव करानेवाला है। इस क्वाथका रसायनके साथ सम्मिलित होनेसे कफ जल्दी जल्दी निकलने लगता है, और श्वास वेगशमन होजाता है। तीक्ष्ण वेगशमन होनेपर फिर इसे नागरबेलके पानमें देनेसे आंतरिक शक्ति सबल बनती है।

समीरपन्नग उत्तेजक और बलवर्द्धक होनेसे पाण्डु और विषमज्वरके पश्चात् आयी हुई, निर्बलतामें अति कम मात्रा (⅛ रत्ती) में दिनमें दो बार लोहभस्मके साथ मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ पहुंचता है।

जीर्णकासमें, अनेक प्रकार हैं। कितने ही व्यक्तियोंको यह विकार वर्षाऋतुमें उत्पन्न होता है। कितनोंही को शीतकालमें और किसी-किसीको उष्ण ऋतुमें होजाता है। कारण हो, उनके अनुरूप दोष प्रकुपित होते हैं। कभी व्याधि कुछ कालतक शमनहो जाने का भास होता है। दोष धातुओंमें लीन होजाता है, जिससे पुन पुन विवक्षित दोष-प्रकोप कालमें उनके लक्षणोंसे युक्त होकर आक्रमण करता है। उदाहरणार्थ—शीतलवायुमें रहना, लुणेवाले मकान अर्थात् जिनकी दीवारोंमेंसे लवण निकलता रहता है, ऐसे स्थान या सीलयुक्त मकानमें रहना आदि कारणोंसे कफभूयिष्ठ कास होजाती है। इस प्रकारकी कास तत्काल कम हुई, तो अच्छा, अन्यथा दोष लीन होजाता है। फिर सामान्य प्रतिकूलता होनेपर (रोगको अनुकूलता मिलने पर) रोग बार-बार,आक्रमण करता रहता है। इस हेतुसे मकान सदोष हो, तो मकानका त्याग कर देना चाहिये। अन्यथा वर्षाकी शीतल वायु लगनेपर एवं शीतकालमें वर्षा होनेपर बार-बार व्याधि त्रास देती रहती है, शनै शनै रोगजीर्ण होता जाता है, और जीवनीय शक्तिको निर्बल बनाताजाता है। फिर चाहे स्थान परिवर्तन करें चाहे उतना पथ्यपालनकरें, तो भी रोगसे मुक्ति नहीमिलती क्योंकि दोषका अत्यन्त सूक्ष्म अंश बीजरूपसे देहमें दृढ होजाता है। यथार्थमें जिस समय पहिली बार दोष दुष्ट होकर कासोत्पत्ति हुई है, उसी समय इन सबके विशिष्ट सम्मिलन हुआ है। फिर इस सम्मिलनके अनुरोधसे दोष-दूष्य संयोगका परिणाम शारीरिकघटन पर होता है, इसी हेतुसे बार-बार समान लक्षण उपस्थित होते रहते है।

विपरीत कारणोंसे उत्पन्न हुई शारीरिक परिस्थितिमें दोषदूष्य संयोग दबा आ रहता है। परन्तु उसके बीजोंको थोडीसी अनुकूलता मिलने पर अपना प्रभाव दर्शा देते है।

जिसतरह घासके बीज ग्रीष्मऋतुके तापसे या अग्निसे जल जानेपर भी वर्षाऋतुमें पुनः सजीव होजाते हैं; उसी तरह इस रोगके बीज भी पुनः रोगके स्वरूपको धारणकरते रहते हैं। इस दृष्टिसे यह रोग प्राकृतिक बन जाता हैं। प्राकृतिक रोग अनेक हैं; इनमें कास अति त्रासदायक है। कफस्थानका स्वभाव कफस्राव करानेका होजाने पर बार-बार श्लैष्मिक कलामेसे कफस्राव होता रहता है। जीर्ण कासविकारमे श्वासनलिका, श्वास प्रणालिका, श्वासवाहिनि जाल और फुफ्फुसकोषगत श्लैष्मिक त्वचा, ये सब दुष्ट हो जाते हैं। श्लैष्मिक कलामें कुछ उग्रता आती है; या सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रण होते हैं अतःकफसंचय होनेपर उपचार करनेसे कफस्राव होजाता है; और किंचित काल स्वस्थताका भ्रम होता हैं। किन्तु रोगबीज जैसाका-वैसा ही सुप्तावस्थामें रह जाता है। ऐसी स्थिति मे बीजको ही नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

प्राकृतिक रोगके अन्य भी अनेक प्रकार हैं। इनमेंसे एक चर्मरोग भी है। कितने ही कण्डू, पामा, व्युची, दाद, चर्मदल, विस्फोटक, पीटिका आदि पीड़ित रोगियोंको बाल्य-वस्थामे उत्पन्न चर्मरोग समग्र जीवनपर्यन्त त्रास देता रहता है। कभी किसी रूपमें एक स्थानमें होता है, तो दूसरी बार दूसरे रूपमें अन्य स्थान पर होजाता है। इनकी खुजानेकी रीति, चलनेकी शैली, मन्दता, अस्थिरता, मानसिक चंचलता और वर्तावमें कुछ उतावलापन भासता है। ऐसे जीर्ण रोगमें एक प्रकारकी विशिष्टता प्रतीत होती हैं। वह यह है कि कास और चर्मरोग क्रमशः आक्रमण करते रहते है। जब तक त्वचा रोग सबल है; तबतक कास कम रहती हैं; या बिलकुल नहीं रहती। फिर चर्मरोग दब जानेपर आंतरिक दोषसे कफभूयिष्ठविकार बलवान बन जाता है। त्वचापर स्फोट रूपसे उत्पन्न होनेवालेलक्षण और भावी कफके लक्षण, दोनों एकही प्रकारके दोष-दूष्य विकृतिसे उत्पादित होतेहैं इस तरह कफ और कफवात प्रकोपसे उत्पन्न इन विकारोमें समीरपन्नग अच्छाउपयोगी हैं। समीरपन्नग दिनमे एक बार देना चाहिए; और अन्य कोईभी औषध नहींदेनी चाहिए अन्य औषध मिला देनेसे समीरपन्नगके कार्यमें प्रतिबन्ध होता है।

यह रसायन उपदंश या पूयमहके उपद्रवरूप सन्धिवात, रक्तविकार, त्वचारोग, जीर्ण पक्षाघात और अन्य उपद्रवोंका नाश करता है। अर्दित, जिह्वास्तम्भ, धनुर्वात, या अन्य वातरोगोमें, जब कफ दोष सम्मिलित हुआ हो तब इस समीरपन्नगके सेवनसे अच्छा लाभ पहुंचता है। वात आक्षेपके लिये भी समीरपन्नग अति हितकर है। इस तरह स्तम्भसंकोच, शूल आदि विकारमे भी यह अच्छा उपयोगी है। बृंहण अनुपानके साथ देना चाहिये। कफप्रधान उन्मादमें भी वातकफ वृद्धिका शमन करके रोगको दबा देता हैं। रसाजीर्णमें प्रायः पित्तस्राव कम होता है; और कफस्राव अधिक होता है। इसपर समीरपन्नगका उपयोग अच्छा होता है। उदरमे जड़ता, अन्नविद्वेष; उबाक, मुंहमे मीठापन चिपचिपा थूक, उदरमे वातसंचय आदि लक्षण होने पर समीरपन्नग अति उपयुक्त है।

विसूचिकारोगमे वमन-विरेचन अधिक हो जानेपर शक्तिपात हो जाता है। हाथ

पैरमें शीतलता, नाडी अति मन्द होजाना, निश्चेष्टता और सर्वांग प्रस्वेद पूर्ण होजाता है। ऐसी स्थितिमें सोंठ और कायफलकी मालिश कराई जाती है, तथा समीर पन्नग रस, मण्डूरभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म और प्रवालपिष्टी मिला तुलसीका रस अदरखका रस और शहद मिलाकर १०-१० मिनटपर देते रहनेसे रोगी सचेत होजाता है और देह उष्ण हो जाती है। फिर सूतशेखर और सञ्जीवनी वटी देनेसे रोगी सुधर जाता है।

महाशयरोग दीर्घकालतक रहनेपर कीटाणुओंकी आबादी नष्ट होजाती है। फिर उस हेतुसे किसी-किसीमें आक्षेप आनेलगता है। तीव्रावस्थामें छातीकी धड़-धड़, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, शिरदर्द, और घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। अटकाकी इस तीव्रावस्थामेंसमीरपन्नग ½ रत्ती मात्रामें लहसुनके रसके साथ दिनमें ३ बार देने और गुनगुने चन्दन बला लाक्षादि तैलकी मालिश करनेपर रोग शमन होजाता है। किन्तु पहले एरंड तैलसे उदर शुद्धि कर लेवें।

मेदिय विष प्रकोप या बार-बार अत्यधिक भोजन करनेकी आदतवालेका आमाशय शिथिल होजाता है। फिर भोजन जब तक न किया जाय, तबतक एक पीछे एक डकार आती रहती हैं। अधिक डकार आनेसे छातीमें वेदना, अग्निमान्द्य, अरुचि, आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर समीरपन्नग, शंखभस्म और मुलहठीके चूर्णको आमके मुरब्बामें मिला लेवें। फिर भोजनके समय थोड़ा-थोड़ा ग्रासके साथ मिलाकर सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ होजाता है।

छातीमें कफ सूख जानेपर वात प्रकुपित होकर शूल चलने लगता है, यह शूल खाँसी आने पर चलता है। वातप्रकोप होनेसे भीतर कफ सूखकर सूखी खाँसीहो जाती है। इस रोगपर समीरपन्नग, मुलहठी सत्व, अदरखके रस और शहदके साथ मिला भोजनके साथ सुबह-शाम देते रहनेसे शूल निवृत्त हो जाता है और कफ छूटकर बाहर निकल जाता है।

समीरपन्नग कटु रसात्मक, कटुविपाकी, उष्ण, तीक्ष्णवीर्य, उत्तेजक, बल्य, कफघ्न, कफवातघ्न और त्वचाके रोगोंका नाशक है। इसका कार्य कफ और कफवात दोष, रस, रक्त, और मासये दूष्य, एवं उर, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, वातवाहिनिया, वातवाहिनियोंके केन्द्र स्थान, मस्तिष्क और त्वचा, इन स्थानों पर होता है।

वक्तव्य—इस रसायनको अनेक चिकित्सक २४ घण्टेकी अग्नि देकर तल भागमें ही सिद्ध करते हैं। उसमें कालापन अधिक रहता है, और कण्ठस्थ रसायनकी अपेक्षा उग्रता भी अधिक होती है।

दूसरी-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल और हरताल, चारोंको समभाग मिला तुलसीके रसकी भावना दे, वालुकायन्त्रमें रख २५ घण्टे मन्दाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनालें। (र० च०)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार ।

यह रसायन प्रथम विधिकी अपेक्षा वातवाहिनियोंके विकृतिजनित रोगोंपर सत्वर लाभ पहुंचाता है । इस द्वितीय विधिवाले उर्ध्वलग्न रसायनका उपयोग स्वामीश्रीहरिशरणानन्दजीने अर्धांगवात और गृध्रसीवातपर शहदके साथ अनेक बार किया है। अर्धांगवात पर इससे जितना लाभ होता है, उतना अन्य किसी भी औषधसे नहीं होता । इस तरह पुरानेसे पुराने गृध्रसी रोगी इससे अच्छे होगये हैं । अर्धांगवात और पक्षाघातमें रक्तका दबाव बढ़ जाता है । उसे कम करनेके साथ रोगको निवृत्त करता है।

पहिली विधिकी अपेक्षा यह रसायन उग्र और रंगमें अधिक श्याम होता है। इसको अनेक वैद्य हेमगर्भपोटली रसके समान वातकफप्रधान सन्निपातमें तुलसीके रसमें घिसकर पिलाते है ।

सूचना—इस समीरपन्नगको शीशीमें बन्दकर तैयार करना हो, तो डाट वन्द करें; किन्तु मुखमुद्रा लगाकर पक्का बन्द न करें । अग्नि बहुत मन्द दें या बीच-बीचमे बन्द करदें । आध-आध या १-१ घण्टे पर डाटको खोलकर फिर लगालें। जिससे कुछ धुंआँ उत्पन्न हुआ हो वह निकल जायगा । अन्यथा गन्धकका धुआं अत्यधिक परिमाणमें संचित होनेपर शीशी फूट जायगी । जव गंधकका जारण होजाय, तब रसायनका पाक हुआ मानना चाहिये । अग्नि पाक होनेमें कभी २-४ घण्टे अधिक और कभी २-४ घण्टे कम समय लगता है ।

यदि तलस्थ समीरपन्नगका रंग काला तेजस्वी न आया हो और अधिक सख्त न वना हो, तो कच्चा समझकर पुनः ४-६ घण्टे आवश्यकतानुसार मंदाग्नि देकर परिपक्व बना लेवें । इस रसायनमें कसर रह जायगी; तो थोड़े ही दिनोंमें काले नमकके समान दुर्गन्ध आने लगेगी; और रसायनके ऊपर सफेद क्षार लग जायगा । ऐसे दूषित रसायनमें पुनः गंधक मिला भावना दे, वालुकायंन्त्रमें रख, अग्नि देकर उडा लेना चाहिये ।

(१०) सुवर्णभूपति रस ।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १-१ भाग; ताम्र भस्म २ भाग, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, कान्तलोह भस्म (अभावमें लोह भस्म), सुवर्ण भस्म, रजत भस्म और शुद्ध वच्छनाग १-१ भाग लेकर सवको मिला लेवें । फिर हंसराजके रसमें १२ घण्टे मर्दन करके सुखा लेवें । पश्चात् आतशी शीशीमें भर, काच मिट्टीका डाट लगा, मजवूत बन्द-कर वालुकायन्त्रमें रख, दो प्रहर मन्दाग्नि देकर औषधि पाक करें । पैदेमें ही ओषधि मिलकर जम जाती है । रेता और शीशीके ऊपरका भाग अच्छी तरह गरम होजाय; तव अग्नि देना वन्द करें । स्वांग शीतल होनेपर पैदेमेसे सुवर्णभूपति रस निकाल लेवे ।

(यो० र०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती अदरखके रस और मिश्रीके साथ या पीपल और शहदके

साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके सन्निपात और क्षयकी दूसरी अवस्थामें अति लाभदायक है। आमवात, धनुर्वात, शृंखलावात (लगड़ापन), उरुस्तम्भ (आढ्यवात), पंगुवात, कम्पवात, कटिवात, मन्दाग्नि, सब प्रकारके शूल, गुल्म, उदावर्त, भयंकर संग्रहणी, प्रमेह, उदररोग, सब प्रकारकी अश्मरी, मलावरोध, मूत्रविबन्ध, भगन्दर, सब प्रकारके कुष्ठ, विषविकार, बढ़ा हुआ विषप्रकोप, विद्रधि, श्वास, कास, अजीर्ण, सब प्रकारके ज्वर, कामला, पाण्डु, शिरोरोग आदि सब कफ-वात-प्रधान रोग अनुकूल अनुपानके साथ सेवन करनेसे दूर होते हैं। महाराष्ट्रमें अनेक वैद्य इस औषधिका उपयोग अनेक रोगोंपर करते हैं। यह महाराष्ट्रकी अति प्रसिद्ध औषधि है।

सुवर्णभूपतिमें सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह और अभ्रक, इन भिन्न-भिन्न गुणवाली धातुओंका संयोग होनेसे यह वात, पित्त और कफ, तीनों दोषोंके विकारोंको शमन करनेमें प्रभावशाली है। सन्निपातमें कफसे श्वासनलिका अति आच्छादित न हुई हो, या पित्तप्रकोप अधिक हो, कफविकृति न्यूनांशमें हो, ऐसे सब सन्निपातमें यह लाभ पहुंचाता है। क्षयकी दूसरी अवस्था तक इसका उपयोग होता है। क्षयमें सूक्ष्म मात्रा देनेसे कीटाणुओंका नाश, वातप्रकोप, ज्वर और कासका शमन तथा बलकी वृद्धि होकर शांति प्राप्ति होती है।

इस रसायनमें ताम्रका परिमाण अधिक होनेसे यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानको शुद्ध करना, संचित सेन्द्रिय विषको बाहर फेंकना एवं कफ और आमपाचन करना, ये गुण विशेष रूपमें मिलते हैं। इसके सेवनसे अजीर्ण, उदरशूल, सारे शरीरमें चलनेवाले शूल और आमवातका शमन होता है।

इस तरह रौप्य के प्रभावसे वातवाहिनियां और वातप्रकोपपर लाभ पहुंचता है। विविध प्रकारके कम्प, कलायखञ्ज, आक्षेपकवात, चक्षुगत वातविकार, वातवृद्धि होकर चक्कर आना, मूर्च्छा, शुष्क कास और शूल आदि पर व्यवहृत होता है। कभी साथमें कुचिला मिला दिया जाता है और दशमूल क्वाथ या रास्नादिक्वाथ अनुपान रूपसे दिया जाता है।

आहार-विहारमें दीर्घकाल पर्यन्त अनियमितता होनेसे आमाशय, यकृत्, फुफ्फुस, हृदय या मूत्राशय आदि यन्त्र शिथिल हो जाते हैं, तब इनके व्यापारमें न्यूनता न होने के लिये वातवाहिनियोंके तन्तु लम्बे और पतले बनकर इन सब आशयोंका संरक्षण करते हैं। परन्तु जब इन वातवाहिनियोंकी शक्तिका क्षय होजाता है, तब पक्षाघात आदि विविध वातरोगोंका आक्रमण होता है। इन वातरोगोंमें तीव्रावस्था दूर होनेपर वात, पित्त, कफ तीनों धातु, सब आशय और वातवाहिनियोंको सबल बनाकर रोगको पूर्णांशमें दूर करनेके लिये यह रसायन अति उपयोगी है।

जब पचनक्रियामें विकृति होनेसे सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती ह; और फिर इसी हेतुसे धमनियोंमे फिरनेवाले रक्तमें मलिनता आजाती है; रक्त शैरिक भावको प्राप्त होता है, तब वाताक्षेप उपस्थित होता है। इस अवस्थामें पचन-क्रिया सुधारकर और सेन्द्रिय विपको नष्टकर आक्षेपको दूर करनेका कार्य इस सुवर्णभूपतिसे होता है।

इनके अतिरिक्त मानसिक आघात पहुंचनेपर वातप्रकोप होजाता है। उसे भी यह सुवर्णभूपति रस दूर करता है। इससे वातकफ-प्रधान उरुस्तम्भ और वातवाहिनीकी विकृतिसे होनेवाले वातरोग, यकृन् और अन्त्र दोषसे उत्पन्न वातरोग, उदावर्त्त, शिरोरोग, गुल्म, उदररोग, कास और श्वास भी दूर होते हैं।

इस ओषधिमें वात आदि तीनों दोषोंको नियमित करने और सेन्द्रिय विषको नष्ट करनेका गुण होनेसे यह मधुमेहको छोड़कर शेष सब प्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करती है कच्चे आमको प्रस्वेद और मूत्रद्वारा बाहर निकालती है; और जलाती भी है, जिससे दिनोंतक बने रहनेवाले नूतन ज्वर और जीर्ण ज्वरका शमन होता है, तथा मल-मूत्रावरोध और अजीर्ण नष्ट होता है।

संयोगजन्य ग्राही और दीपन-पाचन गुण होनेसे अतिसारका शमन करनेमें यह उप-योगीहै। इसके अतिरिक्त इस ओषधिका वियोजन पर्पटीके समान अन्त्रमें होता है। अतःअन्त्रशोथयुक्त ग्रहणी, वात, पित्त और कफोल्वण ग्रहणी, अन्त्र व्रणयुक्त रक्-तज ग्रहणी या पूयमय ग्रहणी, अन्त्रक्षय (संग्रहणी), इन सबको नष्ट करता है। एवं इस रसायनमें लोहका मिश्रण होनेसे यह रक्तमें रहे हुये रक्ताणुओंकी वृद्धि कर पाण्डु और कामलाको दूर करताहै।

सब रोगोंके मूल वात, पित्त, और कफ दोष, एव रस, रक्त आदि दूष्योंकी विकृति है, इन सबपर प्रत्यक्षऔर परोक्ष रूपसे इस रसायनका असर होता है। आमाशय, यकृत्, प्लीहा, हृदय, अन्त्र, फुस्फुस, रक्तवाहिनी, वातवाहिनी, मस्तिष्क, मांसग्रथियां, पिपासा-स्थान, वृक्कस्थान, वीर्यस्थान, आदि शरीर संरक्षण निमित्त महत्वके सब स्थानोंको सुवर्णभूपति बल देता है। अतः शास्त्रमें लिखा है कि, 'सर्वरोग विनाशाय सर्वेषां स्वर्ण भूपतिः'—अर्थात् सब रोगोंके विनाशके लिये सुवर्णभूपति सबसे उत्तम औषध है।

(११) अष्टमूर्त्ति रसायन।

विधि—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ६ तोले, सिगरफ १ तोला, मैनसिल १ तोला, सोमल १ तोला, हरताल ६ माशे, रसकपूर ९ तोले, मुर्दासंग ६ माशे फिटकरीका फूला १ तोला, सुवर्णके वर्क ६ माशे और चांदीके वर्क ६ माशेलेवें। सबको मिलानेसे वजन २२ तोले होना है। पारदके साथ सुवर्ण, रौप्य, और गन्धक क्रमशः मिला कज्जली करे। पश्चात् अन्य ओषधियोंको मिलाकर आतशी शीशीमें भरें। फिर वालुकायन्त्रमें रखकर लगभग ३० घण्टेकी मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि देकर रसा-यन सिद्ध करे। लगभग १० मे टे वाद गन्धकका धुंआं निकलजानेपर तुरन्त

डाट लगा २० घण्टेतक तीव्र अग्नि देवें । स्वांग शीतल होनेपर शीशीके गलेमें लगे हुए अष्टमूर्ति रसायनको निकाल लें । (औ० ग० ध० शा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक अदरखके रसमें घिस शहद मिलाकर दिनमें २ बार देवें ।

उपयोग—यह रसायन जीर्ण उपदंश, परिवर्तित ज्वर, विषम ज्वर, सन्निपात, क्षय, सन्यास (रक्तज मूर्च्छा), भूतोन्माद, अपस्मार, मूत्राघात, कलायखंज (लंगडापन), अपतानक, अपतन्त्रक तथा धनुष्कंप आदि वातविकारको दूर करती है ।

यह रसायन जीर्ण, फिरंग (Syphilis) रोगके उपद्रवोंके शमनके लिये अत्युत्तम ओषधि है । जिस फिरंग रोगीके विकार अस्थिपर्यन्त पहुंच गये हों, अस्थि व्रण, दांतोंमें क्षत, मसूढेमें सूजन, तालुमें व्रण, मुंहसे लार गिरना, इत्यादि उपद्रव हो गये हों, ऐसे कृश और क्षीण रोगीको यह लाभदायक है । एवं फिरंग रोगके अनुबन्धसे हुए क्षयरोग, मस्तिष्कमें रक्त दबाव बढकर सन्यास हो जाना, प्रसूताके बालक मरजाना, उन्माद, अपस्मार, वातवस्ति या वातकुण्डली, मूत्राघात, कलायखंज (जिसमें मनुष्य सीधा खडा नहीं रह सकता), अपतानक, अपतन्त्रक, धनुष्कंप और आयाम आदि वातविकार और अन्य रोग जो फिरंगके विषसे उत्पन्न हुए हों, वे सब अष्टमूर्ति रसायनके सेवनसे शमन हो जाते हैं । यदि आक्षेपक वातरोग निरनुबन्ध स्वतंत्र जीर्णावस्थामें हो, अर्थात् फिरंग आदि रोगका संबन्ध न हो, तो भी इनके आक्षेपके शमनके लिये यह रसायन अच्छा उपयोगी है ।

बार-बार उलट-उलटकर आनेवाले परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever) में रोगी बहुत कृश, दुबल और हताश हो गया हो, सारे शरीरमें दाह होता हो, शरीरका रंग काला हो गया हो, नाखून विकृत और नीले रंगके हो गये हों, स्थान-स्थानपर रक्तके धब्बे होते हों, छोटी-छोटी फुंसिया सारे शरीरमें हो गई हो, ऐसे विकारमें इस रसायनको उत्तम प्रकार का माना है ।

कृष्ण ज्वर, जिसमें त्वचा बिलकुल काली हो जाती है । शीत लगकर ज्वर आता है, पीले झागवाली वमन, मूत्र पहिले लाल रंगका पश्चात् काला अथवा अत्यन्त लाल या अत्यन्त काला होना, इत्यादि लक्षण हों, और ज्वर जीर्ण हो जानेसे शरीर दुबल होगया हो, ऐसे रोगीको अष्टमूर्ति रसायन नवजीवन प्रदान करता है ।

जीर्णज्वरमें शरीर कृश हो, या आन्त्रिक सन्निपातमें वातप्रधान लक्षण अधिकांशमें प्रतीत होते हों तथा शरीर कृश और दुर्बल हो, उन रोगियोंको अष्टमूर्ति देना लाभदायक है । किन्तु, इस सन्निपात में रक्तस्थ दोष विशेषतः हो अर्थात् दाह, रक्तवमन, मोह, शरीर पर मंडल आदि हों, तो इस रसायनके साथ या पश्चात् प्रवाल, मुक्ता या अन्य शीतल ओषधि भी देनी चाहिये ।

उन्मादके विशेषतः भूतोन्मादके आक्षेपमें इस रसायनका अनेक बार बहुत अच्छा

उपयोग हुआ है । इसके सेवनसे मस्तिष्कगत वातवाहिनियोंके केन्द्रपर तत्काल असर पहुंचता है; हृदय-क्रिया उत्तेजित होती है, और सेन्द्रिय विष नष्ट होकर उन्माद शमन हो जाता है ।

उपदशका विष रक्तमें लीन होनेसे गर्भाशय और उससे सम्बन्धवाले अवयवोंमें विकृति होनेपर प्रसवकालमें अति त्रास होता है, और संतानभी जीवित नहीं रहती । कदाच जीवित रही, तो उसे उपदंशज विषसे विविध व्याधियां होती हैं; यह दशा वार-वार प्रतीत होती रहती है; ऐसी स्थितिमें उन्माद उत्पन्न होता है, तो रोगिणी हताश, दीन, कृश और निर्वल हो जाती है । उसकी इच्छाके विरुद्ध थोड़ा-सा हुआ कि, मूर्छित हो जाता है और आक्षेप आते हैं । यें सब लक्षण होनेपर अष्टमूर्ति रसायन अति उत्तम कार्यकरता है ।

कलायखंज होनेपर मनुष्य सीधी रीतिसे नही चल सकता; पैर टेढ़े पड़ते हैं; सन्धि-बन्धोमें शिथिलता आ जानेसे चलनेपर विलक्षणता भासती है; पैरकी शक्ति नष्ट हो जाती है । रोगी बड़े कष्टसे चलता है; अच्छी तरह खड़ा भी नहीं रह सकता; पैर कापते रहते हैं । इस रोगमें त्रिकास्थिके ऊपर रहे हुये कटि-कसेरुकाओंमेंसे पहले और दूसरे कसेरुकाके भीतर सुषुम्णामुख और उसके समीप रही हुई वातनाड़ियोंकी विकृति भासती है। इस रोगमें अनेक निमित्त कारणोंमें एक कारण उपदंशज विष भी है । यदि उपदंशजनित सम्प्राति हो, तो अष्टमूर्ति देना चाहिये । इससे लाभ होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

अष्टमूर्ति रसायन शक्तिवर्द्धक, ओजस्कर, हृदयोत्तेजक, जंतुघ्न, वल, मांसवर्द्धक और आक्षेपघ्न है । वात और कुछ पित्तदोष; रक्त, मांस, अस्थि औरमज्जा, ये दूष्य; एवं सहस्त्रार, शिरोब्रह्म, सुषुम्णा, सुषुम्णामुख, अन्य नाड़ीचक्र, वातवाहिनियां, स्नायु, फुस्फुस, हृदय और वृक्क, इन सबपर विशेष लाभ पहुंचता है । (औ० गु० ध० शा०)

(१२) व्याधिहरण रस ।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल, हरताल, मैन सिल, रसकपूर, इन सबको ५-५ तोले मिला घीकुंवारके रसमें ३ दिन खरल करके सुखा देवें । पश्चात् आतशी शीशीमे भर, वालुकायंत्रमें रख ५२ घण्टे अग्नि देकर व्याधिहरणरस तैयार करें । गन्धक लगभग १६ घण्टेमें जारण होता है । गन्धक जल जानेपर डाटलगा कर ३६ घण्टे तक मंद, मध्यम और तीव्र अग्नि देवें । अन्तमें अग्नि खूब तेज देनेपर ही ओपधि उड़ती है, अन्यथा मैनसिल आदि द्रव्य तलभागमें रह जाते हैं ।

(रसा० सा० सं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय शहद या घीके साथ ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे नये और पुराने फिरंग रोग जड़मूलसे नष्ट होजाते हैं; एवं फिरंगजनित रक्तविकार, संधिवात, कुष्ठ, नासाव्रण, नाड़ीव्रण आदि

सब उपद्रव दूर होते हैं। उपदंश जीर्ण होनेसे विष हड्डी तक फैल गया हो, तोभी इसके थोड़े ही दिनों के सेवनसे विष नष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर नीरोग बन जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद ८ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, और रसकर्पूर १६ तोले लें। सबको यथाविधि मिला, कज्जली कर वालुकायन्त्रमें रखकर २४ घण्टे अग्नि देकर रसायन बना लेवें॥ (नि० र०)

वक्तव्य—इस रसायनको प्रसारणीके रसमें खरल करके वालुकायन्त्रमें रखने-का लिखा है तथा नाम भगन्दरहरो रस दिया है।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक नागरवेलके पानमें अथवा घृत या शहदके साथ दिनमें २ समय देवें।

उपयोग—यह रसायन उपदंश, उसके व्रण आदि उपद्रव और नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करता है। एवं हृदयशूल, वातश्लेष्म विकार और वलीपलितका भी नाश करता है। इस रसायनमें प्रधान गुण रसकर्पूरका है। रसकर्पूर अति तीव्र होनेसे अनेकोंके मुंह आजाते हैं। यह दोष इससेन होनेसे नये उपदंशपर निर्भय रूपसे उपयो-गमें आता है। इससे उपदंश रोग उपद्रवसहित शमन होजाता है। उपदंश होनेके पश्-चात् सारे शरीरपर लाल चट्टे, स्वरभेद, मुंहमें व्रण, गुदशूल (गुदापर अनेक अंकुर निक-लना), गांठ होना, बाल गलना, ज्वर, शिरदर्द, निद्रानाश, पांडु, नेत्रलाली, बार-बार नेत्र आजाना, नेत्रोंमें छोटे-छोटे दाने हो जाना, अस्थिगत व्रण, वृक्कशोथ, नाखूनोंका टेढा होजाना, संधिवात वृषणपर शोथ आदि उपद्रव १ से २ वर्षके भीतरके हो बहुत गहरे न हों, तो ये सब दूर होजाते हैं।

उपदंशके विषका परिणाम गर्भ, गर्भाशयपर तथा सन्तानपर भी होता है। इस-हेतुसे सन्तानोंको विविध चर्मरोग, अस्थिरोग, मांसगत रोग, ग्रंथिवृद्धि, यकृत्‌वृद्धि आदि होजाते है। इनकी उत्पत्तिको रोकनेके लिये विषप्रकोप होनेके पहिले इसका उप-योग करना चाहिये। यदि अस्थिपर्यन्त दोष चलागया हो, तो व्याधिहरण देनेसे रक्त, गर्भाशय आदि शुद्ध होते हैं।

व्याधिहरण रसायनका परिणाम वात, पित्त, कफ तीनों धातु और रस, रक्त आदि सप्त दूष्योंपर होता है। यह रसायन उपदंशविषघ्न और बल्य है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

[१३] पंचसूत रस।

विधि—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध हिंगुल ८ तोले, सुवीर (सोमल) २ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, रससिंदूर ६ तोले और रसकर्पूर ८ तोले लेवें। सबको मिला कज्-जलीकर छोटी दूधीके रसकी ३ भावना दे, सुखा, आतशी शीशीमें भरें। पश्चात् मन्द मध्यम, तीव्राग्नि क्रमसे देवें। ६-८ घण्टे डाट लगाकर २७ घण्टे तीव्राग्नि देनेसे बोतलके कण्ठपर ओषधि लग जाती है। (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा--½ रत्ती शहद, अदरखके रस, तुलसीके रस या मुलहठी, बहेड़ा, वासाके पत्ते और मिश्रीके क्वाथसे दिनमें २ से ३ वार ।

उपयोग—यह रसायन श्वास, कास, आमसे उत्पन्न शूल, दुष्ट वातविकार, फुस्फुसावरण शोथ (उरस्तोय–Pleurisy), सन्निपात आदि घोर रोगोंको नष्ट करता है ।

पंचसूतका मुख्य गुण कफशोषक है । यह विशेषतः फुस्फुसावरण और अन्य स्थानमें उचित दोषोंका शोषण करता है । मल्लसिंदूर और पंचसूत, दोनों कफशोषक और उत्तेजक है । किन्तु पंचसूतमें मल्लसिंदूरके सदृश तीक्ष्णता और उष्णता नही है । जव वातवाहिनियोंकी क्रियामें शिथिलता होकर व्यत्यय होता है; या अन्य प्रकारका दोष उत्पन्न होता है; ऐसे वातरोगमें पंचसूत उत्तम ओषधि है ।

फुस्फुसावरण शोथ होनेसे शारीरिक क्रिया शिथिल होती है; हृदय विल्कुल अशक्त होजाता है। फिर रोग जीर्ण होनेपर फुफ्फुसावरणमें जलका संचय होनेलगता है। इस रोगको उरस्तोय या कुक्ष्युदर भी कहते है। इस स्थितिमें कुक्षिशूल, शुष्ककास और ज्वरभी रहता है। किसी-किसीको इतना त्रास होता है कि रोगी खांस नही सकता। इस तीव्र अवस्थाके पश्चात् जलसंचय होता है। (फुस्फुसावरणके समान कभी-कभी मस्तिष्कके आवरणमें भी शोथ आकर जलसंचय होता है) पंचसूत इस जलका शोषक, जलको रूपान्तर करानेवाला, कफको त्रिदोष करके साम्यावस्थामे प्रस्थापित करनेवाला तथा ज्वर, शोथ और पीड़ाको हरनेवाला उत्तम रसायन है ।

फुफ्फुस सन्निपात (निमोनिया)के वेगका शमन होनेपर यदि फुफ्फुसकोषोंमें कफ-सग्रह होने लगता है, तो फुफ्फुसोंकी क्रियाका प्रतिबन्ध होता है। श्वासोच्छ्वासमें घर घर आवाज निकलती रहती है । उसपर पंचसूत बहुत अच्छा काम देताहै। कारण कि पंचसूत हृदय और फुफ्फुसोंको उत्तेजना देता है, उनकी क्रियाको सुधारताहै, और फुफ्फुसोमें संचित कफका शोषण करके रूपान्तर कराता है । किन्तु निमोनियामें रक्त गिरता हो, तो पंचसूत नही देना चाहिये ।

पंचसूत उत्तम हृदयोत्तेजक है। अनेक वार हृद्य ओषधियोके सूचिकाभरण (इजेक्शन) लेनेसे रोगी निराश होगये हों, उन रोगियोंकी जीवनरक्षा पचसूत और समीरपन्नगसे होनेके उदाहरण मिले है । यथार्थमें पंचसूतमें समीरपन्नगकी अपेक्षा हृद्य गुण कुछ न्यून है, तो भी कफस्थानोपर पोषक गुण विशेष प्रकारका है ।

श्वासवाहिनियोंमें कफसंचय होकर श्वासोछ्वासमें प्रतिवन्ध, घर घर आवाज, श्वास रुकना, छिन्न श्वास, नाड़ीका विषम वेग आदि लक्षण होनेपर पंचसूत देनेसे वह श्वासवाहिनियोंमें सगृहीत कफको अति सत्वर सुखाकर सरलतासे नाड़ियोंको शुद्ध करता है । किन्तु समीरपन्नगका कार्य इससे विपरीत है । समीरपन्नग कफस्राव कराने औरकफको वाहर फेंकनेके लिये श्वासवाहिनीको शक्तिकी प्राप्ति करानेमे सहायता करता है । इनके

अतिरिक्त समीरपन्नगका कार्य वातवाहिनियों पर भी होता है ।

पंचसूतका उपयोग कफयुक्त श्वासरोगमें होता है । किन्तु शुष्क कासयुक्त पित्त-श्वासमें उपयोग करना हानिकर है । पंचसूतमें कफका शोषण अधिक होकर श्वास बढ़ जाता है । समीरपन्नगमें कफ घुलकर श्वास-वेग कम होजाता है । तन्द्रा और मूर्च्छामें कफाधिक्य और जड़ताका लक्षण हो, तो पंचसूत देना लाभदायक है । जीर्ण पक्षाघातमें जब तीव्रावस्था दूर होती है, तब पंचसूत देनेसे सत्वर लाभ होने लगता है ।

छोटे बच्चोंका स्कन्दग्रह, अहिपूतना आदि बालग्रहके विकार, मस्तिष्कके आवरणकी विकृतिसे अर्थात् मस्तिष्कमें रहे हुए वातकी विकृतिके कारणसे हुए हों, तब तीव्र विकार शमन होनेके पश्चात् कफप्रधान लक्षण होनेपर पंचसूत अमृत सदृश गुणदायी है ।

बालग्रहके अनेक कारण है । इनमें १० कारण मुख्य हैं (१) उदर और अन्त्रकी विकृति या वातसंचय, (२) दन्तोद्भव, (३) कृमि, (४) मूत्रद्वारकी त्वचा चिपक जानेसे मूत्रोत्सर्गमें प्रतिबन्ध, (५) कर्णपाक, (६) मृदुग्रन्थि, (७) शीतला, विस्फोटक, रोमान्तिका आदि तीव्र पिटिकायुक्त ज्वर, (८) काली खांसी, (९) मस्तिष्कावरण शोथ, (१०) धनुर्वात या अपस्मारका पूर्व रूप । इनमेंसे उदर या अन्त्रमें वातसंचय विकृत दुग्ध या विकृत आहारसे होता है । फिर बालग्रह सदृश आक्षेप बार-बार आते हैं, ऐसी परिस्थितिमें उदरस्थ वातप्रकोप शमनार्थ पंचसूत देना चाहिये ।

माताके दुग्धकी विकृति या माताकी मानस-विकृतिसे बालकको पेचिस या आक्षेप हुए हों, या कीटाणुजन्य विषप्रकोपसे पेचिसकी प्राप्ति हुई हो, तो दुग्धविकृति, कीटाणु प्रकोप और वातसंचय, इन सबके निवारणके लिये सरल सौम्य विरेचन और किंचिद् यकृदुत्तेजक गुणयुक्त ओषधि देनी चाहिये । ये सब गुण पंचसूतमें अवस्थित हैं । पंचसूत सौम्य रेचन करता है, और यकृत्को थोड़ी उत्तेजना भी देता है । ऐसे निराशाजनक स्थिति प्राप्त छोटे बच्चोंके प्राणका रक्षण इस पंचसूतसे हुआ है । इस रसायनका कार्य यकृत् पर उत्तेजक होनेसे तीव्र यकृत् विकारमें भी इसका उपयोग होता है ।

अन्न और कोष्ठमें स्थित जन्तुजन्य विषको पंचसूत दूर करता है । इसलिये गर्भवात, तीव्र यकृत्संकोच और अन्त्रस्थ जन्तुजन्य विकृतिसे उत्पन्न उदरवातरोगमें तीव्र लक्षण होनेपर पंचसूतका उपयोग किया जाता है । जीर्ण व्याधिमें इसका उपयोग नहीं होता ।

पंचसूत कफवात और कफप्रधानदोष, रस, रक्त और मांस, ये दूष्य, और फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण आदि कफस्थान, पक्वाशय, लघ्वन्त्र, ग्रहणी, सहस्रार, सहस्रारावरण, वात-वाहिनियां और स्नायु, इन सबपर विशेष प्रभाव दिखाती है । इसका मुख्यकार्य मलशोषक है । फुफ्फुसावरण आदि स्थानोंमें संचित द्रवका शोषण करता है ।

सूचना—पंचसूत तीव्र ओषधि होनेसे सम्हालपूर्वक उपयोग करना चाहिये । पित्तभूयिष्ठ विकारमें पंचसूत देनेसे मुंह आना, मसूड़े सूजना, रक्त गिरना इत्यादि उप-

द्रवहोते हैं । इस हेतुसे इनका आंत्रिक सन्निपात (मोतीझरा Typhoid Fever) में उपयोग नही करना चाहिये । कदाचित् आवश्यकता हो, तो शामक ओषधिके साथ करें ।

(१४) त्रिपुरभैरव रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल और रसकर्पूर १०-१० तोले, नौसादर १ तोला और फिटकरीका फूला ५ तोले मिला, कज्जली कर आतशी शीशीमें भरें । फिर वालुकायन्त्रमें रखकर दो दिन अग्नि देवें । पहिलेसे ही क्षार गलेमें लगता रहता है । अतःगला वार-वार साफ करते रहना चाहिये । गन्धकका धुंआँ निकल जानेके बाद डाटलगाकर २४ घण्टेतक तीव्राग्नि देनेसे सुन्दर लाल रंगका त्रिपुरभैरव सिद्ध होता है । (वै० सा० सं०)

मात्रा—आधीसे २ रत्ती दिनमें २ समय घीके साथ ।

उपयोग—त्रिपुरभैरव रस उपदंशजन्य विकार, रक्तविकार, नाडीव्रण, कंठमाला और पक्षाघात आदि दूर करता है । एवं संधिवात, नेत्रविकृति, अस्थिगतव्रण, गांठ, छाती और पसलियोंमें शूल चलना, इत्यादिको भी शमन करता है ।

इस रसायनका उपयोग विशेषतः उपदंशजनित विकारपर होता है । इस रसायनके अतिरिक्त पारद भस्म, रसकर्पूर, व्याधिहरण, अष्टमूर्ति और मल्लसिंदूर आदि अनेक ओषधिया उपदंश रोगके लिये लिखी है । परन्तु इन सवके उपयोग और गुणमे कुछ-कुछ अन्तर है । थोड़े ही दिनों के उपदंश रोगमें पारद भस्म उपयोगी है । प्रथमावस्थाके लक्षणों तक व्याधिहरणरस नं० २ लाभ पहुंचाता है; यह त्रिपुरभैरव रस प्रथमावस्था और द्वितीयावस्थाके उपदंश रोग और उनके उपद्रवोंको शमन करनेमें उपयोगी है । अष्टमूर्ति, व्याधिहरण नं० १ और मल्लसिंदूर (द्वितीय विधि) तृतीयावस्थामें भी हितकर है ।

उपदंशजन्य और उपदंशरहित उत्पन्न जीर्ण, अस्थिगत व्रण, अस्थियोके अन्त भाग मोटे हो जाना, छातीमें दर्द, अस्थियोमें कीटाणु उत्पन्न होना तथा उपदंशज अन्य विकारोंमे यह रसायन उपयोगी है ।

इनके अतिरिक्त वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपातमें अन्य ओषधि तैयार न होनेपर इसको प्रयुक्त किया जाता है ।

पक्षबध, अर्दित आदि रोगोपर यह रसायन अच्छा लाभ पहुंचाता है । परन्तु तीव्रावस्थाका ह्रास होनेपर यह उपयोगी होता है ।

सूचना—त्रिपुरभैरव रसायनमें फिटकरीका फूला ही मिलाना चाहिये । यदि कच्ची फिटकरी मिलाई जायगी, तो गला वन्द होकर शीशी फट जायगी ।

(१५) संघातसिंदूर रस

विधि—कूपीपक्व रसायन वनानेमे शीशी तोड़नेके समय चन्द्रोदय, रससिंदूर, मल्लसिंदूर आदिमें काचके टुकड़े मिल गये हों; ऐसे चूर्णमें समभाग गन्धकमिला

छोटेके परलमें घीकुवारके रसके साथ खरल करके आतशी शीशीमें भरें । फिर वालुकायन्त्र-में ३६ घण्टे अग्निदेकर ओषधि उड़ा लेनेसे काचके सब टुकड़े नीचे रह जाते हैं, और रसायन ऊपर लग जाती है । इस सिंदूरमें सब प्रकारके रसायन होनेसे सबके गुणसम्मिलित होते हैं । (र० सा०)

मात्रा—१ से २रत्ती रोगानुसार अनुपानके साथ दें ।

उपयोग—इस रसायनका उपयोग द्विगुण गन्धकजारित रससिंदूरके समान होता है । रससिन्दूरसे यह अधिक उत्तेजक है ।

सूचना—रसकर्पूरमिश्रित ओषधियोंमेंसे रसायन अलग बनाना चाहिये, और उसका उपयोग व्याधिहरणके समान करना चाहिये ।

पर्पटी प्रकरण ।

रसायन कल्पमें पर्पटीको अति महत्वकी ओषधि माना है । पारद और गन्धककी कज्जली वा उसके साथ अन्य ओषधियोंको मिला अग्निसंस्कार करके पर्पटी बनाई जाती है । पारद-गंधकयुक्त पर्पटी विशेष करके अन्नके विकारोंको दूर करनेमें अति उपयोगी है । अन्नमें रही हुई दुर्गन्धको दूर करती है, कीटाणुओंका नाश करती है, और अन्नकी शक्तिको बढ़ाती है । अन्नविकृति को दूर करनेमें अन्य ओषधकृतिकी अपेक्षा पर्पटी सौम्य, विशेष हितकर और शीघ्र लाभदायक है । पर्पटी बनानेसे कज्जली और अन्य ओषधियोंका वियोजन आमाशयमें नहीं होता, परन्तु ग्रहणी, पक्वाशय और बृहदन्त्रमें होता है । इस हेतुसे ग्रहणी रोगमें पर्पटी अपना प्रभाव विशेष दिखाती है ।

पारदयुक्त सब प्रकारकी पर्पटी जन्तुघ्न, पाचक, व्रणशोधक, व्रणरोपण, अग्निवर्द्धक हैं, और अन्य जो-जो ओषधियां मिलाई जाय, उनके गुण और भी सम्मिलित होते हैं । लोहपात्रमें पर्पटी तैयार करनेसे पर्पटीमें लोहेका गुण आता है । लोहपात्रके संयोगसे रक्तके रक्ताणुओंकी वृद्धि होनेमें सहायता मिलती है । ताम्रपात्रमें तैयार करनेसे यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानकी निर्बलताको दूर करने और पित्तविसर्जन क्रियाको सुधारनेके गुणोंसे युक्त बनती है । अतः जिस धातुके पात्रका उपयोग किया जाता है, उस धातुका गुण पर्पटीके साथ कुछ अंशमें संयुक्त होता है ।

पर्पटीके लिए पारद शोधन विधि—पारदको घीकुवारके रसमें मर्दन करनेसे मलदोष, त्रिफलेके क्वाथमें मर्दन करनेसे अग्निदोष और चित्रकमूलके क्वाथमें मर्दन

करनेसे विषदोष दूर होता है। इस प्रकार पारदके दोषोंको दूरकर उसे अरणीके पत्ते, अरण्डके पत्ते, अदरख, और मकोयके पत्तोंके रसोंमें पृथक्-पृथक् मिलाकर क्रमशः पत्थरके खरलमें मर्दन करके शोषण करें। इस रीतिसे पारदकी विशेष शुद्धि करनेपर पर्पटी विशेष गुण दर्शाती है।

पर्पटीके लिए गन्धकचूर्ण विधि—शुद्ध गन्धकके चावलोंके समान छोटे-छोटे टुकड़े कर पत्थरके खरलमें भांगरेके रसकी ७ बार भावना देवें, और ७ बार धूपमें सुखावें। फिर एक कड़ाहीमें थोड़े घीके साथ गन्धक मिलाकर रस करें। उस गन्धकसे चार गुना भांगरे का रस एक पीतल के भगोनेमें भरें। भगोना इतना बड़ा लेवें, कि आधा भर जाय। उस भगोनेपर स्वच्छ कपड़ा बांधें। फिर गन्धकका रस होनेपर तुरन्त उस भगोने पर डाल देवें। पश्चात् गन्धकको निकालकर धो लेनेसे पर्पटीके योग्य गन्धककी शुद्धि होती है। भांगरेकी भावनासे यकृदुत्तेजक गुणकी वृद्धि होती है। जो ग्रहणी आदि व्याधियोमें हितावह है।

पर्पटी बनानेके लिये कड़ाही अथवा कलछी में घी लगाकर कज्जली आदि ओषधि डालें। पश्चात् चूल्हेपर चढा लोहेकी या तांबे की शलाकासे सम्हालपूर्वक चलावें; और बेरकी लकड़ीके निर्धूम कोयलोंकी मन्द आंचपर पिघलाकर रस करें। फिर जमीन पर गोबर फैला ऊपर केलेके पत्ते बिछा,उसपर तैयार हुआ रस डाल,एक केलेका पत्ता ढक उसके ऊपर और गोबर डालकर दबा देवें। थोड़े समय बाद शीतल होनेपर पर्पटी निकाल लें। कलछीमें शेष कठिन भाग लगा हुआ रह जाय,उसे ग्रहण न करें। पर्पटी का रंग मयूरशिखाके समान होजाय, वह उत्तम माना जाता है।

श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्यके मतानुसार चूल्हेपर एक तवा रखें। उसपर एक अंगुल मोटा बालुका स्तर बिछावें। उसपर कड़ाही रखें। इस तरह पर्पटी बनाने पर गुण अधिक करती है।

पर्पटी बनानेमें मृदु, मध्यम और खर, तीन प्रकारके पाक होते हैं। मृदु बननेपर बिखर जाती है,और अच्छी रीतिसे नही टूटती। मध्यम पाक होनेपर चमकदार चांदीके समान टुकड़े बन जाते हैं। खर पाक हो जाय तो रूक्ष,चिकनी और कुछ ललाई युक्त दीखती है,और तोड़नेमें जल्दी नहीं टूटती। मृदु और मध्यम पाकमें पारद दृष्टिगोचर होता है; किन्तु खर पाक होनेसे पारद उड़ जाता है। अतः मृदु और मध्यम पाकका सेवन करना चाहिये;और खरपाकको विष समान मानकर त्याग देना चाहिए। इसी कारणसे कलछीमें शेष लगी हुई खर पाकवाली पर्पटीका त्याग करनेका विधान किया है।

पर्पटी सेवनमें अपथ्य—पारदमिश्रित पर्पटीके सेवन करनेवालेको वायु, धूप, क्रोध, मानसिक चिन्ता, आहारके समयकी विषमता, व्यायाम, अत्यन्त परिश्रम,स्नान और अत्यन्त बोलना,ये सब अहितकारक हैं। पके हुए केलेके फल, वक्कल

और जड, नीम आदि को लेकर सम्पूर्ण कडवे पदार्थ, गरम जनुप देशके जीवोंका मास तथा जलचर जीवोंका मास, पक्षियोंका मास, मछली, काली मछलियोंमें गडक नामक मछली, खट्टे पदार्थ, दही और शाक आदि पदार्थ भक्षण नहीं करने चाहिए । पर्पटीका सेवन करते हुए स्त्रियोंसे बातचीत भी नहीं करनी चाहिए। एवं गुड, खांड, ईख रसमे बने हुए पदार्थ, ईख (गन्ने), करेलेके पत्ते, फल और बेल आदि नहीं खाने चाहियें।

पर्पटी सेवन करनेके समय अन्न और नमकका सेवन न किया जाय तो अच्छा। यदि ऐसा न हो सके तो नमकमिश्रित भोजन २ घण्टेतक नहीं करना चाहिए। नमक-मिश्रित मट्ठाके लिए अधिक बन्धन नहीं हैं, तथापि अनुपान रूपसे मट्ठा लेना हो तो उसमें नमक न मिलायाजाय, तो अच्छा है। क्योंकि पारदका नमकके साथ संयोग होनेपर पारद लवण (मरक्यूरी क्लोराइड) बनकर हानि पहुंचाता है, या योग्य लाभ नहीं पहुंच सकता ।

पर्पटी सेवनमें पथ्य—(जो अन्नका त्याग नहीं कर सकते उनके लिये) थोड़े घी, जीरे, धनिये और अन्यान्य मसालोंके द्वारा सिद्ध किये हुये, सेंधानमक मिले हुये व्यंजनादि, पुराने शालि चावलका भात, काले बैंगन, पाटके पत्तोंका शाक, बथुआ, साबुत मूंग, केलेके पत्ते, परवल, सुपारी, अदरख, मकोयके पत्तोंका शाक, लवा, बतक तीतर और मोरका मास, मुद्गर, रोहित और काली मछली, समभाग जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ दूध, ये सब पदार्थ हितकारी हैं ।

पर्पटी सेवन-कालमें ब्रह्मचर्यका आग्रह पूर्वक पालन करना चाहिये। शराब, सिगरेट, चाय आदिका व्यसन हो, तो जितना हो सके उतना कम कर दें। चाय पीना हो, तो ठण्डी करके ही पीवें, व्यसनका त्याग हो सके, तो विशेष हितावह माना जायगा । रोगी पूर्ण विश्रान्ति ले, तो लाभ जल्दी पहुंचता है ।

इस पर घृत थोडा खाना चाहिये और पथ्यमें यथेच्छ आहार देना चाहिये । भूख लगनेपर अवश्य भोजन करे । यदि आधी रातको भूख लगे, तो उस समय भी भोजन करना चाहिये । बहुत क्या कहे, रोगीको जब जब भूख लगे, तब ही निर्भय होकर बार-बार दूध पिलावें । कदाचित् भोजनके समयका उल्लंघन होनेसे ज्वर या विरेचन हो जाय, तो समभाग अथवा अधिक जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ दूध पिलाना चाहिये । वमन होने पर नारियलका जल या दूध देवें । स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय, तो दुग्धपान करावें ।

भूख उत्पन्न हुई है या नहीं, इसकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये—जब शरीर शक्तिहीन हो, मस्तकमें शूल और झनझनाहट आदि लक्षण उपस्थित हो, तब निश्चय ही भूख लगी समझनी चाहिये ।

(१) रसपर्पटी

विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध आंवलासार गन्धक, दोनों ५-५ तोले मिला कज्जली कर लोहेकी कड़ाही या कलछीमें डालकर ऊपर लिखी विधिसे पर्पटी बना लें। (र० का०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें ३ बार शक्ति अनुसार धीरे-धीरे बढाकर शहद या हींग और जीरेके साथ या घृत अथवा दूधके साथ देवें। जलके बदलेमे दूध ही दें, तथा नमक, जल और अन्न छुड़ा दे। पर्पटीके ऊपर सुपारी पाकका टुकड़ा खिलावे। इस रीतिसे ४० दिनतक सेवन कराना चाहिये।

उपयोग—संग्रहणी, अन्त्रव्रण, अंत्रशोथयुक्त अतिसार, अपचन, शूल, बवासीर आदि रोगोंको शमन करती है।

जब पित्तस्राव कम होनेसे भोजनका परिपाक ठीक नहीं होता; या अंतड़ीमें शोथ होनेसे बार-बार थोड़े-थोड़े पतले दस्त होते रहते है; जिसमें कुछ अंश अपक्व अन्नका होता है; पचनक्रिया विकृत हो जाती है; दस्तमें अम्ल या पूतिगन्ध होती है; रोगीकी जिह्वापर श्वेत मलकी तह आ जाती है, जिह्वाकी किनारी लाल होती है; पचनेन्द्रिय दूषित हो जाती है, तब रस प'टी विशेष हितकर होती है।

गर्मीके दिनोमे दूध जल्दी विकृत हो जाता है। ऐसा विकृत दूध पिलानेपर बालकके उदरमें कृमि उत्पन्न होकर अतिसार होजाता है। दस्त चावलोके धोवन या खड़िया मिट्टीके सदृश होता है; क्वचित् वमनभी होती है, ज्वर बहुधा नही होता। ऐसा लक्षण प्रतीत होनेपर बालसंजीवन रस अति हितकर है। परन्तु जब बालसंजीवन से लाभ नही पहुंचता, तब रस पर्पटी दी जाती है। यदि बालकोको प्रवाहिक रोग होता है, तो बालसंजीवन रस काम नही दे सकता। ऐसे समय पर बालअतिसारहर चूर्णके साथ रसपर्पटी ही लाभ पहुंचाती है।

यदि अतिसारमें कृमिका अनुबंध हो, तो पहले कृमिघ्न औषध और एरंड तैल देकर कोष्ट शोधन करना चाहिये। फिर रसपर्पटी देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

जीर्ण अतिसार रोगमें अंत्रकी ग्राही शक्ति अति न्यून हो जाती है। ऐसे समयपर अफीम या अन्य स्तम्भक ओषधि द्वारा अन्त्रको श्लैष्मिक कलाको कार चलाऊ शक्ति देने या मलको रोकनेका प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकारकी ओषधियोकी क्रिया अस्थिर होनेसे सच्चा लाभ नही होता। क्वचित् थोड़े ही समयमें अतिसार प्रबल वेग-पूर्वक फिर हो जाता है। किन्तु रसपर्पटी देनेसे अन्त्रको शक्तिकी वृद्धि होकर रोग निर्मूल हो जाता है।

उपदंश रोगमे उपद्रव रूपसे अतिसार होजाता है; ऐसे रोगियोके लिये केवल अतिसारकी चिकित्सा करनेसे रोगनिवृत्ति नही होती उपदंशके विषको भी नष्ट करना

चाहिये । ये दोनो कार्य रसपर्पटीके योगसे उत्तम प्रकारसे होते हैं । अन्त्रमें शोथ होनेपर एक प्रकारका विषप्रकोप होकर ज्वर उपस्थित होता है । उस ज्वरमें समान वायु प्रकुपित होता है । ज्वर आनेके पश्चात् सब अवस्था पूर्ण होनेमें ३ से ६ सप्ताह लगते हैं उस विरामें आगे शोथकी कमी होकर अन्त्रव्रण होजाते हैं । ऐसे ज्वर और आन्त्रिक ज्वर (मधुरा) ये भीतर अनेकांशमें साम्य हैं । इस प्रकारके ज्वरमें महत्वका लक्षण अतिसार है । यह अतिसार अति त्रासदायक और दीर्घकाल स्थायी होता है । बार-बार बडे-बडे दस्त लगते रहते हैं । दस्तका रंग सफेद या पीलासा होता है । ऐसे अतिसार पर रसपर्पटी उत्तम कार्य करती है । रसपर्पटीके सेवनसे शोथ कम होता है, व्रण भर जाते हैं, पचनक्रिया सुधरती है, अतिसार कम होता है, उदर स्वस्थ होजाता है, गुदाम फटी हुई त्वचा आदि विकृति दूर होती है, विष नष्ट होता है, तथा समानवायुका साम्य होकर अनुलोम होता है । (औ० गु० ध० शा०)

जीर्ण अतिसारमें रसपर्पटी, जातिफलादि चूर्ण, और लघुगंगाधर चूर्ण मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहनेसे थोडे ही दिनोमें अच्छा लाभ पहुंच जाता है ।

जीर्ण आमातिसार पर रसपर्पटी, लघुगंगाधर चूर्ण, हिंग्वष्टक और कूडेकी छालके चूर्णके साथ मिलाकर दिनमें ३ बार मट्ठेके साथ देते रहनेपर आमोत्पत्ति कम होकर पचन क्रिया बलवान बन जाती है ।

सूचना—रसपर्पटी, पित्तप्रकोपजनित रोगोंके अनुकूल नहीं रहती । कारण, यह स्वयं पित्तवर्द्धक है । इस पर्पटीके सेवन-कालमें विदाही पदार्थ, तेल, केला और स्त्रीसेवन आदिका आग्रहपूर्वक त्याग करना चाहिये । यदि इस प्रकरणके प्रारंभिक वक्तव्यके भीतर पथ्यापथ्य लिखा है, उसका आग्रहपूर्वक पालन किया जाय, तो लाभ अधिक पहुंचता है ।

(२) सुवर्ण पर्पटी ।

विधि—शुद्ध पारद ८ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और सुवर्ण भस्म या सुवर्णका वर्क एक तोला लेवें । पहिले पारद और सुवर्णके वर्कोंको मिला, नीबूके रसमें ६ घण्टे खरलकर गरम जलमें ३ समय धो लेवें । फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें । सुवर्ण भस्म मिलाना हो, तो पारद-गन्धककी कज्जलीके साथ मिला लेवें । पश्चात् कडाहीमें थोडा घी डालकर उपरोक्त विधिसे पर्पटी बना लेवें । (र० च०)

पारदके स्थानपर रससिंदूर मिलाया जाय तो सुवर्णपर्पटीका गुण रक्त होता है । मलमें श्वेतवर्ण और दुर्गन्ध होनेपर यकृत् पित्तस्राव अधिक कराना इष्ट हो तब रससिंदूरवाली पर्पटी विशेष हितावह है, किन्तु शुष्क कास हो तो न देवें ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें २ समय त्रिकटु और शहदके साथ देवें । मात्रा ३ रत्ती तक धीरे-धीरे बढानी चाहिये । संग्रहणीमें प्रवालपंचामृत १-२ रत्ती और

त्रिकटु शहदके साथ या दाड़िमावलेहके साथ।

उपयोग—यह पर्पटी पित्तशोधक, कीटाणुनाशक और बलवर्द्धक है। सब प्रकारकी संग्रहणी, शोष-क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, शूल, अतिसार, मन्दाग्नि और पाण्डु रोग-का नाश करके जठराग्निको प्रदीप्त करती है; और बल-वीर्य बढ़ाती है।

पर्पटी कल्पमें सुवर्ण पर्पटी अति महत्वकी अग्रगण्य ओषधि है। बिल्कुल अस्थि-पंजर और मरणोन्मुख रोगियोंको भी स्वस्थ बनाती है। सुवर्ण पर्पटीके साथमें दूध विशेष लाभदायक है।

जिस जीर्ण और त्रासदायक अतिसारमें उदरके भीतर पीड़ा नही होती; परन्तु नलको खोलने पर जिस तरह जलकी धारा गिरती है; उस तरहके बड़े-बड़े दस्त लगते रहतेहै; शौचकालमें बल नही लगाना पड़ता; एक साथ घड़ा खाली करने सदृश जुलाव दिनमें ४-५ वार होते रहते हैं; उस अतिसारमें अन्त्रकी ग्राहक-शक्ति अत्यन्त क्षीण होती है; तथा यकृत् रस और अन्त्ररसस्राव अधिक होते है। रोगी अतिशय क्षीण, कृश, दुर्वल, केवल अस्थिपंजरवत् वन जाता है। बोलनेकी शक्ति भी नही रहती; एवं बलमांस विहीनताकी अंत्यावस्था होती है; ऐसी अवस्थामें भी सुवर्ण-पर्पटी जादू सदृश कार्य करती है। ऐसे अनेक रोगियोंका प्राण इसने बचाया है।

ऐसे अतिसारसे उत्पन्न उपद्रवरूप कास, श्वास, पाण्डुता, हिक्का, या केवल निर्जन्तुक अनुलोम-प्रतिलोम क्षय, जिसमें क्रमशः रसधातुसे शुक्रपर्यत या शुक्रसे रसपर्यत धातुएँक्षीण होती है; इन सबपर यह पर्पटी अच्छी उपयोगी है। सुवर्ण पर्पटी देने योग्य रोगियोंकी मानसिक स्थितिका केवल विचार करना चाहिये। मानसिक स्थिति अविकृत हो, तो सुवर्णपर्पटी निःसंदेह लाभ पहुंचाती है।

संग्रहणी-अनुलोमक्षय (Sprue) में विशेषतः जिह्वासे लेकर गुदनलिका पर्यन्त समस्त पचनेन्द्रिय संस्थाकी श्लैष्मिक कलापर सूक्ष्म-सूक्ष्म स्फोट हो जाते हैं। ये स्फोट विस्फोटक सदृश तीव्रतर नहीं होते; किन्तु इससे विलक्षण प्रकारके सौम्य होते है। इस हेतुसे रोगियोंको बड़े सफेद रगके और गरम-गरम दस्त लगते हैं। जिह्वाका स्वाद नष्ट होजाता है; जिहवा लाल कांटेवाली हो जाती है। कितने ही रोगियोंकी जिहवा फटी सी भासती है। जिह्वाके नीचेके हिस्सेमे, गाल, कण्ठ और समस्त मुंहके भीतर त्वचा लाल हो जाती है। नमक या जलका स्पर्श भी सहन नही होता। कइयों को लाला अधिकनिकलती है। कुछ काल मुखपाक होता है, फिर अच्छा हो जाता है। ऐसा क्रम विशेष रहे, तबतक वर्षो पर्यन्त चलता है। मुखपाक शमन होने पर दस्त भी न्यून होजाते हैं; और रोग निवृत्त होनेका भ्रम होजाता है। परन्तु किंचित् निमित्त कारण मिलनेपर पुनः समस्त लक्षण पूर्ववत् उपस्थित होते हैं। इस रोगमें अन्नका रस ही अच्छा नहीं बनता जो बनता है; उसका भी संशोषण आमाशय और अन्त्र स्फोटयुक्त होनेसे यथोचित नहीं होता। इस हेतुसे

शोषण पोषणके अभावमें रोगीदिन-प्रतिदिन कृश, अनुत्साही और निस्तेज होता जाता है।

इस व्याधिके मुख्य कारण विषयक विद्वानोंमें मतभेद है। कितनेही विद्वानोंकी मान्यता अनुसार इसका कारण यकृत्के पित्तस्रावकी विकृति है, इस हेतुसे आधुनिक विद्यावाले गोरोचन, मत्स्य पित्त या बैलके पित्तको दही या मट्ठेके साथ देते रहते हैं।

आयुर्वेदके मत अनुसार किसी भी रोगमें इस तरहके रासायनिक द्रव्यकी अपेक्षा उसके उत्पादक और नियामक त्रिधातु और त्रिदोषको विशेष महत्व दिया है। इस दृष्टिसे यकृतका पित्तस्राव कम होने या अन्य उपपत्ति अनुरूप अन्य अन्त स्रावकी न्यूनता होनेसे अन्त्रमें विकृति हुई हो, उस तरह मान लें, तो भी आयुर्वेदकी दृष्टि अनुसार यह स्थिति पित्तदोषसे मानी है। जब पित्तदोषकी दुष्टता दूर हो, और पित्त का सम्यक् नियमन होकर उसके बढे हुए अम्लत्व, उष्णत्व और द्रवत्व गुण न्यून हो तब यह व्याधि स्वयमेव शमन होती है। यह महत्वका कार्य सुवर्ण पर्पटी करती है। किन्तु यकृत् या अन्य पित्तस्थानके मदत्वके हेतुसे उस स्थानमें उत्पन्न होनेवाले पित्तकी उत्पत्ति ही कम हो, या उस स्थानसे अन्त्रमें पित्तस्राव ही कम जाता हो, तो पंचामृत पर्पटी देना चाहिये।

अन्त्रमें क्षयके कीटाणुओंकी उत्पत्ति हो, तो हाथ-पैरोंपर शोथ आजाता है कास श्वास आदि उपद्रव होते हैं तथा शरीर कृश और निस्तेज बन जाता है। ऐसे संग्रहणी (अनुलोमक्षय Sprue) और प्रतिलोमक्षयमें मानसिक अवस्था अविकृत है, तो इस पर्पटीके सेवनसे अवश्य लाभ पहुँचता है अनुपान रूपसे दाडिमावलेह देवें।

यह सुवर्ण पर्पटी शीतल होनेसे पित्तप्रधान विकारमें अच्छा काम देती है। जब यकृत्मेंसे पित्तकी उत्पत्ति पूरी होनेपर भी स्राव न्यूनांशमें होता हो, अथवा अन्य अतःस्रावकी न्यूनतासे अन्त्रमें विकृति उत्पन्न हुई हो, मल बहुत ज्यादा परिमाणमें एक साथ निकलता हो, और दस्तकी संख्या अधिक न हो, तब सुवर्ण पर्पटी पित्त धातुको प्रकृतिस्थ नियमित बनानेके महत्वका कार्य कराती है।

सुवर्णप्रधान इस रसायनसे संग्रहणीके अतिरिक्त पित्तज प्रमेह, पाण्डु, पित्तप्रधान उदरशूल, उन्माद, शोष, राजयक्ष्मा आदि रोगोंका भी नाश होता है। इसका सविस्तार वर्णन सुवर्ण भस्ममें किया है।

अन्त्रक्षयके रोगीको ज्वरसह मुखपाक रहता हो, खट्टी डकार आती रहती हो, तो सुवर्ण पर्पटीके साथ यशद भस्म, अतीसका चूर्ण तथा लवङ्गचतुःसम चूर्ण (लवंग, जायफल, जीरा और सोहागेका फूला) मिला देना चाहिये।

ग्रहणी में क्षत (Duodenal ulcer) होनेपर विशेषतः पित्तज परिणामशूल

उत्पन्न होता है। फिर भोजनके ३-४ घण्टे बाद वान्ति होजाती है। वान्ति अति खट्टी होती है, तृषा अधिक लगती है, वान्ति होने पर फिर दर्द नहीं रहता, शौच शुद्धि नहीं होती अन्त्रमें क्षत हो जानेके बाद उदर पर दबानेमें व्यथा होती है, जिह्वा लाल होती है। नेत्र पीले भासते हैं। उसविकारपर सुवर्ण पर्पटी, कामदुधारस और संगजराहत भस्म मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहने तथा कब्ज रहे, तो स्वादिष्ट विरेचनका उपयोग करते रहनेपर रोग निवृत्त होजाता है। यदि उदरमें वात संचय होता हो, तो बबूलके कोयलेकी काली राख ४ रत्ती मिला देनी चाहिये।

(३) ताम्र पर्पटी।

विधि—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और ताम्रभस्म २ तोले लेवें। प्रथम पारद गन्धककी कज्जली करें। फिर ताम्रभस्म मिला, यथाविधि रस करके पर्पटी बना लेवें। (र० यो० सा०)

ग्रन्थकारने ताम्र पर्पटी तैयार होनेपर भाँगरेका रस, अड़ूसेके पत्तोंका रस, त्रिकटुका क्वाथ, त्रिफलाका क्वाथ, अदरखका रस, सुहिंजनेके मूलका क्वाथ, तेजपातका क्वाथ, कटेलीका रस, बच्छनागका क्वाथ और चन्दनका क्वाथ, इनकी ७-७ भावना देनेका लिखा है। रोगानुरूप भावना देकर प्रयुक्त करें, तो लाभ सत्वर पहुँचता है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें ३ समय।

अनुपान—ग्रहणी रोगमें सेका हुआ जीरा ४ रत्ती, धोयी भांग १ रत्ती, छोटी इलायचीका चूर्ण २ रत्ती मट्ठाके साथ दें। प्रमेहपर त्रिफलाके चूर्ण और शहदके साथ। सन्निपातमें अदरखके रसके साथ. उदरशूलपर एरण्ड तैलके साथ, कुष्ठ रोगमें खैरके क्वाथके साथ। अर्श रोगमें नागकेशरके चूर्ण, मक्खन और मिश्रीके साथ।

उपयोग—यह पर्पटी ग्रहणी, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, वातश्लेष्मज्वर, सन्निपात, वृक्कशूल (Renal Colic) वातरक्त, कुष्ठ, आत्रपित्त प्रकोप, शोथ, मन्दाग्नि, अतिसार, पाण्डु आदि रोगोंका नाश करनेमें हितकर है।

इस ताम्रपर्पटीमें ताम्रभस्म प्रधान है। ताम्रका असर विशेषत: यकृत्, प्लीहा और मूत्रपिण्ड पर होता है; जिससे उन पिण्डोंकी विकृतिसे हुए रोगोंमें ताम्र पर्पटी लाभ पहुँचाती है। एवं पित्तविसर्जन क्रियामें प्रतिबन्ध होनेके कारण उत्पन्न होनेवाले अतिसार, संग्रहणी आदि रोगोंमें ताम्र पर्पटी विशेष लाभदायक है। इस पर्पटीमें विशेष गुण ताम्रका है। उसका वर्णन ताम्रभस्ममें पहिले होगया है।

क्वचित् यकृत्वृद्धि जीर्ण होनेपर त्रासदायक अतिसार होने लगता है; ऐसे समयपर यकृद्वृद्धि और अतिसार, दोनोंको दूर करनेका कार्य ताम्र पर्पटीके सेवनसे

होता है।

(४) विजय पर्पटी

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म ४-८ तोले और शुद्ध वच्छनाग १ तोला लेवें। पहिले पारद गन्धककी कज्जली करें। पश्चात् ताम्रभस्म और वच्छनागको मिला गोघृतमें कल्क बना लोहकी कलछीमें मन्दाग्निपर रस करें। रस रक्तवर्णका होनेपर केलेके पत्तेपर डालकर पर्पटी बना लेवें। इस रसायनको ग्रन्थकारने "महाविजय पर्पटी" कहा है। (र० का०)

मात्रा—½ से २ रत्ती दिनमें २ से ३ वार।

अनुपान—ग्रहणी रोगमें पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल तथा सोंठ) और शहद। राजयक्ष्मामें शहद-पीपल। शूलमें अरंडीका तैल। उदरवात पर घीकुवारका रस। सन्निपातमें अदरखका रस। पाण्डुमें त्रिफलाका जल। दादमें वावचीका रस। प्रमेहमें त्रिफला और शहद। कुष्ठरोगमें खदिरकी छालका क्वाथ।

उपयोग—यह पर्पटी सन्निपातमें उष्णता, रक्तके दबावकी वृद्धि, नाडीकी गति बढाना, अतिसार, बेहोशी आदि प्रकोपोंको दूर करके तुरन्त रोगको शमन करती है। ऐसे ही ग्रहणी शूल, उदरवात प्रमेह और कुष्ठ आदि रोगोंको दूर करती है।

उपरोक्त ताम्र पर्पटीका गुण इस पर्पटीमें है, और वच्छनागके गुण—शरीरमेंसे दोषोंका प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालना, वेदना शमन करना, नाडीकी बढी हुई गतिको कम कर देना इत्यादि—इस पर्पटीमें सम्मिलित होते हैं। मन्दाग्नि और यकृत्, प्लीहा, मूत्रपिण्ड आदिकी विकृतिके बादमें ज्वरसहित अतिसार या ग्रहणकी रोग उत्पन्न हुआ हो ऐसे समय विजय पर्पटी रोगको तुरन्त नष्ट करती है।

यदि यकृत् और प्लीहाकी विकृतिके बाद फुफ्फुस विकृत होकर राजयक्ष्मा हुआ हो तो यह पर्पटी मूलकारण रूप इन स्थानोंको सशक्त बनाकर ज्वरको दूर करके राजयक्ष्माका शमन करती है। एवं यकृत् प्लीहाकी विकृतिसे चलनेवाले शूल, उदरवात, पाण्डु, पित्तज और कफज प्रमेह तथा कुष्ठ आदि रोगोंको भी नष्ट करती है।

सूचना—ताम्र भस्म और वच्छनाग, दोनों अधिक परिमाणमें होने से बहुत कम मात्रामें इस पर्पटीका उपयोग करना चाहिये।

(५) लोह पर्पटी।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म, तीनोंको समभाग लेवें। पारद-गन्धककी कज्जली करके लोह भस्म मिलावें। पश्चात् पूर्वोक्त रीतिसे पर्पटी बना लेवें। (भ० र०)

यदि लोह पर्पटीमें गन्धक द्विगुण लिया जाय तो पर्पटी अधिक सौम्य बनती

है। वह प्रसूता और छोटे बालकोके लिये विशेष उपकारक है।

मात्रा--१ से ३ रत्ती दिनमें ३ समय जीरेके चूर्ण और मठ्ठेके साथ या धनिये जीरेके क्वाथसे दें। मात्रा १ रत्तीसे प्रारम्भ कर शनैः शनैः बढ़ावें।

उपयोग--यह पर्पटी संग्रहणी, अतिसार, पाण्डु, कामला, आमवात, कुष्ठ, शूल, प्लीहावृद्धि, आमाशयकी निर्बलता, मन्दाग्नि, उदावर्त, शोथ और स्त्रियोंके प्रसूति रोगको दूर करती है।

लोह पर्पटीमें रस पर्पटी और लोहभस्मके गुण मिले हुए है। लोहभस्मका मुख्य गुण रक्ताणुओंको बढानेका है। यह रस पर्पटीकी अपेक्षा इसमें अधिक है। लोह पर्पटी पाण्डु रोगीको विशेष अनुकुल रहती है। जब ग्रहणीरोगके साथ प्लीहावृद्धि पान्डु रोग, कामला या रक्तमें रक्ताणुकी न्यूनता हो; तब यह लोह पर्पटी अच्छा काम देती है। दीपन-पाचन गुण होनेसे यह पर्पटी मन्दाग्नि, आमवात, शूल, पित्तज प्रमेह और उदरवात आदि रोगोंको भी शमन करती है। रक्तमें रहे हुए दूषित अणुओंका नाश करके शुद्ध रक्ताणुओंको बढाती है। इस हेतुसे पित्तप्रधान कुष्ठ-रोगमें भी लाभ पहुँचता है; और शोथ दूर होता है। एवं यह पर्पटी प्रसूताके जीर्ण या मंद ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, आमशूल, प्लीहावृद्धि, यकृत्‌वृद्धि, पाण्डु, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, आमवात इत्यादिको भी दूर करती है।

(६) बोल पर्पटी।

विधि--शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले और बीजाबोल ४ तोले लेवें। बीजाबोलको थोडा दूधका हाथ (मुण) लगालें। फिर कलछीमें कज्जलीका रस बना, बोलका चूर्ण मिलाकर तुरन्त केलेके पत्तोंपर पर्पटी बना लेवें। एक आध मिनट देरी होगी, तो बोल जलकर पर्पटी न्यून गुणयुक्त बन जायगी। दूधका हाथ न लगाया जाय, तो पर्पटी कठोर बनती है और बोलका सत्व भी कुछ जलता है। (यो० र०)

रसयोगसागर कारने 'रक्तारि रस' का पाठ लिखा है। उसमें भी पारद, गन्धक और बोल, ये ३ औषधियाँ हैं। इसके अनुवादके अन्तमें बोलको बीजाबोलकी अपेक्षा बीजक निर्यास (हीरादोखी गोद, खुनखराबा, Kino) को लेना विशेष हितावह माना हैं। रक्तस्त्रावका तत्काल शोध करना हो, तो हीराबोलकी अपेक्षा हीरादोखी आशुफलदायी है, ऐसा विद्वानोंका अनुभव है।

मात्रा--२ से ८ रत्ती मिश्री और शहद, मक्खन-मिश्री, गुलकन्द, अशोकारिष्ट या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २ से ३ समय देवें। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

उपयोग--यह बोल पर्पटी बोलबद्ध रसकी अपेक्षा रक्तातिसार, रक्तपित्त,

रक्तार्श (खूनी बवासीर), रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव आदि रोगोमें रक्तस्राव बन्द करनेके लिये सत्वर लाभ पहुँचाती है। बोल पर्पटीके प्रयोगसे रक्तवाहिनियाँ सकुचित होती है, जिससे रक्तपित्त, उर क्षत, अर्श और स्त्रियोके रक्तप्रदर आदि रोगोमें शीघ्र लाभ पहुँचता है। गर्भाशयमेंसे होनेवाले रक्तस्राव और रक्तार्शमें भी रक्त स्रावको त्वरित बन्द करती है। रक्तस्रावके रक्तको बन्द करनेके लिये इस पर्पटीके साथ अकीकपिष्टी और तृणकान्तमणिपिष्ठी मिला देनेसे विशेष लाभ होता है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले मिलाकर कज्जली करें। कज्जलीको कलछीमें डाल रखकर काले बोल (एलवा) का चूर्ण ८ तोले मिला तुरन्त केलेके पत्तेपर डालकर दबा देवें। (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से ६ रत्ती दिनमें २ बार शहद और घी या शहद और मिश्रीके साथ दें, या मुनक्कामें रख निगलवा देवें।

उपयोग—यह पर्पटी स्त्रियोके दूषित रक्तका स्राव करा गर्भाशयको शुद्ध और बलवान बनाती है। यद्यपि गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव करानेके लिये कपासमूलत्वक्का क्वाथ या अरिष्ट दिया जाता है, परन्तु कपासमूलत्वक् गर्भाशयको उत्तेजित करके उसमेंसे रक्तस्राव करता है, परन्तु वह रक्तस्राव स्वयमेव बद नही होता। यह दोष इस पर्पटी में नही है। यह पर्पटी दूषित रक्तका स्राव करा फिर स्तम्भन क्रिया भी करती है। इस हेतुसे इसके प्रयोगमें रक्तस्रावका अतिरेक नही होता।

इस पर्पटीमें पित्त स्थानमेंसे पित्तका सम्यक् विसर्जन करानेका गुण है। इस हेतुसे यकृत् पित्तका स्राव सम्यक् न होनेसे उत्पन्न होनेवाले अतिसार आनाह आदि विकार तथा आमाशयमें पित्तस्राव योग्य न होनेसे उत्पन्न अपचन आदि विकारोको यह दूर करती है।

जिस तरह यकृत्की निर्बलतासे उत्पन्न विविध व्याधियोमें यह पर्पटी लाभ पहुचाती है, उस तरह अन्त्रस्थ वातवाहिनियोको भी शक्ति प्रदान कर पुरःसरण क्रिया उत्तेजित कराती है। इस हेतुसे कोष्ठबद्धतामें यह पर्पटी अच्छा कार्य करती है। विशेषत उपदंशज बद्धकोष्ठपर अच्छा गुण दर्शाती है।

इसके अतिरिक्त यह गर्भाशयको सबल बनाती है। अत गर्भाशय विकृति और तरुण स्त्रियोको होनेवाले हारिद्रक और हलीमक पाण्डु में उपयोगी है। एव नष्टार्त्तव और पीडितार्त्तवमें भी इस बोल पर्पटीसे अच्छा लाभ होता है। (औ०गु०ध०शा०)

(७) पंचामृत पर्पटी।

विधि—शुद्ध पारद, लोह, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म २-२ तोले औ शुद्ध गन्धक ८ तोले लें। सबको मिला, कज्जली कर यथाविधि पर्पटी बनाले।

(यो० र०)

मात्रा--१ से ३ रत्ती दिनमें २से३ वार कुड़ेकी छाल, पीपलके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर चाटें। या भूनी हींग, सैंधानमक और जीरेके साथ देवें। अन्त्रक्षयमें आध-आध रत्ती जसद भस्म भी मिलाते रहें। मात्रा १ रत्तीसे आरम्भ करके धीरेधीरे बढावें

उपयोग--यह पर्पटी आमऔर रक्तयुक्त वाहिका,संग्रहणी ,अतिसार, अग्निमांद्य, वमन, बवासीर, ज्वर, क्रमि, सूजन, क्षय, पाण्डु, अम्लपित्त और प्रसूता स्त्रियोंके ताप, अतिसार, संग्रणी, शिरर्दद और सूजनको दूर करती है ।

सब कज्जलीयुक्त पर्पटियोंमें पञ्चामृत पर्पटी श्रेष्ठ हैं । इस पर्पटीके कार्य मध्यकोष्ठमें पचनेन्द्रियको शक्तिदायक, अँतड़ीके दोषनाशक और जन्तुघ्न, इन तीनों प्रकारके हैं। इसका वियोजन भिन्न-भिन्न स्थानोंमें होता है। ग्रहणीमें थोड़े भागका शोषण होनेसे तत्रस्थ उपतापका शमन होता है। कुछ भाग यकृत् और पक्वाशयमें शोषण होकर लाभ पहुंचाता है । इनमेंसे ताम्रभस्म विशेषतः यकृत्में जाकर अपना कार्य करती हैं; और लोहभस्म पक्वाशयमें स्तम्भक और शक्तिदायक असर पहुंचाती है । पारद, गन्धक और लोहका कार्य ब्रहदन्त्रकी शक्तिको बढ़ानेके लिए होता है। अभ्रकभस्म श्वसनेन्द्रिय, पेचापृत पर्पटी, श्वासवह स्त्रोसों, श्वासवह केन्द्र, धातुपरिपोगणक्रम औरमनोदेशको लाभ पहुचाती है ।

पञ्चामृत पर्पटी पित्तप्रधान रोगोंमें भी दी जाती है । कारण, ताम्र पित्त का निःसरण करता है; और पित्तमार्ग का प्रतिवन्ध मिटाताहै। पित्त स्थानके मन्दत्वके हेतुसे उत्पत्ति और स्त्राव न्यूनांशमें होता हो, तो पर्पटी विशेष हितकर है। जीर्ण संग्रहणी, जीर्ण क्षयजन्य अतिसार जीर्ण अम्लपितसे उत्पन्न अतिसार और रक्तरहित अतिसारमें रोगीकी प्रकृतिके अनुसार मट्ठा या दूधके साथ देनेसे रोग को शीघ्र [मिटा ती है।

क्षयजन्य जीर्ण अतिसार और जीर्ण संग्रहणीमें पञ्चामृत पर्पटीका उत्तम उपयोग होता है । अति क्षीण हुए रोगियोंको सुवर्ण पर्पटी भी दीजाती है परन्तु सुवर्ण पर्पटी जब अधिक ज्वर न हो; एवं रोगी की मानसिक अवस्था विचलित न हो, तब दी जातीहै । केवल क्षयजन्य विषके हेतुसे अन्त्रमें विकृति होकर अतिसार उत्पन्न हुआहोः फिर उससे रोगी अत्यन्त क्षीण हुआ हो; और बलमांसविहीनताकी प्राप्ति हुई हो, तो सुवर्ण पर्पटीका उत्तम उपयोग होता है। सुवर्ण पर्पटी क्षयके विषकी नाशक और स्तम्भक है; इसमें शोधंन गुण बिल्कुल नहीं है। पञ्चामृत पर्पटीमें कुछ अंशमें शोधन गुण भी रहा है । यह गुण भी कोमल प्रकृति वालोंपर प्रतीत होता है। अतः शोधन गुणकी आवश्यकता होनेपर पञ्चामृत पर्पटी दीजाती है ।

पञ्चामृत पर्पटीका कार्य निर्जन्तुक क्षयमें विषघ्न और धातु-परिपोषण क्रमको व्यवस्थित करने।ा है । इसी हेतुसे फुफ्फुस, यकृत्, अन्त्र, तीनों स्थानोंमेंसे जहाँ

क्षय-विकृति हुई हो, वहां पर यह अपना लाभ पहुँचाती है यदि यह विकृति जन्तुजन्य विषप्रकोपसे हुई हो, और समस्त शरीर में फैल गई हो। उस हेतुसे शरीर कृश हो, तथा प्रबल अतिसार भी हो, तो सुवर्ण पर्पटी देनी चाहिये। सुवर्णपर्पटीका कार्य विशेषतः अन्त्रविकृति पर होता है, और पञ्चामृत पर्पटीके कार्यक्षेत्र अन्त्र, यकृत् और फुफ्फुस प्रदेश, ये तीन हैं।

संग्रहणी—अनुलोमक्षयकी संप्राप्ति, यकृत्के पित्तकी उत्पत्ति न्यून न होने या अन्त्रमें पित्तस्राव न्यून होनेसे हुई हो, तो यह पर्पटी दीजाती है। जब संग्रहणीमें दस्त सफेद रंगका बाजरेके आटेके घोल सदृश, दुर्गन्धयुक्त होता हो, और दस्तके समय अधिक चिकना पडता हो तथा मानसिक आघात होनेपर रोग बढ जाता हो तो पञ्चामृत पर्पटी हितकारक है। बडे-बडे जुलाब, क्षयके कीटाणु और बलमांसविहीनता आदि लक्षण हो, तो सुवर्ण पर्पटी देनी चाहिये।

वक्तव्य—प० श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्यने लिखा है कि इस पञ्चामृत पर्पटीमें वंगभस्म और यशदभस्म २-२ तोले मिलाकर सप्तामृत पर्पटी बनायी है। वह पञ्चामृत पर्पटीसे अधिक गुणकारी है। अन्त्रक्षयमें सप्तामृत पर्पटी अकेली या सुवर्ण पर्पटीके साथ मिलाकर देनेसे विशेष लाभ होता है।

यदि अम्लपित्तके रोगीको पर्पटी देनी हो तो जहरमोहरा पिष्टी और द्राक्षावलेह मिला कर देनी चाहिये। अधिक अग्निमान्द्य हो, आमाशयका पचन अति कम हो, तो पञ्चामृत पर्पटीके साथ एरंड ककडी सत्व (Papain) मिला देनेसे विशेष लाभ पहुँचता है।

यदि संग्रहणी रोगीको शीतसह ज्वर रहता हो, अति अशक्ति आगई हो, पचनशक्ति भी अति मंद हो, तो पञ्चामृत पर्पटीके साथ अभ्रक भस्म, सप्तपर्णघन, एरंड ककडीका सत्व (Papain) और जातिफलादि चूर्ण मिलाकर देना चाहिये।

वातज ग्रहणी होनेपर तालुशोष, चक्कर आना, अति निर्बलता, कानोंमें शब्द होना, हाड-हाड दुखना, शूल चुभाने समान वेदना, स्वादिष्ट भोजनको चाह होना, गुदामें काटनेके समान पीडा होना, आफरा आना, झागयुक्त मल गिरना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकारपर पञ्चामृत पर्पटी, कालानमक मिले हुए मट्ठेके साथ देना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध गंधक ८ तोले, शुद्ध पारद ४ तोले, लोहभस्म २ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला और ताम्र भस्म ६ माशे ले। सबको यथाविधि मिला, कज्जली कर पर्पटी बना लेवें। (र० चा०)

मात्रा—१ से ८ रत्ती दिनमें ३ समय कुड़ाकी छाल, पीपल और शहद या शहद और गोघृतके साथ, या रोगानुसार अनुपानके साथ दें। १ रत्तीसे आरम्भकर मात्रा

शनैः शनैः बढ़ावें ।

उपयोग—यह पर्पटी नाना प्रकारकी ग्रहणी, अरुचि, दुष्ट बवासीर, वमन जीर्ण अतिसार, ज्वरातिसार, रक्तपित्त, क्षय आदि रोगोंको दूर करती है । यह वृष्य, हृद्य, आयुवर्द्धक, वलीपलितनाशक, और सब रोगोंको दूर करनेवाली है । अग्नि प्रदीप्त करती है; जिससे पुनः नूतन रोगकी उत्पत्तिकी शंका ही नहीं रहती ।

पहली विधि और दूसरी विधिमें औषधियाँ समान हैं; केवल मात्रामे अन्तर है । पहिली विधिमें ताम्र अधिक होनेसे अधिक उष्ण है; इसमें ताम्र कम होनेसे यह सौम्य है । ग्रहणीमें जब पित्तप्रवेश न्यून होता हो; मलका रंग श्वेत हो; यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानको अधिक बल देना हो; और पित्तस्राव अधिक कराना इष्ट हो; तब पहिली विधिवाली पर्पटी उपादेय है । जब इन कार्योंकी आवश्यकता कम हो; मलमें पीलापन हो; पित्तकी अधिकता हो तथा हृदयपर उत्तेजक और बल्य असर एवं कफ निर्दोष कराने और रक्तवृद्धिकी आवश्यकता विशेषांशमे हो; तब यह दूसरी विधि उपयोगी है । इस रीतिसे अन्य रोगोंके लिये भी किञ्चित् अन्तर पड़ता है ।

(८) प्राणदा पर्पटी ।

विधि—शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म, कालीमिर्च, शुद्ध वच्छनाग, प्रत्येक २–२ तोले और शुद्ध गंधक १४ तोले लेवे । पारद गंधककी कज्जलीके साथ और ओषधियोंको मिला लोहेकी कड़ाहीमें थोडे घृतके साथ डालकर बेरके कोयलोंकी अग्निपर रक्खें । सम्हालपूर्वक लोहशलाकासे चलाते रहें । रस होनेपर पर्पटी बना लें । (नि० र०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती शहद-पीपल या रोगानुसार अनुपानके साथ दें । ग्रहणी रोगमें मात्रा १ रत्तीसे आरम्भ करके शनैः-शनैः बढ़ावें; किन्तु ३ रत्तीसे अधिक न बढ़ावें । कारण, इसमें हृदय अवसादक वच्छनाग मिला हुआ है ।

उपयोग—प्राणदा पर्पटी पाण्डु, प्रवाहिका, सग्रहणी, ज्वरातिसार, खाँसी, क्षय, प्रमेह, और मन्दाग्निको दूर करती है ।

यह पर्पटी आमपाचक, उष्ण, जन्तुघ्न और ज्वरहर है । आमकफको जलाती है तथा नूतन उत्पत्तिको रोकती है; सेन्द्रिय विषको प्रस्वेद और मूत्रद्वारा बाहर निकालती है; अग्निको प्रदीप्त करती है तथा ज्वरातिसार, प्रवाहिका, कफकास, क्षयरोगमें अतिसार, अग्निमांद्य और कफ प्रमेहको नष्ट करती है ।

आमाशयिक रसमें जब (Acid Hydro Chloric) लवणाम्लकी उत्पत्ति कम होजाती है, तब आमोत्पत्ति बढ़ जाती है । ऐसी अवस्थामे अपथ्य भोजन, अधिक भोजन, देरसे पचनेवाला भोजन या भोजन पर भोजन किया जाय, तो आमकी अधिक

वृद्धि हो जाती है। फिर मलके साथ थोडा-थोडा आम निकलता रहता है। और कुछ अन्त्रकी दीवारके भीतर चिपकता रहता है। जब अन्त्रमें आमका संग्रह बढ जाता है, तब द्रवांशके शोषणमें प्रतिबन्ध होता है। फिर द्रव अधिक हो जानेपर आमातिसार की संप्राप्ति हो जाती है। उस समय अरुचि, क्षुधानाश, व्याकुलता, उत्ताप, वमन (किसी को खट्टी वमन), और निद्रानाश आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी स्थिति में पहिले एरण्ड तैलका विरेचन देकर आमको निकाल देना पडता है। फिर आमोत्पत्तिको रोकने और अतिसारको दूर करनेवाली ओषधि दी जाती है। किन्तु बार बार आहार-विहारमें भूल होनेपर रोग जीर्ण हो जाता है और थोडे-थोडे दिनपर (आमका संग्रह होने पर) आक्रमण होता रहता है। ऐसी स्थितिमें तक्रके अधिकारीको तक्रकल्प कराया जाता है। तथा प्राणदा पर्पटीका सेवन चतु सम चूर्ण (लौंग, जायफल, सोंठ और सोहागेका फूला) के साथ कराया जाता है।

यदि मुखपाक, अम्लवान्ति दाह आदि लक्षण हो, तो तक्र कल्प नहीं कराना चाहिये। दुग्ध कल्प कराना चाहिये। किन्तु प्रवाहिका हो तो दुग्ध कल्प भी रोगीसे सहन नहीं होता। ऐसी अवस्थामें लघु भोजनके साथ २–४ मास तक प्राणदा पर्पटी का सेवन कम मात्रामें कराया जाता है। भोजनके पश्चात् दिनमें २ बार जीरकाद्यरिष्ट या चविकासव, जो अधिक अनुकूल हो, वह एक या दोनो मिलाकर देते रहना चाहिये। हो सके तो जल को उबाल, शीतल करके लेनेकी सूचना कर देवें, जिससे आमोत्पत्ति में सत्वर लाभ हो सके।

कितनेही रोगियोंको आमसंग्रहणीके साथ पेचिश होता है। जिससे बार-बार उदरशूल होकर आममिश्रित थोडा-थोडा मल त्याग होता रहता है। ऐसी स्थितिमें प्राणदापर्पटी के साथ कुटजादि वटी मिला देनी चाहिये। भोजनके पश्चात कुटजारिष्ट देना चाहिये, तथा तक्र (या अजा दुग्ध) का सेवन भी कराते रहना चाहिये।

यदि उदर में तीव्र वेदना हो तथा मलमें आम और रक्त भी गिरता हो, तो प्राणदा पर्पटीके साथ अफीम प्रधान जातिफलादि वटी (प्रवाहिका) थोडी थोडी मात्रामें मिला देनी चाहिये।

यदि आम संग्रहणी ५-७ वर्षसे अधिक पुराना हो गया हो, शारीरिक शक्ति अति क्षीण हो गई हो, रस रक्त आदि सब धातुएं क्षीण हो गई हो और रोगी बारम्बार अपथ्य सेवन कर लेता हो, तो कोइ भी ओषधि लाभ नहीं पहुँचा सकती। फिर भी अपथ्य सेवन से आशुकारी आमातिसारका आक्रमण हुआ हो, तो एरंड तैल से उदर शुद्धि करके प्राणदा पर्पटीका ४-६ दिन तक सेवन कराने पर रोगका दमन हो जाता है।

(९) शीतल पर्पटी ।

विधि—कलमीशोरा २० तोले और गन्धकका शुद्ध तिजाव (Acid Sulphuric) २ तोले लेवें । दोनों को लोहेके सफ़ेदी लगे हुए कलई (एनेमल) के पात्रमें डालकर निर्धूम कोयलोंकी मन्द अग्नि पर रखें, और सम्हालपूर्वक लोह-शलाकासे चलाते रहें । गन्धकका धुआँ श्वासमें न आ जाय, इसका ध्यान रखें । धुआँ निकल जानेपर जब पतला रस सफ़ेद रंगका बन जाय, तब पात्रको नीचे उतारकर उसीमें ही चारों ओर पर्पटी को फैला देवें; फिर शीतल होनेपर पर्पटी को खोल लेवें । (श्री प० वंशीधरजी आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा—६ से १२ रत्ती सुबह जीरेके चूर्णके साथ देकर थोड़ा शीतल जल पिलावें । आवश्यकतापर एक घण्टे बाद दूसरी मात्रा दें ।

उपयोग—यह पर्पटी मूत्रकृच्छ्र या अन्य किसी कारणसे उत्पन्न हुए मूत्रावरोध को सत्वर दूर करती है; एवं अम्लपित्त, वमन, उदरशूल, वृक्कशूल अजीर्ण, यकृद्विकार आदिमें भी हितकर है ।

अम्लपित्त रोगीको भोजन कर लेनेके बाद हृदयमें शूल निकलता हो तो यह पर्पटी भोजनके बाद दिनमें दो बार शीतल जलके साथ देनी चाहिये । इसके सेवन-से दूषित पित्तका रूपान्तर होता है, मूत्र साफ़ आता है और दाह, शूल और बेचैनी दूर होते हैं ।

आयुर्वेदके मतानुसार शोरा अति उष्ण, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक दाहक, शोषक, वातनाशक और पित्तकारक है । प्लीहा, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग, वातरक्त, कुम्भकामला, श्वास, शूल, आध्मान, पिटिका आदिमें हितवाह है ।

डाक्टर वसु लिखते हैं कि, शोरे का सेवन अल्प मात्रामें करनेपर लाला-निःसारक, अग्निप्रदीपक, बल्य, शैत्यकारक, रसायन (परिवर्तक), पित्तनिःसारक और क्षारनाशक है । यह क्षुधाको बढ़ाता है; और बलका संचार करता है) अधिक मात्रामें सेवन करनेपर प्रदाह(दाह-शोथ) और दाह-विष-क्रियाकी उत्पत्ति कराता है । फिर मुँहके भीतरकी श्लैष्मिककला पीली हो जाती है ।

शोरेके उक्त गुण इस पर्पटीमें अवस्थित हैं । अतः अत्यधिक मात्रामें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये ।

(१०) मल्ल पर्पटी (पर्पटी रस) ।

विधि—सफ़ेद राल १६ तोले और सोमल २ तोले लेवें । प्रथम लोहेकी कड़ाहीमें थोड़ा घी लगा रालका रस तैयार करें । फिर नीचे उतार तुरन्त सोमलका चूर्ण मिला देवें । पश्चात् केलेके पत्ते पर फैलाकर पर्पटीको दबा दें । (सि० भे० म०)

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ रत्ती शहदके साथ दिनमें दो बार ।

उपयोग—मल्ल पर्पटी कफज्वर, वातज्वर और ज्वरके उपद्रवरूप वातभ्रम

(चक्कर आना), श्वासावरोध, कफवृद्धि और हृदयावरोध आदि दोषोंको दूर करती है।

इस पर्पटीमें सोमल आता है, अतः यह तीक्ष्ण और उष्णवीर्य है। इसका फुफ्फुस, हृदय और वातवाहिनियोंपर उत्तेजक परिणाम होता है। अतः जब तब कफप्रकोपमें मंद-मंद ज्वर या अन्य विकार होते हों, तब यह अच्छा काम देती है। विशेष वर्णन मल्ल भस्ममें देखें।

सूचना—पित्तप्रकोपमें इस औषधिका उपयोग न करें। ज्वरका वेग अधिक बढ़ रहा हो, उस समय यह औषधि न दें। वरना अस्राभिनोदन (रक्तके दबावकी वृद्धि) होकर मस्तकमें रक्त बहुत बढ़ जायगा और बड़ोंगी, भ्रम आदि लक्षण बढ़ जायेंगे। अतः ज्वर कम होनेपर दें।

(११) अभ्र पर्पटी।

विधि—अभ्रक भस्म १ भाग, शुद्ध पारद २ भाग और शुद्ध गन्धक ४ भाग लेवें। सबको यथाविधि मिला, कज्जली कर, यथाविधि पर्पटी बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती त्रिकटु और शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह पर्पटी कफप्रधान कास, क्षय रोगमें अतिसार, सगर्भा स्त्रीके अतिसार, संग्रहणी, श्वास, अरुचि, पाण्डु और सब प्रकारके कफप्रधान रोगोंको नष्ट करती है। अनेक बार यह पर्पटीके साथ मिलाकर व्यवहृत होती है।

सूचना—भोजन मधुर और हल्का देना चाहिये। क्षार, खटाई तीक्ष्ण पदार्थ, बैंगन और दालका त्याग कराना चाहिये।

खरलीय रसायन ।

रस पारदको कहते हैं । इस कारणसे जिन जिन औषधियोंमें पारद या पारदके खनिज द्रव्य सिंगरफको मिलाया जाता है,उन सबका रस प्रकरणमे अन्तर्भाव होता है और वे सब रसायन कहलाते हैं । रसायनके २ विभाग ,कूपीपक्व और पर्पटी,पहले प्रकरणमे लिख चुके हैं । इस कारणसे इस प्रकरणका नाम "खरलीय रसायन" रक्खा हैं ।पारद-युक्त औषधिको जितने अधिक परिमाणमें खरल किया जाय, उतने ही पारदके परमाणु सूक्ष्म होते हैं, जिससे लाभ भी उतनी ही शीघ्रतासे पहुंचता है । पारदयुक्त औषधि विशेष समयतक गुणयुक्त रहती है और थोड़ी मात्रामे शीघ्र लाभ पहुंचाती है ।

अनेक औषधियां पारदमिश्रित न होनेपर भी रसायन समान गुणयुक्त होनेसे उन औषधियोंका इसी प्रकरणमें समावेश किये हैं ।

पारा, गन्धक और विषैली वस्तुओंको शुद्ध करके ही औषधि-योगमे मिलाना तथा खानेके लिये आंवलासार गन्धक ही उपयोगमे लेना चाहिये। दंडागन्धक खानेके लिये हितकर नहीं है ।

फिटकरी और सोहागाका फूला करके उपयोगमे लेना चाहिये एवं हींगको भूनकर ही मिलाना चाहिये ।

औषधि तैयार करनेमे पारद, गन्धक,भस्म और काष्ठादिक वस्तुएं साथमे हों, तो पहले पारद और गन्धकको मिला १२घंटे खरलकर कज्जली करें। फिर भस्म मिलावे पश्चात् विषैली वस्तुएं और अन्तमे काष्ठादि वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिलावे ।पाटमे शिलाजीत , अफीम और गूगल हो, तो इनको थोड़े जलमे मिला एक रस करके मिलाना चाहिये ।

यदि रसायनोंके गुणकी वृद्धि करना हो तो पारद या कज्जली को पहिले रोगशामक औषधियोके क्वाथ या स्वरसकी भावना देवे। फिर प्रयोग तैयार करें ।जैसे ज्वर दूर करनेके लिये ज्वरघ्न औषधियोके क्वाथकी भावना पित्तप्रकोपमें पित्तशामक, वात-वृद्धिमे वातहर, कफनाशके लिये कफस्रावी, कुष्ठ नाशके लिये कुष्ठघ्न,अतिसार होनेपर ग्राही एवं मधुमेहको दूर करनेके लिये गुडमार , जामुनकी छाल या न्यग्रोध आदि वर्ग द्रव्योकी भावना देनेसे रसायन सत्वर लाभ पहुंचाता है ।

वनस्पति द्रव्योंको उसी द्रव्यके स्वरसकी भावनायें देनेसे उस द्रव्यमे गुणवृद्धि होती है । यह अनुभव आमलकी रसायन आदि औषधियोंके प्रयोगसे मिलता है । वनस्पतिके समान तैल, घृत, धातु, उपधातु आदिके साथ संयोग,विश्लेष(शोधनद्वारा मलत्याग), काल, संस्कार और युक्तिसे नूतन गुणधान भी कराया जाता है ।यह औषधि रस-रक्त

आदिमें स्वर गोपित होजाती है। फिर थोडी ही मात्रामें अधिक फल प्राप्ति कराती है। इस आयुर्वेदिक सिद्धांतको महर्षि आत्रेयने कल्पस्थानके १२ वें अध्यायमें निम्न वचनामें दर्शाया है।

भूयश्चैषां बलाधानं कार्यं स्वरसभावनैः ।

सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्याद् बहुकर्मकृत् ॥

स्वरसैस्तुल्यवीर्यैर्वा तस्माद् द्रव्याणि भावयेत् ।

अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्याल्पकर्मताम् ॥

कुर्यात्संयोग-विश्लेष-काल-संस्कार-युक्तिभिः ।

इन नियमको लक्ष्यमें रखकर ओषधियोंको अनुकूल द्रव्योंके स्वरसोंकी भावना देनेका आचार्योंने विधान किया है। रोगशामक मनाल गुणकारी द्रव्योंकी भावनाएं शास्त्रीय मर्यादा अनुरूप जितनी अधिक दी जायगी, उतनी ही गुणवृद्धि होती है। भावना देनेमें आलस्य करनेपर गुणलाभ कम मिलता है और देर भी होती है।

रस या गुटिकाप्रभृति ओषधियोंमें जहांपर भावना देनेके लिये वनौषधिका साक्षात् स्वरस मिल सकता हो, वहांपर अच्छी रीतिसे ओषधि आर्द्र हो जाय--रबडी सदृश हो जाय, उतना स्वरस मिला सूखनेतक खरल करनेको एक भावना कहते हैं। स्वरसका अभाव होनेपर जिन वनौषधिके क्वाथकी भावना देनी हो, उसे भावद्रव्यके (जिस ओषधि को भावना देनी हो उसके) समान लेकर ८ गुणे जलमें मिला क्वाथकर अष्टमांश शेष रहनेपर भावना दें। यदि उतने क्वाथसे भीद्रव्यमें अच्छी रीतिसे गीलापन न आता हो, तो क्वाथ करनेकी ओषधि दुगुनी लेकर क्वाथ करें।

जब रसायन या अन्य कोई ओषधि खरलमें हो और घोटाई चालू न हो, या रात्रिके समय घोटाई बन्द रहे, तब मोटे कार्डबोर्ड या लकडीके ढक्कनसे खरलको ढक देना चाहिये जिससे बीचमें वत्ता खडा रह सके। इस रीतिसे औषधि बन्द रहनेसे बाहरका कचरा या सूक्ष्म जन्तु नहीं गिरेंगे। इसके अतिरिक्त भावनाके लिए मिलाया हुआ रस निकम्मा सूखकर ओषधिमें अनावश्यक क्षारकी वृद्धि नहीं होगी। जैसे सुवर्णमालिनीवसतकी घोटाई अधिक दिनातक नहीं होती। उस ओषधियुक्त खरलको यदि रात्रिके समय न ढकें, तो उसमें नीबूके रसके क्षारका परिमाण अधिकांशमें हो जायगा जिससे ओषधिका गुण न्यून हो जायगा। भावनामें मिलानेका रस उतने अंशमें मिलावें कि, जिसमेंसे बहुत हिस्सा शामतक घोटाई करनेमें सूख जाय। अधिक रस बार-बार शेष रह जानेसे ओषधियोंमें कुछ अंशमें विकृति हो जाती है।

ओषधियोंको भावना देनेके पश्चात् गोलियां बनाकर छायामें जहां कूडा कचरा न

उड़ता हो, ऐसे स्थान पर सुखावे, और सूख जानेपर साफ अच्छी डाटवाली शीशियोंमें भर देवें। यदि थोड़ी गीली गोलियां भरदी जायगी, तो उस औषधिमें विक्रिया होकर थोड़े ही दिनोंमें दुर्गन्ध आने लगेगी एवं औषधि अच्छी सूख जानेपर भी खुली रक्खी जायगी, तो उसमसे सत्वांश उड़ता रहनेसे औषधि थोड़े ही दिनोंमें हीनवीर्य हो जायगी।

रसायनवाली औषधियोंको घोटनेके लिये पक्के पत्थरके खरलका उपयोग करें। लोहेके खरलमें क्षारयुक्त औषधि मिलाने अथवा नींबू आदिके रसोंकी भावना देनेसे औषधिमें लोहेका जंग मिल जाता है।

[१] विश्वतापहरण रस [विषमज्वर]

विधि--शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल और अकलकरा, इन औषधियोंको समभाग लेकर खरल करें। फिर करेलेके पत्तोंके रसमें १२ घण्ट घोटकर उड़दके समान गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा--१ से २ गोली जीरा-मिश्री ६-६ रत्तीके साथ दें।

उपयोग--यह रसायन सब प्रकारके विषमज्वर, धातुगतज्वर, अपचनजनित ज्वर, जीर्णज्वर, द्वन्द्वज्वर, वातज्वर और कफज्वरको दूर करनेमें अति उपयोगी है अनेक दिनोंतक स्थिर रहनेवाले ज्वर इससे थोड़े ही दिनोंमें चले जाते हैं। नूतन और जीर्णज्वर जिनमें शीत रहता है उन ज्वरोंमें इससे सत्वर लाभ होता है। महती ज्वर, जो रस-रक्त मांस आदि धातुओंके आश्रित होकर कुपित होता है-नाना प्रकारके उपद्रवोंको आरम्भ करता है, उन सबको सम्पूर्ण उपद्रवों सहित थोड़े ही दिनोंमें दूर कर देता है। यकृत-प्लीहावृद्धिको कम करता है, कच्चे आमको जलाता है; पाचनक्रियाको बढ़ाता है; और विषमज्वरके कीटाणुओंको नष्ट कर ज्वरको निवृत्त करता है।

मलेरियाके कितने ही रोगी बार-बार क्विनाइन लेते हैं। फिर क्विनाइन लेते हुए ज्वर निवृत्ति नहीं होती। ४-८ रोजमें पुनः पुनः मलेरिया आता रहता है। किसी-किसीको क्विनाइन लेनेपर निद्रानाश, मूत्रोत्पत्तिका ह्रास, घबराहट, रक्तस्राव आदि उपस्थित होते हैं ऐसे रोगियोंको इस रसायनके सेवनसे लाभ होजाता है।

डाक्टरीमें क्विनाइन मलेरियाके लिये सर्वोत्तम औषधि मानी गई है, किन्तु रक्त-दबाववृद्धि-पीड़ित, वृक्करोगी और पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको मलेरिया आनेपर क्विनाइन न देना चाहिये क्योंकि, इन दिशाओंमें क्विनाइन देनेसे ज्वर १०५ तक बढ़ जाता है जिससे अति व्याकुलता निद्रानाश, हृदयकी धड़कन, उबाक आना, आमाशयमें पित्त अति खट्टा होकर उसका उग्र बन जाना, खट्टी-खट्टी वमन होना वमन होनेपर कण्ठमें दाह और नेत्रोंमें जलन आना, मूत्रमें जलन होना, दिनमें मूत्रावरोध,

१५ दिन तक प्रात साथ शीतभजी रस दिया गया। परिणाममें श्वासावरोध, मलावरोध, निद्रानाश और क्षुधानाश, चारों ही विकार नष्ट हो गये। यकृत्प्लीहाको भी लाभ पहुँचा।

डबल न्यमोनियां होनेसे जिसके दोनों फुफ्फुस दूषित थे, ऐसे रोगीको देखा। जिसकी चिकित्सा इंगलेन्डके पास ८ डाक्टरोंको सलाहसे हो रही थी। उन्होंने रोगीको ऑक्सिजनपर रक्खा था अर्थात् निरन्तर आक्सिजनमेंसे श्वास-ग्रहण कराया जाता था। फिर भी अधिकाधिक अवस्था बिगड़ रही थी। लम्बे समयतक चित लेटे रहनेसे शय्याव्रण (Bed sore) हो गया था। छातीपर तार्पिनके लिनिमेन्टका रोज मर्दन होनेसे बाह्य त्वचा निकल गई थी। ऐसी अवस्थामें अकस्मात् रोग प्रबल हो गया। डाक्टरोंने आशा छोड़ दी थी। मस्तिष्कावरणप्रदाह (Meningitis) हो जानेका निर्णय दिया। मूत्रमें रक्त आ रहा था। रोगी अचेत था। मन्द मन्द प्रलाप हो रहा था। नेहोसीने पतले दस्त होजाते थे। ऐसी अन्तिमावस्थामें शीतभजी शहदके साथ दिनमें २ बार देनेका आरम्भ किया। परिणाममें रोगी थोड़े ही दिनोंमें स्वस्थ हो गया।

एक १८ वर्षकी आयुवाला नवयुवक ज्वर पीड़ित था। शारीरिक उत्ताप १०३° से १०८°, मस्तिष्कमें रक्तदबाव वृद्धि, तीव्र प्रलाप, ऊठ ऊठाकर भागना, मारना, भागनेकी चेष्टा करना, मलावरोध, परिचितोंको न पहचानना आदि पित्तप्रधान लक्षण उपस्थित थे। उसे शीतभजी रसकी केवल २ मात्रा देनेपर ही प्रलापादि त्रिदोष प्रकोप शमन होगया।

एक यकृत्प्रदाहका रोगी, जिसे पहले फिरंग रोग हो गया था। उसे विसूचिकाके सदृश वमन-अतिसार, कामला, उदरपीड़ा, ज्वर और प्रतिश्यायादि उपद्रव भी होगये थे उसे आरोग्यवर्द्धिनी (नं० १) और शीतभजी रस मिलाकर दिनमें २ बार दिया जाता था। ५ दिनमें उपद्रवसह यकृत्प्रदाह दूर हो गया। केवल फिरंग विष रक्तमें शेष रहा था।

एक प्रसूता जिसे बम्बईके सूतिकागृहमें रहते रहते ज्वर आने लगा। १० दिन पूरा होनेपर १०४° से १०५° तक उत्ताप बढ गया। उन्माद, अनिद्रा पाण्डु, समग्र देहपर शोथ और कफ प्रकोपादि लक्षण प्रतीत होते थे। ऐसी स्थितिमें उसे सूतिकागृहसे रजा दी थी। विद्वान २ डाक्टरोंने आशुकारी राजयक्ष्माका प्रकोप होनेका मत भी दे दिया था। ऐसी कष्टसाध्य अवस्थामें शीतभजी रस देवदार्व्यादि क्वाथसे देना प्रारम्भ किया। एक सप्ताहमें कफ प्रकोपके सब लक्षण और शोथसह ज्वर दूर हो गया। केवल उन्माद, पान्डु और निर्बलता शेष रहे थे। फिर स्मृतिसागर रस दशमूल क्वाथसे देने और हृदयपौष्टिक

औषधिका सेवन करानेसे ४० दिनमें रूग्णा स्वस्थ हो गई।

श्रीयुत पं० कांतिलालजीके अनुभव अनुसार यह रस मुख्य वात और कफप्रकोप और गौण पित्तप्रकोपपर उत्तम कार्य करता है। इस रसायनके सेवनसे शान्त निद्रा प्राप्त होकर उन्माद और प्रलापका शमन होजाता है। पचनसंस्थामें रहे हुए आमका पचन होता है और शौच आकर उदर साफ होजाता है इस तरह मूत्रावरोध और अफारा आया हो तो वह भी दूर हो जाता हैं। रक्तमें संगृहित ज्वर विषको जलाकर तुरन्त ज्वरको शमन कर देता है। सूतिकाको वातप्रकोप होकर उन्माद हो गया हो, तो उसे भी दूर कर देता है।

प्रतिदिन आनेवाले विषमज्वरपर सुदर्शन क्वाथके साथ शीतभंजी रस देनेसे क्विनाइनके सदृश हानि नहीं होती। आमपचन होकर ज्वर दूर होजाता है। अपचनजन्य ज्वरको यह एक ही दिनमें दूर कर देता है। प्रतिश्यायसह ज्वर (Influenza) पर यह रस बनफसाके क्वाथके साथ देनेसे तत्काल अपना प्रभाव दर्शाता है। ज्वरावस्थामें रोगीको लंघन कराना चाहिये।

कफ प्रधान श्वासमें होनेवाली घबराहटको दूर करनेके लिये यह व्यवहृत होता है। आक्षेपक वातका बार बार दौरा होनेपर इस रसकी ३–४ मात्रा २-२ घंटेपर देनेसे दौरा रुक जाता है। पत्थर, लकड़ी, सलाकादि नाकमें प्रवेश होजाने पर शीतभंजी रस सुघांनेसे २–४ छींके आकर प्रवेसित वस्तु निकल जाती हैं। सन्निपातकी तन्द्रामें शीतभंजी रसका नस्य देनेसे थोड़े ही समयमें सुधि आजाती है। इस तरह इस रसका उपयोग अन्य रोगोंपर भी किया है।

उक्त अनुभवके अनुसार अन्य औषधियोंसे लाभ होनेका विवेचन किया जाय तो सामान्य बोधवाले चिकित्सकोंको अति सहायता मिलजाती है; किन्तु ग्रन्थका कलेवर बढ़ जाय, वह इष्ट न होनेसे ऐसा नही कर सकते।

दूसरी विधि—वंगभस्म, नागभस्म, पीला सोमल, शुक्ति भस्म और शुद्ध नीलाथोथा, इन ५ ओषधियोंको समभाग मिला, करेलेके पत्तोके रसकी ७ भावना देकर मूंग समान गोलियां बनावें। (र० का०)

मात्रा—१-१ गोली जीरा और मिश्रीके साथ। पालीके ज्वरमें ज्वर आनेके ६ घण्टे पहिले एक मात्रा और ३ घण्टे पहिलें दूसरी मात्रा दें। जीर्णज्वरमे दिनमें दो बार दूध पिलाकर गोली निगलवा देवें।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके विषम ज्वर, सन्तत, सतत, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, शीतज्वर, जीर्णज्वर, कफ, श्वास, आम, मन्दाग्नि, सबको दूर करता है। इस ओषधिके सेवनसे अनेक दिनोंसे आनेवाले और बार-बार उलट कर आनेवाले ज्वर भी दूर होजाते हैं।

(३) मृतराज रस ।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग और सोहागेका फूला १-१ तोला और गायकी छाछमें शुद्ध किये हुये धतूरेके बीज ४ तोले लेवें। सबको खरलमें एक दिन तक घोटें। फिर धतूरे के बीज और वच्छनागके क्वाथकी ३-३ भावना तथा त्रिकटुके क्वाथकी ५ भावना देकर उड़दके बराबर गोलियां बावें। इस औषधिको "मृतप्राणदायी मृतराज" कहते हैं। (र० यो० सा०)

मात्रा—इसमें दो गोली दिनमें २ समय, जल, अदरकके रस और मिश्री, या तुलसीके रसके साथ। ज्वररहित अतिसारमें नागरमोथेका क्वाथ, ग्रहणी और अर्शमें मिश्री और शहद, वातप्रकोपमें त्रिकटु और बिल्वमूलका क्वाथ, कम्पवात, अपबाहुक, एकांगवात, अपस्मार और उन्मादमें शुद्ध धतूरेके बीज ५ नग और मिश्रीका अनुपान दें। इस रीतिसे अन्य अनुपानोंकी योजना कर लेनी चाहिये।

उपयोग—यह रस शीतांग सन्निपात, कफज्वर, वातज्वर, वातश्लेष्मज्वर (Influenza), फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia), प्रतिश्याय, कफप्रकोपसे उत्पन्न समस्त रोग, ज्वरातिसार, आमातिसार, कफप्रधान तथा ग्रहणी रोग, अर्श, कम्पवात, अपबाहुक, एकांगवात, अपस्मार और उन्मादको नष्ट करनेमें अति उपयोगी है।

इस रसके सेवनसे नाड़ियामें संगृहीत कफ और अंतड़ीमें रहे हुये आमका शोषण होता है, तथा मल-मूत्रावरोध दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है, फिर आमाशय, फुफ्फुस, अन्त्र और मूत्राशय शुद्ध होकर अपनी-अपनी क्रियाको नियमित करने लगते हैं। तथा ज्वर शमन होजाता है।

इस रसके सेवनमें दूध, दूधके बने पदार्थ, मट्ठा, चावल और शक्कर आदि पदार्थ पथ्य मानेजाते हैं। फिर भी रोग और प्रकृतिका विचार करके भोजन देना चाहिये।

सूचना—इस रसमें वच्छनागकी मात्रा अधिक है, अतः निर्बल हृदय वालोंको यह रस अति कम मात्रामें देना चाहिये। कारण वच्छनाग हृदयकी शक्तिको शिथिल करता है।

(४) कस्तूरी भैरव रस ।

विधि—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वच्छनाग, सोहागेका फूला, जावित्री, जायफल, काली मिर्च, पीपल और कस्तूरी, सब समभाग लें। कस्तूरीको छोड़ शेष औषधियां मिलाकर ब्राह्मीके क्वाथमें ३ दिन खरल करें। फिर कस्तूरी मिलाकर ३ घण्टे नागरबेलके पानके रसमें खरल करके मिर्चके समान गोलियां बावें। भावना देनेको मूल ग्रन्थकारने नहीं लिखा, अनुकूल समझ कर हमने बढाया है। (र० रा० सुं०)

वक्तव्य—इस रसायनके पाठमें बम्बईके सुप्रसिद्ध वैद्यराज आयुर्वेद

मार्तण्ड श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य 'कर्पूर' मिलाते हैं। कर्पूर मिलानेसे प्रयोग विशेष लाभप्रद बन जाता है। कुचलेका सत्व (स्ट्रि-कनिया) इसमें $\frac{1}{16}$ रत्ती प्रतिमात्रामें मिला देनेसे हृदयपर उत्तम प्रभाव होता है। कस्तूरी भैरवका प्रयोग विशेषतया शीतांग-कालमें होता है। कर्पूर मिलानेसे कस्तूरी और हिंगुलका कार्य प्रबलतर होता है; परिणाममें शीत तुरन्त दूर होकर उत्तेजना आजाती और हृदय नियमित कार्यकरने लगता है। नाड़ियोंको बल मिलता है।

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ से ३ समय जल या रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये।

उपयोग—यह रस ज्वरकी तरुणावस्थामें आम-पाचन और ज्वर-शमनार्थ दिया जाता है। इस ओषधिके सेवनसे १४ दिनके मुद्दती ताप प्रलापक सन्निपात (Typhus Fever) और २१ दिनके मुद्दती ताप आंत्रिक सन्निपात (Typhoid Fever) में रोगीकी शक्ति स्थिर रहती है, और समय पूरा होनेपर ज्वर चला जाता है। जिन रोगियोंके जीवनकी आशा छूट गई हो; ऐसे मोतीझराके अनेक रोगी ब्राह्मी क्वाथके साथ इस ओषधिके सेवनसे सुधर गये हैं। यह रसायन कोमल प्रकृतिवालों और बालकोंके लिये भी हितकर है। कफ और वातप्रधान सन्निपातमें प्रलाप, शीत, निद्रानाश, वातप्रकोपको दबानेके लिये भी अच्छा काम देता है। प्रसूताके धनुर्वात, कम्प, दांत भिचना, श्वास, कास और हृदयावरोधको सत्वर दूर करता है। हिस्टीरिया, अपस्मार, उन्माद और मूर्च्छामें मस्तिष्कको शांत रखता है, और हृदयको भी सबल बनाता है।

[५] सूचिकाभरण रस।

विधि—रससिंदूर, शुद्ध सर्पविष और कस्तूरीको समभाग मिला भांगरेके रसमें १२ घण्टे खरल करके चूर्ण बनालें। (र० यो० सा०)

उपयोग—सूईके अग्र भागसे थोड़ा-सा ($\frac{1}{32}$ रत्ती) निकाल शिर के बालोंको अलग कर रक्त निकाल कर उसमें मिला देनेसे तथा उतनेही परिमाणमें मिश्री-के साथ मिलाकर खिला देनेसे सन्निपात की बेहोशी और इन्द्रियोंकी शून्यता आदि तत्काल दूर होते हैं।

सूचना—दाह होनेपर शर्बत या मिश्री मिला दूध पिलावें।

(६) ज्वरकेसरी वटी।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़ बहेड़ा, आंवला और शुद्ध जमालगोटा, सब समभाग मिला, १२ घण्टे भांगरेके रसमें खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (भै० र०)

निघंटुरत्नाकरमें भांगरेके स्थानमें द्रोणपुष्पीके रसकी भावना देनेको लिखा है। यह ज्वर-शमनमें विशेष लाभप्रद रहती है।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ समय ५ से ७ कालीमिर्चके साथ निगल जाय, ऊपर एक घूट जल पीवें । बालकोको सरसोंके बराबर दें । मूल ग्रन्थकारने अनुपान भिन्न-भिन्न लिखे है । सब प्रकारके ज्वरपर नारियलका जल । पित्तज्वरमें शक्कर । सन्निपातमें कालीमिर्च । दाहज्वरमें पीपल और जीरा ।

उपयोग—ज्वरकेसरी रस सब प्रकारके नूतन ज्वर, वातज्वर, पित्तज्वर दाहज्वर, विषमज्वर, सन्निपात, भूतानुबन्धयुक्त ज्वर, प्लीहावृद्धिसे आनेवाला ज्वर, सब प्रकारके पित्तप्रधान कुष्ठ, गुल्म, मलावरोध, मन्दाग्नि, अजीर्ण, शोथ, शूल तथा सब प्रकारके पित्त और रक्त दोषको शांत करता हैं ।

बहुधा अनेक प्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति मलावरोध होनेपर होती हैं । मलावरोध होनेपर आम और सेन्द्रिय विषकी वृद्धि होती है। फिर आम और विषको जलानेके लिये जीवन संरक्षक शक्ति उष्णताको बढा देती हैं। उसे शास्त्रकारोंने ज्वर संज्ञा दी हैं । इस ज्वरमें प्रकृति और लक्षण भेदसे विविध प्रकार होते हैं । यदि मलावरोधज्वरका हेतु है, तो फिर चाहे किसी भी जातिका ज्वर हो, वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज या त्रिदोषज, सबके मूल हेतुरूप मलावरोधको दूर करने तथा ज्वरको शमन करनेके लिये यह निर्भय औषधि है ।

सूचना—यह औषधि बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री-पुरुष, सबको देनेमें उपयोगी है । सिर्फ सगर्भा स्त्री और अतिसारके रोगीको नहीं देनी चाहिये ।

(७) नारायण ज्वरांकुश रस ।

विधि—शुद्ध सोमल, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध धतूरेके बीज, वराटिका भस्म, सोहागेका फूला, भांग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सब समभाग लें । पहिले पारद और गन्धककी कज्जली करके क्रमशः सोमल और हरताल मिलावें । फिर आधे घण्टे घुटाई करनेके बाद बच्छनाग और अन्तमें सब वस्तुओंका बारीक चूर्ण मिला, अदरखके रसमें ३ दिनतक घुटाई करके ज्वारके दानेके समान गोलियां बनावें । (यो० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें ३ समय जलके साथ दें । ज्वर होनेपर उतारने, और ज्वर न हो तब रोकनेके लिये दिनमें ३ समय देवें ।

उपयोग—नारायणज्वरांकुश सब प्रकारके विषम ज्वर (ठण्ड लगकर आनेवाले ताप), सन्निपात, जीर्णज्वर और विसूचिकाको नष्ट करता है । सब प्रकारके कफ-प्रधान और वातप्रधान ज्वरमें उपयोगी है ।

सूचना—इस औषधिमें सोमल है, इसलिये खान-पानमें अपथ्य नहीं करना चाहिये । जीर्णज्वरमें अवश्य घी और दूध देना चाहिये । नूतन ज्वरमें औषधि देकर कपड़ा ओढा देनेसे पसीना आकर ज्वर उतर जाता है ।

यह रस ज्वरके तीव्र वेगमें, ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें तथा पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको नही देना चाहिये ।

[८] महाज्वरांकुश रस ।

विधि--शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, तीनों एक-एक भाग; शुद्ध धतूरेके बीज ३ भाग; और सोंठ,कालीमिर्च, पीपल, तीनों दो-दो भागलेवे । सबको यथाविधि मिला, अदरख और नीबूकेरसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बांधें । (र० रा०)

मात्रा--१-१ रत्ती अदरखके रस और शहदके साथ देवें ।

कफप्रधान ज्वरमें महाज्वरांकुश, शृंगभस्म, कफकुठार और नौसादर मिलाकर दिनमें ३ बार देवें और ऊपर पिप्पल्यादि क्वाथ पिलावें ।

उपयोग--यह रसायन वेदनाशामक, ज्वरघ्न और पाचक है । वातज्वर, कफज्वर, द्वन्द्वज ज्वर, त्रिदोषज ज्वर और सब प्रकारके विषमज्वर--एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदिका नाशक है । यह रस बिना ठण्डके ज्वर और लगातार रहनेवाले और घटने बढनेवाले ज्वरमें अति उपयोगी है । ज्वरके साथ उत्पन्न अजीर्ण, पतले दस्त होना, पेटमें दर्द होना, पेटमेंवायु (आफरा) होना इत्यादि विकारोंको भी दूर करती है । जीर्ण संधिवात (आमवात) मे यह रस लाभदायक है ।

इस रसके सेवनसे कुछ प्रस्वेद आता है, वेदना शमन होती है; और आम पचन होकर ज्वर दूर हो जाता है ।

अजीर्ण या असात्म्य भोजनसे पचनेन्द्रिय संस्थाके कार्यकी विकृति होकर उत्पन्न ज्वर पर इस रसका उत्तम उपयोग होता है । विशेषतः वेदना सहन न करनेवाले अधीर और चंचल प्रकृतिके रोगीको यह दिया जाता है ।

सर्वांगमें कम्प, ज्वरवेग असमान, निद्रानाश, बार-बार छींकें आना, शरीर जकड़ जाना, हाथ पैर टूटना, संधि-संधिमें वेदना,मस्तिष्क और कपालमें दर्द, मुंहमें बेस्वादुपन, मलावरोध, सारे शरीरमें भारीपन, हाथ पैरशून्य हो जाना,कानमें आवाज आना, दांत भिचना, व्याकुलता, शुष्क कास,उबाक, थोड़ी-थोड़ीवमन, रोंगटे खड़े होना, तृषा, चक्कर आना, प्रलाप, मूत्रका रंग पीला, लाल या काला-सा हो जाना, उदरमें शूल, आफरा, बारबार उबासी आना तथा लक्षण वृद्धि होने पर असहनशीलता, रोगीका बड़-बड़ करतेरहना (पूछने पर रोगी कहता है कि, प्रलाप करनेपर अच्छा लगता है), इत्यादि वातप्रधान लक्षण होने पर यह महाज्वरांकुश रस दिया जाता है ।

ज्वरका मंद वेग, अंगमें जड़ता, आलस्य, निद्रावृद्धि, अंग अकड़ा हुआ भासना, कपड़ा उतारनेपर शीत लगना, मुंहमें बार-बार पानी आना, उबाक, वमन, उदरमें भारीपन, नेत्रके समक्ष अन्धकार, सूर्यके तापमें बैठने या अग्निसे तापनेकी इच्छा, सूर्यके

तापमें ठंडेसे अच्छा लगना, खासी, अरुचि, बेचैनी, आदि कफप्रधान लक्षण होनेपर इस महाज्वरांकुशका अच्छा उपयोग होता है ।

कफवात ज्वर होनेसे अंगमें जड़ना और अति गीलापन, मस्तिष्क जकड़ा हुआ भासना, हाड़-हाड़ फूटना, तन्द्रा, जुकामके समान नाकमें श्लेष्मकी उत्पत्ति होना, खांसी, प्रस्वेद न आना, हाथ पैर और नेत्रोंमें दाह, भय लगना, शोथ उत्पन्न होना, थकावट-सी लगना आदि लक्षणोंमें ज्वर विशेषतः मर्यादित होता है । इसपर यह रसायन लाभदायक है ।

सतत विषमज्वर अर्थात् ७ या १० दिनतक रहनेवाले ज्वरमें अति जड़ना, हाथ-पैर टूटना, जलि प्यास (यह प्यास उष्ण जल या सोंठ, लौंग आदि उष्ण पदार्थके सेवनसे कम होती है), आदि लक्षण प्रतीत होते हैं । इस ज्वरमें और एक दिन छोड़कर आनेवाले तृतीयक ज्वरमें यह महाज्वरांकुश हितकारक है ।

अजीर्ण या अपथ्य सेवनसे ज्वर आनेपर कोष्ठस्थ विकृति होती है । फिर उबाक, लालास्राव, उदरमें वायु भर जाना, अरुचि, उदरमें मन्द-मन्द शूल, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगते रहना, अग्निमांद्य, किसी भी प्रकारके भोजनकी इच्छा न होना, शारीरिक उत्ताप मर्यादित होना, संधि-संधिमें वेदना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं । इस ज्वर पर महाज्वरांकुश रसका अच्छा उपयोग होता है । (औ० गु० ध० शा०)

(६) रत्नगिरि रस ।

विधि—शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हिंगुल, लौंग और जायफल समभाग मिलाकर अदरखके रसकी २ भावना देवें । फिर एक-एक रत्तीकी गोलियां बना लेवें । (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ गोली । बच्चोंको $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक देवें ।

अनुपान—धनिया और मिश्रीका जौकुट आधा-आधा तोला लेकर १ छटाक जलमें एक घण्टेतक भिगो देवें । फिर मसल छानकर औषधिके साथ पिला दें। जीर्ण ज्वरमें दूधके साथ दें ।

उपयोग—यह औषधि बड़े मनुष्य और बच्चोंके बने रहनेवाले ज्वरको उतारनेके लिये अमोघ है और निर्भयतापूर्वक दी जाती है ।

इस रसका धनिया-मिश्रीके हिमके साथ देनेपर स्वेदल गुण दर्शाता है । रक्तमें रहे हुए विषको जलाकर प्रस्वेदके साथ बाहर निकाल देता है । एवं कोष्ठमें संचित आम-विषका पाचनकर ज्वरके मूलको नष्ट कर देता है ।

इस रत्नगिरि रसमें वत्सनाभ न होनेसे निर्बल हृदयवालोंके लिये यह विशेष उपयोगी है । मुद्दती ज्वरमें जब वत्सनाभवाली औषधि देनेसे हानिकी संभावना हो, तब इस रत्नगिरि रसका उपयोग अति हितकर होता है ।

इस रत्नगिरिका उपयोग समस्त वातरोग, उदरवात, गुल्म आदि पर भी होता है ।

वातरोग पर इस रसकी २-२ गोली दिनमें ३ बार गुनगुने जल अथवा शहद-पीपलके साथ देनी चाहिये।

खेतोमें कार्य करनेवालोंको और ग्रामोंमें फिरनेवालोंको अनेक स्थानोंमें वर्षा ऋतुके भीतर अस्वच्छ जल पीना पड़ता है और ऋतु प्रकोपके हेतुसे भी पचनक्रिया योग्य कार्य नही देती। फिर अनेकोंको आम संगृहीत होकर ज्वर आजाता है। इन रोगियो-को रत्नगिरि रस देनेसे विष जलकर थोड़े ही समयमें ज्वर शमन होजाता है।

मिथ्या आहार-विहार, अपचन और ऋतुप्रकोप आदि कारणोसे आम और मल संगृहीत होकर ज्वर आजाता है। इस ज्वरको दूर करनेके लिये पहिले आरग्वध आदि ओषधियोंके क्वाथ या ज्वरकेसरीसे आम और मलको दूर कर धातुओंको निराम बनाना चाहिये। किन्तु अनुभवहीन डाक्टर और उनके अनुयायी उसे विषमज्वर मानकर क्विनाइन आदि देते रहते हैं। परिणाममें ज्वर-विष कुपित होकर धातुओंमें लीन होजाता है। फिर दिनोंतक कष्ट देता रहता है। सामान्यतः शिर दर्द, नेत्रमें निस्तेजता, जिह्वा मललिप्त होना, अति थकावट, अग्निमांद्य, अरुचि, मूत्रमे पीलापन, मलावरोध आदि लक्षण भासते हैं। एवं २-४ घण्टेके लिये ज्वर प्रतिदिन बढ़ जाता है। यदि एसी अवस्थामें क्विनाइन देते रहें, तो मस्तिष्कमें उष्णता, बधिरता, वृक्कोंके कार्यमें प्रतिबन्ध होकर मूत्रावरोध होना, निद्रानाश आदि उपद्रव उपस्थित होने हैं। इन रोगियोंको रत्नगिरि रस धनिया मिश्रीके फाण्ट या हिमके साथ देनेसे ४-६ घण्टेके भीतर धातुओंमे लीन ज्वर बाहर आजाता है। २-४ घण्टे तक ज्वर १०२ से १०४ तक बढ़ जाता है। फिर स्वेद लाकर विषको बाहर निकाल देता है और ज्वरको शमन कर देता है।

प्रसवावस्थामे योग्य सम्हाल न रहनेसे पचनशक्तिका विचार किये बिना, गुड़-घी खिलाते रहनेसे प्रसूताको ज्वर आजाता है। सामान्यतः ज्वर १०२ तक रहता है। शिरदर्द, व्याकुलता, अरुचि, उदरमें भारीपन, जननेन्द्रियसे जलस्राव होते रहना, किसी-किसीको पतले दस्त होजाना आदि लक्षण उपस्थित होते है। ऐसी रुग्णाओंको रत्नगिरी रस देनेसे आम विष शीघ्र जल जाता है और ज्वर निवृत्त होजाता है।

(१०) अश्वकंचुकी रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोहागेका फूला, शुद्ध हरताल, हरड़, बहेड़ा, आवला, सोंठ, कालीमिर्चे, पीपल और शुद्ध जमालगोटा, सब समभाग मिलाकर भांगरेके रसमें २१ दिनतक घुटाई करके १-१ रत्तीकी गोलिया बनावे।

(र० रा० स०)

मात्रा—एकसे चार गोली सुबह जल के साथ देवे। बालकको आधी गोली देनी चाहिये।

उपयोग—ज्वरकेसरी वटीमें सोहागा और हरताल मिलाने पर अश्वकंचुकी रस तैयार होता है। इस रसायनमें भांगरेके रसकी जितनी अधिक भावना लगती है;

उतनी ही सौम्यता आती है, तथा दाहक और विरेचक गुण कम होता है। भागरेके रसकी अधिक भावनासे यकृत्को अधिक लाभ पहुँचता है, एवं जमालगोटेकी उग्रताका शमन होकर दाह, उबाक और वमन करानेकी शक्तिका ह्रास होता है, तथा हरतालकी उग्रता भी कम होती है।

इस अश्वकंचुकी रसको अश्वचोली और घोडाचोली भी कहते हैं। सामान्य जनताकी मान्यता है कि, यह रस सब रोगोंपर उपयोगी है। परन्तु शास्त्रदृष्टिसे विचार करने पर यह मान्यता भ्रमयुक्त भासती है। इतना सत्य है कि, यह रस अत्यन्त वीर्यवान और प्रभावशाली है, तथा अनेक रोगोंमें हितकारक है।

यह रस तीक्ष्ण, उष्ण, ज्वरघ्न, मारक, विकाशी, व्यवायी, प्रमाथी, क्षरण करनेवाला, छेदन, और दोष-संघातका भेदक और योगवाही है। कफ, वातकफ और पित्तकफ दोषको दूर करता है। आनूप देशमें (वर्षा और वृक्ष अधिक हों, ऐसे देशमें) अधिक हितकर है, और जांगल देशमें कम उपयोगी है।

कफप्रकोप होकर उदरमें आफरा, उबाक बना रहना, श्वास और कास उपस्थित होना, इन लक्षणोंके साथ तन्द्रा होनेपर इस औषधिका उपयोग करना चाहिये। इस तरह आमाशय और उरःस्थानमें कफवृद्धि होकर वर्षाऋतुके प्रारंभ या मध्यमें उत्पन्न होनेवाले श्वास और प्रतिवर्ष वर्षाऋतुमें आक्रमण करनेवाले श्वासपर इस रसका उपयोग होता है। जिस श्वासमें कफप्रधान लक्षण होते हैं, बार-बार खट्टी और सफेद रंगकी बडी-बडी कफकी गांठ पडती रहती है, श्वासवेग तीव्र नहीं होता, एवं घबराहट भी अधिक नहीं होती, ऐसे लक्षण होनेपर इस औषधिका उपयोग होता है।

छ मासके शिशुको पसलीरोग होनेपर छाती भारी होजाती है, श्वासोच्छ्वास जल्दी-जल्दी चलता है, इस रोगमें प्रत्येक श्वासके साथ उदरमें खड्डे पडते हैं। बालक अति व्याकुल होजाता है, ज्वर-वेग सामान्य होता है, कोष्ठ-शुद्धि नहीं होती। इस विकारमें माताके दूधके साथ या केलेके पत्तोंके रसके साथ यह रस दिया जाता है। बालकको उत्पन्न होनेवाले श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) में, श्लेष्म सञ्चय अधिक होने पर श्वासोच्छ्वासका वेग बढ जाता है, इस पर इस घोडाचोलीका उपयोग किया जाता है। इस विकारकी प्रथमावस्थामें इस औषधिका उपयोग करनेसे कफका लेखन होता है, और रोगबल बहुत अंशमें कम होजाता है। रोगी सहसा दगा नहीं देता। एवं कितने ही रोगियोंकी प्रकृति समयके पहिले ही सुधर जानेके उदाहरण मिले हैं। छोटे बालकके समान बडे मनुष्यको भी कफप्रधान दोष होने पर इस औषधिसे लाभ पहुँचता है।

बार-बार कफ-(आम) मिश्रित वमन होना, उदरमें जडता, मुँहमें जल आते रहना, लालास्राव, मधुर और झागयुक्त गाढी वमन होना, आलस्य, मुँहपर शोथ-सा भासना आदि लक्षण होनेपर अश्वकंचुकी रसका उपयोग किया जाता है।

छोटे बालकोंकी यकृत्वृद्धिमें यह औषधि उत्तम लाभ पहुँचाती है। इस विकारमें

प्रधान रूपसे कफवृद्धिके लक्षण होने चाहिये । यकृत्मे जड़ता, तन्द्रा, नेत्रोंमें भारीपन, कास (इतनी अधिक कास होती है कि; छाती सर्वदा भरी हुई भासती है), कण्ठमें घर-घर आवाज, मलमे पाण्डुता, समस्त शरीरमें पाण्डुता, मुख, हाथ-पैर आदि कुछ फूले हुए भासना आदि लक्षण होनेपर आनूप देशमें रहनेवालोंके लिये यह ओषधि उत्तम लाभप्रद है । यदि इस रोगमे पित्तप्रधान लक्षण—अधिक प्रस्वेद, दाह, शुष्क कास, देहमें उष्णता, मल-मूत्रमें पीलापन आदि हों, तो इस ओषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये ।

यकृद्वृद्धि समान कफप्रधान प्लीहावृद्धिमें भी यह ओषधि लाभदायक है । इस रोगके अन्त्यावस्थाके प्राप्त रोगी भी इस औषधके सेवनसे अच्छे होजानेके उदाहरण मिले है । बड़े मनुष्यकी यकृद्वृद्धि (शराबीके अतिरिक्त मनुष्यकी यकृद्वृद्धि) में यदि कफप्रधान लक्षण हों, तो इस रसका अच्छा उपयोग होता है ।

वर्तमानमें इस ओषधिके दुरुपयोगके भी उदाहरण मिलते है । रोगके दोष-दूष्य-मयोगका यथातथ्य विचार न करते हुए केवल व्याधि प्रत्यनीक चिकित्सा करनेपर विपरीत परिणाम आता है । जैसे यकृद्वृद्धिमें कफविकृतिके लक्षण और पित्तप्रकोपके लक्षण भी होने हैं । पित्तविकारके लक्षण प्रतीत होनेपर इस औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये, अन्यथा रोगीको हानि होती है ।

जीर्ण यकृद्विद्रधि यदि अंत्यावस्थाको प्राप्त न हुई हो, और शराबका व्यसन इसका कारण न हो, तो इसका उपयोग करना चाहिये । क्वचित् संग्रहणी रोगमें उपक्रम योग्य न होने या उपक्रम योग्य होनेपर भी कीटाणु प्रकोपसे यकृद्विद्रधि हुई हो; और वह रोग जीर्ण हो गया हो, तो कुरैयाकी छालका अर्क या कुटजारिष्ट और अश्वकंचुकी रसका मिश्रण ,अति उपयोगी होता है । इसमें भी कफप्रधान लक्षण होना चाहिये ।

बालकोंके यकृतोदर या प्लीहोदरमें कफप्रधान लक्षण होनेपर जलोदर उत्पन्न हो जानेके पश्चात् भी इस ओषधिने अनेक रोगियोंको जीवन प्रदान किया है। रोगीको तन्द्रा, आलस्य, पाण्डुता, बद्धकोष्ठ, मलमें आम आना, मल चिकना और गाढ़ा होना, मुख, उदर और हाथ-पैरपर सूजन और मूत्र परिणामकी अपेक्षा अधिक होना आदि लक्षण होने है । इस व्याधिके कारण दीर्घकालका शीतज्वर, मृद्भक्षण या बार-बार उदरमे कृमि होनेका अभ्यास, बद्धकोष्ठ, मधुर, स्निग्ध और जड़ भोजन या माताके दूधमें विकृति आदि हैं । परन्तु जलोदरके कारणमें हृदय या वृक्कस्थानकी विकृति हो, तो इस ओषधिका उपयोग नही करना चाहिये ।

मध्यम कोष्ठशूल बहुधा जीर्ण आमसंचय या कफजन्य स्रोतोवरोधसे होता है; और यह शूल कोष्ठबद्धतासह होता है। यह विकार अधिक बैठ रहनेवाले या आलसी, स्निग्ध भोजन करनेवाले और मांसाहारी मनुष्योंको होता है । इस रोगके रोगीकी आंतोंमे मल-संचयके हेतुसे पुरःसरण क्रिया मन्द होनी है । मलावरोध बना रहता है । फिर पचन-

क्रिया मन्द होती है, और रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती। रसका शोषण योग्य न होनेसे परिणाममें रक्त आदि धातुको उचित पोषण नहीं मिलता, उदर बढ़ जाता है, तथा रोगी बिल्कुल निर्बल हो जाता है। इस अवस्थामें घोडाचोलीका उत्तम उपयोग होता है।

कफ-गुल्ममें अश्वचोलीका उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। गुल्मका यह विकार मध्यम कोष्ठशूलके लिये लिखे हुए कारणोंसे होना चाहिये और अनूप देशमें रहनेवालोंको हो, तो अश्वचोलीका प्रयोग किया जाता है। यह गुल्म जड, मोटा और बडा होता है, शेष कफप्रधान लक्षण प्रतीत होते हैं।

यह औषधि वातगुल्म या पित्तगुल्ममें उपयोगी नहीं है। जीर्ण अतिसारके विकारमें बार-बार सफेद चिपचिपा दस्त होता रहता है, और उदरमें जडता भासती है। इस व्याधिमें लघु और बृहदन्त्रकी श्लैष्मिककला मोटी हो जाती है। उसमेंसे स्राव होता ही रहता है। यह स्राव कफप्रधान विकृतिके हेतुसे होता है। जब इस श्लैष्मिक कलाकी मोटाई कम हो और स्राव कम हो, तभी इस अतिसारकी निवृत्ति हो सकती है। यदि स्तम्भक, दीपन-पाचन आदि सामान्य अतिसारकी चिकित्सा करते रहे तो यह व्याधि महीनों तक बनी रहती है। इसका मूल दोष लीन रहता है। उसे बाहर निकाल दूर करना चाहिये। यह कार्य घोडाचोलीके योगसे अति उत्तम प्रकारसे हो जाता है।

केवल स्तम्भक औषधके सेवनसे सचित दोष अधिकाधिक स्तम्भित होकर दृढ होता जाता है, और रोग दिन-प्रति-दिन प्रबलतर होता जाता है। इसलिये इस स्थान पर दोषका सम्यक् निर्हरण करना आवश्यक है। यही न्याय नूतन कफातिसारके लिये भी लागू होता है। जीर्ण संग्रहणीमें बृहदन्त्र में जहां व्रण होते है, उस स्थानसे श्लैष्मिक कला और रक्त सर्वदा निकलकर मलके साथ गिरते रहते हैं। इस विकारमें हो सके तब तक, इस हरतालप्रधान उग्र रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये। इस स्थानपर दोष संचित होने पर एरंड तैल या नाराच घृतसे कोष्ठ-शोधन करना चाहिये।

आध्मान और अपतानक वातविकारमें कोष्ठस्थ मलसंचयके हेतुसे वातवृद्धि होती है। फिर रोगीको सहसा आक्षेप आने लगते हैं। पश्चात् बेहोशी हो जाती है, मुखमें झाग आ जाते है, कंठमें घर-घर आवाज निकलती रहती है, मल संचित होनेपर उदर कठोर और मोटा हो जाता है, अधोवायु नहीं सरती, क्वचित् वमन भी होती है, आक्षेपके झटके बार-बार आते रहनेसे रोगी व्याकुल हो जाता है, किसी-किसीको इतना बलपूर्वक आक्षेप आता है कि, पीठ भी कमानके सदृश मुड जाती है। इस वातविकारमेंसे कोष्ठशुद्धि करनी चाहिये। इस कार्यके लिए उदरस्थ मल और सेन्द्रिय विषको निकालनेवाली औषधियोंमें घोडाचोली उत्तम है।

भूतोन्माद रोगमें रोगी बेसुध और व्याकुल हो गया हो, रोगीकी छाती, उदर, कण्ठ आदिमें कफमूर्छित सन्मवत अधिक होनेसे सत्ता नष्ट हो गई हो, कौटी-प्रदेशके समीपका भाग चूर फूला हुआ हो, कण्ठमें विलक्षण घर-घर आवाज और प्रत्येक श्वासो-

च्छ्वासके साथ मुंहमें थूकके बुदबुदे और लाला गिरते हों, तो इस अश्व-कंचुकीको शहदके साथ देनेसे आश्चर्यकारक लाभ होनेके उदाहरण मिले है।

मूर्छाके विकारमें विशेषतः पित्तका अनुरोध होनेपर, केवल पित्तशामक उपचार करनेकी अपेक्षा पित्तविरेचक ओषधि देना विशेष उपयुक्त है। इसके साथ रक्तका दबावभी कम होना आवश्यक है। यह कार्य त्वरित होना चाहिये। अनेक दिनों तक उपयोग करनेपर आरोग्यवर्द्धिनी और चन्द्रप्रभा भी रक्तदबावको कम कराते है। परन्तु तत्काल कार्य कर ओषधि अश्वचोली है। मूर्छा भी दूर हो जाती है।

यकृत्के विकारसे या यकृत्की क्रियाविकृति होनेसे देहपर काले-काले धब्बे उत्पन्न होते है। कितनेही समय स्फोट होजाते है। शेष लक्षण कुष्ठसदृश भासते है। परन्तु त्वचा की शून्यता और कुष्ठके कीटाणु इन व्याधियोंमें नहीं होते। इस विकार पर अश्वचोली का उपयोग आश्चर्यजनक हुआ है।

क्षुद्र कुष्ठ अर्थात् चर्म रोगमें उत्पन्न होनेवाले धब्बे, व्रण, पिटिका, लसीकास्राव, कण्डू आदि व्याधियोंमे हल्दी या त्रिफलाके क्वाथके साथ घोडाचोली देनेसे अच्छा लाभ पहुंचता है।

चातुर्थिक ज्वरमे दोष रस आदि धातुओंमे मेद-धातु-पर्यन्त पहुंच जाता है। इस विकारमें कोष्ठ-बद्धता, प्लीहावृद्धि आदि विकार होते हैं। यदि चौथे-चौथे दिन पर ज्वर आनेके समय कोष्ठमें जडता और छातीमें कफसंचय आदि लक्षण हों; तथा अनेक दिनोंसे ज्वर त्रास पहुंचाता हो, तो इस रसायनका प्रयोग अगस्त्यके पत्तोंके रसके साथ करना चाहिये। इस तरह अन्य प्रकारके विषम ज्वरोंमें भी तीव्रावस्था दूर होनेके पश्चात् जीर्णावस्था प्राप्त होने पर प्लीहावृद्धि, अग्निमांद्य और पाण्डुता आदि लक्षण होनेपर घोड़ाचोली देनी चाहिये।

कोष्ठस्थ मलसंचयसे शीर्षशूल और उसके साथ नेत्रशूल, और आमाशयमें कफसंचय होनेपर शूल अधिक तीव्र न हो, और मल-संचय अधिक हो, तो इस ओषधिका उपयोग करना चाहिये।

शरीरमें रस-ग्रंथियोंकी वृद्धि और साथ-साथ कफ-दोषकी वृद्धि होने पर कोष्ठमें सूक्ष्म-सूक्ष्म शूल चलता रहता है। कोष्ठमें ग्रंथियां बढ़ने सदृश भासती है। कोष्ठ जड़ होजाता है। इस स्थितिमें अश्वचोली उपयोगी है। इस विकारमें जसद भस्म भी व्यवहृत होती है। शरीरमें दाह, हाथ-पैर टूटना, सूक्ष्मज्वर और पित्तवृद्धिके लक्षण हों, तो जसद भस्म देवें। कफप्रकोपमें अश्वचोली और पित्तवृद्धिमें जसद भस्म, यह दोनोंका अन्तर है।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—यह रस पित्तप्रधान प्रकृतिवालेको नहीं देना चाहिये। पित्तप्रधान रोग और पित्तप्रधान ऋतुमें कदाचित् उपयोग करना हो तो शीतल ओषधि (वा अनुपान) के साथ मिलाकर देना चाहिये।

गर्भिणी, सूतिका, छोटे बच्चे और अति वृद्ध मनुष्यके साधारण ज्वरमें इसका उपयोग नहीं होता। ऐसे ही रक्तपित्त, उर:क्षत, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोगीको यह अश्वकंचुकी रस नहीं देना चाहिये।

(११) त्रिभुवनकीर्तिरस।

विधि—शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध वच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहागेका फूला और पीपलामूल, प्रत्येक समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। पश्चात् तुलसी, अदरख और धतूरेके रसकी क्रमशः ३-३ भावनाएं देकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (यो० र०)

त्रिभुवनकीर्ति रसके पाठमें वृद्ध परम्परा अनुसार औषधिगुणधर्मशास्त्रकारने जीरा और सोंफ, ये दोनों औषधियां अधिक मिलाई हैं, तथा हमने गुण-विवेचन भी उसके अनुसार ही लिखा है।

कितनेही चिकित्सक धतूरेके रसकी भावनाके स्थानमें पीले धतूरे (सत्यानाशी) के स्वरसकी भावना देते हैं। उनकी मान्यता है कि, सत्यानाशीकी भावना देनेसे मलेरिया पर विशेष लाभ होता है। कोष्ठबद्धता हो, तो दूर करता है, तथा कफस्राव अधिक कराता है। हमारे यहां धतूरेके रसका ही उपयोग होता रहता है।

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें २ समय अदरखके रस और शहदके साथ या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। सन्निपातमें आवश्यकता पर ३-३ घण्टे बाद एक-एक गोली देते रहना चाहिये। कफप्रधान ज्वरमें सुवर्णवंग और अभ्रकभस्मके साथ मिलाकर शहदसे दिनमें २ या ३ बार दें।

उपयोग—यह रस ज्वरघ्न, कफघ्न, स्वेदल और वेदनाहर है। सब प्रकारके वातप्रधान और कफप्रधान नूतन ज्वर, वातकफज्वर (Influenza), ठंडी देकर आनेवाले सततज्वर और सततज्वर एवं कफप्रधान सन्निपातको नष्ट करता है। रोमान्तिका (छोटीमाता) में जब त्रास बढ़ गया हो, और कुछ दाने बाहर दीखते हों, तब भीतरके विष बाहर लानेके लिये सहायक औषधिके साथ इस रसका उपयोग करनेसे केवल ३-४ दिनोंमें ही रोग शमन होजाता है। ऐसे ही कफप्रधान शोथ, कंठमें रही हुई गांठका शोथ, श्वासनलिकाका उपताप या अन्य कफविकार और वातप्रकोपसे आनेवाले ज्वर, सबको यह रस सत्वर दूर करता है।

यह त्रिभुवनकीर्ति रस वातज्वर, कफज्वर और वातकफात्मक ज्वरमें अत्युत्तम औषधि है। यह रस वत्सनाभप्रधान औषधियोंमें एक अत्युत्तम कल्प है। इसका उपयोग वातात्मक, कफात्मक और वातकफात्मक ज्वर, इन दोषप्रधान विषमज्वर और सान्निपातिक ज्वरमें होता है। यह कल्प तीक्ष्ण गुण युक्त होनेसे पित्तप्रधान सन्निपात या पित्तप्रधान अन्य ज्वरमें व्यवहृत नहीं करना चाहिये। कदाच उपयोग करना पड़े, तो प्रवालपिष्टी या अन्य कोई पित्तशामक औषधि मिलाकर कम मात्रामें करना चाहिये।

रोमान्तिका, अन्य कफप्रधान शोथ और अंतरेन्द्रियके उपतापसे उत्पन्न ज्वर (कण्ठमें स्थित ग्रंथियोंके शोथसे या श्वासनलिकाके उपतापसे ज्वर या अन्य आंतरिक वेदनासे उत्पन्न ज्वर) में कफप्रधान दोष होनेपर यह ओषधि अप्रतिम कार्य करती है।

त्रिभुवनकीर्ति रसमें ज्वरनाशक धर्म बच्छनागका है। किन्तु बच्छनागमें हृदय-अवसादक दोष है। उसे दूर करनेके लिये और स्वेदल और ज्वरघ्न गुण बढ़ानेके लिये अन्य द्रव्योंका संयोग करा तुलसी, अदरख और धतूरेके पत्तोंके रसकी भावना दी है। इन भावनाओंके हेतुसे वातकफनाशक कल्प बना है।

त्रिभुवनकीर्त्तिकी योजना अति सावधानतापूर्वक की है। फिर भी बच्छनागका धर्म उसमें रहे हुए उग्र विषके हेतुसे तत्काल प्रतीतिमें आता है। इस बच्छनागके हेतुसे ही रोगीकी नाड़ी मन्द होती है। यद्यपि नाड़ीकी गति विशेष मन्द न होनेके लिये इस ओषधिमें पीपलामूल, पीपल, सोंठ, कालीमिर्चें, तुलसीका रस और अदरखका रस, इन हृदयपौष्टिक ओषधियोंकी योजना की है; तथापि बच्छनागका स्वभाव पूर्णांशमें दूर नहीं होता।

त्रिभुवनकीर्ति रसका सेवन करनेपर तत्काल हृदय, मस्तिष्क स्थित हृदयकेन्द्र, त्वचा और वृक्कके ऊपर परिणाम होता है; नाड़ीके वेग और बलका ह्रास होता है। त्वचा और स्वेद ग्रन्थियां उत्तेजित होती हैं; आध घण्टेमें ही प्रस्वेद आने लगता है; मूत्रका परिमाण बढ़ जाता है; हृदयके स्पन्दन और बल न्यून हो जाते हैं; नाड़ी शिथिल होती है; श्वासोच्छ्वास क्रिया मन्द होती है; सब स्थानोंकी वेदनाका ह्रास होता है; वातवाहिनियोंके अन्तिम सिरे संज्ञाशून्य होजाते हैं; तथा उपताप और शोथमेंसे रक्त स्वाशयमें वापस आनेकी महत्वकी क्रिया भी इस रसके योगसे होती है।

सर्वांगमें कम्प, नाड़ीका विषम वेग, नाड़ी तीव्र और दृढ़ होना, शिरमें विलक्षण वेदना, जड़ता, बार-बार छींकें आना, अंग जकड़ जाना, मस्तिष्क, छाती, पीठ आदिमें शूल चलना, किंचित्। चलने पर शूलवृद्धि होना, उष्ण जल या उष्ण पदार्थ सेवनकी इच्छा, उष्ण पदार्थ सेवनसे अच्छा लगना, मुंहमें बेस्वादुपन, पैरोंमें ऐंठन, कानमेंसे आवाज निकलना, शुष्क, त्रासदायक और असह्य वेग युक्त कास, कासके साथ कण्ठमें पीड़ा होना, कासके हेतुसे छाती और पीठमें शूल चलना, कण्ठमें ग्रंथियां सूज जानेसे कास आना, कण्ठ बैठ जाना, इतने तक कि बोलनेमें भी दर्द होना, स्वरयन्त्र, ग्रसनिका, कण्ठ और मस्तिष्कमें शूल चलना, रोंगटे खड़े होना, संधि-संधिमें दर्द, नासिकाके भीतरमें वेदना, इन लक्षणोंसे युक्त नूतन ज्वर किन्तु निराम ज्वरमें त्रिभुवनकीर्ति रसका उपयोग होता है। जब तक लालास्राव आदि साम ज्वरके लक्षण हों; तब तक यह रस नहीं देना चाहिये।

ज्वर वेग तीव्र न हो, मन्द हो, सर्वांगमें अतिशय जड़ता, चलनेकी इच्छाका अति-अभाव, आलस्य, आफरा, उदर जकड़ जाना, अतिशय निद्रा, सारे शरीरमें मन्द-मन्द

वेदना, कान, छाती भारी और जकडी हुई, नाक और मुहमेंसे कफस्राव, जुकाम, कण्ठमें दर्द, हाथ-पैर टूटना, सन्धि-सन्धिमें पीडा, मस्तिष्क जकड जाना, गरदनमें दर्द, प्रस्वेद न आनेसे शिथिलता और जडता भासना, ये लक्षण होनेपर त्रिभुवनकीर्तिकी योजना करनी चाहिये ।

विषम ज्वरमें सतत और सततज्वरमें इस औषधिका उपयोग होता है। अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें शीतभञ्जी, महाज्वरांकुश नारायणज्वरांकुश आदि उपयोगी है। सततज्वर ८—१० दिनों तक रहता है, बीचमें नहीं उतरता। सततज्वर दिनमें कुछ समयके लिये उतर जाता है, फिर आजाता है। पीठमें पीडा होकर ज्वरका प्रारम्भ होना, नाडीका विषमें वेग, प्रस्वेद कम आना, मर्मोमें व्यथा, नींद न होना, प्रलाप करने पर अच्छा लगना, शान्त रहने पर व्याकुलता, मुखमें मधुरता, शीतलकी और उष्ण जलपानकी इच्छा, उष्ण जलपानसे तृषा कम होना और कुछ अच्छा लगना, ये लक्षण होने पर इसे तुलसीके रस और शहद या तुलसीके क्वाथके साथ दें।

इस रसका उपयोग श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात (न्युमोनिया और इन्फ्लुएन्जा) में उत्तम प्रकारसे होता है। (न्युमोनियामें इस रसके साथ अभ्रक भस्म, शृङ्ग भस्म और चन्द्रामृत रस मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ पहुँचाता है)। आन्त्रिक सन्निपातमें विशेषतः पित्तप्रकृतिके रोगीको यह औषधि देने पर अधिक लाभ होता है। आन्त्रिक सन्निपातमें ज्वर-वेग अधिक हो, तथा नाडी तीव्र और दृढ होने पर क्वचित् त्रिभुवनकीर्तिरसको प्रवालपिष्टि, गिलोय सत्व और सितोपलादि चूर्णके साथ मिलाकर दिया जाता है।

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपातमें ज्वरवेग मर्यादामें हो, मन्द भारी नाडी, लगने अतिशय व्यथा, कमर और पीठमेंसे शूल निकलना और पीडा होना, शीतल वायु, शीतल जल और शीतल उपचारसे दुःख होना, और सब लक्षण बढ जाना, मस्तिष्कमें भारीपन, मस्तिष्कमें मन्द वेदना, कण्ठमें दर्द होना और कुछ शोथ-सा भासना, खासी, पसलियोंमें पीडा होना, खाँसी आनेपर अधिक पीडा होना, श्वास लेनेमें व्यथा, खाँसी लेनेपर छाती दब रही है ऐसा भास होना आदि लक्षण होनेपर त्रिभुवनकीर्ति रसका उपयोग करना चाहिये ।

वातकफ-प्रधान श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) में त्रिभुवन कीर्तिका उत्तम उपयोग होता है। घबराहट दाह आदि पित्त लक्षण न हो, सर्वाङ्गमें मद शूल अगुलियाकी सन्धि और शरीरकी सब सन्धियोंमें दर्द, हाथपैर टूटना, जुकाम होकर फिर सूखी त्रासदायक खांसी, कण्ठकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ, क्वचित् यह क्षोभ बढकर फुफ्फुस या फुफ्फुसावरणका शोथ उत्पन्न होना और उसके साथ अन्य आनुषंगिक लक्षण उपस्थित होना आदि चिह्न होनेपर त्रिभुवनकीर्ति रस उत्तम प्रकारसे उपयोगी होता है।

रोमान्तिका रोग जैसा प्रतीत होता है, ऐसा मामूली नहीं है। इसकी पिटिका

पूर्णांशमें बाहर नही आई, तो भविष्यमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी व्याधियां उत्पन्न होती है । सूक्ष्म पिटिकाएं, नेत्रसे जलस्राव, बार-बार छींकें आना, जुकाम, नाकमेंसे पतला श्लेष्मस्राव, ज्वर, मुंहमे लाल दाने होना और व्याकुलता, ये सब रोमान्तिकाके सामान्य लक्षण है । इस अवस्थामें त्रिभुवनकीर्ति रस देनेसे रोमान्तिका विष बाहर आ जाता है इस विकारमें बहुधा ३-४ दिनमें ज्वर, कास आदि बढ़ जाते है । श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपातके लक्षण कुछ-कुछ भासते है; तथा पिटिकाएं आधी बाहर आजाती है; ऐसी बढ़ी हुई परिस्थितिमें भी त्रिभुवनकीर्ति रसका उत्तम उपयोग होता है ।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना--पित्तप्रधान ज्वरमे यह औषधि न दें । कदाच देनी पड़े, तो प्रवालपिष्टी या अन्य पित्तशामक ओषधि मिलाकर देवे ।

(१२) त्रैलोक्यचिन्तामणि रस ।

विधि--रससिंदूर, हीराभस्म, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, मुक्ताभस्म, शंखभस्म, प्रवालभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैन शिल, इन १३ ओपधियोको समभाग मिलाकर चित्रकमूलके क्वाथके साथ ४ दिन तक खरल करे । पश्चात् आक का दूध, निर्गुण्डीका क्वाथ जमीकन्दका रस और और थूहरका दूध, इन चार द्रव्योंमें ३-३ दिन तक क्रमशः खरल करें। फिर शुद्ध पीले रंगकी बड़ी कौड़ियोंमे इसे भरें; और सोहागेको आकके दूधमें खरल करके कौड़ियोंके मुंहको बन्द करें । सब कौड़ियोंको दो सरावमें भर; कपड़मिट्टी कर, सुखाकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर कौड़ी सह इस ओपधिको खरल करे; और इसके साथ समान परिमाणमें रससिंदूर और रससिंदूरका चतुर्थांश वैक्रांत भस्म मिलाकर सहिजनेके मूलके क्वाथकी ७, चित्रकमूलके क्वाथकी २१, अदरखके रसकी ७ और जम्भीरी नींबू या बिजौरेके रसकी ७ भावना दे । फिर शुष्क चूर्ण बनाकर सोहागेका फूला, शुद्ध बच्छनाग और कालीमिर्चे, तीनों उक्त चूर्णके १।४---१।४, तथा लौग, सोंठ, हरड़, पीपल, जायफल, ये प्रत्येक बच्छनागके चतुर्थांश मिलाकर बिजौरेके रस और अदरखके रसकी १-१ भावना देनेसे यह रस सिद्ध होता है । (यो० र०)

सूचना--रससिंदूर, हीराभस्म, आदि १-१ तोला लेने पर इसका वजन ९ सेर लगभग हो जाता है ।

मात्रा--½ से २ रत्ती तक शहद-पीपल,व । अदरखके रस और शहद अथवा सोंठके क्वाथ और गुड़के साथ देवे ।

उपयोग--यह रसायन सब रोगोंको दूर करनेके लिये विविध अनुपानोंके साथ दिया जाता है । यह अग्नि, बल, तेज और वीर्यको बढाता है; विपका हरण करता है; और शरीरको दृढ बनाता है। इसके सतत सेवनसे अकालमृत्यु और वृद्धावस्था

दूर होती हैं, तथा शरीर पुष्ट होता है। कास, क्षय, श्वास, वात, विद्रधि, पाण्डु शूल ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, अश्मरी, तृषा, शोफ, हलीमक, उदर लूताविष, मूत्रकृच्छ्रा, भगंदर, विविधज्वर, अर्श, कुष्ठ, साध्य और असाध्य व्याधियाँ, ये सब इसके सेवनसे दूर होती हैं।

त्रैलोक्यचिन्तामणि तीक्ष्ण और उष्ण है। अन्तर अवयवोंमें विशेषतः हृदय, फुफ्फुस वातवाहिनियां और वातवाहिनीकेन्द्रको तत्काल उत्तेजित करता है, तथा शरीरमें नूतन बलका संचार कराता है। इस दृष्टिसे यह रस बल्य, वीर्यवर्द्धक, ओजस्कर और जीवनीय है। इसका उपयोग करनेके समय इस बात पर लक्ष्य देना चाहिये कि, पित्तदोषकी वृद्धि तो नहीं हुई है, अथवा पित्तदोषका साथमें अनुबन्ध तो नहीं है। कफदोषकी वृद्धि, कफका अनुबन्ध या कफात्मक दोषप्रकोप होनेपर इस औषधका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) और श्वसन कर सन्निपात (Pneumonia) तथा श्लेष्म वृद्धिके विविध प्रकारों पर इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः इन रोगोंकी अंतिम अवस्थामें इस औषधिका उपयोग करना चाहिये।

जिस तरह अन्य उत्तेजक औषधियां उत्तेजना बढाकर फिर विपरीत अवसादकताकी प्राप्ति कराती हैं, उस तरह इस औषधिके उत्तेजक कार्यके पश्चात् पुनः हृदय या नाडीमें क्षीणता नहीं आती। यह इस औषधिमें महान् सद्गुण है। इसके सेवनसे हृत्सन्धि भागमें रक्तवाहिनियां विकसित होकर हृदयका कार्य उत्तम प्रकारसे होता है।

इसका उपयोग हृदयके शूल पर उत्तम प्रकारका होता है। कफप्रधान या कफवातप्रधान दोष पर यह प्रयुक्त होता है।

रक्त-दबाव या आवश्यक प्राणवायुकी पूर्तिमें न्यूनता होने पर अन्तरावयवोंको दुर्बलता प्राप्त होती है, फिर वे अपना कार्य नियमित नहीं कर सकते। इस स्थितिमें त्रैलोक्यचिंतामणि उपयोगी है।

अकस्मात् अपघात या मानसिक आघात होनेपर जब हृदयकी क्रिया क्षीण होती है, और नाडीमंदता, प्रस्वेद, चक्कर, बेहोशी, भयंकर व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब ऐसी परिस्थितिमें त्रैलोक्यचिंतामणिका कार्य अति उत्तम होता है। कारण, हृद्य औषधियोंमें इस रसका स्थान बहुत ऊंचा है। इसका प्रभाव हृदय, फुफ्फुस और मध्यम कोष्ठपर अधिकार रखनेवाली सब वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान और सहस्रार पर होता है। इन सबको यह रसायन शक्ति प्रदान करता है, और सबको प्राणवायुकी प्राप्ति भलीभांति कराता है। इस हेतुसे ये सब इन्द्रियां उत्तेजित होती हैं।

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात, स्वतंत्र होने एवं वातकफ ज्वर, आन्त्रिक ज्वर या अन्य ज्वरके उपद्रवरूप उत्पन्न होनेपर उरःस्थानमें शोथ और फिर कफसंचय, यह

वस्तुस्थिति प्रतीत होती है। इन सन्निपातोंमें प्रारम्भके कुछ दिनोंतक दोष-दूष्योंका विवेक करना पड़ता है। परन्तु उपद्रव उत्पन्न हो जानेपर बहुधा एक ही अवस्था प्राप्त होना संभव है। वह यह कि, उरःस्थानमें कफसचय होकर फुफ्फुसोंके कोषसमूह और श्वासवाहिनियां कफसे रुद्ध होते हैं। उनको आवश्यक प्राणवायु नहीं मिल सकता। परिणाममें हृदयके चारों ओर रक्तकी सम्यक् पूर्ति नही होती। इस कारणसे वातवाहिनियोंसे मिलने वाले वायुकी पूर्ति भी इन अवयवोंसमूहोंको अच्छी तरह नहीं होती। आगे उस कफका संचय बढ़कर श्वसनमार्ग, रक्ताभिसरण मार्ग और वातमार्ग, सब रुद्ध होकर रोगी कालवश हो जाता है? इस स्थितिमें यह रस उत्तम कार्य करता है। इसके योगसे श्वासवाहिनिया उत्तेजित होकर संचित कफको बाहर फेंकनें लगती हैं। हृदयके समीप रक्तवाहिनियाँ विकसित होकर अभिसरण क्रिया सम्यक् करने लगती हैं; और वातवाहिनिया उत्तेजित होकर सर्वत्र प्राणवायु पहुंचाने लगती हैं। इस तरह इस त्रैलोक्यचिंतामणिका कार्य तीनों प्रकारसे होने लगता है।

हृदयशूल- होनेपर स्तम्भ, सर्वाङ्गमें भारीपन, हाथ-पैरोंमें शून्यता, हाथ पैर भारी हो जाना, जिह्वामें शून्यता आना, पीठ और सर्वाङ्गमें झनझनाट, मुँहमें जल आना आदि लक्षण उपस्थित होते है। इस हृच्छूलका कारण शीतोपचार या वर्षाऋतुमें वर्षा हो जानेपर शीतल वायु हो, अथवा कास श्वासके विकारके पश्चात् श्लेष्म संचित होकर या अनेक दिनों तक रहनेवाले सान्निपातिक ज्वरके अन्तमें कफसंचय होकर अथवा मनोव्याघातके बिना कफसंचय उपथित हुआ हो, तो उसपर त्रैलोक्यचिन्तामणिका प्रयोग करना चाहिये।

यह रस अग्निको बढ़ाता हैः;परन्तु यह कार्य हिंग्वष्टक सदृश उत्तानस्वरूपका दीपन कार्य नही है। हिंग्वष्टक या अम्लरससे आमाशयकी श्लैश्मिक कला और पित्तोत्पादक ग्रन्थिया केवल उसी समयके लिये उत्तेजित होकर पाचक पित्तका स्राव कराते हैं। यह कार्य अधिक कालके लिये नहीं हैं। इसके विपरीत त्रैलोक्यचिन्तामणिका कार्य अति प्रभावशाली, वीर्यवान् और स्थिर होता है। इस रसायनका कार्य आमाशय, ग्रहणी, यकृत्, अग्न्याशय और अन्त्रपर होता है। इतना ही नहीं आंतमें रही हुई रसांकुरिकाओं (संशोषियों—Intestinal Villi) की संशोषण क्रिया, रस–रक्तमें मिलनेके पश्चात् उसकी रूपान्तर क्रिया एवं रक्तमेंसे उत्तरोत्तर धातु बनानेकी क्रिया, सबपर इसका परिणाम होता है। इन सबसे कफ विकृति विशेषतः कफके गाढ़ापन, चिकनापन और स्थिरपन, ये गुण बढ़कर नाड़ियाँ रूद्ध हो गई हों, और उसके हेतुसे रक्त और प्राणवायुकी योग्य पूर्ति न होनेसे मंदाग्नि हुआ हो, तो त्रैलोक्यचिन्तामणि रस देनेसे कफकी विकृति नष्ट होती है। सब अवयवोंका रक्त और वायु अच्छी तरह मिलने लगता है। फिर पाचक अग्नि प्रदीप्त होकर योग्य पचन

करने लगता है। इस दृष्टिसे मूलग्रन्थमें 'अग्नि दीपयते' यह गुणधर्म दर्शाया है ।

स्नायुओंके योगसे विविध क्रिया सरलतापूर्वक योग्य होनेसे शरीर सबल रहता है। परन्तु स्नायुओंकी क्रिया योग्य तब हो सके, जब उनपर और वातवाहिनियोंपर वायुका कार्य उत्तम रीतिसे होता रहे। जब कफसरोधसे वायुका सम्यक् कार्य नहीं होता, तब निर्बलताकी प्राप्ति होती है। ऐसी अवस्थामें त्रैलोक्यचिन्तामणि देनेसे कफसरोध दूर होता है, वायुका कार्य योग्य रूपसे होने लगता है, तथा बलकी वृद्धि होती है।

शारीरिक धातुसे सत्वरूप ओजकी कल्पना आयुर्वेदने स्पष्ट की है। इसके समान कल्पना आधुनिक वैद्यकमें नहीं मिलती। यह ओज हृदयमें है, और समग्र शरीरमें फैला हुआ है। इसकी सुस्थितिपर शारीरिक सब व्यापार अवलम्बित है। ओज अच्छी तरह उत्पन्न कर उसके सारे शरीरमें फैलानेका कार्य इस त्रैलोक्यचिन्तामणि द्वारा होता है। इसी गुणके हेतुसे हृदय जब क्षीणतर होने लगता है, तब तत्काल उत्तेजना देनेके लिये इस रसायनका उपयोग किया जाता है।

शरीरमें उत्पन्न होनेवाले विविध सेन्द्रिय विषका रक्तमें शोषण होकर कफप्रधान या कफवातप्रधान लक्षण उत्पन्न होनेपर इस औषधका उत्तम उपयोग होता है। कफ-प्रधान कास और श्वासमें इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है।

पक्षाघातकी अन्तिम अवस्था या अन्य वातव्याधिके अन्तमें रोगी अत्यन्त क्षीण निर्बल और ओजक्षययुक्त होनेपर इस रसकी योजना करनी चाहिये।

संक्षेपमें, त्रैलोक्यचिंतामणि रस हृद्य, ओजस्कर, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक और धातुसाम्य लानेवाला है। अत्यन्त वीर्यवान और तीव्र होनेसे इसका उपयोग विशेषत कफप्रधान और कफवातप्रधान विकृतिपर होता है। जब स्रोतमें कफसे रुद्ध होती है, तब इस रसका उपयोग करना चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

[१३] जयमङ्गल रस।

विधि—सिंगरफसे निकाला हुआ पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला ताम्रभस्म, बंगभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, सैंधानमक और सफेद मिर्च, प्रत्येक एक-एक तोला, सुवर्णभस्म २ तोले, लोहभस्म १ तोला और रौप्यभस्म १ तोला लेवें। सबको यथाविधि मिला, खरल कर, धतूरेके पत्तोंके रस, हारसिंहारके पत्तोंके रस, दशमूलके क्वाथ और चिरायतेके क्वाथकी क्रमश ३-३ भावना देकर आधा-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—½ से १ रत्ती तक दिनमें २ से ३ समय जीरेके चूर्ण और शहदके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह बड़ी दिव्य औषधि है। सब प्रकारके ज्वरोंको दूर करती है,

और मस्तिष्कमें पहुँची हुई ज्वरकी उष्णताको दूर करके उसे शान्त बनाती है। बहुत कालका पुराना महाघोर जीर्णज्वर, साध्य और असाध्य आठों प्रकारके ज्वर, वातपित्त आदि भिन्न-भिन्न दोषोंसे होनेवाले सब प्रकारके ज्वर, सब प्रकारके विषम ज्वर, मेदोगत ज्वर, मांसाश्रित ज्वर, अस्थि और मज्जामें रहा हुआ ज्वर, अंतरवेग और बाह्यवेग वाला उग्र ज्वर, नानाप्रकारके दोषोंसे उत्पन्न ज्वर, शुक्रगतज्वर तथा अन्य सभी प्रकार के ज्वरोंको यह रसायन दूर करता है। बलवीर्यकी वृद्धि करता है; तथा सर्व रोगोंको नष्ट करता है।

अनेक समय विषमज्वर कई दिनों तक त्रास पहुँचाता रहता हो; जो मुद्दती ज्वर] ओषधि या पथ्यमें भूल होनेसे २–२ मास तक या इससे भी ज्यादा समयका हो गया हो, अन्य किसी भी प्रकारके ज्वर, जीर्ण होकर मांस आदि धातुके आश्रित रहे हुए हो, और शीतल उपचारसे तथा गरम उपचारसे भी बढ़ जाते हों; ऐसे सब ज्वरों को समूल नष्ट करनेके लिये यह रस अद्वितीय है।

इस रसके सेवनसे मस्तिष्कमें स्थित उष्णता उत्पादक और नियामक केन्द्र-स्थान सबल बनाते हैं; अन्तरमें रहे हुए ज्वरके कीटाणु नष्ट हो जाते है; सेन्द्रिय विष जल जाता है, निद्रा आने लगती है। दाह शमन हो जाती है; कफ सरलतासे निकल जाता है, दुष्ट कफकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है, वातवाहिनियाँ बलवान् बनने लगती हैं; मन प्रफुल्लित बनाता है; एवं क्षुधा प्रदीप्त होने लगती है। परिणाममें थोड़े ही दिनोंमें शरीर नीरोग, तुष्ट और तेजस्वी बन जाता है।

जब ज्वरविष रक्त आदि धातुओमें लीन रहता है; वात, पित्त, कफ, तीनों धातु निर्बल हो जानेसे जीवनीय शक्ति ज्वरविष या कीटाणुओंको नष्ट करनेमें असमर्थ हो गई हो; हृदयकी शिथिलताके हेतुसे बच्छनागप्रधान ओषधि अनुकूल न रहती हो; या अधिक अवसादकता लाती हो; तब विषघ्न, ज्वरघ्न, बल्य, हृद्य और पचनेन्द्रिय की सशोधक गुणयुक्त औषधकी आवश्यकता है। ये सब गुण जयमंगल रसमें अवस्थित है।

जुखाम होने या शीतलवायु लग जानेके बाद कफप्रकोप होकर ज्वर आजाता है। फिर योग्य उपचार यथा समय न होने या अपथ्य सेवन करनेपर कफदूषित होता है, अति चिपचिपा और दुर्गन्धमय बन जाता है। फिर खांसी चलती रहती है और श्वसन संस्थाम खिचाव होता है। भीतरसे कफकी दुर्गन्ध आरही है, ऐसा बारबार रोगीको भास होता है। ज्वर १००° लगभग बना रहता है। इस कफको सरलतासे बाहर निकाल-नेके लिये सितोपलादि लऊकसपिस्तां या कफकर्तन रस आदिकी योजना की जाती है। किन्तु नयी कफोत्पत्तिको रोकने और ज्वरका दमन करनेके लिये साथ साथ जय-मंगलका सेवन कराना आशीर्वादके समान है। इसके सेवनसे राजयक्ष्माकी प्राप्तिका भय दूर होता है और रोग सरलतासे शमन हो जाता है।

जब राजयक्ष्मामें ज्वर वेग अधिक रहनेसे व्याकुलता और निर्बलता अधिक आई हो, तब सुवर्ण-प्रधान अन्य औषधिका उपयोग नहीं होता, परन्तु यह रस न्यून मात्रामें निर्भयपूर्वक दियाजाता है । इसके सेवनसे क्षयके कीटाणु और विष नष्ट होते हैं, और शारीरिक उत्ताप भी मर्यादित रहता है ।

बालक, स्त्रियाँ या कोमल प्रकृतिके पुरुष रात्रिको या असमय पर या अस्थान पर अकेले कभी चले जाते हैं तब वातवाहिनियों और मनपर आघात होकर अनेकोंको ज्वर आजाता है, प्रलाप, भीति, दुष्ट-स्वप्न, जागृत अवस्थामें भी भयकी कल्पना, कम्प हृदयकी चंचलता और उन्मादके लक्षण सह ज्वर प्रतीत होता है । ऐसी अवस्थामें जयमंगल रस देनेसे सत्वर उत्तम लाभ पहुँचाता है ।

ज्वरमें या बिना ज्वरावस्थामें कभी शोक आदि कारणोंसे मानसिक आघात पहुँचने पर सान्निपातिक ज्वरकी संप्राप्ति हो जाती हैं । लक्षण अनेक सान्निपातिक ज्वरोंके साथ मिल जाते हैं, कुछ-कुछ भेद भी रहता है । वातवाहिनियाँ, वातवहा नाडी-केन्द्र सहस्रार और मन आदि शिथिल और दूषित हो जाते हैं । प्रलाप, अरुचि, विचार शक्तिका नाश, निद्रानाश, क्वचित् ज्वर और अतिसार, क्वचित् अतिसारका अभाव, नेत्रमें बार बार अश्रु आना, मुखमंडल निस्तेज होजाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होनेपर जयमंगल रस देना चाहिये । जयमंगल रससे हृदय, मन और वातवाहिनियोंके केन्द्र स्थान आदिका संरक्षण होता हैं, और रोगनिवृत्तिमें अच्छी सहायता मिलती हैं ।

(१४) दुर्जलजेता रस ।

विधि—शुद्ध बच्छनाग २ तोले, वराटिका भस्म ५ तोले और कालीमिर्च ९ तोले मिलाकर खरल करें । फिर अदरखके रसमें ३ घण्टे खरल करके मूंगके समान गोलियाँ बनालें । (यो० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ समय जलके साथ ।

उपयोग—यह रस दुष्ट जलवायु-जनित ज्वर, जुकामसहितज्वर, शीतज्वर, अजीर्ण, मंदाग्नि, आमवृद्धि, आफरा, मलावरोध, शूल, श्वास आदि रोगोंको दूर करनेमें अति हितकर हैं ।

इस रसके सेवनसे कफदोष-दुष्टि कम होती हैं । पेशाब साफ आता है, पाचक पित्तकी शुद्धि होती हैं, तथा अतिसार और अजीर्ण दूर होते हैं ।

इस रसका उपयोग वर्षाऋतुमें कीचडके विषसे उत्पन्न ज्वरपर बहुत अच्छा होता हैं । ज्वर आने पर जडता, अंगपर गीलापन, मुँहमें चिकनापन और मीठापन, अंग अकडजाना, उदरमें वायु भरा रहना और भारीपन, क्षुधानाश, मीठी और दूषित डकार आना, मलावरोध, पीठसे कमर तक शूल निकलनेके समान भासना, जुकाम, मस्तिष्कमें भारीपन आदि कफप्रधान लक्षण प्रतीत होते हैं । ऐसे समय पर

इस रसका प्रयोग किया जाता है ।

आमाशयस्थ कफदोष विकृत होनेपर आमाशयके स्रावमें अम्लता और पिच्छिलता कम होती है । इस हेतुसे उदरमें भारीपन, क्षुधानाश, उबाक, मुखमें मधुर जल आते रहना, थोड़ा भोजन करनेपर भी सम्यक् पचन न होना, उदरमें आफरा ओर मंद-मंद व्यथा, मल दुर्गन्धयुक्त, पतला अयोग्य मिश्रण वाला होजाना, और मूत्र मे पीलापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं । इसपर दुर्जलजेता रस दिया दिया जाता है । इस रसके सेवनसे स्राव नियमित होता है; कफ-विकृति दूर होती है । फिर अपचन और अतिसारकी निवृत्ति होती है ।

इस ओषधिमें पारद न होने पर भी रसायन समान गुण होनेसे शास्त्रकारोने इस ओषधिको "दुर्जलजेता रस" संज्ञा दी है । इस रसको अन्य आचार्योंने अमृतकला निधि, अमृतवटी और त्रिपुरभैरव आदि संज्ञा दी है ।

[१५] हेमगर्भपोटली रस ।

विधि—शुद्ध पारद, ताम्रभस्म और गन्धक १-१ तोला, सुवर्ण भस्म (या वर्क), चांदीभस्म, लोहाभस्म और रससिंदूर प्रत्येक ६-६ माशे लेकर भेड़के दूध की ३ भावना देवें । फिर सोगठी (शिखरवाली गोली) बाँधकर सुखावें । इन सोगठियोंको पृथक्-पृथक् नये रेशमी कपड़ेमे दृढ़ बाँध, फिर सबको एक साथ एक कपड़ेमें रख डोरेसे बाँधकर हाँड़ीमें लटकावें । इस हाँड़ीके नीचे दँडा गन्धक उतना भरें किगन्धक पिघलने पर उसमें ओषधिकी पोटली डूब जाय । कपड़ेकी बत्तीको तेलमें भिगोकर ताप देवें । ललभग आध घण्टेमें गन्धक पिघलनेपर ओषधि पचन होने लगती है. फिर आध या एक घण्टेमे पाक होजाता है । पश्चात् पोटली निकालकर शीतल होने देवें । पश्चात् सोगठियोंको गरम, पानीसे धो लेवें । फिर ऊपर लगी हुई गंधकको चाकूसे छीलकर साफ कर लेवें । (वैं० चि० सा०)

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ रत्ती तक पानी या अदरखके रसमें घिसकर पिलावें । दिन में २ से ४ समय दो-दो घण्टेके बाद देवें ।

उपयोग—हेमगर्भपोटलीरस, त्रिदोष, मूर्च्छा, शीताङ्ग श्वास, कफ, निमोनिया आदि दोषोंको तुरन्त दूर करके रोगीको सचेत बनाता है । श्वसन सन्निपात (निमोनिया) आन्त्रिक सन्निपात (मधुरा) और अन्य सन्निपातोंमें हृदयक्षीणता, शरीरमें अधिक शीतलता, श्वासका वेग मंद और नाड़ीका वेग अधिकाधिक क्षीण होता जाना आदि लक्षण उपस्थित होते है । ऐसे समयपर इस रसायनका सेवन करानेसे ये सब तीव्र लक्षण सत्वर गमन हो जाते है । एवं सन्निपात आदि रोगोंमें मस्तिष्क शून्य होकर रोगी बेसुधहो जाता है, तब यह ओषधि अमृत समान गुण दर्शाती है, हृदयको उत्तेजना देती है, क्षय श्वास: कफ विकार, वातप्रकोप, मन्दाग्नि आदि दोषोंको दूर करती है, तत्र आतड़ोंमें उत्पन्न सेन्द्रिय विषको नष्ट करके रोगीको सचेत बनाती है ।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोले ताम्रभस्म ३ तोले और समीरपन्नग ६ माशे, इन सबको यथाविधि मिला घीकुवारके रसमें ७ दिन खरल कर गोलड़ी बाँधें। फिर इनको प्रथम विधिमें लिखे अनुसार पचन करें। (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—¼ से १ रत्ती तक आवश्यकता पर घिसकर देवें

उपयोग—यह रस अतिशय तीव्र और उष्णवीर्य है इसका उपयोग अति सम्हालकर करना चाहिये। यह औषधि आयुर्वेदके अमूल्य औषधरत्नोंमेंसे एक उत्तम रत्न है। अनेक बार इस रसने अन्यन्त पराकाष्ठाको पहुँचे हुए असाध्य और मृत्युमुखमें प्रवेश करनेकेलिये तैयार रोगियोंको जीवन-दान दिया है। इतना होने पर भी इसका दुरुपयोग होनेसे रोगीको त्रास और बढ जाता है। इस रसके सेवनसे तत्काल नाड़ीका वेग बढ जाता है, नाड़ीके स्पन्दन नियमित होते हैं, एवं रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है।

हेमगर्भका उपयोग सान्निपातिक ज्वरकी अन्तिम अवस्थामें बहुत अच्छा होता है। आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा), श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) श्लेष्मक ज्वर (एन्फ्लुएन्जा) या अन्य सन्निपातकी अन्तिम दशामें शरीर शीतल होने लगता है, श्वास बढ जाता है, नाड़ी अति मन्द और क्षिप्र होजाती है, तन्द्रा आ जाती है, शरीरपर विशेषतः कपाल पर शीतल आता है, यह स्वेद अधिक आता है, और हाथ-पैर शीतल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्थामें यह रस अति उपयुक्त है। यह अवस्था होनेपर शारीरिक उत्ताप अति कम होनेपर इसका कार्य अति उत्तम होता है। विशेषतः श्लेष्मक और श्वसनकमें तो यह अत्युत्तम माना गया है। परन्तु इस स्थितिमें उपयोगी होनेवाले हृदयोत्तेजक औषधको श्लेष्मक आदि सन्निपातोंकी बिल्कुल प्रथमावस्था या द्वितीयावस्थामें देनेपर अति हानि होती है ज्वर भयंकर बढ जाता है, नाड़ी वेगसे चलने लगती है, तथा किसीकिसी रोगीके मुंहसे रक्त गिरने लगता है।

ऋतुपरिवर्तनमें होनेवाले अतिसार (अपचनजनितविसूचिका) और जन्तुजन्य विसूचिकामें अत्यधिक दस्त लग जानेपर नाड़ी और हृदयकी गति क्षीण हो जाती है, फिर श्वास प्रकोप हो जाता है, उदर देखनेपर बैठासा भासता है। भयंकर तृषा व्याकुलता, हाथ-पैर और समस्त शरीर शीतल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अन्तमें नाड़ी बिल्कुल डोरी सदृश और क्षिप्र हो जाती है, क्वचित् नाड़ी हाथको भी नहीं लगती। इस स्थितिमें हेमगर्भरस अति उपयुक्त है। यह रस अदरखके रसमें घिस, थोड़ा शहद मिलाकर देना चाहिये। जैसे-जैसे मात्रा शोषित होती है, वैसे-वैसे प्रकृति सुधरने लगती है।

तमक, प्रतमक, ऊर्ध्व और महाश्वासमें हेमगर्भका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु खूब सम्हालपूर्वक कम मात्रामें देना चाहिये।

अपतन्त्रक आदि वातरोगमें तन्द्रा, भ्रम, संन्यास, आदि लक्षण होनेपर कफाधिकता हो, तो इसका अति उत्तम उपयोग होता है।

उरस्तोय और कुक्षीशूल विकारमें ज्वर कम होने और नाड़ीकी क्षीणता बढ़ने पर हेमगर्भपोटली रस देना चाहिये।

प्रसूताके वातप्रकोपमें हेमगर्भ अति उपयुक्त है। प्रसवकालमें प्रसव-वेदना कम होकर नाड़ी क्षीण होनेपर हेमगर्भपोटली रस दिया जाता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

सूचना—हेमगर्भपोटली रसका अनधिकारी पर प्रयोग होनेसे शारीरिक उत्ताप खूब बढ़ जाता है। क्वचित् मृत्यु होजानेके बाद भी शरीरोष्मा अधिक रहती है। हेमगर्भ देनेके पश्चात् अन्य औषधिका कार्य बहुधा नहीं होसकता। हेमगर्भकी शरीरपर होनेवाली उत्तेजक क्रिया शमन होनेपर अन्य औषधिका प्रयोग होसकता है।

[१६] पंचवक्त्र रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक सोहागेका फूला, पीपल, कालीमिर्च और शुद्ध बच्छनाग, इन ६ औषधियोंको समभाग मिला, काले धतूरेके पक्के रसमें एक दिन खरल कर (टीकाकारके मतानुसार ७ भावना देकर) मूँगके बराबर गोलियां बांधें। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ समय तक ३-३ घन्टे पर अदरखके रस और शहदके साथ देवें। ऊपर त्रिकटु मिला हुआ आकके मूलका कषाय पिलावें।

उपयोग—पञ्चवक्त्र रस अति उष्णवीर्य, तीक्ष्ण व्यवायी और पीड़ाहर है। कफप्रधान सन्निपातमें वातानुबन्ध होने पर पंचवक्त्रका उपयोग अति लाभदायक है। पित्तानुबन्धमें उपयोग नहीं करना चाहिये। कफवातात्मक सन्निपात और वातश्लेष्म-ज्वर (Influenza) में यह रस विशेष लाभदायक है। पूयमेहके तीक्ष्ण दर्द, मूत्रावरोध, पूय और शोथ आदिमें पंचवक्त्र रस देनेसे पेशाब साफ आकर तीक्ष्ण दर्द सत्वर दूर होता है।

श्लेष्म-प्रधान सन्निपातमें कफसंचय होने पर इस रसकी योजना करनी चाहिये। कफसंचय होनेपर कंठमें घरघर आवाज, नाड़ी भारी और तेज, श्वासोच्छ्वासके वेगकी वृद्धि, ज्वरवेग मध्यम, भ्रम, प्रलाप, हाथ-पैर पटकना, शिर हिलाते रहना कफ गिरने पर किञ्चित् अच्छा लगना, कफ न निकलने तक अधिक त्रास, तन्द्रा, शरीरमें भारीपन, त्वचामें गीलापन आदि लक्षण होते हैं। इसपर इस रसका

उत्तम उपयोग होता है।

कफ सन्निपातकी इस अवस्थामें त्रैलोक्यचिन्तामणि, हेमगर्भ, कालकूट, पञ्च-सूत, समीरपन्नग, मल्लसिंदूर, इन सबका पृथक्-पृथक् लक्षणानुरोधसे उपयोग होता है। पञ्चवक्त्रके लिये विशेष चिन्ह है कि, कफके साथ वातका अनुबन्ध होना चाहिये।

श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया) में बिल्कुल प्रारम्भमें इस औषधका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है। तीक्ष्ण पार्श्वपीडा होकर चारों ओर फैलाना, साथ-साथ श्वास लेनेमें त्रास,,श्वसोच्छ्वासके साथ वेदनावृद्धि, किञ्चित् चलने पर दर्द होना, स्थिति रहे तब पार्श्व-पीडाका बल कम प्रतीत होना, सेंक करने पर अच्छा लगना, स्नेह स्वेद उपचार करने पर भी प्रारम्भमें अच्छा लगकर पुन पीडा पूर्ववत् होनी, पीडित स्थान पर दबाकर बांधनेसे पीडा कम भासना, सन्धि-ग्रन्थिमें (अँगुलियोंके सांधोंमें भी) वेदना, नेत्रपर भारीपन, निद्रानाश,अङ्ग अकड जाना, अगको स्पर्श भी सहन न होना मध्यम ज्वर-वेग होनेपर भी सहन न होना, मन्द-मन्द प्रलाप और अर्द्ध बेहोशी आदि लक्षण होते हैं। इस सन्निपात ज्वरमें पञ्चवक्त्रका उपयोग उत्तम प्रकारका होता है।

वातक प्रधान ज्वर और श्लैष्मिक सन्निपात (इन्फ्लुएन्जा) में वेदना अधिक तन्द्रा, आलस्य, सर्वाङ्ग पीडा, पर्वभेद देहमें गीलापन आदि लक्षण होनेपर इस रसका उपयोग करना अति हितकर है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—७ भावना देकर रस तैयार करनेपर यदि किसीको धतूरेका नशा आवे, तो दही भात खिलाना अथवा नीबूका रस पिलाना चाहिये।

[१७] मृत्युञ्जय रस।

विधि—नीबूके रससे शुद्ध किया हुआ हिंगुल २ तोले, शुद्ध बच्छनाग, गन्धक, कालीमिर्च, सोहागेका-फूला और पीपल, प्रत्येक १–१ तोला ले। सबको यथाविधि मिला अदरखके रसमें ३ दिन खरल करके मूंगके बराबर गोलियां बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें ३ समय अदरखके रस या जलसे दें।

विविध अनुपान—सब प्रकारके ज्वरमें शहद।

वातज्वरमें—दहीका तोड।

दारुण सन्निपातमें—अदरखका रस।

जीर्णज्वरमें—नागरबेलके पानका रस और शहद या पीपल-शहद।

निमोनियामें—तुलसीका रस।

अजीर्ण ज्वरमें—जम्भीरी नीबूका रस।

विषम ज्वरमें काला जीरा और गुड़।

पक्षाघात और आमवातमें—बेल्पत्रका स्वरस और शहद।

वातज्वर और कफज्वरमें—लवणादि पाचन।

लवंगादि पाचन—लौंग १ माशा, काली मिर्च ३ माशे, सोंफ, पोदीना मुलहठी, सोंठ और गिलोय १–१ तोला लें। सबको मिला क्वाथ कर ३ हिस्से करें। दिनमें ३ समय ३–३ माशे मिश्री मिला कर पिलावें।

उपयोग—सर्व प्रकारके कफज तथा वातकफ-प्रधान नवीन ज्वर, विषम ज्वर, जीर्णज्वर और सन्निपातका नाश करता है। अतिसार और कृमि-रोगमें भी उपयोगी है।

इस रसके सम्बन्धमें रसचण्डांशुकारने लिखा है कि:—

अव्यक्तः शिद्धिदः शुद्धो रोगघ्नः कीर्त्तिवर्धनः।
यशःप्रदः शिवः साक्षात् मृत्युञ्जयरसः स्मृतः॥

यह मृत्युञ्जय रस अव्यक्त, सिद्धिदायक, शरीर-शुद्धिकर, रोगहर, कीर्तिको बढाने वाला, तथा यशकी प्राप्ति करानेवाला साक्षात् मृत्युञ्जय (भगवान् सदाशिव) रूप ही है।

यह रस कफघ्न और स्वेदल है। अन्त्रस्थ मल और आमका पाचन कराता है, तथा विषको पसीना और मूत्र द्वारा निकाल कर ज्वरको शमन करता है। पूयमेह (सुजाक) के तीक्ष्ण प्रकोप, मूत्रजलन, और मूत्रनलिकाके शोथको १–२ दिनमें ही दूर करता है।

कफज्वरमें नासिका, कण्ठ, श्वासवाहिनियां और फुफ्फुसोंमें कफ दुष्टि होने पर और वह भी बिल्कुल उत्तान स्वरूप (मामूली ऊपर-ऊपरके) होने पर ज्वरवेग मध्यम, आलस्य, मुखम मीठापन और चिकनापन, वार-बार पेशाब आना, मूत्रका सफेद रंग अङ्गमें भारीपन, हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण प्रतीत होने पर मृत्युञ्जय रस अदरखके रस और शहदके साथ देना चाहिये।

वातकफप्रधान ज्वरमें जुकाम कास और सारा अङ्ग टूटना, ये लक्षण होने पर मृत्युञ्जय रस देना अति उपकारक है।

अपचनसे आये हुए ज्वरमें इस रसको जम्भीरी नीबूके रसके साथ देनेसे क्लेदन कफकी शुद्धि होती है; पाचक पित्त सबल बनता है; और अजीर्ण दूर होकर ज्वरकी निवृत्ति होती है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातकी प्रारम्भिक अवस्थामें कफाधिक्य होने पर इस रसका उपयोग होता है। पित्ताधिकता होने और रक्तमिश्रित कफ पड़ने पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

मलेरियामें क्विनाइन अच्छा लाभ पहुँचाती है, तथापि किसी-किसीको हानि भी पहुँचा देती है। ऐसे रोगियोंको क्विनाइन अधिक दिन देनेसे ज्वर विशेष प्रकुपित होता है और धातुओंमें लीन होजाता है, फिर जल्दी नहीं छोडता। क्वि-

नाइनके समान अपथ्य सेवन करने वालोंका मलेरिया ज्वर भी धातुओंमें लीन होकर दृढ हो जाता है। ज्वर १०१° से १०४° तक बढ जाता है। ऐसी अवस्थामें अनेकोंको सिरमें भारीपन, प्रतिश्याय, कफकास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसके लीन और उत्तान विषको जलाकर ज्वरको दूर करनेके लिये मृत्युञ्जय रस अधिक हित-कारक है। १—१ रत्ती रसको सोंठ, नागरमोथा और धनियाके क्वाथके साथ दिनमें दो बार देते रहनेसे दूसरे ही दिनसे ज्वर कम होने लगता है। उष्णता अधिक हो, तो प्रवालपिष्टी २-२ रत्ती मिला देवें।

सूचना—कफप्रधान घोर तीव्र ज्वर पूर्ण मात्रा दीजाती है। परन्तु अतियोग होने पर हृदयको हानि पहुँचती है। स्त्री, बालक, वृद्ध, और निर्बलोंको मात्रा शक्ति अनुसार देवें। छोटे बच्चोंको भी उचित मात्रामें यह दिया जाता है।

पित्तप्रधान ज्वरमें इस रसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

[१८] महामृत्युञ्जय रस।

विधि—शुद्ध मल्ल, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाग और शुद्ध जमालगोटा एक-एक तोला, हिंगुल और सफेद कत्था चार-चार तोले लेवें। सबका बारीक चूर्ण कर सत्यानाशीके रसमें १२ घण्टे खरल करके आधी-आधी रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें ३ समय अदरखके रसके साथ।

उपयोग—महामृत्युञ्जय रस ग्रन्थिक सन्निपात (Plague) को दूर करने में अति उपयोगी है। यह रस हृदयको उत्तेजना देता है, नाडियोंमें रहे हुए कफ-आमका शोषण करता है, मलमूत्रावरोधको दूर करता है, तथा लसीका ग्रन्थियां और रक्तमें रहे हुए कीटाणुओंको नष्ट करके प्लेगको दूर करता है, एवं अन्य कफप्रधान सन्निपातमें कफ और मलकी शुद्धिके लिये भी यह दिया जाता है।

सूचना—ज्वरका वेग भयंकर हो, रक्त गिरता हो, तथा दस्त पतला और गरम-गरम होता हो, तो यह रस नहीं देना चाहिये।

[१९] गदमुरारि रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मेनसिल, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म, प्रत्येक १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाग ३ माशे लेवें। पहिले पारद गन्धककी कज्जली करें। फिर भस्म और बच्छनाग मिला, अदरखके रसमें १२ घंटे खरल करके आधी-आधी रत्तीकी गोलियां बनावें। इस रसका नाम अनेक आचार्यों ने 'ज्वरमुरारि रस' भी रक्खा है। (नि० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ समय निवाये जल' अदरखके रस, तुलसी के

रस अथवा अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—गदमुरारि रस आमप्रधान जीर्ण ज्वरोंका शमन करता है। यह रसायन अनेक दिनों तक रहनेवाले ज्वरोंमें धातुपरिपोषण-क्रमको धीरे-धीरे सुधार कर रोगको शमन करता है। जिन ज्वरोंमें दोष धातुओंके भीतर लीन रहता हो, उनमें ज्वरमुरारिका उपयोग अत्यन्त हितकर है। रसगतज्वर, पित्तज्वर, जीर्ण सन्निपातोंकी अच्छी रीतिसे चिकित्सा न हुई हो, ऐसे बहुत समयके पुराने विषमज्वर, क्षयकी प्रथमावस्थाका ताप, अतिसार सहित जीर्ण ज्वर आदि पर यह रसायन प्रयुक्त होता है।

रसगत ज्वरमें अंगमें जड़ता, हाथ-पैर टूटना, उबाक, वमन, अरुचि, छाती में भारीपन, मुखमण्डल पर निस्तेजता और कृशता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं; ऐसे लक्षण होनेपर गदमुरारि रस देना चाहिये।

कफके साथ रक्त गिरना, थूकमें रक्त आना, रक्त गिरने पर भी श्लैष्मिक या श्वसनक ज्वरके अन्य लक्षण न होना और फुफ्फुस आदि अवयवोंकी विकृति भी न हो, तथा तृषा, अंगोंका दाह, निकम्मा-निकम्मा विचार आते रहना, वमन, चक्कर, बेहोशी, प्रलाप, सन्धि-सन्धि में दर्द होना आदि लक्षण होने पर गदमुरारि रस ब्राह्मीके क्वाथ, वासा स्वरस या दूर्वामूलके फांटके साथ देना चाहिये।

अति तृषा, बार-बार शौच और लघुशंका सर्वाङ्गमें दाह, हाथ-पैरोंके तलों में जलन, हाथ-पैरकी नाड़ियां खिचना, हाथ-पैर पटकना अतिशय व्याकुलता, पंखेसे वायु करते रहने पर कुछ अच्छा लगना आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रस नागरमोथाके क्वाथके साथ देना चाहिये।

अति प्रस्वेद, अति तृषा, बार-बार मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुंहसे दुर्गन्ध आना प्रस्वेद द्वारा देहमेंसे दुर्गन्ध निकलना, अरुचि, शरीरके किसी भी भागमें स्पर्श सहन न होना, आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारिरस शहद और जलके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

हाथ-पैरोंकी नाड़ियां खिचना सर्वाङ्गमें पीड़ा, श्वास, बेचैनी, वमन, अतिसार आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रसको प्रवालपिष्टी और श्रृङ्गभस्मके साथ मिला पियाबाँसाके स्वरस या क्वाथके साथ दें।

चक्कर आना हिक्का, खाँसी, शीत लगना या शरीर शीतल हो जाना, हाथ-पैर शून्य हो जाना, वमन, अन्तर्दाह, हृदय, मूत्राशय और पार्श्वभागमें वेदना, दीर्घ बलपूर्वक श्वास लेना आदि लक्षण होने पर इसे सुदर्शन चूर्णके क्वाथके साथ देनेसे तत्काल लाभ पहुँचता है।

न्युमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा और मधुर ज्वर अति जीर्ण होनेपर तीव्र औषध

नहीं दिया जाता। ऐसे समय पर शनै शनै कार्य करनेवाली सौम्य ओषधि देनी चाहिये। ऐसी ओषधि मदमुरारि रस है। रसका उपयोग कर्णक भुग्ननेत्र, चित्त-विभ्रम और अभिन्यास सन्निपातकी जीर्णावस्थामें भी होता है।

विषमज्वरकी योग्य चिकित्सा न होने पर या प्रारम्भमें ही चिरकारी होने पर दीर्घकालस्थायी होता है। इस ज्वरमें निश्चित प्रकारका व्यक्त रूप नहीं होता अर्थात् चातुर्थिक सदृश चौथे रोज या सतत समान सर्वदा ज्वर आता है, ऐसा नहीं। दिनमें कोई भी समय अनियमित रूपसे आना, कभी कम, कभी ज्यादा, कभी शीत लगकर, कभी बिना शीत लगे, कभी तृषा अधिक, कभी तृषा न लगना आदि अनियमितता होती हैं। ज्वर आने पर सर्वाङ्गमें दर्द, ज्वर चले जाने पर अच्छी तरह चलना-फिरना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे ज्वरमें विषम ज्वरके कीटाणु या सेन्द्रिय विषरूप कारण स्पष्ट प्रकाशित नहीं होता। केवल ज्वर दीर्घ काल तक रहता है। परिणाममें कृशता ग्लानि, अपचन, निर्बलता, निस्तेजता, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे विकारमें ज्वरमुरारि रसका उपयोग किया जाता है।

क्षयकी प्रथमावस्थामें सामान्य ज्वर, शुष्क कास, सारे शरीरमें दर्द, नाड़ी का तीव्र वेग, तृषा, दाह आदि लक्षण होने पर इस रसके साथ प्रवालपिष्टी और शृङ्ग-भस्म देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

जीर्ण शोफ, भीतरके अवयवोंका शोफ, जिसमें खाँसी, छाती और पसलियों में शूल निकलना, निश्चित समय पर सूक्ष्म ज्वर, अगमें भारीपन, कृशता, उदरमें मन्द-मन्द दर्द होना, आम गिरना, मलकी रचना अच्छी न होना आदि लक्षण गौण हो और प्रधान लक्षण ज्वर हो, तो ज्वरमुरारि रसका उपयोग करना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा०)

[२०] कालकूट रस।

विधि—शुद्ध बच्छनाग १ भाग, शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध आँवलासार गन्धक ५ भाग, शुद्ध मैनसिल ६ भाग, ताम्र भस्म ४ भाग, सोहागेका फूला ६ भाग, शुद्ध हरताल ९ भाग, चित्रकमूल ९ भाग, त्रिकटु १२ भाग, त्रिफला १० भाग, भुनी हींग १ भाग और वच १ भाग लेवें। पहिले पारद और गन्धक मिलाकर कज्जली कर ताम्र भस्म, मैनसिल, हरताल सोहागा और बच्छनाग क्रमशः मिलावें। बादमें शेष ओषधियों का कपडछान चूर्ण मिला, अदरखका रस, चित्रकमूलका क्वाथ, जम्भीरी नीबूका रस लहसुनका रस करञ्जके पत्तोंका रस आकके मूलका क्वाथ, कलिहारीके मूलका क्वाथ, धतूरेके क्वाथ, नागरबेलके पानका रस, अकोल के मूलका क्वाथ सुहिंजनेके मूलका क्वाथ, पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य,

चित्रकमूल और सोंठ) का क्वाथ, बृहद् पञ्चमूल (बेल, अरनी, श्योनाक, गम्भारी और पाढलकी छाल) का क्वाथ, इन १३ ओषधियोंकी १—१ प्रहर तक भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली अदरखके रससे दिनमें ३ वार देवें।

उपयोग—कालकूट रस सब प्रकारके ज्वर और सन्निपातोंका नाश करता है। इस ओषधिके पाठके साथ लिखा है कि, इस रसके सेवनके पश्चात् रोगीको स्नान करावें, और चन्दन का लेप करें। एवं पथ्यम दही, खजूर आदि तथा ताम्बूल देवें।

यह रस अति तीक्ष्ण, उष्ण, विकाशी और व्यवायी है। इसमें मिलाये हुए द्रव्य ओर विविध उग्र भावनाओंके हेतुसे यह अति उग्र बना है। इसका उपयोग करने में खूब सम्हालना चाहिये। जब नाड़ी पूर्ण भरी हुई या डोरी सदृश हाथको भी न मालूम पड़ने वाली हो; नाड़ी हृदयके अवसादकत्वकी साक्षी देती हो; तथा किसी स्थानमेंसे रक्तस्राव न होता हो, तब इसका उपयोग करना चाहिये। वरना कालकूटके तीक्ष्णत्व आदि गुणोसे रक्तस्राव वढ़ जाता है।

इस रसके सेवनसे आध घंटेमे हृदयको अतिशय उत्तेजना आकर नाड़ीके वेगमें लगभग २०—३० स्पन्दन बढ़जाते हैं, फिर रक्त का दवाव भी वढ़ता है। अत: नेत्रमें लाली आदि लक्षण हों, तो यह रस नही देना चाहिये। भूल होने पर कभी-कभी इस रसायनके तीव्रत्वके हेतुसे रक्तवाहिनियाँ फटकर रक्तस्राव भी होने लगता है। रोगलक्षणके साथ औषधिकी उग्रता और हानिके लक्षण प्रतीत होने लगते है। सन्निपात कहनेसे उसकी कठिनता अवगत होजाती हैं; ऐसे समयपर अनुचित ओषधिकी योजना होनेपर रोगी को त्रास होनेका कहना ही क्या? इस हेतुसे दुष्परिणामको अच्छी तरह समझकर उसका उपयोग करे। अतः दुरुपयोगसे बचनेके लिये इस औषधिके होनेवाले दुष्परिणाम और इसके विपरीत जीवनदान रूप लाभको हमने विस्तारपूर्वक समझाकर लिखा है। जिस स्थान पर हानिका संदेह हो; उस स्थानमे इसका उपयोग नही करना चाहिये।

यह रस कफप्रधान और वातसंसर्गी सन्निपातकी उत्तमोत्तम ओषधि है। इसका मुख्य उपयोग ग्रन्थिक सन्निपातमे किया है; और इससे ग्रन्थिक सन्निपातम अच्छा लाभ मिला है परन्तु इस औषधके अवगुणका विचार किये बिना अधिक मात्रामें बार-बार प्रयोग किया जाय, तो हानि होने का भय रहता है।

कफप्रधान सन्निपातमें निम्न लक्षण होनेपर कालकूट रस देना चाहिये। नाड़ी अतिमंद और भारी, सारा शरीर जड़, मस्तिष्क अतिशय जड़, यहाँ तक कि मस्तिष्क पर बड़ा पत्थर बाँधने सदृश भास होना, मस्तिष्क चलाने या उठानेमे भी कष्ट होना, मस्तिष्क हिलाने के पहिले मस्तिष्क नहीं है, ऐसा

लगना जो विचार आवे वह दूसरोंका है ऐसी भावना होना, ज्ञान, विज्ञान, संज्ञा आदि सर्व भावनाओंमें जडता आजाना अर्थात् अति प्रयत्नसे अति समय लगने पर कुछ विचार आना, मस्तिष्कमें अधिक पीडा न होना, यदि पीडा हुई तो वह गम्भीर स्वरूपकी होना, नेत्रपर भारीपन, नेत्रमें निस्तेजता, नेत्रकी पुतलीमें जडता, किसी ओर दृष्टि न डालनेकी इच्छा, प्रकाशकी चाह, अन्धकार, शीतल जल और शीतल स्पर्शमें अप्रीति, कभी-कभी नेत्रमेंसे गाढा चिपचिपा स्राव होना, नेत्रमें कुछ मोटा शल्य है ऐसा लगना कभी-कभी नासिकामेंसे श्लेष्मस्राव, नासिकासे वासका बोध न होना, गरम पदार्थ या तमाखू सूंघनेपर अच्छा लगना, जिह्वा मोटी और जड हो जाने से उच्चारण अस्पष्ट, मन्द निकलना, जिह्वा पर सफ़ेद मैल आजाना, दाँत और जिह्वा पर कुछ शून्यता, जबाडेमें जडता, और किसी बात पर लक्ष्य देनेकी इच्छा न होना आदि लक्षण होने पर इस रसका उत्तम उपयोग होता है।

कफवातात्मक विकृति होने पर श्वासोच्छ्वास अति कष्टसे चलता है, श्वासोच्छ्वासके मार्गमें कोई खास प्रतिबन्ध नही होता, कफस्थान विकृति कम होने पर भी कफदोष विकृति अधिक होती है। इस हेतुसे श्वासोच्छ्वास अति धीरे-धीरे चलता है। खाँसी भी विशेष नही होती, या गम्भीर होती है। कफकी गाँठ सफ़ेद, गाढी, लसदार और बडी होती है। कफमें मीठा, खट्टा कोई स्वाद नही होता, नाडी मन्द और भारी होती है। एक मिनटमें स्पन्दन संख्या ४० से ५० होती है। ऐसे लक्षण होने पर कालकूट रस अवश्य देना चाहिये।

हाथ-पैर जड-पैरोंमें शून्यता, हाथ-पैर चलानेमें श्रम या अशक्ति, हाथ पैरमें देर-देरसे मन्द-मन्द आक्षेप आना (यह आक्षेप वातवाहिनियोंकी विकृतिसे आता है)और तन्द्रा आदि लक्षण होनेपर कालकूट रसकी योजना करनी चाहिये।

वातकफप्रधान ज्वर (Influenza) से कफ-संसर्ग और वातके लक्षण होने पर कालकूट रस देना चाहिये। वातलक्षणोंका स्वरूप सन्निपातके लक्षणों में पहिले कहा है। इस ज्वरके प्रारम्भमें त्रिभुवनकीर्ति रसका उपयोग गुडूच्यादि क्वाथ (चिकित्सातत्वप्रदीप) के साथ बहुत अच्छा होता है। यदि पहिले से ही यह प्रयोग किया जाय, तो रोगकी वृद्धि नही होती। प्रारम्भमें उपेक्षा की जाय, तो कफ और वात लक्षण बढ जाते है। वात लक्षणमें दो प्रकार है। एक में रोगीको आधी सुध, प्रलाप, भ्रम, अति प्रस्वेद, कण्ठ हिलाते रहना, कभी-कभी बूम मारना और शारीरिक उत्ताप १०२° से १०४° डिग्री होना आदि लक्षण होते है। उसपर महावातविध्वंसन रस देवें। दूसरे प्रकारके वात लक्षणोंमें मंद प्रलाप, जडता हाल-चाल अतिमंद, मंद ज्वर, नाडीमें मंदता आदि लक्षण होते है, इसपर कालकूट, तथा स्मृतिनाश और आक्षेप हो, तो स्मृतिसागर देना चाहिये।

काल्कूट रस, यह धनुर्वातकी प्रशस्त ओषधि है। यदि धनुर्वातमें कफप्रदान दुष्टी हो, तो कालकूट उत्तम लाभदायक है। गर्भपात होनेके पश्चात् होनेवाले धनुर्वातमें इस रसायनका उपयोग होता है। गर्भपात होनेपर यदि शारीरिक व्यवस्था अच्छी रही, तो कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। परन्तु अव्यवस्था होनेपर—मलिन हाथ या मलिन वस्त्र आदिका संसर्ग होनेपर—धनुर्वातकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारके धनुर्वातमें रक्तस्राव अधिक नहीं होता, या बिलकुल नही होता। इस बातका पहिले निर्णय कर लेना चाहिये। फिर रक्तस्राव किंचित् हो या न हो, तो कालकूट देना चाहिये। इससे शरीरमें धनुर्वातके कीटाणु-नाशक प्रतिविष या प्रतिकारी परिस्थिति उत्पन्न होती है।

गर्भपातके पश्चात् जिस संप्राप्तिसे धनुर्वात होता है; वही सूतिकाके लिए भी लागू होता है। आयुर्वेद-कथित उत्पत्ति अनुसार इस विकारकी पृथक्-पृथक् अवस्थाओंमें लक्षण-भेदसे पृथक्-पृथक् ओषधि—सूतकारी, सूतिकाभरण, प्रतापलंकेश्वर, ताप्यादि लोह और कालकूट आदि दी जाती है। मक्कलशूल आदि वातप्रधान लक्षण मुख्य हों, तो प्रतापलंकेश्वर; बार-बार आक्षेप और पित्तप्रधानता होनेपर ताप्यादि लोह; धनुर्वात आदि लक्षण स्वल्प और सौम्य होनेपर सूतिकाभरण; वातकफप्रधान लक्षण हों, तो सूतिकारि; और कफप्रधान जड़ता, बेहोशी, आदि पर कालकूट देना चाहिये। इस बातका भी स्मरण रखें कि रक्तस्राव न हो तो ही कालकूट दिया जाता है।

छोटे बालकोंको होनेवाले पूयमय वृक्कविकारमें यह ओषधि संधाननक और हरड़के साथ दी जाती है। इस रोगके आरम्भमें ज्वर अधिक होता है; हाथ-पैर पर शोथ, मुख और सर्वाङ्गका रङ्ग भस्म सदृश, तथा मूत्र थोड़ा और लालवर्णका पूयमिश्रित होता है। फिर आगे तन्द्रा, मन्द, आक्षेप, जड़ता और भयप्रद अवस्थाकी प्राप्ति होती है। इस द्वितीयावस्थामें कालकूट रस उत्तम कार्य करता है।

भुग्न नेत्र सन्निपातकी तीव्रावस्थामें इस रसका अच्छा उपयोग होता है।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—यह रस अति तीव्र होनेसे सगर्भा स्त्रियोंको नही देना चाहिये। छोटे बच्चोंको अति कम मात्रामें सम्हालपूर्वक देवें, और बड़े मनुष्यको भी विचारपूर्वक ही देवें। इसे ज्यादा दिनों तक चालू नहीं रखना चाहिये।

क्वचित् कालकूट रससे कण्ठमें घाव हो जाता है, जिह्वा फट जाती है, और अति उष्णता बढ़ जाती है।

[२१] लक्ष्मीनारायण रस ।

विधि—शुद्ध हिंगूल, अभ्रकभस्म, शुद्ध गंधक, सोहागेका फूला, शुद्ध वच्छनाग, निर्गुण्डीके बीज, अतिविष, पीपल, कुडाकी छाल, सेंधानमक, प्रत्येक सम-भाग मिला दन्तीमूल और त्रिफलाके क्वाथ ३-३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें । (यो० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती अदरखके रस और शहदके साथ देवें ।

उपयोग—लक्ष्मीनारायण रस दुष्टज्वर, सन्निपात, विसूचिका, विषमज्वर अतिसार, ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, शूल, सूतिका रोग, बालव्याधि और बालकोंके धनुर्वातको दूर करता है ।

यह रस उत्तम ज्वरघ्न, स्वेदल (परन्तु अवसादक नहीं), पाचक-सेन्द्रिय विषघ्न और कफदाणुनाशक है । इसका उपयोग रस और रक्तधातुगत ज्वरों पर—विशेषतः मुद्दती तापकी तीव्रावस्थामें—बहुत अच्छा होता है । यह रस स्वेदल होने पर भी हृदयको शिथिल नहीं बनाता । धनुष्कम्प, अपतानक, आक्षेपक आदि वातनाडियोंके विकृति-जनित वातरोगमें जब ज्वर आने लगता है, तब यह देनेसे ज्वर और वातप्रकोप, दोनों, शमन होते हैं । अनेक बालकोंको धनुर्वातके झटके आते हैं, जो बच्चोंके लिये विशेष भयप्रद है । उस आक्षेपका शमन इस रससे तत्काल होकर ३-४ रोजमें रोग नष्ट होजाता है । कुक्षिशूलके विकारमें बार-बार शूल चलना, ज्वरदाह, शोथ और बेचैनी आदि लक्षण होनेपर इस रससे शीघ्र लाभ पहुँचाता है ।

सूतिका ज्वर अति भयंकर व्याधि है । प्रसवकालमें या पश्चात् किसी कारण वश मलिन हाथ या गन्दे वस्त्रके संसर्गसे योनिमार्गमें कीटाणुओंका प्रवेश होकर व्रण उत्पन्न होते हैं । फिर गर्भाशय और योनिमार्गमें विकृति फैलती है । यदि इसे सत्वर न सम्हाला जाय, तो इस विकारका असर समस्त शरीरमें होजाता है । इसके योगसे ज्वर आता है । विशेषतः ज्वरका वेग तीव्र हो जाता है । यदि तीव्र ज्वरके साथ शिरदर्द, तृषा, क्वचित् बेहोशी, धनुर्वात आदि लक्षण हो तो लक्ष्मीनारायण रस दशमूलारिष्टके साथ देनेसे वह रक्तमें मिश्रित हुए विषको जलानेका और ज्वरको उतारनेका अच्छा कार्य करता है । साथमें उत्तरबस्ति द्वारा गर्भाशय गर्भमार्ग, और योनिमें उत्पन्न होनेवाले सेन्द्रिय विषका भी निरोध कर देना चाहिये । यदि ज्वरका वेग कम हो, और वातप्रकोप भयंकर हो, तो इस रसको नहीं देना चाहिये । ऐसी अवस्थामें प्रतापलंकेश्वर दें और गर्भाशय शुद्धिके

लिये दशमूलारिष्ट साथमें देना चाहिये । इस तरह सूतिका विषजन्य ज्वरमें लक्ष्मी-नारायण उत्तम ज्वरघ्न और विषघ्न औषध है ।

आन्त्रिक सन्निपात (२१ दिनका मुद्दती ताप—मधुरा) के आरम्भमें लक्ष्मीनारायण देनेसे आंत्रिक विषका शमन, दोषपाचन और ज्वरघ्न रूपसे उत्तम कार्य होता है । दूसरे तीसरे सप्ताहमें दुर्गन्धयुक्त अतिसार सहित ज्वर १०४°–१०५° डिग्री पर्यन्त बढ़ने पर भी लक्ष्मीनारायणरस, वटी प्रकरणमें कही हुई मधुरान्तक वटीके साथ देनेसे दाह, विषशमन, ओर अतिसारका रोध करनेके लिये अच्छा कार्य करता है; और ज्वर बढ़कर रोगीकी शक्तिका क्षय नहीं होने देता । लक्ष्मी-नारायणकी मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये । विप वहुत अदिक होगया हो, तो लक्ष्मीनारायण और मधुरान्तक वटी दिनमें २ समय तथा प्रवालपिष्टी शहदके साथ दिनमें ३ समय देते रहनेसे कोष्ठदाह, विष, प्रलाप, अतिसार ज्वरका वेग आदि सत्वर कम होजाते हैं ।

इस आन्त्रिक ज्वरमें विचित्र-विचित्र उपद्रव खड़े होजाते हैं । ऐसे समय पर उपद्रव अनुसार औषध दीजाती है; परन्तु लक्ष्मीनारायणको भी बन्द नहीं करना चाहिये ।

जिन रोगियोंको आन्त्रिक ज्वरमें लक्ष्मीनारायण नहीं दिया जाता; उनमेंसे कितनोंहीको भयंकर त्रासदायक अतिसार होता है । रोगी कहता है कि, इस अति-सारकी अपेक्षा बद्धकोष्ठ होजाय, तो वह भी अच्छा । अतिसारसे शक्ति अधिक क्षीण होती जाती है । अतिसार जल सदृश पतला, दुर्गन्धयुक्त होता रहता है; और दस्त लगनेके पहिले त्रासदायक उदरवातकी उत्पत्ति होती है । यह अतिसार भी लक्ष्मीनारायण रससे ही बन्द होता है ।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपात एवं अन्य प्रकारके सन्निपातमें उन सन्निपातकी नाशक ओषधियोंके साथ ज्वरघ्न, स्वेदल और सेन्द्रिय विषघ्न गुणों के लिये लक्ष्मीनारायण रस दिया जाता है ।

विषम ज्वरमें जिस औषधिमे ज्वरघ्न और धातुगत दोषनाशक गुण हों वही उप-योगी होती है । ये दोनो गुण (ज्वर और धातुगत दोष को नष्ट करना) इस रसायनमें होनेसे संतत्त ज्वर (जिसमें ज्वर बना रहता है; और सर्वांग मे जड़ता, मुंहमें पानी आना, वमन, उबाक, अरुचि, दाह, किंचित् प्रलाप, तृषा, आक्षेप, शिर दर्द, चक्कर,-प्यास आदि क्षण प्रायः रहते हैं), सतज्वर (रोज आकर उतर जानेवाला ज्वर), एकाहिक, तृतीयक (एकांतरा) चातुर्थिक (तिजारी), इन सब प्रकारके विषम ज्वरोंमें लक्ष्मीनारायण सुदर्शन अर्क या तुलसीके रसके साथ देनेसे धातुगत दोषका शमन होकर ज्वर जल्दी दूर हो जाता है । सतत ज्वर, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, आदिमें ज्वर न हो, तब सप्तवर्ण सत्व औषध देने और ज्वरावस्थामें लक्ष्मीनारायण देनेसे रोग शमन हो जानेके

अनेक उदाहरण मिले हैं ।

परिवर्तित ज्वर, जो वर्षोंपर्यन्त बार-बार थोडे दिन बाद अनियमित समय पर आता रहता है, उसमें कफप्रधानविष्ठ लक्षण हो, हरताल या सोमलवाली ओषधि दीजाती है, तथा पित्तप्रधान लक्षण हो, आरंभ में जोर से ठंड लगकर ज्वर आता हो, और साथ-साथ प्यास, बेचैनी, दाह, शिरदर्द आदि लक्षण हो तो हरताल या सोमल रसकी अपेक्षा लक्ष्मीनारायण रस ही विशेष लाभदायक होता है । परिवर्तितके समान अन्य जातिके कीटाणुजन्य ज्वरमें भी पित्ताधिक्य लक्षण हो तो लक्ष्मीनारायण रस देनेसे कीटाणु नष्ट होकर ज्वर शमन होजाता है ।

आन्त्रिक ज्वरके पश्चात् उत्पन्न होनेवाले ग्रहणी रोगमें एवं दूषित जलवायुके योगसे होनेवाले अतिसारमें उदरमें दर्दकी कमी, परन्तु बार-बार थोडा-थोडा आव और रक्त-सहित दस्त होना और ज्वर आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीनारायण रस अत्यन्त हितकर है ।

तीव्र ज्वरके पश्चात् संग्रहणी हो जानेपर लक्ष्मीनारायण और कनकसुन्दर अति उपयोगी ओषधि है । उदरमें मन्द-मन्द दर्द होकर बार-बार शौच जाना, शौचमें कुछ आम और किंचित् रक्त पड़ना, मल कभी बिलकुल न आना, कभी मल थोडा सा आना, बार-बार पेशाब आते रहना, साथ-साथ ज्वर भी रहना इत्यादि लक्षण होनेपर लक्ष्मीनारायणका उपयोग उत्तम होता है ।

कभी किसी रोगीको लक्ष्मीनारायण रस देनेसे अति प्रस्वेद आता है, इस हेतुसे श्रम अधिक होता है । ऐसे समयपर प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिश्रण करके देते रहना चाहिये ।

इस लक्ष्मीनारायण रसका कार्य विशेषतः अन्त्र, यकृत् और प्लीहा स्थानपर तथा रस, रक्त, मांस और त्वग्गत स्वेदपिंडो पर होता है । यह पित्तकी तीव्रताके शमनार्थ अच्छा उपयोगी है । (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

कभी-कभी रोमान्तिका रोग शहरव्यापी बन जाता है । एक मकानके भीतर किसी एक बालकको होनेपर अन्य बालकोंपर भी इस रोगका आक्रमण होजाता है । यह रक्त धातुगत और वातपित्तमय ज्वर है । इस रोगकी सम्प्राप्ति ३ मासके बच्चेसे लेकर ८वर्षकी आयुवाले बालकोंको हो जाती है । ज्वर १०३-१०४ तक बढ जाना, जिह्वा सफेद, नेत्र उभरे हुए, शुष्ककास, किसीको प्रतिश्याय, बहुधा चौथे दिनमें मुखमण्डल और कण्ठ-पर पिटिकाएं प्रतीत होती हैं, पांचवें दिन समस्त देह पर भासती हैं । इस विकारपर लक्ष्मीनारायण रस, गोरोचन, प्रवाल, शृंगभस्म, अमृतासत्व और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर दिनमें ३ समय देवें और मसूरिका रोगपर कहे हुए निम्बादि क्वाथ पिलाते रहनेसे बिना कष्ट पहुंचाये रोग दूर हो जाता है ।

(२२) मधुरान्तक वटी ।

विधि—मोती पिष्टी १ माशा, कस्तूरी २ माशे, केसर ३ माशे, जायफल

४ माशे, जावित्री ५ माशे, लवंग ६ माशे, तुलसीपत्र ७ माशे और अभ्रकभस्म ८ माशे लेवें। सबको मिला ३ घण्टे अदरखके रसमें खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—आधी रत्तीसे २ रत्ती तक दिनमें ३-४ समय तीन-तीन घण्टेके अन्तरसे अदरखके रस या जलके साथ देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे २१ दिनका मुद्दती ताप (Typhoid Fever) में मधुराके दाने जल्दी निकल कर, भर तथा ढल जाते है। यह वटी मधुराकी सर्व अवस्थाओंमें उपयोगी है; विषका शमन करती है। अंतडीको बलवान बनाती है; और दाहको शांत करती है। अपथ्य सेवन या ओषधिमें भूल होनेपर कभी दाने बाहर नहीं आते; विष भीतर फैल जानेसे विविध विकार उत्पन्न होते है; ऐसी परिस्थिति में यह ओषधि जादूके समान लाभ पहुंचाती है।

(२३) संचेतनी गुटिका।

विधि—सौंठ, पीपलामूल, वायविडंग, चित्रक, दालचीनी, तेजपत्र, जावित्री शुद्ध कुचिला, शुद्ध बच्छनाग, मल्लभस्म, ताम्रभस्म, कस्तूरी, सब समभाग मिला १२ घण्टे भांगरेके रसमें घोटकर चने बराबर गोलियां बना लेवें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१-१ गोली आवश्यकतानुसार गरम जलके साथ दिनमें ३-४ समय ३-३ घण्टेके अन्तर पर देवें।

उपयोग—यह रसायन सन्निपातमें बेहोशी दूर करनेमें अति उपयोगी है। मरता हुआ रोगीभी एक दफा होशमें आ जाता है। कफ, आम और वातप्रकोपको यह वटी तत्काल दूर करती है। हृदयकी गतिको उत्तेजना देती है; और त्रिदोषको सम बनाती है।

यह रसायन अति उग्र, उष्णवीर्य, स्वेदल, विकाशी, हृदयोत्तेजक, सेन्द्रिय, विषनाशक और कीटाणुनाशक है। जोगुण हेमगर्भपोटली रसमें रहा है। वह इस वटीमें है। वातवाहिनियां और रक्तवाहिनियां, दोनोंको यह वटी लाभ पहुंचाती है, मस्तिष्कगत वातकेन्द्र, हृदयकेन्द्र और यकृत को उत्तेजित करती है तथा अन्त्रस्थ और रक्तस्थ विषका नाश करके रोगी को सुधि में लाती है। अतः यह वातप्रधान, कफप्रधान और वातकफप्रधान सन्निपातकी गिरी हुई अवस्थामें अमृत सदृश लाभदायक है। यह रस मस्तिष्कगत केन्द्रको उत्तेजित कर बेहोशीको तत्काल दूर करता है। मरणमुखमें जाते हुए अनेक रोगी इस रसके सेवनसे बच जानेके उदाहरण मिले है।

सूचना—पित्तप्रधान विकारमें एवं शारीरिक उत्ताप अधिक होनेपर इस रस का उपयोग नहीं करना चाहिये; वरना मस्तिष्क में रक्तदबावकी वृद्धि होकर लाभके स्थानमें हानि पहुंचेगी।

(२४) लक्ष्मीविलास रस।

विधि—अभ्रक भस्म ८ तोले, शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, कपूर, जायफल, जावित्री, विधाराके बीज, धतूरेके शुद्ध बीज, भांगके बीज, विदारीकन्द, शतावरी, नागबला (गुलशकरी), अतिबला (कंघी), गोखरू, जलवेंतके बीज, इन सबको १-१ तोला लें। पहिले पारद-गन्धककी कज्जली करके अभ्रक मिलावें। फिर शेष काष्ठ आदि औषधियोंके कपड़छान चूर्णको मिला, नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ समय दूध, दही, शराब, शहद या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य और प्रत्याख्येय, चारों प्रकारके सन्निपातमें उत्पन्न विकारोंको नष्ट करता है। इसमें यह नियम भी नहीं है कि, वातप्रधान या पित्तप्रधान दोषोंको दूर करे। सब प्रकारोंपर यह रसायन उपकारक है। १८ प्रकारके कुष्ठ, २० प्रकारके प्रमेह, नासूर, दुष्ट व्रण, गुदरोग, भगन्दर, रक्तमांसाश्रित कफ-वातप्रधान श्लीपद, मेदगद, धातुगत, जीर्ण अथवा वंशपरंपरागत गलशोथ, अन्त्रवृद्धि, दारुण अतिसार, सब प्रकारके आमवात, जिह्वास्तंभ, गलग्रह, उदररोग, नासिका, कर्ण, नेत्र और मुखके विकार, कास, पीनस, राजयक्ष्मा, अर्श, स्थूलता (मेदवृद्धि), पसीनेमें दुर्गन्ध—आना, कुक्षिशूल, शिर शूल, प्रसूता स्त्रियोंके मक्कलशूल (वातजशूल) आदि सब प्रकारके रोग और पुरुषोंके ध्वजभंग आदि रोगोंको नष्ट करता है, तथा वृद्धोंको तरुणोंकी बराबरी कराता है। इस रसका निरन्तर सेवन करनेवालोंको इन्द्रियशैथिल्य और श्वेत केशकी प्राप्ति नहीं होती।

यह लक्ष्मीविलास रस आयुर्वेदीय औषधियोंमें एक उत्कृष्ट और वीर्यवान् औषधि है। यह उत्तम (हृदयको बलवान् बनानेवाली) और हृदयोत्तेजक है। इस औषधिसे तीव्र विकारमें शान्तिपूर्वक उत्तेजना और रक्तवाहिनियोंकी विस्फारितता एवं जीर्ण-विकारमें हृद्य गुण मिलता है। हृद्य गुणके कारणसे हृदयकी संकोचविकास क्रिया नियमित होनेसे धड़कन दूर होजाती है; और हृदयको शांति मिलती है। इस औषधिका परिणाम पुरीतती (हृदयावरणPericardium) वाम और सव्य पार्श्वपटल (बायीं तथा दाहिनी ओरके आच्छादित रखनेवाले कपाट—Valves) और हृदयके अलिंद-निलय (Auricles and ventricles) इन विभागों पर उत्तम प्रकारसे होता है।

जिस तरह ब्राण्डी आदि औषधियोंसे हृदयोत्तेजनाके पश्चात् उतने ही बलपूर्वक अवसादकताकी प्राप्ति होती है, उस तरह इस रसजनित उत्तेजनाके अन्तमें प्रतिक्रियारूप अधिक अवसादकता दृष्टिगोचर नहीं होती। यह गुण इसका विशेष माना जाता है। इस रससे नाड़ी सुधरनेके पश्चात दीर्घकाल पर्यन्त वैसी ही रहती है।

श्वसन और श्लैष्मिक सन्निपातमें हृदयकी निर्बलता सम्बन्धी संशय होनपर इसका

उपयोग करनेसे उत्तम कार्य होता है। आगे भी आवश्यकता पर इसके सेवनसे कास, श्वास, ज्वराधिक्य, फुफ्फुसप्रदाह, नाड़ी और हृदयका वेग अधिक बढ़ना, ये सब लक्षण दूर होते हैं। फुफ्फुसशोथ कम होकर श्वासके वेग और कासका शमन होता है। यदि इस सन्निपातकी तृतीयावस्थामें कफप्रकोपसे गलेमें घर-घर आवाज, तन्द्रा और बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित हों, तो लक्ष्मीविलास न देकर मल्लसिंदूर, पंचसूत या समीरपन्नग देना चाहिये।

आंत्रिक सन्निपात (मधुरा) में हृदयक्षीणता, सर्वांगशूल, भ्रम, प्रलाप, बेहोशी, निस्तेजता, शुष्क कास आदि लक्षण उपस्थित हों; अथवा मुद्दत पूरी होनेपर भी रोग जैसाका वैसा कायम रहे; या शुष्क कास आदि लक्षणोंकी वृद्धि हो, तो लक्ष्मीविलास रस देनेसे अन्त्रदोषघ्न और हृद्य, दोनों प्रकारके परिणाम प्रतीत होते हैं; तथा रोगी थोड़े ही दिनोंमें स्वस्थ हो जाता है।

आंत्रिक सन्निपातके द्वितीय और तृतीय सप्ताहमें क्वचित् शुष्क त्रासदायक कासका वेग अति बढ़ जाता है। साथ-साथ नाड़ी क्षीण और मन्द हो जाती है; अन्य लक्षणोंमें अन्तर नहीं होता। फिर भी कासके लिये दुर्लक्ष्य किया जाय, तो आगे हृदय और नाड़ी क्षीणतर होते जायेंगे। अतः कास गका प्रारम्भ होनेपर ही लक्ष्मीविलास देते रहनेसे कासका निवारण होता है; और रोगी शनैः शनैः स्वस्थ हो जाता है।

आंत्रिक सन्निपातमें क्वचित् भूल प्रमाद वश मुद्दत बढ़ जाती है। ऐसे समयपर रोगीकी स्थिति भयंकर करुणाजनक हो जाती है। मन पर किंचित् विरोधी विचार आनेके साथ मन अस्वस्थ हो जाता है; ज्वरविषसे लड़ाई करते-करते जीवनीय शक्ति क्षीण हो जाती है; इस हेतुसे मस्तिष्क विविध पीड़ाओंसे त्रस्त हो जाता है। देहपर अस्थिचर्म शेष रहते हैं। हृदय अति दुर्बल, क्षीण और मन्द हो जाता है। इस अवस्थामें लक्ष्मीविलास रसने अनेकोंको जीवनदान दिया है। इस आंत्रिक सन्निपातके अन्तमें हृदयक्षीणता, नाड़ीमान्द्य, निस्तेज मुखमण्डल, भ्रम, मन्द-मन्द मनोमय प्रलाप आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास उत्तम कार्य करता है।

वातश्लेष्म ज्वर (Influenza) में इस औषधका उत्तम उपयोग हुआ है। बिल्कुल प्रथमावस्थामें इस रसायनकी अपेक्षा गुडूच्यादि क्वाथ (चि० त० प्रदीप, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ४७४) के साथ त्रिभुवनकीर्ति अधिक हितकारक है। परन्तु कास, श्वास, नाड़ीमान्द्य और हृदयविकृति आदि लक्षण होनेपर यही रस उत्तम उपयोगी है।

भयंकर शीत लगने, जलाशयमें डूबने या अन्य शीतोपचार करने या अन्य कारणसे नाड़ीक्षीणता अथवा वातकफप्रधान ज्वरमें प्रबल अंगमर्द, सर्वांगमें शूल सदृश वेदना, इन लक्षणोंके साथ हाथ-पैरोंमें ऐंठन, हाथ-पैर मुड़ जाना, हाथकी अंगुलियोंमें शून्यता आना, मुख या अन्यस्थानके स्नायु बिल्कुल टेढ़े हो जाना, विलक्षण स्फुरण और नाड़ी-क्षीणता हो, तो लक्ष्मीविलास देना चाहिये। इन लक्षणोंके साथ हृदयाधरिक प्रदेशमें

शूल हो तो भी यह उत्तम लाभदायक है ।

हृदयका अनियमित स्पन्दन या अस्थिर स्पन्दन होनेपर घबराहट और व्याकुलता होती है। घबराहटका अन्य कारण न हो और साथ-साथ किंचित् हृदयशूल हो, तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये ।

घबराहटके हेतुसे चेतनाशक्ति भीतर खिंचती हो, उदासीनता भासती हो; साथ-साथ हाथपैर शीतल, नाडी मन्द और क्षीण भासती, विशेषतः कपालपर प्रस्वेद आदि लक्षण हो, तो लक्ष्मीविलास रस अप्रतिम लाभ पहुँचाता है । इस घबराहट आदि लक्षणोंके साथ शुष्क श्रमदायक कास वार-बार साथ चलना, अल्प किंचित् श्रमसे श्वास बढ जाना आदि लक्षण हो, तथा इनका हेतु हृदयावरण अर हृदयमें विकृति हो, तो लक्ष्मीविलास अवश्य देना चाहिये ।

इस तरहकी बार बार घबराहट और व्याकुलता बनी रहनेके अतिरिक्त हेतुआस हृदय और नाडी क्षीण होकर रक्ताभिसरण क्रिया मंद हुई हो, फिर उसी हेतुसे सर्वांगमें शीतलता और देहका वर्ण बदल गया हो, एवं प्रकाशका श्याम भस्मसदृश रंग हो गया हो, तो उस विकारपर लक्ष्मीविलास रसका उपयोग करना चाहिये ।

उक्त लक्षणोंके साथ या उक्त लक्षण न होनेपर हृदयकी अशक्तिके हेतुसे प्रारम्भमें बारबार चक्कर आना, शिर भ्रान्ति, तन्द्रा, बेहोशी आदि लक्षण हो, तो भी लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये । इन लक्षणोंके साथ क्वचित् चिनश्वास (CheynestokesAsthma) भी होता है । श्वासकी नियमितता नष्ट होकर पहिले जोर-जोरसे लम्बा-लम्बा दीर्घ-श्वास आना, फिर दीर्घ न होकर ऊपर-ऊपरसे श्वास चलना, २-३ या ४-५ श्वासके बाद, ४-६ या ८ सैकण्डके लिये श्वास टूटना, इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेपर चिनश्वास कहलाता है । यह बिल्कुल असाध्य है , तथापि शक्ति क्षय न हो, तो लक्ष्मीविलास रस दिया जाता है ।

कासके अनेक प्रकार है । इनमें शुष्कश्रमदायक कास, साथ-साथ अति घबराहट, थोडासा परिश्रम किया, किंचित चलनेका काम पडा, कुछ बोझ उठाया या अन्य हेतुसे परिश्रम हुआ, तो तुरन्त शुष्ककास चलने लगती है; श्वास भर जाता है; हृदयके स्पन्दन बढ जाते है; इन लक्षणोंके साथ क्वचित्, थोडी सूजन होती है, सूजन विशेषतः हाथ-पैरपर होती है । सूजनमें एक विशेष प्रकार यह है कि, हाथ पर दबानेसे वहां खड्डा होता है । इस तरहके कासविकारमें लक्ष्मीविलास रस अति उत्तम कार्य करता है ।

इन्फ्लुएंजाके तीव्र वेगका शमन होनेपर दिनोंतक शुष्ककास रह जाती है । इस कासमें कफ अति कम गिरता है । इसमें यदि घबराहट लक्षण हो, तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये ।

जीर्ण हृद्रोगके विकारमें हृदावरण, हृत्स्नायु, अन्तःपटल (दोनों कपाट) या हृदयकी नाडियोंकी विकृति—विशेषतः कफप्रधान विकृतिसे अवयव-समूह मन्द कार्य-

कारी होकर सर्वांगमें शोथ, थोड़ेसे श्रमसे घबराहट, हृदयक्रिया और स्पन्दन मन्द और अनियमित होना, इस व्याधिके परिणाममें यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानोंको हानि पहुंचाना आदि लक्षण होते हैं। इनपर लक्ष्मीविलास दिया जाता है।

कुष्ठ आदि चिरकारी रोगकी वृद्धि हृदय या रक्ताभिसरण क्रियाकी विकृतिमें होती हो, तो लक्ष्मीविलासका उपयोग करना चाहिये।

प्रमेहके २ प्रकार आयुर्वेद शास्त्रमें कहे हैं। ये सब और मधुमेह एक नहीं है. प्रमेहके अनेक कारण हैं। इनमें मुख्य 'कफश्च सर्वम्' इस प्रधान कारणसे उत्पन्न प्रमेह हो, रोगकी तीव्रताके पश्चात् सर्वांगमें शैथिल्य. अशक्ति, हृदयकी मन्दता, बिल्कुल श्रम न होना, अधिक बोलनेकी शक्ति भी न होना, मूत्रका परिमाण अधिक, मूत्र अधिक बार होना; मूत्रवेगके पश्चात् अशक्ति या शक्तिपात-सा भासना आदि लक्षण उपस्थित हो तो लक्ष्मीविलास देनी चाहिये।

नाडीव्रण, दुष्टव्रण और भगन्दर, ये रोग दीर्घकालस्थायी होते हैं। इनका कारण शारीरिक घटक (Tissue) और इनके चित्परमाणुओंकी निर्बलता है। जिनके घटक बलवान् और निर्दोष हों, उनके व्रणका सत्वर रोपण हो जाता है जख्म होने पर बहुधा नहीं पकते और थोड़े समयमें भर जाते हैं। निर्बल घटक और शक्तिहीन चित्परमाणुवालोंके जख्म जल्दी नहीं भरते और व्रण अधिकाधिक भीतर प्रवेश करता जाता है। इन घटक और चित्परमाणुओंकी निर्बलतामें भी अनेक हेतु हैं। इनमें रक्त, रक्ताभिसरण और हृदयकी अशक्ति कारण हो तो व्रणरोपण ओषधिके साथ लक्ष्मीविलासका सेवन करनेसे व्रणरोपण कार्य उत्तम प्रकारसे होता है।

श्लीपद विकारमें गन्धक रसायन, गुग्गुल-कल्प और लक्ष्मीविलास उत्तम ओषधियां हैं। इनमें लक्ष्मीविलासका कार्य व्यापक है। इसके उपयोगमें हृदय और रुधिराभिसरणकी अशक्ति है या नहीं, इस बात पर लक्ष्य देना चाहिये। गन्धक रसायन त्वग्गत विकार पर और लक्ष्मीविलास रुधिराभिसरण और तदंगभूत विकारपर प्रयुक्त होता है। (गुग्गुल आमविष नाशके लिये प्रयुक्त होता है।)

अग्निमांद्य, मुख, जिह्वा, तालु, ये सब चिपचिपे रहते हों, उदरमें जड़ता अन्नपर अनिच्छा, जड़ भोजनकी इच्छा न होना, निस्तेजता, पचनेन्द्रियको यथोचित रक्तकी पूर्ति न होना आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये। वातकफ ज्वरके पश्चात् उपद्रव रूपसे अग्निमांद्य होनेपर भी लक्ष्मीविलास दिया जाता है। किन्तु मुहमें जल आता रहता हो, तो अग्निकुमार रस देना चाहिये।

अग्निमांद्य पश्चात् अतिसार या विना अग्निमांद्य अन्य हेतुसे उत्पन्न अतिसारमें लक्ष्मीविलास दिया जाता है। अतिसारमें बड़े-बड़े पतले जलसदृश दस्त होने, प्रत्येक जुलाबके साथ शक्तिपात, ऐंठन या हाथ-पैर टूटना, सर्वांगमें शीतलता, प्रस्वेद आना और नाड़ीमांद्य आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस अति उत्तम ओषधि है।

विसूचिकामें नाडीनाश, शीतलता और प्रस्वेदलक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस लाभदायक है।

उदररोग, सर्वांगमें शोथ और जलोदरमें हृदावरण, हृदय या हृदयके कपाटकी विकृति हेतु हो, तो जीर्णावस्थामें लक्ष्मीविलास उपयोगी होता है। हृदयके विकारके साथ या इसके पश्चात् यकृद्वृद्धि, सर्वांगमें शोथ, फिर इन रोगोंकी जीर्णावस्थामें जलोदरकी प्राप्ति आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस मूत्रल औषधि—पुनर्नवा, गोखरू और अनन्तमूल या गिलोयके साथ देना चाहिये। यदि इन लक्षणोंके साथ घबराहट, अति प्रस्वेद, थोडे श्रमसे श्वास भर जाना, उदरमें आफरा, मनोग्लानि भीतर खिंचना, हृदयस्पन्दनकी वृद्धि, सर्वांगपर विशेषतः हाथ-पैरोंपर सूजन, मस्तिष्कमें भारीपन, चक्कर आना, शिरदर्द आदि उपलक्षण हों, तो भी लक्ष्मीविलास हितकर है।

स्थौल्य, मेदोवृद्धि विकारकी उत्पत्तिमें विशेषतः व्यायामका अभाव और उपचयकारक आहारका अधिक सेवन, ये दो कारण होते हैं। इनमें कुछ अपवाद भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त रसवाहिनियों और अण्डकोषकी विकृतिसे भी मेदोवृद्धि हो जाती है। इस मेदोवृद्धिका परिणाम हृदयपर होता है। हृदय पर मेद बढने लगता है। हृदयके चारों ओर मेद सचय होता है या हृदयके घटकोंमें मेदके घटक सम्मिलित होकर रहते हैं। इस प्रकारमें श्वास भर जाना, सर्वांगमें प्रस्वेद आते रहना, किसी भी कार्य करनेकी निच्छा व्यायाम तो बिलकुल सहन न होना, थोडा सा श्रम होनेपर भी दम भर जाना वह इतना कि छाती वायुसे भरकर फूली हुई-सी भासना, श्वास नासिकासे पूरा न ले सकनेके हेतु से मुख द्वारा जोर-जोरसे लेना आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलासरस उपयोगी होता है। ये सब लक्षण मेदसे सब मार्ग आवृत्त होनेपर होते हैं। इस विकारमें मेदके आगेकी धातुयें यथोचित नहीं बनती। इस हेतुसे शरीर फूला हुआ-सा हो जाता है, इसमेंसे दुर्गन्ध निकलती रहती है, यह दुर्गन्ध कुक्षि, कटिसन्धि आदि स्थानोंमें प्रस्वेद आकर फिर सडकर उत्पन्न होती है। इस विकारमें लक्ष्मीविलास लाभदायक है।

कुक्षिशूल, वक्षःशूल और पार्श्वशूलकी उत्पत्ति बहुधा फुफ्फुसावरणकी विकृतिसे होती है। विकार आशुकारी होनेपर तीव्रशूल और चिरकारी होनेपर मदशूल होता है। इस विकारकी उत्पत्ति शीतलता, शीतल वायुके असह्य आघातसे हुई हो, तथा कुक्षि, वक्ष और पार्श्वमें तीव्र शूल हो, किसी एक स्थानमें सुई चुभाने सदृश वेदना, किसी भी स्थितिमें चैन न पडना, बराबर दबाकर बैठना गरम जल आदिसे सेक करनेपर वेदना कुछ कम होना, शूलके साथ-साथ समग्र छाती या सर्वांगमें प्रसार होना या आक्षेप होना आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये।

वातज शिर शूलमें खूब जोरसे सुई चुभाने सदृश वेदना होकर पुनः कुछ कालके लिये कम होजाना अर्थात् आक्षेप सदृश, बार-बार शूल चलता हो, तो महा वात-विध्वंसन रस देना चाहिये। परन्तु समान शूल चलता रहे, एवं गर्दन, कपाल, भ्रू तथा पीठकी

ओर दर्द फैले, ऐंठन सदृश दर्द, सेकने पर अच्छा लगे, शीतलवायुसे वेदना बढ़े आदि लक्षण हों तो लक्ष्मीविलासका उत्कृष्ट उपयोग होता है ।

प्रसवके पश्चात् उत्पन्न उदरशूलको व्यवहारमें मक्कलशूल कहते हैं । इस पर महा-योगराजगूगल, महा वात-विध्वंसन, प्रतापलंकेश्वर और लक्ष्मीविलास रस उपयोगी औषध हैं । ऐंठन सदृश वेदना और हृदयशूल या हृदयकी अशक्ति हों, तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये । (आमवृद्धिमें महायोगराजगूगल, स्थान-स्थान पर शूलमें महा वात-विध्वंसम और गर्भाशयमें संगृहीत दोषपर प्रतापलंकेश्वर) ।

यह लक्ष्मीविलास रस वृष्य है; अतः अण्डकोषकी ओर रक्तका दबाव यथोचित न होनेसे उत्पन्न सामान्य नपुंसकताको (इस तरह अधिक शारीरिक निर्बलतासे उत्पन्न नपुंसकताको भी) दूर करता है ।

इस रसायनका उपयोग विशेषतः वात और वातकफ दोष; वायु लघुत्व, शीतलत्व, चलत्व ये गुण; रस, रक्त और मांस, ये दूष्य; हृदावरण, धमनियाँ, शिराएं, फुफ्फस और फुफ्फसावरण ये स्थान, इन सब पर होता है ।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

मधुराकी अंतिम अवस्थामें जब नाड़ी छूटने लगती है, ऐसी आसन्न मृत्युवाली अवस्थामें छिन्न श्वास उपस्थित होता है । उस अवस्थामें डाक्टरी चिकित्सामें प्राण-वायु (ऑक्सिजन) फुफ्फसोंमें भरते हैं । किन्तु हृदय क्षीण होनेसे उसका उपयोग नहीं होता । कारण ऑक्सिजनको ले जानेवाले रक्त कण अति शिथिल मृतसी स्थितिमें होनेसे वे ऑक्सिजनको योग्य स्थानपर नहीं पहुंचा सकते । उस स्थितिमें हृदयसे संलग्न रक्तवाहिनियोंका विकास कर हृदयको रक्त और वायुकी पूर्ति करनी चाहिये । यह कार्य इस लक्ष्मीविलास रससे उत्तम प्रकारसे होनेके उदाहरण मिले हैं ।

न्युमोनिया और अन्य कितनेही सन्निपातोंमें कितनेही समय अकस्मात् नाड़ी क्षीण होकर प्रस्वेद आने लग जाता है और शारीरिक उष्मा बहुत कम हो जाती है । ये लक्षण अनेक बार प्राणघातक होता है । ज्वर का जल्दी उतरना, सर्वांगका अति प्रस्वेद आकर शीतल हो जाना, नाड़ी कृति मंद होना, अति घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । उस तरहके लक्षणके प्रारंभ होनेपर लक्ष्मीविलास, शृंगभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म तीनों १—१ रत्ती को आमके मुरब्बा ६ माशेके साथ मिलाकर ऊपर-ऊपर देते रहें और अर्जुनारिष्ट थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें तो कुछ भी बाधा न होते हुए रोगी सुधर जाता है ।

सूचना—इस रससे क्वचितत् किसीकी नाडी वेग अति जाता है । ऐसा होने पर सुवर्णमाक्षिक भस्मका सेवन कराना चाहिये ।

(२४) ब्राह्मी वटी ।

विधि—ब्राह्मी (जल नीम) ५ तोले, रससिंदूर २ तोले; अभ्रक भस्म, वंगभस्म

शुद्ध शिलाजीत, कालीमिर्च पीपल और वायविडंग, प्रत्येक १-१ तोला लेवें। सबको मिला ब्राह्मीके क्वाथमें ३ दिन खरल करके चनेके समान गोलियां बनावें। ब्राह्मी २॥ तोले और जल २० तोले लेकर क्वाथ करें। १० तोले जल शेष रहने पर उतार छानकर उपयोगमें लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ समय दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी ज्वरके पीछेकी निर्बलता, जीर्णज्वर, मस्तिष्ककी कमजोरी, हृदयकी निर्बलता, स्मरण शक्तिका अभाव, धातुस्राव, आदि विकारोंको मिटाती है। ज्वरको उतारनेमें उपयोगी है। मोतीझरेमें विशेष बेचैनी, प्रलाप, अतिसार उदरशूल आदि लक्षणोंमें मोतीझरेमें विशेष बेचैनी, प्रलाप, अतिसार उदरशूल आदि लक्षणोंमें यह वटी हितावह है। वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपातमें हृदय और मस्तिष्कका रक्षण करती है, तथा दोषके पचनमें सहायता पहुंचाती है।

(२६) मल्ल पुष्प।

विधि—सोमल १० तोलेको नीबूके रसमें १ दिन घोटें। फिर लाल फिटकरी १० तोले मिला, खरल कर मिट्टीकी हांडी में भर, ऊपर दूसरी हांडी उलटी रखकर डमरुयंत्र बना लेवें। सन्धिको अच्छी रीतिसे बन्द करें। फिर चूल्हे पर चढाकर ६ घण्टे तक मन्दाग्नि दें। बार-बार ऊपरकी हांडी पर गीला कपडा बदलते रहें। स्वांग शीतल होने पर सावधानीसे खोलकर ऊपरकी हांडीमेंसे फूल निकाल लेवें। नीचेसे फिटकरीका फूला मिले, उसका उपयोग वटी प्रकरणमें लिखे अनुसार ज्वरादि वटीमें करें। (र० सा०)

मात्रा—१ चावल भर सोंठके घासके साथ, बताशेमें अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—मल्लपुष्प श्वास, कास, जीर्णज्वर, कुष्ठ, त्रिदोष, रक्तविकार, निमोनिया, उपदंश, सन्धिवात आदि रोगोंका नाश करता है। सन्निपातमें भयंकर कफवृद्धि होकर गलेमें कफ भर जाता है, वह इस मल्लपुष्पके देनेसे सत्वर दूर हो जाता है।

सूचना—यह औषधि पित्तप्रकृतिवालेको, और १०२ डिग्रीसे अधिक ताप हो, तब नहीं देना चाहिये। इस औषधिके साथ घी-दूधका सेवन ज्यादा रखना चाहिये, और अपथ्यसे दृढतापूर्वक बचना चाहिये।

(२७) मलेरिया वटी।

प्रथम विधि—गोदन्ती भस्म, शुद्ध हरताल, गिलोय सत्व, वंशलोचन और छोटी इलायची, सबको समभाग मिला सहदेवीके रसमें १२ घंटे खरलकर ज्वारके दानेके बराबर गोलियां बनावें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—पालीके तापमें १ गोली ज्वर आनेके ४ घण्टे पहिले और २ गोली

दो घण्टे पहिले शक्करके साथ दें। अन्य तापोंमें दिनमें २ बार दूधके साथ दें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके विषमज्वर (मलेरिया), संतत, सतत, एकांतरा, तिजारी आदि और अन्य ज्वरोंको दूर करती है।

कभी-कभी चातुर्थिक ज्वर छूटजाने पर चौथे-चौथे दिन हिस्टीरिया मिश्रित अपस्मार (Hystero epilepsy) उपस्थित होते हैं। रोग तीव्रावस्थामें न हो, तब जड़ता, प्रलाप, फिर मूर्च्छा, मुंहसे झाग निकलना, फिर दांत भिचना लक्षण होते हैं। शौच शुद्धि नहीं होती। उदरमें वेदना होती है। उसपर यह मलेरिया वटी अमृतारिष्ट के साथ सुबहको और रात्रिको अश्वकंचुकी रस देनेसे रोग शमन हो जाता है।

दूसरी विधि—क्विनाइन बाई हाइड्रोक्लोराइड ७॥ माशे, गिलोय सत्व २ तोले, वंशलोचन १ तोला, छोटी इलायचीके दाने ६ माशे और केशर १ माशा मिलाकर खरल करें। पश्चात् नीम गिलोय २ तोले, धनिया १ तोला; लाल चन्दन, पद्माख और नीनकी कोमल पत्ती ६–६ माशे मिलाकर क्वाथ करें। इस क्वाथमें ओषधिको खरल करके १–१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (डा० श्री रामलरक्षपालजी शुक्ल)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें ३ समय दूध या जलके साथ। जिनको क्विनाइन सहन न होता हो; उनको दूध पिलाकर देवें; और ऐसे रोगियोंको जीर्ण ज्वर और मन्द ज्वरमें भोजनके बाद देवें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके विषम ज्वर, जिसमें दाह और ठण्डी दोनों रहती हों; ऐसे एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि सब ज्वरोंका नाश करती है; प्लीहावृद्धिको कम करती है; और शरीरमें शांति लाती है।

(२८) मल्लादि वटी। (विषम ज्वर)

विधि—शुद्ध सोमल और शुद्ध हरतालको समभाग मिलाकर करेलेके रसमें ३ दिन तक खरल करके छोटे मूंग समान अर्थात् $\frac{1}{4}$ रत्ती परिमाणकी गोलिया बनावें।

(र० यो० सा०)

यद्यपि मूल श्लोकमें करेलेके रसकी भावना लिखी है; परन्तु उसकी जगह ककोड़ेका रस लिया जाय, तो अधिक काम करता है, ऐसा रसयोगसागरकारका अनुभव है।

मात्रा—१ गोली ज्वर आनेके २ या ३ घण्टे पहले तुलसीके पत्ते और काली-मिर्चके साथ या गोली, भांग १ रत्ती और छोटी कटेलीका चूर्ण १॥ माशे और धतूरेका पत्ता २ इंच जितना गोल मिला, कत्थाचूना लगे नागरबेलके पानमें डालकर खिला देवे। २-३ घण्टे तक जल नहीं पिलाना चाहिये। पुराने बिगडे हुये जुकाममें मल शुद्ध करनेके पश्चात् दूधके साथ; कफवृद्धिमे मिश्रीके साथ, और आमवृद्धिमें अदरखके रसके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी शीत लगकर आनेवाले सब प्रकारके विषमज्वर, एका-

ह्निक, तृतीयक, चातुर्थिक आदिको एक ही दिनमें रोक देती है। जीर्ण प्रतिश्याय कफवृद्धि, कफवृद्धिसे होनेवाली अरुचि, मन्दाग्नि, मन्द-मन्द ज्वर, श्वास, कास और आमवृद्धिको दूर करती है।

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृति वालेको और नये जुकामके रोगीको यह औषधि नहीं देनी चाहिये।

(२९) भूतभैरव रस।

विधि—शुद्ध हरताल ९ तोले, शुक्ति भस्म ९ तोले और शुद्ध नीला थोथा २ तोले मिला, घीकुवारके रसमें ३ दिन खरल करके टिकिया बनावें। सूखनेपर मजबूत सराव-संपुट कर २॥ सेर आरण्य कण्डोंकी अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल पीसकर बारीक चूर्ण करें। (र० अ०)

मात्रा—१ रत्ती चूर्णको ३ माशे चीनीके बीचमें रखकर ताप आनेके पहिले २ बार ३ घण्टे पहिलेसे हर घण्टे खा लेवें। तापका समय चला जानेपर दही-भात खानेको देवें।

उपयोग—इस रससे सब प्रकारके विषमज्वर, ठण्ड लगकर आनेवाला ताप, एकांतरा, तिजारी आदि एक दिनमें ही दूर हो जाते हैं। इस औषधसे कदाच किसीको वमन हो जाय तो भय न मानें।

(३०) चन्दनादि लोह।

विधि—रक्तचन्दन, नेत्रवाला, पाठा, खस, पीपल, हरड, सोंठ, कमलकन्द, आंवला, त्रिमद (नागरमोथा, चित्रकमूल, और वायविडंग), (ये) १२ औषधियें १-१ तोला और लोह भस्म १२ तोले मिलाकर खरल करें। (रसे० सा० सं०)

मात्रा—२ से ४ रत्ती शहदके साथ दिनमें २ समय लेकर ऊपर तुलसी, काली मिर्च नागरमोथाका क्वाथ पीवें।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके विषमज्वर और जीर्ण-ज्वरको दूर करता है। जो ज्वर थोडे दिन आता है, थोडे दिन नहीं आता, ऐसे दीर्घकाल तक बार-बार आनेवाले ज्वरमें यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुंचाता है। इस औषधिका उपयोग निस्तेज मुखमण्डलयुक्त रोगी, जिनको पाण्डुता और प्रमेह भी हो, उनकेलिये अधिक सफल होता है। इसके सेवनसे नेत्रजलन, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मन्दाग्नि, पाण्डुता, शिरदर्द, दाह, कृमि आदि दोष दूर होकर शरीर स्वस्थ और बलवान् बनता है। यदि रक्त, रक्ताभिसरण और हृदयकी निर्बलताके हेतुसे जीर्णज्वर बना रहता हो, तो इसके सेवनसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

(३१) सुवर्ण मालिनी वसन्त।

विधि—सुवर्ण भस्म १ तोला, मोतीपिष्टी २ तोले, शुद्ध हिंगुल ३ तोले,

सफेद मिर्च ४ तोले और शुद्ध खर्पर ८ तोले लेवें। पहिले सुवर्ण भस्म या वर्क और हिंगुल को मिलावें; बादमें अन्य वस्तु मिला, गायके कच्चे दूधमेंसे निकाला हुआ मक्खन २॥ तोले मिलाकर ३ घण्टे घुटाई करें। फिर नीबूका रस डालकर चिकनापन दूर होवे तबतक खरल करें। लगभग ७-८ दिन घुटाई करनी पड़ेगी। फिर १-१ रत्तीकी गोलियां अथवा १-१ माशेकी टिकिया बना लेवें। (भै० र०)

वक्तव्य—सुवर्ण भस्मके अभावमें कुन्दन अथवा सुवर्णके वर्क लें। मोती-पिष्टीके अभावमें मोतीकी सीपकी भस्म लेवें। खर्परके अभावमें जस्ता भस्म लेवें। सिंगरफको शुद्ध करके उपयोगमें लें, अथवा द्विगुण गन्धजारित रससिंदूर मिलावें। अनेक वैद्य मक्खन ४ तोले मिलाकर ४० दिन तक नीबूके रसमें खरल करते हैं। परन्तु इससे नीबूका खट्टापन अधिक बढ जाता है। यदि वर्क मिलावें तो सिंगरफ (रससिंदूर) के साथ २ दिन खरल करके एक जीव कर लें। अणु अति सूक्ष्म बन जाने पर इतर औषधियां मिलावें।

(२) यदि सुवर्णका वर्क मिलावें, तो हिंगुल (रससिंदूर) और वर्कको पहिले १ या २ दिन खरल करके एक जीव बना लेवें। फिर और औषधियां मिलावें। अन्यथा वर्कके बड़े बड़े अणु शेष रह जाते हैं।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक दिनमें २ बार पीपलके चूर्ण और शहद अथवा सत गिलोय, पीपल और शहद (या च्यवनप्राशावलेह) के साथ देवें।

क्षयकी प्रथमावस्था और जीर्ण ज्वरपर सुवर्ण वसंत, अभ्रक भस्म, शृंगभस्म और सितोपलादि चूर्णमिला चूर्ण मिला शहदके साथ दिनमें ३ बार देते रहें।

इस रसायनमें मिलानेके लिये पक्के पीले ताजे नीबूका रस कपड़ेकी ४ तहसे छानकर गिलासमें भरें। ८–१० घण्टे बाद कचरा पेंदेमें बैठ जानेपर फिल्टर पेपरसे छानकर उपयोगमें लेवें सुवर्णमालिनी वसंत तैय्यार होनेपर ३ माशे कस्तूरी और १ तोला केशर मिला लेनेसे विशेष लाभदायक बनती है।

एक तोला सुवर्णमेंसे २४ तोले सुवर्णमालिनी बनती है। उसमें ३ माशे कस्तूरी मिलानेसे, एक तोलेमें लगभग पौन रत्ती हा १ रत्तीमें ९६ वाँ हिस्सा कस्तूरी होती हैं। जिससे सगर्भा स्त्रीको भी निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। फिर भी सगर्भा स्त्रियोंके लिये, जिनको कस्तूरी न मिलानी हो, वे न मिलावें।

उपयोग—यह रस क्षय जीर्णज्वर, धातुगत विषम ज्वर, प्लीहावृद्धि यकृद्विकार, मन्दाग्नि, स्त्रियोंके प्रदर रोग, मगजकी निर्बलता, खांसी, धातुक्षीणता, हृद्रोग, मस्तकशूल आदिमें हितकर है। पुराने रोगोंमें शांतिपूर्वक सेवन करनेसे निश्चित लाभ होता है। किसी रोगसे अथवा व्यायाम, परिश्रम या वृद्धावस्थाके हेतुसे आई हुई निर्बलता इस वसन्तके सेवनसे निश्चयपूर्वक दूर होते है।

यह रसायन रसवाहिनियां, रक्तोत्पादक पिंड यकृत् प्लीहा आदि विकृतिमें उत्कृष्ट है। यकृत और प्लीहाके दोष (वृद्धि अथवा शिथिलता) को दूर करके पचनक्रियाको नियमित बनाती है। यही औषधिका मुख्य कार्य है, इस हेतुसे थोडे समयमें शरीर सशक्त हो जाता है। अनुपान-भेदसे अनेक रोगोंमें यह लाभ पहुंचाती है।

बालक, वृद्ध, सगर्भा स्त्री, सबके लिये हितकर है। सब ऋतुमें, सब देशमें और सब प्रकारकी प्रकृतिवालोंके लिये निर्भयतापूर्वक इस वसन्तमालिनीको प्रयोगमें ला सकते है। तरुण स्त्रियोंके मासिक धर्ममें रक्त अधिक जाना और रक्तप्रदर या श्वेतप्रदरके पश्चात् होनेवाली पाण्डुतामें यह सुवर्णमालिनी अत्यन्त उत्तम औषधि है।

सुवर्णमालिनीमें रसायन, बल्य, क्षयघ्न, कीटाणुनाशक और रक्तप्रसादन गुण हैं। वातवह मण्डल, सहस्रार, नाडीचक्र आदिसे लेकर शरीरके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव समूह पर्यन्त सबको बल देना, यह महत्त्वका गुण इस रसायनमें है। इसका उपयोग आभ्यन्तरिक अवयवोंकी निर्बलतासे उत्पन्न सब रोगोंपर किया जाता है। इसी हेतुसे मूल ग्रंथकारने इसके गुणमें केवल "सर्वरोगे" वसन्त इतना ही कहा है।

कुचिला आदिसे क्षणिक उत्तेजना आती है, इससे भी बलकी प्राप्ति हुई कहा जाता है। परन्तु विचार करने पर बल और उत्तेजना महदन्तर है। कुचिलासे वातवाहिनियोंका स्पन्दन, बढ़कर उत्तेजना आती है, वह क्षणिक है, धातुसाम्यपूर्वक नहीं। सुवर्णमालिनी वसन्तसे जो बल मिलता है, वह स्थिर है, धातुसाम्य रखकर मिलता है। सब अवयव-समूहोंको उनके अनुरूप घटकद्रव्य प्राप्त होकर बलकी प्राप्ति होती है। यह नियम है कि, आहार परिणामज द्रव्य उन-उन स्थानके धात्वग्निके योगसे पचन होकर उस धातुमें आत्मसात् होनेपर यह कार्य होता है। पूर्व धातुओंमेंसे परधातु बनती है। उसमें पूर्वधातुमें परधातुके लिये आहार रस है। इसी हेतुसे पूर्वधातुओंमें रूपान्तर होकर परधातुकी प्राप्ति होती है। इस तरह धातुओंका पोषण होता है। धातुपोषण व्यवस्थित होने पर बलाधान होता है। सुवर्णमालिनीके योगसे, रससे शुक्र और ओज तक सब धातुओंका पोषण, सबके भीतर रहे हुए धात्वग्नि सम्यक् प्रकारके कार्यक्षम बनने पर होता है। धातुपरिपोषण क्रम सत्वर और व्यवस्थित होने पर वात आदि त्रिधातुओंको भी बलकी प्राप्ति होती है। इसका भी पोषण होना ही चाहिये। त्रिधातुके साम्य पर शारीरिक घटक और मण्डलोंके बल का आधार है। त्रिधातु बलवान और सम होनेपर ही सब रस, रक्त आदि दूष्य और वातवहमण्डल आदि बलवान रह सकते है। इस तरह इस रसका परिणाम वातवहमण्डल पर शक्तिदायक होता है।

रोगी किसी बडे त्रासदायक रोगमेंसे उठा, ऐसा कहनेमें तात्पर्य यह है कि, रोगके त्रासदायक लक्षण सब दूर हुए है, या कम हुए हैं। किन्तु रोगके साथ लडते-लडते शरीरकी सभी धातु क्षीण होजाती है, बल भी क्षीण होजाता है। अग्निमांद्य होनेपर अन्नका अच्छा

पचन नहीं होता। ऐसी परिस्थितिमें सुवर्णमालिनी वसंत देनेका वृद्ध वैद्योंका वर्ताव है। इस तरह "सर्वरोगे वसंत:" वचन सार्थक होता है।

वसंतमालतीसे पाचक रसकी उत्पत्ति और क्रिया उत्तम प्रकारसे होती है; धातुके अंतर्ग अग्निको भी बलकी प्राप्ति होती है। इसी हेतुसे अन्न पचनयोग्य होता है। फिर रस, रक्त आदि धातु सम्यक् प्रकारसे बनती हैं; आगे-आगेकी धातु सबल होती जाती है; ओजकी वृद्धि होती है; तेज बढ़ता है, और देहका वर्ण भी सुधर जाता है।

क्षयमें—विशेषत: कीटाणुजन्य राजयक्ष्माकी प्रथमावस्थामें शरीर बल बढ़ानेका और प्रतिकारक्षमता बढ़ानेका महत्वका कार्य सुवर्णमालिनीसे होता है। प्रतिकारक्षमता बढ़ने पर क्षयके कीटाणुओंका नाश होता है। यह कार्य सुवर्णमालिनीमें रहे हुए सुवर्ण और मुक्ताके योगसे होता है।

कफक्षयकी प्रथमावस्थामें शुष्ककास, सूक्ष्मज्वर, विशेषत: सायंकालको शारीरि उत्ताप बढ़ जाना दिन-प्रति दिन निर्बलताकी वृद्धि होना और प्रात: समय प्रस्वेद आना आदि लक्षण होनेपर सुवर्णमालिनी वसंत देना चाहिये। इस अवस्थामें इस रसायनका उत्तम उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। (प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण साथ मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है)।

कफक्षयकी द्वितीयावस्थामें सुवर्णमालिनी वसंतकी अपेक्षा सुवर्ण भस्म, पूर्णचन्द्रोदय रस आदि मिश्रणका अधिक उपयोग होता है।

गण्डमाला या अन्य किसी स्थानमें—कक्षा, उदर, जंघाके भीतर ग्रंथि उत्पन्न होकर, उसमेंसे रसस्राव होना, सूक्ष्म ज्वर रहना, आगे ज्वर बढ़ते जाना, त्रासदायक शुष्ककास, सर्वांगमें शुष्कता, बाह्य त्वचा बिल्कुल रूक्ष हो जाना, अशक्ति, मांसक्षीणता, हाथ-पैर लकड़ी सदृश बन जाना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें सुवर्णमालिनी वसंत अति उपयोगी है। यदि उपर्युक्त लक्षणोंके साथ मनुष्य मोटा और पुष्ट हो, तो जसदभस्म देनी चाहिए।

जीर्णज्वरमें प्लीहावृद्धि और अग्नि आदि विशेष लक्षण होते हैं। इसमें क्षयका कोई सम्बन्ध नहीं होता। अनेक दिनों तक शीतपूर्वक ज्वर एवं आंत्रिक आदि सन्निपातक ज्वरके पश्चात जीर्णज्वर रह गया हो, तो सुवर्ण वसंत अति उत्तम कार्य करती है।

—जीर्ण और आग्रही शीतपूर्वक ज्वरके कतिपय ऐसे रोगी प्रतीत होते हैं, कि जिनको क्विनाइन, सोमल, लोहकल्पके विविध सिद्ध योगों द्वारा चिकित्सा अनेक बार अनेक दिनों तक सतत हुई हो, फिर भी शीतज्वर न जाता हो, बार-बार अपना अस्तित्व प्रकाशित करता ही रहता हो, रोगीको त्रास पहुंचाता ही रहता हो, इसका कारण यह है कि ये ओषधि व्यसनसदृश सामान्य होजानेसे शरीरसे शोषण होकर प्रतिकारक्षमता नहीं बढ़ा सकते। ऐसी परिस्थितिमें सुवर्णमालिनी वसंतसे अपूर्वलाभ प्राप्त हो जानेके अनेक

जीर्ण ज्वर होनेपर नेत्रोंमें दाह, हाथ-पैरोंमें जलन, मलावरोध, जिह्वापर सफेद मलकी तह आ जाना, नाडीमें क्षीणता, पेशाबमें पीलापन आदि लक्षण हो जाते हैं। इनमें कफ प्रकृति वालेको सुवर्णमालिनी वसंत आधी-आधी रत्तीके साथ मुलहठी, सितोपलादि चूर्ण और अमृतासत्व मिलाकर शहदके साथ देना चाहिये, तथा मुलहठी, खस, छोटी कटेलीकी मूल, सोंठ और मिश्रीका क्वाथ शहद मिलाकर देवें तथा आवश्यकता पर रात्रिको उदर शुद्धिके लिये आरग्वधादि क्वाथ या मधुकादि कषाय देना चाहिये।

सूचना—यदि सुवर्णमालिनीसे किसीको पित्त बढता हो या रक्तस्राव हो, तो प्रवालपिष्टी साथमें मिला लेनी चाहिये।

किसी-किसीको तीव्र शुष्कवास होनेपर सुवर्णमालिनी सहन नहीं होती। उनको पहिले मुक्ता, प्रवाल और गिलोय सत्व या कामदुधा देकर अधिक उग्रताका दमन करना चाहिये। फिर सुवर्णमालिनी देनेसे पूरा लाभ होता है।

(३२) मधुमालिनी वसन्त ।

विधि—सिंगरफ २० तोले लेकर ,अनारदानेके रसमें ७ दिन खरल करके सूक्ष्म चूर्ण बना लेवें। पश्चात् मुर्गीके २० अण्डोंके रसके साथ लोहेकी कडाहीमें डाल चूल्हेपर चढाकर मन्दाग्नि दें, और लोहेकी कलछीसे चलाते रहें। बार-बार रसका शोषण होकर सिंगरफकी गोलियां बनने लगेगी, उनको कलछीसे तोडते रहें। जब बिल्कुल रस सूख जाय, तब कडाहीको चूल्हेपरसे उतार लेवें। पश्चात्,कचूर सफेद मिर्च गऊला (प्रियंगु) प्रत्येक तैयार हुए सिंगरफके चूर्णके वजनसे आधे-आधे परिमाणमें और मिला, बडहर (अथवा अनार) के रसमें ७ दिन तक खरल करके १–१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० च०)

मात्रा—१ से २ गोली मिश्री-घृत या दूधके साथ दें। बालकोंके मृदुस्थि रोगमें मंडूर भस्म और शृंगभस्मके साथ देवें।

उपयोग—यह रस, बृंहण, बल्य, ओजोवृद्धिकर तथा सूक्ष्म स्रोतोंके लिये स्नेहन करनेवाला है। यह बालक, सगर्भा, अशक्त और सुकुमारोंके लिये अधिक उपयोगी है।

छोटे बच्चोंको गर्भिणी माताका दूध पीनेसे पारिगर्भिक रोगकी उत्पत्ति होती है। इसमें बालकका पोषण योग्य नहीं होता। कास, अग्निमांद्य, अरुचि ग्लानि, चक्कर आदि विकार होते हैं, बालकको बार-बार रोना रहता है, देहमें बल-मांस-विहीनत्वकी प्राप्ति होती है, उदर बडा हो जाता है,तथा हाथ-पैर पतले हो जाते हैं, इस विकारमें दीपनपाचन औषधिके साथ इस रसायनका उपयोग करना चाहिये। यदि अग्निमांद्य अधिकांशमें है, तो इसका उपयोग विशेष रूपसे नहीं होगा। बालकको माताका दूध

रोगके निदान परिवर्जनके होनेसे नहीं मिलाना चाहिये; और मधुमालिनीका सेवन कराना चाहिये ।

छोटे बच्चोंकी अस्थि वक्रता (Rickets) व्याधिमें अन्य अस्थिपोषक द्रव्य के साथमें इस रसका उपयोग करना चाहिये । इस रोगमें हड्डियां मृदु होकर मुड़जाती है; तथा कृशता, पाण्डुता, मांसक्षीणता और कुब्जता आदि तथा अस्थि धातुमेंसे चूनेका परिमाण कम हो जाना, उदर बड़ा, हाथ-पैर पतले, मानसिक-विकृति, बालकका क्रोधी और दुराग्रही होजाना, दांत आनेके समय जिस तरह अवयवोंका क्षोभ होता है उस तरह क्षोभ होकर अनेक इन्द्रियोंके व्यापारमें विकृति होना, पचनेन्द्रियकी क्रिया विकृति होनेसे कभी अतिसार और कभी कोष्ठबद्धता होना आदि लक्षण होते हैं; उन पर रक्त, मांस और अस्थिकी पोषक चिकित्सा करनी चाहिये । अतः मण्डूर भस्म, शृंगभस्म और मधुमालिनी वसन्तका मिश्रण हितकर है ।

गर्भिणीकी अस्थि धातु क्षीण होनेपर गर्भकी भी अस्थि धातु क्षीण होती है । फिर बालकको आगे मृद्वस्थि रोग होजानेकी संभावना रहती है । अतः अस्थि धातुके पोषणार्थ सगर्भाको उक्त योगका सेवन कराना चाहिये । जिससे बालकको मृद्वस्थि रोग होनेकी भीति न रहे ।

स्त्रियोंकी अशक्तताके कारणसे गर्भका योग्य पोषण नहीं होता; और सगर्भा स्त्रियां भी दिन-प्रति-दिन क्षीण होती जाती है । गर्भकी योग्य वृद्धि नहीं होती । एवं रूक्ष आहार-विहारके सेवनसे या योनिस्राव अधिकांशमें होनेसे भी गर्भका योग्य पोषण नहीं होता । गर्भ शनैः शनैः सूखता जाता है । इस अवस्था को किसी आचार्यने नागोदर और किसीने उपशुष्कक (उपविष्टक) संज्ञा दी है । इस अवस्थामें गर्भ और गर्भिणीके पोषणकी अत्यन्त आवश्यकता है । इसकी चिकित्सा श्रीवाग्भट्टाचार्यने निम्न वचनानुसार करनी चाहिये:—

तयोर्बृंहण-वातघ्न-मधुर-द्रव्य-संस्कृतैः ।
घृत-क्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भैश्च खादयेत् ॥

अर्थात् इस अवस्थामें बृंहण और वातघ्न गुणयुक्त घी, दूध, मिश्री, अंगूर आदि मधुर द्रव्यों और आम-गर्भ (कच्चे गर्भ) से सगर्भाकी तृप्ति करानी चाहिये । यह कार्य मधुमालिनी वसन्तके सेवनसे उत्कृष्ट रूपसे सिद्ध होता है; कारण इसे आम गर्भकी भावना दी है ।

स्त्रियोंको श्वेतप्रदर विकारमें अधिक स्राव होता हो; तथा बल, मांस और ओजकी क्षीणता हो, तो मधुमालिनी वसन्त देना चाहिये । इस तरह प्रसवके पश्चात् अत्यधिक स्राव होनेपर बल-क्षय प्रतीत होता हो, तो शक्ति लानेके लिये यह रस अति उपयोगी है ।

वृद्धि, मुह फूला हुआ-सा निस्तेज पाण्डु वर्णका होजाना और थोडा खाने पर भी उदरमें भारीपन आदि लक्षण होना है, उस पर लघुमालिनी वसंत अत्यन्त उपयोगी है।

कभी-कभी जीर्ण शीत ज्वरके विकारमें केवल शीतज्वरनाशक उपाय दीर्घकाल पर्यन्त करने पर भी लाभ नहीं होता। क्विनाइन सदृश औषधका अत्यधिक सेवन करने पर भी ज्वर नहीं भागता। इसमें एक कारण यह भी है कि, क्विनाइन मलेरियाके कीटाणु-नाशक होने पर भी यदि इसका अनेक दिनों तक सेवन किया जाय, तो वह भी कीटाणुओंको सात्म्य होजाता है। फिर कीटाणु ढीठ बन जाते हैं। ऐसे समय पर वसंत रूप अति उपकारक है। इस रसायनसे अग्निबलकी वृद्धि होकर पचन-क्रिया सुधरती है। रस, रक्त, धातु पुष्ट बनती है। प्रत्येक धातुकण सबल होता है। फिर आतुर कीटाणुओं को विदा किया जाता है। इस तरह जीर्णज्वरके अनेक रोगियोंको इस औषधिने आरोग्य की प्राप्ति कराई है। रोग-प्रभावसे शीतज्वरके पश्चात् या अन्य ज्वरके पश्चात् रक्तमेंसे रक्त कण कम होकर श्वेतता या पाण्डुता आने पर लघुवसंत और मण्डूर भस्म मिश्रण उत्तम कार्य करता है। पाण्डुरोगकी बिल्कुल प्रथमावस्थामें इसका उपयोग होता है।

तरुण युवतीको होने वाले पाण्डुरोगमें इस रसायनका उपयोग होता है। मासिक-धर्ममें अधिक रजस्राव, रक्तप्रदर या श्वेतप्रदरके पश्चात् आई हुई पाण्डुतामें भी यह रस उत्तम कार्य करता है।

छोटे बच्चेको मिट्टी खानेकी आदत होजाने पर पाण्डुता उत्पन्न होती है। इसमें पहिले मुर्दासंग आदि मृदुविरेचन योग देना चाहिये। फिर लघुवसंत और मण्डूर भस्म दिया जाता है।

कृमि रोगसे उत्पन्न ज्वरमें भोजनकी इच्छा न होना, क्षुधानाश, पाण्डुता आदि लक्षण होनेपर पहिले कृमिनाशक औषधि दीजाती है। फिर वसंत-मण्डूर मिश्रण देना चाहिये।

यह रस बालकोंको १६ वर्षकी आयु तक अल्परूपसे उपयोगी है। बिल्कुल स्तनधय शिशुको यह वसंत नहीं देना चाहिये। परन्तु अन्न और दूध लेने वाले बालकको यह निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। अतः इस वसंतको बालमित्र उपमा देनेमें अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सूक्ष्म ज्वर और इसके पश्चात् या इसके साथ अशक्ति, अस्थिमार्दव रोगकी अशक्ति या क्षीरालसक (त्रिदोष-दूषित स्तन्यसे होनेवाला ज्वर, जिसमें वमन, नाक, मुख आदि का पाक भी होता है) तथा पारिणामिक रोगमें आई हुई कृशता आदि विकारोंमें स्नायुओं की निर्बलताको नाश करनेवाली और अन्य धातुओंको पुष्ट करने वाली औषधियोंमें यह वसंत उत्कृष्ट अन्य है। इस अवस्थामें वसन्त-मण्डूर मिश्रणका उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण ज्वरमें अग्निसाद मुख्य लक्षण है; एवं जीर्ण ज्वरके पश्चात् या अन्य व्याधिके पश्चात् स्नायु या अन्य धातुओंकी अशक्ति हो जाती है; तथा मांस-विहीनत्वकी प्राप्ति होती है। इसका कारण भी बहुधा अग्निसाद होता है। अग्नि अर्थात् पचनेमें सहायक होनेवाला पित्तांश यह प्रत्येक धातुओंमें रहता है, ऐसा आयुर्वेदका सिद्धांत है। इस नियमानुसार अग्निसादका अर्थ इस स्थानपर प्रत्येक धातुके भीतर रही हुई पाचन-शक्ति (पचन-क्रिया) क्षीण होना; इस तरह रस आदि धातुक्षीण होनेमें तत्रस्थ धातुकण बनानेकी और उसे आत्मसात् करनेकी शक्तिकी क्षीणता होती है। इस अवस्थामें वसंत उत्तम ओषधि है। छोटे बच्चोके लिए तो लघुवसत अधिक प्रशस्त है। तथापि बड़ी आयु वालोंकें लिये भी रसाजीर्ण बार-बार होनेपर लघुवसंत अति उपयोगी है। अन्नका विद्वेष, उदर ओर कौड़ी प्रदेश सर्वदा जड़ रहना, उबाक, मुहमें चिपचिपा पानी आते रहना और निरुत्साह आदि लक्षण होनेपर लघुवसंत देना चाहिये।

पचनेन्द्रिय निबल होनेपर या अधिक अग्निसाद होनेपर अन्नपचन योग्य रूपसे नही होता। फिर अतिसार हो जाता है। कुछ दिन तक अतिसार रहता है; कुछ दिन नही रहता। फिर अतिसार हो जाता है। इस तरह बार-बार लौट-लौटकर हमला करता रहता है। साथमे सूक्ष्म ज्वर, सारा शरीर टूटना, दाह, रसवाहिनियोंकी विकृति, मुंहमें बेस्वादुपन, उबाक, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगना, मल सफेद रंगका होना, खट्टी-सी वास आना, अशक्ति, क्षुधानाश, थोड़ा-सा खानेपर भी न पचना आदि लक्षण होनेपर लघु वसंत देनेसे जठराग्नि प्रबल होकर अन्नपचन सम्यक् होने लगता है। फिर अतिसार बन्द हो जाता है। यह अतिसार जीर्ण व्याधि रूप ही होता है।

शारीरक व्यापार योग्य चलनेके लिये प्राणवायुकी पूर्ति होनी चाहिये; और रक्ताभिसरण क्रिया सम्यक् प्रकारसे होकर सब अवयवोंको आवश्यक रक्त मिलते रहना चाहिये। रक्त सबल न होनेपर इन्द्रियोमें अशक्ति आती रहती है; या पूरा रक्त न मिलनेसे इन्द्रिय कार्यक्षम नही रह सकती। इस हेतुसे "रक्तं जीव इति स्थितिः" यह वचन योग्य ही कहा है। रक्त सबल बनानेका और सब स्थानों पर पहुंचानेका कार्य वसंतसे उत्तम रूपसे होता है। इसलिये भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंकी निर्बलता पर लघुवसंत अति उपकारक है।

प्रदरमें मुख्य श्वेत और रक्त, ये दो प्रकार है। इनमे श्वेतप्रदर अपचन या योनिमार्ग की सूक्ष्म ग्रंथियोंके कारणसे भी उत्पन्न होजाता है। यदि अपचन विकारसे उत्पन्न हुआ हो, तो लघुवसंत अति उत्तम लाभ पहुंचाता है। यदि सूक्ष्म ग्रंथियोंका क्षोभ हेतु हो, तो वंगभस्म और त्रिवंगभस्म अधिक हितकर है। इस प्रकारके प्रदरमें जल सदृश पतला स्राव अनजानपनमें होता रहता है। मस्तिष्क भ्रमता हो ऐसा भासता है, शर शिर दर्द, कण्ठमें शुष्कता या चिपचिपापन, श्वसन योग्य न होना, बार-बार दीर्घ श्वास लेना, हृदयकें स्पन्दनमें वृद्धि, उदरमें आफरा, उबाक, अग्निसाद, लघु यन्त्र और बृहदन्त्रमें

आफरा अधिक, मलशुद्धि नियमित न होना (कभी मल साफ होता है, कभी अनेक बार दस्त होता है), मलमें खट्टी वास आना और मलका रंग सफेद-सा होजाना आदि लक्षण युक्त प्रदरमें लघुवसंत देना चाहिये ।

धातुगत ज्वरकी आयुर्वेदिक उपपत्ति अति अभिनव है । ज्वर विविध कारणोंसे उत्पन्न होता है । किसी भी ज्वरोत्पादक कारणसे विकार उत्पन्न होकर रस, रक्त आदि दूष्योंमें या स्वतन्त्र धातुओंमें जाकर पृथक्-पृथक् प्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति करता है । यह आयुर्वेदिक उपपत्ति है । इस पद्धतिसे रसगत ज्वर, रक्तगत ज्वर आदि विभाग आयुर्वेदने किये हैं । इनमेंसे शुक्रगत ज्वरको छोड़, अन्य धातुगत ज्वरोंमें ज्वरकी तीव्रता कम होने पर लघुमालिनी अति उत्तम कार्य करती है । तीव्रता कम होने पर लघुमालिनी अति उत्तम कार्य करती है । मुंहका बेस्वादुपन, उबाक, शरीरमें भारीपन, अंग गलना, बार-बार वमन, अरुचि, मुखमण्डल पर निस्तेजता और दीनता, यह रसगत ज्वरके लक्षण हैं । दाह, कफमें किंचित् रक्त आना, निरन्तर विचार आते रहना या चक्कर आते रहना, वमन, प्रलाप, सर्वांगमें ऐंठन, तृषा, शुष्कता, ये लक्षण रक्तगत ज्वरमें होते हैं । अतिशय प्रस्वेद, अति शुष्कता, बार-बार मूर्छा, प्रलाप, वमन, प्रस्वेदमें सड़ी हुई दुर्गन्ध, अति-ग्लानि अरुचि, सहनशीलता कम हो जाना, ये मेदस्थ ज्वरके लक्षण हैं । इन सब पर वसन्तका अति उत्तम उपयोग होता है । इस प्रकारके धातुगत विषम ज्वरोंमें विषम ज्वरदोष किसी भी धातुमें लीन रहता है । इस तरहके धातुगत विषम ज्वरमें भी यह अति उत्तम है ।

नेत्ररोगोंमें पोथकी रोगकी जीर्णावस्थामें वसन्तका अति उत्तम उपयोग हुआ है । जीर्ण पोथकीके हेतुसे अग्निमांद्य और कोष्ठशुष्कि हो सकती है, ये विकृति लघुमालिनी वसन्तसे उपशमन हो जाती है ।

यह वसन्त छोटे बच्चे और गर्भिणीके अबलत्वसे उत्पन्न सब विकारोंको दूर करता है । इस हेतुसे मूल ग्रंथकारने इसके फलमें "सर्वरोगहृत् शिशो' अर्थात् बालकके सब रोगोंको हर करने वाला कहा है ।

कितनीही स्त्रियोंमें बार-बार गर्भपातकी होनेकी आदत हो जाती है । चौथे मास तक गर्भस्राव हो जाता है । फिर गर्भपात होता है । इसका कारण गर्भाशयकी अशक्ति या मानसिक अस्वस्थता होती है । यदि गर्भाशयकी अशक्ति हो (गर्भाशयमें उपदंश या अन्य रोगजनित विष विकृति न हो), तो पहिले माससे ही लघुमालिनी वसन्तका प्रारंभ करना चाहिये । यदि मानसिक अस्वास्थ्य कारण है, तो गर्भपालरस, सार्वदैहिक विशेषतः अधिक मास क्षीण न होनेपर मधुमालिनी वसंत, उपदंशज विष हेतु है, तो अष्टमूर्ति रसायन, अभ्रक और सितोपलादि मिश्रण देना चाहिये । लघुवसंतसे गर्भपोषण उत्तम प्रकारसे होता है । गर्भोदर भी उत्तम बनता है । विकृत गर्भनिर्माण रूप दोषकी निवृत्ति

होती है तथा सगर्भाको आने वाला सूक्ष्म ज्वरभी दूर होता है।

उरस्तोय विकारमें फुफ्फुसावरणके भीतर यदि जलका संचय थोड़े परिमाणमें हुआ हो, तो लघुवसंतसे संचित जलका शोषण हो जाता है; और फुफ्फुसावरण अपने कार्यके लिये सशक्त बन जाता है।

पार्श्वशूलकी तीक्ष्ण अवस्थामें इसका उपयोग नहीं होता; परन्तु शूल नष्ट होनेके पश्चात् जीर्णावस्थामें फुफ्फुसावरणकी त्वचा मोटी हो जाना, सूखी खांसी, और श्वासोच्छ्वास क्रियामें थोड़ा त्रास होनेपर यह औषधि लाभदायक है।

सूचना——यह औषधि अधिक मात्रामें २–३ माल तक देने परकिसी मुंह आना, गलेमें दर्द, उदरपीडा और मूत्रमें लाली आजाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे समय पर कुछ दिनों लिये इसे बन्ध कर दोष शमनार्थ प्रवाल पिष्टी और गिलोयके सत्वके मिश्रणका सेवन कराना चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(३४) संशमनी वटी।

विधि——गिलोय घन १० तोले, लोह भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला और सुवर्णमाक्षिक भस्म ६ माशे मिलाकर दो-दो रत्तीकी गोलियां बना लेवें।
(वै० चि० सा०)

मात्रा——२ से ४ गोली दिनमें २ वार दूधके साथ देवें।

उपयोग——यह वटी जीर्णज्वर, क्षय, पाण्डु, खांसी, प्रदर, वीर्यस्राव, धातुक्षीणता निर्बलता आदि दोषोको दूर करके शरीरमें बल बढ़ाती है। पित्त प्रकृति वाले, नाजुक प्रकृति वाले,सगर्भा प्रसूता और बालकोंके लिये यह लाभदायक है। वातवाहिनियां मांस, स्नायु, ग्रंथिया और मस्तिष्कको बलवान बनाती है; स्मरणशक्तिको बढ़ाती है; और शरीरमे स्फूर्ति लाती है। बिगडे हुए धातु परिपोषण क्रमको सुधारने, जीर्णज्वरको दूर करने और पचन क्रियाको बढ़ानेमें अति हितकर।

(३५) नीलकण्ठ रस।

विधि——शुद्धपारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला और नीलेथोथेका फूला, चारोंको समभाग मिला देवदालीके फलोंके रसमें १ दिन खरल करके २-२ रत्तीकी गोलिया बनावे।
(र० यो० सा०)

मात्रा——१ से ३ गोली मिश्री और निवाये जलके साथ दें।

उपयोग——यह रस वमन करानेके लिये उपयोगी है। पित्त और ज्वरविष आदिको दूर कर सत्वर ज्वरका शमन कराती है; अम्लपित्त, श्वास, विषसेवन कास, हिक्का आदि रोगोमें ऊर्ध्व भागका शोधन करके शरीरको नीरोग बनाता है;

एवं जो-जो रोग पित्तप्रकोपजनित या कफवृद्धि जनित होनेसे वातिसाध्य हो, उन सबके लिये यह रस उपयोगी है।

(३६) इच्छाभेदी रस।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, सोंठ और कालीमिर्च १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा ३ तोले मिला, नींबूके रसमें ६ घण्टे घुटाई करके १-१ रत्तीकी गोलियां बाधें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह ठंडे जल या दहींके साथ दें।

उपयोग—इस रसकी दो गोलीसे ५-७ जुलाब लगकर अंतडी साफ हो जाती है। यह रसायन वातविकार, रक्तदोष, त्वचादोष, श्वास, कास, हिचकी, गुल्म, उपदंश, कुष्ठ, अजीर्ण, अफारा, शूल, उदररोग, आमवृद्धि, मलावरोध, कृमि, विस्फोटक कफ प्रधान जलोदर आदि रोगोंमें जुलाबके लिये उपयोगमें लिया जाता है। यह रस तीव्र विरेचन, कफवातनाशक, शूलघ्न, विषघ्न और बडी अंतडीमें रहे हुए सेंद्रिय-विषका संशोधक है।

यह रस विरेचन रूपसे जलोदरमें विशेषतः कफप्रधान जलोदरमें उदर्याकलामेंसे संचित जलको बाहर निकालने या शोषण करानेके लिये दिया जाता है।

पिष्टमय पदार्थके खानेसे उत्पन्न तीव्र स्वरूपवाले आनाह और आध्मान (कब्ज और अफारा) में इस रसका उत्तम उपयोग होता है। यदि आध्मानकी जीर्णावस्था हो या बार-बार आध्मान आ जाता हो, तो इच्छाभेदी सदृश तीव्र औषधि नहीं देनी चाहिये। यदि मल संचित होकर शुष्क गट्टे बन गये हो और उस हेतुसे शूल चलता रहता हो, तो पहिले स्नेहन देकर फिर विरेचन देना चाहिये।

अपतानक, अपतन्त्रक और आक्षेपक वातविकारमें कफानुबन्ध होने पर कोष्ठ-शुद्धि और कफसे रुद्ध स्रोतोंको शुद्ध करानेके लिये विरेचन औषधियोंमें इच्छाभेदी उत्तम प्रकारसे लाभदायक है।

बृहदन्त्रमें मलसंचय अतिशय होनेपर सब आतें दूषित होती है। फिर इसमें सेन्द्रिय विष निर्माण होता है। यह विष तीव्र स्वरूपका होता है। वह सारे शरीरमें शोषण होजाने पर रस रक्त आदि धातुमें विकृत होकर कुष्ठ सदृश रोग उत्पन्न हो जाता है। मुख्य कुष्ठरोग और मलसंचयजनित कुष्ठ सदृश विकार, दोनोंमें सम्प्राप्ति और लक्षण दृष्टिसे महदन्तर है। इस रोगमें समस्त देह पर बडे-बडे काले,या लाल धब्बे हो जाते है, खुजली भी आती रहती है। इस विकारपर विरेचनकी आवश्यकता होनेपर इच्छा-भेदी रस उत्तम कार्य करता है।

हिक्काके विकारसे आमाशयमें पित्त या कफ संचय खूब हो जाने बार-बार

हिक्का जनित विलक्षण त्रास होता है। ऐसे समय पर वमन, विरेचन द्वारा आमाशय शुद्धिकी अति आवश्यकता है। इच्छाभेदीसे वमन और विरेचन, दोनों कार्य उत्तम प्रकारसे हो जाते है।

विरुद्ध भोजन, अध्यशन (भोजन पचन होनेके पहिले फिर भोजन) या गर सेवन होनेपर बार-बार हिक्का आती रहती है; और क्वचित् वान्ति भी होती रहती है; उस पर इच्छाभेदी देनेसे कोष्ठशुद्धि होती है; और गर (सेन्द्रिय विष) भी नष्ट होकर व्याधि शमन हो जाती है। (औ० ग० ध० शा० के आधारसे)

रक्तदबाव वृद्धि (High blood pressure) होने पर शिरदर्द उपस्थित होता है। मस्तिष्कगत रक्तवाहिनियां रक्तसे खूब भर जाती है। दबाव अति बढ़नेपर खोपड़ी टूट जायगी या क्या? ऐसा भ्रम होता है। उस समय सत्वर उपचार न किया जाय, तो कोई बड़ी रक्तवाहिनी टूट कर पक्षवध या सून्यास होजाता है। इस रोगपर ५-७ जुलाब हो जाय, ऐसा विरेचन दिया जाता है। इस हेतुसे इच्छाभेदी रस २ रत्ती और शोथ चूर्ण ३ माशे मिलाकर शर्बतके साथ देना चाहिये। आध घण्टेपर सौंफ का अर्क ५ तोले देवें। आवश्यकता पर शामको दूसरी बार विरेचन देवें। इस तरह २-४ दिन तक विरेचन देनेसे बृहन्त्रकी शुद्धि होकर रक्तदबाव कम हो जाता है। भोजनमें खिचडी देवें।

सूचना—यह रसायन नूतन ज्वरी, अतिसार रोगी, जीर्ण आध्मानके रोगी और बार-बार आफरा आनेवाले, और सगर्भाको नहीं देना चाहिये। विरेचन लेनेपर अधिक दस्त लगें, तो शर्बत पिलाना चाहिये।

पथ्य—खिचड़ी-घी अथवा दही भात।

(३७) आनन्दभैरव रस।

विधि—शुद्ध हिंगुल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सोहागेका फूला, बच्छनाग और गन्धक, इन सबको समभाग मिला, नींबूके रसमें १२ घण्टे खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ बार जल, छाछ, चावलके धोवन कूड़ेकी छालका चूर्ण, या अनार शर्बतके साथ दें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे कफज्वर, खांसी, श्वास, जुकाम, अतिसार, मन्दाग्नि, अजीर्ण, ग्रहणी, अपस्मार, वात रोग, प्रमेह, सन्निपात और ज्वरातिसार दूर होते है।

यह रस ज्वरहर और स्वेदल है। यह त्रिभुवन कीर्तिकी अपेक्षा कम उग्र है। इस रससे पित्तवृद्धि होती है; अतः पित्त ज्वरमें नहीं देना चाहिये। कफप्रधान ज्वरमें इसका उपयोग किया जाता है। परन्तु कफज्वरमें भी जब तक आमावस्था हो, तब तक यह नहीं

देना चाहिये। लंघन करा निरामावस्था प्राप्त होने पर यह दिया जाता है। इस रसमें देह के भीतर श्वासमार्गकी श्लैष्मिक कलापर परिणाम होकर कफका शोषण होता है, अतः कफविकारमें इसका उपयोग इतने अंशमें अच्छा होता है। सर्वांगमें जडता, देहमें गीलापन, मर्यादित ज्वर, ज्वरकी अपेक्षा देहमें भारीपन अधिक, आलस्य, मुहमें मीठापन, अंग अकड जाना, लंघन करनेपर भी उदरमें भारीपन, भोजन अभी किया है ऐसा भासना, सारे शरीरमें शीतलता और मुहमें जल आना आदि लक्षण होनेपर आनन्द भैरव रस अवश्य देना चाहिये।

कफप्रधान सामान्य उत्पत्ति जुकाम होकर फिर पक करके हुई हो, कफकी बडी-बडी गाठ निकलती हो, या जुकाममें अच्छी तरह कफ निकलता हो, तो यह रस देना अति हितकर है। कितनेही चिकित्सक जुकामके प्रारंभ होनेके साथ वच्छनाग प्रधान औषधि देते हैं, इसका परिणाम अनेक बार हानिकारक होता है। अर्धावभेदक आदि शिरोरोग उत्पन्न होजानेकी भीति रहती है। वच्छनागका महत्वका धर्म नाक, कण्ठ आदि भागकी श्लैष्मिक कलामेंसे होनेवाले स्रावका मशोषण करा कलाको शुष्क बनाना है। जब विषको बाहर निकालनेके लिए जीवनीय शक्तिने जुकाम उत्पन्न किया है, तब उसका शोषण कराना इष्ट नहीं है। पतले कफका स्राव कर फिर कफ पक्व होनेपर ही आनन्दभैरवका उपयोग करना चाहिये।

श्वास रोगमें कभी-कभी कफ इतने अधिक जोर निकलता है कि, रोगी बेचैन हो जाता है ऐसे समयपर आनन्दभैरवसे सत्वर लाभ पहुचता है। श्वासकी अन्य अवस्थामें इसका उपयोग नहीं होता।

कफज अरुचि और अग्निमांद्यसे उत्पन्न अतिसारमें अन्नका सम्यक् पचन न होनेसे उदरमें जडता उत्पन्न होकर और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ होकर स्राव होता रहता है। इस हेतुसे अतिसारकी उत्पत्ति हुई हो, तो इसकी तीव्रावस्थामें आनन्दभैरवका उपयोग होता है। किन्तु जीर्णावस्थामें अश्वकंचुकी उपयोगी है।

सन्निपात, ग्रहणी विकारमें विशेषतः कफयुक्त आम अधिक गिरना, कफप्रसेक भारीपन, अरुचि आदि लक्षण होनेपर तथा ग्रहणीका निमित्त कारण शीतोपचार या शीतल वायुमें फिरना आदि हो, तो आनदभैरव देना चाहिये।

शीतोपचार या शीतल वायुसे उत्पन्न मध्यम कोष्ठशूल, उदरमें वायुकी उत्पत्ति, मलावरोध और बार-बार दस्त होनेपर शौचशुद्धि न होना आदि लक्षण होनेपर आनदभैरवका प्रयोग करना चाहिये।

वातज अपस्मारमें यह रस आक्षेपको दबानेमें सहायक होता है।

आनदभैरव रसमें काले वच्छनागके स्थानपर श्वेत वच्छनाग मिलाया जाय, तो उदकमेह, पिष्टमेह शनैर्मेह आदि कफज प्रमेहोपर अच्छा लाभ पहुचता है। इस रस

के प्रमेहपर प्रयोग करनेमें इस बातको सम्हालना चाहिये कि, मूत्रमें शर्करा बिलकुल न हो; यदि है तो भी अति कम मात्रामें मूत्र बार-बार अधिक परिमाणमें, मूत्रका विशिष्ट गुणत्व अति कम और मधुमेहमें तृषा, दाह, विपचिपापन आदि लक्षण न हों, इस स्थितिमें आनन्दभैरव रसका अच्छा उपयोग होता है । इन प्रमेहोंमें मुख्य लक्षण अपचन भी होना चाहिये । अग्निमांद्य इतना हो कि, थोडा खानेपर भी पचन न हो । इस तरह अपक्व अन्न पक्वाशय और बृहदन्त्रमें रह जानेसे प्रमेह या मूत्रातिसार उत्पन्न हुआ हो, तो उसपर आनन्दभैरव रस देना चाहिये । (औ० गु० ध० शा ०)

द्वितीय विधि---शुद्ध सिगरफ, शुद्ध बच्छनाग, कालिमिर्च, सोहागेका फूला और पीपलको समभाग मिला नागरवेलके पानके रसमें १२ घंटे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें ।

उपयोग--यह रस कफज कासके निवारणार्थ व्यवहृत होता है । दिनमें दो बार १-१ गोली जल या शहद-पीपलसे देवें । कासके अतिरिक्त जुकाम,अपचन,कुछ बुखार होना, दिनमें ३-४ बार शौच होना आदि पर भी लाभदायक है ।

(३८) कर्पूर रस ।

विधि--कपूर, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ और जायफल को समभाग मिला ३ घण्टे अदरखके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें । (भै० र०)

मात्रा--½ से १ रत्ती दिनमें ३ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग--यह रस ज्वरातिसार, अतिसार ६ प्रकारके ग्रहणी-रोग और प्रबल रक्तातिसार आदिको रोगानुसार अनुपानके साथ देनेसे सत्वर दूर करता है । विसूचिकामें दूषित मल निकल जानेके पश्चात् २-२ घण्टेपर देनेसे अतिसार और वमन दोनोंका निवारण करता है ।

पित्तातिसार और इसके साथ ज्वर, तृषा, दाह, चक्कर आदि लक्षण होनेपर तथा पीला,नीला और अरुण रंगका मल होनेपर,इस रसका अच्छा उपयोग होता है । अन्य सब प्रकारके अतिसारमें इतना अधिक लाभ नही होता ।

संग्रहणीके सब प्रकारोंपर इसका उपयोग होता है, ऐसा मूल ग्रंथकारने लिखा है । परन्तु पित्तज और वातज ग्रहणीमें ही इसका अच्छा व्यवहार होता है; कफजमें नहीं होता ।

वातज संग्रहणीमें भोजन पचन ठीक नहीं होता । खट्टी वास वाली उग्र डकारें आती रहती हैं; मुंह और कंठ सूखते हैं; एवं तृषा, नेत्रके पास अन्धकार,कानमें आवाज तथा

कण्ठ, पार्श्व, जघा, गुल्फ आदि सधि स्थानोमें पीडा, उदरमें सुई चुभाने सदृश वेदना, हृदयमें व्यथा, निर्बलता, तृषा, मुहमें बेस्वादुपन, भोजनकी इच्छा होती है, परन्तु खानेके समयमें उदरमें काटने सदृश पीडा होना रोगके अनुसारसे क्षुधा अच्छी लगना, हाथ-पैर गल जाना, अग्रपतना, अन्नपचन होनेपर अफारा, अनेक समय पतले शौच होना, चिपचिपा आममिश्रित झागयुक्त मल बडी आवाजसे साथ गिरना, बहुत समय किछनेसे मल आना, मलशुद्धि न होना, शौचशका बनी रहना, शौचका वेग बार-बार आना आदि लक्षण होते है। थोडा किछने पर शौच होता है, और इससे कुछ अच्छा भी मालूम पडता है, परन्तु पुन पुन शौच जानेकी इच्छा होती रहती है। इस परिस्थितिमें उत्तम शामक औषधि चाहिये, वह कर्पूर रस है। इस रसायनमें अफीम, जायफल आदि शामक द्रव्योंसे वातवाहिनियोका उत्पन्न हुआ क्षोभ कम होता है, जिससे शौच शका भी कम होती है।

पित्तप्रधान सग्रहणीमें नीला-पीला, रक्तयुक्त पतला दुर्गन्धमय मल हो जाता है, अधिक वेदना नही होती, किछना भी नही पडता, परन्तु उदरमें दाह, शौचमें जलन मलोत्सर्ग होनेपर भी गुदामें दाह, गुदापाक, सर्वांगमें दाह, अरुचि, तृषा आदि लक्षण अधिक होते है। इस अवस्थामें कर्पूर रस अच्छा उपयोगी है।

रक्तातिसारमें अफीम समान तीव्र स्तम्भक औषधिकी अपेक्षा प्रियगु, लोध, अर्जुन या धायके फूल सदृश रक्तस्तम्भक और रक्तप्रसादन करनेवाली औषधि देना हितकर है। अफीम तीव्र शामक होनेसे अन्त्रेन्द्रियका व्यापार अत्यधिक मद होजाता है। फिर इसकी क्रियाशक्ति अनेक बार नष्टप्राय हो जाती है। उसे नियमित होनेमें बहुत काल लग जाता है। अत इस विकार पर हो सके तबतक अफीमप्रधान औषधि न देना, यह अच्छा माना जायगा। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—कर्पूर रसमें अफीम और जायफल अति स्तम्भन करनेवाली औषधि होनेसे अतिसार और सग्रहणीकी आमावस्था (कच्चे आम)में इसे प्रयोगमें नही लेना चाहिये।

नये रक्तातिसार के प्रारम्भमें इसका उपयोग नही करना चाहिये, वरन अपक्वदोष भीतर ही रहजानेसे १-२ मास बाद फोडा फुसी आदि अनेक-रोग होजाते हैं।

(२६) अगस्ति सूतराज रस।

विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, शुद्ध सिंगरफ २ तोले धतूरेके शुद्ध बीज ४ तोले और शुद्ध अफीम ४ तोले ले लें। सबको विधिपूर्वक मिला, भागरेके रसमें ७ दिन खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें।

(यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ समय। अतिसारमें जीरा और जायफलके चूर्णके साथ। मन्दाग्नि,वमन, शूल, कफ और वातविकारमे त्रिकटु और शहदके साथ प्रवाहिकामें कालीमिर्च और घीके साथ।

उपयोग—अगस्तिसूतराज शामक, वेदनाहर, जन्तुघ्न और अंतड़ीमे उत्पन्न होनेवाली अब्धातु (जल) की वृद्धिको कम करता है। इसका उपयोग पक्वातिसार और निराम ग्रहणीमें विशेष लाभदायक है। इसका उपयोग आम संग्रहणी, अतिसार की आमावस्थामें नहीं करना चाहिये। लंघन द्वारा आमपाचन करा फिर इसका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

पक्वातिसारमें कफ, वात और कफवातज प्रकोपमे इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषत:बड़े-बड़े जुलाव लगना, उदरमें आक्षेप सदृश शूल,रह-रह कर शूल चलना और कुछ काल शमन हो जाना आदि लक्षण हों तो अगस्तिसूतराज रस उत्तम कार्य करता है। यदि इस रोगमें झागयुक्त कुछ दुर्गन्धवाली वमनभी होती हो, तो अनुपान रूपसे त्रिकटु और शहद मिलाना चाहिये।

संग्रहणीके विकारमें आमावस्था दूर होनेके पश्चात् इसका अच्छा उपयोग होता है। वातप्रधान और कफप्रधान संग्रहणीके रोगीको मठ्ठापर रखकर इस औषधि का उपयोग करते रहनेसे अच्छा लाभ पहुंचता है। ऐसे अनेक रोगियोंको लाभहोनेके उदाहरण मिलेहैं।

कफप्रधान संग्रहणीमें वेदना होती है परन्तु तीव्र नही होती। मल दुर्गन्धयुक्त, चिपचिपा कफ सदृश होता है। इस स्थितिमे इस रससे अच्छा लाभ होता है। मलकी दुर्गन्ध कज्जली और हिंगुलके हेतुसे कम हो जाती है; तथा पित्तस्राव योग्य मात्रामे होनेसे अग्निमांद्य कम होता है। धतूराके बीजसे अन्तःस्राव अर्थात् कफयुक्त अब्धातु स्राव नियमित होता है।

धतूरेसे वातप्रधान ग्रहणीमें क्षोभ और शूलका ह्रास होता है; और अफीमके योगमे पूर्णप्रशमन होता है। वातग्रहणीमे जो भयंकर शूल होता है; उसे अफीम सत्वर दूर करती है। इस औषधिके देनेपर बस्ति देनेसे कार्य जल्दी होता है। विशेष अनुवासन बस्ति (या एरंड तेलकी पिचकारी) देनी चाहिए। ग्रहणीमें पहिले अग्निमांद्य होनेसे घृत वा अन्य प्रकारके स्नेहका उपयोग न करना अच्छा माना जायगा।

अतिसार या ग्रहणीके अन्तमें क्वचित् प्रथमावस्थामें अपेक्षाकरनेपर भी वार-वार दस्त होते रहने हैं। इस हेतुसे गुदामार्ग और संपूर्णकोष्ठकी ग्राहक शक्ति बिल्कुल क्षीण हो जाती है। फिर मल भीतर नहीं रुक सकता; सत्वर बाहर आ जाता है। इस अवस्थामें अगस्तिसूतराजका उपयोग अच्छा होता है।

प्रवाहिका, विना वोध वार-बार शौच हो जाना, इस तरह अधिक निकलना, किसी किसीको अग्नि बलसे किंउनेपर गुदावलि व हर निकल जाना किसी-किसी रोगीको वेदनाके हेतुसे मूर्च्छा आ जाना इत्यादि लक्षण होनेपर अगस्तिसूतराज इसका उपयोग बहुत अच्छा होता है । धतूरा अन्त्रस्राव और आक्षेपको कम करता है, तथा अफीम वेदनाका निवारण करती है ।

मूत्रमार्गमेंसे शर्करा (छोटे कंकर) या सिकता (रेत) जानेपर आशयोपर आघात पहुँचता है, जिससे शूल उत्पन्न होता है, यह शूल कितनेही रोगियोमें अति भयंकर होता है । सिकता या शर्कराका विद्रावण हो जाय, या इनकी उत्पत्ति बिल्कुल न हो, और उत्पन्न शर्करासिकता मूत्रमार्गमेंसे सरलतापूर्वक निकल जाय, इस तरहकी औषध योजना करनी चाहिये । परन्तु ऐसी चिकित्सामें समय अधिक लगता है, और शूलकी त्रासदायक वेदना हो रही है । अत 'पश्चाच्चिकित्सेत्तूर्ण वा बलवन्तमुपद्रवम्' इस न्यायानुसार बलवान् उपद्रवको पहिले जीतना चाहिये अत शूल शामक चिकित्सा तत्काल करनी चाहिये । इस स्थानपर अगस्तिसूतराज रसको मूत्रल अनुपानके साथ देना चाहिये । उशीरासव, चंदनासव, सारिवासव या अरविंदासव, यह आसव कल्प अनुपानरूपसे विशेष अनुकूल रहता है । अगस्तिसूतराजसे स्तम्भन होकर मूत्रका परिमाण कम होनेकी संभावना है । इसी हेतुसे मूत्रल अनुपानकी योजना की जाती है ।

यकृत्का पित्त अधिक गाढा हो जानेसे पित्ताशयमें अश्मरी (पत्थर) बन जाती है । कभी एक गोल बडी अश्मरी होती है, कभी २–५ या १०००–२००० या इससे अधिक बाजरीके कण सदृश होती है । इनमेंसे कोई कण जब पित्तनलिकामें होकर ग्रहणीमें जानेका प्रयत्न करता है, तब शूलकी उत्पत्ति होती है । यह शूल वात प्रधान होता है । इसका मूल कारण पित्तस्रावकी न्यूनता है । इस हेतुसे पित्त शुष्क होकर जम जाता है । चिकित्सा कारणानुरोधसे करनी चाहिये, अर्थात् वस्तुस्थितिका परिवर्तनकर पित्तको सम्यक् गुणयुक्त बनाना चाहिये । यह कार्य ताम्रप्रधान औषधिसे होता है ताम्रभस्म करेलेके रस या कुटकीके साथ दी जातीहै अथवा सूतशेखर दिया जाता है । परन्तु कभीशूल इतना भयंकर होता कि, पहिलेउपद्रव दूर करनेकी चेष्टा करनी पडती है, ऐसे समयपर शूलजनित वेदनाकोशमन करनेके लिये अगस्तिसूतराज रस अति उपयोगी औषधि है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—इस औषधिमें अफीमका परिमाण ज्यादा है । अत सम्हालपूर्वक थोडी मात्रामें उपयोग करना चाहिये ।

(४०) कनकसुन्दर रस

विधि—शुद्ध हिंगुल, कालीमिर्च, शुद्ध गन्धक, पीपल, सोहागेका फूला, शुद्ध वच्छनाग और शुद्ध धतूरेके बीज सबको समभाग मिला भाँगके क्वाथमें ८ प्रहर खरलकर एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें । (भै० र०)

मात्रा--१ से २ गोली दिनमें ३ बार मठ्ठेके साथ दें ।

उपयोग--कनकसुन्दर रस ज्वरातिसार, अतिसार और संग्रहणीको दूर करके अग्नि प्रदीप्त करता है ।

यह रस छोटे बालकोंके लिये उत्कृष्ट औषधि है । बालकोंके दाँत निकलनेके समय त्रासदायक लक्षणोंको कम करनेके लिये इस रसका उपयोग अति लाभदायक है ।

दाँत निकलनेके समय विशेषतः वातविकृतिजनित लक्षण उत्पन्न होते हैं । बालक डरपोक बन जाता है; बार-बार रोता रहता है; और पचनक्रिया बिगड़ जाती है । फिर इसी हेतुसे उदरमेंअफारा और वमन या अतिसार होते हैं । दस्त बहुधा हरे रंग का होता है; दस्तम दूध-पानी पृथक् होते हैं; दूधके दधिकण जैसेके-वैसे भासते हैं । मानसिक स्थिति स्थिर होजाती है । किसी तरह चैन नहीं पड़ता बच्चा एकसे दूसरेके पास, दूसरेसे तीसरेके पास जानेका प्रयत्न करता है । धीरे-धीरे रोना, जोरसे रोना, चिल्लाना, काटना, मसूड़ोंपर अपनी मुठ्टी जोरसे दबानेका प्रयत्न करना, निद्रानाश और इसी हेतुसे नेत्रमें भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं इस व्याधि पर कनक-सुन्दर रसका अति उत्तम उपयोग होता है । दन्तोदभव ज्वरमें यदि ज्वर (शारीरिक उष्मा) अति तीव्र न हो, तो कनक सुन्दर देना चाहिये । इस रसमें रहे हुए धतुरोंके बीजोसे वातप्रकोपका शमन होकर ज्वरकी निवृत्ति होती है ।

ग्रहणीके विकारमें निराम अवस्था होनेपर इस रसका उपयोग होता है । जब तक कच्चे आम निकलते हों; तब तक एक दो दिन लंघन कराना चाहिये । फिर औषध योजना करनी चाहिये । प्रत्येक शौचके समय रक्तमिश्रित थोड़ी आम गिरना, इसके साथ उदरमें अतिशय शूल निकलना, फिर जोरसे किछनेपर कुछ अच्छे लगना, कभी-कभी शौचके लिये बैठे-बैठे देर तक किछता ही रहना, उठनेकी इच्छा न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो उस अवस्थामें अफीम सदृश स्तम्भक ओषधि देनेसे अन्त्रमें रही हुई सूक्ष्म मांसपेशियोंका स्तम्भन होकर आम और मलका निःसरण उत्तम प्रकारसे नहीं होता । आम और मलमें से कुछ अंश शेष रह जानेसे वह अधिक प्रबल विकारको उत्पत्ति करता है । कनकसुन्दर देनेसे उसमें रहे हुए धतूरा और भांग वेदना शमन करते हैं; मांसपेशियोंका स्तम्भन नहीं करते; और इसके विपरीत मल निःसरणमें सहायता करते हैं । हिंगुल जन्तुघ्न गुणके हेतुसे विषको निवृत्ति करता है । अतः यह ओषधि छोटे बच्चोंकी संग्रहणीपर बड़े मनुष्योंके संग्रहणी रोगकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है । बड़ी आयुवाले विशेषतः वातप्रधान प्रकृति वाले रोगियोंके लिये यह अधिक उपयोगी है । इस रोगका उपयोग जीर्णरोगकी अपेक्षा नये रोगपर अधिक होता है ।

अतिसारके विकारमें वातप्रधान लक्षण होनेपर इस ओषधिका उत्तम उपयोग होता है । अतिसारमें अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामेंसे स्राव अधिक होता है । इस स्रावको

सूचना—इसके सेवनसे किसी-किसीको तृषा बढ़ जाती है एवं शक्तिसे मात्रा अधिक होनेपर मादक असर होता है। ऐसा होनेपर मट्ठे का अधिक सेवन करना चाहिए, तथा मात्रा कमकर देनी चाहिये।

(४४) लघुलाई चूर्ण।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, भुना जीरा, कालानमक, सेंधानमक, भुनी हींग, और बिडनमक, ये सब समभाग और कुड़ाकी छाल (मतान्तरमें भुनी भांग) सबके बराबर लें। काष्ठादि ओषधियोंका बारीक चूर्ण करें। फिर कज्जली मिलाकर खरल करें।

मात्रा—२ से ३ माशेतक दिनमें ३ बार मट्ठेके साथ।

उपयोग—यह चूर्ण नयी वातज, पित्तज और आमप्रधान संग्रहणी, शूल, अफारा, पेचिश और सब प्रकारके शूलसहित अतिसारका नाश करता है। अन्नकी संग्रहशक्ति बढ़ाकर अन्नको बलवान बनाता है। रक्तातिसार और उदरशूलका शमन करता है, एवं आहारको अच्छी रीतिसे पचन कराकर मलको बांधता है।

जिसको भाग अनुकूल न हो, अन्नकी धारण शक्ति शिथिल हो जानेसे बार-बार दस्त लगते ही रहते हो, तथा उदरमें मरोड़ा भी आता हो, उसके लिये कुड़ाकी छालवाली यह ओषधि अति हितकर है।

(४५) शंख वटी।

विधि—इमलीका क्षार (भस्म) ४ तोले और पांचो नमक मिलाकर ४ तोले लें। सबको २० तोले नीबूके रसमें घोल दें। पश्चात् ४ तोले शुद्ध शंखको तपा-तपाकर जिनर जाय, तबतक उस रसमें बुझावें या शंखभस्म मिला लें। बादमें भुनी हींग, सोंठ, मिर्च और पीपल ४-४ तोले, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध बच्छनाग, तीनों १-१ तोला लें। पारद-गन्धककी कज्जली करके सब भस्मके साथ मिलावें। पश्चात अन्य ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिला, ३ दिन नीबूके रसमें खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें ३ समय जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी क्षय, ग्रहणी, अजीर्ण और पक्तिशूल, आदि व्याधिको दूरकर अग्निको प्रदीप्त करती है

शंख वटी आयुर्वेदमें पाचन ओषधियोंमें मोतरु एवं उत्तम ओषधि है। विष्टब्धाजीर्ण जनित अफारा, उदरव्यथा, शूल और व्याकुलता होनेपर शंख वटीका उत्तम उपयोग होता है। अधिक भोजनकर लेनेपर उदरमें भारीपन या उदरमें वेदना होनेपर

शंखवटी अति हितकर है .. वातवर्द्धक या जड़ भोजन खानेपर कुछ समयके पश्चात् उदर खूब खिचने लगता हो ऐसा भासता है; श्वास लेनेमें प्रतिबन्ध होता है; चलना-फिरना तो अशक्यप्राय: हो जाता है .. इस विकारपर शंख वटी देनेसे आमाशय बन्धको उत्तेजना मिलती है; एवं आमाशयमें अलसीभूत अन्नको आगे गति करानेमें सहायता मिल जाती है। इस हेतुसे उदरकी खिचाई और व्यथा कम हो जाती है मध्यम कोष्ठ(लघु अन्त्र) के शूलमे भी यही स्थिति होती है; उसपर भी शंख वटीका अच्छा उपयोग होता है। इससे अन्त्रकी पुर:सरणक्रिया बढ़ जाती है; अवरोध दूर हो जाता है; और अन्नको आगे-आगे चलानेमें सुविधा हो जाती है। इस तरह शूलके हेतु नष्ट हो जानेसे शूल स्वयमेव शमन हो जाता है। लघु और बृहदन्त्रके संगम स्थानमें अपक्व अन्न संचय होकर आनाह और शूल उत्पन्न होनेपर शंख वटीका उत्तम उपयोग होता है। ये सब विष्टब्धाजीर्ण अवस्थाए हैं; और यह शूल उस अजीर्ण जनित है।

विदग्धाजीर्णमें कण्ठमें दाह, खट्टी डकार, उदरमें जलन, भोजन करनेके पश्चात् घण्टों तक अन्न जैसाका वैसा पड़ा रहना आदि लक्षण होने हैं। इस अवस्थामे शंखवटी अच्छा लाभ पहुचाती है।

अपक्व आहार, विदग्धाहार जनित मूर्च्छा, अत्यधिक भोजन, विष्टम्भकारक अन्न, कच्चे या अर्द्धपक्व भोजन, पक्के भारी भोजन, शीतल पदार्थ या दुर्गन्धयुक्त भोजनका सेवन आदि कारणोंसे अतिसार हो जाता है। यह अतिसार अन्नविषके हेतुसे होता है। इस अन्नविषसे विष्टम्भ, वेदना, शिरदर्द मूर्च्छा, भ्रम, पीठ और कमर जकड़ जाना, जंभाई, हाड़फूटना, तृषा, ज्वर, छर्दि, प्रवाहिका, अरुचि, अपचन आदि विकार हो जाते हैं। इस अन्नविषसे विदाह होकर अन्त्रकी श्लैष्मिक कला विकृत होती है; और अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर यह अब्धातु (जल) अपक्व आहारमें मिश्रित होकर बड़े-बड़े जुलाब लगते हैं। इस जुलाबके साथ उदरमें अफारा भी होता है। सारे उदरमे मन्द-मन्द वेदना होती है; या शूल चलता है। ये सब अन्नविष जनित क्षोभसे होते हैं। इस अतिसारमे शंख वटी उत्तम कार्य करती है।

ग्रहणी रोगकी अति तीव्रावस्थामें इस ओषधिसे अधिक लाभ नही होता। परन्तु इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेके पहिले अग्निमांद्य, अजीर्ण, अन्नविषसंचय आदि पर इसका अच्छा उपयोग होता है। एवं ग्रहणीके तीव्र विकारमें भी कफप्रधान लक्षण और शूल होनेपर शंख वटी उत्तम लाभदायक है।

अग्निमांद्यमें अरुची और शूल अधिक होनेपर शंख वटी का बहुत अच्छा उपयोग होता है।

परिणामशूलमें विबन्ध, अफारा और कोष्ठशूल, ये लक्षण होने या अन्न आमाशयमे अधिक समय रहकर शूल उत्पन्न होनेपर शंखवटी दी जाती है।

जीर्ण वद्धकोष्ठके विकारमें लघु और बृहदन्त्रके संयोगस्थान, अन्त्रपुच्छ, बृहदन्त्र, इन स्थानोंमें अफारा, कब्ज होकर भयंकर त्रास, शूल, घबराहट, या अस्वस्थता आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो इस वटीका उत्तम उपयोग होता है।

शंखवटी वात और वातकफ दोष, रस दूष्य तथा आमाशय, यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी, लघु अन्त्र, बृहदन्त्र, इन स्थानोंपर लाभ पहुंचाती है।

सूचना—इस वटीके अधिक उपयोगसे मुखपाक, दांतोंमें वेदना, क्वचित् अर्श और रक्त गिरना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। (औ० गु० ध० शा०)

(४६) शंखोदर रस।

विधि—शंख भस्म ४ तोले तथा शुद्ध अफीम, जायफल और सोहागा फूला १-१ तोला मिलाकर खरल करें। (र० यो० सा०)

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें ३ से ४ बार मक्खन-मिश्री या मट्ठेके साथ। पक्वाशयके शूलपर गुड़ और सोंठके क्वाथके साथ।

उपयोग—यह रस रक्तातिसार, रक्तार्श, पक्वातिसार, भयंकर शूलसहित पतले, पीले, लाल, या नीले कष्टसाध्य अतिसार, गुदामें जलन और अनेक प्रकारके उत्कट शूल आदिको तत्काल नष्ट करता है एवं आमका पचन करता है।

शंखोदर रसमें स्तम्भन गुणकी अपेक्षा वेदनाशामक गुण अति उपयुक्त है। इस हेतुसे इसका प्रयोग शूलसह अतिसार, तीव्र पक्वातिसार और निराम संग्रहणीमें किया जाता है। अजीर्ण, विदग्ध आहार, विष, गर, कृमि आदि क्षोभक त्रासदायक निमित्त कारणोंसे उत्पन्न अतिसारमें मूल क्षोभक कारणको दूर करना यही इसकी उत्कृष्ट चिकित्सा है। इसके अतिरिक्त कारणोंसे होनेवाले पक्व अतिसार तथा आमातिसार या आमसंग्रहणीकी प्रथमावस्थाको छोड़, शेष, अवस्थामें इसका उत्तम उपयोग हुआ है। पित्त या वातप्रकोपसे अन्त्र क्षोभ होकर अतिसार हुआ हो, तो इसे उपयोगमें लें।

बड़े-बड़े पतले, पीले और गरम-गरम जुलाब, नीले लाल रंगके दस्त, अतितृषा, क्वचित् मूर्छा, आमाशय आदिमें दाह, गुदाद्वारमें जलन और परिस्राव, शौचके समय अति जलन, रक्त गिरना और व्याकुलता आदि लक्षण होनेपर मक्खन-मिश्रीके साथ इस रसका उपयोग करना चाहिये।

अरुण वर्णका झाग और झागयुक्त थोड़ा थोड़ा दस्त होना, अति किंछना, बार-बार शौच होना, उसमें भयंकर दर्द, भयंकर वेदनायुक्त पेचिश होकर शौच होना तथा शौचके समय अति कष्टदायक असह्य वेदना आदि लक्षण होनेपर शंखोदर रस आशु फलप्रद है।

जिस अतिसारमें किछ-किछ कर थोड़े-थोड़े दस्त होते हों; दस्तमें विशेषत: आम और कुछ रक्त हो, गुदामार्गमें दाह, गुदापर स्पर्श भी सहन न हो, यह लक्षण हों, तो शखोदर रस देना चाहिये।

यह रस वात, पित्त, ये दोष; रस रक्त, मांस, ये दूष्य; तथा यात्, लघु अन्त्र और बृहदन्त्र, इन स्थानों पर लाभदायक है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना--इस रसमें अफीम होनेसे कम परिमाणम ही देनी चाहिसे। कदाचित् किसीको अफीमके नशे का असर हो तो नीबूका रस मिलावें। सगर्भा स्त्री को यह रस नहीं देना चाहियें।

(४७) जातिफलादि वटी।

विधि--जायफल, सैंधानमक, शुद्ध सिगरफ, कौड़ी भस्म, सोंठ, शुद्ध अफीम, धतूरेके शुद्ध बीज और पीपल, सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर नीबूके रस, धतूरेके बीजके क्वाथ और भांगके क्वाथकी एक-एक भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावे। (वै० सा० सं०)

मात्रा--१-१ गोली दिनमें ३ बार मट्ठा अथवा जलके साथ। वमनसहि अतिसारमें नीबूके रस और मिश्रीके साथ। अपचनजनित विसूचिका पर हींग और सैंधानमक मिले मट्ठेके साथ।

उपयोग--यह औषधि पक्वातिसार, निराम संग्रहणी, अजीर्ण जन्य विसूचिका और शूलको दूर करती है। यह शामक, स्तम्भक और पाचक है। अजीर्णजन्य विसूचिकामें छोटी आयुवालोंको थोड़ी मात्रामें दी जाती है। नूतन संग्रहणी आमानुबंध हो, तो इसका उपयोग होता है। इसके सेवनसे अजीर्णजन्य शूल, अतिसारमें होने वाले तीव्र शूल और मध्यम कोष्ठस्थ शूल, शीघ्र शमन होते हैं।

अतिसारमें बड़े-बड़े पीले रंगके जुलाब लगना, उदरमें शूल या भयंकर पीड़ा होना पहले प्रत्येक समय पर अधिक शौच बिना त्रासमे होना, फिर उदरमें दर्द अधिक होना और श्वास भर जाना, खट्टी-खट्टी वमन होना आदि लक्षण होते हैं। इस पर जातिफलादि वटी नीबूके रस और मिश्रीके साथ या मट्ठेके साथ देनी चाहिये।

छोटे बालकोको अजीर्णजन्य विसूचिका या अतिसार होने पर इस औषधिका उपयोग होता है। यदि शूल तीव्र हो; जुलाव बार-बार बड़े-बड़े लगते हों; व्याकुलता अति हो; परन्तु उदरमें अधिक दोष संचय न हों, तो इस वटीका उपयोग करना चाहिये।

संग्रहणीमें आमानुबंध हो; और विकार थोड़ेही दिनोंका हो, तो इस औषधिका उपयोग होता है; किन्तु जीर्ण संग्रहणी और आम संग्रहणीमें इसका उपयोग नहीं होता।

विसूचिकामें दो प्रकार हैं--जन्तुजन्य और निर्जन्तुक। जन्तुजन्य विसूचिकामें इस वटीका उपयोग होता है। निर्जन्तुक विसूचिकामें विशेषत: अपचनसे उत्पन्न

होनेपर इस जातिफलादि वटीका प्रयोग किया जाता है। आमलक्षण अर्थात् उबाक, मुहमें पानी आना और अफारा आदि लक्षण हो, तो यह वटी नहीं देनी चाहिये।

मध्यम कोष्टस्थ शूल, अपचनमें उत्पन्न अतिसार या संग्रहणीमें उत्पन्न तीव्र त्रासदायक शूल, ये सब इस ओषधिसे त्वरित प्रशमन होते हैं।

सूचना—अतिसारमें जब तक कच्चा आम गिरता होवे तब तक इसका या अन्य अफीमयुक्त स्तंभक ओषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(४८) हिंगुल वटी।

विधि—शुद्ध सिंगरफ, कच्ची हींग, सुपारीके फूल, जावित्री और अफीम २-२ तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर चार बडे पक्केखट्टे अनारमें खड्डाकर ओषधि भर, ऊपरसे बन्द करें। पश्चात् थोडा सूत लपेट, ऊपरसे बाटीके समान जलमें गूंदा हुआ गेहूँ का आटा पाव इंच मुटाई जितना लगावें। फिर बाटीकी रीतिसे सेककर खड्डेमें दबा दें, और ऊपरसे ३० सेर आरनोंकी निर्धूम कूटी हुई अग्नि डालें। खड्डेमें अनारकी बाटीपर एक-एक इंच धूल अथवा राख डालें। फिर ऊपर निर्धूम अग्निकी गरम राख दबावें। २ दिन बाद अग्नि बिल्कुल शांत हो जाय, तब निकाल अनार सहित ओषधिको खरल करके चने बराबर गोलियां बनालें।

(पं० श्री रामनाथजी त्रिवेदी)

सूचना—अनारके ऊपरका आटा खड्डेमें दबा देना चाहिये।

खड्डेमें अनार रखनेके समय कटा हुआ भाग ऊपरकी ओर रहना चाहिये। अन्यथा रस बाहर निकलकर ओषधिका गुण बहुत कम होजाता है।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ से ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी प्रवाहिका, उदरशूल, रक्तातिसार, पक्व अतिसार, संग्रहणी, हैजा, मन्दाग्नि, निर्बलता, बहुमूत्र, वमन, धातुक्षीणता और श्वास आदि रोगोंका नाश करती है।

यह वटी स्तम्भक, पाचक और वातनाशक है। इसमें लघु अन्त्र और बृहदन्त्र में रहे हुए अब्धातुका शोषण, आमका पाचन, उदरवातका निःसरण तथा अन्त्रक्षोभका शमन होता है, जिससे पक्व अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, नूतन ग्रहणी, अजीर्णजन्य विसूचिका तथा उदरशूल शमन होते हैं। पित्तविकृति और उदरमें वायु भरनेके कारण मूत्रशुद्धि न होती हो, बार-बार थोडा-थोडा मूत्र आता रहता हो, ऐसा बहुमूत्र रोगभी इसके सेवनसे दूर होता है।

हैजेमें दूषित मल निकल जानेके पश्चात् दो-दो घण्टे पर १-१ गोली देते रहनेसे ६-८ घण्टेमें रोग निवृत्त हो जाता है।

ग्रीष्म ऋतुमें ऋतु परिवर्तनसे उत्पन्न अतिसार और ग्रहणी रोग कभी-कभी उग्र बन जाते हैं। इन विकारोंमें दिनमें ५०–१०० बार शौच जाना पड़ता है। बार-बार थोड़ा-थोड़ा शौच होना, उदरमें अति बलपूर्वक मरोड़ा आना, प्रवाहण करनेपर कुछ आम आना या किंचित् रक्तमिश्रित थोड़ा मल गिरना घबराहट, अति थकावट, बचैनी, मुखमें जल भर जाना, उबाक आना, क्वचित् मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण होनेपर इस वटीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

रक्तातिसार होनेपर उदरमें मरोड़ा आकर रक्तमिश्रित मल गिरना, गुदाद्वार से काच निकलना, गुदाद्वारमें झनझनाहट, मूत्र थोड़ा और लाल हो जाना, नाड़ी कभी तेज कभी क्षीण हो जाना; दस्तके समय किछना आदि लक्षण होते हैं। इसपर यह रस उपयोगी है।

सूचना—जब तक पुराना दुषित मल निकलता हो, तब तक यह या अन्य मिश्रित औषधि नही देनी चाहिये।

(४६) रामबाण रस!

विधि—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध बच्छनाग १ भाग, लौंग १ भाग, कालीमिर्च २ भाग और जायफल आधा भाग लेवें। इन सवको मिला पक्की इमलीके रसमें १२ घण्टे खरल करके, मूंगके बराबर गोलियां बना लेवें।

(भै० र०)

अन्य ग्रंथकारोंने इस रसको इमलीके रसकी भावनाके पश्चात् बिजौरा, संतरा, अनार, आकके फूल और अदरख, इन सबके रसमें १-१ दिन खरल करनेका विधान किया है। इस तरह ६ ओषधियोंकी भावना देनेसे यह रस विशेष लाभदायक बनता है। हम इसी तरह तैयार करा उपयोगमें लेते है।

इस रसको कफशमनार्थ अदरखके रसमें; वातशमनार्थ निर्गुण्डीके रसमें; पित्त-शमनार्थ धनियेके हिममें; श्वासपर त्रिकटु और वासास्वरसके साथ; उदर रोगमें सोंठ, सैंधानमक और हरड़के साथ; शोथ पर पुनर्नवाके क्वाथमें; पाण्डु रोगपर गोमूत्र या त्रिकटु और त्रिफलाके क्वाथमें; क्षयपर शहदमें; विषमवात-वेदना और संपूर्ण वात-विकारमें एरण्ड तैलके साथ देना चाहिये।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार मट्ठे या जलसे दें।

उपयोग—रामबाण रस उत्तम, दीपन, पाचन और ग्राही औषध है। नयी आमसंग्रहणी, अजीर्णजन्य अतिसार, आमवात, मन्दाग्नि, श्वास, कास, ज्वर, वमन, जुकाम तथा कृमिरोगका नाश करता है। यह रस कोष्ठस्थ अन्धातुका शोधन करता है; दूषित अंशको मूत्र और प्रस्वेद द्वारा निकाल देता है; तथा पाचन क्रिया बढ़ाता

हैं, जिससे आमजनित विविध रोग नष्ट होजाते हैं ।

यह रस विशेषतः वातज विकृति, कफज विकृति और वातकफज विकारपर लाभदायक है । पित्तप्रकोपमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये । जब आमाशयके पित्तका स्राव कम होकर अग्नि मन्द होजाती है, तब अपचन होता है, आमकी उत्पत्ति होने लगती है, बार-बार थोडा दस्त लगना, उदरमें भारीपन बना रहना, डकार तथा कभी जुकाम होजाना, इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं । उसपर इस रसका सेवन लाभदायक है । इसके सेवनसे आमाशयका पित्तस्राव बढ जाता है, जिससे अग्निमांद्य दूर होकर सब विकार शमन होजाते हैं ।

ग्रीष्म ऋतुमें दोपहरको अधिक फिरने, बिगडे हुए फल, दूषित अन्न या बासी भोजन करने पर, अपचन होकर अतिसार होजाता है । बार बार दस्त लगना, व्याकुलता, तृषा, कण्ठशोष, अरुचि, किसी किसीको जुकाम भी हो जाना और हाथ पैर टूटना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । इस विकार पर रामबाण रसका उपयोग बहुत अच्छा होता है ।

यदि अपचन होनेसे ज्वरोत्पत्ति हुई हो, या अग्नि मन्द होनेसे निर्बलता आकर श्वासरोग होगया हो, अथवा आम और कफकी वृद्धि होकर कास रोगकी प्राप्ति हुई हो, तो उन सबका मूल कारण (अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण) दूर होनेसे ये नष्ट हो जाते हैं ।

(५०) नित्योदित रस ।

विधि—रससिंदूर, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म और शुद्ध बच्छनाग, सब समभाग और सबके बराबर भिलावा मिला जमीकन्दके रसमें ३ दिनतक खरल करके मटरके समान गोलियां बनावें । (र० रा० सु०)

मात्रा— १से २ गोली दिनमें दो बार घी लगाकर निगलें । (कब्ज वालोंको आध-आध छटांक मक्खनके साथ विशेष लाभदायक है ।

उपयोग—इस रसके सेवनसे अर्शकी सूजन, जलन, रक्त गिरना आदि सब, दोष दूर होकर मस्से मुरझा जाते हैं । यह रस दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, रक्तपौष्टिक, वातहर और विषघ्न है ।

अर्श रोगमें नित्योदित और अर्श कुठार, ये दो रस प्रधान हैं । इन दोनोंके कार्यमें कुछ अन्तर है । अर्श कुठार आमाशय और यकृत् दोनोंकी विकृति और कठोर कोष्टवाले, के लिये उपयोगी है, किन्तु यह नित्योदित विशेषतः यकृत्की निर्बलतासे उत्पन्न अग्निमांद्य मलावरोध और आमप्रकोप होनेपर तथा रक्तार्श पर विशेष प्रयुक्त होता है ।

यकृत् निर्बल होनेपर आवश्यक पित्तोत्पत्ति नहीं कर सकता और आम विषका रक्तमें प्रवेश होता रहता है । फिर आलस्य, निद्रावृद्धि, तन्द्रा व्याकुलता, मन्द-मन्द

ज्वर बने रहना, मलमें दुर्गन्धकी उत्पत्ति होना, मलका रंग चाहिये उतना पीला न रहना या सफेद मैला होजाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। एवं अन्त्रकी वातनाड़ियां निर्बल वननेपर उदरमें वायु उत्पन्न होती रहती है, किसी -किसीके उदर वायु बनीही रहती ह और अति कष्टसे थोड़ी-थोड़ी बाहर निकलती है। इसके साथ कब्ज रहनेसे अर्शके मस्से पर दबाव आता है इस हेतुसे कठोर मल का घर्षण होनेसे वार-बार रक्तस्राव होता है, परिणाममें देहमे पाण्डुता आजाती है; मुखमण्डल निस्तेज होजाता है; नेत्र गड्ढेमे घुस गये हों, ऐसा भासते हैं; मूत्र बहुधा पीला होजाता है; जिह्वापर मलकी तह जम जाती है; भोजन करनेकी रुचि नही रहती; मुखका स्वाद मीठा-मीठा भासता है; थोड़ा चलनेकी या कार्य करनेकी इच्छा नही रहती इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्थामे यह नित्योदित रस अमृतके सदृश उपकारक है। यदि ज्वर अधिक है, तो दहीकी थोडी मलाईके साथ तथा मलावरोध और मंद ज्वर होने पर (या ज्वर न होने पर) मक्खनके साथ देना चाहिये।

इस रसमें रससिन्दूरका मिश्रण शक्तिप्रदानार्थ किया है अर्थात् यह हृदय और यकृत्को सवल बनाता है तथा साथमें रही हुई ओषधियोंके गुणधर्मकी वृद्धि भी कराता है। गन्धक कीटाणुनाशक विषहर और रक्तशुद्धिकर है। अभ्रक भस्म वातनाड़ी, मांस और मस्तिष्कको पोषण देती है, लोह भस्म रक्तकी वृद्धि करती है और रक्तमे लाली भी बढ़ाती है। अर्थात् रक्तमे रक्ताणु और रक्तरंग दोनोंकी वृद्धि करती है। ताम्र यकृत्को सवल बनाती है और आवश्यक पित्त स्राव कराकर आमका पचन कराती तथा उदरस्थ दुर्गन्धका भी नाश कराती है। बच्छनाग रक्त आदि धातुओंमेंप्रवेशति आम विषको जलाकर ज्वरको शमन कराता है। भिलावा और जमीकन्द आमाशयकी शक्ति बढाते हैं; पचन क्रिया कोसुधारते हैं; उदरमें संगृहीत वायुकोबाहर निकालते हैं और अन्त्रकी परिचालन क्रियाको सवल बनाते हैं। इनके, अतिरिक्त घी, मक्खन या मट्ठेका सहयोग होनेपर मलको कठोर नहीं होने देते तथा रक्तार्शमें गिरने वाले रक्तका अवरोध कराते हैं।

सूचना—रस निकालने, खरल करने और गोलियाँ बाँधनेके समय हाथ पर घी लगाना चाहिये।

[५१] अर्शःकुठार रस।

विधि—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, लोहभस्म और अभ्रक भस्म ३-३ भाग, ; वेलगिरी, चित्रकमूल, कलिहारी, सोंठ, मिर्च, पीपल, पित्तपापडा और दंतीमूल , प्रत्येक १-१ भाग; सोहागेका फूला, जवाखार, सैंधानमक ५-५ भाग, सबको एकत्र करके ३२ भाग गोमूत्रमे पाचन करें। फिर चौधारी थूहरका दूध ३२ भाग डाल मन्दाग्निपर पकाकर मटरके समान गोलियां बनावें। (यो० र०)

और मसूड़ोंमें व्यथा या पक जाने सदृश भासना, मुखपाक, क्वचित् पतले दस्त अधिक होना और उदरमें अफारा आदि लक्षण हों, तो प्रदरके शमनार्थ बोलबद्ध रस अच्छा उपयोगी है।

प्रदर होनेपर भी बार-बार मूत्रमें जलन, मूत्र लाल या पीला होना आदि लक्षण हों तो बोलबद्ध रस उत्तम उपयोग होता है। इससे मूत्रकी उत्पत्ति अधिक होती है, उसका रंग सुधरता है, और प्रदरका विकार भी कम हो जाता है।

वृद्धावस्थामें गर्भाशयकी शिथिलता या गर्भाशय मुखके विकारके हेतुसे श्वेत या रक्तप्रदर होना, साथ-साथ श्वास या कास हों, तो बोलबद्ध उत्तम औषधि है। इसके योगसे कफ छूटकर पतला होजाता है, तथा उसमेंसे दुर्गन्ध कम हो जाती है। श्वास घबराहट कम होती है, और प्रदर भी दूर होजाता है। इस तरहके श्वास काममें अभ्रककी अपेक्षा बोलबद्ध रस विशेष उपयुक्त है। तीव्र वेग शमन होनेपर फिर श्वासकी जड़को नष्ट करनेके लिये अभ्रक भस्म देना हितकारक है।

जीर्णकासमें दुर्गन्ध युक्त, चिपचिपा सफेद कफ होनेपर बोलबद्ध रस अच्छा लाभदायक है। इस औषधिसे कफ छूटता है, पतला होता है, और दुर्गन्ध कम होती है।

जीर्ण प्रदर जीर्ण अजीर्ण रोग सदृश् सम्यक् पाचक्षम न होना त्वचापर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिका होना, मुंह फूला हुआ-सा भासना, हाथ-पैरोंमें जलन, बार-बार मुंह आना, कण्ठमें रही हुई गांठें बढ़ जाना, कुछ भी कार्य करनेकी अनिच्छा, निस्तेजना, ओजक्षीणता आदि लक्षण होनेपर बोलबद्ध रस फलप्रद औषध है।

बोलबद्ध रस प्रमेह, विशेषतः कफज प्रमेहके विकारोंमें हितकर है। इस रसमें रही हुई बीजाबोलका कार्य मूत्रेन्द्रियकी श्लैष्मिक कलापर होता है। इस हेतुसे प्रमेहमें बोल-बद्धरस लाभ पहुंचाता है, तथा यह रस स्त्रियोंके गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, पचनेन्द्रिय, रस, रक्त और वातकफात्मक विकारोंमें शामक और शोथ-प्रशमनकारक गुण दर्शाता है।

(औ० गु० ध० शा०

सूचना—वायु बढानेवाली और पित्त करनेवाली वस्तुएं नहीं खानी चाहिये। आहार मधुर और थोडा लेना चाहिये।

(५४) अग्निकुमार रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला और शुद्ध बच्छनाग १ भाग, शंख भस्म और कौडी भस्म २-२ भाग और कालीमिर्च ८ भाग लेकर बड़ जम्भीरी पक्के नीबूके रसमें ७ दिन खरल करके मूंगके बराबर गोलियां बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह रस अग्निको प्रदीप्त करता है; तथा वातप्रकोपसे उत्पन्न अजीर्ण, विसूचिका और कफ रोग दूर करता है । अपचन-जनित उदरवात, गुदामार्ग में वातसंचय, गल्मजनित वात और अन्य कोष्ठस्थ वातविकारका प्रशमन करता है । इस रसमें दीपन-पाचन और वातघ्न गुण प्रधान है । इस हेतुसे अन्नमें उत्पन्न अन्नविदाह और मड़नको नष्ट करता है । अफारा, उदरशूल, आमाशय, पक्वाशय और ग्रहणीमें वायु संगृहीत होना, फिर अपान वायु न निकलनेके हेतुसे अति व्यथा होना, इन सबको तत्काल शमन करता है ।

यह रस उष्णवीर्य होनेसे इसका उपयोग कफप्रधान, वातप्रधान और कफ वातप्रधान अजीर्णमें उत्तम होता है । पित्तजन्य अजीर्णमें अग्निकुमार या अन्य किसी तीक्ष्ण उष्ण आदिगुणयुक्त औषधिका सेवन न करना ही अच्छा माना जाता है। पित्तप्रकोपमें इसका उपयोग न होकर विपरीतपरिणाम की प्राप्ति होती है; अर्थात् पित्त अधिक प्रकुपित होकर उबाक, वमन, व्याकुलता, दाह आदि विकार सबल बनते है ।

कफज अपचनमें आम लक्षण अधिक होनेपर—"अजीर्ण तु कफाढामं तत्र शोफोऽक्षि गण्डयोः" ऐसे लक्षण होनेपर पहिले उपवास कराकर आमका पाचन कराना चाहिये । पश्चात् अग्निकुमार देनेसे सत्वर लाभ होता है । वातप्रधान अजीर्णमे कब्जियत विशेष रहती है । उसपर यह रस दहीके जलके साथ देना विशेष लाभदायक है ।

यदि उदरशूल तीव्र हो, तो घीको पतला कर उसके साथ अग्निकुमार देना हितकर है ।

विसूचिकामें दो भेद हैं—एक अजीर्णजन्य और दूसरा कीटाणुजन्य । कीटाणुजन्य विसूचिकामें लहशुनादि वटिका, संजीवनी, विसूचिकाहर वटी आदिका उपयोग अधिक होता है । परन्तु अजीर्णजन्य विसूचिकाके लक्षण—भयंकर उदरशूल, अफारा, मुंहमें बार-बार जल भर जाना, बार-बार वमन होना, उदरमें जड़ता भासना आदिप्रतीत होनेपर अग्निकुमार देना चाहिये । अजीर्णजन्य विसूचिकामें कफप्रकोप या पित्तप्रकोप होनेपर वमन होती है । इनमेंसे कफ विकृतिसे उत्पन्न लेसदार, दुर्गन्धयुक्त वमन होनेपर अग्निकुमारका अच्छा उपयोग होता है । खट्टी और गरम छर्दि होनेपर पित्तप्रकोप मानकर शंखभस्म, वराटिका भस्म, शुक्ति भस्म आदिका सेवन कराना चाहिये ।

प्रतिश्याय होकर उबाक या वमन होना, बार-बार ललास्राव, इनके साथ अफारा आदि लक्षण होनेपर नागगुटिकाकी अपेक्षा अग्निकुमार अधिक उपयोगी है बार-बार प्रतिश्याय होनेका स्वभाव और साथ-साथ अपचन; अथवा अपचन होकर प्रतिश्याय होना, इन विकारों पर अग्निकुमार उत्तम सफल औषधि मानी गई है ।

प्रतिश्यायके पश्चात् होनेवाले कास रोग और प्रतिश्याय न होकर श्वासवाहिनियोंमें कफ संगृहीत होकर उत्पन्न होनेवाली कास साथ-साथ अफारा, उबाक, जिह्वा पर

सफेद मलसंचित होना, मुंहमेंसे स्वाद नष्ट होजाना, किसी वस्तुके स्वादका पूरा बोध न होना, चरपरे पदार्थ पर विशेष प्रीति होना, स्निग्ध और स्वादु अन्न दृष्टिगोचर होनेपर मुंहमें पानी छूटना आदि लक्षण होनेपर अग्निकुमार देना चाहिये, क्योंकि ऊर्ध्वगतिशील कफविकारमें अग्निकुमार लाभदायक माना है ।

गुदामार्गकी अशक्तताके हेतुसे अतिसार (बार-बार थोडा निकलना), अपान वायुका अवरोध और जडत्ता आदि होते हैं । यह विकृति गुदामार्गका प्रदाह होकर स्तम्भन या धारणशक्तिकी न्यूनता होनेपर होती है । इस गुदवातरूपविकृतिमें अग्नि कुमार रसका अच्छा उपयोग होता है । कफगुल्म और कफवातजगुल्मके कारण उदरमें होनेवाले वातप्रधान लक्षण अग्निकुमारके सेवनसे शांत होजाते हैं । इनसे गुल्म तो दूर नहीं होता, तथापि उत्पन्न वायु शमन होती है ।

उदरमें आम या कफ संगृहीत होकर बार-बार उबाक होकर वमन होती है । वमनमें कुछ मीठे, चिकने या बेस्वादु जल या झाग निकलते हैं । उदरमें जडता प्रतीत होती है । चाहे उतनी बार वान्ति हो, फिर भी उदरकी जडता कम नहीं होती, बल्कि बढती ही जाती है । साथ-साथ अफारा आदि लक्षण होनेपर अग्निकुमार रस देना चाहिये । अग्निकुमारसे पित्तका यथोचित स्राव होकर उदरमें संग्रहीत द्रव नष्ट होजाता है । क्वचित् कफ लीन होजानेसे वमन दिनातक होती रहती है । ऐसा होनेपर पहले अन्त-परिमार्जन (वमन आदि कर्म) करा फिर अग्निकुमारकी योजना करनी चाहिये ।

अग्निकुमारके योगसे द्विदलधान्य, मैदा और पिट्ठीके पदार्थ, पक्का भोजन आदिका पचन सफलतासे होजाता है इन पदार्थोंसे अपचन होनेपर बडे-बडे जुलाब, उदरमें वायुका संचय, गुदा बाहर निकलना आदि लक्षण होने पर यह उपयोगी है ।

(औ० गु० ध० शा०)

(५५) क्रव्याद रस ।

विधि—शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध पारा ४ तोले, ताम्र भस्म १ तोला और लोह भस्म १ तोला लें । प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली करके भस्म मिलावें । फिर पर्पटी प्रकरणमें लिखी विधि अनुसार बेरकी लकडीके कोयलोंकी निर्धूम मन्दाग्नि पर कडाहीमें कज्जलीका रसकर एरंडीके पत्तोंपर डाल, पर्पटी तैयार करें । शीतल होनेपर खरलकर, पुन लोहेकी कडाहीमें डाल, चूल्हेपर चढाकर मन्दाग्नि देवें । बार बार थोडा-थोडा जम्भीरी नीबूका रस डालते जाय । ५ सेर रसका शोषण करावें । फिर पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और अम्लवेतके क्वाथकी ५० भावना देवें । पश्चात् सब चूर्णके समान सोहागेका फूला, सोहागेसे आधा काला नमक और सबके बराबर कालीमिचका चूर्ण मिला चनेके क्षारके साथ ७ दिनतक खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें ।

मात्रा—२ से ४ रत्ती मट्ठा और सैंधानमकके साथ देवें।

उपयोग—क्रव्याद रस अत्यन्त दीपन और पाचनशक्ति बढ़ानेवाला है। मध्यम कोष्ठमें सब पचनेन्द्रियोंकी शिथिलताको दूर करके उत्तेजित करता है; तथा पचनेन्द्रियके व्यापारको प्रबल बनाता है। मांस खानेवाले और जड़ान्न खानेवाले लोगोके लिये यह रसायन अति उपयोगी है। मांसाहार या पक्के भोजनका सम्यक् पचन न होनेपर उत्पन्न होनेवाले अलसक (उदरमें भोजन पत्थर सदृश पड़ा रहे और तीक्ष्ण शूल चले, ऐसा अजीर्ण) विलम्बिका (वात-कफ दोषसे भोजन पत्थर सम होकर उदरमें पडा रहे, किन्तु तीक्ष्ण पीड़ा न रहे ऐसा अजीर्ण), विसूचिका आदि अजीर्ण विकारको मट्ठे और नमकके साथ देनेसे क्रव्याद रस शीघ्र दूर करता है।

भोजनका सम्यक् पचन न होनेसे अन्न-रस ठीक तैयार नहीं होता। फिर इस रसका भी योग्य रूपान्तर न होनेसे आमोत्पत्ति होती है। इस आमका संचय होनेपर शनैः शनैः यह विकृतावस्थाको प्राप्त होता है। इस हेतुसे विविध साम विकारोंकी उत्पत्ति होती है। इनमे आमाजीर्ण, रसशेषाजीर्ण, ये तीव्र प्रकार है। आमसंचय अधिक होता है, तो शूल, अतिसार, ग्रहणी, कोष्ठबद्धता आदि व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है। इन सब विकारोके भीतर दुष्ट आमका पचन करा संशोषण कराना, यहकार्य इस रसके योगसे उत्तम प्रकारसे होता है। पहिले लंघन करा फिर क्रव्याद रसकी योजना करनी चाहिये।

धातु पोषण क्रमका व्यापार इस तरह होता है कि, पूर्वधातुमेंसे पर धातु अपने अनुकूल अंशका शोषण कर अपने स्वरूपमें मिलाते रहते है। परधातुकी क्रियामे पूर्वधातुमें न्यूनता होती है। फिर वह धातु अपनेसे पूर्व रही धातुमेंसे तत्व ग्रहण करती हैं। इस तरह शुक्र, मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त और रस, इन धातुओंकी क्रिया सतत होती रहती है। इन सबका आधार योग्य आहार रस है। यदि इस नियमका भग होता है, तो फिर मेद आदि कोई धातु बढती ही जाती है; और परधातुको पोषण नहीं मिलता। यदि मेदकी वृद्धि होती हैं: तो फिर मनुष्य स्थूल—फूला हुआ बनता ही जाता है। इस स्थौल्यको नष्ट करनेके लिये पूर्वधातुओंके सत्वको परधातुके योग्य बनानेका काम पचन क्रिया बढनेपर ही होता है। यह पचन-क्रिया बढानेका कार्य क्रव्याद रससे उत्तम प्रकार का होता है। इस रससे धात्वन्तर्गत पचन-गुण भी बढ जाता है।

मध्यमकोष्ठमे दीर्घकालके अजीर्ण रोगसे अन्नका कीटांश या पुराना मल संचित होता है। इस संचयसे विविध सेन्द्रिय विष निर्माण होता है यह विष दीर्घकालतक अन्त्रमें रह जानेपर समस्त शरीरको दुष्ट बनाता है। विरुद्ध, दूषित और अपथ्य आहारके योगसे इस गरकी उत्पत्ति होती है। बासी, बिगड़े हुए, ताम्र आदि धातुके विषसे दूषित या सड़े मांससे गर (विष) अधिक बनते हैं। कृत्रिमविष अर्थात् निर्विष पदार्थमेंसे स्वतः विकृति होकर परिवर्तित विषको गर संज्ञा दी यह गर, विष सदृश ही किंबहुना विषकी

जैसा भी अधिक भयकर है । गरके लक्षण दोषानुरोधसे भिन्न-भिन्न होते हैं । जिन प्रकारके गरोंसे कफप्रधान या कफवातप्रधान लक्षण उत्पन्न होते हैं; उन सबपर क्रव्याद रसका अच्छा उपयोग होता है ।

अर्शमें दोष कफप्रधान हो, मस्से मोटे सफेद रंगके हो, गुदामें वेदना, चिपचिप झागदार मल, शौच जानेकी इच्छा बना रहना, आदि लक्षण होनेपर क्रव्याद रस मट्ठेके साथ देना चाहिये ।

जीर्ण अजीर्ण रोगमें विशेषतः गुरु और स्निग्ध भोजन अधिक करनेसे उत्पन्न होने-वाले अजीर्णमें आमसंचय होकर बार-बार शूल चलता हो तथा उदरमें जड़ता, उदरमें दर्द, मुह फीका रहना, और मुखमण्डल सूजा हुआ-सा भासना आदि लक्षण, हो तो क्रव्याद रसकी योजना करनी चाहिये । इसके योगसे आमका पचन होकर शूल निवृत्त हो जाता है ।

वातगुल्म और कफगुल्मपर यह रस उपयोगी है ।

जीर्णज्वरके पश्चात् प्लीहावृद्धि और अग्निमांद्य, ये दो लक्षण प्रबल हो, ज्वरवेग कम होकर आलस्य, तन्द्रा, गुरुता हृदयोत्क्लेश, वमन, अंग गल जाना, अरुचि आदि लक्षण हो, तथा प्लीहा कठोर, स्थिर और बडी हो, तो क्रव्याद रसके योगसे उत्तम लाभ पहुंच जानेके अनेक उदाहरण मिले है । हरडके हिमके साथ या कुमारी आसवके साथ क्रव्याद रस देना चाहिये । जीर्ण वृद्धिमें ही इस औषधिका उपयोग होता है । नयी प्लीहा वृद्धि, ज्वर, हाथ-पैरमें जलन, सब अंग टूटना आदि लक्षण हो, तो इसका उपयोग नहीं करना चाहिये ।

प्लीहावृद्धिके समान यकृद्वृद्धिमें भी क्रव्याद रसका उपयोग होता है । यकृद्वृद्धि जीर्ण होनेपर सब लक्षण कफभूयिष्ठ होने चाहियें ।

संग्रहणीके विकारमें अन्नका पचन अति कष्टसे होता हो, तथा मुंहमें पानी छूटना, उबाक, अरुचि, मुहमें चिपचिपापन और मीठापन, खासी, बार-बार लालास्राव होकर चिपचिपे झाग सदृश थूक निकलना, नाक पक जाने सदृश भासना, जुकाम-सा होना, उदर जड और जल भरासा भासना, मीठे दुर्गन्धयुक्त डकार आने, अंग टूटना, देह अति कृश न होनेपर भी अति बलहीनता आ जाना, बलक्षय इतना कि थोडा-सा चलनेमें भी दुख हो, आम मिले कफयुक्त बार-बार दस्त लगना आदि लक्षण हो तो दीपन-पाचन औषध देना चाहिये । ऐसी अवस्थामें क्रव्याद रस उत्तम औषध है ।

वाताष्ठीलाके विकारमें क्रव्याद रसका उपयोग करना चाहिये ।

अफाराका विकार कभी-कभी अपचनसे उत्पन्न होता है । उदरमें अधिकाधिक वायु भरता जाता है, बार-बार डकार आते हैं । फिर भी अफारा कम न होना, मलावरोध,

कुछ थोड़ा-सा हल्का भोजन करनेपर भी उदरमें अफारा आकर कोष्ठवद्धता हो जाना, इस अवस्थामें वातघ्न और शौचशुद्धिकर औषधरूपसे क्रव्याद उत्तम कार्य करता है। अपचनके लक्षण न्यून होनपर श्वासविकृति भी कम हो जाती है।

जलोदरमें निमित्त कारण स्निग्ध भोजन या मांसाशन होने से अपचन होकर उससे यकृत्‌वृद्धि होना, इसमें हाथ-पैर और मुंहपर शोथ, मुखमण्डल अत्यन्त निस्तेज हो जाना, अंग अत्यन्त गल जाना, जड़ता, सारे शरीरमे झनझनाहट, अति निद्रा, उदर अति जड़, उदर अति खिंचा, उदरमें पानीका संचय, इस हेतुसे खांसी चलना, श्वास और थोड़ा-सा चलनेमे कष्ट होना आदि लक्षण होनेपर क्रव्याद रसका उपयोग करना चाहिये। इस रसका प्रयोग आसवअरिष्टके साथ करना चाहिये। यदि जल अधिक संचित हो गया हो, तो जलोदरारि रस उँटनीके दूधके साथ देना चाहिये।

सूचना—पित्त प्रधान रोगोमें क्रव्याद रसका सेवन नहीं करना चाहिये।

(औ०गु०ध०शा०)

(५६) अग्नितुण्डी वटी

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सज्जीखार, जवाखार, चीतामूल, सैंधानमक, जीरा, अजमोद, समुद्रनमक, बायबिडंग, कालानमक, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, सब समभाग और सबके बराबर शुद्ध कुचिला ले। सबको यथाविधि मिला, नीबूके रसमें १२ घण्टे खरलकर मिर्चके बराबर गोलिया बांधे। (शा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह रस मन्दाग्नि, अफारा, शूल, आमातिसार, अजीर्ण, पागल कुत्तेका विष, निर्बलता, स्वप्नदोष, हृद्रोग, वातरोग और संग्रहणीमें लाभदायक है। सर्वांगशूल और परिणामशूलका नाश करता है। एवं विशेषतः आमवातको नष्टकर अग्नि प्रदीप्त करता है।

अग्नितुण्डी वटी शूलघ्न, पाचक और दीपक है। रसाजीर्ण आदि पुराने त्रासदायक विकारमें अति लाभदायक है। कफभूयिष्ठ विकारमे विशेषतः आमाशयस्थ कफवृद्धि होती है। फिर कफमें भारीपन, चिपचिपापन आदि गुण बढ़नेसे उत्पन्न कफभूयिष्ठ लक्षणोंमें विशेष उपयोगी होती है। एवं मध्यम कोष्ठगत वात दूषित होकर वायुके शीतत्व, चलत्व आदि गुणवृद्धि होनेपर भी यह वटी हितकर है।

रसाजीर्णके स्वभाववाले रोगियोको बहुधा अग्निविद्वेष होता है; सर्वदा उदर में जड़ता और भारीपन भासते है, वृत्तिमें प्रसन्नता नही रहती; क्वचित् उदरकी जड़ता इतनी बढ़ जाती है कि, उदर पत्थर सदृश कठोर प्रतीत होता है; नेत्रदृष्टिमें न्यूनता होती है; किसी भी कार्य करनेमे उत्साह नही होता; अन्नका परिपाक सम्यक् नहीं

होता, डकार मधुर या भोजनके दूषित स्वादयुक्त आती रहती है, जिह्वाका स्वाद चला जाता है, जिह्वा चिपचिपी सफेद मलयुक्त होजाती है, भोजनकर लेनेपर तुरन्त ही वमन हो जाती है, वमनमें खाया हुआ अन्न और मधुर-सा जल निकलता है, आमाशयमें पित्त (पाचक रस-Gastric Juice) की उत्पत्ति जितनी चाहिये उससे कम होती है, तथा उदरके भीतरकी पिच्छिल त्वचापर श्लेष्माका आवरण आजाता है। ऐसी स्थितिमें अग्नितुण्डी उत्तम कार्य करती है।

यकृत् अशक्त बननेपर यकृत्‌मेंसे पित्तस्राव कम होता है, या उस पित्तका पाचकत्व गुण न्यून होता है, इस हेतुसे अन्नका सम्यक् पचन नहीं होता, मध्यम कोष्ठमें एक प्रकारकी जडता भासती है, किसी-किसी समय उदरमें शूल उत्पन्न होता है, एवं अपक्व दूषित अन्नका सञ्चय हो जानेसे अतिसार भी होजाता है, इस अतिसारमें दुर्गन्धयुक्त सफेद-सा बिखरा हुआ (अपूर्ण रचनावाला) मल बार-बार आता रहता है- ऐसे लक्षण होनेपर अग्नितुण्डी देनी चाहिये।

यकृद्वृद्धि विकारमें अग्नितुण्डी वटीका उपयोग होता है। परन्तु बालकोंके लिये इस ओषधिका उपयोग होसके उतना कम करना चाहिये। विशेषतः कफप्रधान और कफ-वातप्रधान यकृद्वृद्धि विकारमें त्वचा, नख, नेत्र, ओष्ठ, मुख आदि श्वेत—निस्तेज-हो जाते हैं, गाल फूले हुये भासते हैं, गालोंपर एक प्रकारका चिकनापन (या तेज-सा) आजाता है, यकृत्‌का किनारा मोटा हो जाता है, उस भागमें सर्वत्र जडता आजाती है, आमाशयमें जडता, पिच्छिलस्राव, उदरमें भारीपना भासना, उदरमें मद-मद शूल होना, पाचक अग्नि अति मन्द होना, जल मिले हुये बाजरीके आटे सदृश या जल मिले तिलकी खली सदृश सफेद दूषित रचनावाला मल होजाना आदि लक्षण होते हैं। कोष्ठमें शूल तीव्र नहीं होता, फिर भी बेचैनी अधिक रहती है। इस प्रकारमें विशेषता यह है कि, सब लक्षणोंके साथ एक प्रकारकी स्तब्धता आजाती है। सारे शरीरमें जडता भासती है। इसी तरह रोगीकी मानसिक स्थिति भी जड-सी होजाती है। एक प्रकारका बुद्धिमांद्य आता है, विचारशक्ति न्यून होती है। ऐसे प्रकारमें अग्नितुण्डीके उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। इसके साथ कुमार्यासव, वज्रक्षार या अन्य मृदुविरेचन दिया जाय, तो बहुत अच्छा उपयोग होता है।

मध्यम कोष्ठ और बृहदन्त्रमें पुरःसरण क्रिया मन्द होनेपर अन्न जहाँका तहाँ रुक जाता है, फिर उदरमें जडता आजाती है। उस स्थानमें वायुके प्रेरकत्व और पित्तके उष्ण तीक्ष्ण आदि धर्मसे जो भिन्न-भिन्न रस निर्माण होते हैं, उसमें मंदता आ जानेसे अन्नका सम्यक् परिपाक नहीं होता। कुछ-न-कुछ अंशमें आहार दूषित होने लगता है। परिणाममें कोष्ठमें कदाच अधिक तीव्र शूल न हो, तो भी मानसिक प्रसन्नताको नष्ट करने वाला एक प्रकारका शूल निकलता रहता है। आहार आगे गति नहीं करता। जहाँका तहाँ स्थिर रह जाता है। फिर अफारा आकर उदर खिंचने लगता है।

डकार या अधोवायुकी प्रवृत्ति सम्यक् नहीं होती। मुंहमें बार-बार जल आना, उबाक बना रहना आदि लक्षण होनेपर अग्नितुण्डीका उत्तम उपयोग होता है।

बद्धकोष्ठका विकार जीर्ण होनेपर लघु अन्त्र, शेषान्त्रक (Ilium) और उण्डुक (अन्त्रपुच्छ Appendix) के समीपके प्रदेशमे अशक्तता आजाती है। इस हेतुसे अर्द्धपक्व अन्न अन्त्रमें आवश्यकताकी अपेक्षा अधिक समयतक रह जाता है; एवं पुरःसरण क्रिया सम्यक् नही होती। परिणाममे अन्न विकृत होने लगता है। फिर वहांपर शूल निकलता है; जड़ता भासती है; और वह फूले हुए सदृश बन जाता है। इस विकारमें अग्नितुण्डीका उपयोग किया जाता है।

उंडुक (अन्त्रपुच्छ) प्रदाह (Appendicitis) के विविध निमित्त कारण होनेपर भी समवायी (उपादान) कारण दोषप्रकोप ही है। दोषोके विकार-भेदके अनुसार लक्षणोमे अन्तर होजाता है। कफभूयिष्ठ या कफवातभूयिष्ठ प्रदाहमें लक्षण अधिक तीव्र नहीं होते। ज्वर और शूल मर्यादित होते हैं। अन्त्रपुच्छ अर्थात् उदरके दक्षिण वंक्षणोत्तरिक प्रदेश (Right Iliac egion) में पत्थर बांधने सदृश जड़ता होती है; और वह भाग ऊंचा उठ जाता है। बार-बार उबाक आकर मधुर लेसदार वमन होती हैं। कितनेही रोगियोको इस स्थानमें होनेवाला शूल अति तीव्र होता है। उसे सहना करना अति कठिन होजाता है; परन्तु इसके साथ ज्वर, दाह आदि लक्षण अति मर्यादित होते हैं। इस प्रकारकी व्याधिमें अग्नितुण्डीका उपयोग अप्रतिम होनेके उदाहरण मिले हैं। व्याधि जीर्ण हो जानेपर इसका उपयोग उतना नही होता। जीर्णव्याधिमें आरोग्यवर्द्धिनी अधिक हितकारी है।

कफज उदररोगमे हाथ, पैर, मुख, नेत्र, त्वचा, नख ये सब निस्तेज—सफेद हो जाते हैं। उदर जड़, ऊपर अधिक उठा हुआ और स्तब्ध भासता है। उदर्य्याकलामें अधिक जलसंचय होनेके पहिले सारे शरीरमें शोथ इनमे भी हाथ-पैरपर अधिक शोथ, और हृदयमें क्षीणता आजाती है; तथा सब यंत्रोंका व्यापार मन्द हो जानेसे समस्त शरीर जड़-सा बन जाता है। मूत्रोत्सर्ग पहिले (स्वस्थ) के समान न होनेपर भी अच्छा होता है। मूत्रका वर्ण श्वेत या किंचित पीत-श्वेत होता है। ऐसी स्थितिमे अग्नितुण्डीका प्रयोग किया जाता है।

पक्षाघातकी प्रारंभिक तीव्र अवस्थाके पश्चात् व्यवहारमें लाने योग्य ओषधियोंमें अग्नितुण्डीका समावेश कर सकते है। हाथ-पैरमें पक्षाघात हो जानेपर वातवाहिनियोंका ह्रास होजाता है; जिससे किसी भी पदार्थको उठा लेनेकी शक्ति नष्ट होजाती है। झनझनाहट, जड़ता और भारीपन आदि लक्षण भासते हैं। इस स्थितिमें अग्नितुण्डीका उपयोग करना चाहिये।

यदि मन, मस्तिष्क (महत्सार– Brain) वातवाहिनी केन्द्रस्थान आदिमें विकृति हुई हो, मन विचार करनेमें असमर्थ होगया हो, निकम्मे विचार आते रहते हों तो स्मृतिसागर अथवा सुवर्णसंयुक्त औषधि-सुवर्णभूपति या मकरध्वज‌चन्द्रोदय देना चाहिये, तथा वातवाहिनियाँ और मांसतन्तुओंमें क्षीणता अधिक होगई हो, अर्थात् वायुकी क्षीणताके हेतुसे या वातरक्तका संयोग होजानेसे वायुके प्रेरकत्व आदि धर्म न्यून होकर वातवाहिनियों और स्नायुओंपर अधिकार कम होगया हो, और लूलापन आगया हो, तो अग्नितुण्डी वटी देनी चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

कभी अन्त्रपुच्छ प्रदाह सामान्य होता है और गोल कृमि उस स्थानके समीप विष फैलाता है, तब नाभिके दाहिनी ओर अन्त्रपुच्छ स्थान ऊंचा उठा हुआ भासता है, शौच शुद्धि नहीं होती, विरेचन लेनेपर योग्य शुद्धि नहीं होती। और उदरशूलमें वृद्धि होती है, बार-बार डकार आती रहती हैं उदरमें वेदना रहती है। ऐसे रोगीको अग्नितुण्डी दो आध-आध रत्ती दिनमें ६ बार निवाये जलसे देवें और शोथ स्थानपर हल्दी, पुनर्नवा, गूगल और बारहसिंगाको घिस निवायाकर दिनमें ३ बार लेप करते रहें। इस तरह उपचार करनेपर कृमि गिर जाते हैं और थोड़े ही दिनोंमें अन्त्रप्रदाह दूर होता है।

इनके अतिरिक्त बालकोंके कृमिरोग और पागल कुत्तेके विषकी जीर्णावस्थामें इस वटीका सेवन करानेसे दोष जल जाता है, और प्रकृति स्वस्थ होजाती है।

सूचना—इस वटीमें कुचिला आधे परिमाणमें है, इसलिये १५ रोजसे अधिक एक साथमें नहीं देनी चाहिये। जरूरत हो तो ८ दिन छोड़कर फिर देनी चाहिये। मात्रा ज्यादा नहीं देनी चाहिये। इस रीतिसे बार-बार थोड़े-थोड़े दिन छोड़कर सेवन करानी चाहिये।

(५७) कृमिमुद्गर रस।

विधि—शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडंग ४ तोले, शुद्ध कुचिला ५ तोले और पलासके बीज ६ तोले लेवें। सबको यथा विधि मिला शहदके साथ खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती नागरमोथाके क्वाथके साथ दिनमें २-३ बार लेवें। इस तरह ३ दिन सेवनकर चौथे रोज जुलाब लेना चाहिये।

उपयोग—कृमिमुद्गर रस अति तीव्र होनेसे कफज कृमि और पुरीषज कृमिके लिये विशेष उपयोगी है। कृमिके हेतुसे अरुचि, अपचन, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, अफारा, बार-बार हिक्का आना, छींके आना, पेटमें दर्द होना आदि लक्षण होते हों, तो कृमिमुद्गरका उपयोग करना चाहिये। कफवृद्धिसे उत्पन्न कृमि, विशेषतः आमाशयमें उत्पन्न होते हैं और आमाशयमें ही रहते हैं। उनको दूर करनेके लिये यह रस अति लाभदायक है।

इसके सेवनसे अंतड़ीमें रहे हुए कृमि बाहर निकल आते हैं; और अन्तड़ी निर्दोष तथा बलवान बन जाती है ।

इस रसमे कुचिला होनेसे कोष्ठशैथिल्य और इससे उत्पन्न कृमिको बाहर फेंकदेने की अशक्ति, दोनों दूर होते हैं । विशेषतः पक्वाशय और बृहदन्त्रको उत्तेजना मिलनेसे अशक्ति दूर होती है । अनेक समय कृमिघ्न औषधका इष्ट परिणाम नहीं होता; इसका कारण कोष्ठमें अवयवोंकी क्षमता है । कोई भी ओषधि अपना कार्य ठीक व्यवस्थित करने लगे; तब जीवनीय शक्तिकी सहायताकी अति आवश्यकता है । यह सहायता अन्तर अवयवोंसे न मिलनेसे उचित कार्य नही होता । या ऐसे ही कहो कि,च्युत हुए कृमि फिर वहां ही रह जाते हैं । इस बातको लक्ष्यमें रखकर आयुर्वेदने द्रव्यसंयोग योजना अति मार्मिक रूपसे की है ।

जब कृमियोगसे वातक्षीणताके लक्षण उत्पन्न हों; तब कृमिमुद्गर रसका उपयोग किया जाता है । अजमोद और वायविडंगके मिश्रणसे पलाशबीजका त्रास कोष्ठमें नहीं होता; बल्कि अपना प्रभाव योग्यरूप से दर्शा सकता है ।

कफज कृमि विशेषतः आमाशयमें उत्पन्न होते हैं । ये कृमि बढ़नेपर आमाशयके सब भागोंमें फिरते रहते हैं । ये कृमि मोटे होते हैं; इनमें कोई गण्डूपद सदृश, कोई धान्यके अंकुर सदृश, कोई अति सूक्ष्म और कोई अति लम्बे होते हैं । ये कृमि सफेद, लाल, काले, नीले, या भिन्न-भिन्न रंग के होते हैं । इन कृमियोंके हेतुसे उबाक,अरुचि, अन्नका पचन योग्य न होना,मुहमें पानी आना आदि लक्षण प्रमुख रूपसे प्रतीत होते हैं । जब कृमि अति बढ़ जाते हैं;या दोषवृद्धि अति होजाती है;तब सतत वमन,ज्वर, मूर्च्छा,अफारा,बार-बार हिक्का आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । ये कृमि देहमें दीर्घकालतक रह जानेपर रस आदि धातुओंकी उत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। फिर मनुष्य कृश होजाता है । बार-बार जुकाम,छींकें आना, खांसी, उदरपीड़ा आदि विकार होते रहते हैं । इस तरह जीवन अति कष्टमय बन जाता है । इन सबपर कृमिमुद्गर रसका उपयोग किया जाता है । (औ० गु० ध० शा०)

(५८) कृमिकुठार रस

विधि—कपूर ८ भाग, इन्द्रजव, त्रायमाण, अजमोद, बायविडंग, शुद्ध सिंगरफ,शुद्ध वच्छनाग और नागकेशर,ये ७ ओषधियां १-१ भाग लेवें । सबको मिला भांगके रसमें ६ घण्टे खरल करके सुखावें । पश्चात् सब चूर्णके बराबर पलाश बीजका चूर्ण मिला, मूसाकानी और ब्राह्मी (मंडूकपर्णी) के रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें । (नि० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ बार सत्यानाशीकी जड़के क्वाथ या शहदके साथ लें । शहदके साथ लेना हो, तो तीन रोज बाद जुलाब लेनेसे कृमि गिर जाते हैं ।

उपयोग—गोल और लम्बे कृमिको छोडकर सब प्रकारके उदरकृमि, हृदय कृमि, कफज कृमि पुरीषज कृमि इत्यादि सब जातिके कृमि, कृमिकुठार रससे दूर होते हैं । एवं कृमिके हेतुसे उत्पन्न उदरशूल, शीर्षशूल पाण्डु और वातरोगका शमन होजाता है । यदि कृमिके हेतुसे छोटे बालकोंको खासी और धनुर्वात हुए हों, तो ये भी इस रससे निवृत्त होते हैं ।

कृमिकी २० जाति आयुर्वेदने कही हैं । इनके अतिरिक्त वर्तमानमें अनेक प्रकारके कृमियोंकी शोध हुई है । कितनेही कृमि दृश्य हैं, तब कितनेही अदृश्य अर्थात् अति सूक्ष्म होनेसे केवल नेत्रके योगसे प्रतीत नहीं होते । इन कृमियोंसे विविध व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है । इन सब व्याधियोंमें कृमि निमित्त कारण है बाहरसे देहमें आये हुए कृमियोंसे दोषप्रकोप, और दोषप्रकोपसे रोग, यह परम्परा कितने ही स्थानोंमें प्रतीत होती है । इससे पृथक् कितनेही स्थानोंमें पहले मलसंचय अधिक होकर कृमिकी उत्पत्ति होती है । कफज कृमि और पुरीषज कृमि इसी तरह उत्पन्न होते हैं । कितनेही प्रकारके कृमियोंसे अतिसार, कोष्ठशूल, आक्षेप आदि होते हैं । यदि कृमि सूक्ष्म, गोल, धान्याकुर सदृश हो, तो उदर-शूल, अतिसार और वातविकारकी प्राप्ति होती है । ऐसे समयपर यह कृमिकुठार रस उत्कृष्ट औषध है ।

अणुवीक्षण यन्त्रसे दिखनेवाले सूक्ष्म कीटाणुओंसे उत्पन्न पाण्डु और अतिसार, साथ-साथ नेत्र, भ्रूभाग, कणके पास तथा हाथ-पैर, नाभि और मूत्रेन्द्रिय आदिपर शोथ, मुख-मण्डल निस्तेज—सफेद होजाना तथा आम और रक्त मिश्रित मल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, इनपर कृमिकुठारका उत्तम उपयोग होता है ।

पक्वाशय और बृहदन्त्रमें पुरीषज कृमि उत्पन्न होनेसे ज्वर, उबाक, नाक और सर्वांगमें खुजली, स्थान-स्थानपर शीतपित्तके समान रक्तके धब्बे होजाना आदि लक्षण होते हैं । इस व्याधिपर कृमि कुठार रसका उपयोग करना चाहिये ।

कृमिज हृद्रोग वस्तुतः हृदयविकार नहीं है, परन्तु हृत्सनिध प्रदेश (आमाशय) का है । आमाशयमें कफ संचय होनेपर या जीर्ण व्रण दीर्घकालतक रह जानेपर उसमें सूक्ष्म-सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होते है, जिससे उदरमें अति वेदना, अम्लपित्तके सदृश खट्टी वमन, बार-बार वमन, अन्नका पचन न होना, दिन-पर-दिन कृशता बढ़ते जाना आदि लक्षण होनेपर आरम्भमें कृमिनाशार्थ कृमिकुठारका उपयोग होता है । फिर कामदुधा, सूतशेखर आदि प्रयोजित होते हैं । यथार्थमें ये कृमि सत्वर नष्ट नहीं होते । इस हेतुसे बार-बार इस रसका उपयोग करते रहना चाहिये ।

मध्यम कोष्ठमें भिन्न-भिन्न प्रकारके कृमियोसे कभी-कभी क्षयके समान लक्षण भासते हैं । सम्यक् निरीक्षण और उदर परीक्षा करनेपर निदान निर्णय होता है । कृमिका निर्णय होनेपर कृमिकुठार देना चाहिये । फिर विरेचन देवें । इस तरह प्रयोग करनेसे

अनेक रोगियोंको जीवन-दान मिला है।

छोटे बालकोंको आक्षेप, बड़ी आयुवालेके आक्षेप, शीर्षशूल, कोष्ठशूल, विशेषतः अन्त्रपुच्छके पास शूल, बद्धकोष्ठ, पाण्डुता आदि रोगोंमें कृमि कारण हो सकते है। कृमिका निर्णय होनेपर कृमिकुठारका उपयोग होता है।

कृमिकुठारमें कपूर और पलाशबीज होनेसे कफस्रावी गुण भी दर्शाता है। इस हेतुसे छोटे बालकोंके कासरोगमें उपयोगी है। यह औषध किंचित् हृद्य भी है।

सूचना—कृमिकुठार रस ज्यादा परिमाणमें देनेसे स्वेद, आलस्य, जँभाई हाथ पेरोंमें शून्यता आदि लक्षण होते हैं। अतः मात्रा कम ही देवें।

(५६) ताप्यादि लोह।

विधि—हरड, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, वायविडंग प्रत्येक २॥-॥ तोले; नागरमोथा १॥ तोले; पीपलामूल, देवदारु, दारुहल्दी, दालचीनी और चव्य १-१ तोला; शुद्ध शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म और लोह भस्म प्रत्येक १०-१० तोले; मण्डूर भस्म २० तोले, और मिश्री ३२ तोले लें। फिर सबको यथाविधि कूट खरल करके मिला लेवें। * (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ समय मूलीके रस अथवा गोमूत्रके साथ।

वक्तव्य—मूल मराठी ग्रंथकारने मात्रा १से ३ रत्ती लिखी है; किन्तु अनेक रोगियोंको उतनी कम मात्रासे लाभ नही पहुंच सकता। उनको १ माशा या इससे भी अधिक मात्रा देनी पड़ती हैं।

उपयोग—यह रसायन शीत ज्वरके बाद होनेवाला पाण्डु; स्त्रियोंके पाण्डु रोग, हृदयकी निर्बलता, थोड़ा-थोडा सूजन, भोजनके बाद अफारा; रजोदर्शनकी अनियमितता; छोटे बालकोंको मिट्टी खानेसे होनेवाला पाण्डु; कृमिजन्य पाण्डु, अरुचि, वमन, यकृत्के ऊपरमें होनेवाला मांसार्बुद, आदि रोगोंका नाश करता है। इस रसायनके योगसे रक्तकणकी वृद्धि होकर अभिसरण क्रिया सुधरती है; और हृदय आदि इन्द्रियां बलवान बनकर अनेक रोग नष्ट हो जाते है।

प्राचीन शास्त्रकारोंने ताप्यादि लोहका मुख्य उपयोग पाण्डु रोगपर लिखा है। इसकी रचनापर दृष्टि डालनेसे विदित होता हैं कि, रक्तकी अशक्तता या रक्ताभिसरण क्रियाकी मन्दताके कारणसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंमें इसका उपयोग हो सकता है।

* मूल ग्रंथमें शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म और लोह भस्म, चारों भूलसे १-१ तोला लिखी गई हैं। परंतु गुणविवेचनमें मूल ग्रंथकारने इसओषधिमें शिलाजीत ज्यादा परिमाणमें है, ऐसा लिखा है। अतः इन औषधियोंकी आवश्यकतानुसार १०-१० तोले लिखा है।

आयुर्वेदमें जिसको पाण्डुरोग संज्ञा दी है, उस रोगकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न कारण होते हैं। किसी भी रोगके प्रखर आघातसे रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओंका नाश होकर रक्तमें एक प्रकारका फीकापन आता है। जिससे त्वचा निस्तेज हो जाती है। मह और शरीरपर शोथ आ जाता है। इन लक्षणोंसे युक्त अवस्थाको पाण्डुरोग कहा है। यह अवस्था किसी-किसी समय अन्य तीव्र रोगके उपद्रव रूप भी होती है। इस प्रकार पाण्डुमें इस औषधके योगसे रक्तकणकी वृद्धि और दृढ़ता होती है। अभिसरण क्रिया सुधरती है, तथा हृदय आदि अभिसरण करनेवाली इन्द्रियां सबल होकर रोगका नाश होता है।

अनेक दिनातक शीतज्वर आ जानेके हेतुसे पाण्डुता उत्पन्न हो जाती है, उसपर ताप्यादि लोहका उपयोग होता है। ऐसी अवस्थामें लोहभस्मयुक्त औषधि देनेका शास्त्रकारोंने विधान किया है। आयुर्वेदमें केवल लोह भस्मकी अपेक्षा मण्डूर वटक, नवायस-लोह, त्रिफला लोह आदि लोहमिश्रित औषध देनेका रिवाज है और वह उत्तम है। यह ताप्यादि लोह इन औषधियोंमेंसे ही एक है।

तरुण स्त्रियोंको होनेवाले पाण्डुरोग (हलीमक) में इस ताप्यादि लोहका उपयोग होता है। इस पाण्डुरोगमें त्वचाका रंग एक प्रकारका हरा-पीला हो जाता है। स्त्री केवल अशक्त, किसी भी बातकी इच्छा न होना, किसी काम करनेमें उत्साहका अभाव, बैठी हो तो बैठी ही रहनेकी इच्छा, हृदयमें घबराहट और धड़कन, हृत्स्पन्दनकी वृद्धि, हृदयकी निर्बलता, हृदयके एक खण्डमेंसे दूसरे खण्डमें रक्त जानेकी क्रियामें विकृति हो जाना मह, हाथ, पैर, नेत्र, होठ और गालपर थोड़ीसी सूजन, अपचन, थोड़ा-सा खानेपर भी पेट फूल जाना, दूषित डकार आना, यथासमय रजोदर्शन न होना इत्यादि लक्षण होनेपर ताप्यादि लोहका उपयोग करना चाहिये।

छोटे बच्चा और बड़ोंमेंसे किसी-किसीको मिट्टी खानेकी आदत हो जाती है। इससे पाण्डुरोग हो जाता है। मृद्भक्षणजन्य पाण्डु रोगमें पहिले मृद् विरेचन रस देना चाहिये पश्चात् ताप्यादि लोह या चरकोक्त योगराज रसका सेवन करानेसे पाण्डुरोग दूर होता है।

कृमिजन्य पाण्डुरोगमें हाथ-पैरपर शोथ, हृदयमें घबराहट, नाडीकी तेजगति, बेचैनी, मल मलीन-सा आम, झाग और रक्तयुक्त, शौच कम समय होवे, परन्तु प्रत्येकसमय मल ज्यादा निकले, अविपाक, अरुचि, कभी-कभी वमन, उदरमें थोड़ा-थोड़ा दर्द, सफेद निस्तेज रक्तहीन त्वचा, मानसिक अस्थिरता, उत्साह न रहना, शक्तिपात और कृशता आदि लक्षण होनेपर उदरमें, विशेषत ग्रहणी (Duodenum) में सूक्ष्म-सूक्ष्म कृमि है, ऐसा मानना चाहिये। इन कृमियोंको नष्ट करनेकेलिये पहिले कृमिघ्न औषधि देनी चाहिये, पश्चात् अथवा साथ-साथ ताप्यादि लोह भी देना चाहिये।

ताप्यादि लोहम यकृत्शक्तिवर्द्धक, पाचक और अग्निप्रदीपक चित्रक आदि औषधिया होनेसे इसका उपयोग कामला रोगमें भलीभांति होताहै। यकृतके ऊपर उत्पन्न होनवाले मांसार्बुद(कर्कस्फोट)के कारणसे कामला रोग हुआ हो, तो ताप्यादि लोह थोड़ा-बहुत काम करता है। परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के कामलारोगमे ताप्यादि लोहका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

सर्वांगमें पीलापन,नख, मूत्र, नेत्र और त्वचा, ये सब अति पीले इतने परिमाणमें है कि पहने हुए कपड़े और बैठनकी गादीकी चादर भी पीली हो जाना, मूत्रका रंग अत्यन्त पीला और गंदला, कभीकभी गंदला होकरअति लाल भी हो जाना, शौच मैला सफेद रंगका चिकनापन रहित झागयुक्त, पतला होना, अन्नपर अरुचि, मंदाग्नि और बलविहीनत्व आदि लक्षणहोनेपर ताप्यादि लोह आमके मुरब्बके साथ या मिश्री मिले मूलीके रसके साथ देनसे उत्तम कार्य होता है। इसके साथ अमलतासकी फलीका गर्भ या अन्य सौम्य विरेचन देना चाहिये।

मूल संस्कृत ग्रंथोक्त गुणपाठमें 'विषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानिच" ऐसे विशेष गुणधर्म दिया है। अपस्मार बहुत दिनका होजानेसे उसपर कितना उपयोग होता है, यह प्रश्न विचारणीय है। परन्तु नया विकारहो,तो इसका उपयोग बहुत अच्छा होता है। अपस्मारका अर्थ होता है स्मृतिका अपाय—तात्कालिक स्मृति नष्ट होना। यकायक झटका आकर बेहोशी, मुहमें झाग आजाना, मुंह टेढ़ा हो जाना, बीभत्स चेष्टा, हाथ-पैर और सारा शरीर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना, बार-बार नाड़ियां खिचना और प्रायः पूर्वसूचक चिन्ह कुछ भी न होते हुए अकस्मात् किसी भी स्थानमे और किसी भी स्थितिमें झटका आकर पत्थर समान बेहोश होजाना आदि लक्षण होनेपर ताप्यादि लोह उपयोगी है। अभ्रकभस्म मनोव्याघातजन्य अपस्मारमें और ताप्यादि लोह शारीरिक दोष विकृतिजन्य अपस्मारमें उपयोगी है।

छोटे बच्चोंके बालग्रह (धनुर्वात) में यह औषधि अच्छा कार्य करती है। केवल इसके साथ अरंडीका तैल अन्य मृदु विरेचन देना चाहिये। बालग्रहका पहिला तीव्र झटका आजानेके पश्चात् इसका विशेष उपयोग होनेके अनेक उदाहरण हैं। जीर्ण बाल-ग्रह, अपचनसे उत्पन्न बालग्रह, उन्माद रोगसे पीड़ित माताके बालकको होनेवाला बाल-ग्रह, डरपोक, क्रोधी और निर्बल मनवाली माताके सन्तानको होनेवाले बालग्रह, इन सब पर ताप्यादि लोह सफल औषधि है। जीर्ण बालग्रह रोगमें अनुपान ब्राह्मीका रस देना चाहिये।

इस औषधिमें शिलाजीतका परिमाण अधिक होनेसे इसका उपयोग मूत्रविकार पर होता है। मूत्रमें रहे हुए अनेक प्रकारके क्षार शरीरमें संचित हो जानेसे उत्पन्न विविध विकारोंमें, विशेषतः वातविकारमें, उनमें भी जीर्ण वातविकारमें इस औषधिका अच्छा

उपयोग होता है ।"

शिलाजीत मूत्रल, आमपाचक, रक्तदोषहर, और शरीरमें संचित मूत्रके अद्भुत क्षारोंका वियोजन करके मूत्रद्वारा स्राव करानेवाली सेन्द्रिय ओषधि है। शिलाजीत सेन्द्रिय द्रव्य होनेसे देहमें जानेके साथ तुरन्त शोषण होकर अपना कार्य करने लगता है। शिलाजीतके इस गुणके हेतुसे यह कल्प (ताप्यादि लोह) जीर्ण आमवात और वातरक्त, एवं इनसे उत्पन्न होनेवाले स्नायुसंकोच अथवा वातवाहिनियोंकी शुष्कता इन सब विकारों पर बहुत अच्छा काम देता है।

इसी कारणसे प्रमेह आदि रोगसे उत्पन्न कोथ (घटकोंका गलना-Gangrene) की बिल्कुल प्रारम्भावस्थामें ताप्यादि लोहका सेवन करनेसे आगे होनेवाले सब अरिष्ट दूर हो जाते हैं, ऐसा अनुभव है। त्वचामें या त्वचाके भीतरके भागमें भयंकर जलन, कालापन, साथ-साथ सूक्ष्म ज्वर, बेचैनी, घबराहट, मानसिक अस्वस्थता, प्यास आदि लक्षण अति बढनेपर त्वचा बिल्कुल काली—कोलनार (डामर) के समान, रंगवाली हो जाती है। इस तरह कोथ रोग अत्यन्त बढ गया हो, तो इस ओषधिका उपयोग ज्यादा नहीं हो सकेगा। परन्तु प्रारम्भ कालमें यदि इसकी योजना की हो, तो रोगकी वृद्धि रुक जाती है और शनैः शनैः रोग कम हो जाता है।

शरीरपर भयंकर खाज, छोटी-छोटी फुन्सियां होना, त्वचापर काले धब्बे हो जाना, फुन्सियोंका विष फैलकर दादके समान खाज आते रहना, और यह विकार कभी ज्यादा कभी कम होजाना, इनमें त्वचाका विकार होना (क्वचित् झटका भी नहीं आना), ऐसी स्थितिमें ताप्यादि लोह अच्छा उपयोगी है। किंबहुना, ऐसे त्वचा रोगोंमें गन्धक रसायनकी अपेक्षा ताप्यादि लोह ही मुख्य ओषधि है।

आयुर्वेदमें अम्लपित्त रोगमें अनेक भिन्न-भिन्न कारणोंका अर्थात् शरीरावयव विकृतिका समावेश होता है। साधारण रूपसे पित्त ज्यादा उत्पन्न होनेसे होनेवाला, पित्त ज्यादा तीव्र होनेसे होनेवाला, पित्तोत्पादक पिण्डका क्षोभ होनेसे होनेवाला, अन्तर व्रण होकर उदरकी आकृति बढ जानेसे होनेवाला, इस रीतिसे अम्लपित्तके अनेक प्रकार होते हैं। इनमेंसे उदरकी आकृति बढजानेसे होनेवाले अम्लपित्तमें सुबह वमन अवश्य करानी पडती है, यह विशेष लक्षण है, तथा कण्ठदाह, उदरदाह, क्वचित् उदरपीडा, वमन होजानेपर अच्छा लगना आदि लक्षण हो, तो ताप्यादि लोह मक्खन-मिश्रीके के साथ देना चाहिये, और अन्त परिमार्जन (आमाशय शोधन) भी करना चाहिये।

बद्धकोष्ठ (कब्जियत) रोग अन्त्रकी निर्बलताके कारणसे होता है। अन्नका पचन अच्छी रीतिसे न होना, मलोत्सर्ग बराबर न होना, खाये हुए भोजन का विदाह, सेन्द्रिय विष कोष्ठमें संचित होकर आम संचय होजाना, इन कारणोंसे बद्धकोष्ठ उत्पन्न होता है। इनमेंसे वर्त्तमानमें अन्त्रनिर्बलता और इस अन्त्र निर्बलताके कारण उसकी संचालन-

क्रिया कमहोकर उत्पन्न मलावरोध अधिकांशमें प्रतीत होता है। अन्त्रशक्ति कम होजानेसे किसी भी प्रकारकी विरेचन ओषधिका इष्ट परिणाम नहीं होता; बल्कि अनिष्ट परिणाम होता है। कारण, विरेचन ओषधिसे अन्त्रशक्तिमे न्यूनता होती और सेन्द्रिय विषकी वृद्धि होती है। फिर आम संचय होकर अन्त्रमे निर्बलता आजाती है। इसी करणसे वद्धकोष्ठ निर्माण होता है। ऐसे रोगीको विरेचन देनेसे बद्धकोष्ठ बढ़नेका ही अनुभवमें आता है। इस कारणसे ऐसे रोगीको विरेचन नही देना चाहिये। इसके विपरीत अंत्रको बलवान बनाकर मलोत्सर्ग करानेवाली ओषधि देना, यही श्रेयस्कर है। इस अवस्थामें ताप्यादि लोहके सेवनसे शनैः शनैः आंतें बलवान् बनकर बद्धकोष्ठकी आदत कम हो जाती है। यदि यह ताप्यादि लोह देनेपर कोई समय मलावरोध होजाय; और अति आवश्यकता हो, तो बस्ति देनी चाहिये; परन्तु विरेचन नही देना चाहिये।

किसी भी अवयवमें रक्तका दबाव बढ़नेपर उसका प्रसादन करना, यह ताप्यादि लोहमे बड़ा भारी गुण है। यह गुण शिलाजतु, रौप्य और सुवर्णमाक्षिकके कारणसे दृष्टिगोचर होता है। इस हेतुसे रक्तज मूर्च्छा, पक्षाघात और आंत्रिक सन्निपातमें होनवाले दुष्ट रक्तजन्य वातप्रकोपके शमनार्थ ताप्यादि लोह अति उपयोगी है।

पक्षाघातके बिल्कुल प्रारम्भिक एक दो दिनमे रोगी बेहोश, नेत्र लाल, ज्वर, शक्तिहीनता, हाथ-पैरोंकी शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाना, जड़ता, जिह्वाकी बोलनेकी शक्ति कमहो जाना, अंगका एक ओरका अर्द्ध भाग अकस्मात् शक्तिहीन होकर काष्ठवत् होजाना आदि लक्षणोसे युक्त पक्षाघातमे प्रारम्भके एक दो दिन जानेके पश्चात् रोग कुछ स्थिर हो जानेपर लोहका उपयोग करना हितकर है। पक्षाघातकी इस अवस्थामे ताप्यादि लोहका-एकांगवीरकी अपेक्षा भी अच्छा उपयोग होता है। परन्तु पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें इस ओषधिका चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता। जीर्ण रोगमें भी इस ओषधिका रक्तप्रसादन कार्य अनुभवमें तो आता है, फिर भी कितने ही जीर्ण रोगमे दोष रक्तकी अपेक्षा अन्य धातुओंमे (गहराई) चले गये होते हैं। इसलिये इस ओषधिसे इष्ट कार्य नहीं होता।

ताप्यादि लोहका उपयोग रक्तप्रसादन गुणके कारण दुष्ट रक्तजन्य ज्वर, सूतिकाज्वर और पूयजन्य ज्वरमें आक्षेपक, झटके, तंद्रा और मूर्च्छा, इन विकारोंपर अच्छी रीतिसे होता है।

इस ओषधिमे रक्तप्रसादन और वद्धकोष्ठनाशक गुण होनेसे अर्शकी प्रारम्भिक अवस्थाम उत्पन्न मस्सेपर इसका उपयोग उत्तम होता है। वे ही मस्से बड़े होजाने पर या अधिक शोथ आ जानेपर बाह्य उपचार द्वारा निकाल देनेके सिवा अन्य उपाय नहीं है।

धनुर्वात विकारमें आयुर्वेदने धनुष्कम्प, अंतरायाम, बहिरायाम ऐसे भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। अभिघात (चोट), गर्भपात, सूतिकारोग, कटा हुआ घाव कुपित होजाना

इन कारणोंसे यह रोग उत्पन्न होता है, यह आयुर्वेदको मान्य है। यह रोग लगेहुए घाव द्वारा एक प्रकारका जन्तु-जन्य विष शरीरमें फैल जानेसे उत्पन्न होता है। इस रोगमें चिकित्सा करनेमें दो बातोंकी ओर लक्ष्य देना पड़ता है। पहिली बात यह है कि, जिस स्थानके भीतर इस प्रकारके विषाक्त कीटाणु गये हों, उस स्थानको स्वच्छ करना, दूसरी बात सारे शरीरके स्नायुओंमें फैले हुए विषको नष्ट करना। घावको स्वच्छ करके मधुमिश्रित रुईका फोहा रखनेसे प्रथम बातकी सिद्धि होती है। दूसरी बातके लिये सारी देहमें विषप्रकोप फैला हो और विषकी तीव्रता हो, तो कालकूट रस लाभदायक है। इस रसका विषाक्त जन्तुओंपर निश्चित उत्तम परिणाम होता है। परन्तु कालकूट रस अति तीव्र है और जितने परिमाणमें रक्तप्रसादन कार्य कराना चाहिये, उतने अंशमें इससे नहीं होता। इस कारण तीव्रावस्था कम करनेके लिये कालकूट रसका उपयोगमें लें। फिर मन्दावस्थामें रक्तप्रसादन करके रक्तको निर्विष करनेवाली ओषधि देनी चाहिये। ऐसी ओषधि ताप्यादि लोह है। इसताप्यादि लोहके सेवनसे धनुर्वातके अवशेष लक्षण और विष नष्ट हो जाते है। यह रस कालकूट जितना उष्ण भी नहीं है।

विष प्रयोगमें पहिले विषनाशक वमन आदि प्रयोग और विषको निर्विष करने वाले साक्षात् प्रतिविष द्वारा जीवनरक्षा करनी पड़ती है, परन्तु आगे उस विषके तीव्रत्व आदि गुणोंका लेश–अनिष्ट परिणामरूप असर भीतर रह जाता है जो अनेक दिनों तक (क्वचित वर्षोंतक) त्रास देता रहता है। उस अवस्थामें ताप्यादि लोहका उपयोग होता है। इसके सेवनसे विषके लेशसे दीर्घकालतक टिकनेवाले उत्कर्ष और वृत्ति धर्म नष्ट होनेमें सहायता मिलती है। यह इस रसायनमें महत्त्वका गुण है।

हृदयकी अशक्तता या हृत्सद विकारसे उत्पन्न श्वास रोगमें फुफ्फुसोंके भीतर निदाह, सूक्ष्म ज्वर, मुहमें शुष्कता। (क्वचित् शुष्कता इतनी बढ़ती है कि मनुष्य अत्यन्त बेचैन होजाता है), चाहे जितना जलपान करनेपर भी तृप्ति न होना, खासने-खासने पीली, कड़वी, खट्टी और गरम-गरम वमन होजाना, वेग उत्पन्न होनेपर खूब खासी चलना, मुह और सर्वांग निस्तेज और पीला-सा होजाना, बार-बार खासते रहनेसे मुह, विशेषत गाल थोड़ेसे फूले हुए दीखना और घबराहट आदि लक्षण होते हैं, उसपर ताप्यादि लोह दाडिमावलेहके साथ देना चाहिये।

क्षतक्षयमें ऊपर लिखे अनुसार वमन होजाय ऐसी श्रमदायक खासी हो, बार-बार पीला, हरा, गरम, क्वचित् रक्तयुक्त कफ पड़ता हो, तथा उबाक अधिक हो, तो इस ओषधिका उपयोग करना चाहिये।

विषम ज्वरमें ज्वर आनेका प्रकार, ज्वर निकल जानेकी रीति, लक्षणोंकी जाति, इन सबमें भूत आदिके समान बिल्कुल नियम न होना, जैसे आज थोड़ी ठण्ड लगकर बड़ी जल्दीसे ताप आना, ताप भी ज्यादा हो, दूसरे दिन ज्यादा ठण्ड लगकर ताप आना,

कभी न आना, कभी अकस्मात् आजाना, ऐसी अनियमित ज्वरकी अवस्थामें वातपित्तात्मक लक्षण अधिक होनेपर इसका उपयोग करना चाहिये।

आमाशय, पक्वाशय, ऊर्ध्व और मध्यम बृहदन्त्रमे समान वायुका कार्य सम्यक् प्रकारसे न होनेसे बार-बार अपचन होनकी आदत पड़ जाती है। साथ-साथ अरुचि, उबाक, उदरमें जड़ता, अन्न समीप आनेपर मुंहमें जल आजाना आदि लक्षण अधिक हो एवं मर्यादामें या थोडे परिमाणमे भोजन करनेपर भी पचन न होता हो, तो उस विकारपर ताप्यादि लोह अच्छा काम करता है।

काल मेह, नील मेह, हारिद्र मेह, मांजिष्ठमेह, इन प्रमेहोंमें विशेषतः पित्त-प्राधान्य लक्षण होते है। इनपर चन्द्रप्रभा, नाग भस्म और ताप्यादि लोह उपयोगमें आते है। अपचनसे होनेवाले या इन रोगोंवाले रोगियोंको अधिकतर अपचन रहती हो; निश्चितता, स्थिरता और लक्षणोंकी दृढता ज्यादा न हो; लक्षणोंकी चंचलता हो, तो इन प्रमेहोंमें ताप्यादि लोहका सेवन हितकारक होता है।

रक्तकी अशक्तताके कारणसे शरीर फूलकर आया हुआ सर्वांग शोथ, अर्श या अन्य मार्गसे रक्तस्राव अधिक होनेपर आया हुआ शोथ, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, मलावरोध या मूत्रपिण्ड (वृक्क) को विकृतिसे उत्पन्न शोथ, रक्तस्राव अधिक हो जानेसे आई हुई निर्बलता और उससे उत्पन्न क्षय, विशेषतःरक्त धातुका क्षय तथा तदनन्तर उत्पन्न शोथ, इन सब प्रकारोंपर ताप्यादि लोह उत्तम कार्य करता है।

संक्षेपमें ताप्यादि लोह पाण्डु, कामला, अपस्मार, बालकोके बालग्रह, जीर्ण वातविकार, कोथ (शरीरके घटकोंका गलना), खुजली, अम्लपित्त, मलावरोध, रक्तदबाववृद्धि, वातप्रकोप, नूतन पक्षाघात, पूयजन्य ज्वर, सूतिकाज्वर, दुष्ट रक्तजन्य ज्वर, धनुर्वात, जीर्ण विषप्रकोप; हृदयकी विकृतिसे होनेवाला कासरोग, क्षतक्षय, अनियमित विषमज्वर, जीर्ण अजीर्ण रोग, पित्तप्रधानप्रमेह, शोथरोग, रक्तमें विष अथवा क्षारवृद्धि, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, मूर्छा, त्वचारोग इत्यादिको दूर करनेमें उत्तम लाभदायक जाना गया है।

ताप्यादि लोहमें रक्तप्रसादक, रक्तके रक्ताणुवर्द्धक, मूत्रल, बल्य, रसायन, आक्षेपघ्न, पाचन और दीपन गुण है। इसमे सुवर्णमाक्षिक पाचन, दीपन, आक्षेपघ्न, पाण्डुत्वनाशक (रक्तकणवर्द्धक), बल्य और रसायन है। शिलाजीत रसायन, धातुपरिपोषण क्रममें सहायक और मेहनाशक है। रौप्य मूत्रल, वृष्य और आक्षेपघ्न है। मंडूर रक्तवृद्धिकर, रक्तस्तम्भक, रक्तकणवर्द्धक और इस कारणसे धातुवर्द्धक है; चित्रक, पाचक, अग्निप्रदीपक, वातनाशक और अर्शोघ्न है। त्रिफला रसायन, मृदु सारक और पचनेन्द्रियको शक्ति देकर पचनक्रिया बढ़ानेवाला है। त्रिकटु पाचक और अग्निप्रदीप है। वायविडंग कृमिघ्न और पाचक है। (औ० गु० ध० शा०)

[६०] नवायसचूर्ण।

विधि—सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्ड बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, वायविडंग और चित्रकमूल, ये सब एक-एक तोला और लोह भस्म ९ तोले लेवें। सबको मिलाकर एकत्र करें। (च० चि०)

मात्रा—२ से ८ रत्ती घी और शहद या मट्ठेके साथ दिनमें २ बार। धीरे-धीरे मात्रा बढ़ावे। कफ अधिक हो, तो अदरखके रसमें दें।

उपयोग—यह रस कामला, पाण्डु, शोथ, हृदयरोग, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, मन्दाग्नि, प्रमेह, बवासीर और अरुचिको दूर करता है, तथा शक्तिवर्द्धक, अग्निप्रदीपक और पाचक है। रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि करता है, और यकृत्को शक्ति देकर उसकी क्रियाको सुधारता है।

शीतल वायुका स्पर्श, जीर्ण अपचन, सूक्ष्म ज्वर दिनोंतक रह जाना, इन कारणोंसे कामलाउत्पन्न होनेपर नवायसरसायनउत्तम लाभदायक है। इस तरह उत्पन्न कामलामें एक दो दिनके भीतर ही पूर्ण लक्षण उपस्थित हो जाते हैं मंद ज्वर, अरुचि, नेत्र, हाथ-पैर, नाखून, त्वचा और मूत्रमें अति पीलापन, बद्धकोष्ठ,शौच होनेपर सफेद-सा मल,तिलकी खलको जलमें मिलाने सदृश दस्त होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसपर सौम्य विरेचन अमलतासकी फलीके गर्भका क्वाथ या अन्य अनुपान देना चाहिये।

दीर्घकालस्थायी अति दुःखदायी ज्वर आ जानेके पश्चात् या अतिसार, ग्रहणी या इनके समान दीर्घकाल टिकनेवाले विकार दूर होनेपर आई हुई पाण्डुतापर इस नवायस चूर्णका अच्छा उपयोग होता है। इन विकारोंमें दोष-दूष्य आदिकी विकृतिको नष्ट कर धातुसाम्य प्रस्थापित करनेके लिये जीवनीय शक्तिको अति परिश्रम करना पड़ता है। इस हेतुसे देहमें पृथक् अवयव बिल्कुल थक जाते हैं। ऐसी परिस्थितिमें सबके लिये शक्तिदायक औषधकी आवश्यकता रहती है। नवायस चूर्णमें इस प्रकारकी उत्तम योजना है।

अपचन, अग्निमांद्य, पाण्डुता, साथ-साथ हृत्स्पंद, थोड़ा-सा चलने, बोलने या परिश्रम करनेपर हृदयमें धड़कन और घबराहट हो जाना, हाथ-पैरपर शोथ, अनियमित और तीव्र वेगवती नाड़ी,मस्तिष्क और हाथ-पैरोंकी सिराओंमें रक्तकी गति बढ़नेमें रक्त स्पंदन स्पष्ट प्रतीत होना,चेतना शक्तिके भीतर खिंचने सदृश भासना आदि लक्षण होनेपर नवायस चूर्ण घृत और शहदके साथ देना चाहिये।

यकृत्की क्रिया सम्यक् न होनेसे उसमें रक्तशुद्धि करनेकी क्रिया ठीक नहीं होती। फिर दोष सगृहीत होकर रक्त विकृत होजाता है। इसका परिणाम त्वचापर होता है। त्वचापर काले नीले धब्बे पड़ते हैं, खुजली चलती है। सूक्ष्म पिटिकाएं होनी

हैं। इन पिटिकाओंके नष्ट होनेपर उन स्थानोंपर काले मण्डल होजाते हैं। एवं मलावरोध,अग्निमांद्य, यकृत्पर कुछ शोथ आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस व्याधिमें नवायस चूर्ण मट्ठेके साथ देना चाहिये।

कफज अर्शमें मस्से बहुत मोटे और लम्बे होते हैं। इनमें वेदना कम होती है। वे ऊपर उठ जाते हैं; तथा सफेद, तेजस्वी, गोल, मोटे और गाढे प्रतीत होते हैं, हाथको कुछ गीलेसे मालूम पड़ते हैं; ऊपरमें खुजली आती है। रोगी इन मस्सोंको बार-बार स्पर्श करता रहता है। स्पर्श करने या खुजानेपर अच्छा मालूम पड़ता है। ये मस्से गोस्तन, कटहलकी गुठली या अंगूरके गुच्छे सदृश भासते हैं।

साथलोंमें कुछ सूजन, गुदाद्वार और बस्तिमार्गका नाभि पर्यन्त भीतर आकर्षण हो रहा हो, ऐसा भासना, कास, श्वास, उबाक, अरुचि, बार बार जुकाम हो जाना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होना, अनेक बार मूत्रमें दाह होना,कण्ठमें जड़ता आ जाना,मस्सोंका त्रास होनेपर देहमें शीत आने सदृश भासना, अग्निमांद्य, कभी-कभी वमन, आम समान लेसदार सफेद दस्त होना,अति किछनेपर दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। मस्से फूटते नहीं, मस्सोंमें स्राव नहीं होता, अधिक रक्त भी नहीं गिरता; परन्तु सारे शरीरमें अति निस्तेजता आ जाती है; इस प्रकारके अर्श रोगपर नवायस चूर्णका उपयोग अच्छा होता है।

स्निग्ध भोजन करके बैठे रहने या निद्रा लेकर दिनको पूरे करना, गुड़ या गुडकी विकृतिमेंसे बने हुए पदार्थोंका अधिक उपयोग,ईखके रस या अन्य मधुर पदार्थोंका अधिक सेवन करना इन कारणोंसे कफप्रमेह होता है। इस प्रमेहमें अनेक बार अधिक परिणाममें मूत्रोत्सर्ग होता है। मूत्रका विशिष्ट गुरुत्व अनेकवार कमहोता है; इसमें शहद या क्षारकी मात्रा भी कम होती है। ऐसी स्थितिमें नवायस चूर्णका उपयोग अच्छा होता है।

(औ० गु० ध० शा०)

यकृद् वृद्धि होनेपर अपथ्य सेवन करनेसे यकृदुदरके साथ सर्वांगशोथ उपस्थित होता है। उस रोगपर नवायस चूर्ण १-१ माशा गोमूत्र या निवाये जलके साथ दिनमें २ वार सुबह और शामको देने तथा भोजनकर लेनेपर पुनर्नवासव, अभयारिष्ट और रोहितकारिष्ट, तीनों मिला लवणभास्कर चूर्ण १॥-१॥ माशेके साथ देते रहनेसे यकृत् वृद्धि और शोथ सत्वर शमन हो जाते हैं। अधिक मूत्र शुद्धिकी आवश्यकता हो तो पुनर्नवा और गोखरू ६-६ माशेका क्वाथ बनाकर रोज सुबह नवायस चूर्णके साथ देते रहना चाहिये।

(६१) चन्द्रकला रस।

विधि—शुद्ध पारा, ताम्र भस्म और अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा शुद्ध गन्धक २ तोले लेवें। सबकी कज्जली बना नागरमोथा, दाड़िमके दाने, दूर्वामूल,केतकीकी

अवस्थाके अनुरोधमे अन्य ओषधिकी योजना भी की जाती है। इस तरह इन दोनों अवस्थाओंकी चिकित्सामें भेद होता है।

ज्वरोष्मा अधिक बढनेपर शिरदर्द होकर नासिकासे रक्तस्राव होने लगता है। कितनेही रोगियोंको दाह अधिक बढनेपर मुहमेंसे रक्त निकलने लगता है। ऐसे लक्षण होनेपर चन्द्रकला रस मिश्री मिले दूधके साथ देकर ऊपर उशीरासव, सारिवावलेह, हल्दीका अर्क और जल आदि का मिश्रण देना चाहिये।

कण्ठमें वेदना, दाह, छातीमें दर्द, जलन और सूजन आनेके समान भासना तथा सर्वांगमें दाह, रक्त गिरना, ज्वर, तृषा आदि लक्षण होनेपर चन्द्रकलाका दाडिमावलेहके साथ उत्तम उपयोग होता है।

क्षयरोगके प्रारम्भ या मध्यमें रक्तवमन होकर रोगवृद्धि होती है, तो रक्तस्राव सत्वर बन्द होने और बलके सरंक्षणार्थ चन्द्रकला और चांदीके वर्कका दाडिमावलेह या अनार शर्बतके साथ देना चाहिये।

ऊर्ध्व रक्तपित्तमें चन्द्रकलाका उत्तम उपयोग होता है। रक्तपित्त अर्थात् सतत होनेवाले रक्तस्रावमें पित्तके तीक्ष्णत्व आदि धर्म बढ जाते हैं। इस हेतुसे रक्तवाहिनियोंमें श्लैष्मिक कला पतली और विकृत होकर फूटती है, फिर उसमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। ऊर्ध्वग रक्तपित्तमें विशेषत नाक या मुखमेंसे रक्तस्राव होता है। यह स्राव कुछ कालतक बन्द रहता है और फिर होने लग जाता है।

कभी-कभी रक्तपित्त उपद्रव रूपमे और कितनीही बार स्वतन्त्र रोग रूपसे होता है। आन्त्रिक सन्निपातमें उसके विष-प्रभावसे ऊर्ध्वग, अधोग और त्वगत रक्तपित्त हो जाता है। पित्तप्रधान विषयुक्त सर्पके दंशसे भी ऐसा ही होता है। इस प्रकारके पित्तमें निमित्त कारण विविध विष है। यह निमित्त कारण दीर्घकाल पर्यन्त रहता है। अत इस विषके नाशकी योजना रक्तपित्त चिकित्सामें आवश्यक है। यदि विष कारण न हो, केवल शारीरिक दोष विकृतिसे ही रोगोत्पत्ति हुई हो, तो चन्द्रकला अति लाभ पहुचाता है।

रक्तपित्तके साथ उदरमें वेदना आदि लक्षण हो और वेदना होकर वमन द्वारा रक्त निकलता हो, मुहमें शुष्कता, उदरमें जलन-सी भासना, सर्वांगमे दाह, तृषा बनी रहना, बार-बार उदरमें पीडा होकर वमन होना आदि अति पित्तप्रकोपजनित लक्षण प्रतीत होते हो, तो उसपर चद्रकला रसका अवश्य उपयोग करना चाहिये।

अधोग रक्तपित्तमें उपद्रवभूत और मूलरोग रूप, ऐसे दो प्रकार हैं। इसमे मूत्रेन्द्रिय और गुदामे रक्त जाता है। इनमेंमे गुदामार्गसे रक्तस्रावके हेतुओंमें दो प्रकार हैं—अन्त्रव्रण, आन्त्रिक सन्निपात, अति भीतर उत्पन्न हुए रक्तार्श और क्षोभक कारणोंसे अकस्मात् आंतोंमें कोई शिरा टूट जाना आदि हैं। क्वचित् अन्य रोगमें उपद्रवरूपसे

उत्पन्न भी हो जाता है। उपद्रवभूत होनेपर तत्तद्रोगनाशक ओषधिके साथ स्वतन्त्र व्याधिपर केवल चन्द्रकलाका प्रयोग किया जाता है।

अधोग रक्तपित्तमें मूत्रमार्गसे रक्तस्राव होनेमें मुख्यतः वृक्क स्थानका शोथ, वृक्क स्थानोंमेंसे सिकता (रेत) या शर्करा (छोटे कंकड़) गवीनी द्वारा मूत्राशयमें उतरना, मूत्राशय, मूत्रमार्ग और बस्तिका क्षोभ और दाह, ये सब कारण हैं। इन सब में पित्तदोषकी वृद्धि ही कारण है। ऐसे रक्तपित्तकी सब अवस्थाओंमें चन्द्रकला रस द्वारा विविध अनुपान संयोगसे उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। मूत्रपिंडके शोथमें अनंतमूल सदृश शामक, सौम्य और मूत्रल अनुपान देना चाहिये। सिकता, शर्कराको सत्वर बाहर निकालनेके लिये तृणपञ्चमूल क्वाथ समान मूत्रविरेचन तथा मूत्रमार्गके दाहमें दाहशामक और मूत्रल गोखरू, धमासा, धनियाका क्वाथ देना चाहिये।

स्त्रियोंके रक्तप्रदरमें चन्द्रकलाका उपयोग अच्छा होता है। शूलसह रजःस्राव और अत्यार्त्तव इन दो व्याधियोंका रक्तप्रदरमें अन्तर्भाव होता हैं। स्त्रियोंके बीजाशय, गर्भाशय और अपत्यमार्गमें किसी कारण वश क्षोभ होकर रक्तस्राव होने लगता है; उसे रक्तप्रदर कहते हैं। उसपर आम अशोक, कपासमूल तीनोंकी छालके क्वाथके साथ चन्द्रकला देनेपर रक्तप्रदर कम हो जाता हैं। (रोग अति प्रबल और भयकर दुःखदायी हो, तो ऊनकी काली राख दी जाती है)।

रक्तपित्त (Scurvy) होनेपर किसी-किसीको दन्तमूल और मसूढ़ोंमें शोथ और वेदना होकर रक्तस्राव होता है। एवं कितनोंहीको यह त्रास अधिक बढ़ जाता है; फिर त्वचाके रोमरन्ध्रोंमें बूंद-बूंद रक्त निकलता रहता है। यह विकार अति त्रासदायक और प्राणघातक हैं। परंतु इसमें भी सरिवाके क्वाथके साथ चन्द्रकलाके उपयोगसे लाभ हो जाता है।

चद्रकला रस दाहनाशक है। इसलिये अतिशय दाह होकर उन्माद समान वेग उत्पन्न होता हो, मूत्रमार्ग, नेत्र, हाथ-पैर इन सबमें दाह, कभी-कभी नाक, मूत्रमार्ग या अन्य मार्गसे तैलस्राव होना, मूत्रमें चिकना श्लेष्म जाना, मूत्र लाल और परिमाणमें कम होजाना आदि लक्षण होनेपर ब्राह्मी, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा आदिके साथ चन्द्र-कलाका उपयोग किया जाता है।

पित्तजन्य प्रमेहमें विशेषतः कालमेह, नीलमेह, हरिद्रमेह और मांजिष्ठमेहमें चन्द्र-कला उत्तम ओषधि है। इन विकारोंमें मूत्रका रंग क्रमशः काला, नीला, अति पीला और मञ्जिष्ठके क्वाथके सदृश भासता है। सर्वांगमें अतिशय दाह होता है। अति तृषा, मूत्रके परिमाण में कमी. परन्तु पेशाब अधिक बार होना, चक्कर आना, शुष्कता, अति दाह, पंखेसे निरंतर वायु करते ही रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। पंखेको बन्द करनेपर रोगी चिल्लाता है। इस प्रकारके दाहमें पित्तका तीक्ष्णत्व धर्म बढ़कर रक्ता

उपयोग—यह रस कफसहित भयंकर कास, श्वास, क्षय, कफप्रकोप, वातरोग, संग्रहणी आदि सब रोगोंको नष्ट करता है । पित्तविसर्जन क्रियामें दोष उत्पन्न होकर संग्रहणीयुक्त क्षय हुआ हो, उसमें पित्तविकृतिको सुधार क्षय और संग्रहणीको दूर करता है ।

दूसरी विधि—शुद्ध पारा और सुवर्ण वर्क ४-४ भाग मिलाकर बारीक पीसें । फिर १२ भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करें । पश्चात् मोतीपिष्टी १६ भाग, शंखभस्म २४ भाग और सोहागेका फूला १ भाग मिला, पक्के ताजे नीबुओंके रसमें २ दिन खरलकर पेडेके समान गोला बनाकर सुखा लें । बादमें उसे सरावमें रख कर दृढ संपुट करें । संपुट सूखनेपर एक हांडीमें सेंधेनमकके भीतर दबा चूल्हेपर चढा ३ अहोरात्रि मध्यम अग्नि देवें । स्वांग शीतल होनेपर बाहर निकालकर खरल कर लें । यह रसायन कुछ गुलाबी आभावाला सफेद रंगका होताहै । यदि रंग श्याम रह गया हो तो अग्नि कम लगी ऐसा मानकर एक दिनतक फिर आंच देवें ।

(शा० सं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती कालीमिर्च २९ नगके चूर्णके साथ गोघृत और शहदमें मिलाकर चाटें ।

उपयोग—यह रस क्षय, कास, श्वास, कफसंग्रहणी और वातज अतिसार आदि सब रोगोंको दूर करता है । क्षयमें ज्यादा ताप (१०० डिग्रीसे अधिक) नहो, तब यह देना चाहिये । यह रसायन क्षयकी सब अवस्थाओंमें लाभदायक है । क्षयरोगके पित्तप्रकोप, मुखपाक, शुष्ककास, अतिसार आदि लक्षणों, उपद्रवरूपसे उत्पन्न संग्रहणी तथा बिना राजयक्ष्मा उत्पन्न संग्रहणीको भी यह दूर करता है, और पाचनशक्तिको बढाता है । उदरमें वातप्रकोप हो, पित्तमें अम्लता और उष्णता बहुत बढ गईहो, अन्न की सधारण शक्ति निर्बल होगई हो, तब इस रसायनका उपयोग अत्यन्त हितावह है । अपची, कण्ठमालमें भी यह लाभदायक है ।

(६४) लक्ष्मीविलास [सुवर्णयुक्त]

विधि—सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, वंगभस्म, लोह भस्म, मंडूर भस्म, कान्त लोह भस्म (अभावमें लोह भस्म), नाग भस्म, शुद्ध वच्छनाग और मुक्ता भस्म, इन ११ ओषधियोंको १-१ तोला और रससिंदूरको ११ तोले लें । सबको मिला शहदके साथ खरलकर पूरीके सदृश पतली बडे थाल समान चौडी दो पर्पटी बनाकर सूर्यकी धूपमें सुखावें । ३-४ दिनमें सूखनेपर सरावसंपुट करके नार्ध्य पुट अर्थात् ४-५ वनगोवरीकी अग्नि दें । स्वांग शीतल होनेपर निकाल चित्रकमूल के क्वाथमें ८ प्रहर खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें ।

(यो० र०)

सूचना—अग्नि उतनी ही देनी चाहिये कि, रसका वर्ण लाल रहे। अधिक अग्नि लग जानेपर वर्ण काला होजाता है और पारद उड़ जाता है फिर वजन कम हो जाता है।

मात्रा—$\frac{1}{4}$ से १ रत्ती दिनमे २ बार देव।

अनुपान—क्षयमे प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व। नपुंसकतामें वंगभस्म। शोथमे मकोयका अर्क। शक्तिवृद्धिके लिये शहद-पीपल वा च्यवनप्राशावलेह। प्रतिश्यायमें कालीमिर्च मिला गुनगुना दूध।

उपयोग—यह रस त्रिदोषज क्षय, पाण्डु, कामला, संपूर्ण वातरोग, सूजन, प्रतिश्याय (जुकाम, नजला), शुक्र-क्षय, अर्शशूल, कुष्ठ, मन्दाग्नि, सन्निपात, श्वास, कास आदि सब रोगोंको नष्ट करता है; शरीरको तारुण्यरूपा लक्ष्मीकी प्राप्ति कराता है; तथा शक्तिवर्द्धक, क्षयरोगनिवारक और क्षयके कीटाणुओं (Tuberculosis) को नष्ट करनेवाला है। इसका उपयोग आयुर्वेदीय चिकित्सकगण शक्तिवर्द्धक गुणकी प्राप्तिके लिये विशेष करते हैं। जिस तरह जलाभावसे मरणोन्मुख अवस्था प्राप्त वृक्षके मूलम जलसिंचन होनेपर वह प्रफुल्लित होकर फल-पुष्प-पर्ण आदिसे सुविकसित होजाता ह; तद्वत् इस रसायनके सेवनसे जीवन-प्रदीप सुप्रकाशित हो जानेका अनुभव होता है।

क्षयकी विलकुल प्रथमावस्थामें इसका प्रयोग करनेपर शक्तिपात दूर होता है। रक्त आदि धातु त्वरित वृद्धिगत होने लगती है,बल बढ़ने लगता है। इस तरह क्षय की द्वितीयावस्थामें भी इसका अच्छा उपयोग होता है। केवल तृतीयावस्थामें बड़े-वड़े उरःक्षत हो जाते है; तब इस रसायनका विशेष उपयोग हुआ हो,ऐसा नहीं जाना गया।

राजयक्ष्माके निमित्त कारण—वेगरोध, धातुक्षय, साहस और विषमाशन (आहार-विहार-मे विषमता) है। निश्चित कारण दोषप्रकोप हैं। इनमें क्षय अर्थात् रस-रक्त आदि धातुओंके ह्रास होनेसे उत्पन्न राजयक्ष्मामे इस लक्ष्मीविलासका उत्तम उपयोग होता है। यदि क्षयके कीटाणु मूल कारण रूप हों, तो भी शारीरिक घटकोंकी शक्ति ह्रास हुए बिना इन कीटाणुओको देहमें बढ़नका स्थान नहीं मिलता। अतिशय रक्तस्राव, शुक्रस्राव या रजःस्राव होनेपर या दीर्घकालका अति रजःस्राव रूप विकार होने पर जब अन्य हेतुओंसे धातुक्षय अधिक होता है; तब ही क्षय कीटाणुओंको उपयुक्त क्षेत्रकी प्राप्ति होती है; फिर उस रोगका विकास होता है।

मांसक्षीणता कृशता, दुर्बलता और मर्यादित ज्वर होनेपर क्षय रोगीको लक्ष्मी विलास देना चाहिये, ऐसी अवस्थामे इसे प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वके साथ देना चाहिये। या सुबह यह रसायन और सायंकालको ज्वरशामक अन्य ओषधि दें। प्रातःकालको अधिक ज्वर हो, तो इस रसका उपयोग नहीं करना चाहिये, त्रैलोक्यचिंतामणि

या जयमंगल रस देना चाहिये ।

क्षयके अतिरिक्त जीर्ण कफश्वास रोगमें भी इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है । रोग अति जीर्ण हो, रोगी अति कृश, बलमांसविहीन हो गया हो, त्वचा शुष्क हो गई हो, कफ चिकना, गाढा, पीला और दुर्गन्धयुक्त निकलता हो, श्रमदायक श्वास साथ-साथ श्वास लक्षण प्रतीत होते हों, ऐसे युवा और हाडपिंजर सदृश बने हुए शक्तिहीन श्वासरोगियोंको यह औषधि अति उपयोगी होती है । इसके सेवनसे जीवनीय शक्ति सबल होती है । फिर वह सरलतासे रोगके विष या कीटाणुओंके साथ युद्धकर सकती है ।

किसी भी इन्द्रियके बल और आकृतिका यथासमय योग्य विकास न हुआ हो, तो उस इन्द्रियमें समयके पहिले क्षीणता और अशक्ति आती जायगी । उससे अपना व्यापार उचित नहीं हो सकेगा । फिर बलात्कारसे परिश्रम करते रहनेसे शक्तिका क्षय अधिक और पूर्ति कम, ऐसी स्थितिमें प्राप्त होती है । उस अवस्थामें फुफ्फुसोंकी क्रिया सम्यक् न होनेपर कफदोष दूषित होकर कासरोग उपस्थित होता है, क्वचित् साथमें श्वास-विकारभी होता है । इस तरह फुफ्फुसोंके समान हृदय अशक्त होनेपर श्वास, हाथ-परोंमें ऐंठन, हाथ पैर और मुखपर किंचित् शोथ और कितनेही बार वार्तालाप करते रहनेमें ही श्वास भर जाना, आवाज बिल्कुल भीतर खिचना और अति परिश्रमसे उच्चारण होना आदि लक्षण होते हैं । उस पर यह रस अच्छा लाभदायक है । अभ्रक प्रधान लक्ष्मीविलास में हृदयोत्तेजक गुण अधिक हैं, तब इस रससिंदूर-प्रधान लक्ष्मीविलासमें शक्तिवर्द्धक गुण विशेष है । यह उत्तेजक होनेपर भी अधिक हृदयोत्तेजक नहीं है । हृदयकी अशक्तिसे रुधिराभिसरण क्रिया ठीक न होनेसे सर्वांगमें अशक्ति आजाती है । ऐसी अवस्थामें यह अति हितकर जाना गया है ।

आमाशयकी अशक्तिके हेतुसे आमाशय रस (पाचकाम्ल रस—Gastric Juice) की उत्पत्ति योग्य नहीं होती, अर्थात् पाचक-रस निर्माण करनेवाले सूक्ष्म कोष समूह अशक्त होजानेसे आमाशयस्थ पित्तोत्पत्ति सम्यक् नहीं होती । फिर भोजन-का पचन भी ठीक नहीं होता । ग्रहणी, अग्न्याशय, यकृत् और लघु अन्त्र, सब निर्बल होनेसे, इन सबमें उत्पन्न पाचक रस भी सकस नहीं होता । इस हेतुसे भी अन्नका पचन, चाहिये वैसा नहीं होता । अन्नका विदाह हो जाता है । भोजन परिपाक योग्य न होनेसे रसोत्पत्ति भी ठीक नहीं होती । फलत शारीरिक सजीव घटकोंको पोषण नहीं मिलता,, लंघन होने लगता है । फिर इनकी वृद्धि या स्थितिमें प्रतिबन्ध होता है । रोगी दिन-प्रतिदिन क्षीण और कृश होता जाता है । थोडासा भोजन करनेपर भी उदरमें भारीपन होजाता है । अन्न पर अरुचि होती है । ऐसी परिस्थिति मे लक्ष्मीविलासका अच्छा उपयोग होता है। इसके योगसे समस्त पचनेन्द्रिय संस्थाके पित्तोत्पादक कोषाणु

सशक्त बनते है । अन्नका विदाह होना बन्द हो जाताहै; उत्तम रीतिसे परिपाक होने लगता है; और नूतन अणुभवन क्रिया (Anabolism) नियमित होने लगती है।

यकृत्की अशक्तिसे यकृत्मेंसे उत्पन्न होनेवाले पित्त (Bile) का स्रावनिर्माण पूरे परिमाणमें न होनेसे पक्वाशय (लघुअन्त्र) में अन्नका पचन और रसका संशोषण सम्यक् नही हो सकता । इस हेतुसे देहमें पाण्डुता प्राप्तहोती है; तथा उदरमें अफारा, अपचन, उदरमें भारीपन, आंतोंमें गुड़गुड़ाहट, आतोंमें मंद-मंद व्यथा होना आदि लक्षण उपस्थित होते है । इन सवमें अग्निमांद्य प्रधान होता है। ऐसे विकारपर यह रस उत्तम कार्य करता है ।

कामला आशुकारी और चिरकारी, दो प्रकारके होते है । चिरकारी कामलामेंके यकृत्के कोषाणुओं (Cells) केभीतर धातुक्रियामें विकृति होती है । फिर पित्त विकृत होकर रक्त और रस धातुमेंमिश्रित होता हैं । परिणाममे कामलाकी उत्पत्ति होती है । इस प्रकारके कामलामें अशक्ति अधिक होती है; यहरोग दीर्घकाल तक रहता है । सर्वांगमें पीलापन, मूत्रमें आशुकारी कामलाकी अपेक्षा कुछ कम पीलापन, अग्निमांद्य, अरुचि कभी वमन और दिन-प्रति-दिन मांसविहीनत्वमें वृद्धि होना आदि लक्षण अधिक होते है । इस प्रकारके रोगमें लक्ष्मीविलास रस उत्तम कार्य करता है ।

वातविकारम अनेक भेद है । इस रोगके कारण विविध है; और लक्षणोंमें भी नाना प्रकारकी विचित्रता रहती है। इस विकारमें मुख्य आशुकारी और चिरकारी, ऐसे दो विभाग हैं । आशुकारीमें पक्षाघात, अपतानक, आक्षेपक आदि और चिरकारीमें कलायखंज, सर्वांग वात, गृध्रसी, विश्वाची, खल्ली आदि व्याधियोंका अन्तर्भाव होता है । इनमेसे वातस्थानकी अशक्तिके हेतुसे उत्पन्न चिरकारी विकारमे यह रस लाभदायक है । आशुकारी पक्षाघात आदिकी तीव्रावस्थामें यह उपयोगी नही है । परन्तु जीर्णावस्था और साथ-साथ सर्वांगमें अशक्ति आनेपर यह उपयुक्त है । एवं शीर्षशूल, कर्णनाद, किसी भी इन्द्रियकी अशक्तिसे अपना कार्य सम्यक् प्रकारसे न होना, कोई शारीरिक अवयव केवल अशक्तिसे सूखकर पतले हो जाना, स्मृतिनाश आदि विकार और उपरोक्त चिरकारी विकारमें यह रस अति उपयुक्त है ।

हृदयकी निर्बलतासे आनेवाले सर्वांग शोथमें मूत्रल अनुपानके साथ इस रसायनका प्रयोग करनेसे हृदय सबल बनकर तथा रसत्वचामेसे संचित रसका रक्तमें आकर्षण होकर शोथ शमन हो जाता है ।

प्रतिश्यायके एक दुष्ट प्रकारमें नाकमेसे जलस्राव सतत होते रहता है । रात्रि-दिन प्रवाह चालू रहता है । रात्रिमे निद्राके भीतर भी जलस्राव होता रहता है । यह केवल जल है परन्तु गाढ़ा हो जाता है । यह स्राव नासास्थित रसवाहिनियों और श्लैष्मिक कलामेसे होता रहता है ।

इसपर किसी प्रकारसे नियंत्रण नहीं हो सकता कभी-कभी युद्धवालोंके लिये जुखाम बन्द हो जाता है। परन्तु जब होता है,तब स्राव निरन्तर कुछ दिनतक होता रहता है। इसपर इस रसका उपयोग होता है। इसके सेवनसे रसवाहिनियां और श्लैष्मिक कलामें नियंत्रण शक्ति प्राप्त होती है। फिर बार-बार जुकाम नहीं होता।

नपुंसकतामें अनेक कारण हैं, इनमेंसे एक कारण अण्डकोषके कोषाणुओंका पुम्बीज और ओज बनानेकी शक्तिका ह्रास है। इन कोषाणुओंकी अशक्तिके हेतुसे रक्ताभिसरण क्रिया ठीक नहीं होती। फिर शुक्रमेंसे ओज (शुक्रधातुमें जो विशिष्ट ओज) योग्य नहीं बनता, इस हेतुसे नपुंसकताकी प्राप्ति होती है। रोगी बिलकुल निस्तेज और शक्तिहीन भासता है, मुखमण्डल उदास रहता है। सर्वदा विचारोंमें डूबा हुआ प्रतीत होता है। किसी भी कार्यके लिये उत्साह नहीं होता। मुखपर किसी भी प्रकारकी मनोवृत्ति स्पष्ट प्रतीत नहीं होती। इसपर बंगभस्मके साथ लक्ष्मीविलास देनेसे पुंसत्वकी वृद्धि होकर उत्साह आजाता है। इसके सेवनसे अण्डकोष सबल बनता है, पुम्बीज और ओज प्रवृत्तिमें सहायता मिलती है। नपुंसकत्व, नष्टवीर्यत्व और शीघ्रपतन, तीनों विकृति नष्ट होकर तारुण्य-लक्ष्मीकी पुनः प्राप्ति होती है।

इसका उपयोग सन्निपातकी तीव्रावस्थामें नहीं होता, फिर भी उसके उतरनेपर उसके असर या उपद्रवको दूर करनेमें यह लाभदायक है। विविध विषमज्वरोंमें सतत ज्वर उतरनेपर, श्लैष्मिक और दवमनक सन्निपातमें ज्वरवेग दूर होनेपर, आन्त्रिक ज्वरमें शारीरिक उत्ताप बिलकुल कम होनेपर या अन्य प्रकारके ज्वरका वेग शमन होनेपर नाडीमें क्षीणता, सर्वांगमें चिपचिपापन और शिथिलता, हृदयमें क्षीणता, श्वास अधिक होनेपर भी रोगीको पूर्ण शुद्धि होना, ऐसी घातक स्थितिमें यदि नाडीका वेग क्षणक्षणमें चेतना होना कम हो रहा हो, तो उस समय हेमगर्भ उपयुक्त है। परन्तु यह प्रबल मारक अवस्था दूर हो जानेपर शारीरिक उत्ताप कम हो, शीत अधिक हो, नाडी क्षीण हो, नाडी-स्पन्दन कम हो, उस स्थितिमें लक्ष्मीविलास अति उपयोगी है। कभी-कभी सन्निपात ज्वरोंकी शीतागवाली भयप्रद अवस्थामें रोगी ८-१० दिन तक रह जाता है। उसपर यह रस अपूर्व कार्य करता है। इसने अनेकोंको पुनर्जन्मकी प्राप्ति करा दी है।

अतिसार रोगमें आमाशयसे बृहदन्त्रके अन्त भागतक अब्धातुकी वृद्धि होकर बड़े-बड़े जुलाब होते रहते हैं। परन्तु मलक्षयके विकारमें मल-प्रवृत्ति बराबर होती रहती है, थोड़ा-थोड़ा मल निकलता ही रहता है, बिलकुल स्तम्भन नहीं होता। उस पर लक्ष्मीविलास उत्तम लाभ पहुंचाता है। इस तरह क्षय रोगमें उपद्रवरूप अतिसार पर भी यह लाभदायक है। केवल शारीरिक उष्णता मर्यादामें होनी चाहिये।

संक्षेपमें यह रस किसी भी हेतुसे निर्बलता आजाने पर सब इन्द्रियों और अवयवोंको योग्य परिमाणमें पोषक द्रव्यकी प्राप्ति करा सशक्त बनानेवाली मूल्यवान् औषधि है

इस हेतुसे शरीर-क्षयकारी अनक व्याधियोंमे इसका उपयोग होता है ।

(औ० गु० ध० शा०)

श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया) मे यह रस लाभदायक है । इस रसके साथ मयूरके चन्द्रिकाकी भस्म, दालचीनी, मुलहठी और बहेड़ेका चूर्ण मिला अदरखकेरस और शहदके साथ प्रातःकालको देते रहना चाहिये । यदि निर्बलता अधिक हो तो $\frac{1}{4}$ रत्ती कस्तूरी भी मिला देना चाहिये । रात्रिको समीरपन्नग रस देते रहें, इस तरह उपचार करनेपर रोग निर्विघ्न दूर हो जाता है ।

(६५) चन्द्रामृतरस।

विधि--त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), चव्य, धनियां, जीरा, सैंधानमक ये १० ओषधियां एक-एक तोला लें, बारीक, कूटकर बकरीके दूधमें ६ घण्टे खरलकर फिर शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक और लोह भस्म२-२ तोले, सोहागेका फूला ४ तोले और कालीमिर्चका चूर्ण२ तोले मिलावें । पहिले पारद-गन्धककी कज्जली करें । फिर भस्म और चूर्ण क्रमसे मिला, ३घण्टे बकरीके दूधमेंखरल करके ३-३ रत्तीकी गोलियां बनावे । (र० र०)

मात्रा--१ से २ गोली दिनमें २-३ बार बकरीके दूध; वासास्वरस, कुलथीके क्वाथ, कमलके रस, शहद-पीपल या अदरखके साथ ।

उपयोग—यह रस वातपित्तप्रधान, वातश्लेष्मप्रधान, पित्तश्लेष्म-प्रधान वातिक और पैत्तिक कास, रसयुक्त कास, शुष्क कास, कफकास, श्वासयुक्त कास, ज्वरसह श्वास, तृषा, दाह, भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, कृमि, हृद्रोग, पाण्डु, जीर्णज्वर आदि रोगोंको दूर करता है । खाँसीकी तीक्ष्ण व्याधिको एक-दो दिनमें ही शांत कर देता है; तथा अग्नि बल और वीर्यकी वृद्धि करता है ।

फुफ्फुसोंमें कफ अति संगृहीत हुआ हो और ज्वर भी रहता हो, तो मुलहठी, अड़ूसा, गिलोय, भारंगी, मोथा और छोटी कटेलीको समभाग ले, बारीक चूर्ण करके १॥-१॥ माशे शहदके साथ भोजनके बाद ले; या इसका क्वाथ अनुपान रूपसे लेनेसे फ़ेफड़े सत्वर निर्दोष और बलवान बनते हैं । इस रसका हमने भिन्न-भिन्न प्रकारसे कास रोगमें अनेक बार प्रयोग किया है । यह अति प्रभावशाली सिद्ध ओषधि है ।

(६६) कफकुठार रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोंठ, कालीमिच, पीपल, ताम्र भस्म, और लोह भस्में, सब समभाग लें । पहिले पारद-गन्धककी कज्जली करके भस्म मिलावें । बादमें त्रिकटुका पकड़-छान चूर्ण मिलाकर छोटी कटेलीके फलोंके रसमें ६ घण्टे खरल करें । पश्चात् कुटकीके क्वाथ और धतूरेके पत्तोंके रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावे ।

(र० रा० सुं०)

करें। विशेष गुण तालसिंदूरके वर्णनमें लिखा है, किन्तु इस रसायनमें तालसिंदूरकी उग्रता लवंगादि चूर्णके संयोगसे शमन होकर लवंगादि चूर्णके गुणकी वृद्धि होती है।

(६९) श्वासकुठाररस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, सोहागेका फूला और मैनसिल १-१ तोला और कालीमिर्च ८ तोले लेवें पारद गन्धककी कज्जली करके वच्छनाग, सोहागा और कालीमिर्च अनुक्रमसे मिलावे। मिर्च एक-एक डालते जाय और खरल करते जायें। पश्चात् सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, १-१ तोलेका बारीक चूर्ण मिला लेवे। कितनेही चिकित्सक इस रसको नागरबेलके पानके रसमें खरल करके गोलियां बनाते हैं।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ बार नागरवेलके पान, अदरखके रस और मिश्री अथवा छोटी कटेलीके क्वाथके साथ देवे।

उपयोग—यह रस श्वास, कास, मन्दाग्नि और वातश्लेष्म प्रधान रोगों को नष्ट करता है। सन्निपात, मूर्च्छा, अपस्मार, बह्रोशी आदिमें सुंघानेसे तत्काल रोगी सुधमें आ जाता है। फुफ्फुस-आवरण शोथ (कुक्षुदर-उरस्तोय) में जबतक जल उत्पन्न नही होता, तबतक यह लाभ पहुंचा सकता है। एवं सूर्यावर्त, आधा शीशी और दुस्सह शिरदर्द, प्रतिश्याय, ११ प्रकारके क्षय, हृद्रोग, शूल, दारुण स्वरभेद आदिमें रोगानुसार अनुपानके साथ देनेसे सब रोगोंको दूर करता है।

श्वासकुठारका उपयोग श्वास रोगपर अच्छा होता है। मूलभूत श्वास रोगके अतिरिक्त अन्य कारणोंसे अन्य रोगोंके पूर्वरूप, उपद्रव या लक्षणरूपसे गौण श्वासविकार भी होता है। हृद्रोग या सर्वांगशोफ, दोनो रोगोंमें श्वासकी सम्प्राप्ति होजाती है ऐसे लक्षणरूप श्वासमें इस रसका उपयोग नही होता।

वृद्धावस्था या तरुणावस्थामें ही कास और उसके साथ श्वास होनेपर इसका उपयोग होता है। इस श्वासमें घबराहट अधिक होती है। श्वासोच्छ्वास वेगपूर्वक चलता है। श्वासकी अपेक्षा उच्छ्वास लम्बा होता है। श्वासका वेग उत्पन्न होनेपर रोगी बिल्कुल बेचैन हो जाता है। समीपमें रहे हुए खम्भे या मनुष्यको पकडकर बैठनेसे चैन पडेगा ऐसा उसे भासता है। इस हेतुसे जो कुछ हो, उसे पकड लेता है। कफ छूटनेके लिये जो पदार्थ मिले उसे मुहमें रखता है। इस श्वासका निश्चत कारण नहीं। किसीको शीतलवायु या शीतकालके हेतुसे, तब कितनोहीको वर्षाकाल, शीतकाल वर्षा या बर्फ गिरकर फिर शीतलवायु चलना आदि कारणोसे श्वास हो जाता है। किसी-किसीको ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी प्रखर उष्णताके हेतुसे श्वासवृद्धि होती है। इस तरह आहार-विहारके भेदसे भी दौरा होजाता है। किसीको किंचित् अम्ल मट्ठेसे श्वासवृद्धि होती है और इसके विपरीत किसी-किसीको प्रकृति भेदसे ऐसे मट्ठेसे श्वासरोगमें लाभ पहुंचाता है।

प्रतिश्याय होकर श्वासवाहिनियोंमें कफका प्रादुर्भाव होनपर कुछ समयमें कफावरोध होता है। फिर श्वास उत्पन्न होनेपर इस औषधका उपयोग करना चाहिये। इस रोगमें श्वासवेग होनेपर बार-बार चक्कर आकर नेत्रोंके समीप अंधका आता रहता है; तथा अग्निमांद्य, कास आदि लक्षण होते हैं। कफ न पड़े; तबतक अधिक त्रास होता है; बार-बार खांसी आती रहती है। कफ गिरनेपर कुछ समयतक अच्छा लगता है कण्ठमें कुछ वस्तु लगी हो, ऐसा भासता है। कासवेग और श्वासवेग होने पर मुंहसे बोलना भीं कठिन हो जाता है। निद्रा बिल्कुल नहीं आती। क्वचित् आँख लगी तो थोड़े ही समयमें श्वासका वेग बढ़कर पुनः ज्यादा घबराहट होजाती है। यह घबराहट कफावरोधके हेतुसे होती है। रोगी पलंगपर सीधा लेट नहीं सकता। बैठे रहनेमें कुछ अच्छा लगता है या आगे-पीछे कुछ आधार रख लेनेमें कुछ शांति मालूम पड़ती है। यदि जरासा-शयन, कियातो तत्काल वेगवृद्धि होकर बैठा होना पड़ता है। गरम जल, गरम-गरम चाय, सेक; अंगीठी, ओढ़नेके लिये गरम वस्त्र आदिसे अच्छा लगता है। जरा-सी ठंड लगनेपर श्वास-वेग और व्याकुलता बढ़जाते हैं। श्वासवेग अधिक होनेपर नेत्र आधे मिच जाते हैं। नेत्रकी पुतली कुछ ऊपर चढी हुई भासती है। प्रस्वेद आना, विशेषतः कपालपर प्रस्वेद आना, मुँहमें शुष्कता, आवाज न निकलना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे श्वासमें श्वासकुठार रस लभदायक है।

आकाशमें बादल आने, वर्षा होने तथा शीतल और आर्द्र वायु चलनेपर श्वास सहज बढ़जाता है। इस तरह गीली जमीनपर बैठने, शीतल भोजन या कफ-वर्द्धक भोजन करनेपर श्वास बढ़जाता है। शीतवीर्य और शीत स्पर्श वाली वस्तुओं से कफ बढ़कर श्वास होजाता है। इस प्रकारके श्वासविकारमें श्वासकुठारका अच्छा उपयोग होता है। इस प्रकारके रोगोंपर समीरपन्नग भी लाभदायक है।

श्वासके अतिरिक्त मोह, मूर्च्छा, भ्रम आदिमें वेहोशी होनेपर नस्यरूपसे सका उपयोग किया जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना---(१) पित्तज कासमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२) कभी-कभी श्वासकुठारसे कितनेही रोगियोंको उष्णता बढ़ जाती ऐसे समयपर प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व या दाड़िमावलेह अथवा मिश्री मिले दूधका सेवन कराना चाहिये।

(७०) श्वासरोगान्तक वटी।

विधि—शुद्ध सोमल १ तोला, शृंग भस्म ११ तोले, सोहागेका फूला और सफेद मिर्चका चूर्ण २-२ तोले लें। सबको मिला नागरवेलके पानके रसमें ३ दिन

खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावे ।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार शहद, मिश्री मिले हुए दूध अथवा घृतके साथ देवे ।

उपयोग—नया और पुराना श्वासरोग, जिसमे कफ बहुत गिरता हो, श्वास नलिकायें कफसे भरी रहती हो, थोडासा परिश्रम करनेपर श्वास रुकने लगता हो, ऐसे रोगम इस वटीसे बहुत जल्दी लाभ पहुचता हैं । जिन रोगियोंकी पचनक्रिया अधिक दूषित न हुई हो, उन रोगियोको विशेषत जीर्ण रोगमें घीके साथ दिया जाताहै। घी २-४ तोले पिलाया जाता हैं ।

स्व० प० सुखरामदासजी टी ओझा सफेद सोमल १ तोला, सफेद कत्था ३ तोले और रसोईघरका धुआ १ तोला मिला नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करा आध आध रत्तीकी गोलिया बनाते थे । इनमेंसे १ से ४ गोली कफप्रधान श्वास रोगीको शीतल जलके साथ देते थे । भोजनके साथ घी, कडवे तेलके पकौडे,आमका अचार, और शाकमें भी सरसोंका तैल देतेथे । दूध-दही नहीं देते थे । क्वचित् रोगीकोदूध लेना हो, तो थोडा देते थे । कड्वा तेल जितना सेवन हो, उतना अधिक कफस्राव होताहै, ऐसा उनका कथन था ।

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृति वालोको यह वटी न दें । वृक्कस्थान सदोष होनेसे योग्य मूत्रोत्पत्ति न होती हो, तो भी यह रसायन न देवें । यकृत् निबल होनेसे पित्तस्राव न्यून होता हो, तो घी अधिक न दें, दूध मिलावे ।

दूसरी विधि—शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध सिंगरफ, सोहागका फूला और पीपलामूल २-२ तोले, पीपल, सफेदमिर्च, मुनक्का, छोटी हरड और मुलहठी५-५तोले, काली तमाखूके डठलके कोयले १० तोले और केशर ६माशे लें। सबको कूट कपडछान चूर्णकर, नागरवेलके पानकेरसमें १२ घण्टे खरलकरके आध-आध रत्तीकी गोलिया बनावें ।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार जल, शहद अथवा नागरवेलके पानके साथ देवें ।

उपयोग—यहवटी तमाखूके व्यसनसे होनेवाले श्वास और कासको दूर करती हैं । कफजन्य कास, श्वास और शूलपर शीघ्र लाभ पहुचाती है । जुकाम, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, सूक्ष्मज्वर और अतिसारको भी नष्ट करती है ।

सूचना—तमाखूके डठलके छोटे-छोटे टुकडेकर मिट्टीके वर्तनमे रखकर जलावें । निधूम होनेपर ढक्कनसे ढक दें, वरना राख हो जायगी । जिस दिन कोयले करे, उसी रोज गोलियाँ बना लेनी चाहिये ।

(७१) मल्लादिवटी [कफ कास]

प्रथम विधि—शुद्ध सोमल, वंशलोचन, इलायची और जावित्री २-२ तोलेको मिला गुलाबजलमें २ दिन खरलकरके ज्वारके दाने बराबर गोलियां बनावें।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे कफ, श्वास, जुकाम, जीर्णज्वर, वमन, प्रमेह और वातविकार आदि रोग दूर होते हैं। इस औषधमें सोमलकी उष्णता अन्य शीतल ओषधियोंके योगसे कम हो जाती है इस हेतुसे जिन रोगियोंसे उग्र ओषधि सहन न होती हो, उनको भी यह दे सकते हैं।

अधिक धूम्रपान करने या अन्य हेतुसे कफ प्रकोप होकर श्वसन संस्थामें दीर्घकालसे अधिक कफ संगृहीत रहता हो, तब कफपीला और चिपचिपा बन जाताहै। यह बड़े कष्टसे थोड़ा-थोड़ा निकलता रहताहै। श्वास नलिका और कण्ठमें कफ चिपका ही रहता है। बाहर निकालनेकी इच्छा होनेपर भी निकाल नहीं सकते। ऐसी अवस्थामें इस मल्लादि वटीका सेवन दूध मलाई या गो-घृतके साथ करानेसे कफ सरलतासे बाहर आ जाता है, एवं कफकी उत्पत्ति भी कम हो जाती है। यह वटी जीर्ण वातप्रकोपपर अच्छा लाभ पहुंचाती है; हृदयको सबल बनाती है और निर्बलताको दूरकरती है। इसवटी का उपयोग पं०श्री सुखरामदासजी टी ओझा प्राणाचार्य भी जुकाम और कफ प्रकोप-पर अनेक वर्षोंसे करते रहे हैं।

[७२] श्वासदमनचुर्ण।

बनावट—शुद्ध मैनसिल, भुनी हींग, वायविडङ्ग, कूठ कालीमिर्च और सैंधा नमक समान मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (र०र०स०)

मात्रा—१-१ माशे दिनमें २ बार शहद और घीके साथ दें।

उपयोग—इस ओषधिके सेवनसे श्वास, हिक्का और कासमें सत्वर लाभ पहुंचता है। हृदयावरोध और श्वास की रुकावट तुरन्त कम हो जाती है; तथा हिक्का और कफयुक्त कास नष्ट होती हैं। घबराहट होनेपर यह ओषधि तुरन्त फल दर्शाती है।

इस औषधिका उपयोग आक्षेपकालमें श्वास वेगके दमनार्थ अधिक होता है। यद्यपि एफेड्रिन (Ephedrine) जो सोम (Ephedra Vulgaris) का क्षारीय सत्व है, उसकी अपेक्षा अति कम कार्य करती है। किन्तु अति उग्र औषधियोंका सेवन करनेपर सच्चा रोग दमन नहीं होता; आजीवन बारबार उनका सेवन करना पड़ता है; इसके विपरीत आयुर्वेदिव औषधिका सेवन तत्काल लाभ नहीं पहुंचा सकता, कुछ समय लगता है; परन्तु रोगनिरोधक शक्तिको शिथिल नहीं बनाता। कुछ काल तक

आयुर्वेदिक औषधिका पथ्य पालनसह सेवन करनेपर सदाके लिये रोगनिवारण होजाता है ।

इस औषधिमें आक्षेपहर मुख्य औषधि कूठ है और हींग सहायक है। मन शिलादि शेष औषधियां कफघ्न हैं । यदि अपचन, अफारा, शूल और घबराहट हो, तो वे भी दूर हो जाते हैं । आक्षेपकालमें इस औषधिका सेवन १-१ घण्टेपर ३ बार और आक्षेप होनेपर दिनमें २ या ३ बार कराया जाता है ।

जिस तरह यह चूर्ण श्वासके आक्षेपकालमें व्यवहृत होता है, उस तरह हिक्का और हृदयविकारसह श्वासावरोध (Cardiac Asthma) पर भी व्यवहृत होता है। यह चूर्ण पित्तवर्द्धक होनेसे अम्लपित्त विकार, मुखपाक, कण्ठशोष या अन्य पित्त-प्रधान विकारसह श्वास कासपर प्रयुक्त नहीं होता । एवं विना घी मिलाये इस चूर्णका सेवन नहीं कराया जाता । अन्यथा कण्ठमें प्रदाह होजाता है ।

दूसरी विधि—शुद्ध मैनसिल ५ तोले और गोदन्तीभस्म २० तोलेको मिलाकर खरल करें । (श्री पं० यातीलालजी आचार्य)

मात्रा—२-२ रत्ती दिनमें २-३ बार अथवा आवश्यकतापर १-१ घण्टेपर ३ बार शहद या घी-शहदके साथ देवें । आवश्यकतापर सेंधानमक मिला लेवें ।

उपयोग—यह रस पित्त प्रकृतिवालोंको कफ प्रकोपज श्वासप्रकोप होनेपर दिया जाता है । इस औषधिसे सरलतासे कफ बाहर निकलता है। फिर श्वासावरोध और व्याकुलता दूर होजाते हैं । पहली विधिकी अपेक्षा यह औषध सौम्य है । तीव्र आक्षेप हो, साथ ही अपचन हो और उष्ण औषधि सहन होती हो, तब पहिली विधि वाला श्वासकुठार दिया जाता है। उष्ण प्रकृति, उष्ण ऋतु, तमाखूके व्यसनी, मुखपाक और अम्लपित्तवाले रोगियोंको यह कृति विशेष अनुकूल रहती है ।

(७२) हिक्कान्तक रस

विधि—सुवर्ण भस्म, मुक्ता पिष्टी, ताम्र भस्म और लोह भस्मको समभाग मिला बिजौरेके रसकी ३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लें ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती बिजौरेके रस, शहद और काले नमकसे या कारणा-नुसार अनुपानके साथ २-२ घण्टेपर २-३ बार देवे ।

उपयोग—यह रस सब प्रकारकी हिचकीको निःसन्देह शमन करता है । इस संसार नाम 'रसचडामु' वाले सुवर्णभस्मादि योग लिखा है ।

यह रस यमला, गम्भीरा और महाहिक्का तीनोंपर प्रयोजित होता है । इनमें विशेषतः यमलापर अधिकतर फलदायी है । इन तीनों हिक्काकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न

कारणोंसे होती हैं। अतः मूल कारणकी ओर लक्ष्य देकर अनुपान और पथ्यकी योजना करनी चाहिये।

इन तीनोंमें यमलाकी उत्पत्ति उदरस्थ अवयवों (अन्ननलिका, आमाशय, लघु-अन्त्र, बृहदन्त्र, यकृत् या उदर्याकला) के प्रदाह या गर्भधारण आदि कारणोंसे महाप्राचीरा-पेशीका आक्षेप होनेपर होतीहै। आमाशय प्रदाह होनेपर मुखपाक, छातीमें जलन, खट्टी वमन होते रहना, अरुचि और आमाशयमें भारीपन आदि; लघुअन्त्रका प्रदाह होनेपर अतिसार आदि; बृहदन्त्रके क्षतयुक्त प्रदाह होनेपर प्रवाहिका, रक्तातिसार आदि तथा इनसबमें प्रदाह फैल जानेपरमिश्रितलक्षणों सह यमला हिक्का उपस्थित होती है। उदर्य्याकलाके व्यापक प्रदाहमें उदरपर पीड़नाक्षमता (दबानेपर अधिक पीड़ा) आध्मान, शूल, बद्धकोष्ठ, वमन, शीतल, स्वेद आदि लक्षणों सह हिक्का उपस्थित होती है। गर्भधारणसे हिक्का हुई हो, तो उसके अनुसार लक्षण मिलते हैं।

यमलाके इन सब विकारोंपर हिक्कान्तक रस उपकारक है। आमाशयप्रदाह होनेपर हिंगु, सोंठ, नमक आदि उग्र उपचार लाभ नहीं पहुंचा सकता। शामक उपचार ही करना चाहिये। अतः मूलग्रंथकारने बिजौरेका रस, शहद और काले नमक (मात्रा १-२ रत्ती) के अनुपानकी योजना की है। उसके साथ देवें, किन्तु जिनसे अम्ल अनुपान सहन न हो, उनको त्रिफला चूर्ण और शहदके साथ दिया जाता है।

लघुअन्त्र प्रदाहमें दाड़िमावलेह या विजयावलेहके साथ; आमाशयप्रदाह और लघअन्त्रप्रदाह, दोनों होनेपर जीरकारिष्ट या कनकासवके साथ, अथवा हरड़प्रधान तालीसादि चूर्णके साथ देना चाहिये। बृहदन्त्रप्रदाहमें कुटजारिष्ट या कुटजावलेहके साथ देना विशेष हितावह है। रक्तातिसार हो, तो आवश्यकता अनुसारग्रहणीकपाट रस या कर्पूर रस मिला देना चाहिये।

अन्त्रमें दूषितमल, कीटाणु, कृमि या विष उपस्थित है, तो पहिले दो तीन दिन तक आरोग्यवर्द्धिनी (त्रिफला फाण्टके साथ) देकर उदरको शुद्ध करना चाहिये। फिर हिक्कान्तक रस देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

उदर्य्याकलाका व्यापक प्रदाह हो, तो वेदना शमनार्थ पूरी मात्रामें अफीम देते रहना चाहिये। उसके साथ हिक्का शमनार्थ हिक्कान्तक रस पोस्तदानेके लेह या कर्पूर रसके साथ देते रहना चाहिये।

गम्भीरा हिक्काकी संप्राप्ति फुफ्फुसान्तरालमें उत्पन्न अर्बुदोंके दबावसे महाप्राचीरापेशीका आक्षेप होनेपर होती है। इनमें सौम्य अर्बुदजन्य दबाव हो, या धमनीमें अर्बुदका दबाव हो, तो हिक्कान्तक रससे सत्वर लाभ पहुंचता है। सच्चे अर्बुदोंपर अनुपान कटफलादि क्वाथमें शहद, हींग और अदरखका रस मिलाकर देनसे श्वासावरोध, पार्श्वशूल आदि लक्षणोंसह हिक्काका निवारण होता है। धमन्यर्बुद (Aneurysm)

हो, तो शहद और लहसुनका स्वरस या हरडका क्वाथ अनुपान रूपसे देना चाहिये। सच्चे अर्बुदका दबाव होनेपर गात्रनीलिता उपस्थित होती है, जो धमन्यर्बुदमे नही होती। इसपरसे दोनोका विभेद हो जाता है।

महाहिक्का मस्तिष्कप्रदाह (Encephalitis Lettargica) तथा मस्तिष्कार्बुद (Cerebral Tomour) से होती है। इनमे मस्तिष्कप्रदाह कीटाणुजन्य रोग है। उसमे मुख्य लक्षण मस्तिष्कके पिछले खण्डमे शिरदर्द, चक्कर आना, रोगटे खडे होना, प्रारम्भमें १०२° से १०५° डिग्रीतक ज्वर तथा सर्वांगिक निर्बलतासह हिक्का होती है। उसपर मूत्ररोगशामक ओषधि, सूतराज रस या महावातविध्वंसन रसके साथ हिक्कान्तक रस देते रहनेसे लाभ पहुच जाता है।

यदि यमलाकी उत्पत्ति गम्भीर व्यापक उदर्याकलाप्रदाहसे हो, गम्भीराकी उत्पत्ति फुफ्फुसान्तरालके घातक अर्बुदमे हो, तथा महाहिक्काकी उत्पत्ति मस्तिष्कस्थ घातक अर्बुदसे हुई हो, तो उन मूल कारणका निवारण नही हो सकेगा। जिससे लक्षण रूपया उपद्रव भूत हिक्का शमन नही होती। फिर भी हिक्कान्तक रसका सेवन (हरड मिश्रित लघुमजिष्ठादि क्वाथके साथ) कराते रहनेसे हिक्काके वेगका शमन होता है और रोगीका चित्त प्रसन्न रहता है इस तरह इन असाध्य हिक्काओमे भी हिक्कान्तक रसका उपयोग सफल माना जाता है

सूचना—प्रादाहिक हिक्का होनेपर जल गरम करके शीतल किया हुआ देवें। कुआँ या नदीका ताजा जल देनेपर प्रदाह और हिक्का बढ जाते हैं।

(७४) वान्तिहृद्रस।

विधि—लोह भस्म, शखभस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद, सबको ५-५ तोले लेकर कज्जली करें। पश्चात घीकुवार, धतूरेके पत्ते और चागेरीके रसकी १-१ भावना देकर गोली बनावें। सूखनेपर ७ कपडमिट्टी करके २ सेर गोबरीमें फूक दे। स्वाग शीतल होनेपर खरल कर लें। (र० च०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें ३ या अधिक बार शहदके साथ दें। ऊपर पीपल वृक्षकी राखको जलमें भिगोकर नितरा हुआ जल पिलावें। कृमि रोगमें वमन होती हो, तो वायविडग, अजवायनके चूर्ण और शहदके साथ दें।

उपयोग—यह वान्तिहृद्रस जीर्ण वमन रोग, अपचनजनित वमन, पित्त-प्रकोपज वमन और कृमिरोगका नाश करता है।

वमन, यह लक्षण अनेक भिन्न-भिन्न रोगोमें उपस्थित होते है। सामान्यत वान्तिके कारण ३ प्रकारके हैं —

(१) आमाशय और तत्सन्निध अवयवोकी स्थानिक विकृति।

(२) वातवाहिनिया, वातवहा नाडीकेन्द्र या मानसिक विकृति।

(३) दोषदूष्य संयोगजन्य वृक्क, गर्भाशय आदि अन्य स्थानोंकी विकृतिसे उत्पन्न विकार ।

इनमें से पित्तजन्य आमाशय विकृति पर—विशेषतः पित्तके तीव्रत्व, अम्लत्व और द्रवत्व गुण बढ़ने पर वान्तिहृद् रसका उपयोग किया जाता है। जीर्ण विकार, कण्ठमें जलनसह अत्यधिक मात्रामें कै होना, साथ-साथ अफारा, भोजन करनेपर तुरन्त वमन, अंगकान्ति निस्तेज होजाना आदि लक्षण होनेपर वान्तिहृद्रस उत्तम औषधि है ।

दूषित अन्न, बासी दुर्गन्धयुक्त भोजन, गर विष, फटा हुआ दूध या ताम्र आदि धातुओंके पात्रमें रखा हुआ भोजन आदिके सेवनसे कै होने लगती है। ऐसे समयपर प्रारंभमें वमन आदि क्रिया द्वारा संशोधन कराना चाहिये । फिर विष अनुसार प्रतियोगी विषघ्न उपचार करना चाहिये । इसपर इस वान्तिहृद् रसका उपयोग नहीं होता केवल निज रोगोंमें यह रस उपयोगी है ।

अम्लपित्त, पित्तज परिणामशूल, अन्नद्रवशूल आदि व्याधियोंमें बार-बार त्रासदायक वमन होनेपर इसका उपयोग होता है । एवं वीभत्स पदार्थके दर्शन, भोजनमेंमक्षिका आदिका प्रतीत होना या अन्य मानसिक कारणसे उत्पन्न छर्दिमें भी यह कुछ अंशमें उपयोगी है ।

सर्वांगमें शोथ, पाण्डुरोग, हृद्रोग, यकृद्वृद्धि और जीर्ण ज्वर आदि जीर्णव्याधियोंमें स्थानिक विकृति होकर वमन होती हो, तो वान्तिहृद्रसका उत्तम उपयोग होता है । विशेषतः पित्तप्रधान विकार होनेपर बहुत अच्छा लाभ पहुंचाता है ।

जीर्ण कृमिज हृद्रोग और कृमिज पाण्डु रोगपर इस औषधिका उपयोग करके निर्णय करना चाहिये । कृमिजन्य तीव्र विकारमें तो इसका उपयोग नही होना चाहिये; ऐसा अनुमान है ।

सक्षेपमें यह रस पित्तघ्न, आमाशयके पित्तको शमन करनेवाला, जीर्ण रोगमें हितकर, पाचक, कृमिघ्न और बल्य हैं । (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—यह रस दूषित भोजन और विष भक्षणसे वमन होनेपर एवं उपदंश और जीर्ण सुजाकके रोगवालेको नहीं देना चाहिये ।

यह औषधि मलावरोधके रोगीको नहीं देनी चाहिये ।

सगर्भा स्त्रीको वह रस न दिया जाय, तो अच्छा है ।

तीव्र वमनके रोगीको एक साथअधिक जल न पिलावे । यदि पीपल (अश्वत्थ) की छालको जला; श्वेत भस्म बना, १६ गुने जलमें भिगों ३ घण्टे बाद ऊपरसे साफ जल नितारकर मिट्टीके घड़ेमें भर लेवें; उसमें से थोड़ा-थोड़ा जल आवश्यकतानुसार पिलाते रहें, तो विशेष हितकर माना जायगा ।

(७५) रसादि चूर्ण ।

विधि—शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले कपूर ३ तोले, शुद्ध शिलाजीत ४ तोले, मम ४ तोले, श्वेत मिर्च ६ तोले और मिश्री ७ तोले मिलाकर खरल करे । (मैं० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती शीतल जलके साथ दिनमें ३ बार दें ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे अत्यन्त बढी हुई तृष्णा सत्वर शमन होती है । इस कारणसे यह ओषधि तृषा रोग एवं अन्य रोगके तृषा रूप उपद्रवमें उपयोगमें ली जाती है । मधुमेह, विसूचिका, अतिसार, मदात्यय, दाह और विषप्रकोप आदि रोगोंमें और अन्य कारणसे तृषा बढने पर इस ओषधिका उपयोग करनेसे अब्धातु प्रवृत्ति नियमित होकर तृषा शमन होजाती है ।

(७६) कुमुदेश्वर रस ।

विधि—ताम्रभस्म ४ तोले और वनौषधिसे मारित वंगभस्म २ तोले मिला, मुलहठीके क्वाथकी ७ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें ।(र० च०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें ३ बार लेवें । ऊपरसे निम्न चन्दनादि क्वाथ पिलावें ।

चन्दनादिक्वाथ—सफेद चन्दन, अनन्तमूल, नागरमोथा, छोटी इलायची और नागकेशर १-१ तोला और धानकी खील (लाह्या) ५ तोले मिलाकर १६ गुने जलके साथ, आधा जल रहे तबतक उबाल कर छानले । फिर मिश्री और मधु मिलाकर थोडा-थोडा पिलावे ।

आमप्रकोपसे तृषा लगती हो, तो मुलहठीके क्वाथके साथ देवें ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे पित्तप्रकोप, आमप्रकोप या मधुमेह आदि रोग या अन्य किसी कारणसे उत्पन्न हुई तृषा शमन होती है, एवं वमन होती हो, वह भी सत्वर दूर होती है ।

यह रस मूलग्रंथमें तृषा चिकित्सामें दिया है । तृषा स्वतन्त्र रोग नहीं है, किन्तु उपलक्षण है । इस औषधके पाठ और भावनाका विचार करनेपर यह केवल पित्तज तृषाके लिये उपकारक है, ऐसा नहीं, मधुमेहजन्य तृषा और आमज तृषापर भी उपयोगी है । मधुमेह विकार यकृत्‌की अशक्तिसे निर्माण होनेसे बार-बार अधिक मूत्रोत्सर्ग होता हो, और रोगी कृश होकर ओजक्षय विशेष रूपसे हुआ हो, तो भी इस रसके सेवनसे लाभ पहुंच जाता है ।

शुक्र-स्खलनकी आदत होजाने पर अपचन और कोष्ठबद्धता आदि विकार उपस्थित होते हैं । फिर थोडा-सा जड अन्न सेवन करनेपर वह पचन नहीं होता, और

अपचन बढ़ने पर बार-बार शुक्रस्राव होता रहता है मुखमंडल उदास प्रतीत होना है। जीवन पर बिल्कुल अभाव-सा होजाता है। यह रोग वर्त्तमानमें बहुत बढ़ गया है इसपर कुमुदेश्वरसे जल्दी लाभ पहुंचता है। (औ० गु० ध०शा०)

(७७) राजावर्त रस।

विधि—राजावर्त्त भस्म, पारद भस्म (रससिंदूर), ताम्र भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म, चारों समभाग मिला थोड़े घीके साथ, मन्दाग्नि पर घृत शोषण होकर औषध संमिश्रण होजाने तक पका लेवें। (र० चं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ बार मक्खन-मिश्री या मिश्री, घी और शहदके साथ या धारोष्ण दूधके साथ देवे।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके मदात्यय रोग, दाह, शिरदर्द और पित्तविकारको दूर करता है; तथा हृदयको सबल बनाता है।

मदात्य रोगमें शारीरिक और मानसिक निर्बलता तथा निस्तेजता आजाती है। रोगीका मुखमण्डल मलीन होजाता है। निद्रानाश, प्रलाप, नेत्रमें लाली, दाह शीत लगना, कम्प होना, भयप्रद दर्शन होना, हृदयमें विविध प्रकारके संशय होना, अति प्रस्वेद आना, निःश्वासमें दुर्गन्ध निकलना, आमाशयमें उग्रता आजाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। क्वचित् रोगी अधिक सुरापान कर लेवे तो उसके हृदयमें चोरी, डाका, नरहत्या, व्यभिचार आदि दुर्दमनीय कार्यकी लालसा उत्पन्न होजाती है। इस विकारसे हृदयमे मेदवृद्धि, वृक्कविकृति, ध्वजभंग, उन्माद, मस्तिष्कविधानमें विकृति, मृगी, पक्षाघात आदि होकर आयुक्षय होता है। इस विकारमें निद्रानाश, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण होनेपर इस रसका अच्छा उपयोग होता है। इस रसके सेवनसे मस्तिष्क और हृदय सबल बनते हैं; जिससे दाह, अति प्रस्वेद और आमाशयकी उग्रता आदि लक्षण शमन हो जाते हैं। फिर रोगी शनैः शनैः रोगमुक्त होकर बलवान और तेजस्वी बन जाता है।

[७८] कामदुधा रस।

विधि—मुक्तापिष्टी प्रवालपिष्टी, शुक्ति भस्म, वराटिका भस्म, शंख भस्म, सुवर्णगौरिक (सोनागेरू) और गिलोय सत्व, इन ७ ओषधियोको समभाग मिलाकर खरल करलें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ बार जीरा-मिश्रीके साथ। अम्लपित्त में आंवलेके चूर्ण और घृतके साथ।

उपयोग—कामदूधारस शीतवीर्य, क्षोभनाशक और शक्तिदायक है; तथा पचनक्रिया, रुधिराभिसरण, वातवहन क्रिया और मूत्रमार्ग पर शामक असर पहुंचाता है। कामदूधासे जीर्णज्वर, पित्तविकार, अम्लपित्त, दाह, मूर्छा, भ्रम, चक्कर, उन्माद,

पित्तके धर्मोकी वद्धि होजाती है । ऐसे गुणवाला रक्त जब रक्तवाहिनियोमे वहन करता रहता है तब रक्तवाहिनियोको अन्तस्त्वचा अधिकाधिक पतली होती जाती है। फिर कुछ क्षोभोत्पादक कारण मिलनेपर रक्तवाहिनिया फूटकर उनमे से रक्तस्राव होने लगता है। इन सबमे विदग्धपित्त कारण है, और रक्तपित्त कार्य है।इसपर प्रवाल, मुक्ता आदि औषधका उपयोग होता है। परन्तु इनमें स्तम्भकपना न होनेसे कितनी ही विशेष अवस्थामें कामदूधाकी योजना करनी चाहिये। वार-वार रक्त पडते ही रहना, रक्तस्राव वन्द हुआ भी तो वहुत थोडे समयके लिये, एक स्थानपर वन्द होनेपर अन्य स्थान पर पुन प्रारम्भ होजाना, रक्तमे जमकर सघान करनेकी क्रिया मन्द हो जानेसे रक्त गिरते रहना, सर्वांगमे दाह, हाथ-पैर, नेत्र और मूत्रमें जलन पखेसे वायु डालते ही रहना, मस्तिष्क फिरता हुआसा रहना, घर, आकाश आदि फिरनेका भास होना, कभी चक्कर, विकार वढकर मूर्च्छा आजाना आदि लक्षण होनेपर कामदूधा उत्तम काय करता है।

पित्तदोषकी विकृतिसे पचनक्रिया विकृत होती है। फिर उदरमे सेन्द्रिय विषका निर्माण होता है। यह पित्त गुणभूयिष्ठ होताहै। इसका प्रकोप होनेपर उन्माद सदृश विकार उत्पन्न होता है। इस घोर दोष सचयका परिणाम मनोवृत्तिपर होता है, जिससे अल्पसत्व मनुष्यका मन चचल होता है। उसमें चल विचलता होकर विभ्रमावस्था की प्राप्ति होजाती है। इसे ही उन्माद कहते है। इस विकारमें बुद्धिका विभ्रम, मनकी अस्थिरता, दृष्टिकी अस्थिरता, चचल और व्याकुल नेत्र, धैर्यनाश, इच्छानुसार असम्ब प्रलाप, हृदयमे अकस्मात् शून्यता आजाना, वार-वार चक्कर आना, चक्कर आकर वेहोशी आजाना, आदि लक्षण होनेपर कामदूधारस उत्तम कार्य करता है।

हृदयके विकारमे पित्तप्रकोपके लक्षण अधिक होनेपर कामदूधाका उपयोग करना चाहिये। इसमें हृदय और नाडीकी गति वढना, वार-वार चक्कर आना, हृत्स्पन्दन और अन्य पित्तलक्षण वढ जाना आदि विकार प्रतीत होते है। ऐसी परिस्थिति में कामदूधा हितकारक है।

सर्वांग शोथमें व्याकुलता, चक्कर, अकारण थकावट, उबाक वमन, शिरदर्द, उदरमे दाह आदि पित्तलक्षण प्रकाशित हो इस विकारमें यदि मूत्रका परिमाण अति कम हो, तथा मूत्र लाल, गाढा हो, तो तीव्र क्षारप्रधान मूत्रल औषध लाभ नही पहुचा सकती। तीव्र ओषधि देनेपर वृक्कोका दाह अधिक वढकर शोथवृद्धि होजाती है। अत शामक औषधका उपयोग किया जाता है। यदिशामक मूत्रल ओषधि दी जायगी तो वृक्कोको अधिक कायकरना पडता है। वह भी कितनी ह. अवस्थामे इष्ट नही होता केवल क्षोभनाशक, शीतवीर्य, प्रसादन औषधका अधिक उपयोग होता है। यह काय कामदूधासे होता है। कामदूधा शीतवीर्य होनेसे मूत्रपिण्डोको होनवाला त्रास, विशेषतया कम होजाता है। यह शामक होनेसे रक्तका प्रसादन करके शोथको कम कराता है।

अतः वृक्कविकारजनित पित्तप्रधान सर्वांग शोफमें कामदूधाकी योजना करनी चाहिये।

मवीनियों (Ureters) मेंसे मूत्र निकलनेके समय दाह और वेंदना होना, स्रोतें स्फोटयुक्त फटीसी होजाना, आदि लक्षण होने पर कामदूधाका प्रयोग करना चाहिये।

स्त्रियोंके रक्तप्रदरमें कामदूधा उपयोगी है। सगर्भावस्थामे कड़वी, खट्टी, जलती हुई वमन होती हो, तो वह भी कामदूधा रसके सेवनसे शमन होजाती है।

बालकोंकी काली खांसीपर उपयोगी ओषधियोंमें कामदूधा रस उत्तम औषधि है। अति निर्बलता आनेपर और आमाशयमे अधिक उग्रता होनेपर अन्य ओषधियां जब निष्फल होजाती है; तब यह लाभ पहुंचा देती है। (औ० गु० ध० शा०)

[७९] गन्धक रसायन।

प्रथम विधि—शुद्ध गन्धकको गायके दूध, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर) का क्वाथ, गिलोयका स्वरस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इनका अलग-अलग क्वाथ, भांगरेका रस और अदरखका रस, इन वस्तुओकी आठ-आठ भावना दे सुखाकर बारीक चूर्ण करें। (यो० र०)

कितनेही चिकित्सक आठ-आठ भावनाके स्थानपर केवल एक-एक भावना देते है। अधिक भावना देनसे गुणमें वृद्धि होती है।

मात्रा—आधेसे १ माशे तक दिनमें दो बार समभाग मिश्री मिलाकर दूधके साथ सेवन करें। कुष्ठरोगमे दारुहल्दी, हल्दी, मजीठ, अनन्तमूल, आंवला, गोखरू, गिलोय, काले खैरकी छाल, चोपचीनी और नीमकी निवौलीके क्वाथके साथ एक मास तक सेवन करें। फिर एक मास छोड़ देवे। पुनः प्रारंभ करे। इस तरह ३ वर्ष तक सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ शमन हो जाते है।

उपयोग—इस गन्धक रसायनके सेवनसे वीर्यकी वृद्धि और शरीरकी दृढ़ता होती है। पाचनशक्ति बलवान बनती है। खाज, कुष्ठ और उग्र विषदोष दो मासके सेवन मात्रसे नष्ट हो जाते हैं। घोर अतिसार, ग्रहणी, रक्त और शूल सहित ग्रहणी, जीर्णज्वर, सब प्रकारके प्रमेह, सब प्रकारके वातरोग, सब प्रकारके उदर रोग, अण्ड-कोषवृद्धि और सोमरोगको यह रसायन दूर करता है।६ मास सेवन करनेसे बाल काले हो जाते हैं और युवावस्थामें समान बलकी प्राप्ति होती है। संक्षपमें यह रसायन सब प्रकारकी व्याधियोको दूर करता है। बिल्कुल मरणतुल्य शरीरवालोंको भी बलवान, नीरोग और दीर्घ आयुवाला बनाता है। वीर्यकी वृद्धि करता है। वात, पित्त और कफ तीनों दोषोंमें से बढ़ हुएको घटाता है; और घटे हुएको बढ़ाता है। जीर्णज्वर, सब प्रकारके जीर्ण रोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु, क्षय, श्वास, अर्श, आदि रोगोंको दूर करके शरीरको तेजस्वी बना देता है।

इस गन्धक रसायनके साथ यदि रससिंदूर या सुवर्ण भस्मका सेवन किया जाय, तो बलवृद्धिके लिये विशेष लाभ पहुचता है।

इस गन्धक रसायनके गुणपाठमें अनेक प्रकारकी व्याधियोंके नष्ट करनेका लिखा है, परन्तु इसको एक विशेष प्रकारकी दोष-दूष्योंकी सगति चाहिये। इसका कार्यक्षेत्र रक्त और त्वचा है। किसी भी कारणसे रक्त दूषित हुआ हो, तो उसे शुद्ध बनाना यह धर्म इसमें मुख्य है। ऐसे ही शरीरमें सचित हुए विकृत द्रव्योंका रूपान्तर और भेदन करके शुद्ध बनानेका कार्य भी करता है।

रक्तकी अशुद्धिके हेतुसे रस आदि सप्त धातुओंमें मलिनता उत्पन्न होनेपर उनका धर्म अर्थात् आवश्यक तत्वोंके सशोषण और रूपान्तर करके आत्मसात करनेका गुण मन्द हो जाता है। फिर रक्तका सशोधनकर धातुओंके इस धर्मको पुन प्रस्थापित करनेकी आवश्यकता है। यह कार्य इस रसायनसे उत्तम प्रकारसे साध्य होता है।

समस्त शरीरमें सचारित विशेष प्रकारका विष दीर्घकालपर्यन्त रह जानेसे सप्तधातुओंमें लीन होकर विविध प्रकारकी चिरकारी और जिद्दी व्याधिया उत्पन्न करते हैं। इस प्रकारके दोष-दूष्योंके जीर्ण सयोगमें यह अमृतवल्लीके सदृश कार्य करता है।

इस स्थानपर विष दो प्रकारके विवक्षित हैं—(१) स्थावर जगमात्मक तीव्र, (२) शरीरके भीतर शारीरिक सूक्ष्म कोषाणुओंसे उत्पन्न होनेवाले तीव्र या मद साधारण विष और उपदश, सुजाक आदि रोगोंके विशिष्ट विष। इन दोनो प्रकारके विषकी जीर्णावस्थामें इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है।

गधक रसायन जिन रोगोमें उपयोगी होता है, उन रोगोमें मुख्य लक्षण दाह होना चाहिये। मूत्रमें जलन, हाथ-पैरोंमें दाह, उदरमें दाह, समस्त शरीरमें दाह मस्तिष्कके भीतर, कण्ठ, जिह्वा आदि पर दाह, शौच जलता हुआ होना, अधोवायु उष्ण निकलना, किंचित् चलने-फिरनेपर सर्वांगमें जलन-सी होजाना, हाथ-पैर किसी स्थानपर रखने पर दाह होना, हाथ-पैरपर शीतल जलकी पट्टी रखनेकी इच्छा होना आदि लक्षण उपस्थित होनेपर पित्तकी तीक्ष्णता समझनी चाहिये। ये लक्षण किसी विशिष्ट विष (सक्रामक कीटाणु) का देहमें सचय होनेपर ही होते हैं। उपदशकी जीर्णावस्थामें गन्धक रसायनके अतिरिक्त उपदश सूर्य, अष्टमूर्तिरसायन, मल्लसिंदूर, व्याधिहरण आदि औषधिया दीजाती हैं। परन्तु ये सब दाह अत्यधिक होनेपर उपयोगमें नही आती। उपदशसूर्यादि मल्लप्रधान औषधिया उपदशके कीटाणुओंके लिये मारक हैं, तो भी विविध दोषदूष्य सयोगोंके अनुरोधसे आयुर्वेदकी दृष्टिसे विविध चिकित्सा करनी पडती है। यह उपदशज विष अथवा पूयशुक्र (Gonorrhoea) जनित विष, क्षुद्र कुष्ठजनक सेन्द्रिय विष, या अन्य सेन्द्रिय विष इनमेंसे किसीके योगसे पित्तदोष बढकर पित्त रक्तस्थिति होनेपर दाह के उपरोक्त लक्षण होते हैं। इस दोषदूष्य सयोगमें यह विशेष उपयोगी है।

त्वचापर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिका या स्फोट, अतिशय शुष्क खुजली होना, शौचशुद्धि

न होना, देहपर अति खुजानेसे उस स्थानपर दाह होना, कभी रक्त निकल जाना आदि लक्षण होनेपर इसे मिश्रीके साथ देना चाहिये। शुष्क कण्डूके सदृश दीर्घकालस्थायी और त्रासदायक पामापर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

खुजलीके विशिष्ट प्रकारके कीटाणु (Parasites) होते है; जो अति जिद्दी और त्रासदायक होते हैं। गंधक रसायनके सेवनसे इन कीटाणुओंको पोषण मिलना बन्द होजाता है। इस हेतुसे रक्त और त्वचामें कीटाणुका बल न्यून होकर रोग शमन होने लगता है। इसके सेवनसे दो-तीन दिनके भीतर पामा आदिके फोड़े बड़े हो जाते हैं; जिससे किंचित विकार बढ़नेका भ्रम होता है; परन्तु यह सचमुचमें इसके लागू होनेके चिन्ह हैं। वर्षानुवर्षपर्यन्त त्रास भोगनेवाले रोगी गंधक रसायनके सेवनसे सुधर गये हैं। जितना विकार जीर्ण हो उतना ही यह अधिक कार्य करता है।

पामा सदृश अन्य क्षुद्र कुष्ठमें भी गंधक रसायनका उपयोग होता है। मात्रा १-२ रत्ती तक। जैसे-जैसे रोगबल कम हो; वैसे-वैसे मात्रा कम करनी चाहिये। उतने तक कि एक सप्ताहमें एक बार केवल एक ही रत्ती, त्वचा साफ होनेतक देते रहना चाहिये।

मस्तिष्क पर फोड़े होकर उनमेंसे दुर्गन्धयुक्त गांठ निकलना, सफेद या पीला पूय स्राव होना आदि विकारोंपर गंधक रसायनकी अपेक्षा रसपर्पटी अधिक हितकर है। परन्तु इन फोड़ोंमें ही शुष्कता, कण्डू, ऊपर सफेद त्वचा निकलते रहना, खुजानेपर अतिशय दाह होना आदि लक्षण हों, तो उसपर यह अप्रतिम औषध है। एवं मस्तिष्क पर इन्द्रलुप्त होनेपर मस्तिष्कमें जलन होती हो, तो इसका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

महाकुष्ठमें विशेषतः पित्तप्रधान महाकुष्ठोंमें इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है। परन्तु इनमें भी विशेष लक्षण दाह होना चाहिये। कुष्ठ शुष्क और न फूटा हुआ चाहिये। एवं इसका विष रक्त और त्वचा पर्यन्त प्रदेशित हो; देह पर उत्पन्न धब्बे या स्फोटोंमें लाली, खुजली और दाह विशेष हो; तथा सर्वत्र त्वचामें कुछ-कुछ जलन होती हो; तो यह देना चाहिये। इस कुष्ठपर अनुपान रूपसे विवेचनके प्रारम्भमें लिखा हुआ दार्व्यादि क्वाथ देनेसे कुष्ठ दूर होनेके उदाहरण मिले हैं। यह प्रयोग संतत तीन वर्ष पर्यन्त करना पड़ता है।

पामा दब जानपर अनेक बार विविध विकारोंकी उत्पत्ति होती है। कितनीही बार तो पामा और अन्य विकार घटमालके समान एक पीछे एक, क्रमशः होते और मिटते रहते है। अर्थात् पामा मिटने पर दूसरा रोग उत्पन्न होता है; और उसे शमन करने पर पामा तैयार हो जाता है। यह रोगानुबंधका क्रम दीर्घकालपर्यन्त सतत चलता रहता है। ऐसे विकारोंपर यह उत्तम कार्यकर औषध है। क्वचित् पामा बिल्कुल शमन होकर दूसरे रोगके निदानार्थकर होती है। फिरसे पामाकी उत्पत्ति नही होती। परन्तुनया उत्पन्न रोग दीर्घकालपर्यन्त त्रास देता रहता है। अतिसार, संग्रहणी, शीर्षशूल, मुखपाक,

उदरमें वायुकी गुड़गुड़ाहट और दाह आदि विकारोंमें से कोई उत्पन्न होनेपर यह लाभदायक है। मात्रा अति कम देनेसे अति उत्तम काम होता है।

उपदंशका जीर्ण विष, अन्य दूषी विष, पारद विष (दूषित रसकपूरका सेवन, हिंगुलका धूम्रपान या अन्य) और जंगम विषकी जीर्णावस्था आदि कारणोंसे घोर अतिसार या ग्रहणी रोग होना, साथमें रक्त और आम जाना, उदरमें कतरनेके सदृश या शूलके समान वेदना आदि लक्षण होनेपर यह अत्यन्त उपयुक्त है।

उपदंश या अन्य सेन्द्रिय विषकी जीर्णावस्थामें उत्पन्न प्लीहावृद्धि और अग्निमांद्य के साथमें यदि सर्वाङ्गमें दाह हो, तो गंधक रसायनका उपयोग करना चाहिये।

प्रमेह और मधुमेह, ये स्थूल और अति कृश मनुष्योंको भी होजाते हैं। स्थूल मनुष्यको गुग्गुल, शिलाजतु, त्रिफला आदि अधिक हितकारक हैं, तथा कृश मनुष्योंमें जिनको जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोग होजानेसे ये विकार हुए हों उनको गन्धक रसायन देना चाहिये।

उपदंश आदि रोगोंका विष जीर्ण होजाने पर वातवाहिनियों पर असर पहुँचाता है, तब वातवाहिनियोंकी विकृति होकर सर्वाङ्गवात, पक्षाघात अथवा अन्य शारीरिक व्यापारको नष्ट करनेवाला रोग उत्पन्न होता है। ऐसे विकारों पर यह उत्तम काम करता है। इस शारीरिक व्यापारकी न्यूनताका परिणाम अन्त्र पर होनेपर अन्त्र बिलकुल अशक्त होजाती है। फिर कोष्ठबद्धता, मलमें सुपारीके सदृश गाठें होजाना, गाठोंको बाहर निकालनेकी शक्ति अन्त्रमें न रहना, उदरमें अशक्ति और दाह आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं, उस पर पहिले स्नेहन करा फिर गंधक रसायनका उपयोग करना चाहिये।

उपदंशकी जीर्णावस्थामें साधोंमें शोथ, दांतोंमेंसे रक्तस्राव, सारे शरीरमें स्थान-स्थान पर गाठें होना, रक्तवाहिनियां मोटी-मोटी होजाना, खड़े रहनेकी शक्ति नष्ट होना, हाथ-पैरोंमें कम्प होना, कभी-कभी विकारकी तीव्रता बढ़नेसे जमीन पर पड़े रहना, छाती और सर्वाङ्गमें शूल चलना, हृदयमें खुजली चलना, सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिका निकलना आदि लक्षण होने पर गंधक रसायन उत्तम काम करता है।

पूयमेहकी जीर्णावस्थामें सर्वाङ्गमें दाह, अण्डकोष बढ़कर उसमें पीड़ा होना, उस पर थोड़ा शोथ आजाना, मूत्रोत्सर्ग करने पर मूत्रप्रसेक, नलिकामें दाह होना, मूत्राशयके मुख या मूत्रप्रसेक नलिका पर दबानेसे पीड़ा होना, उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा पूय निकलना आदि लक्षण होते हैं। इस पर गंधक रसायनने अनेक बार उत्तम लाभ पहुंचाया है। कभी पूयमेहके विषसे नेत्रोंमें शूल, समग्र शरीरमें शूल और दृष्टिनाश आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। उसे भी यह रसायन दूर करता है। ऐसी तीव्रावस्थामें गन्धक रसायनके साथ खसखसके फूल ६-६ माशे और प्रवालपिष्टी १-१ रत्ती मिलाकर दिनमें ३ समय देते रहने से लाभ त्वरित होता है। साथमें बाह्य उपचार भी करते रहना चाहिये।

कुछ जन, स्त्रियोंके पूयमेह और प्रदर, दोनोंको अज्ञानके हेतुसे एकही मान लेते

परन्तु पूयशुक्र मूत्रवाहिनी और मूत्राशयका रोग है; तथा प्रदर अपत्य मार्ग गर्भाशय और बीजाशयका रोग है। पूयशुक्रमें स्राव मूत्रमार्गसे और प्रदरमें स्राव अपत्यमार्गसे होता है पूयशुक्र रोग जीर्ण होनेपर उसके कीटाणु अपत्यमार्ग द्वारा गर्भाशयमें पहुंचकर उसे दूषित करते हैं। फिर गर्भाशयमेंसे भी पूयस्राव होने लगता है। परन्तु इस स्राव ओर प्रदरके स्रावमें अन्तर अत्यधिक है। यह स्राव पीला, दुगन्धयुक्त और दाहक होता है। साथमें जलन, सर्वांगमें दाह, शिथिलता, हाथ-पैर टूटना आदि पित्तप्रधान लक्षण होते हैं। इस प्रकारके विकारमें यह उत्तम उपयोगी है।

अर्शरोगके अनेक हेतु ह। यदि कोष्ठबद्धतासे उत्पन्न हो, तो अरोग्यवर्द्धिनी हितावह है। बड़ी अन्त्रके कुण्डलिका--भाग (Sigmoid) और उण्डुक (Caecum) में शिथिलता आनेसे त्रिवली पर दबाव आकर अर्श उत्पन्न हुए हों; उसकी किनारी सूज सूज गयी हो; गरम-गरम रक्त गिरता हो; कुण्डिलिका और उण्डुकमें दाह, व्याकुलता आदिलक्षण हों तो इसका उत्तम उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

अर्श रोग आनुवंशिक भी होता है। इस तरह अन्य रोगोंमें उपद्रवरूपसे होजाता है किसी-किसी रोगीमें अर्श, कास और श्वास; किसी-किसीमें अर्श और संग्रहणी; एवं कितने ही रोगियोंमें अर्श और अपस्मार; इस तरह विकारोंके द्वन्द्व अर्थात् एक शमन होने पर दूसरा घटमाल सदृश क्रमशः होता और मिटता रहता है। इन द्वन्द्वों पर गन्धक रसायन अच्छा लाभ पहुंचाता है।

नेत्रकी किनारी लाल-लाल होजाना, भीतरसे तीक्ष्ण बाष्प निकलना, नेत्रमें अतिशय खुजली चलना, दाह, फिर पूयाभिष्यंद भी होजाता है। यदि इनमें मूल कारण, पारदका अधिक सेवन अथवा सुजाक या उपदंश विष हो, तो इसका उपयोग करना चाहिये।

नासाव्रण शुष्क और दाहयुक्त, उपजिह्व-अधिजिह्व दाहयुक्त, छोटे बच्चोंको होने वाला तालुकण्टक, तालुके भीतर छिद्र होजाना, कण्ठमें पिटिका होजानसे शुष्क कास चलना और दाह होना आदि विकार होनेपर गन्धक रसायनका उत्तम उपयोग होता है।

जीर्ण नाड़ीव्रण, जीर्ण अस्थिव्रण, जीर्ण मांसगत व्रण, इन रोगोंमें पूय कम हो; परन्तु दाहयुक्त लसीका स्राव, व्रण स्थानपर भयंकर जलन, वह इतनी अधिक कि रात-दिन व्याकुलता बनी रहना, व्रणके प्रत्येक किनारेकी ओर मिर्च लगानेके सदृश जलन आदि लक्षण होने पर इससे अति सत्वर लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं।

दंतव्रण (Pyorrhoea) या दन्त पुट-पुटमें मसूढ़ेमें जलन, मसूढ़े पर जरा-सा धक्का लगने पर रक्तस्राव होना, दाहयुक्त पूय निकलना, फिर यही विकार जीर्ण होनेपर अग्निमांद्य, छर्दि, शूल, विप अन्त्रमें जानेपर ग्रहणी, अतिसार, यकृत आदि इन्द्रियोंके चिरकारी विकार होजाना, पश्चात् इनसे दूष्योदर होना, जिसमें घबराहट, मन्त्र बिलकुल

रास्नाके स्थानमें ब्राह्मीकी भावना लिखी है। शेष पाठ समान है। (यो० र०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती तक दिनमें २ बार मक्खन-मिश्री अथवा घृत और सफेद मिर्चके साथ देवें।

उपयोग—यह रस उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और ज्वर आदिको दूर करता है, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्रसन्न तथा सब धातुओंकी विकृतिको शमन करके प्रकृति साम्य बनाता है। जब वातप्रकोप अधिक हो; शरीर रूक्ष, कृश, शुष्क हो गया हो, त्वचाका रंग कुछ श्याम प्रतीत होता हो, भोजन जीर्ण होनेपर व्याधि बल बढता हो, उसपर और अपस्मारमें यह रसायन लाभदायक है। इन तीव्र लक्षणोंमें रास्नायुक्त भावना लाभदायक है, और जिसको ज्वर, दाह, निद्रानाश और बुद्धिविकृति विशेषाकमे हो, वातप्रकोप आदि चिन्ह सामान्य हो उसके लिये ब्राह्मीकी भावना हितकर है।

भूतोन्माद, जिसमें पहिलेके प्राप्त ज्ञानकी स्मृति आनेपर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देना या वार्तालाप करना, उन्मादके वेगका समय अनिश्चित रहना, और कफोन्माद जिसमें अरुचि, निस्तेजता, तन्द्रा, अतिनिद्रा, वमन, लालास्राव आदि लक्षण हो, इन दोनों प्रकारके उन्मादमें ब्राह्मीकी भावनावाला रसायन अच्छा काम देता है। एवं मानसिक चिन्ताजनित और पित्तप्रधान उन्माद जिसमें क्रोध, निद्रानाश, रक्तवर्ण, दौडा-दौडी या मारपीट करना आदि लक्षण हो, उसमें यह रसायन बहुत थोडी मात्रामें ब्राह्मी घृत या ताजे दूधके साथ देना चाहिये। अथवा ताम्यादि लोहका सेवन कराना चाहिये।

सूचना—भोजन पथ्य दे। सूर्यके ताप या अग्निका सेवन, धूम्रपान और मानसिक चिन्ताको छुडा दे, तथा मनको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करे।

(८१) भूतभैरवरस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध तपकिया हरताल, शुद्ध मैनसिल, लोह भस्म शुद्ध काला सुरमा, और ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध गन्धक १२ तोले लेवें पहिले पारद-गंधक मिलाकर कज्जली करें, फिर और ओषधियां मिला मनुष्यमूत्र, गोमूत्र या बकरेके मूत्रमें दही जैसा प्रवाही बनाकर कडाहीमें डाल मन्दाग्निपर मूत्रको सुखा कर ओषधिको पका लेवें। (यो० र०)

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक दिनमें २ बार गोघृतमें मिलाकर चटावें। आवश्यकता हो, तो थोडा शहद मिला देवें, और ऊपरमें त्रिकटु (सोंठ, मिर्च और पीपल का क्वाथ बना, हींग और घी मिलाकर (अथवा छोंककर) पिलावें। अथवा धतूरेके शुद्ध ५ बीजोंके साथ खिलाकर ऊपरमें आध छटाक घी पिलावें। धतूरेके बीजवाला अनुपान अन्न दोषवाले स्थूल रोगीके लिये विशेष हितकर है।

उपयोग—भूतभैरव रससे भूतोन्माद मानसिक चिन्ताजन्य उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया आदि वातवाहिनियोंसे सम्बन्धवाले सब रोग शांत होते हैं। इस

औषधिसे मलावरोध दूर होता है; निद्रा आने लगती है; तथा थोड़े ही दिनोंमें उन्माद दूर हो जाता है।

[८२] वातकुलान्तक रस।

विधि—कस्तूरी, शुद्ध मैनसिल, नागकेसर, बहेड़ा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, इलायची और लौंग २-२ तोले लें। पहिले पारद गन्धककी कज्जली करें फिर शेष औषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिला जल (ब्राह्मीके क्वाथ) में खरल करके २।-रत्तीकी गोलियां बनावें। (रसे० सा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ या ३ बार जटामांसीके क्वाथसे दें।

उपयोग—वातकुलान्तक रस महा घोर अपस्मार, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, आक्षेपयुक्त विविध वातरोग, निद्रानाश, प्रबल हिक्का, धनुर्वात, सूतिकारोगमें आक्षेप आदि सबको दूर करता है; और मनको प्रसन्न बनाता है। एवं सन्निपात, न्युमोनिया आदि रोगोंमें बुद्धिभ्रंश, मूर्च्छा, कम्प, आक्षेप, प्रलाप आदि उपद्रवोंको शमनया निद्रा लानेके लिये भी यह रस हितकर है।

हिस्टीरियामे निद्रानाशको दूर करनेके लिये यह महौषध है। मानसिक विकृति जन्य अपस्मारमें अभ्रक भस्म आध-आध रत्ती मिलाते रहनसे त्वरित लाभ होता है मानसिक व्याघातजन्य मूर्च्छामें भी अभ्रक भस्मके साथ देना विशेष हितकर माना ग है। एवं बालकोके दांत आनेके समय तीव्र आक्षेप (रक्ताधिक्य न हो, तो) कण्ठ, आमाशय, अन्त्र, मूत्रनलिका, पित्ताशय, पित्तनलिका, महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) आदिके आक्षेपका यह रस तत्काल शमन करता है। धनुर्वात बालकम्प, हृदय कम्प आदि वातवाहिनियोंकी विकृतिपर यह अति हितावह है।

[८३] निद्रोदय रस।

विधि—रससिंदूर, वंशलोचन और अफीम, तीनों ६-६ माशे, धायके फूल और आंवले २-२ तोले लेवे। सबको मिलाकर भांगके रसमेंकी तीन भावना देवें। फिर बीज निकाली हुई मुनक्का १२ तोले मिलाकर १-१ माशेकी गोलियां बांधे।

(र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली सायंकालको दूधके साथ दें।

उपयोग—जब किसी रोगमें निद्रा न आती हो; तब इस रसायनके सेवनसे शांत निद्रा आजाती है; शुक्रस्तम्भन होता है; तथा बल, वर्ण और तेज आदिकी वृद्धि होती है।

[८४] अमरसुन्दरी वटी।

विधि—शुद्धपारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, शुद्ध वच्छनाग, रेणुक बीज,

(ममालुके बीज) सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, पीपलामूल, चित्रकमूल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, वायविडंग, अकलकरा और नागरमोथा, सब १-१ तोला लें। पारद गन्धककी कज्जली करके लोहभस्म और वच्छनाग मिलावें। फिर शेष ओषधियोका बारीक चूर्ण और ४० तोले गुड मिलाकर चनेके बराबर गोलियाँ बना लेवें। गुडकी चाशनीमें चूर्ण मिला लेनेसे गोलियाँ अच्छी बनती हैं।

(नि० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह ओषधि अपस्मार, सन्निपात, श्वास, कास, अर्श और सब प्रकारके वातरोगको दूर करती है। स्त्री, बालक, वृद्ध आदिको अजीर्णज्वर, कफप्रधान सन्निपात आदिमें निर्भयतापूर्वक दी जाती है। इस ओषधिका अजमेर जिलेमें अधिक उपयोग होता है। हमने भी अनेक समय उपयोग करके लाभ उठाया है।

दूसरी विधि—इस रसका नाम अनेक ग्रंथकारोंने विजयभैरव रस रखा है, ऐसा रस योगसागर परसे जाना जाता है। निघण्टुरत्नाकरके पाठमें पीपलामूल और दालचीनी है। उस स्थानपर र० यो० सा० में अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म है। शेष पाठ समान है।

अनुपान—कफप्रधान रोगोंपर अदरखके रसके साथ और सन्निपातमें तुलसीके रस या अदरखके रसके साथ देवें।

उपयोग—कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिकारोग, ग्रहणी मन्दाग्नि, शूल, पाण्डु और हाथ-पैरोंके रोगोंपर यह गुटिका प्रशस्त है। अभ्रक भस्म और ताम्र भस्मके योगसे यह रस आशु फलप्रद बनता है।

अभ्रक और ताम्र मिलानेसे कफयुक्त कास, कफयुक्त श्वास, परिणामशूल, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, पाण्डु, विषमज्वर, नूतन अजीर्णज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्ण ज्वर सूतिका ज्वर, सूतिकाके वात और कफप्रकोप, दांत भिंचना, श्वास, कास, अतिसार, ज्वर, अरुचि, सन्निपात, प्रलाप आदि उपद्रव, कफप्रधान सन्निपात, कफगुल्म, वातगुल्म कफपित्तगुल्म, यकृद्विकारयुक्त संग्रहणी रोग, पाण्डु, हाथ-पैरकी नसें खिंचना, चक्कर वातवृद्धि, अर्श और अपस्मार आदि रोगोंको सत्वर दूर करता है।

[८५] महावातविध्वंसन रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नाग भस्म, वंग भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रकभस्म, पीपल, सोहागेका फूला, कालीमिर्च, सोंठ, ये ११ ओषधियाँ १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाग ४॥ तोले लेवें। पहले कज्जली करके भस्म मिलावें। पश्चात्, शेष ओषधियोंका कपडछान चूर्ण मिला त्रिकटुका क्वाथ, त्रिफलाका क्वाथ, चित्रकमूलका क्वाथ, भांगरेका स्वरस, कूठका क्वाथ, निर्गुण्डीके पत्तोंका स्वरस, आकका

दूध, आंवलेका स्वरस, अदरखका रस और नींबूका रस, सबकी ३-३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० चं०)

मात्रा--१ से २ गोली दिनमें ३ बार तीव्र वात रोगपर अदरखके रस, भांगरेके रस या शहदके साथ और आमवातपर अरंडीके तैल, घी या गुनगुने जलके साथ दें।

उपयोग--यह रस वातविकार, शूल, कफप्रकोपसे होनेवाले रोग, ग्रहणी, सन्निपात, मूढ़ता, अपस्मार, मन्दाग्नि, शरीर शीतल होना, पित्तोदर, प्लीहावृद्धि, कुष्ठ, अर्श, स्त्रियोंके गर्भाशयकी विकृतिसे होनेवाले रोग, सबको नष्ट करता है।

महावातविध्वंसन रस वातवृद्धि और वातवाहिनियोंके क्षोभको शमन करनेवाली उत्तम शामक ओषधि है। एवं इसमें शूलघ्न गुण भी विशेषांकमें है। यह रसायन वातवाहिनियोंके क्षोभमें उपयोगी होनेसे अपतानक, अपतन्त्रक, आक्षेपक और तीव्र वेगवाले आशुकारी पक्षाघातमें वातवृद्धिके लक्षण अधिक होनेपर इसके सेवनसे वातप्रकोपका समन होकर वातसाम्य प्रस्थापित होता है। किसी भी निमित्त कारणसे उत्पन्न किसी भी रोगमें वातवाहिनियों में क्षोभ होनेपर तीव्रावस्थामें वातविध्वंसन उपयोगमें आता है। केवल वातविकृति होनेपर यह दिया जाता है; परन्तु वातपित्तात्मक दुष्टि हो, तो सूतशेखर रस देना चाहिये। यह इन दोनोंमें अन्तर है।

वातवाहिनियोंके कार्यमें किसी कारणसे प्रतिबन्ध होनेपर वातक्षोभ होता है। फिर किसी भी अवयवमें शूल निकलता है, उसपर यह रस दिया जाता है। यद्यपि आमवात और सन्धिवातकी जीर्णावस्थामें तो योगराज गूगल और गोक्षुरादि गूगल हितकर हैं, तथापि जब बिच्छूके काटनेके समान अत्यन्त तीव्र वेदना शोथ-स्थानमें भयंकर वेदना, शूल, बेचैनी, प्रलाप, आदि लक्षण हों; तब आमशोषक और वेदनाशामक, ये दोनों कार्य इस महावातविध्वंसकके सेवनसे होते हैं। रोगीको थोड़ेही समयमें बहुत लाभ हो जाता है। आमवातकी तीव्रावस्थामें यह अप्रतिम ओषधि है।

मानसिक रोगोंमें भी वातक्षोभ होकर वेदना होती है। अपस्मार, उन्माद, मनोव्याघात आदि विकारोंमें होनेवाली वेदना स्वतः संवेदनाजन्य है। इन रोगोंपर विशेषतः द्राक्षारिष्ट या अभ्रक-प्रधान ओषधि दी जाती है। किन्तु जो शूल शारीरिक दोषोंसे विशेषतः वातदुष्टिसे उत्पन्न होता है; उसपर इस रसायनका कार्य होता है इससे वातप्रकोप दूर होकर वातसाम्य प्रस्थापित होता है। इसी हेतुसे किसी भी प्रकारके शूलमें इसका उत्तम उपयोग होता है। स्थानभेद और दूष्यभेदसे अनुपानभेद कर लेना चाहिये।

केवल वातक्षोभसे शिरदर्द होता हो, वह अति त्रासदायक होता है। उस समय व्याकुलता बनी रहती है; शरीरमें कील गाड़ने सदृश वेदना होती है; रोगी गला इधर-उधर फिराता रहता है; बिल्कुल चैन नही पड़ता। निरर्थक विचार आते रहना, विशेषतः मस्तिष्ककी दाहिनी ओरमें अतिशय व्यथा होना आदि लक्षण होते है। इस व्यथाके मारे

रोगी शिर पीटता है, और रो देता है। इस तरह कुछ समय तक दर्द होकर स्वमेव कमा होजाता है, अर्थात् वेदना सहन होमके उतनी होती है। फिर पहिलेके समान तीव्र वेदना होने लगती है। इस तरह वार-वार आक्षेप सदृश तीव्रवेग उत्पन होता रहता है। ऐसे शीर्षशूल पर वातविध्वसन रस लाभदायक है।

शीर्षशूलके समान कुक्षिशूल, उर शूल, पार्श्वशूल-इनमें भी अकस्मात् तीव्र वेदना होने लगती है। फिर कुछ समयके लिये वेदना कम होकर रोगीको अच्छा लगता है। पुन शीर्षशूल सदृश तीव्र असह्य वेदना होजाती है, छुरा मारनेके सदृश दर्द होता है जिससे रोगी रोने लगता है। फिर वेदना शमन होजाती है। इस प्रकारके रोगो पर वातविध्वसन कफघ्न अनुपानके साथ देना चाहिये।

हृदयके शूलमें उक्त प्रकारके आक्षेप सदृश वेदना होनेपर भी यही रसायन देना चाहिये। परन्तु जब तीव्र वेदना हृदयमेंसे निकल बायें हाथकी ओर फैलती हो, और साथमें घबराहट, प्रस्वेद आदि लक्षण प्रतीत होते है, तब यह नहीं दिया जाता। (स्वल्प मात्रामे सूतराज रस अथवा मुक्ता या प्रवालप्रधान शामक ओषधि देनी चाहिये)। यदि वातक्षोभसे छाती या पीठमें शूल निकलता है, तो महावातविध्वसनका उपयोग करना चाहिये। इस तरह फुफ्फुसप्रदाहके प्रारभमे छातीमें शूल चलता हो और वेदना वातक्षोभसे होती हो, वेदनाके साथ ज्वर और शोथ मर्यादामे हो, उसपर भी यह रस देना चाहिये।

उदरशूल केवल वातक्षोभसे होनेपर वातविध्वसन रस उपयोगी है। उदरमे पीडा, यह विकार अति चमत्कारी है, इसमे उदरके भीतर विविध अवयव, उनकी क्रिया और उनमें उत्पन्न विकार, तीनोका सम्बन्ध रहता है। इस हेतुसे इसके कारणके निर्णयमें अति श्रम होता है। उदरपरीक्षा करनेमें पचनेन्द्रियके विकार, मूत्रपिण्ड, मूत्रमार्ग या मूत्राशयका विकार, अन्त्रविकृति और उसमें शल्य तथा सर्व कोष्ठमें व्यापक वातवाहिनियोमे विकृति, सगर्भा स्त्री रोगिणी होनेपर गर्भाशय विकार, सबका विचार करना पडता है। इनमें वातक्षोभज शूल हो, तो इसका प्रयोग किया जाता है। यह शूल भी आक्षेप सदृश बडे जोरसे उत्पन्न होता है, और उतने ही वेगसे शमन होता है।

श्लैष्मिक और स्वसनक सन्निपातकी प्रथमावस्थामें यदि कफविकृति सामान्य और वातप्रकोप अधिक हो, तो वातविध्वसन रस लाभदायक है। परन्तु जब गलेमें कफकी घरघर आवाज होती रहती है, तब इस रसमे अधिक लाभ नही होता।

आन्त्रिक सन्निपात (मधुरा), ग्रथिक सन्निपात (प्लेग) और सधिके सन्निपातमें बेहोशी, कण्ठ चलाते रहना, प्रलाप, चित्तविभ्रम, नेत्र भरे हुए भासना, जिह्वा शुष्क, (क्वचित् जिह्वा काली होजाती है), जिह्वापर काटे, ऐसी वातक्षोभयुक्त अवस्थामें, वातविध्वसन रसके समान निश्चयपूर्वक लाभ करनेवाली दूसरी ओषधि नही है।

प्रसूता स्त्रियोंके ज्वर न होनेपर भी मक्कलशूल होता है, जिसमें भयकर शिरदर्द,

बस्ति, कोष्ठ और गर्भाशयमें अति तीव्र शूल या आक्षेपके समान वेदना, वेदना गर्भाशयमेंसे निकलकर बस्ति और उदरमे फैल जाना आदि लक्षण होते है। इसपर यह रसायन अति उत्तम लाभदायक है।

महावातविध्वंसनका कार्य वातवाहिनियां, वातवहमण्डल और वातस्थानोंपर क्षोभनाशक होता है। यह रस वातदोष तथा मास और अस्थि, इन दूष्योंपर लाभ पहुंचाता है। इसमें कज्जली रस कीटाणुनाशक और योगवाही है। नाग, वंग और लोह शक्तिवर्द्धक और बल्यत्वके हेतुसे वातशामक हैं। ताम्र आक्षेपनाशक और वातशामक है। अभ्रक भस्म वातवाहिनियोंपर बल्य और शामक असर पहुंचाती है। सोहागा कीटाणुनाशक और शामक है; तथा बच्छनाग अवसादक, क्षोभनाशक और शूलघ्न है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

गृध्रसी रोग (Sciati a) को डाक्टरीमें वातनाड़ीशूल (Newralgia) अन्तर्गत माना है। इस रोगके प्रारंभमें बेचैनी, पैरोमें झनझनाहट, नाड़ियोंका खिचाव आदि होता है। फिर नितम्ब प्रदेश, जंघाके सामने या पीछे या बाहर शूल उत्पन्न होता है। इस रोगमें यंत्रणा असह्यहोती है। निद्रा नही आती, इस स्थितिमें कितनेही सप्ताह या मास निकल जाते हैं। इस रोगमें किसीको ज्वर आजाता है, ज्वर १०२-१०३ या१०५ डिग्री तक बढ़ जाता है। फिर वमन घबराहट भयंकर सिरदर्द, छातीमें वेदना और बहोशी आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें महावातविध्वंसन रस ½ रत्ती, आमके मुरब्बा ३ माशे और भागरेका रस १ तोला मिलाकर उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा चाटण ३-४ वार देवें। इस तरह दो वार चाटण तैयार करके देते रहें। तथा विषगर्भ तैल, तार्पिन तैल और कपूर मिलाकर मालिश करते रहनेसे वेदना सत्वर शमन होजाती है।

[८६] वातगजांकुश रस।

विधि—रससिंदूर, लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाग, बड़ी हरड़, काकड़ासीगी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अरणीकी छाल और सोहागेके फूलेको समभाग लेवें। फिर यथाविधि मिला गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके पत्तोंके रसकी १-१ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावे।

(रसे० सा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार पीपलके चूर्णके साथ लेकर ऊपर मजीठ या हरड़का काढ़ा पीवें। अथवा अनुपान रूपसे रास्ना, गिलोय, देवदारु, और अरंडी की जड़का क्वाथ थोड़ा गूगल मिला गुनगुनाकर पीवें।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके वातरोगोंको दूर करता है। त्रिदोषज भयंकर वातश्लेष्मात्मक गृध्रसी रोगको ७ दिनमें ही दूर करता है। एवं क्रोष्टुशीर्षक

(वातरक्तात्मक गाँठेकी वादी), अपवाहुक (वातश्लेष्मात्मक बाहुकी वादी) ऊरुस्तम्भ (श्लेष्म, मेद और वातप्रकोपसे उत्पन्न आढ्यवात), हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ (वातकफात्मक कण्ठकी वादी), पक्षाघात (कफविकृति सहित उत्पन्न होनेवाला अर्धांगवात), इन सबके लिये यह अत्युत्तम ओषधि है।

वातरोगमें जब तक कफ या आमसह कफका सम्बन्ध हो, तब नूतन और जीर्णावस्था, दोनोंमें यह रसायन लाभ पहुंचाता है। केवल वातविकृति पर वातविध्वसन, वातपित्तात्मक विकृतिमें मृतशेखर, और आमका अधिक सम्बन्ध हो, तो योगराज गूगल उपयोगी है। किन्तु जब कफानुबन्ध हो, तब इस रसायनसे बहुत हित होता है।

इस रसका उपयोग अन्य वातरोगोंकी अपेक्षा गृध्रसीपर अधिक होता है। तीव्रशूल चलता हो और उदरमें भारीपन रहता हो, तो अनुपान रूपमें एरण्डका क्वाथ दिया जाता है।

(८७) समीरगजकेसरी।

विधि—शुद्ध हिंगुल, कालीमिर्च, शुद्ध अफीम और शुद्ध कुचिला, इन सबको समभाग मिला, अदरखके रसमें ६ घण्टे खरल करके मूंगके बराबर गोलियां बना लेवें। मूलग्रंथमें हिंगुल नहीं है किन्तु हमने गुणवृद्धिके कारण मिलाया है।
(र० च०)

मात्रा—२ से ४ गोली नागरबेलके पान या जलके साथ।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके जीर्ण वातविकार, आमवात, कटिशूल, जुकाम, अरुचि, उदरशूल, संग्रहणी आदि सब रोगोंको दूर करता है, तथा कुब्जता, लंगडापन, सब प्रकारके गृध्रसी रोग, अपवाहुक, शोथ, अपतानक, अपस्मार, विसूचिका (हैजा) आदिको नष्ट करता है। जब नाडियोंमें रहे हुए मल, कफ, मेद या आमका शोषण करना हो, वातवाहिनियोंके क्षोभको दूर करना हो, हृदयको उत्तेजना और बल देना हो, तथा मस्तिष्कको शांत बनाना हो, तब यह रस अमृत समान गुणदायी है, किन्तु तीव्र आक्षेप होता हो, तब यह न दें, महावातविध्वसन रस देना चाहिये।

जीर्ण जुकाम और नजलामें रस धातु अधिक दूषित होती है, जिससे पीला या सफेद गाढ़ा नासास्राव होता रहता है, तथा विष मस्तिष्कमें चढ़कर नेत्र और मगजको हानि पहुंचाता है। उसका इस रसके सेवनसे निग्रह होजाता है। नये तीव्र प्रकोपमें इसका सेवन नहीं कराना चाहिये, तीव्रता शमन होने पर यह दिया जाता है।

कीटाणुप्रकोप या अग्निमांद्य और रसशेषाजीर्णमें कच्चा रस शेष रहकर आम बनता है, तब थोड़ा-थोड़ा आमसहित दस्त होता है। फिर आम आहार-विहारके दोषसे कुपित होकर नाडियोंमें जाकर आमवातको उत्पन्न करता है, भयंकर वेदना होती है, और हृदयकी गति शिथिल होजाती है। उसकी जीर्णावस्थामें समीरगजकेसरी

देनेसे दोषका शोषण होकर नाड़ी शुद्ध होजाती है; तथा शूल, आमातिसार और आमवात भी नष्ट हो जाते हैं।

सूचना—यदि कोष्ठमें दूषित मल शेष हो, तो उदरशुद्धि करनेके पश्चात् इस औषधका उपयोग करना चाहिये।

गृध्रसी शूलकी उत्पत्ति नितम्बमें वातनाड़ीप्रदाह (Sciatica) होने पर होती है। नितम्ब प्रदेशसे जो गृध्रसी नाड़ी (Sciaticnerve) चरणकी ओर गति करती है, उसके भीतर वेदनाका अनुभव होता है। और पैरोंमें नाडी का खिचाव होता है। इस हेतुसे निद्रा भी नही आती। अनेक रोगियोंको निरुपाय होकर पैरके निम्न भागपर कपड़की पट्टी खींचकर बांधनी पड़ती है। इस वेदनाके दमनार्थ समीरगजकेसरीका सेवन कराया जाता है।

गृध्रसी शूलके समान इस रसका उपयोग पित्ताशयशूल, वृक्कशूल, उपान्त्रशूल और अन्त्रशूल आदिपर भी होता है। बहुधा इन शूलोंमें वमन होती रहती है। रोगी अति व्याकुल होजाता है। अफीम प्रधान औषधिका सेवन करानेपर वेदनाके शमनमें सहायता मिल जाती है।

हृदयविकारज श्वास (Cardiac Asthma) होनेपर रोगीको असह्य व्याकुलता होती है। बहुधा श्वसन मार्ग या फुफ्फुसके भीतर कफ प्रकोप नही होता। श्वास लेनेमें कष्ट होता है, निःश्वास पूरा नही होता और सुखपूर्वक स्थिर बैठभी नहीं सकता। ऐसी स्थितिमे समीरगजकेसरी २ घण्टेपर २-३ बार देनेसे श्वासावरोध दूर होजाता है।

चिन्ता, शोक, पश्चात्ताप आदिसे मानस आघात होने और उन्मादकी प्रथमावस्थामें अघटित विचारोंकी परम्परा दृष्टि समक्ष खड़ी होजाती है। कभी कभी रोगी शोकाकुल या क्रोधाविष्ट होकर मरनेका विचार करता रहता है। उसे बिलकुल निद्रा नही आती पचनक्रिया बिगड़ती है। मलावरोध या अतिसार होजाता है। हाथ पैरोंमे शक्ति नही रहती, उत्साह भंग होजाता है। उस अवस्थामें समीरगजकेसरीका सेवन सुबह शाम कराया जाता है। शामकोसाथमें या रात्रिको मृदुविरेचन वटी भी दी जाती है। परिणामें रोगीको निद्रा आजाती है; उत्तेजना दूर होती है और सुबह शौचशुद्धि होती है।

३०-३५ वर्षकी आयुवाली स्त्रीको किसी कारणसे निर्बलता न आनेपर भी मासिकधर्म असमयमे बन्द होजाता है। ऐसी स्थितिमें सन्तानोंकी चाहनावाली स्त्रियोंके मनपर आघात होता है। जिससे शोकोन्माद (Malencholia) की संप्राप्ति होती है। रुग्णा सब बात सुन लेती है; किन्तु उत्तर नहीं देती या अति देरसे थोड़ शब्दोंमे उत्तर देती है, मुखमण्डलपर उदासीनता बनी रहती है। इन लक्षणोके साथ यदि अति मलावरोध और अग्निमांद्य न हो गया तो समीरगजकेसरी देते रहनेसे देह सबल बनती है, मासिकधर्म साफ आने लगता है और उन्माद दूर होजाता है।

वक्तव्य—यदि कोई विशेष रोग हो तो उसे दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

[८८] वृहद् योगराज गुग्गुलु ।

विधि—सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रकमूल, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, जीरा, कलौंजी, रेणुक बीज, इन्द्रजो, पाठा, वायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच और मूर्वा, ये २० ओषधियां एक-एक तोला, त्रिफला ४० तोले शुद्ध गूगल ६० तोले तथा वंग भस्म, चांदी भस्म, नागभस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, मंडूर भस्म और रस-सिंदूर, प्रत्येक ४-४ तोले लें । पहिले गूगलको जलमें मिला गरम कर अवलेह जैसा बना लें । फिर काष्ठादि वस्तुओंका कपडछान चूर्ण डालें । बादमें भस्मोंको मिलावें । तत्पश्चात् पत्थरके खरलमें थोडा-थोडा घी मिलाकर कूटें कुटाई जितनी अधिक होगी गुण उतना ही बढेगा १००० तक चोट दें । मुलायम हो जाने पर मटरके समान गोलियां बांधें । (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दें ।

अनुपान—वातव्याधिमें रास्नादि क्वाथ या जल । तीव्र व्याधिमें योगराज गूगल १ से ३ माशेको १ छटांक अरंडीके तेलमें मिला गरमकर, आधसेर गरम दूध और १ छटांक मिश्री मिलाकर पिलावें । इस अनुपानसे भयंकर वातव्याधि भी एक सप्ताहमें नाश होती है ।

पित्तविकारमें काकोल्यादि गणके साथ (काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकडासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, पुण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि, मुनक्का, जीवन्ती और मुलहठी, इनमेंसे मिल सके उतनी ओषधियोंके क्वाथके साथ) देवें ।

कफविकारमें आरग्वधादि क्वाथ । प्रमेहमें दारुहल्दीका क्वाथ । पाण्डुमें गोमूत्र । मेदवृद्धिमें शहद । कुष्ठमें निम्ब पंचांगका क्वाथ या महामंजिष्ठादि अर्क । पीडितातवमें अशोकारिष्ट या महामंजिष्ठादि अर्क । पूयप्रधान रोगोंपर नीमकी अन्तरछाल और निर्गुण्डीमूल या पानका क्वाथ । वातरक्तमें गिलोयका क्वाथ । शूल और शोथ पर पीपलका क्वाथ । चूहेके विष पर पाठेका क्वाथ । नेत्रपीडा पर त्रिफलाका क्वाथ । समस्त उदररोगमें पुनर्नवादि क्वाथ । इसी तरह अन्य अनुपानों की योजना करें ।

उपयोग—यह रस सम्पूर्ण वातव्याधि, आमवात, वातरक्त, अर्श, कुष्ठ, ग्रहणी, प्रमेह, नाभिशूल, भगन्दर, उदावर्त्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, श्वास, कास, मंदाग्नि, अरुचि, उरोग्रह, पुरुषोंके धातुविकार और स्त्रियोंके गर्भाशयके सब दोषोंको दूर करता है । वन्ध्या स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति कराता है ।

महायोगराजमें पाचक, अग्निदीपक, वातनाशक, आमदोषघ्न, रसायन, योगवाही

और धातु परिपोषक क्रमको नियमित बनानेवाली ओषधियां होनेसे यह उत्कृष्ट प्रयोग बना है । यह रसायन आमवात, वातरक्त और आमयुक्त रोगोंमें विशेष उपयोगी है। यह आमदोषघ्न ओषधियोंमें उच्च कोटिकी ओषधि है । जिस-जिस वातविकारमें आमानुबन्ध है उस-उस वातरोगाओर उससेउत्पन्न अन्यारोगों पर यह बहुत अच्छा कार्य करती है। आमविकारकी दो उपपत्तिआयुर्वेदने दी है । पहिली पाचकाग्निके अबलत्वसे आद्य रस धातु अपक्व रहकर दुष्ट होजाती है । दूसरी अत्यन्त दुष्ट दोषोंके परस्पर मूर्च्छन होने पर भीतरमें जो विष तैयार होता है, उसे भी आम संज्ञा दी है। जिन-जिन रोगोंमें ये आम विष कारणभूत है; उन-उन रोगोंको आम रोग—आमप्रधान रोग कहते हैं। इस तरह आमकी व्याख्या व्यापक की है । इस प्रकारके सामरोगोंमें यह उत्तम कार्य करता है । इसके सेवनसे पाक अग्नि सम्यक् कार्य करती है; जिससे संचित आमका पचन और नया आम बननेमें प्रतिबन्ध होता है । इस रीतिसे रोगके मूलको ही नष्ट करता है; और दोषदुष्टि वातादि धातुविकृति को भी दूर करता है ।

मूल संस्कृत ग्रंथमें इस रसका उपयोग सब प्रकारके वातव्याधि पर लिखा है । किन्तु विशेषतः उपयोग जीर्ण आमवातमें ही अच्छा होता है । नूतन आमवातमें भी उपयोगी तो होता है; परन्तु तीक्ष्ण अवस्था निकल जानेके पश्चात् बार-बार संधियोंमें सूजन आना, या रोग बढ़ कर स्नायु मोटे ओर कमजोर होजाना, नाड़ियां आमयुक्त मोटी होजाना, सारे शरीरमें शूल निकलना इत्यादि लक्षण होने पर यह रस उत्तम कार्य करता है ।

जीर्ण वातव्याधि, जिसमें रसादि धातुकी विकृतिसे उत्पन्न हुए आम सहित वात-विकार हों, उसमें इससे अच्छा लाभ होता है। इसका कार्य जहां दोष धातुओंके भीतर लय भावको प्राप्त हुआ हो; ऐसे आमवात, पक्षाघात, बार-बार आयाम, आक्षेपक, खल्ली, गृध्रसी, इन सबकी जीर्णावस्थामें ही विशेष कार्य होता है ।

वातार्शमे शुष्क और रूक्ष मस्से हों, तो इस रसके सेवनसे पीड़ाका शमन होता है । सब प्रकारके वातज प्रमेह, जिनमे वातकार्यमें अनियमितता कारण हो; और आमज प्रमेह, जो अपचनके जीर्णविकारसे आमसंचय होकर होता है; इन दोनों प्रकारके विविध प्रमेहोंके लिए यह गूगल अति हितकर है ।

आमज प्रमेहोंका उल्लेख यद्यपि प्राचीन ग्रंथोमें नही है; तथापि अपचनके जीर्ण विकारके पश्चात् आमसंचय होकर प्रमेह हो जानेके अनेक उदाहरण मिले है। अधिक शक्कर, अधिक द्विदल धान्य या मैदेका पदार्थ खानवालोको इस प्रकारका प्रमेह होता है । अन्नरसमे जो एक प्रकारकी शक्कर है; उसका परिणाम बढ़ जाने पर उसका संशोषणकर रूपान्तरित करनेका कार्य यकृत्का है। परन्तु यकृत्में कामविकारसे विकृति होजाने या स्रोतोरोध होजानेसे रूपान्तर नहीं करा सकता। फिर वह अभिसरणमें मिश्र होनसे प्रमेहकी उत्पत्ति होजाती है । इस पर यह रस अच्छा कार्य करता ह ।

कुष्ठरोगमें आमानुबन्ध होनेपर यह रस लाभदायक है । जीर्ण क्षुद्र कुष्ठ, पामा या कच्छू सदृश क्षुद्र कुष्ठ दबाकर वातविकार उत्पन्न होनेपर महायोगराज गूगल अति उपयोगी है ।

आमोत्पत्ति, आमसंचय और तज्जन्य वातप्रकोप होकर रक्तमें विकृति होना, यह वातरक्त हेतु है । वातरक्तकी उत्पत्ति,बिना आमसंचय नहीं हो सकती । विशेषत इस रोगके प्रारंभमें उदराध्मान,अपचन,आमाशय और अन्त्रमें शूल या वेदना,बारबार मलावरोध फिर अतिसार,मूत्रका परिमाण स्वल्प होजाना,मूत्रमें प्रचुर मात्रामें कठिन पदार्थ जाना,शारीरिक और मानसिक बलका ह्रास, स्वभावमें उग्रता आजाना आदि लक्षण होते हैं । सामान्यत पंचेन्द्रियको आमजननकी जीर्ण व्याधि लगी रहती है। इस हेतुसे वातरक्तका रोगी बहुधा सदाके लिये पीडित रहता है । वातरक्त और , आमवात, दोनों भाई हैं । वातरक्तका प्रारंभ हाथ या पैरके अंगूठेमे होना है । पहिले अंगूठे सूजते हैं । फिर शूल के सदृश वेदना होती है , और सूजन आने लगती है । सब अंगुलियां मोटी-मोटी होजाती हैं,एवं क्षुधामांद्य,अति पिपासा, मूत्र लाल, स्वच्छ और थोडे परिमाणमें होना, शूल, स्फुरण, कम्प, रूक्षता, काले धब्बे,शोथ,न्यूनाधिक शोथ, वातवाहिनियां और सन्धिस्थानोंका अकडना और खिंचना,अत्यन्त पीडा,ठण्डी और शीतस्पर्श सहन न होना इत्यादि लक्षण होते हैं । इस रोगको महायोगराज गूगल नष्ट करता है । वातरक्तमे उत्पन्न विविध रोगसंकर—शीर्षशूल, मन्यास्तंभ, हनुस्तम्भ, इनको भी दूर करता है । किन्तु वातरक्तमें जब निद्रा न आना,मांसकोथ (मांस सडना) आदि उपद्रव होने लगते हैं, तब इस रसायनका उपयोग नहीं होता । यद्यपि वातरक्तमें अमृता गुगल और कैशोरगूगलका उपयोग भी होता है, तथापि नूतन विकार और तीव्रावस्थामें ये उपयोगी हैं और महायोगराजगूगल जीर्णावस्थामें विशेष उपयोगी है, यह इसके गुणोंमें अन्तर है ।

कोष्ठस्थ आमसंचयसे नाभिप्रदेशमें बार-बार शूल उत्पन्न होना, मलावरोध, मलसंचय, अरुचि, मल आममिश्रित होना आदि लक्षण होने पर यह रसायन उत्तम लाभदायक है । भगन्दर जो एकमार्गी हो, अधिक गहरा न हो, विशेषत वातज अथवा आमवातज हो, उस पर गूगलवाली औषध लाभदायक है । नूतन विकारमें सप्तविंशत को गूगल और जीर्णव्याधिमें महायोगराज लाभदायक है। भगन्दरमें जो शतपोनक और शम्बूकावर्त हैं, वे कठिन हैं । ये बहुधा शस्त्रसाध्य हैं ।

उदावर्त रोगमें यदि स्थूलान्त्रमें मलावरोध या अपक्व अन्न शेषसे अवरोध होकर पेटमें अफारा, अपानवायु और शौच-प्रवृत्तिका निरोध, हृदयके समीपमें शूल,मुहमें पानी आना, बेचैनी, मूत्रप्रवृत्ति न्यून, बस्ति मूत्रसे भर जाना, परन्तु अवरोधके हेतुसे मूत्रोत्सर्ग न होना, श्वास, कास, दाह, प्यास, वमन, ज्वर, हिक्का, तन्द्रा, शिरदर्द, भ्रम,कर्णनाद सर्वांगमें पीडा इत्यादि लक्षण होने पर पहिले तीक्ष्ण स्नेह बस्तिसे मलशुद्धि करके महा-

योगराज् गूगल दिया जाय; अथवा एरण्ड तैलमें मिलाकर दिया जाय तो उत्तम कार्य करता है।

वातगुल्ममें विशेषतः आमानुबंध हो, कण्ठ, और मुंहमें शुष्कता, वार-बार शीत ज्वर आता हो, अधोवायुकी मन्द प्रवृत्ति, मलसंचय, अन्नपचन होजाने पर गुल्म के स्थान पर पीड़ा, चल गुल्म, घड़ीमें छोटा घड़ीमें बड़ा होना, रूक्ष, चरपरे और कड़वे पदार्थ सहन न होना, उदर आदिमें वेदना होना, मुंह और कण्ठमें शुष्कता, त्वचाका वर्ण बदल जाना, शीतसह ज्वर आना इत्यादि स्थितिमें महायोगराज गूगल घीके साथ देना चाहिये। इस रोगमें रूक्ष, चरपरे और कड़वे पदार्थ सहन नहीं होते; अतः इसका त्याग करना चाहिये।

मन्दाग्नि और बद्धकोष्ठसे सेन्द्रिय विष संचित होकर अनेक,व्याधियां उत्पन्न होती हैं।उदरमें विशेषतः बृहदन्त्रमें मलसंगृहीत होता है। सेन्द्रिय विष उत्पन्न होकर शरीरमें शोषित होने लगता है। फिर विविध व्याधियां निर्माण होती हैं। इन सबमें कारण कोष्ठस्थ आम विष या घोर अन्न-विष है। इनका हेतु अग्निमांद्य है। इस प्रकारके अग्नि-मांद्य पर यह रस भांगरेके रस (६ माशे) के साथ देनेसे अति उत्तम कार्य करताहै।

आमवातसे हृद्ग्रह होता है; तब हृदय जकड़ा-सा भासता है; हृदयको किसीने दृढ़ बांध दिया हो, ऐसा भास होता है। इस विकार पर यह रस उपयुक्त है।

पक्षाघात आदि जीर्ण विविध वातरोगों पर यह रस,प्राचीन वृद्ध परम्परानुसार, रास्नादि कषायके साथ दिया जाता है। वातविकारमें अमानुबन्ध होनेपर रास्नादि, कषाय देने पर निसन्देह उत्तम कार्य होता है।

आमवातज और वातरक्त शीर्षशूल; दन्तशूल, कर्णशूल, पृष्ठ शूल, सन्धि शूल, अस्थिशूल, मूत्रमार्गमे शूल तथा आमवातज हृदयरोग, और उससे उत्पन्न श्वास,कास, सब पर यह लाभदायक है।

स्त्रियोंके आर्त्तवशूल, अनार्त्तव, साथमें पाण्डुता, कथन मात्रका मासिकधर्म भयंकर त्रासके साथ आना, कमर, पीठ,पेटमें भयंकर वेदना,सबपर महायोगराज लाभ-दायक है। वातकी अधिकताके कारण गर्भधारणम प्रतिबन्ध होता हो, तो इसके साथ वंगभस्म देना चाहिये।-प्रसवकालमें अकस्मात् वेदना बन्द होकर गर्भके बाहर निकलनेकी क्रिया रुक जानेपर यह गूगल काम देता है। केवल यह कार्य अप्रत्यक्ष है, अर्थात् किस नियमानुसार होता है. यह निर्णय नही हो सका।

आत्रिक सन्निपातमें यदि सर्वांगमे जड़पना, हाथ-पैरोंकी संधियोंमें शोथ समान भास होना और जड़ता,जीभ मोटी और जड़,कंठ जड़ नेत्रपर परदा-सा आजाना और जड़ होजाना,भांफणी खोलने और बन्द करनेमें परिश्रम, छाती भर जाना, नाड़ीका वेग मन्द, मन्द-मन्द कोष्ठशूल, उदरमें जड़ताके समान लगना, उन्मादके सदृश थोड़ा प्रलाप, क्वचित् बेहोशी, मनःस्थिति मन्द होना इत्यादि लक्षणोंकी उत्पत्ति होजाय'

तो महायोगराज उत्तम कार्य करता है। (यह आमविष और वातप्रकोप को नष्टकर मधुराको दूर करता है। इस रोगपर अनुपान रूपसे भागरेका रस देना चाहिये।)

जहरी चूहेके काटनेसे उसके विषका असर शनैः शनैः शरीरपर होता है। बहुधा काटनेके पश्चात् १५-१६ वें दिन दशस्थानपर सूजन आती है। शरीरपर लाल-काले धब्बे,ज्वर,तृषा,उबाक इत्यादि लक्षण होते हैं। उसमें इसे पाठे अथवा वंध्या कर्कोटकी (ककोडा) के मूलके क्वाथके साथ देना चाहिये। ततैया या मधुमक्षिकाके विषपर महायोगराज लगानेमें और खिलानेमें उपयुक्त है।

यह रसायन विशेषतः वातदोष, रस और आम इन दूष्य, तथा यकृत्, प्लीहा, अन्त्र, हृदय और संधि स्थानो पर कार्य करता है। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

मस्तिष्कमें सेन्द्रियविष पहुंच जानेपर भ्रम (चक्कर) रोग उत्पन्न होता है। चक्कर आनेपर नेत्रके समक्ष अंधकार होजाता है। रोगी खडा रहे तो गिरजाता है। कितनेही रोगियोंको यह चक्कर ५-१० मिनट तक रह जाता है। उस रोगपर महायोग-राज गूगल प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर शहदसे दें और ऊपर धमासेका क्वाथ पिलाते रहनेसे लाभ हो जाता है।

[८६] एकांगवीर।

विधि—रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, कांतलोह भस्म, वंग भस्म, नाग भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल इन ११ ओषधियोंको सम-भाग मिला त्रिफला, त्रिकटु, निर्गुण्डी, अदरख, चित्रकमूल, सुहिंजनेकी छाल, कूट, आंवला, कुचिला, आकका मूल, हारसिंगार और अदरख, इन १२ द्रव्योंके क्वाथ या रसकी पृथक-पृथक ३-३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (नि० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार रास्नादि अर्कके साथ दें।

उपयोग—यह रस पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात अर्धांगवात, गृध्रसी विश्वाची, अपबाहुक आदि सब प्रकारके वातरोगोंको निःसंदेह दूर करता है। यह रसा-यन अत्यन्त तीक्ष्ण होनेसे वातप्रधान और वातकफप्रधान विकृतिमें हितकर है। इसमें बृंहण, वातप्रशमन, जीवनीय, रसायन, विषघ्न और कीटाणुनाशक गुण अवस्थित हैं। बार-बार आक्षेप आता हो, ऐसे अर्धांगवात, पक्षाघात, गृध्रसी आदि रोगोंको यह दूर करता है।

पक्षाघातका अर्थ साधारणतः ऐच्छिक मांसपेशियोंकी क्रिया अथवा क्षमताका लोप होना है। इसमें सर्वांगिक या स्थानिक चेतनाशक्तिका लोप या ह्रास होजाता है। संचालन और चेतना, उभयका लोप होनेपर पूर्ण पक्षाघात, और इन दोनोंमेंसे एकका लोप होनेपर आंशिक या अपूर्ण पक्षाघात कहलाता है। इस पक्षाघातके अनेक विभागोंमें जो अर्धांगवात (Hemiplegia) है, वह त्रासदायक, दीर्घ कालस्थायी और

संतापकारक है। विशेषतः उपदंश आदि रोगोंसे जिनकी रक्तवाहिनियां और वातवाहिनियां दूषित होजाती है, उनको होता है। क्वचित् विषप्रकोप और शैत आदि कारणोंसे भी होजाता है। निर्बल हृदयवाले असहनशील मनुष्यको मनके विरुद्ध कुछ वर्त्ताव या वर्त्तालाप होनेपर अकस्मात् संताप होकर तत्काल सारे शरीरमें विकृति होजाती है। फिर दूषित रक्तवाहिनियोंमें रक्तसंचय अधिक होता है परिणाममें मस्तिष्क और वातवहा केन्द्रमें रक्तभारकी वृद्धि होकर पक्षावात होजाता है; रक्तवाहिनियां फूटकर रक्तस्राव होजाता है। यदि रुधिरसंग्रह ज्ञान-केन्द्रके समीपमें होता है तो रोगीका ज्ञान सर्वांश या न्यूनांशमें नष्ट होजाता है। इस विकारम शरीरकी संचालन क्रिया पर अधिकार नहीं रहता। स्नायुओंके बलसे शारीरिक संचालन आदि व्यापार होता रहता है। परन्तु स्नायुओं पर अधिकार कम हो जानसे व्यापार शिथिल हो जाता है और रोगी विगलित-सा हो जाता है। चलने-फिरने में प्रतिबन्ध होता है; इसी हेतुसे आयुर्वेदने इस रोगकी गणना वातविकृतिमें की है।

इस व्याधिमें सामान्यतः अवस्थाके भेदसे दो प्रकारकी चिकित्सा की जाती है। तीव्र अवस्थामें रक्तवाहिनी फूटकर स्राव हो जाता है। अतः इसका प्रसादन और फूटी हुई रक्तवाहिनीके घटक नये तैयार हो जांय; ऐसी योजना करना, यह दो कार्य करने चाहिये। जीर्णावस्थामें रक्तवाहिनी फूलने या फूटनेकी आदतको नष्ट करनी चाहिये। आयुर्वेदमें रक्तप्रसादक ओषधियोंमें ताप्यादि लोह, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शिलाजतु और गुग्गुल मुख्य है। इनके योगसे रक्तवाहिनियोंकी टूटी हुई संधि मिल जाती है। फिर कुछ कालतक अच्छा रहता है। परन्तु फिर पहिलेके समान कारण मिलने पर पक्षावात का झटका आता है। इस झटकेको रोकने. आक्षेपक विषको नष्ट करने और रक्तवाहिनी की फूटनेकी आदतको दूर करनके लिये कोई ओषधि देनी चाहिये। आयुर्वेदकी उपपत्ति अनुसार रक्तका वहन-कार्य वायुके प्रेरकत्वके हेतुसे होता है। वायुका उद्रेक अधिक होनेपर रक्तका उद्वहन कार्य भी अधिक वेग से होता है। इस उद्वहन कार्यको मर्यादित करनेसे रक्तवाहिनी फूटनेकी आदत दूर होती है। यह कार्य एकांगवीरसे उत्तम होता है। अर्धांग वायुसे समान पक्षाघात कभी-कभी एक हाथ, एक पैर, कमरके नीचेकाभाग, मुखकी एक ओर या अन्य किसी स्थानमें होता है। इन सबपर भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ इसका उपयोग होता है।

देहके किसी भी भागमें अभिघातज या अन्य व्रण होनेके पश्चात् व्रण चिकित्सा के अनुरोधसे उचित चिकित्सा न होने पर उसमें धनुर्वात उत्पादक विशिष्ट कीटाणुओंका प्रवेश हो जाता है; जो वातप्रकोपका निमित्त कारण बनता है। फिर स्नायु और रक्त वाहिनियोंमें प्रवेशित वायु सारे शरीरको धनुषके सदृश मोड़ देती है; उसे धनुर्वात कहते हैं। इसको ही अपतानक, आयाम आदि संज्ञा, लक्षणानुरोधसे, दी जाती है। इस रोगकी प्रथमावस्थामें बड़े-बड़े आक्षेप आकर सारा शरीर मुड़ जाता है, दांत

खिंचते हैं। शुद्धि होनेपर कण्ठसे निगलने की शक्ति नहीं रहती। इस अवस्थामें कालकूट रस अच्छा उपयोगी है। परन्तु तीव्रावस्था शमन हो जानेपर सर्वांगमें पंगुता आई हो, और स्नायुओंकी शक्ति क्षीण हो गई हो, तो एकांगवीरका उपयोग होता है।

गृध्रसी रोगमें नितम्बसे लेकर कमर, जंघा, टखने और पैर तक मार-मार शूल निकलना, सारा पैर तंग हो जाना, पैर पंगुसा हो जाना, क्वचित् अति तीव्र वेदना होना पैर जकड़ जाना और थोड़ा समय खड़े रहनेपर उसमें स्पन्दन होना आदि लक्षण होते हैं। इस रोगमें वातप्रधान लक्षण अधिक होने पर एकांगवीर रस देना चाहिये।

हाथकी अंगुलियोंमें वेदना बढ़ते-बढ़ते हाथ बिल्कुल भारी हो जाना अंगुलियोंसे कुछ काम न होना, थोड़ा-सा कुछ उठाया या पकड़ा कि अंगुलियोंमें झनझनाहट होकर वस्तु गिर जाना वस्तु कब गिरी यह भी बोध न रहना आदि अवस्था होने पर भी एकांगवीर का अच्छा उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

सूचना—वात रोगमें जब पित्तानुबंध हो तब इस ओषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये, अथवा सम्हालपूर्वक प्रवालपिष्टी या शिलाजीत आदि ओषधिके साथ सेवन कराना चाहिये।

[६०] मल्लसिन्दूर वटी।

विधि—पहिली विधिवाला मल्लसिंदूर, सोंठ, मिर्च, पीपलामूल, अकलकरा, जायफल, इलायची, लौंग, और केशर, प्रत्येक १-१ तोला लेवें। काष्ठादिक ओषधियों को कूट, बारीक कपड़छान चूर्ण करें। फिर मल्लसिंदूरको खरलकर थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डाल धीरे-धीरे सब चूर्ण मिला देवें। पश्चात् नागरबेलके १०० पानोंका रस मिला खरल करके मोठके दानेके समान गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार नागरबेलके पान, अदरखके रस, भांगरेके रस और कालीमिर्च या अन्य अनुपानके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे सब प्रकारके वातरोग, उन्माद, कफदोष, श्वास, त्रिदोष आदि दूर होते हैं। जिनके शरीरमें कफ या मेद अधिक हो, थोड़ा चलनेसे ही श्वास भर जाता हो; पचनशक्ति मन्द हो, उदरमें वायुका गुड़गुड़ाहट होता रहता हो, हृदयकी गति और नाड़ी अति मन्द हो, निद्रा और आलस्य आते हो, स्मरणशक्ति बहुत निर्बल होगई हो, उनके लिये यह अत्यन्त लाभदायक है।

जीर्ण विषमज्वर, जो सूक्ष्मांशमें रहता हो, और किसी-किसी समय बढ़ जाता हो, वह इस रसायनसे दूर हो जाता है।

उन्माद, अपस्मार, और हिस्टीरियाकी जीर्णावस्थामें यह मल्लसिंदूर वटी, ब्राह्मी और जटामांसीके क्वाथके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुंचता है।

यदि मल्लसिंदूर नं० २ मिलाकर इस रसको तैयार किया हो, तो उपदंशज उपद्रव

एवं सन्निपातके कफप्रकोप और बेहोशीमें भी अच्छा काम देता है; तथा वातप्रकोप, पक्षाघात कम्पवात, अर्धांगवात, सर्वांगवात, वातवाहिनियोंकी निर्बलता आदिमें भी हितकर है।

सूचना—यदि मलावरोध रहता हो तो, सुबह १ दस्त साफ लानेवाला मृदु विरेचन रात्रिको आवश्यकतापर देते रहना चाहिये। ओषधिके साथमें रोगानुकूल पथ्यका पालन करें। अपथ्य सेवन करनेपर यद्यपि ओषधिसे हानि नहीं होती, तथापि लाभ पूरा नहीं मिलता या अधिक समय लगता है।

[६१] लाङ्गल्यादि लोह।

विधि—कलिहारीका शुद्ध मूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, मुनक्का और शुद्ध गूगल, सब समभाग मिला बारीक चूर्णकर सबके समान लोहभस्म मिला ले। पश्चात् बिजौरेके रस और त्रिफलेके क्वाथकी ३-३ भावना देकर मटरके बराबर गोलियां बनावें। (रसे० सा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली शहदके साथ दिनमें २ बार देवें और ऊपर लघु मंजिष्ठादि क्वाथ पिलावें।

उपयोग—लांगुल्यादि लोह, पैरोंके तलोंमें घाव होकर पीप निकलना, सारे शरीरमें स्थान-स्थानपर त्वचा फूट-फूटकर रक्त और पीप निकलना, तथा घुटनों तक वा सर्वांगमें फूटे हुए साध्य और असाध्य सब प्रकारके वातरक्तको नष्ट करता है।

[६२] आमवातप्रमथिनी वटी।

विधि—कलमीशोरा, आककी जड़की छाल, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, इन ५ ओषधियोंको समभाग मिला ३ दिन अमलतासके क्वाथमें खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह ६ माशेसे १ तोले तक निसोतके क्वाथके साथ तथा शामको अदरखके रस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह ओषधि आमवात, आमवातज रोग, कफवृद्धि, कफप्रकोपसे होनेवाले रोग, सबको शमन करता है। तीव्र आमवातमें जब बिच्छू काटनेके समान तीव्र दर्द होता हो तब, एवं जीर्ण अवस्थामें व्यथा उत्पन्न होनेपर यह व्यवहृत होता है।

[६३] शूलवज्रिणी वटी

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म २-२ तोले; ताम्र भस्म सोहागेका फूला, भुनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गठी, कचूर दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा और धनिया, सब एक-एक तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। पहिले कज्जली और भस्म मिला

कर फिर उसके साथ चूर्ण मिलावें । पश्चात् बकरीके दूध में १२ घण्टे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलिया बना लें । (र० च०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें ३ बार बकरीके दूध या जलसे दें ।

उपयोग—शूलवज्रिणी आठों प्रकारके शूल, गुल्म, यकृत्-वृद्धि, नया और पुराना आमवात, यकृत् या प्लीहावृद्धिसह पाण्डु रोग, कामला, कण्ठावरोध, दूषितजल भरनेसे होनेवाली वृषण-वृद्धि, श्लीपद रोग, कफप्रधान कास, श्वास, व्रण,रग, रक्त और मांसस्थित दोषयुक्त नये कुष्ठ,छोटे-छोटे उदरकृमि, त्वचामें उत्पन्न होनेवाला कृमि, हिचकी, अरुचि, अर्श, संग्रहणी, सब प्रकारके अतिसार, विसूचिका, खुजली, मन्दाग्नि, तृषारोग और पीनसको दूर करती हैं । रोग चाहे एकदोषज, द्विदोषज या त्रिदोषज हो, सबका नाश करती है । नित्य सेवन करनेसे बुद्धि, कान्ति और आयुकी वृद्धि होती है ।

यह वटी बडी दिव्य है । वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और कफपित्तजनित पक्ति-शूल (परिणामशूल), आमशूल, पार्श्वशूल, हृदयशूल, शिर शूल और अन्य रोगोंके उपद्रवरूप शूलोंको शमन करती है, तथा पाचनक्रियाको नियमित बनाती है । यह वातको शमन करती है तथा आम और कफका शोषण करती है, एव पित्तशुद्धि करके रक्तकणों को बढाती है। अधोवायु और मल-मूत्रावरोधको दूर करती है और अन्त्रक्रियाको नियमित् बनाती है । इस रीतिसे मूल त्रिधातुओंको नियमित बनाकर रोगोत्पादक दोषको नष्ट करती है, जिससे अग्नि प्रदीप्त होकर शास्त्रकथित सब रोग नष्ट होते हैं, तथा शरीर नीरोग, बलवान और तेजस्वी बन जाता है ।

(६४) हिंगुल रसायन ।

प्रथम विधि—हिंगुलकी ५ तोलेकी डलीको इन्द्रायण फलके भीतर रख ऊपर कपडमिट्टी करें । मिट्टीका लेप १-१ अगुल मोटा करें। फिर अग्निमें डालकर पकावें । मिट्टी अच्छी तरह पक जानेपर गोलेको निकाल लेवें स्वांग शीतल होनेपर हिंगुलको सम्हालपूर्वक निकाल इन्द्रायणके दूसरे फलमें बन्दकर पुन पकावें । इस तरह २१ बार पकानेसे उत्तम प्रकारका हिंगुल रसायन बन जाता है ।

मात्रा—२ से ४ चावल दिनमें २-३ बार नागरवेलके पानमें दें ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे प्रसूताके समस्त रोग दूर होते हैं । गर्भाशयमें दूषित रक्त रह जाने या कीटाणु प्रवेश होजाने पर ज्वर, मक्कलशूल, धनुर्वात, संधिवात, अर्ति, शिरदर्द, अरुचि, अग्निमांद्य, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर इसका सेवन करानेसे गर्भाशयमें उत्तेजना आकर दूषित रक्त बाहर निकल जाता है, कीटाणु नष्ट होते हैं । जिससे ज्वर आदि लक्षण शमन हो जाते हैं, तथा अग्नि, देहबल, कान्ति और उत्साह की वृद्धि होती है ।

कितने चिकित्सक इन्द्रायणके स्थान पर बैंगन लेते हैं। बैंगनवाला रसायन अग्निमांद्य, अतिसार, ग्रहणी, अर्श और वातप्रकोपको दूर करता है, तथा इन्द्रायण वालेमें अन्त्रशोधन गुण विशेष होता है ।

दूसरी विधि--लौंगके ४० तोले चूर्णको प्याजके रसके साथ चटनीकी तरह पीस, गिलास जैसा आकार बनाकर सुखा लेवें। पश्चात् प्याजका रस ५ सेर निकाल फिर उस गिलासको एक कड़ाहीमे रखे; और उसमें हिंगुल २० तोलेकी डली रखकर कढ़ाहीको चूल्हे पर चढावें; ऊपर प्याजके रसका वर्तन लटका देवें। बर्तनके पैंदेमे एक छोटा सा छेद करे, जिससे धीरे-धीरे रसकी एक-एक बूंद हिंगुलके ऊपर टपकती रहे। अग्नि इस तरह दें कि रस गिरते ही सूखजाय इस रीतिसे ५ सेर रस १२ घण्टोंमें पूरा हो जायगा। बादमें हिंगुलको पीसकर बोतलमें भर लेवे ।

(आ० नि० मा० के आधारसे)

मात्रा--आधा से १ रत्ती तक दिनमें २ बार शहद या रोगानुसार अनुपानके साथ ।

उपयोग--इस रसायनके सेवनसे उदरशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, वमन, जीर्ण-ज्वर, विसूचिका, अतिसार, आमवृद्धि, कफवृद्धि, कृमि, वातदोष आदि दूर होकर शरीर लाल बनजाता है। प्रसूताके अतिसार, अरुचि और वातवृद्धिको भी यह नष्ट करता है। निर्बल मनुष्योंको सेवन करानेमे यह रससिंदूर की अपेक्षा विशेष लाभ पहुंचाता है।

तीसरी विधि--सिंगरफ अशुद्ध २० तोले, भिलावा ८० तोले, गोघृत, एरण्ड तैल और शहद ६०-६० तोले लें। सिंगरफके छोटे-छोटे टुकड़ेकरें एवंभिलावे को जौकुट करें। इस भिलावेके चूर्णमेंसे आधा चूर्ण एक मोटे पैंदेकी कड़ाहीमें बिछा ऊपर सिंगरफकी डलिया अलग-अलग जमा उन्हे शेष भिलावेके चूर्णसे ढकदें, और ऊपरसे घृत, तैल तथा शहद डाल, चूल्हेपर चढ़ा, ४ घण्टे सामान्य अग्नि दें। जब आधा जलजाय, तब अर्धावशेषपर घासको जलाकर कड़ाहीमें आग लगादें, जिससे भिलावे जलकर भस्म हो जायेंगे। स्वांग शीतल होनेपर कड़ाही उतार, ऊपर-ऊपरसे राख हटाकर पैंदेसे सावधानतापूर्वक सिंगरफ की डालियां निकाल लेवें ।

(श्री पं० राधेश्यामजी गास्वामी)

मात्रा--आध से ३ रत्ती जायफल, जावित्री, लौंग, तीनोंका कपड़छान चूर्ण समभाग और शहदके साथ दिनमें २ बार दें। अथवा २-३ बादामकी गिरीके साथ आध से १ रत्ती हिंगुल रसायनको पीस, थोड़ा शहद मिलाकर दिनमें २ बार चटावेंअथवा अदरखके रस और शहदके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

सूचना--इस औषधके सेवनकालमें मट्ठेका अधिक प्रयोग करना चाहिये। जब जब प्यासलगे, तब-तब मट्ठेको ही उपयोगमें ले। ग्रीष्मकाल में दिनमें १--२ समय जल भी पी लेवें। भोजनमें मट्ठेके साथ ज्वार-बाजरे थोड़ी रोटी

ले सकते हैं । ग्रहणी रोगमें हितकर शाक भी ले सकते हैं ।

भिलावेको कूटनेके समय हाथ न लगावें । कड़ाहीमें लोहेकी कलछी से चलावें, और गोला बांधनेके समय हाथमें तैल लगाकर गोला बांधें । अन्यथा हाथ पर फाला हो जाता है ।

भिलावेका धुआं शरीरको न लगे, इस बातका ध्यान रखें ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे संग्रहणी, आमातिसार, शूल, जीर्णज्वर, शीतपात, वातरोग, सन्धिवात, रक्तविकार, त्रिदोष, आदि दूर होते हैं, अग्नि प्रदीप्त होती है, हृदय सबल होता है, शरीर दृढ़ बनता है, और उत्साहकी वृद्धि होती है। अनुपानभेदसे अनेक वातज और कफज रोगों पर उपयोगमें आता है ।

चौथी विधि—रूमी हिंगुलकी एक १० तोलेकी डली लेकर धागेसे बांधकर लोहेकी साफ कड़ाही में लौंगके १० तोले चूर्णपर रखें । बादमें आध सेर भिलावोंको ऊपर चुनकर स्तूप-सा बना दें । यथावश्यक छिद्रोंमें लवगका चूर्ण भर दें, ऊपरसे एरण्ड तैल आधसेर, मधु आधसेर और घृत आधसेर प्याजका रस ढाई सेर ऐसे ढंगसे क्रमशः डालें कि ऊपरमेंभी अग्नि लगे वह प्रज्वलित बनी रहे । खूब तीव्राग्नि देकर भल्लातकादि की भस्म कर लें । बादमें भस्मको फूंकसे दूरकर हिंगुलकी डली निकाल लें । हिंगुलकी कपड़ेसे भली प्रकार राखको साफ कर पक्की खरलमें घोटें । भली प्रकार घुटने पर समान भाग कपड़छन किया हुआ जावत्री, जायफल, कपूर, कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर रख लें ।

मात्रा—१ से ४ रत्तीतक रोगीके बलाबलको देखकर दही (मंसवा) आधसेरमें मिलाकर दें । ४० दिनतक दहीका ही भोजन करावे । इससे संग्रहणी सम्बन्धी सब विकार दूर होकर शरीर पुष्ट होता है । बादमें क्रमशः अन्नका सेवन करावे ।

(६५) गुल्मकुठार रस ।

विधि—शीशा भस्म, कलई भस्म, अभ्रक भस्म और लोह भस्म ५-५ तोले तथा ताम्रभस्म २० तोले मिला जम्भीरी नीबूके रससे ३ दिन खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें । (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें दो बार शहद, आमका मुरब्बा, अदरखका रस जवाखार और सज्जीखारके साथ दें । रक्त गुल्म और पित्तज गुल्ममें चातुर्जातके क्वाथके साथ दें ।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके गुल्म, अजीर्ण, आमविकार, पित्तज अम्लपित्त, हृदयशूल, पार्श्वशूल, उदरशूल आदि व्याधियोंको दूर करता है । इस औषधमें पारद न होनेपर भी संयोगजन्य गुण रस समान होनेसे इसे गुल्मकुठार रस संज्ञा दी है । इसका उपयोग जीर्ण रोगमें और क्षीण रोगियोंके लिये होता है ।

शोक या मानसिक आघातसे अपचन होकर अग्निमांद्य होता है। वह अति त्रास-दायक और विलक्षण स्वरूप होता है। ऐसे अग्निमांद्यके अनेक दिनों तक रह जानेपर उससे वातक्षोभ होकर वातगुलमकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारके गुल्ममें अन्य लक्षणोंके साथ दैन्य, मानसिक स्थिरता, किसी भी बातमें प्रीति न होना, निराशा, निस्तेजता, कृशता, मुखमण्डलकी कांति अति बदली हुई भासना आदि होनेपर इस औषधका अच्छा उपयोग होता है।

मांसाश्रित गुल्म और साथमें ज्वर, अत्यन्त तृषा, जलपान करनेपर भी तृषा बनी रहना, शीतल जल और शीतल पदार्थकी अति इच्छा, मुख और देहपर एक प्रकारकी लाली, भोजनकी पच्यमान अवस्थामें तीव्र शूल, बार-बार अति प्रस्वेद आना, अन्नका विदाह, गुल्म अति कठिन न होना, गुल्मपर स्पर्श सहन न होना, व्रणशोथके समान स्पर्श करनेपर वेदना-वृद्धि होना, गुल्मपर थोड़ा-सा आघात लगनेपर भयंकर पीड़ा होना, क्वचित् अधिक पीड़ासे बहोशी आ जाना आदि लक्षणयुक्त पित्तप्रधान गुल्मपर इसका उपयोग चातुर्जातके क्वाथके साथ करना चाहिये। दोष अति तीव्र होनेपर मंजिष्ठा, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, रास्ना और मुनक्काके क्वाथके साथ देना चाहिये।

स्त्रियोंको होनेवाले रक्तगुल्म और गर्भ, दोनोंके निर्णय होनेमें अनेक बार भ्रम होता हैं। कारण, रक्तगुल्म गर्भके समान शनैः शनैः बढ़ता जाता है। गर्भ धारण होनेपर जसे लक्षण प्रतीत होते हैं, वैसे ही लक्षण—वमन होना, अंग गलना, उदरमें जड़ता, मुख म्लान हो जाना और रजोदर्शन न होना आदि उपस्थित होते हैं। दोनोंमें अन्तर केवल इतना ही रहता है कि गर्भके चौथे माससे गर्भमें एक प्रकारका स्पन्दनस्फुरण होता है और गुल्ममें ऐसे स्पन्दन या हलचल, कुछ भी नहीं होता। गुल्म बस्तिके समीप एक स्थानमें गाढा चिपका हुआ वर्धिष्णु रहता है। इस भेदपरसे कभी-कभी अनुमान हो जाता है। यदि इसका सूक्ष्म-निरीक्षण किया जाय, तो रक्तगुल्म और पित्तगुल्मके लक्षणोंमें अनेकांशमें साम्य होनेपर भी निर्णय हो जाता है। ज्वर, तृषा, शरीरपर लाल धब्बे उठना, उदर-पीड़ा, दाह, कण्ठमें जलन, दूषित डकार, खट्टी वमन, प्रस्वेदमें एक प्रकारकी दुर्गन्ध आदि लक्षण गर्भ धारणमें नहीं होते। ये लक्षण होनेपर रक्तगुल्म मानकर गुल्मकुठारकी योजना करनी चाहिये।

शास्त्रकारोंने गुल्मकी चिकित्सा दस मास हो जानेपर करानेका दर्शाया है। इस तरह 'रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्' इस वचनमें रक्तगुल्म जितना जीर्ण उतना सुखसाध्य होता है; ऐसा भी कहा हैं। परन्तु ये दोनों सूचना विशेष सावधानता रखनेके लिये हैं। यदि रक्तगुल्मका निःसन्देह निर्णय हो जाय, तो तुरन्त चिकित्सा प्रारंभ कर देनेसे रक्तगुल्मकी आगे होने वाली वृद्धि रुक जाती है और चिकित्सा-पथ सुकर बन जाताहै। किन्तु जब निर्णय न हो, तब आचार्योंकी उक्त सूचनाका अवलम्बन अवश्य लेना चाहिये।

क्वचित् रक्तगुल्म और गर्भ, दोनों एक साथ प्रतीत होते हैं। गर्भाशयमें गर्भवृद्धि होती और बीजाशयमें रक्तगुल्म बढता है। ऐसी स्थितिमें रक्तगुल्म अधिक बढनेपर गर्भाशयको प्रतिबन्ध होता है, जिससे गर्भ-वृद्धिमें बाधा पहुंचती है। रक्तगुल्म अधिक बढने न देनेका कार्य, जो अति महत्त्वका है। वह इससे, गर्भको किसी भी प्रकारका त्रास न देकर, उत्तम प्रकारसे होता है। इसके साथ अनुपान रूपसे उशीरासव, सारिवासव या अन्य सौम्य पित्तशामक औषधकी योजना करनी चाहिये। गुल्मरोग या अन्यत्रपित्त-जन्य विदग्धाजीर्ण बार-बार होनेकी आदत वालोंको यह रस देना चाहिये।

पित्तज अम्लपित्तमें कण्ठमें जलन, खट्टी डकार, उदरमें दाह और अफारा, बार-बार डकार आना, शौच शुद्ध न होना, उदरमें भारीपन, अन्त्रमें गुडगुडाहट, बार-बार अम्लपित्त होनेकी आदत होकर बलहानिका भास होना आदि लक्षण होनेपर गुल्मकुठार की योजना करनी चाहिये। इस अवस्थामें अदरखका रस और शहदके साथ या स्वल्प जवाखार और सज्जीखारके साथ देवें।

पित्तज परिणामशूलमें, हृदयके समीप, पार्श्वभाग और उदरमें अन्नपचन होनेके समय बार-बार शूल चलना, उदरमें अफारा आदि लक्षण होनेपर गुल्मकुठार देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—इस रसमें ताम्रभस्मका परिमाण आधा होनेसे अधिक मात्रामें सेवन नहीं कराना चाहिये। जिन रोगियोंको उबाक या बेचैनी हो उनको आंवले, अनार या नीबूका रस अनुपान रूपसे देना चाहिये। ताम्रभस्म अच्छी होनेपर भी आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें अधिक उत्तेजना लाकर बेचैनी, उबाक, आदि लक्षणोंको उत्पन्न करती है। अतः सम्हालपूर्वक उपयोग करें।

[६६] गुल्मकालानल रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, ताम्रभस्म और सोहागेका फूला प्रत्येक २-२ तोले, जवाखार १० तोले, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, कालीमिर्च, गजपीपल, हरड, वच और कूठ, ये ८ औषधियें १-१ तोला लेवें। सबको विधिपूर्वक मिलाकर पित्तपापडा, अदरख, अपामार्ग (ओंधीझाडा), नागरमोथा और पाठाके क्वाथकी क्रमशः ७-७ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली हरडके क्वाथके साथ दिनमें २ बार दें।

उपयोग—इस रसका विशेष उपयोग वातगुल्म, वातकफज गुल्म और कफपित्तज गुल्म पर होता है। पित्तगुल्ममें विशेषतः लाभदायक नहीं है।

अन्त्रके भीतर जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी ग्रन्थिरूप रुग्णावस्था प्राप्त होती है, उसे आयुर्वेदमें गुल्म संज्ञा दी है। केवल मांसवृद्धि या अन्य कारणोंसे अन्त्रमें गांठ बढना, केवल इसीको गुल्म संज्ञा नहीं है, अन्त्रमें बार-बार वायु संचित होकर उसके योगसे गांठ

सदृश अफारा आते रहना और कम होजाना, उसे भी गुल्म कहा है। मांसल, सौत्रिक तन्तु एक दूसरोके जालके सदृश संलग्न हाकर उसमसे गांठ उत्पन्न हाना, भीतरकी आर भेदके सदृश ओर बाहर श्लैष्मिक कला रूप गांठ बढ़ना या केवल अफारा आकर गांठकी उत्पत्ति होना, ये सब गुल्मके पृथक्-पृथक् विभाग है। एक को पित्तगुल्म दूसरेको कफ-गुल्म सज्ञा दी है। द्वन्द्वज गुल्मोंमें दो दोषोका संकर होता है। स्त्रियोंको होनेवाला रक्त-गुल्म इन गुल्मोंमेसे पृथक् है। रक्तगुल्म बीजाशय (Ovary) या गर्भाशय (Uterus) में होता है। वह पित्तगुल्मकी जातिका है। इसके लक्षण और पित्तगुल्मके लक्षणमें सादृश्य है।

इस रसका उपयोग विशेषतः वातगुल्म पर होता है; ऐसा ग्रंथकारने प्रतिपादन किया है। वातगुल्म अर्थात् अन्त्रमे उत्पन्न अफारा। यह गुल्म बहुत जल्दी कम ज्यादा होता रहता है। मलावरोध, अपान वायुका अवरोध, कण्ठ और मुखमें शुष्कता, बीच-बीचमे शीत लगना, सूक्ष्म ज्वर-सा भासना, छाती, उदर, पार्श्व और मस्तिष्क आदि भागमें कभी-कभी शूल निकलना, अन्नपचन होजाने पर उदर खिचना, थोड़ा-सा खा लेनेपर अच्छा न लगना, श्रम सहन न होना, रूक्ष पदार्थ खानेपर त्रास अधिक होना, आदि लक्षण होनेपर गुल्म कुठार रस घीके साथ देना चाहिये।

इस ओषधिका उपयोग पित्तज गुल्म पर कितने अंशमें हाता है। इस विषयमें संशय है। पित्तज गुल्मकी बिलकुल प्रथमावस्थामें गुल्मका परिपाक न हुआ हो; पित्तगुल्ममें होनेवाले ज्वर, पिपासा आदि लक्षण पूर्व रूपसे उत्पन्न न हुए हों; ऐसे समय पर पित्त-संचय विरेचन द्वारा कम करानेके लिये इस ओषधिका उपयोग मधुर और शामक अनु-पानके साथ करना चाहिये।

कफज गुल्म, कफवातज गुल्म और कफ पित्तात्मक गुल्मपर इसका उपयोग किया, जाता है। विशेषतः इन गुल्मोमे स्तैमित्य, शीतपूर्वक ज्वर, अंग टूटना, उबाक, अरुचि खांसी, अंगमें भारीपन, सर्वागमे शीत लगना, गुल्म और उसके चारों ओर बिलकुल मंद वेदना, गुल्म कठिन उठा हुआ गोल, मोटा, समान किनारी वाला, विशेषतः यकृत् प्लीहा, इन दो इन्द्रियोंको छोड़कर मध्यकोष्ठमें गुल्म उत्पन्न होना आदि लक्षण होते है। इन गुल्मोंपर इस ओषधमें रहे हुए यवक्षार, हरताल ओर ताम्रके क्षार गुणके योगसे कफज गुल्मके दृढ़ बने हुए घटक झरने लगते है; और गुल्म शनैः शनैः कम होने लगता है। यदि गुल्म बहुत बढ़ गया हो, दीर्घकालका पुराना हो, तो ओषधियोंसे लाभ नहीं होता। उस पर अस्त्र-चिकित्सा ही करनी चाहिये।

रक्तगुल्म बिलकुल स्वतंत्र व्याधि है। उसकी संप्राप्ति भी स्वतंत्र होनेसे उस पर इस रसका उपयोग नही होता।

इस रससे जीर्ण शीतज्वर (**Malarial fever**) और उससे उत्पन्न प्लीहा-वृद्धि, अग्निमांद्य, यकृद्वृद्धि आदि पर भी लाभ पहुंचनेकी संभावना है। केवल इन विकारोंमें कफदोषकी प्रधानता होनी चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

[६७] प्रवालपंचामृत रस

विधि--प्रवाल २ तोले तथा मोती, शंख, मोतीकी सीप और कौड़ी १-१ तोला मिला कूट पीस कर बारीक चूर्ण करें । पश्चात् ६ तोले आकके दूधमें खरल करके गोला बनावें । फिर संपुट कर गजपुट अग्नि देनेसे मुलायम भस्म तैयार होती है ।
(यो० र०)

कितने ही वैद्य आकके दूधके बदलेमें गोदुग्धका उपयोग करतेहैं । यह विशेष सौम्य और विशेष पित्तशामक होता है । आकके दूधवाला योग थोड़ा उग्र रहता है । इस औषधिमें पारद नहीं है, परन्तु रसके समान गुण होनेसे शास्त्रकारोंने "प्रवालपंचामृत रस" नाम रक्खा है ।

मात्रा--१ से २ रत्ती दिनमें २ बार शहद और पीपल, गुलकन्द, मात्र शहद नीबूके रस अथवा अनारके रसके साथ देवें ।

उपयोग--यह रस आनाह, गुल्म, उदररोग, प्लीहा, बद्धोदर, कास, श्वास-मंदाग्नि, कफवातप्रकोपसे होनेवाले रोग, अजीर्ण उद्गार, हृद्रोग, ग्रहणी, अतिसार बालकोंके ग्रह उपद्रव, प्रमेह, सब प्रकारके मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी इन सबको दूर करता है ।

प्रवालपंचामृतका कार्य विशेषतः मध्यम कोष्ठ, यकृत्, प्लीहा और ग्रहणी पर अच्छा होता है । पाचक पित्तके द्रवत्व धर्ममें कमी होनेसे पेटमें अन्नका बोझा होता हो या अफारा आती हो, उसे यह रसायन दूर करता है ।

पाचक पित्तमें द्रवत्व धर्म बढ़नेपर अन्नपचन होनेका धर्म कम होजाता है। फिर अन्न-विदाह और अपचन होने लगते हैं । इस हेतुसे कभी-कभी उदरमें अफारा भी आता है । बार-बार दूषित खट्टी डकार, भोजन करनेके कुछ समय पश्चात् पेटमें भारीपन, उदर खिंचना, उदर पर पत्थर बांधने सदृश जड़ता, शूल या वेदना बहुधा ना हो, बेचैनी, मध्यम कोष्ठमें आहार जैसाका वैसा पड़ा रहा हो ऐसा भासना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपंचामृत नीबूके रसके साथ या अन्य अम्लवर्गके साथ देना चाहिये । जीर्ण-विकारमें मात्रा कम चाहिये और दीर्घकाल पर्यन्त देना चाहिये । कण्ठमें दाह, खट्टी डकार आदि पित्तके अम्लताके लक्षण अधिक हो, तो अनारके रस या दाडिमावलेहके साथ देना चाहिये ।

इसी तरह आनाह (मलावरोध) के हेतुसे मध्यम कोष्ठमें वातगुल्म समान न्यूनाधिक अफारा आता है । यह वायु बृहदन्त्रमें संगृहीत होती है । इस पर इस रसका अच्छा उपयोग होता है ।

पित्तगुल्मके प्रारंभमें थोड़ा ज्वर, तृषा, मुखमण्डल और समस्त शरीर लाल हो जाना, भोजन करनेके दो घण्टे पश्चात् भयङ्कर उदरशूल, प्रस्वेद आना, अन्नके विदाहके हेतुसे कण्ठमें जलन, उदरमें दर्द- स्थान पर स्पर्श भी सहन न होना आदि लक्षण होनेपर

प्रवालपंचामृत घीके ऊपर रहे हुए प्रवाही सत्व या आंवलोके क्वाथ (या फांट) के साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है।

उदर रोगमें यकृत्वृद्धि हेतु हो, और पित्तप्रधान लक्षण—नेत्र, त्वचा, नाखून और मूत्रमें पीलापन; मुख, हाथ और पैर पर थोड़ी सूजन, उदरमेंवायु भरा रहना, उदर-वृद्धि, उदरमें किंचित जलसंचय, यकृत् बढ़नसे किनारी मोटी होजाना, बार-बार घबराहट, तृषा; हाथ, पैर, नेत्र और मस्तिष्क आदिका संतप्त सदृश भासना, मूत्र थोड़ा और अति पीला या लाल रंगका होजाना, मल कच्चा, सफेद और दुगर्न्धयुक्त होजाना, मलशुद्धि सम्यक् न होना, कभी-कभी कण्ठमें दाह और घबराहट होकर वमन होना आदि, लक्षण मुख्य होनेपर प्रवालपंचामृतका उपयोग अति हितावह है। अनुपानरूपसे ताज दहीका जल देनेसे पित्तप्रकोप जल्दी शमन होता है। इस तरह प्लीहावृद्धिके पश्चात् उत्पन्न उदररोग में भी पित्तप्रधान लक्षण होनेपर यह अच्छा उपयोगी है।

कास और श्वास रोगमें अति घबराहट, अन्नका विदाह, बेचैनी, शीतल पदार्थ और शीतल वायुकी इच्छा, शीतल पदार्थ और शीतल वायु अच्छा लगना, दूध, अनार दाने आदि पित्तशामक वस्तु अच्छी लगना, अग्नि सेवन या उष्ण उपचारसे पीड़ा अधिक होना आदि लक्षण होने पर प्रवालपंचामृतका उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण अग्निमांद्य होनेपर पचनेन्द्रिय संस्था अशक्त होजाती है; जिससे पाचक रसका व्यवस्थित निर्माण नही होता। अपचन, उदरमे वायुका भरा रहना, अफारा, दूषित डकार, रसकी उत्पत्ति सम्यक् न होनेसे रक्त आदि धातुओंमें क्षीणता आकर शरीर कृश और अशक्त होजाना आदि लक्षण प्रतीत होते है। उसपर प्रवालपंचामृत का उपयोग उत्तम होता है।

पित्तकी विकृतिसे अतिसार उत्पन्न हुआ हो, फिर उसीसे संग्रहणी होगई हो, तो भी प्रवालपंचामृतका प्रयोग करना चाहिये। ऐसी स्थितिमे पंचामृत पर्पटी और सुवर्ण पर्पटी दीजाती है। परन्तु उनमें पारद-मिश्रित कज्जली होनेसे पित्तदोषकी तीव्रता और अम्लता बढ़ती है। इसके विरुद्ध इससे पित्त प्रधान अतिसार और ग्रहणीमें पित्तप्रकोप का शमन होकर सत्वर रोगनिवारण होता है।

प्रमेहके विकारमें जीर्ण अपचन कारण हो या तीव्र पित्तदोषकी प्रधानता हो, तो प्रवालपंचामृत उत्कृष्ट कार्य करता है। अतिशय तृषा, इस तरह मूत्रका परिमाण अधिक और बार-बार होना, मूत्र काला, नीला, अति पीला या अति लालहोना, चिपचिपा प्रस्वेद सर्वांगमें और हाथ-पैरोंके तलोमे दाह, बार-बार कण्ठ सूखना, जलपान करने पर भी संतोष न होना आदि लक्षण होने पर प्रवालपंचामृत रस देना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(६८) प्रभाकर वटी।

विधि—सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन, शुद्ध

शिलाजीत, सबको समभाग मिला अर्जुनकी छालके क्वाथमें ३ दिनतक खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें । (भैं० र०)

मात्रा—१ से २ गोलीतक दिनमें दो बार शहदके साथ लेवें । ऊपर दूध अथवा अर्जुनछालका क्वाथ पीवें ।

उपयोग—इस रससे हृदय-शूल, हृदयकी धड़कन, हृदयावरोध, हृदयके आवरणका दाह आदि हृदयके सब दोष दूर होकर हृदय बलवान बनता है, एवं पित्त-काम, दाह, खट्टी डकार, मन्दाग्नि, चक्कर आना, शरीरकी निस्तेजता आदि विकार भी नष्ट होते है ।

अग्निमांद्य, रक्तकी न्यूनता, रक्तकी निर्बलता, वातवाहिनियोंकी विकृति, मानसिक आघात, वृक्कविकार, वात या पित्त दोष प्रकुपित होना, विषमज्वर या अन्य संक्रामक व्याधियां आदि कारणोंमें हृदय अशक्त होजानेपर इस वटीका अच्छा उपयोग होता है । इससे घबराहट, धड़कन, दाह आदि दूर होकर हृदय सबल बन जाता है । उत्साह, कांति, स्फूर्ति, बल और वीर्यकी वृद्धि होती है ।

(९९) त्रिनेत्र रस ।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्मको समभाग मिलाकर खरल करें । फिर धूपके तापमें अर्जुनवृक्षकी छालके क्वाथकी २१ भावना देकर छोटे बेरके समान गोलियां बना लें । (या० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार शहदके साथ लेवें ।

उपयोग—त्रिनेत्र रस सब प्रकारके हृद्रोग (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और कृमिज) और फेफड़ोंके दोषोंको दूर करता है ।

हृदयमेंसे निकली हुई रक्तवाहिनियोंको यह रसायन संकुचित करके दृढ बनाता है । हृदयकी उष्णता, शूल और कृमिका नाश करता है । फुफ्फुस और मांसग्रंथियोंको पुष्ट बनाता है, बल, कांति और स्मरणशक्तिको बढाता है, एवं हृदय वेगके बढनेसे होनेवाले मन्दाग्नि, मेदवृद्धि, शूल, शोथ, प्रमेह, प्रदर, अपस्मार, कुष्ट, उदर रोग, दुष्ठ व्रण, भगंदर आदि व्याधियोंका दूर करता है ।

(१००) हेमनाथ रस ।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध आंवलासार गन्धक, सुवर्ण भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रत्येक १-१ तोला तथा लोहभस्म, कपूर, प्रवाल भस्म और बंग भस्म प्रत्येक ६-६ माशे लें । पहले पारद और गन्धककी कज्जली करें । फिर शेष औषधियोंको मिला अफीमका रस (अफीमको १६ गुने जलमें मिलाकर एक उफान आवे तब तक गरम करें) केलेके खम्भेका रस और गूलरका रस (गूलरके वृक्षके मूलमें खड्डा करके एक

घड़ा रक्खें, ऊपर ढक्कनसे ढककर मिट्टी दबा देवें; घड़ा भर जानेपर दूसरे रोज सुबह निकाल लेवें), इनकी क्रमशः ७-७ भावना देकर एक-एक रत्तीकी गोलियां बनालें।
(भैं० र०)

इस रसमें पारे और गन्धकके बदलेमें षड्गुण गन्धक-जारित रससिंदूर मिलानेसे विशेष लाभ होता है, ऐसा मूल ग्रंथकारने लिखा है।

मात्रा--१ से २ रत्ती दूध-मिश्री या धात्रीघृतके साथ।

उपयोग--यह रसायन दारुण बहुमूत्र, सब प्रकारके प्रमेह, मधुमेह, सोम-रोग, क्षय, उरःक्षत, स्वप्नदोष, श्वास, कास और संग्रहणी आदिको दूर करता है।

सूचना--निर्बल अन्त्रवालोंको अफीमके हेतुसे बद्धकोष्ठ होजाता है। इसलिये औषधिकी मात्रा प्रकृतिका विचार करके देनी चाहियै।

(१०१) मूत्रकृच्छ्रान्तक रस।

विधि--शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, जवाखार ४ तोले लें। सबको यथाविधि मिलाकर खरल करे। (र० चं०)

मात्रा--१-१ माशा प्रातःकाल मिश्री और मट्ठा या लस्सीके साथ दे।

उपयोग--यह रस सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्रको दूर करता है, तथा पेशाब को साफ लाता है। मूत्राशयमें अश्मरीकी छोटी-छोटी कंकडियां (शर्करा या सिकता) हो गई हों; वे भी निकल जाती हैं।

दूसरी विधि--आधी बटलोईको जलसे भर, उसके मुखको पतले कपड़ेसे ढककर डोरेसे बांध दें। फिर कपड़े पर ३ छटांक गन्धाबिरोजा फैला बटलोईको चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द आंच दें। जब पानीकी भापसे गन्धाबिरोजा तपकर और कपडेसे छन-कर बटलोईके अन्दर गिर जाय; तब बटलोई को चूल्हेसे उतार लें। शीतल होनेपर तल-भागमें जमे हुए विरोजेको निकाल ले। फिर गन्धाविरोजा ४ तोले और मकरध्वज या षड्गुण गन्धकजारित रससिंदूर ६ माशे मिलाकर खरल करें। (र० सा०)

मात्रा--२-२ माशे दिनमें दो बार ताजा दूध जल या मिश्रीके साथ सेवन करें।

उपयोग--इसके सेवन करनेसे नूतन मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) नष्ट हो जाता है। ८-१० रोजमें मूत्रप्रसेक नलिकाके भीतरका घाव मिट जाता है। पीप आना बन्द होता है और मूत्रदाहका भी निवारण होता है। जीर्ण रोगमें ज्यादा दिन तक सेवन करना चाहिये।

सूचना--यदि मकरध्वज या रससिंदूर न मिले, तो केवल शुद्ध किया हुआ गन्धाविरोजा भी लाभ पहुँचा करता है।

(१०२) वसन्तकुसुमाकर रस ॥

विधि—प्रवाल पिष्टी, रससिंदूर, मुक्तापिष्टी, और अभ्रक भस्म ४-४ भाग, रौप्य भस्म २-२ भाग, लोह भस्म, नाग भस्म और वंग भस्म ३-३ भाग लेवें। सबको अच्छी तरह मिला अडूसेका रस, हल्दीका क्वाथ, ईखका रस, कमलके फूलोंका रस, मालती पुष्पका रस, गायका दूध, केलेके खम्भेका रस, कस्तूरी और चन्दनका फाण्ट,† सबकी पृथक्-पृथक भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। इस रसको अनेक चिकित्सक रस और नेत्रवालाके क्वाथकी भावना भी देते हैं। * (र० यो० सा०)

वक्तव्य—कस्तूरी की भावना के स्थानमें हम अन्तके दिन कस्तूरी ? तोले मिला ६ घण्टे खरल कर गोलियाँ बांधते हैं।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दूध-मिश्री, मलाई या मक्खन-मिश्रीके साथ।

विशेष अनुपान—(१) क्षयमें मिर्चका चूर्ण और शहद।

(२) प्रमेहमें हल्दी, शक्कर और शहद।

(३) रक्तपित्तमें चन्दनका चूर्ण और मिश्री या अडूसेका रस, मिश्री और शहद।

(४) पुष्टिके लिये चातुर्जात या अगर और सफेद चन्दनका चूर्ण १ माशेके साथ मिलाकर शहदके साथ लेवें।

(५) वमनमें शतपुष्पीका रस।

(६) अम्लपित्तमें शतावरीका स्वरस, शक्कर और शहद।

(७) प्रमेह- पिडिकामें शिलाजीत।

(८) मानसिक निर्बलतामें त्रिजातका क्वाथ।

---

†चन्दनका फाण्ट—चन्दनके १ तोले चूर्णको १६ तोले उबलते जलमें डालकर १-२ मिनट तक उबालें। फिर नीचे उतारकर ढक्कनसे ढक दें। फिर लगभग १६ से २० घण्टे बाद छानकर उपयोगमें लेवें।

सूचना—चन्दनको अधिक उबालकर क्वाथ न करें। अन्यथा कितनाक सुगन्धयुक्त द्रव्य उड जाता है।

रस, क्वाथ और दूधको दोहरे गाढे कपडेसे छान लेना चाहिये। नहीं तो व्यर्थ वजन बढ़ जायगा और रसायन हीनगुणयुक्त हो जायगा।

*श्री वैद्यराज प. सुखरामदासजी टी. ओझा वसन्तकुसुमाकरमें अकीक भस्म, संगेयसव भस्म, लाजवर्द भस्म और माणिक्य भस्म २-२ तोले मिलाते हैं तथा केसरकी ७ भावना देते हैं। इनके अनुभव अनुसार इस तरह बना हुआ रस अपेक्षाकृत अधिक हृद्य और सद्य फलदायी बनता है। मधुमेहमें जब अधिक निर्बलता आजाती है, तब यह तुरन्त उपकार दर्शाता है।

(९) प्राकृतिक रक्तपित्तमें मोगरा या शेवतीका रस ।
(१०) मस्तिष्ककी निर्बलता पर कूष्माण्डावलेह ।
(११) शुक्रवृद्धिके लिये शतावरी, असगंध और मिश्री ।

उपयोग—वसन्तकुसुमाकर रस अंडकोष, हृदय, मस्तिष्क, पचनेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और फुफ्फुसोंके लिये पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक, कामोत्तेजक, मधुमेहघ्न और मानसिक निर्बलताका नाश करनेवाला है। जीर्ण मधुमेह और उसके उपद्रव रूप हृद्विकार, श्वास, कास, इन्द्रियदौर्वल्य आदि एवं प्रमेहपिटिका (अदीठ-Carbuncle), शुक्रक्षयके पश्चात्‌की निर्बलता, जरा-सा विचार आते ही शुक्रपात होना, नपुंसकता, मूत्रपिण्डकी विकृति, स्मरणशक्ति मन्द होना, भ्रम, निद्रानाश, जीर्ण रक्तपित्त, हृदयकी निर्बलता, शुष्क कास, थोड़ा परिश्रम होनेपर श्वास भरजाना, वृद्धावस्थामें श्वास, कास, हृदय या यकृत्‌की विकृति, जीर्ण सर्वांग शोथ, स्त्रियोंके नूतन प्रदर, जीर्ण श्वेतप्रदर, सबको शमन करनेमें यह उपयोगी है।

यह रस मधुमेहमें अत्यन्त हितकर है। अति व्यवाय (स्त्रीसेवन) और ओजक्षयसे होनेवाले जीर्ण मधुमेहमें निर्बलता, मानसिक दौर्बल्य, दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाला शब्द-स्पर्श आदि गुणोंकी ग्राहक इन्द्रियशक्तिका क्षय, जोरकी आवाज और अधिक प्रकाशका सहन न होना, बात-बातमें क्रोध उत्पन्न होना, अनिश्चित वृत्ति, विचार करनेकी शक्ति कम हो जाना, इन्द्रिय शैथिल्य इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हों, तो वसन्तकुसुमाकर अत्यन्त हितकर है। मधुमेहसे उत्पन्न उपद्रव—हृद्विकार, श्वास, कास, प्रमेहपिटिका, मूर्च्छा, संन्यास आदिको भी दूर करता है। प्रमेहपिटिका होनेपर शिलाजतुके साथ देना चाहिये। मधुमेहके अन्तमें उत्पन्न संन्यास और शक्तिपातको दूर करनेके लिये यह रस अमृतरूप है।

अति व्यवायशोषीके मनोदौर्वल्य इन्द्रियशैथिल्य और शारीरिक निर्बलता बढ़नेपर स्त्रीदर्शन, या आवाज मात्रसे मनमें विकृति, शरीर निस्तेज हो जाना, जिसमें जननेन्द्रिय बिलकुल शिथिल हो जाना आदि लक्षण होते हैं, उसमें यह अत्यन्त लाभदायक है।

अत्यन्त व्यवायसे हृदयदौर्वल्य, शुष्क त्रासदायक कास, श्वास, थोड़े परिश्रममें श्वास भर जाना, धमनी अथवा हृत्पटलका विकार, क्वचित् मूत्रपिण्डका विकार, इन सबपर यह उपयोगी है।

अधिक मगजके श्रमसे शिरदर्द और चक्कर आकर मानसिक निर्बलता बढ़गई हो; तथा मस्तिष्क, वातवाहिनियां और इनके केन्द्रस्थानोंकी विकृतिके लक्षण—विचार करनेपर मनका गुम हो जाना बाहरकी आवाज सहन न होना, व्याकुलत बनीरहना, विचार करनेमें त्रास होना—आदि प्रतीत होते हों; परन्तु रक्तदबाव न बढ़ा हो, तो यह रसायन हितकारक है। अनुपान रूपसे त्रिजातका क्वाथ या पेठेका रस देना

चाहिये। इन लक्षणोंके साथ निद्रानाश हो, और निद्रानाश हेतु विविध विचार कल्पना हो, तो उसे भी यह दूर करता है।

जब रक्तपित्त (नाक, मुह, गुदा, मूत्रमार्ग आदिसे रक्तस्राव) अधिक बलपूर्वक होता हो, तब चन्द्रकला (या चन्द्रप्रभा), प्रवाल, मुक्ता मिश्रण दिया जाता है। परन्तु जब प्रारम्भिक वेग नष्ट होकर जीर्ण हो जाता है, या रक्तपित्त की आदत होजाती है, अथवा भोजनमें किंचित् अन्तर होने या सूर्यका ताप लगनेपर नाक फूटकर रक्तस्राव होने लगता है, ऐसे रक्तपित्तमें पित्तका विदग्धत्व अधिक होता है। इस आदतको मिटानेमें यह उत्तम औषधि है।

कितनीही स्त्रियोंको कहीं भी लगा कि रक्तस्राव होने लगता है, फिर वह जल्दी बन्द नहीं होता। मासिकधर्ममें जानेवाला रज स्राव सत्वर नहीं रुकता। इतना ही नहीं, कभी सूई लगजाय, तो उतनेसे भी रुधिर-स्राव होना, फिर वह भी जल्दी बन्द नहीं होता। इस प्रकारके प्राकृतिक रक्तपित्त (Haem philia) पर वसन्तकुसुमाकर अति उत्तम कार्य करता है। अनुपान रूपमें मोतियाके फूलोंका लेह देवें।

वसन्तकुसुमाकरका परिणाम अण्डकोषपर बल्य होता है, अतः यह उत्तम वृष्य औषध है। छोटी आयुसे दुष्ट आदत होजाने या युवावस्थामें अति व्यवाय आदि कारणोंसे उत्पन्न इन्द्रिय-शैथिल्य, मनमें कामविचार उत्पन्न होनेके साथ वीर्य-स्खलन, स्त्री-सम्बन्धी विचार आने अथवा नूपुर या कंकणकी आवाज सुनने मात्रसे स्खलन आदि लक्षण हों, या नपुंसकता आई हो, तो यह अति उपयोगी है।

वृद्धावस्थामें उत्पन्न जराकासमें यह औषध उत्तम उपयोगी है। जरावस्थामें यह स्वाभाविक कालपरिणाम है, यह एक पक्ष है। वृद्धावस्थामें भी यह रोग ही है, यह दूसरा मत है। यह दूसरा मत आयुर्वेदको मान्य है। जरावस्थाके कारण अनेक हैं। इन सब अवयवसमूहोंकी विशेषतः अन्तःस्रावक पिण्डोंकी शक्ति कम-कम होती जाना, यह भी एक कारण है। फिर अन्तस्थ अवयव-समूह अशक्त होजाता है। इसका परिणाम हृदय और फुफ्फुसों पर होकर श्वास-कास होते हैं। इस पर वसंतकुसुमाकर उपयोगी है।

सर्वाङ्ग शोथ, वातज (हृदय-विकृतिजन्य), पित्तज (यकृद्विकृतिजन्य), कफज (वृक्कविकारजन्य) और सर्वज (व्याधिसंकर होकर तीनों स्थान दुष्ट होने), इस तरह ४ प्रकारके शोफ आयुर्वेदमें कहे हैं। इनमें पुनः तीव्र और जीर्ण, ऐसे दो भेद हैं। इनमें तीव्र विकारमें इसका उपयोग नहीं होता। परन्तु जीर्ण विकारमें, विशेषतः वातज और पित्तज पर, इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

स्त्रियोंके जननेन्द्रियके विकारमें इसका उपयोग होता है। यह औषधि छोटीआयुकी अपेक्षा बडी आयुमें विशेष लागू होती है। व्यवायके अतियोगसे उत्पन्न प्रदर, सर्वांग-शैथिल्य हृदयकी अशक्तता, वातवाहिनियां और वातवहमण्डलकी शिथिलता, क्रोधी

स्वभाव आदि लक्षण होने पर यह अति उत्तम लाभ पहुंचाती है ।प्रदररोग दीर्घकाल-पर्यन्त चालू रहता है तव निरुत्साह, कृशता, निस्तेजता, शक्तिपात आदि होजाते हैं । इसपर यह अच्छा उपयोगी है ।

संक्षेपमे यह रस वल्य, वृष्य, मधुमेहघ्न, मानसिक निर्वलता तथा वातवह मण्डल, सहस्रार और वातवाहिनी केन्द्रकी अशक्तिको दूर करनेवाला है ।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

सूचना—वसतकुसुमाकर अत्यन्त कामोत्तेजक होनेसे बड़ी हुई कामोत्तेजना वालेको नही देना चाहिये, अन्यथा उसके मनपर बहुत खराब असर होकर शुक्रक्षय अधिक करनेके लिये प्रवृत्ति हो जायगी ।

(१०३) त्रिविक्रम रस

विधि—ताम्र भस्म १० तोलेको १० तोले वकरीके दूधमें मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे । दूध सूख जाने पर १० तोले पारद और १० तोले गन्धककी कज्जली मिलाकर खरल करें । पश्चात् काले फूलोंवाली निर्गुण्डीकी छालके क्वाथमें ३ दिन खरल करके गोला बनावें । फिर सुखा सराव-सम्पुटमें वन्द कर मजबूत ५-७ कपड़मिट्टी करें। सूखनेपर बालुका यन्त्रमें रखकर १ प्रहर तीव्राग्नि देवें । स्वांग शीतल होने पर औषधको निकालकर खरल कर लेवें । (र० र० सा०)

सूचना—रस सिद्ध होनेपर गन्धक जल जाता है और पारदका सिन्दूर वन जाता है । यदि गन्धक रह गया हो तो पुनः १-२ घण्टे अग्नि देनी चाहिये ।

मात्रा—२-२ रत्ती शहदके साथ दिनमें २ बार । ऊपर ६ माशे विजौरेके मूलको जलमें घिसकर पिलावें; या हरड़, वहेड़ा, पाषाणभेद, धमासा, धनिया, गोखरू और ककड़ीके बीजके मगजका क्वाथ दे ।

उपयोग—इस रसके सेवनसे सम्पूर्ण प्रकारके मूत्रपिण्ड और मूत्राशयमें स्थित अश्मरी, शर्करा, वृक्कशूल, आदि रोग एक मासमें ही नष्ट होजाते हैं । पथरी कट-कट कर मूत्र द्वारा निकल जाती है ।

[१०४] पाषाणवज्रक रस ।

विधि—शुद्ध पारद १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर कज्जली करें । पश्चात् सफेद पुनर्नवाके रसमें ३ दिनतक खरल कर गोला बांध कर सुखावे। फिर सराव-सम्पुटमे वन्द कर भूधरयन्त्रमे १२ घण्टे तक अग्नि दे । स्वांग शीतल होने पर गोलेको निकाल कर खरल करलें ।

मात्रा—१-१ माशा रोज सुबह समभाग पाषाणभेदका चूर्ण मिलाकर लेवे । ऊपर गोपालककड़ी (एरण्ड ककड़ी-पपीता) के ४ तोले मूलका क्वाथ शहद मिलाकर

पीवें । अथवा कुलथीका क्वाथ पीवें । रात्रिको गोखरू, वंशलोचन और नागरमोथेका क्वाथ लें ।

उपयोग—इस रसके सेवनसे सब प्रकारकी अश्मरी एक सप्ताहमें कट-कट कर निकल जाती है । वृक्कस्थानमें शूल निकलता हो तो वह भी इस औषधके सेवनसे शमन होजाता है।

अश्मरीके भेदन और उत्पत्तिको रोकनेके लिये विशेषत त्रिविक्रम रस और पाषाणवज्रक रस, ये दो रसायन व्यवहृत होते हैं । यकृत् निर्बल होनेपर पित्तका स्राव योग्य न होता हो, तब यकृद्बल्य औषधि देनी चाहिये । ताम्र भस्म यकृद्को उत्तेजना देती है और सबल बनाती है । इस हेतुसे ऐसी अवस्थामें त्रिविक्रम रस विशेष उपकारक है । किन्तु अधिक धूम्र पान करनेवालोंके वृक्क जब योग्य कार्य नहीं करते और यकृत्पित्त दूषित होजाता है तथा शराबके व्यसन वालोको यकृत्में अधिक रक्त सग्रह हो जाता है, तब मूत्रजनन गुणयुक्त औषधि विशेष व्यवहृत होती है । इसलिये ऐसी अवस्थामें पाषाणवज्रकरस अधिक हितावह होता है । इस रसायनके सेवनसे यकृदपित्तकी रचना सुधरती है और नयी उत्पत्ति बन्द होजाती है । अधिक वमन होकर आमाशयमें उग्रता आई हो वह भी शात होजाती है । वृक्क और मूत्राशय, दोनो स्थानो पर यह औषधि कार्य करती है ।

सूचना—यदि अश्मरी वातज (ओक्झलेट) हो और पुरानी हो गई हो तो इस औषधि के सेवनसे नही टूटती । पित्तज और कफज टूट जाती हैं ।

(१०५) अश्विनी कुमार रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, सोहागेका फूला, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध अफीम, शुद्ध बच्छनाग, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, पीपलामूल, लौग, ये १५ औषधिया १-१ तोला लेवें । पहले पारद-गन्धककी कज्जली कर, हरताल, बच्छनाग, अफीम, जमालगोटा और सोहागा क्रमसे मिलावें । बादमें और ओषधियोंका कपडछान चूर्ण मिलाकर गायके ३२ तोले दूधके साथ खरल करें । फिर ३२ तोले गोमूत्रमें और ३२ तोले भागरेके रसमें खरल करके १-१ रत्तीकी गोलिया बनावें । (अनु० त०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार रोगानुसार अनुपान के साथ दें । पित्तमेहमें हल्दी, मूत्रकृच्छ्रमें जीरे, पुष्टिके लिये शहद और ज्वरमें अदरखके रस और शहद के साथ देवें ।

उपयोग—इस रसके सेवनसे पित्तज मेह, मूत्रकृच्छ्र और पित्तप्रधान विषम ज्वरोका नाश होता है, तथा बलकी वृद्धि होती है । आमाशय (मेदा), पक्वाशय) (छोटी आत) और मलाशय (बडी आत) में दोष सचय होनेसे भीतर अब्धातु (जल)

की वृद्धि होकर होने वाला जुकाम, नजला, वहुमूत्र, प्रमेह, कोष्ठशूल, कोष्ठ शूलज अतिसार और ज्वर आदि रोग दूर होते हैं।

आमाशय, पक्वाशय और बृहदन्त्रमें दोषसंचय होनेपर सेन्द्रिय विष संग्रहीत होता है। फिर विविध विकार उत्पन्न होते हैं। इन सब पर यह रसायन लाभदायक है। बद्धकोष्ठमें इसका उपयोग नही होता, परन्तु मल संगृहीत होनेसे अन्धातु बढ़कर उत्पन्न होनेवाले विकार इस औषधके योगसे निवृत्त होते हैं। कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विषका परिणाम अन्य स्थानमें होकर उत्पन्न होनेवाला प्रमेह और प्रतिश्यायको भी यह दूर करता है। इसके सेवनसे कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विषका शमन होता है। पचनक्रिया बढ़ जाती है; कोष्ठ सबल होता है; और उतान मलसंचय बाहर निकलकर कोष्ठशुद्धि होजाती है।

कोष्ठस्थ मलसंचय प्रमेहका प्रमुख कारण है। प्रमेहोंमें भी विशेषतः पित्तदोषके द्रवत्व धर्मकी वृद्धि होकर उत्पन्न होनेवाले प्रमेहोंमें अर्थात् कालमेह, नीलमेह मांजिष्ठमेह और हारिद्रमेहमें मूत्रका वर्ण काला, नीला, लाल या पीला होनेपर इसका उपयोग होता है। मूत्रके उक्त रंग, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होनेपर भी मूत्रशुद्धि न होनेका भास होना, तृषा, विशेषतः शीतल जल अधिक पीनेकी इच्छा, हाथ-पैरोंके तलोंमें दाह, सर्वांगमें जलन, सर्वांगमें विशेषतः बगल आदि स्थानों में चिपचिपे दुर्गन्धमय प्रस्वेदमेंसे गंधक जलनेके सदृश बास आना आदि लक्षण होने पर हल्दीके साथ अश्विनीकुमार देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्रमें बार-बार मूत्रोत्सर्गकी शंका होती है; बहुत पेशाब होगा; ऐसा लगता है; परन्तु पेशाब करनेके लिये वेग उत्पन्न होनेका प्रयत्न करने और बलपूर्वक किंछने पर भी मूत्रप्रवृत्ति योग्य नही होती मूत्रप्रसेक नलिकामें दाह, क्षोभ या शोथ अधिक न होनें पर भी उक्त लक्षण हों तो, अश्विनीकुमार अनेक उत्तम औषधियोंमेंसे एक है।

कोष्ठमे मलसंचय होकर कोष्ठशूल, अतिसार और ज्वर होने पर अश्विनीकुमार का उत्तम उपयोगहोता है। तीव्र त्रासदायक शूल, उदरमें शूल, उदरमें छुरे मारनेके सदृश वेदना, उदरमें दर्द होकर मरोड़ा आना और बार-बार शौच जानेका भास होना, शौच जाने पर प्रवाहण करने पर थोड़ा जलमय किंचित् मल निकलना, इस तरहके त्रासके हेतुसे ज्वर आना, ज्वर अधिक तीव्र नहीं होता; परन्तु मन्दज्वरमें भी त्रास अधिक होना आदि लक्षण होनेपर अश्विनीकुमार उत्तम आषधि है।

विषम ज्वरोंमें एकाहिक, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरोंमे यदि पित्तदोषका प्राधान्य हो, तो भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ अश्विनीकुमार रस देना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

[१०६] हरिशंकर रस।

विधि--अभ्रक भस्म और रससिंदूर २-२ तोले और नीलेथोथेका फला

१ तोला मिलावें। फिर आवलेके स्वरस और हल्दीके क्वाथमें ७-७ दिनतक खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली से प्रारम्भ कर ३ गोली तक बढ़ावें। अनुपानमें जल, त्रिफला और शहद, अडूसेका रस, मिश्री और नागरबेलका पान अथवा तिलका तैल लें।

उपयोग—यह रस प्रमेह नाश करनेमें बहुत उपयोगी है। पूय प्रमेह (Gonorrhoea), प्रमेहकी तीव्र वेदना, पेशाबमें आता हुआ रक्त और पीप, पेशाबमें जलन आदि लक्षणोंको दूर करता है। गोली देकर ऊपर ४ तोले तैल या आवलोंका फाण्ट या नीबूका रस पिलानेसे वमन, घबराहट कुछ भी नहीं होती, और ७-८ घण्टेमें ही तीव्र जलनकी शांति होती है। नीला पीनवालेको घी, शक्कर, हींग, और बेसनकी वस्तुएं नहीं देनी चाहियें।

आवलेके स्वरसकी अधिक भावनासे नीलेथोथेकी वमन करानेकी शक्तिका दमन होता है और औषधि पूरा लाभ करती है। यदि आवलेके स्वरसकी भावना कम दी जायगी, तो औषधि-सेवनसे बेचैनी उत्पन्न होगी।

सूचना—इस औषधिके सेवनके पश्चात् ३ घण्टे तक भोजन, दूध, चाय या काफी कुछ भी न लें। आवश्यकता हो, तो थोड़ा ठण्डा जल पीवें।

१०७ बृहद्वंगेश्वर रस

विधि—वंग भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रौप्य भस्म, कपूर और अभ्रक भस्म १-१ तोला, तथा सुवर्ण भस्म, मक्ता पिष्टी ३-३ माशे लेकर यथाविधि मिलालें। फिर भांगरेके रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (रसे० सा० सं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें २ बार गाय या बकरीके दूध अथवा दही या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके साध्य और असाध्य प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वातपित्त और कफप्रधान संग्रहणी आदिदोष मन्दाग्नि, अरुचि, बहुमूत्र, मूत्रातिसार, स्तम्भनका अभाव और योनिरोग आदिको दूर करता है, शरीरको पुष्ट बनाता है, बल, ओज, तेज, वर्ण और रुचि उत्पन्न करता है। वीर्योत्पत्ति और वृद्धिके लिये यह अति लाभदायक है। शुक्रस्थान और उनसे सम्बन्ध वाली वातवाहिनियोंको सुदृढ़ बनाता है, तथा शुक्रक्षयजन्य हृदयकी निर्बलताको दूर कर हृदयको पुष्ट बनाता है। यह रस बालक, युवा, और वृद्ध, सबके लिये हितकारक है। अति व्यवायसे उत्पन्न शुक्रक्षयकी यह उत्तम औषधि है।

[१०८] प्रमेहान्तक वटी।

प्रथम विधि—वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, रूमीमस्तंगी, ईसस (कुंदरू), राल, शीतलमिर्च, इलायची, और हल्दी, सब ओषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर चन्दनके तैलमे मर्दन कर मटरके समान गोलियां वना लेवे।

(आ० नि० मा०)

वक्तव्य—इस वटीमे तैलकी मात्रा अत्यधिक होती है। इस हेतुसे हम १६ तोले ओषधियोमे २ तोले चन्दनका तेल मिलाते है। फिर २ तोले रसौतका जलकर उसमे ३ घण्टे खरल करके गोलिया वांधते है।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ समय जलके साथ देवे। सुबहके समय २ माशे कतीरा गोद साथमें देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

उपयोग—यह वटी पूयप्रमेह, पेशाबमें जलन, पेशावमे पीप आना, पेशाब वूद-वूद आना, मूत्रनलिकामे शोभ इत्यादि सब प्रकारके दोषोंपर अति उपयोगी है। एक दो दिनमे जलन शांत होती है और पीप तथा शोथ ५-७ दिनमें दूर होते है। नये सुजाककी वेदना इससे तत्काल दूर होती है। यदि रोग वढ़ गया हो, तो निर्मूल नही कर सकती परन्तु दर्दको शांत कर देती है।

दूसरी विधि—वंग भस्म १ तोला, लोह भस्म १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १॥ तोला, अकलकरा ३ माशे, नारियलकी गिरी १ तोला, छुआरा १ तोला, केशर ४ माशे, बादामकी गिरी ९ माशे, जायफल १ तोला और मिश्री ३ तोले लें। पहिले वंगभस्म आदि तीन दवाइयोंको अलग रख शेष ७ द्रव्योंको कूटकर, कपड़छान चूर्ण करें। फिर चूर्णके साथ वंग और लोहभस्म खरलकर शिलाजीतके जलमें घोटकर मटरके समान गोलियां बना लेवें।

(चि० चं०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके प्रमेह रोगोमे उपयोगी है। थोड़े दिन सेवन करनेसे प्रमेहके सब प्रकारके दोष निर्मूल होकर वीर्यकी शुद्धि होती है। वहुमूत्र, स्त्रियोंका सोमरोग, वृद्धावस्थामे मूत्राशयकी शिथिलताके कारणसे वार-वार पेशाब करना, मूत्रमें जलन, पीलापन और मूत्रदोषके कारण शिरदर्द, चक्कर आना, अरुचि, मन्दाग्नि, निर्वलता, सबको नष्टकर शरीरको नीरोग और सुदृढ़ वनाती है।

तीसरी विधि—कच्चा विरोजा १ सेर लेकर १०१ बार जल मिलाकर धोवें। फिर संगजराहतका कपड़छान चूर्ण १ सेर मिलाकर झाड़वेरके समान गालियां वांध।

(श्री पं० मंगुलालजी)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार दें। रात्रिको तुख्म मलंगा १ तोला कोरे

मिट्टीके बरतनमें गुडके शर्बतमें भिगो दें। गुडका शर्बत इतना करें कि सुबह पेट भर जाय। सुबह छानकर टट्टी जानेके पहिले पीलें। फिर १ घण्टे बाद ताजे जलके साथ १ गोली लें, और शामको टट्टी जानेके पीछे १ गोली जलके साथ लें। शामको गुडका शर्बत न लें।

सूचना—सुबह ओषधि लेने पर ३ घण्टे तक भोजन न करें।

उपयोग—सुजाक (Gonorrhoea), नये और पुराने रोग इस गोलीके १७ दिन सेवनसे दूर होते हैं। भोजनमें बेसनकी रोटी, घी, चावल और बूरा मात्र लेवें। नमक और दूधका त्याग करें।

चौथी विधि—हीरादोखी गोंद १५ तोले, अफीम १ तोला, दालचीनी ४ तोले, जसद भस्म या सल्फेट आफ् जिंक (Zinc Sulphate) १२ तोले और कपूर ६ तोले लेवें। सबको मिला जलके साथ खरल करके २-२ रत्ती गोलियां बनावें।

मात्रा—१-२ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—सुजाक रोग जीर्ण होने पर पीप आना, मूत्रप्रसेकनलिकाशोथ, जलन, मन्दाग्नि, सन्धिवात, नेत्रकी कमजोरी आदि उपद्रव होते हैं। इन सबका शमन इस वटीके सेवनसे होजाता है, और रक्तमें रहे हुए कीटाणु भी नष्ट होते हैं। शांति-पूर्वक पथ्य पालनसह कुछ समय तक ओषधि लेनी चाहिये।

[१०६] जातिफलादि वटी [मधुमेह]

विधि—जायफल, जावित्री, लौंग, केशर, धतूरेके शुद्ध बीज, शुद्ध अफीम, सब समभाग लें शुद्ध शिलाजीत सबके समान और लोहभस्म शिलाजीतसे आधी लें। सबको यथाविधि मिला शिलाजीतके जलमें खरलकर उडद प्रमाण गोलियां बनालें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार गुडमारके अर्क या चूर्ण और गायके दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी मधुमेहमें प्यास और पेशाबकी शक्कर कम करके दर्दको दूर करती है। अतिसार और मूत्रातिसारमें भी हितकर है। इसका कार्य बढी हुई तृषा का शमन करने, इक्षुमेह और मधुमेहमें मूत्रके साथ जानेवाली शर्कराको कम करने और मूत्रको नियमित बनानेका है। मूत्रातिसारमें बार-बार आध-आध घण्टे पर पेशाब आता है, उसे यह नियमित बनाती है। वृद्धावस्थामें मूत्राशयकी निर्बलताके कारण बार-बार थोडा-थोडा मूत्र आना, मधुमेह होना, ४० वर्षसे बडी आयु वालोंके मधुमेह जीर्ण होनेपर बार-बार जलपान और बार-बार लघुशंका होना, शरीर निस्तेज, निर्बल और कृश हो जाना, मानसिक उत्साह भी नष्ट होजाना आदि लक्षण होते हैं। उसपर यह अच्छा कार्य करती है। मधुमेह जीर्ण होनेपर प्रमेहपिटिका (अदीठ-

Carbun le) उत्पन्न हुआ हो तो, उसे भी यह नष्ट करती है।

इस औषधसे हृदय, वातवाहिनी और मस्तिष्कपर उत्तेजक, शामक और पोषक असर होता है; यकृत्‌की शक्कर बनानेकी निरंकुश क्रिया मर्यादित होती है; तथा शरीर, इन्द्रिय और मन, तीनों सबल होकर रोगको शनैः शनैः नष्ट करती है।

इस ओषधिमें अफीम तिक्त शर्कराका रूपान्तर करनेवाली सप्तधातुशोषक, उत्तेजक, वमनशामक, मादक, स्वेदजनक, तृषाशामक और स्तम्भक है। लोह भस्म मधुर, कसैले गुणवाली, तृषा शामक, स्तम्भक, यकृत् स्थान, रक्त और शुक्रको बल देनेवाली है। शिलाजीत तिक्तगुण वाला, कटुविपाकी, रसायन, कफमेदघ्न, मूत्र और धातुपरिपोषक क्रमको नियमित करनेवाला है। धतूरेकेबीज हृद्य, पीड़ाशामक, नाडीशोधक, मादक और अफीमकी बलकोष्ठ करनेकी शक्तिको कम करने वाले हैं। जायफल, जावित्री, लौंग और केशर हृद्य, वृष्य, तृषाशामक और स्निग्ध हैं।

[११०] चन्दनादि लोह (प्रमेह)

विधि—सफेद चन्दन, सेमलके फूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत अनन्तमूल, कृष्ण अनन्तमूल, नागरमोथा, खस, मुलहठी, आंवला, सनाय, वंशलोचन, भारंगी, देवदारु, बड़ी हरड़का छिलका, इन १८ ओषधियोको, समभाग मिला कूटकर कपड़छान खूब महीन चूर्ण करे। फिर सबसे दुगुनी लोह भस्म मिलाकर खरल कर लेवे। (यो० र०)

मात्रा—२ से ३ रत्ती तक दिनमे २ बार शहदके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे २० प्रकारके प्रमेह, श्वास, कास, जीर्णज्वर, अर्श और कामला आदि रोग नष्ट होते हैं। जब मस्तिष्कमें उष्णता, पेशाबमें पीलापन, निस्तेजता, गाढ़ निद्रा कम आना, आलस्य बना रहना, मन्द-मन्द ताप रहना, उत्साहका अभाव होना, पचनशक्ति मन्द होना, श्वास, कास आदि लक्षण उपस्थित हों, तब इस चूर्णके सेवनसे सत्वर लाभ होता है।

इस रसायनमें लोहभस्म प्रधान औषधि है। लोहभस्मके साथ अन्य औषधियां दीपन-पाचन और मूत्रसंस्थापर उपकारक मिलायी हैं। इस हेतुसे यह रस हृद्य, यकृद्-बल्य, रक्तपौष्टिक, रक्तप्रसादन, दीपन, पाचन और मूत्रजनन बना है। इन गुणोके हेतुसे प्रमेहादि रोगोंपर उपकारक होता है।

वातज, पित्तज और कफज प्रमेहोंकी उत्पत्ति प्रायः अपचन, पाण्डुता और रक्तविकृति होनेपर होती है। इन प्रमेहोंमें पेशाबके साथ श्लेष्मा, वसा, विविध क्षार, शुक्र, रक्त, रक्तरंग, पित्त और मज्जाद्रव्य जाता है। इनमेंसे पित्तज और कफज मेहोंपर चन्दनादि लोहका उपयोग होता है।

वक्तव्य—यदि अग्निमांद्य और पाण्डुताके साथ जीर्ण मलावरोध भी हो,

तो इस रसका अधिक उपयोग नहीं होता। ऐसी अवस्थामें पहले उदर और पचनसंस्थाके शोधनार्थ आरोग्यवर्द्धिनी त्रिफलाके फाण्टके साथ दीजाती है। एवं हस्तमैथुनादि कृत्रिम उपायोद्वारा शुक्रमेहकी संप्राप्ति हुई हो, तो भी इस रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये। उसपर पहले वीर्यशोधन वटी और फिर वृद्धदण्डचूर्ण या वीर्यस्तम्भन वटीका प्रयोग करना विशेष सफल रहता है।

कामला रोगकी संप्राप्ति प्राय पित्ताशयनलिकाप्रदाह या पित्तनलिकामें अवरोध होनेपर होती है। कामला उत्पन्न होनेपर नेत्रकी श्लैष्मिककलामें पीलापन, मूत्रमें पीलापन और मल प्राय सफेद मैले रंगका तथा रक्तमें पित्त अधिक मिल गया हो, तो त्वचामें पीलापन आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसकी प्रारंभावस्थामें उपचारके २ प्रकार हैं। पापडखार (या सोडा बाई कार्ब) को दही या नीबूके रसमें मिलाकर पिला दें और रोगीको दही भातपर रखना। किन्तु जिन रोगियोंको ज्वर, शोथ, संधिवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त या कफप्रधान श्वासरोगादि हो, तो उनके लिये क्षार और तक्रप्रधान उपचार नहीं होता। उन रोगियोको चंदनादि लोह या अन्य लोह कल्प दिया जाता है और दूधपर या दूध भातपर रोगीको रखा जाता है। यदि पित्तनलिकामें अवरोध हो और पित्ताशयमें वेदना होती हो, तो अनुपानरूपसे मूलीके पानोंका रस ४ तोले दिया जाता है।

श्वासरोगकी उत्पत्ति कफ-धातुकी विकृति और पचनसंस्थाकी विकृति होनेपर अधिक होती है। किसी किसीको रक्तके भीतर मूत्रमें जानेवाले मल द्रव्यका संग्रह होता है। फिर पाण्डुता आकर श्वास उपस्थित होता है। मूत्रमें पीलापन, हृदयमें धडकन होना, थोडासा परिश्रम करनेपर श्वास भर जाना, निर्बलता, मुखमण्डलपर निस्तेजता, शारीरिक उत्ताप कम रहना, शीत और उष्ण सहन न होना, अग्निमांद्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर चन्दनादिलोह व्यवहृत होता है।

मूत्रविष या आमविष जब रक्तादि धातुओंमें लीन होता है, तब मन्द मन्द ज्वर दीर्घकालतक बना रहता है। इस प्रकारके ज्वरमें शारीरिक उत्ताप थोडा परिश्रम करने पर या रात्रिको प्राय बढजाता है। रात्रिको ९९° तक होजाता है। सुबह ९७° या इससे भी कम होता है। अग्निमांद्य, मलावरोध, कफप्रकोप, कास, शिरदर्द, आलस्य बना रहना पेशाबमें पीलापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकारपर चन्दनादि लोह (प्रमेह) या चन्दनादि लोह (ज्वर) का प्रयोग होता है। यह चूर्ण मूत्रशुद्धि करानेमें विशेष सहायक है। ज्वरपर लिखा हुआ चन्दनादि लोह आमपाचन और दीपन गुण विशेष दर्शाता है। अत जो विशेष सहायक हो, उसका प्रयोग करना चाहिये।

अर्श रोगकी उत्पत्ति प्राय अजीर्ण रोगके पश्चात् मल, मूत्रावरोध, गुदनलिका और बृहद् अन्त्रकी श्लैष्मिककलामें उग्रता, उदरमें वायु भरा रहने और रक्तमें विषवृद्धि होनेपर होती है। यह ओषधि मूल कारणरूप मूत्रावरोधादिको दूर करती है और

रक्तका प्रसादन करती है। इस हेतुसे अर्श रोगवालोंके लिये हितावह है। तक्र अनुकूल हो तो तक्रके साथ चंदनादि लोहका सेवन कराना चाहिये।

(१११) त्र्यूषणाद्य लोह।

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चव्य, चित्रक बिड़नमक, बावची, सेंधानमक, कालानमक, और लोह भस्म, ये १३ ओषधियां सम भाग लें। काष्ठादि ओषधियोंके कपड़छान चूर्णके साथ लोह भस्म मिला खरलकर बोतलमें भर लें। (यो० र०)

मात्रा—१-१ माशा दिनमें २ बार घी और शहदके साथ लें।

उपयोग—यह औषध मेदरोग (Obesity), प्रमेह, कफवृद्धि और इस कारणसे होनेवाले कुष्ठ आदिको दूर करती है। आहार-विहारमें नियमका आग्रह नहीं है। फिर भी सुबह-शाम घूमनेको निकले, तथा घृत, शक्कर और चावल कम खायें, तो लाभ जल्दी होता है। यह लोह अग्निको प्रदीप्त करा तथा मेदोवृद्धिका ह्रास करा (मेदोत्पत्तिको कम करा) शरीरको बलवान और तेजस्वी बनाता है।

(११२) प्लीहान्तक गुटिका।

विधि—फिटकरीका फूला, सोहागका फूला, गिलोय सत्व, लोह भस्म और शंख भस्म १-१ तोला तथा एलुआ और शुद्ध गन्धक २-२ तोले लें। सबको मिला घीकुंवार के रसमें १२ घण्टे खरल करके मटरके समान गोलियां बनावें।

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ बार निवाये जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी प्लीहावृद्धिमें अति प्रभावशाली है। एवं यकृद्वृद्धि, उदरशूल, कामला, प्लीहावृद्धिसे होनेवाला ज्वर और मलावरोधको दूर करती है। बालक और बड़े, सबको लाभदायक है। बहुत बढ़ी हुई तिल्ली भी थोड़े ही दिनोंमें कट जाती है, और पचनक्रिया सुधर जाती है। इस वटीके सेवनकालमें गुड़ शक्कर वाले भोजनका त्याग करना चाहिये।

(११३) आरोग्यवर्द्धिनी वटिका।

प्रथम विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म १-१ तोला, त्रिफला ६ तोले, शुद्ध शिलाजीत ३ तोले, शुद्ध गूगल ४ तोले, चित्रक-मूलकी छाल ४ तोले और कुटकी २२ तोले लें। सबको यथाविधि मिला नीमके पत्तोंके

रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बांधें ।* (र० र० स०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २ बार दूध, जल, त्रिफलाके हिम । शोथपर पुनर्नवाका क्वाथ, पुनर्नवादि क्वाथ, या मूत्रकषाय, कब्जसह रक्तविकारमें स्वादिष्ट विरेचन । इस तरह अन्य विकारोंपर रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

उपयोग—यह वटी सम्पूर्ण प्रकारके कुष्ठ तथा वात, पित्त और कफोद्भूत विविध ज्वरोंका नाश करती है । यह गुटिका पाचन, दीपन, पथ्यकारक, हृद्य, मेदोहर, मलशुद्धिकर, अत्यन्त क्षुधावर्द्धक और सामान्यतः सब रोगोंमें हितकारक है । श्री नागार्जुन योगीने सब रोगोंके प्रशमनके लिये यह तैयार की है ।

इस गुटिकाका मुख्य उपयोग कुष्ठ रोगोंमें होता है । इसके गुणपाठके प्रारम्भमें ही 'हन्ति कुष्ठान्यशेषेण' कहा है । फिर विविध ज्वर आदि रोगोंपर उपयोग होनेका उल्लेख किया है । ऊपर-ऊपरसे विचार करनेपर परस्पर एक दूसरेसे विरुद्ध भासमान व्याधियोंमें किस तरह आरोग्यवर्द्धिनी कार्य कर सकेगी, ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है । अतः इस विषयमें कुछ अधिक विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण करना चाहिये ।

कुष्ठकी सम्प्राप्ति, आयुर्वेदके मतानुसार वात आदि तीनों दोष, अत्यन्त दुष्ट होकर त्वचा, रक्त, मांस और अम्बुधातुके दुष्ट होनेपर होती है । द्रव्य संग्रह सप्तकसे कुष्ठकी उत्पत्ति होती है । वात आदि दोष जो कहे हैं, उनमें भी वातविकृति पहिले होनेसे वात आदि' लिखा है । फिर अन्य-अन्य दोष प्रकुपित होकर रक्त, मांस अम्बुधातु शनैः शनैः दुष्ट होनेपर कुष्ठ रोग निर्माण होता है ।

७ महाकुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ, सब बृहदन्त्रकी विकृति होनेपर उत्पन्न होते हैं । बृहदन्त्रका कार्य सम्यक् न होनेसे उसमें मलावरोध उपस्थित होता है । फिर बृहदन्त्र और लघु अन्त्रमें वायु दुष्ट होता है । इस तरह पचनार्थ आवश्यक पित्त विकृति होता है । बृहदन्त्रमें पुरःसरण व्यवस्थित होनेमें सहायक कफ द्रव्य दूषित होजाता है । फिर मलके आगे सरकनेमें देरी होती है । परिणाममें सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होकर वह अन्तस्त्वचा और रक्त-मांस आदि धातुओंमें शोषण हो जाता है, या सूक्ष्म परमाणुओंमें शामिल होकर धातुओंको दुष्ट बनाता है । फिर उस स्थानमें वातविकृति होती है,

*मूल ग्रंथमें आरोग्यवर्द्धिनीका पाठ निम्नानुसार एक ही है । किंतु वर्तमानमें वैद्य-समाज शब्दार्थभेद करके दो प्रयोग बनाते हैं ।

"रसगन्धकलोहाभ्रशुल्वभस्मसमांशकम् ।
त्रिफला द्विगुणा योज्या त्रिगुणं तु शिलाजतु ॥१॥
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम् ।
तिक्ता सर्वसमाना सर्व संचूर्ण्य यत्नतः ॥ २॥
निम्बवृक्षदलाम्भोभिर्मर्दयेद्द्विदिनावधि ।
ततश्च वटिका कार्या राजकोलफलोपमा ॥३॥

वह शनैः शनैः समस्त शरीरमें व्याप्त हो जाती है; और वह प्रकुपित दोष कुष्ठको उत्पन्न करता है। लघु अन्त्र और बृहदन्त्र, ये वायुके प्रमुख स्थान हैं।

आरोग्यवर्द्धिनीकी रचना सामान्यतः लघु अन्त्र और बृहदन्त्रकी विकृतिको नष्ट करनेवाली है। बृहदन्त्र और पक्वाशयमें स्वयं दुष्टिसे उत्पन्न सेन्द्रिय विषके हेतुसे कुष्ठ उत्पन्न होता है। इस हेतुसे आरोग्यवर्द्धिनी कुष्ट रोगमें लाभ पहुंचाती है। कुष्ठोंमेंसे जब गलत्कुष्ठावस्थाकी प्राप्ति होती है; तब इसका उपयोग नहीं होता। बिलकुल प्रथमावस्थामें इसकी योजना करनेसे अति जल्दी और निश्चित सफलता मिल जाती है। यह वटी देनेपर रोगीको केवल दुग्धाहारपर रखना चाहिये, (यह औ० गु० ध० शा० का मत है)। औषधि देनेपर वस्तिका भी उपयोग करना चाहिये। प्रारम्भमें कुछ दिन केवल जल-पानलंघन करें, तो दुग्धाहारकी अपेक्षा भी अधिक लाभ होता है। आरोग्यविद्धनीका उपयोग सब कुष्ठोंपर होता ही है। परन्तु विशेषतःव ातप्रधान ओर वातकफप्रधान कुष्ठ—कपाल मण्डल, एककुष्ठ, किटिभ, विपादिका, चर्मदल और अलसकपर अधिक लाभ पहुंचता है। कुष्ठमें हरताल भस्म भी विशेष उपयोगी है। परन्तु बद्धकोष्ठ, अग्नि-मान्द्य, मूत्रावरोध आदि लक्षण अधिक होनेपर हरताल का उपयोग नहीं होता।

शरीणपर विवर्ण, रूक्ष और कठोर धब्बे, त्वचोकस्पर्श-ज्ञानका लोप होना, बार-बार रोंगटे खड़े होना, अति प्रस्वेद आना, ये त्वचाविकृतीके लक्षण हैं। इस अवस्थामें धब्बे अतिशय लाल और पके हुए गूलरके फलके सदृश उठे हुए हों, तो आरोग्यवर्द्धि-नीका कुछ भी उपयोग नहीं हो सकेगा। ऐसे समयपर गन्धक रसायनका कुछ उपयोग होता है। भयकंर कण्डू खुजानेपर धब्बे होना, उनमें पूय पड़ना आदि लक्षण होनेपर आरोग्यवर्द्धिनी मंजिष्ठादि कषायके साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है। धब्बे कठोर, महमें भयंकर शुष्कता, धब्बेके स्थानपर कठोर त्वचा निकल आना, या फूटने के सदृश कठोर होजाना, उनपर छोटी-छोटी पिटिकाएं होना, सुई चुभानेके सदृश या फूटनेके सदृ-श वेदना होना आदि लक्षण होनेपर हल्दीका क्वाथ या दूधके साथ आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये। ये सब लक्षण मांसाश्रित दोषके हैं। रोग इससे आग बढ़ जानेपर इस औष-धका उपयोग नहीं होता है।

वातपित्त कफोद्भूत नाना प्रकारके ज्वर में इस गुटिकाका उपयोग होता है। इस स्थानपर प्रत्येक दोषसे उत्पन्न भिन्न-भिन्न ज्वर होना चाहिये। इस स्थानपर संक्रामक और सान्निपातिक ज्वर विवक्षितनहीं है। अर्थात् संतत आदि ज्वर और आन्त्रिक आदि सन्निपातोंमें इस रसायनका उपयोग नहीं होता। केवल वातविकृति, केवल पित्तविकृति अथवा केवल कफविकृतिसे उत्पन्न ज्वर पर इस वटीका प्रयोग करना चाहिये। यह दोष स्थूल धातुगत होनेपर जो विविध ज्वर उत्पन्न हुए हों उनपर इसका उपयोग होता है।

आरोग्यवर्द्धिनीका कार्य विशेषतः बृहदन्त्रशोधक और सेन्द्रिय विषनाशक होनेसे बृहदन्त्र या समस्त मध्यम कोष्ठमें स्थित दोषोंसे उत्पन्न अनियमित ज्वरोंपर इसका

उपयोग होता है । बद्धकोष्ठ जनित ज्वर, अपचन-जनित ज्वर, दीर्घकाल तक बार-बार उलटकर आनेवाला ज्वर और पित्तके वैषम्यसे उत्पन्न ज्वर, सब पर यह हितकर है।

बार-बार मुहमें जल छूटना, झागयुक्त बडी-बडी वमन होना, उदरमें जडता, क्षुधामांद्य, भोजन करनेपर तुरन्त वमन होना पानी, सफेद चिपचिपा कफ गिरना आदि लक्षणोंके साथ मलमूत्रोत्सर्ग सम्यक् न होते हो, तो आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये।

यह गुटिका पाचनी अर्थात् मल आदिका पचन करानेवाली है । मल आदिमें जितना अन्न रूपान्तर योग्य हो, उतनेका रूपान्तर कराती है । इसका अर्थ यह है कि बृहदन्त्र और लघुअन्त्रमें बहुत अन्नांश अपक्व रहजाता है, मध्यम अन्त्रमें कितनाही किट्ट और कुछ सारभाग शेष रह जाता है । इनमेंसे उपयोगी अंशका सम्यक् रूपान्तर करा सशोषण कराना चाहिये । शेष किट्ट भागको तुरन्त शरीरसे बाहर फेंक देना चाहिये। वर्तमानमें किट्टको सत्वर बाहर निकाल देनेके लिये स्निग्ध विरेचन का उपयोग होता है। परन्तु उसका इष्ट परिणाम तुरन्त नहीं आता। ऐसी परिस्थितिमें इसको त्रिफलाके हिमके साथ देना अधिक हितकारक है । अति जीर्ण बद्धकोष्ठमें मध्यम अन्त्रमें जडता आकर मलसंचय अति होनेपर उस कल्प उपयोगी है ।

यह गुटिका दीपनी अर्थात् पाचक रसको उत्तम प्रकारसे और योग्य परिमाणमें उत्पन्न करनेवाली है । पाचक आदि पित्तका परिमाण कम होने या पित्तमें पाचकांश कम होनेपर अपचन उत्पन्न होता है । यह विकार वर्तमानमें बहुत बढ गया है । इस विकारमें पाचक अर्थात् अम्ल औषधिका उपयोग किया जाता है, परन्तु उसका परिणाम सामयिक होता है । यह व्याधि इस तरहकी औषधिसे यथार्थमें दूर नहीं होती और सच्ची क्षुधा भी नहीं लगती । आरोग्यवर्द्धिनीका कार्य प्रसाद धातुओं पर उनके वैषम्यको नष्ट करनेके लिये होता है, इससे धातु सबल बनती है, उनको शक्तिकी प्राप्ति होती है, और वे अधिक कार्यक्षम होती है। इदन प्रसाद धातुओंकी क्रियापर भिन्न-भिन्न रसोंका परिणाम अवलम्बित है, उन-उन रसोंकी उत्तम उत्पत्ति सम्यक् धातुकार्यसे होती है, और कार्य भी उत्तम प्रकारसे होने लगता है । इस तरह इसका दीपन-कार्य स्थिर स्वरूपका होता है । इस वटीका कार्य केवल पाचकाख्य रस उत्पत्ति करना ही नहीहै, अन्य स्थूल धातुओंके भीतर पूर्व धातुओंमेंसे परधातुनिर्माण या रूपान्तर होनेमें कारणभूत जो धात्वन्तर अग्नि है, उसे प्रदीप्त करनेका भी है ।

आरोग्यवर्द्धिनी हृद्य है । हृद्यके दो अर्थ आयुर्वेदमें मिलते हैं, हृदयको हितकारक और मनको प्रिय (मनको हर्ष देनेवाला) । गुणधर्म-शास्त्रमें दूसरा अर्थ विवक्षित नहीं है, प्रथम अर्थ ही इष्ट है । इसका कार्य हृदयकी निर्बलतामें उत्तम प्रकारसे होता है । हृदयेन्द्रियमें स्पष्ट विकृति होनेपर इसका उपयोग हुआ हो, ऐसा प्रतीतिमें नहीं आया । परन्तु हृदयकी अशक्ति और उससे उत्पन्न शोथपर उपयोग हुआ है । इस अवस्थामें आरोग्यवर्द्धिनी और पुनर्नवा, ये दो शोथघ्न औषधि अति प्रशस्त है । इसका हृद्य परिणाम

जीर्ण अवस्थामें प्रतीत होता है। अभ्रकमिश्रित लक्ष्मीविलास, समीरपन्नग और सूत-शेखरके समान तीव्र विकारमें हृदयको उत्तेजना देकर हृद्यत्व उत्पन्न करना, यह कार्य इससे नहीं होता। परन्तु जीर्ण सर्वांग शोफके समान विकारपर इसका प्रयोग होता है। सर्वांग शोफमें हृदयको शक्ति देना (शक्तिका संरक्षण करना) और मूत्र-मार्ग-से जलांशको निकाल देना, ये दोनों कार्य इससे होते हैं। इस तरह पाण्डुरोगमें हृद्य कार्य प्रतीत होता है। यकृद्वृद्धिमें हृदय अशक्त होने पर आरोग्यवर्द्धिनी दीजाती है।

मेदोवृद्धि दो प्रकारसे होती है रुधिरवाहिनियोंमें कठोरता आकर रक्तमें बल कम होनेपर मेद अधिक उत्पन्न होता है, और निकण्ठमणि (बालग्रैवेयक ग्रंथि (Thymus Gland) निर्वल बननेपर पचन-व्यापार मन्द होकर मेदोत्पत्ति होती है। आयुर्वेदकी उपत्तिके अनुसार धातुक्रियाके योगसे मेदपर्यन्त धातुएं वनती जाती हैं। उसमें मेद आवश्यकतासे अधिक वनता है। परिणाममें मनुष्य बिलकुल निर्बल बन जाता है; उसपर आरोग्यवर्द्धिनीका कार्य मेदोविनाशक होता है। यह कार्य दीपन-पाचन आदि व्यापारको अच्छी तरह वढ़ाकर होता है। साथ साथ इससे मेदका रूपान्तर होकर अन्य धातु भी उत्तम रूपसे बननेमें सहायता मिल जाती है।

मलशुद्धि और विरेचनमें महदन्तर है। विरेचन कर्मका परिणाम सामयिक और तीव्र स्वरूपका होता है। इस हेतुसे उदर आदि व्याधियां या शिरःशूल, जड़ता, स्पन्द आदि तीव्र रोगोंमें जब तत्काल मध्यम कोष्ठको शुद्ध करनेकी आवश्यकता हो, तव विरेचनका प्रयोग करना पड़ता है। तीव्र विकार न होनेपर निद्रानाश आदि चिरकारी रोगोंमें तीव्र विरेचनका प्रयोग नहीं होता। कितने ही विकार ऐसे चमत्कारिक और दीर्घ द्वेषी होते है। कि, उनका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। रोगीको भयंकर त्रासहोता रहता है; परन्तु क्या होता है, यह स्पष्ट रूपसे बाहरसे नहीं जाना जाता। अंग टूटता है; परन्तु स्पष्ट ज्वर नहीं रहता। काम करना पड़ता है किन्तु उत्साह नहीं होता; भोजन करना पड़ता है; परन्तु क्षुधा लगकर रुचिपूर्वक नहीं खाया जाता। चाहे वैसा रुचिकर और स्वादिष्ट भोजन आगे आया, स्वाद नहीं आता। हंसना, विनोद करना, सब होते हैं; परन्तु मनमें प्रेम नहीं होता; केवल देहधर्म समझकर सब क्रियाएं होती रहती हैं। मुखमण्डल पाण्डुवर्णका निस्तेज, शुष्क-सा और उत्साहहीन होजाता है; देह भार-भूत सी भासती है। ये सब लक्षण न्यूनाधिक परिमाणमें मलावरोधसे होते हैं। इस मलावरोधके अनेक कारण हैं। ऐसे विकारमें विरेचनका उपयोग नहीं होता; वल्कि अपाय होता है। मल शोधन करनेवाली सौम्य औषध देनी चाहिये। यह कार्य आरोग्यवर्द्धिनीसे होता है।

मलावरोधके अनेक प्रकारोंमेंसे एक प्रकारमें वृहदन्त्रके भीतर मल संचय होकर तहपर लग जाती है। फिर मलावरोधसे सेन्द्रिय विष उत्पन्न होकर शोषण होजाती है; जिससे वृहदन्त्रकी दीवारें कठोर वन जाती हैं। दीवारोंकी मृदुता और कार्यकारित्व

स्त्रन होता है । ये दोनो अति त्रासदायक हैं । ऐसी स्थितिमें विरेचनका उपयोग नही होता । बस्ति देकर अन्न शोधन करना अति हितावह माना जाता है । एक ओर बस्ति-में तथा दूसरी ओर आरोग्यवर्द्धिनीसे शोधन करनेसे मलकी तह पृथक् होनेमे सहायता मिल जाती है, एव मलकी शुष्क तहोके पीछे सचित विष निर्विष होने लगते हैं । फिर बृहदन्त्र मुलायम और कार्यक्षम होती हैं । आरोग्यवर्द्धिनीके साथ अनुपान रूपसे त्रिफला या अन्य सशोधक औषध देनी चाहिये ।

मलावरोधकी आदत नष्ट कर मलशुद्धि करना यह एक प्रकार है । दूसरे प्रकार-का मलशोधन भी आरोग्यवर्द्धिनीसे हो जाता है । दातोमें सचित मल, नाकमें सचित किट्ट और दुर्गन्ध, ये सगृहीत होने पर मुहमेंसे निकलना, नाकमें शुष्कता आना, दातो पर मलकी शुष्क तह होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं । इस विकार पर भी इसका अच्छा उपयोग होता है ।

दतपुप्पुटक (Pyorrhoea) में वातकफप्रधान लक्षण प्रतीत होनेपर आरोग्य वर्द्धिनीका उपयोग हुआ है ।

पुरुष जननेन्द्रियके चारो ओर मणिके ऊपर त्वचाके नीचे सर्वदा एक प्रकारका दुर्गन्धयुक्त मल सगृहीत होजाता है । किन्ही मनुष्योमें यह मल अति सगृहीत होता है, और उसमेंसे अति दुर्गन्ध फैलती रहती है । पुरुषोंके समान स्त्री-जननेन्द्रियसे भी ऐसी ही दुर्गन्ध निकलती रहती है । एव शरीर, बगल, जाघ आदि स्थानोंसे भी कितनोही में दुर्गन्ध निकलती है । ये सब लक्षण उन उन स्थानोंमें विकृत मलसचयसे होते हैं । इन सब पर बाह्य शुद्धिके साथ आरोग्यवर्द्धिनीका बहुत अच्छा उपयोग होता है । इस तरह अन्य धातुओमें मल सगृहीत होनेपर इसका प्रयोग करना चाहिये ।

अग्निमांद्यमें क्षुधा न लगनेपर आरोग्यवर्द्धिनी उपयोगी है । प्रभावशाली कुशल चिकित्सक विविध रोगोमें इसकी योजना करके नि सदेह लाभ उठा सकता है ।

यह गुटिका सर्व व्याधियोंके मल रूप त्रिदोष-विकृति और पचनेन्द्रिय सस्थाकी अशक्तिको दूर करती है । अत मूलग्रथकारने औषधके गुण-पाठमें 'बहुनात्र किमु-क्तेन सर्वरोगेषु शस्यते' और 'सर्वरोग-प्रशमनी' कहा है । इस वटीका उपयोग सब रोगो में होता है । यह वचन शास्त्रदृष्टिसे सुसगत नही भासता, परन्तु ग्रथकारकी भावना-नुसार उनके वचनकी व्यवस्था करनेपर स्पष्टीकरण होजाता है ।

निकण्ठमणिकी विकृति होनेपर देहकी वृद्धिमें प्रतिबन्ध होजाता है । समस्त शरीर गले हुए बैंगनके सदृश शक्तिहीन और नरम-सा भासता है । अगुलिया मोटी, पैर छोटे, बेडौल और भारी तथा शारीरिक प्रगतिका अभाव होजानेसे स्त्री-पुरुषोंको युवावस्था प्राप्त होनेपर भी योग्य चिन्ह न दिखना आदि लक्षण भासते हैं । उसपर इस वटीका प्रयोग हुआ है ।

सर्वांग शोफ विशेषत निकण्ठमणिकी विकृतिसे उत्पन्न होनेपर उसमें विशेष प्रकार-

के चिन्ह होते हैं। अति शोथ, मुख, कण्ठ और हाथ-पैरोंके टखनोंपर विशेष शोथ, अग्निमांद्य, नाड़ीकी मन्द गति, सारे शरीरमें सब व्यापार मन्द होजाना आदि लक्षण भासते हैं। इसपर आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग होता है।

जलोदरके विकारमें इस वटीके मूत्रल और मल शुद्धिकर गुणका उपयोग होने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

वृक्क-विकृतिसे उत्पन्न सर्वांग शोफकी तीव्रावस्थामें पुनर्नवा कृष्ण सारिवा और रेचक क्षार (गोमूत्रक्षार या मेगनेशिया सल्फास आदि) मिश्रण तथा तीव्र मूत्रल औषध आदि दिये जाते हैं। परन्तु तीव्रावस्था निकल जानेपर आगे चन्द्रप्रभा, ताप्यादि लोह और आरोग्यवर्द्धिनी देना हितकर होता है। यदि बद्धकोष्ठ और अपचन ये मुख्य लक्षण हों, तो आरोग्यवर्द्धिनीका प्रयोग करना चाहिये।

प्रमेहके विकारमे अपचन और बद्धकोष्ठ, ये मुख्य कारण या मुख्य लक्षण हों, तो उसपर इसका अवश्य उपयोग होता है।

बद्धकोष्ठका परिणाम आमाशय और पक्वाशयपर तो होता ही है; और अनेक समय फुफ्फुसोंपर भी होता है। बद्धकोष्ठसे शौच शुद्धि न होनेपर बृहदन्त्र फूलता है; तथा सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है। फिर वातप्रकोप होकर श्वासक सदृश विकार होजाता है। ऐसे श्वास रोगपर आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग हुआ है। अत्यन्त त्रासदायक बद्धकोष्ठ और उसके साथ उतना ही त्रासदायक श्वास, इस युग्मपर नय उत्तम ओषधि है। श्वासकुठार या समीरपन्नगका ऐसे बद्धकोष्ठसह श्वासरोगपर उपयोग नहीं होता।

संक्षेपमें आरोग्यवर्द्धिनी बद्धकोष्ठ और कोष्ठगत वातकी नाशक, पाचक, दीपक, मूत्रल, आमपाचक, हृद्य, अन्त्रके सेन्द्रिय विष और कीटाणुओंकी नाशक है। इन गुणोंके हेतुसे यह वटी मध्यम कोष्ठांतर्गत वातप्रधान, कफभूयिष्ठ और क्षीणपित्त दोषोंपर उपयोगी है। यह शोथघ्न, मूत्रल, वातानुलोमक, कोष्ठगत वातशामक, सम्यक् पित्तस्रावक, सेन्द्रिय विषघ्न और गरनाशक गुण दर्शाती है। कुष्ठ, विषमज्वर, अपचन, जीर्ण बद्धकोष्ठ, हृदयकी अशक्तता, मेदोरोग, मलसंचय, देहमें से दुर्गन्ध आना, अग्निमान्द्य, सर्वांग शोफ, प्रमेह और श्वास पर प्रयोजित होती है।

(औ० गु० ध० शा०)

श्री० वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्यने 'सिद्धयोगसंग्रह' में लिखा है कि आरोग्यवर्द्धिनी उत्तमपाचन, दीपन, शरीरके स्त्रोतोंका शोधनकरनेवाली, हृदयको बल देनेवाली, मेदको कम करनेवाली और मलोंकी शुद्धि करनेवाली है। यकृत्, प्लीहा वस्ति-वृक्क, गर्भाशय, अन्त्र, हृदय आदि शरीरके किसी अन्तरवयवके शोथ जलोदर, जीर्णज्वर और पाण्डु रोगमें इस योगसे विशेष लाभ होता है।

यकृत्की वृद्धिके कारण शोथ हो, तो पुनर्नवाष्टक क्वाथमें रोहीड़ाकी छाल और

शरपुंखामूल १-१ भाग अधिक मिलाकर उसके अनुपानसे इसका प्रयोग करें। वृक्क-शोथजन्य सर्वांग शोथ हो तो मूत्रलकषायके साथ देवें। हृद्रोगजन्य शोथ हो, तो आरोग्यवर्द्धिनीके साथ डिजिटेलिस पत्रके चूर्ण 1/2 से १ रत्ती और जंगली प्याज (रेनपल हू) का चूर्ण १-२ रत्ती मिलाकर पुनर्नवादि या दशमूल क्वाथसे देवें।

जीर्ण फुफ्फुसावरण कला (फुफ्फुसावरण) शोथमें इसके साथ शृंग भस्म ४-८ रत्ती मिलाकर भारंगमूल, पुनर्नवा, देवदारु और अडूसेके क्वाथके साथ इसका प्रयोग करें।

मेद कम करनेके लिये रोगीको केवल गायके दूधपर रखकर शार्ङ्गधरोक्त महा मंजिष्ठादि क्वाथके अनुपानसे इसका सेवन करावें।

पुनर्नवाष्टकषाय—पुनर्नवाके मूल, हरड, नीमकी अन्तर्छाल, दारु-हल्दी, कुटकी, परवलपत्र, गिलोय और सोंठ। इनको समभाग मिलाकर किया हुआ क्वाथ। (शा० सं०)।

वक्तव्य—पाण्डु रोगमें यदि दस्त पतले और अधिक होते हों तो इसका प्रयोग न करके पर्पटी योगोंका प्रयोग करना चाहिये। सर्वांग (सर्वसर) शोथमें और उदर रोगोंमें, विशेषतः जलोदरमें रोगीको केवल गायके दूधके पथ्यपर रखकर इसका प्रयोग करना चाहिये।

यकृद्विकारमें आरोग्यवर्द्धिनीके साथ अपामार्ग भस्म और नौसादर मिला देनेसे विशेष लाभ पहुंचता है। मलावरोध, अग्निमांद्य और मन्द-मन्द उदरशूल बना रहता हो, तो ऐसी अवस्थामें आरोग्यवर्द्धिनीके साथ वज्रक्षार मिला दिया जाता है।

मेदोवृद्धिमें देह मोटी हो जाती है, परन्तु बल नहीं होता। थोडे परिश्रममें श्वास भर जाता है, क्षुधा और तृषाके वेगको रोकनेमें अति कष्ट होता है, समयपर भोजन न मिलने पर विविध वातप्रकोपके लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें आरोग्य वर्द्धिनी, शिलासिंदूर और बावचीके चूर्णके साथ दिनमें दो बार देने और ऊपर त्रिफलेका फाण्ट पिलाते रहनेसे शनैः शनैः मेद कम हो जाता है।

रक्तदबाववृद्धि होनेपर कितने ही रोगियोंको नेत्रशूल उत्पन्न होता है। साथ साथ नेत्रमें लाली, शिरमें दर्द, निद्रा बिलकुल नहीं आना, मलावरोध और अति व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे रोगियोंको थोडी-थोडी मात्रामें आरोग्य-वर्द्धिनी अमलतासके गूदाके से सिद्ध किये हुए दूधके साथ दिनमें ३-४ बार देते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें विकार शमन होजाता है।

रक्तदबाव वृद्धि होने पर किसी-किसी स्त्रीको मासिकधर्मके दिनोंमें अति रक्त-स्राव होता है। यदि रक्तदबाव वृद्धि होनेपर भी रक्तस्तम्भन औषध देकर रक्तस्रावको रोक दिया जाय, तो भयंकर शिरदर्द और हृदफूटन उपस्थित होते हैं। अतः मूल कारणको दूर करना चाहिये। उसके लिये आरोग्यवर्द्धिनी तथा चन्द्रप्रभा मिलाकर अमलतासके

सिद्ध किये हुए दूधके साथ दिनमे दो बार देते रहनेसे रक्तस्रावसह रक्तदवाव निवृत्त होजाता है। फिरंग (उपदंश) रोग दूर होजाने पर भी उसका विष, रक्त आदि धातुओंमे लीन होकर रह जाता है। वह मौका मिलने पर विविध प्रकारके उपद्रव उपस्थित करते हैं। इनमेसे पचनेन्द्रिय संस्थामे (अन्त्रमे) व्रणकी प्राप्ति हो जाय, तो संग्रहणी रोग हो जाता है। फिर,अन्त्रक्षयके समान लक्षण प्रतीत होते है। पतला, सफेद दस्त दिनमें २-३ होना; किन्तु मल अत्यधिक गिरना, फिर अति निर्बलता आना, शारीरिक कृशता, दस्तके समय उदरमे पीड़ा होना, पेशावमे पीलापन आदि लक्षण भासते हैं। उस पर आरोग्यवर्द्धिनी दिनमे दो बार चौलाईके मूल, वाकेरी मूल और दूर्वामूलका रस या क्वाथ अथवा अन्य रक्तशोधक क्वाथके साथ देने और खदिरादि तैलका पान करानेसे थोड़े ही दिनोमे रोग निवृत्त होजाता है।

यकृत्‌मेसे पित्तस्राव होनेवाली या पित्ताशयनेमे निकलनेवाली नलिकाके मार्गमे अवरोध होने पर कामला होता है। रोध अधिक न होनेपर कामला धीरे-धीरे होता है। फिर नेत्र, पेशाब, त्वचा, नख और मुखमण्डल पीले होजाते हैं; तथा दाह, अन्नका अपचन, मलावरोध, तृषा, घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते है। उस रोगपर आरोग्यवर्द्धिनी २-२ रत्ती और कुटकी का चूर्ण ३-३ माशे मिलाकर मूलीके रसके साथ दिनमे ३ वार देनेसे विकार सत्वर शमन होजाता है।

यदि कामला रोगकी उत्पत्ति दही और घीके अत्यधिक सेवनसे हुई हो, अधिक अभिष्यन्दि पदार्थके सेवनसे मार्गावरोध, यकृत्‌मे मेदसंचय और यकृत्‌की अधिक वृद्धि हो गई हो,फिर दस्तमें तिलपिष्ठ निभ मल गिरता हो, उदरमें अफारा रहता हो, तथा मुख, नेत्र, मूत्र आदि पीले हों, तो आरोग्यवर्द्धिनी मूलीके रसके साथ दी जाती है। दही और घी जनित अफारा और मार्गावरोध होने पर रोगीको तक्रपर ही रखना चाहिये।

इस आरोग्यवर्द्धिनीका हिक्का रोग पर प्रयोग किया गया है और तत्काल लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं।

सूचना—सगर्भा स्त्री एवं दाह मोह, तृषा और पित्तप्रकोपयुक्त रोगी को आरोग्यवर्द्धिनी नही देनी चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, सब १-१ तोला, त्रिफला १० तोले, चित्रकमूल २० तोले, शुद्ध गूगल २० तोले शुद्ध शिलाजीत १५ तोले और कुटकी ७० तोले लें। शिलाजीतको थोड़ेसे जलमे घोल करके पिलावें; फिर तीन दिनतक नीमके पत्तोके रसमें घुटाई कर सुखा चूर्ण बनाकर बोतलमें भर लेवे।

आमातिसार (Chronic Ulcerative Eolitis) रोग जीर्ण होनेपर मलावरोध रहता हो, तो इस विधिवाली आरोग्यवर्द्धिनी २ से ४ रत्ती मात्रामे आवश्यकतानुसार तक्र मण्डूरके साथ दीजाती है। इसी तरह पुराने मलावरोधके रोगीके लिये यह हितावह है।

मात्रा—१ से ३ माशे दिनमें २ बार दूध या जलके साथ दें।

उपयोग—इस दूसरी विधिमें भी गुण पहिली विधिके अनुरूप हैं। जब उदररोग, शोथ, रक्तविकार और कुष्ठ आदि रोगोंमें मूत्रल और विरेचन गुणकी ज्यादा आवश्यकता हो, तब पहिली विधिकी अपेक्षा इस दूसरी विधिसे सत्वर लाभ होता है।

(११४) जलोदरारि रस।

विधि—शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, मैनसिल, हल्दी, शुद्ध जमालगोटा, त्रिफला, त्रिकटु और चित्रकमूल, ये १० औषधियां २-२ तोले लेवें। पहिले पारद-गन्धककी कज्जली करके मैनसिल मिलावें। फिर शेष औषधियोंका बारीक चूर्ण मिला, दन्तीमूलके क्वाथ, सेंहुड (थूहर)के दूध और भांगरेके रसकी सात-सात भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें १ या २ बार दशमूल क्वाथ या ऊंटनीके दूधके साथ देनेसे जलके समान पतले जुलाब होकर तीव्र शूल और सर्वांग शोथयुक्त जलोदरका नाश होता है। इसके सेवनसे अनेक रोगी सुधर गये हैं। यह अति दिव्य औषध है।

भोजन में मात्र ऊंटनीका दूध, या दूध-भात देनेसे थोड़े ही दिनोंमें जलोदर दूर होता है। यकृत्-क्रिया नियमित होती है, कोष्ठाग्नि प्रदीप्त होती है और आमवृद्धि दूर होती है।

सूचना—यदि वृक्क-विकारसे सर्वाङ्ग शोथ हो, तो इसका उपयोग न करें। आरोग्यवर्धिनीका उपयोग करना चाहिये। हृदयेन्द्रिय की रचनामें विकृति हो गई हो या जिस रोगीको पहिले संग्रहणी रोग होगया हो, उसे भी जलोदरारि रस नहीं देना चाहिये।

(११५) लोकनाथ रस।

विधि—शुद्ध बुभुक्षित पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोले लेकर कज्जली करें। पश्चात् शुद्ध पीली कौडियां ८ तोले लेकर उनमें कज्जली भरें और १ तोला कच्चे सोहागेको गायके दूधमें खरलकर उससे कौडियोंके मुंह बन्द करें। फिर दो सरावके भीतर चूना पोतकर उनमें शंखके शोधन किये हुये छोटे-छोटे टुकडे ८ तोलेके बीचमें कौडियोंको रख, मजबूत संपुट करें। सूखनेपर एक हाथके खड्डमें जंगली कण्डोंकी अग्नि दें। स्वांग शीतल होनेपर शंख और कौडियों सहित औषधको खरलकर लेवें। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ रत्तीतक दिनमें २ बार देवें।

अनुपान—वातरोगमें कालीमिर्चका चूर्ण और घृत, पित्तकी विकृति पर मक्खन; कफरोगमें शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग—यह रस अतिसार, क्षय, अरुचि, ग्रहणी, कृशता, मन्दाग्नि, कास, श्वास और गुल्मको नष्ट करता है। जब कफवृद्धि या कफप्रकोप होकर रोग उत्पन्न होता है, तब कफ निकालने, कफशोषण और रूपान्तर करानेके लिये लोकनाथ रस उपयोगी है।

लोकनाथ रसका क्षयरोगमें उत्पन्न होनेवाली गांठ अथवा गांठके क्षयमें अधिक प्रयोग होता है। यह रसायन गलेके पासमें होनेवाली गांठकी अपेक्षा पेटमें होनेवाली गांठ पर अधिक लाभदायक है। कांखमें होनेवाली गांठमें भी हितावह है। इसके योग से गांठ धीरे-धीरे कम होजाती है। किसी-किसी समय पित्ताधिक रोग होनेपर इस ओषधिके कारणसे ज्वर वढ़ जाता है। ऐसे समयपर पित्तघ्न अनुपानकी योजना करनी चाहिये। जब गांठ पककर फूट जाती है, तब इसका उपयोग कितना होता है, यह अनिश्चित है।

क्षयमें उरःक्षत न हुए हों, या अधिक वड़े न हों; फुफ्फुसोंमें मोटापन मात्र और जड़ता आई हो; कफदोषका प्रावान्य हो; एवं कास, अरुचि, मन्दाग्नि, मुंहसे लार गिरना, कण्ठ वैठ जाना, गला जड़ होना आदि लक्षण हों, तो लोकनाथ विशेष लाभदायकहै।

कफ प्रकोपसे अरुची, मुँहमें पानी आना, भोजनकी बिल्कुल इच्छा न होना; वार-वार सफेद रंगके आम और दुर्गन्धयुक्त दस्त होना, मुखमण्डल, नेत्र और त्वचा आदि सबमें निस्तेजता आदि लक्षणोंसह जीर्ण अतिसार हो, तो लोकनाथ उत्तम कार्य करता है।

आमज संग्रहणी, विशेषतः जीर्ण विकारमें वृहदन्त्रके तिर्यक् भागमें दुष्टता आकर कफके सदृश दुर्गन्धयुक्त मलिन-सा आम गिरता है; शौच अधिक वार नहीं होता; थोड़े ही समय होताहै; और मल पक जाताहै उदरमें कुछ मरोड़ा आता है, और किछना पड़ता है। मलके साथ मलकी अपेक्षा आम अधिक होता है। अग्निमांद्य, वेचैनी, किसी वात पर मन न लगना, भोजनकी इच्छा न होना, उदरमें जैसे कुछ चिपका हुआ हो या जड़ पदार्थ बंधा हुआ हो, ऐसा भासना, उदरकी जड़ता दूर होनेपर खूब खायँगे ऐसी भावना बनी रहना, आदि लक्षण होनेपर लोकनाथ रस उत्तम कार्य करता है।

लोकनाथ त्वचाके रोगपर उत्तम औषध है। विशेषतः पिस्तौके समान शरीरपर मोटे-मोटे धव्वे, गांठ या सफेद-काले दाग होना, सबको नष्ट करता है। किसी किसीको माँसवाले भागोंमें माँसवृद्धि हुई हो। वह भी इसके सेवन और लेपसे धीरे-धीरे नष्ट होती है।

यकृद्विद्रधि और वृक्कविद्रधिकी अपक्व या पच्यमान अवस्था एवं वाह्य विद्रधिकी पच्यमान अवस्थामे यह उत्तम कार्यकारी ओषधि है।

कफज कास और श्वासमे कफकी गांठ सफेद और दृढ़ निकलना, उसमें चिपचिपा-

पन अधिक होना, मुहके भीतर क्वचित गोंद लगानेके समान चिपचिपापनका भास होना, खांसीके साथ थकावट अधिकाधिक आना, मस्तिष्कमें जडता और भारीपन होनेपर भी वेदना कम होना, सर्वांगमें जडता, देहमें भारीपन भासना, भोजनकी इच्छा कम होना, अधिक अरुचि, उदरमें जडता, त्वचापर शोथ-सा भासना आदि लक्षण होनेपर लोकनाथ अवश्य देना चाहिये ।

कफज गुल्मके स्थानपर जडता, एक स्थानपर स्थिर भासना, गुल्म चिकना लगना, गुल्मके स्थान पर पीडा कम होना, गुल्मके स्थानपर शीतल पदार्थ बधा हो ऐसा लगना, गुल्म कठिन, मोटा और ऊपर उठा हुआ भासना, अग गल्म जाना, बार-बार उबाक आना तथा खासी, अरुचि, जडता आदि लक्षण प्रतीत होते हो । इसपर लोकनाथ रसका अच्छा उपयोग होता है ।

वर्तमानमें कण्ठकी गाठें बडी होजानेका विकार अधिक प्रतीत होता है इनमें कितनोहीकी गाठ खूब लाल दीखती है । उनके ऊपर सफेद दाग या सफेदी नही आती । एव कितनोहीकी गाठोपर सफेद रग आ जाता है , या सफेद दाग हो जाते है । मुखमें चपचिपापन, अधिक लार गिरना, आवाज भारी हो जाना, कण्ठमें कुछ रुका-सा भासना आदि लक्षण होने पर लोकनाथ द्वारा उत्तम कार्य होता है ।

सूतिका ज्वरमें निमित्त कारण सूतिका विष है । इसके योगसे कफ धातु दुष्ट होकर कफ-स्थान विकृत होता है । फिर कास, प्रतिश्याय, श्वास, अग्निमाद्य और अरुचि आदि लक्षणोके साथ ज्वर उपस्थित होता है । इसपर लोकनाथ अत्युत्तम कार्य करता है । इसके योगसे सूतिका विष शनै शनै निर्विष होकर सब लक्षण शमन होजाते हैं ।

सक्षेपमें यह लोकनाथ रस अत्यन्त वीर्यवान् और तीव्र औषध है । इसका उपयोग श्लैष्मिक कला, कफ-स्थान और कफ-दोषपर होता है । कफ प्रकृतिवाले मनुष्योपर यह विशेष कार्य करता है । क्षयमें कफभूयिष्ठ लक्षण होनेपर इसका प्रयोग होता है । इसके योगसे कफके क्षरण और विलयन होते हैं, एव कफ रूपान्तरित होनेमें सहायता मिल जाती है । इस तरह कफविकृति नष्ट होकर धातु-साम्य प्रस्थापित होता है । इस रसायन का कार्य यकृत, वृक्क, श्लैष्मिक कला, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, अन्य कफस्थान, मास-पेशिया और ग्रथियुक्त स्थानोपर विशेष रूपसे होता है । कफदोषमें विशेषत स्निग्धत्व और सान्द्रत्व गुणोकी वृद्धि होनेपर इसका उपयोग होता है । इसका प्रयोग विशेषत रस, मास और अस्थि, इन दूष्योपर होता है । (औ०गु० ध० शा०)

यह रसायन अतिसारकी अमोघ औषधि है । ज्वर हो, तो ज्वरसह अतिसारको दूर करता है । २-२ रत्ती मात्रा दिनमें ३ बार शहदके साथ देवें । ऊपर सोठ, बच, अतीस कडवा, देवदारु और नागरमोथेका क्वाथ पिलावें ।

धमनी या हृदयकी विकृतिसे होनेवाला अन्तर-अर्बुद (रक्तार्बुद) जो देहके किसी भी भागमें गाठकी तरह बन जाता है, जिसका पाक नही होता, रोग अधिक बढनेपर

हृदयको निर्बल बनाकर सारे शरीरको निस्तेज बना देता है। फिर धीरे-धीरे शरीरका क्षय होता है; उसपर लोकनाथ अच्छा लाभ पहुंचाता है।

रसधातुमें और मेदोधातुमें विकृति होनेपर गण्डमाल रोग उत्पन्न होता है। तीव्र विकार होनेपर (अपथ्य सेवन करनेपर) ज्वर भी आजाता है। रोग नया हो और गांठ कच्ची हो तो उसपर लोकनाथ रस अच्छा लाभ पहुंचाता है। मंद-मंद ज्वर रहने पर इन्द्रजौ, परवलके पान, कुटकी, चिरायता, गिलोय, रक्तचन्दन और सोंठका क्वाथ कर अनुपान रूपसे देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है। इसके अतिरिक्त निर्गुण्डी तैलका नस्य देनेसे गाठको बिखेर देनेमें सहायता मिल जाती है।

पथ्यापथ्य—लोकनाथ रस लेनेके साथ तीन ग्रास घृत मिले भोजनके लेने चाहिये। भोजनके पश्चात् कुछ मिनटोंतक पलंगपर सिराने निकालकर चित्त लेटें। अम्ल पदार्थोंका त्याग करें, मधुर दही लेसकते हैं। घृत अच्छी रीतिसे लें। जंगलके पशुओंका मांस घीमे भुना हुआ खायें। सायंकालको क्षुधा लगनेपर दूध-भात खांय। मूगकी बड़ियोका शाक खा सकते है। तिल और आंवलोंको दूध, जल या मट्ठेमें पीस कल्क बना शरीरपर मर्दनकर या घृतकी माशिलकर निवाय जलसे स्नान करें। तैलका उपयोग बिलकुल न करें। बेलफल, करेला, बैंगन, मछली, इमली, परिश्रम, मैथुन, शराब, ताड़ी, हींग, सोंठ, उड़द, मसूर कूष्माण्ड, राई, क्रोध, कांजी, असमयपर निद्रा, कासीके पात्रमे भोजन और ककारादिवर्ग (ककड़ी, ककोड़ा, कैथ, कलिंग-तरबूज, कन्दूरी आदि) के शाक, फल आदिका त्याग करे। शास्त्रानुसार श्रद्धापूर्वक शुभ समयसे विधिपूर्वक इस रसके सेवनका प्रारंभ करनेसे पूरा लाभ मिलता है। यह रसायन सूर्योदय होनेके पश्चात् २ घड़ी (४८) मिनट के भीतर सेवन करना चाहिये।

सेवन करनेपर दाह हो, तो मिश्री, गिलोय सत्व और वंशलोचन मिलाकर शहदके साथ लेवे। एव खजूर, अनार, अंगूर, ईख आदिका सेवन करें। अरुचि हो, तो साफ किये धनियेके मगजको घीमे भून मिश्री मिलाकर लेवे। ज्वर रहता हो, तो धनिया और गिलोयका क्वाथ लें। रक्तपित्त, कफ, श्वास और स्वरक्षय आदि उपद्रव हों नेत्रवाला और अडूसेका क्वाथ शहद-मिश्री मिलाकर लेवे। यदि निद्रा न मिलतीहो और अतिसार, ग्रहणी, अरुचि आदि हो, तो भांगरेको घीमे भूनकर रात्रिको शहदके साथ लेवें। उदरशूल और अजीर्ण हो, तो कालानमक, हरड़ और पीपलका चूर्ण निवाये जल लेवे। जीर्ण ज्वर रहता हो, तो पीपलका चूर्ण शहदके साथ लेवे। यदि प्लीहोदर, वातरक्त वमन, अर्श और नाकमेसे रक्त गिरना आदि विकार हों, तो अनारके फूल और दूबका रस निकाल मिश्री मिलाकर पीयें या सूघें। वमन और हिक्काके शमनके लिये बेरकी गुठलीका मगज, पीपल और मयूरपुच्छके चँदेलोंकी भस्मको शहदके साथ देवे। हेमगर्भ पोटली रस, मृगांक, मुक्ता आदि रसोंके लिये भी इसी अनुसार पथ्यापथ्य आचरणका पालन करना चाहिये।

सूचना—इस रसका सेवन अधिक मात्रामें करनेपर और अनुचित प्रयोग करनेपर अंगसंताप, ज्वर, रक्तपित्त, शुष्क कास, स्वरभंग, निद्रानाश, पित्तज अतिसार, शूल प्लीहावृद्धि, पैरोंके अंगूठोंमें सूजन, वमन, अर्श, नाकमेंसे रक्त गिरना और हिक्का आदि उपद्रवोंकी उत्पत्ति हो जाती है। इनमें से किसी भी उपद्रवकी प्राप्ति होनेपर इसे बन्दकर तुरन्त गिलोयसत्त्व, नेत्रवाल्याका शर्बत, मिश्री मिले दूध आदिका सेवन कराना चाहिये।

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह द्वितीय खण्डके राजयक्ष्मा प्रकरणके भीतर लोकेश्वर पोटली (लोकनाथ) रसका पाठ दिया है। उसके साथ कितनीही महत्वकी सूचना दी है। उस रसके भीतर सुवर्ण मिलाया है, अतः कीटाणु प्रकोपज रोगोंपर वह इस रसायनकी अपेक्षा अधिक कार्य करता है।

(११६) तक्रमंडूर।

विधि—गोमूत्रके पुट देकर बारितर बनाया हुआ मंडूर ४० तोले लेकर बेलपत्रका स्वरस, काले भांगरेका स्वरस, सफेद भांगरेका स्वरस, अरनीकी छालका क्वाथ, पुनर्नवाकी जड़का क्वाथ, तालमखानेका क्वाथ, इन ६ औषधियोंकी ३-३ भावना देवें पश्चात् एक सेर गोमूत्रमेंसे थोड़ा-थोड़ा मिला ८-१० भावना देकर २-२रत्तीकी गोलिया बना लेवें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार मट्ठेके साथ दें। रोगीको मात्र मट्ठेपर ही रक्खें। अन्य भोजन, नमक और जलपान भी छुड़ा दें। क्षुधा और तृषा लगनेपर बिना नमक मिलाया मट्ठा पिलावें।

उपयोग—इस मंडूरके सेवनसे अत्यन्त बढ़ी हुई शोथ और पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं। अरुचि, अर्श, मेदवृद्धि, हृदयका भारीपन, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, कृमि, थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, अंतड़ीमें शूल चलना, मूत्रावरोध होना, इन लक्षणोंसह शोथ रोगपर इस मण्डूरसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ पहुचता है। वृद्ध, छोटे बालक, स्त्रियाँ और नाजुक प्रकृतिवाले, सबके लिये बिलकुल निर्भय उपाय हैं।

तक्रमण्डूरमें मुख्य औषधि मण्डूर है। मण्डूर सौम्य, शीतवीर्य, हृद्य और कषाय गुणयुक्त है। यह लोह रूप होनेसे रक्ताणु और रक्ताभिसरण क्रिया पर लाभ पहुचाता है इसके विशेष गुण मण्डूर भस्ममें वर्णित हैं। उन गुणोंके अतिरिक्त बेल पत्रादिके स्वरस और क्वाथकी भावनाके हेतुसे यह रसायन यकृद्वल्य और वृक्कपर उपकारक बनता है इसके सेवनसे दीपन-पाचन और मूत्रल गुणकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे पाण्डु और हृदय विकृतिजन्य शोथपर यह तुरन्त लाभ पहुचाता है।

हृदय विकृतिजन्य शोथका आरम्भ पैर और हाथोंपर पहले होता है। प्रथमावस्थामें दिनमें शोथ बढ़ता है और रात्रिको शांति मिलनेपर दूर होजाता है। तुरन्त उपचार न

करने पर शोथ सारे शरीरपर फैलता जाता है। फिर शरीर शीतल रहना, हृदयमे भारीपन, आलस्य, निद्रावृद्धि और मलावरोधादि लक्षण उपस्थित होते है। इस विकार पर तक्रमण्डूर व्यवहृत होता है।

वक्तव्य--जिन रोगियोंको अम्लपित्त, रक्तपित्त अथवा वृक्कप्रदाह न हो, उन रोगियोंको इस तक्रमण्डूरका सेवन तक्रके साथ कराया जाता है। नमकका त्याग करनेपर रक्तमें बढ़ा हुआ विष और जल मूत्रमार्गसे विशेष मात्रामे वाहर निकलता रहता है, जिससे रोगी थोडे ही दिनोंमे स्वस्थ हो जाता है।

यदि शोथके साथ प्लीहावृद्धि, यकृद्‌वृद्धि, आध्मान, उदरमें शूल चलना, आदि उपद्रव भी उत्पन्न हुए हों, किन्तु उदरमे व्रण, विद्रधि, कर्कस्फोट या पूयप्रधान विकृति न हो, तो वे सब उपद्रव भी शमन होजाते हैं। फिर रक्तप्रसादन और रक्तकी वृद्धि होकर शरीर स्वस्थ और सबल बन जाता है।

विषमज्वर दीर्घकालतक रह जाने पर उसके विषका प्रवेश प्लीहामे हो जाता है जिससे प्लीहावृद्धि होजाती है। साथ साथ कितनेक रोगियोके यकृत् भी निर्बल होजाते हैं। फिर रक्त रचनामे विकृति और रक्तकी कमी होकर पाण्डुता आजाती है। एवं हृदय स्पन्दन बढ़ जाता है। हृदय और सारे शरीर की मांसपेशिया शिथिल होजाती हैं। थोड़ासा परिश्रम भी नही होसकता। चक्कर आते हैं, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य बढ़ जाते है। किसी किसीको अफारा आता है और मलावरोध भी होता है। ऐसे रोगियोंको ४० दिनके तक्रकल्पके साथ तक्रमण्डूरका सेवन कराया जाता है। कल्पकालमें आवश्यकता होनेपर सुवर्णमालिनी या सुवर्णप्रधान लक्ष्मीविलास भी दिया जाता है।

सूचना--(१) यकृद्‌वृद्धि हो जानेसे दस्तमें दुर्गन्ध आती हो, मलका रंग सफेद श्याम हो, तो तक्रमसे मक्खन निकाल लेना चाहिये। फिर दस्तका रंग पीला होता जाय, उतने परिमाणमें मक्खन कम निकालना चाहिये। अच्छा पीला रंग आ जानेपर तक्रमे सब मक्खन रहने देवें।

(२) यदि शोथोत्पत्ति न हुई हो, केवल पाण्डुता आई हो और ग्रहणी की सम्प्राप्ति हुई हो, तो तक्रमे सैंधानमक मिलाना चाहिये। यदि मूत्रावरोध हो तो ३ दिनतक सोरा या यवक्षार भी रोज सुवह एक वार देते रहना चाहिये।

ग्रहणी रोग नया हो, दिनमे ५-७ दस्त होते हों, उदरमें गुड़गुड़ाहट, अग्निमांद्य, अरुचि, पाण्डुतादि लक्षण प्रतीत होते हों तो तक्रकल्प सेवन करानेके साथ तक्रमण्डूरका सेवन करानेसे अन्त्र विशुद्ध और बलवान बन जाती हैं फिर रोग शमन हो जाता है।

प्रवाहिका रोगमे अन्त्रके भीतर क्षत हो जाता है फिर उस स्थानमे कठोर वस्तु या तीक्ष्ण पदार्थका स्पर्श होनेपर शूल चलता है। रोग जीर्ण होनेपर उदरशूल वढ जाता है फिर अग्निमांद्य, आममिश्रित थोड़ा थोड़ा दस्त होना, शारीरिक निर्बलता और पाण्डुतादि

लक्षण प्रतीत होते हैं । इस अवस्थामें भी तक्रकल्पसह तक्रमण्डूरका न व राया जाता हैं एव साथ साथ अफीनमिश्रित ग्रहणीकपाट रस भी दिया जाता हैं । और जिन रोगियोंको उदरपीडा (ऐंठन) पीडा अधिक रहती हो, उनको आवश्यकतानुसार सम्हालपूर्वक अफीमप्रधान ग्रहणीकपाट बहुत कम मात्रामें साथ साथ दिया जाता हैं । इसके विपरीत जिन रोगियोंको रोग पुराना होनेपर कब्ज रहताहो और आमोत्पत्ति अधिक होनेसे हानि पहुचती रहती हो, उनको तक्र मण्डूरके सेवनके साथ आरोग्यवर्द्धिनी (न० २) भी देनी पडती हैं ।

सूचना—जिनको उपदंश, सुजाक या वृक्क-विकारजनित अन्य मूत्ररोग, तृषा, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, दौर्बल्य, भ्रम, क्षय या रक्तपित्त प्रकोपयुक्त रोग हो, उनको तक्र मण्डूर या तक्रका सेवन नही करना चाहिये । ऐसे लक्षणोंयुक्त शोथ रोगमें दुग्धवटीका उपयोग हितकर माना गया हैं ।

(११७) पुनर्नवा मंडूर

विधि—पुनर्नवा * (साठीकी जड), निसोत, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, वायविडंग, देवदारु, कूठ, हल्दी, चित्रकमूल, हरड, बहेडा, आवला, दंतीमूल, चव्य, इन्द्र जव, कुटकी, पीपलामूल, मोथा, काकडासींगी, कालाजीरा, अजवायन और कायफल, सब ओषधिया समभाग लेकर चूर्ण करें । फिर चूर्णसे दूनी मडूरभस्मको अठगुने गोमूत्रमें पकावें । गोमूत्र चतुर्थांश शेष रहनेपर ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर पकावें । जब गोली बाधने लायक हो जाय, तब उतार घोटकर मटरके समान गोलिया बनालें । मूलग्रथमें गुड मिलानेको लिखा हैं, हमने सुविधाके लिये अनुपान रूपसे मिला लिया है । (भा० प्र०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार थोडे गुडके साथ दें । ऊपर मट्ठा अथवा जल पिलावें । आमप्रधान कब्जवाले रोगीको हरडका चूर्ण मिलाकर देना चाहिये । यदि उसमें योगराज गूगल मिला दें, तो सत्वर लाभ पहुचता हैं ।

---

*—पुनर्नवामें श्वेत और रक्त, ऐसे २ प्रकार मुख्य हैं । दोनो जातियोंमें कुछ उपप्रकार भी हैं । रक्तमें जो बडी जाति है, जिसके मूलको चबानेपर कुछ गला पकडता है, जिसे लेटिन नाम बोर्हेविया डिफ्युजा (Boerhavia Diffusa) दिया है, वह अधिक मूत्रल हैं । वह शोथ में दूसरी जातिकी अपेक्षा विशेष हितावह हैं ।

पुनर्नवा श्वेत, जिसका लेटिन नाम ट्रायेन्थेमा पोर्टुलेकस्ट्रम (Trianthema Portulacastrum) है, वह तीव्र विरेचन हैं, यकृद्वृद्धि आदि विकार पर अधिक लाभ पहुचाती हैं । अत यकृद्दाल्युदर, जीर्ण कामला, यकृद्में से पित्तस्रावकी न्यूनता, यकृत्में रक्तसंग्रह और प्लीहावृद्धि आदि रोगोंमें पुनर्नवामण्डूरका उपयोग करना हो, तब यह श्वेत पुनर्नवा मिलाना चाहिये । अथवा अनुपानमें श्वेत पुनर्नवाका रस या कषाय देना चाहिये ।

उपयोग--यह औषधि शोथ, पाण्डु, कामला, उदररोग, अफारा, शूल, श्वास खांसी, क्षय, ज्वर, प्लीहा, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, वातरक्त और कुष्ठका नाश करती है

यह मण्डूर पाण्डुरोगपर अति हितकारक है। पांडु अथवा कुम्भकामला रोग अधिक दिन रहनेसे सर्वांग शोथ आया हो; शोथपर दबानेसे खड्डा हो जाता हो; और जल्दी न भरता हो; तो पुनर्नवा मण्डूरके सेवनसे सत्वर लाभ पहुंचता है। शोथके साथ अफारा, मन्द-मन्द ज्वर, अरुचि, रक्तमें रक्ताणुओंकी कमी, निर्बलताके हेतुसे श्वास भर जाना, प्लीहावृद्धि आदि विकार हों; वे भी दूर हो जाते हैं। एवं अन्त्रकी निर्बलता, अन्त्रमें मल शुष्क हो जानेके पश्चात् वातप्रकोप होकर निकलनेवाला शूल और सूक्ष्म कृमि ये सब नष्ट होते हैं। इस मण्डूरसे मल मूत्रकी शुद्धि होती है। और रक्ताभिसरणक्रिया नियमित बनती है। पक्वाशय, रक्त और रसधातुकी शुद्धि होनेसे रक्ताभिसरण क्रिया बलवान बनती है। एवं वातदुष्टि नष्ट होनेसे दोष प्रकोपजन्य नूतन कुष्ठ और वातरक्तका भी शमन होता है। यह मन्डूर ग्रहणी और अन्त्रको बलवान बनाता है। इस हेतुसे नये संग्रहणी रोग और अर्श रोगपर भी हितावह है।

शोथ आनेसे मुख्य ३ कारण है। हृदय, वृक्क और यकृत्की विकृति, इन तीनों प्रकोपोंपर कार्य हो सके, उसतरह इस रसकी रचना की है। मण्डूरसे हृदय और रक्तपर विशेष लाभ पहुंचता है और यकृत्प्लीहापर इनसे कम। गोमूत्र, यकृत्, वृक्क और अन्त्रादि पचन अवयवोंको बल प्रदान करता है। रक्तका प्रसादन करता है; सूक्ष्म कृमि, कीटाणु और विषका नाश करता है; तथा आमपचनमें सहायता पहुंचाता है। निसोत, दन्तीमूल और कुटकी अन्त्रमें चिपके हुए पुराने मलको निकालकर अन्त्रको शुद्ध बनाते हैं। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, पीपलामूल, कालाजीरा और अजवायन, ये सब दीपन पाचन है। आमाशय और यकृत्, दोनों स्थानोंको उत्तेजना देते हैं। देवदारु, कूठ, कायफल और अजवायनादि तैली द्रव्य वात नाड़ियोंको पुष्ट बनाते हैं। हल्दी आमपाचन और रक्त प्रसावन कार्यमें सहायता पहुंचाती है। इन्द्र जौ और नागरमोथा दीपन-पाचन और ग्राही [गुण दर्शाते हैं। वायविडंग यकृद्बल्य और कृमिघ्न है। बायविडंगसे कृमिकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध होता है। पुनर्नवा मूत्रल और श्रेष्ठ शोथहर औषधि है। इस तरह इस प्रयोगमें पुनर्नवादि वृक्क, हृदय, यकृत्, रक्त, आमाशय और अन्त्रपर कार्य कर औषधिका संमिश्रण होनेसे शोथकी अति बढी हुई अवस्थामें भी यह अपना प्रभाव दर्शाता है।

यदि शोथके साथ ज्वर भी रहता हो और अन्त्रमें मल संगृहीत हो, तो इस रसायनका सेवन पुनर्नवाष्टक कषाय (आरोग्यवर्द्धिनीके उपयोगमें लिखे हुए) केसाथ कराया जाता है अथवा आरोग्यवर्द्धिनी दी जाती है। रोग जितना पुराना हो और अधिक बढ़ा हो,

उतनी ही मात्रा कम करनी चाहिये। रोगीको नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिये।

वक्तव्य—रोगीको ज्वर न हो, वृक्कविकार न हो हृदय विकृतिसे शोथ हुआ। पचनक्रिया मन्द हो,अन्त्रमें मलसंग्रह और कीटाणुओंकी वृद्धि होगई हो,मुखपाक न हो, रात्रिको बार-बार लघुशंका न होती हो,और तक्र अनुकूल रहती हो,तोरोगीको तक्रकल्प कराना चाहिये।

तक्रमण्डूर भी शोथसह पाण्डुपर व्यवहृत होता है,उसमें आमाशयपौष्टिक, पित्तस्रावी और अन्त्रको शोधन करनेवाली औषधिया गोमूत्रके अतिरिक्त नहीं मिलायी। अत जिन रोगियोकी पचनक्रिया अधिक दूषित हो तथा अन्त्रमें आम,मल और विषका सचय हुआ हो या उदरकृमि होगये हों, उनको पुनर्नवामण्डूर विशेष अनुकूल रहता है।

पित्ताशयनलिका और यकृतसे निकलनेवाली साधारण पित्तनलिकामें प्रदाह होने या पित्तस्राव कम होनेपर मल सफेद रंगका और दुर्गन्धयुक्त होगया हो,तो यह रस १-२ माशे मज्जीखार(सोडाबाईकार्ब)मिलाकर ५-५ तोले मूलीके रस या तक्रके साथ दिया जाता है। रोगीको भोजनमें मात्र तक्र और चावल देना चाहिये।

जलोदर और शोथ, दोनोमें जल या रससंग्रह होता है। अत दोनोकी चिकित्सामें साम्य है। जलसदृश पतला विरेचन, मूत्र विरेचन और स्वेदद्वारा रक्तमेंसे जल बाहर निकाल देनेपर उदर्याकला या त्वचाके नीचे संगृहीत जलका रक्तमें शोषण होजाता है। इस हेतुसे पुनर्नवामण्डूर गोमूत्र या मकायके क्वाथके साथ रोज सुबह देते रहनेपर नया जलोदर रोग शमन होजाता है। भोजनमें दूध और भात। नमक नहीं देना चाहिये।

आमाशयकी पचनक्रिया दूषित होनेपर अन्त्रमें आम संगृहीत होते हैं। फिर अन्त्रमें कृमि उत्पन्न होते हैं। पाण्डुता, उदरशूल, अरुचि, उबाक, अफारा, श्वास, कफवृद्धि, मलावरोध और निस्तेजतादि लक्षण प्रकाशित होते हैं। सूक्ष्म कृमि होनेपर नाक और गुदामें कण्डू चलती है। कभी कभी त्वचा शुष्क होजाती है।किसीको श्वेतकुष्ठ या अन्य उपकुष्ठ होजाते हैं। इस रोगपर पुनर्नवामण्डूर हरडके क्वाथके साथ दिया जाता है। यदि वातवाहिनियोंकी विकृति हो तो पुनर्नवामण्डूरके साथ योगराज गुग्गुल या चन्द्रप्रभा वटी मिला दी जाती है।

हृदय और रक्तकी निर्बलता होनेपर प्राय पचनक्रिया निर्बल होजाती है। ऐसी स्थितिमें मिर्चादि तेज मसाला और द्विदल धान्यादि वातप्रकोपक आहारका अधिक सेवन होता रहे,तो उदरमें गुडगुडाहट होताहै,अफारा आजाता है तथा मलावरोध, मलमें दुर्गन्ध और कृमीको मलावरोध भी होताहै। फिर अर्शोत्पत्ति हो जाती है। इसी तरह अपचन और अग्नि मन्द होनेपर भी बारबार आहारका सेवन अधिक मात्रामें होता रहे, तो अन्त्र शिथिल बनकर संग्रहणी रोगकी संप्राप्ति हो जाती है। फिर कुछ दिन मलावरोधऔर कुछ दिन अतिसार, ऐसा चक्र चलता रहता है। इन विकारोका मूल हृदयकी शिथिलता और पचन विकृति होनेसे इन रोगोपर भी पुनर्नवामण्डूर लाभ पहुंचाता है। मात्र

थोड़ी थोड़ी दिनमें ३-४ समय देनी चायिये। एवं पथ्य पालनसह ओषधि दीर्घकाल पर्यन्त लेनी चाहिये।

(११८) वृद्धिबाधिका वटी।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, वंग भस्म, ताम्र भस्म, कांस्य भस्म, हरताल भस्म, नीलेथोथकी भस्म, शंख भस्म, कौडी भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल रड़, बहेड़ा, आंवला, चव्य, कचूर, वायविडंग, विधारेके बीज, पीपलामूल, पाठा, हाऊबेर, वच, लायची, देवदारु, समुद्रनमक, सैंधानमक, सांभरनमक, विड़नमक, और कालानमक, इन ३१ औषधियोंको समभाग लें। फिर यथाविधि मिला हरड़के काढ़ेमें १२ घण्टे खरल कर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लें। (भा० प्र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ वार जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी असाध्य अण्डवृद्धिके सब दोषोंको थोड़ेही दिनोंमें दूर करती, है, और अन्त्रवृद्धिमें भी लाभ पहुंचाती है। एवं अण्डकोषमें वायु भरनसे होनेवाला दर्द, नया दूपित रस उतरना, रक्त भरना और अन्य सभी प्रकारके दोषोंको निवृत्त करती है। ज़ब अंडकोषमें बहुत ज्यादा जल भर जाता है; तब यह वटी काम नहीं देती। प्रथमावस्थाके लिय उपयोगी है।

(११९) गण्डमालाकण्डन रस।

विधि—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ६ माशे, ताम्र भस्म १॥ तोले, मंडूर भस्म ३ तोले; सोंठ, कालीमिर्च और पीपल २-२ तोले; सफेद सैंधानमक ६ माशे; कचनारकी छाल और शुद्ध गूगल १२-१२ तोले ले। पहिले पारद और गन्धककी कज्जली करके भस्म मिलावे। फिर शेष ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलावें। गूगलमें गोघृत मिला कूटकर पतला करें। फिर सब ओषधियोंको गूगलके साथ थोड़ी-थोड़ी मिला अच्छी रीतिसे कूटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लें। (नि० र०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २ बार कचनार, पियावांसा, करंज, कटेली और बड़ी कटलीके क्वाथके साथ ३-४ मास पर्यन्त देते रहना चाहिये। एक गोलीसे आरम्भ करके मात्रा धीरे-धीरे बढ़ावें।

उपयोग—यह रस गलगंड और दारुण गन्डमालाको नष्ट करना है। यह रस विशेषत: स्थूल प्रकृतिके रोगीके लिये विशेष लाभदायक है। नयी और पुरानी गन्डमाला, दोनोंमें अच्छा काम देती है गांठ फूटकर अपची होती है, और उसके साथमें सूक्ष्म ज्वर रहता है; उसपर भी यह लाभदायक है। यह बद्धकोष्ठको दूर करता है; और पाचन शक्तिको सुधारता है उपदंशको छोड़कर जो मेद और कफविकृतिसे ग्रंथि उत्पन्न होती है; उसपर भी यह लाभ पहुंचाता है।

आयुर्वेदमें गंडमालाकी उत्पत्ति निम्नानुसार कही है। कंठ और कांख या

या कंठ और वक्षण (उर-संधि)में रही हुई गांठोंमें मेद और कफकी वृद्धि होनेपर उसे गन्डमाला संज्ञा दी है। केवल वक्षण या केवल उदरमें गांठ होनेपर उसे गन्डमाला नहीं कहते। पहले गन्डमालाका उद्भव कण्ठपर होकर फिर अन्य स्थानोंमें प्रसार होता है।

इस विकारमें विशेषतः मन्द-मन्द ज्वर रहता है। सारा शरीर टूटना, हाथ-पैर गल जाना, शनैः शनैः वजनमासविहीनत्व आना आदि लक्षण होते हैं। क्षुधा-माद्य तो प्रारम्भसे ही होता है। यह गांठ शनैः शनैः बड़ी होनेपर पककर फूटती है। गांठ फूटकर व्रणरोपण होता है, परन्तु पुनः गांठें बढ़ती हैं। गांठ फूटनेके पश्चात् जितनी ही नष्ट होती है, उतनी ही पुनः भरती है। ऐसा क्रम वर्षोंतक चलता रहता है। इस अवस्थाको अपची कहते हैं। गन्डमाला फूटनेपर उसमेंसे सफेद क्लेद् युक्त पूयस्राव होता है, परन्तु पुनः भरती है और पुनः किंचित् रक्तयुक्त स्राव होने लगता है। इस तरह यह विकार भयंकर त्रासदायक है। इसकी चिकित्सा जल्दी न होनेपर यह बहुधा दृढमूल होजाता है। फिर शस्त्र-चिकित्सा करानेपर भी समूल नष्ट नहीं होता।

इस रसके सेवनका प्रारम्भ होनेपर शनैः शनैः विकार कम होता है। विशेष निस्तेज और कुछ फूला हुआ-सा मुख जिनका होगया हो, हाथ-पैरमें निर्बलता और कुछ शोथ-सा प्रतीत होता हो, तथा अपचन पचनेन्द्रियकी निर्बलताके हेतुसे कोष्ठ-बद्धता आदि लक्षण हों, तो इस रसका उपयोग करना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा०)

(१२०) शिलासिन्दूर वटी।

विधि—शिलासिंदूर ५ तोले, आंवला और बावची २॥-२॥ तोले लेवें। पहिले शिलासिंदूरको ३ दिन भांगरेके रसमें खरल करें। फिर आंवले और बावची का बारीक चूर्ण मिलावें। पश्चात् आंवले और बावचीके चूर्ण १०-१० तोले मिला ६ गुने पानीमें क्वाथकर अष्टमांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। इस क्वाथकी भावना देवें। इस तरह आंवले बावचीके ताजे-ताजे क्वाथ की ५ भावना देकर मटरके समान गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ से ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे कंठमाला, गलगण्ड, अपची, अर्बुद, कुष्ठ, मेदरोग, मेदरोगसे होनेवाली घबराहट, पसीना और निर्बलता आदि विकार दूर होते हैं। मेद रोगपर देनेके समय शक्कर, दही, ज्यादा घी, विशेष भात खाना आदि मेदवर्द्धक आहारको छुडा देना चाहिये, तथा होसके उतना व्यायाम कराना चाहिये।

इस रसायनमें मुख्य ओषधि शिलासिंदूर है, शिलासिंदूरमें लेखन, किटाणुनाशक, रक्तप्रसादन, मेदोहर, कफघ्न, विशनाशक, वातशामक, मांसपौष्टिक और पित्तवर्द्धक गुण मुख्य हैं। इसके साथ भृंगराज, आमलकी और वावची मिलाकर विषघ्न, रक्तप्रसादन और कुष्ठहर गुणकी वृद्धि करायी है तथा रसायनको सौम्य बनाया है।

लेखन गुणके हेतुसे कण्ठमाल, गलगण्ड, अपची, अर्बुद (रसौली) और मेद रोगमें यह लाभ पहुंचाता है। इन सब रोगोंमें संगृहीत रस या मेद को जलाना और नूतन उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करना, ये दोनों कार्य इस वटीके सेवनसे होजाते है।

कण्ठमालकी गांठ पककर फूटनेपर अपची कहलाती है, उसमेंसे पूयस्राव दीर्घकाल पर्यन्त होता रहता है। पूयका शोषण किसी किसीको रक्तमें होता रहता है। फिर उस हेतुसे शीतसह ज्वर भी आजाता है। उसपर इस वटीका सेवन हितावह होता है। यह वटी पूय कीटाणुओंका नाशकर ज्वरको शांत कर देती है।

मेदोवृद्धिके मुख्य ३ हेतु हैं। १. वंशागत मेदोवृद्धि; २. फिरंग विषादिके प्रकोपसे धमनीकी दीवार कठोर हो जाना (Arteriosclerosis) अथवा धमनीकी दीवार मललिप्त होजाना; ३. बालग्रैवेयक ग्रंन्थि (Thymus-gland) के अन्तःस्त्रावमें विकृति। इनमें से पहले वंशागत प्रकारके लिये औषधि विशेष लाभ नहीं पहुंचा सकती। द्वितीय प्रकार धमनीकी दीवारकी विकृतिपर कितनेक अंशमें यह रस सफल होता है। कारण, यह रस उपदंश विष और कीटाणुओंका नाश करता है; रक्तादि धातुओंमें अवस्थित धात्वाग्निको प्रदीप्त करके वसा, कफ, आम और मलको जलाता है; तथा नूतन मेदोत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करता है। तृतीय प्रकारमें भी कुछ अंशमें लाभ पहुंचता है। यदि बालग्रैवेयक ग्रंथिकी निर्बलता नयी हो, अति शिथिलता न आई हो, तो इस प्रकारमें पचन अग्नि अति मन्द हो ओर अन्त्रमें पुराना मल चिपका हो, तो शिलासिन्दूर वटीकी अपेक्षा आरोग्यवर्द्धिनीका सेवन कराना विशेष हितावह है। बालग्रैवेयक ग्रन्थिक अन्तस्राव न होता हो या अति कम हो तो डाक्टरी मतानुसार भेड़के बालग्रैवेयक ग्रन्थिका सत्व दिया जाता है। यह प्रयोग जीवन पर्यन्त करते रहते हैं।

वक्तव्य—मेदोवृद्धिसे पीड़ित रोगीको घृत, शक्कर, दही, चावल और अन्य मेदोवर्द्धक भोजनका सेवन कम करना चाहिये तथा हो सके उतना शारीरिक श्रम भी करना चाहिये।

श्वेत कुष्ठ (Leukoderma) की उत्पत्ति रक्तके भीतर रक्त वर्ण (Haemoglobin) की न्यूनता होनेपर होती है। रक्तके भीतर विष या मेद प्रवेश होनेपर यह विकृति होजाती है। यह रसायन धात्वाग्निको प्रदीप्त करता है, इस हेतुसे श्वेतकुष्ठ और रक्त विकृतिसे उत्पन्न अन्य उपकुष्ठ या त्वचा रोगोंपर यह लाभ पहुंचा देता है। विकृति अधिक गहराईतक पहुंची हो, तो शिलासिंदूर

वटीका सेवन २-४ मासतक कराना पडता है । यदि बृहदन्त्र मलपूर्ण हो तो प्रारंभावस्थामें उसे साफ करानेके लिये आरोग्यवर्द्धिनी त्रिफलाके फाण्टके साथ दी जाती है ।

शिलासिंदूरमें कफघ्न और विषनाशक गुण होनेसे यह वटी जीर्ण कफ कास, जीर्ण श्वासरोग, जीर्ण आमवात, रक्तविकार और जीर्ण त्वचा रोगोंपर भी इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाता है ।

[१२१] नित्यानन्द रस ।

विधि—सिंगरफमें निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, वंग भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध नीलाथोथा, शंख भस्म, कांस्य भस्म, कोडी भस्म, लोह भस्म, हरड, बहेडा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, वायविडंग, सैंधानमक, काला नमक, बिडनमक, कांचनमक, समुद्रनमक, चव्य, पीपलामूल, हाऊबेर, वच, कपूर, पाठा, देवदारु, छोटी इलायची, विधारा (अभावमें निसोत), ये ३१ औषधियां समभाग लेकर विधिपूर्वक मिलावें । पश्चात् निसोत, चित्रकमूल, दन्तीमूल, और हरडके क्वाथमें क्रमश: १२-१२ घण्टे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें । (र० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार ठण्डे पानीके साथ दें ।

उपयोग—नित्यानन्द रस श्लीपद रोगपर दिव्य औषध है । कफजन्य और कफवातजन्य श्लीपद (हाथीपगा), जिसमें त्वचाका रंग काला, ऊपरमें चीरा हो गया हो, वेदना तीव्र हो, ज्वर कम हो कभी बढ जाताहो, पैर जड, अति मोटा, फीका सफेद रंगका हो, खाज बहुत आती हो, क्लेद निकलता हो, ऐसे लक्षणयुक्त श्लीपद, जो रस, रक्त, मांस, मेद या शुक्रगत हो, इन सबको यह रसायन नष्ट करता है । अलावा अर्बुद, गण्डमाला, अति पुरानी अन्त्रवृद्धि, वातपित्तज, और श्लेष्मपित्तज गुदरोग और कृमि रोगको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करता है, तथा बल-वीर्यकी वृद्धि करता है ।

श्लीपद रोग अधिक जलयुक्त प्रदेश, शीतल शील वाले स्थानोंसे रहने वालोंको होता है । जिस जलमय स्थानमें पत्र-फूल फल आदि कूडा-कचरा संचित होकर दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, उस स्थान वासियोंके त्वचागत कफ दोषसे विकृति होती है । प्रारंभमें किसी स्थानमें त्वचा मोटी होती है, तथा हाथ-पैर, कानकी पाली, नेत्रकी भापणी, शिश्न, ओष्ठ और नाक आदि स्थानोंमें त्वचा मोटी होजाती है, एवं मन्द-मन्द ज्वर रहता है । ज्वर रहने पर शोथ अधिक होता है । कफ-प्रधान चिकित्सा करने पर ज्वरसह शोथ कम होजाता है ।

डाक्टरी मतानुसार यह व्याधि फाइलेरिया (Filaria) नामक कीटाणु जनित है । यह बंगाल, कोचीन, मलाबार आदि प्रदेशोंमें अधिक होता है । यह रोग पैरके अलावा वृषण, लिंग, हस्त आदि स्थानोंमें भी होता है । रोगग्रस्त स्थानोंमें रूक्ष और विषम हो जाता है । उस स्थानोंमें लोम रूक्ष होजाता है, और अधिक दूरी पर होजाता है । त्वचाके नीचे रही हुई संयोजक कला स्थूल होजाती है, और उसमें लसीका संगृहीत

होजाती है । मांशपेशी, अस्थि वा वातवाहिनियोंकी विकृति नहीं होती। रक्त-प्रणालियाँ सब बड़ी और रसायनियां प्रसारित होजाती हैं। कभी-कभी रोगग्रस्त स्थानके विपरीत दिशामें रही हुई रसायनियां सब कठिन होजाती हैं और बढ़ जाती हैं।

इस व्याधिपर इस रसायनके दीर्घकाल सेवनसे ही लाभ होता है। साथ-साथ गर्जन तैलकी मालिश भी कराते रहना चाहिये। रोग अति जीर्ण होजानेपर अस्त्रचिकित्साका आश्रय लेना चाहिये।

(१२२) केशरादि वटी।

विधि—शुद्ध रसकपूर, केशर, मिश्री, सफेद चन्दनका चूर्ण, लौंग और जावित्रीको समभाग मिला जलके साथ खरलकर मूंगके बराबर गोलियां बनावें।

(आ० औ०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार घीमें लपेटकर निगल जांय (दांत को नहीं लगनी चाहिये)।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे नया और पुराना उपदंश, विस्फोटक, रक्त-विकार, उपदंशजन्य संधिवात, पक्षाघात आदि वातरोग, कुष्ठ, गंभीर व्रण, नाड़ीव्रण (नासूर), गलगण्ड, तालुव्रण, वातरक्त तथा त्वचाके नये और पुराने सब रोग थोड़े ही दिनोंमें दूर होते हैं।

इस रससे मुंह नहीं आता और एक वर्षके जीर्ण रोगोंमें भी अच्छा लाभ पहुंचता है। इस रसको महामंजिष्ठादि क्वाथ अथवा अन्य रक्तशोधक अनुपानके साथ देनेसे शीघ्र लाभ पहुंचता है।

सूचना—रसकपूरयुक्त ओषधि होनेसे पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये। तैल, मिर्च, खटाई न खायें। सैंधानमक थोड़े परिमाणमें लें। घृत अधिक लें यदि भोजनमें गेहूँकी रोटी, घी, शक्कर, दूध और भातही लें, तो सत्वर लाभ होता है।

[१२३] उपदंश सूर्य।

विधि—सफेद सोमल ६ माशे, छोटी कटेलीके पंचांगका स्वरस और नींबूका रस १२-१२ तोले लें। फिर लोहेकी कड़ाहीमें सबको मिलाकर लगभग ४२ दिन पर्यन्त कड़वे नीमके डंडेसे घुटाई करें। पश्चात् मूंगके समान गोलियां बनावें। रस कम होजाय, तो और मिला लेना चाहिये। (वृ० यो० त०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह घृतके साथ निगल जांय। भोजनमें गेहुका फुलका, घी और मूंगकी दाल थोड़ा सैंधानमक वाली लेवें। तैल, मिर्च, खटाई आदिका त्याग करें। घी अधिक लें।

उपयोग—यह रस उपदंश रोगको जलानेमें सूर्यके समान तेजस्वी है। आयुर्वेदमें उपदंश रोगके दो प्रकार मिलते हैं—सामान्य उपदंश और फिरंगोपदंश। सामान्य उपदंश अधिक रतिसेवन, दांत शस्त्र आदिका आघात, अधावन (अप्रक्षालन) और योनिप्रदोष (दोष, कर्कश, रोम आदि युक्त दुष्टयोनि), इन कारणोंसे केवल पुरुष जननेन्द्रियको ही होता है। फिरंगोपदंश (फिरंग रोग) का वर्णन प्राचीन आयुर्वेदसंहिताओंमें नहीं मिलता। इसका उल्लेख केवल नव्य आयुर्वेद शास्त्रमें ही मिलता है। इस नामसे ही ध्वनित होता है कि, यह व्याधि विदेशी लोग इस देशमें आनेके पश्चात उनके संसर्गसे ही उत्पन्न हुई है। यह फिरंग रोग स्थानिक हानिकर नहीं है, परन्तु सर्वांगव्यापी और विविध अवयव समूहोंमें अनेक उपद्रवोंको उत्पन्न करनेवाला है। फिरंग रोगके विशिष्ट प्रकारके कीटाणु हैं। ये कीटाणु संसर्ग होनेपर शरीरमें प्रवेश करके आशुकारी और चिरकारी, ऐसी दो अवस्थाएं निर्माण करते हैं। इस रोगकी तीव्रावस्थामें [illegible] अधिक उपयोगी होता है, और जीर्णावस्था—चिरकारी विकार विवक्षित संस्कारोंसे बने हुए पारदकल्प और मल्लकल्प लाभदायक होते हैं। इस रोगके और भी विभाग हो सकते हैं। कीटाणु जिन-जिन अवयवोंमें प्रवेश करते हैं या जिन दोष-दूष्य आदिके साथ जितने अंशमें मिल जाते हैं, उतने अंशमें विविध अवस्थाएं उत्पन्न होती है। उपदंशका विष केवल रक्त और त्वचामें ही संचित होकर रह जानेपर शारीरिक अनुभवन क्रिया (Anabolism) सम्यक् नहीं होती। ऐसा होनेपर पारद, सुवर्ण, रौप्य, मल्ल मिश्रित अष्टमूर्ति रसायन उपयोगी होता है परन्तु यही विष अधिक गहराईमें जानेपर, मांस और अस्थिके आश्रित होजाने पर, उनमें विकृति उत्पन्न करता है। मांसगतव्रण, अस्थिगतव्रण, गण्ड, अर्बुद, ग्रंथि, अस्थिमें कीटाणु होजाना आदि विविध उपद्रव उत्पन्न होते हैं। यह विष जैसे-जैसे अधिक लीन होकर गहराईमें चला जाता है, वैसे-वैसे उस स्थानपर पारदकल्पकी अपेक्षा मल्लकल्प अधिक उपयोगी होता है। इन मल्लकल्पोंमें उपदंशसूर्य एक उत्कृष्ट मल्लकल्प है।

जीर्ण उपदंश व्रण अन्य व्रणोंकी अपेक्षा विशिष्ट प्रकारका भासता है। कुछ दिनों तक व्रणका रोपण हो जानेका भ्रम होता है। कुछ दिनोंमें पुनः दुगुने बलसे बढ़ जाता है। इसकी किनारी मोटी और कठिन, व्रणसंरक्षक कला (Scar tissue) ऊँची-नीची और विविध प्रकारका म्लान होना आदि लक्षण होते हैं। यह व्रण मांस या आश्रयकर कितनेही दिनों तक जड़ जमा स्थिर टिककर रह जाता है। यह व्रण शरीरके बाह्यांग, मुख, ओष्ठ, श्लैष्मिक कला और जिह्वापर भी होजाता है। यह विकार इतना पुराना और त्रासदायक है कि, आजन्म मनुष्योंको त्रास देता रहता है। मांसस्थित व्रण अधिक कालतक रह जानेपर भी उसकी अपेक्षा होनेसे या अयोग्य उपचार करने अथवा स्वाभाविक कीटाणु या विष गहराईमें चले जानेपर अस्थियोंमें विकृति हो जाती है। फिर अस्थिगत व्रण होता है। कितनेही

अस्थियोंमें कीटाणु गल जाते है। इसकी अपेक्षा ही विषका अन्तरमें प्रवेश होनेपर अन्तरेन्द्रियोमे छोटी–छोटी ग्रन्थियाँ होजाती है। वातवाहिनियाँ, वातवह केन्द्र और मस्तिष्कतक विकृति पहुँच जाती है; तथा रोगी शक्तिरहित, विनष्ट–ज्ञान होकर अनिच्छापूर्वक बड़ा कष्टसे जीवित रहता है। उपदंशसूर्यका उपयोग ऐसे मास–श्रित और अस्थिगत व्रणपर अत्युत्तम हुआ है। इसके सेवन समयमें घीका उपयोग कुछ अधिक करना चाहिये।

गुदशूक (Condyloma) विकारमें गुदाके बाहर पुष्प-पल्लवके सदृश सफेद और पतली त्वचाओंकी वृद्धि होती है। यह वृद्धि एक दूसरेपर अधिक-अधिक होकर फूल-गोभीके सदृश गुच्छेदार बनती है। यह रोग उपदंशके विषसे निर्माण होता है। सामान्यतः रोगी इसे अर्श होना कहते हैं। परन्तु अर्शके मस्से और यह शूकवृद्धि दोनोंमे सादृश्यता कुछ भी नही है। संप्राप्ति और लक्षण दृष्टिसे भी महदन्तर है। इस गुलशक विकारपर उपदंशसूर्यका उत्तम उपयोग होता है।

पुराना तालुव्रण उपदंशजन्य होनेपर उसपर उपदंशसूर्यका प्रयोग करनेसे वणशमन होनेमें सहायता मिलती है। उपदंशके योगसे उत्पन्न दृष्टिमांद्य, अंधता या नेत्रव्रण, नेत्रकी लाली, पक्ष्मव्रण आदि उपद्रव उत्पन्न होनेपर त्रिफला और घीके साथ उपदंशसूर्यका प्रयोग करना चाहिये। एव त्रिफलाके क्वाथसे नेत्रोंको धोते रहना चाहिये। नेत्रकी भांफणीके समीप उत्पन्न होनेवाला जीर्ण नाड़ीव्रण (नासूर) विविध कारणोसे उत्पन्न होता है। इनमेंसे उपदशज व्रणका रोपण उपदंशसूर्यके सेवनसे हो जानके उदाहरण मिले हैं।

उपदंशके विषका परिणाम वातवह मण्डल, वातचक्र और वातवाहिनियोपर होकर वातप्रकोप होता है। फिर पक्षाघात या कलायखंजके समान लक्षण होते हैं। कितनेही रोगियोंके सर्वांगमे बिल्कुल शक्तिहीनता आजाती है। कफप्रकोप अधिक होनेपर रोगीको घबराहट और अशांति बनी रहती है। रोगी एक स्थानमें पड़ा रहता है। तन्द्रा, जड़ता, विचार करनेकी शक्तिका ह्रास आदि लक्षण होते हैं। ऐसी परिस्थिति मे उपदंशसूर्यका प्रयोग सारिवादि शारकर या रक्तशोधकारिष्टके साथ करना चाहिये।

परिवर्तित ज्वर बार-बार आता रहता है। १-२ सप्ताह तक ज्वर नही रहता, फिर आजाता है। इस तरह रोगीको त्रास देता रहता है। इस ज्वरमें कफ प्रधान लक्षण होने-पर उपदंशसूर्यका उपयोग करना चाहिये। मात्रा अति कम देनी चाहिये।

पीतज्वर (yellow fever) पर इस औषधका प्रयोग करना चाहिये। यह ज्वर संक्रामक है। विशेषतः बड़ी जातिके मच्छर (Aedesaegypti) के काटने पर होता है। इसमे सर्वांगमे त्वचा पीले वर्णकी होजाती है। कामलाके लक्षण प्रकाशित होते हैं; शीतसह ज्वर आता है; तथा मुख, नाक, और आमाशयमेंसे काले रंगका रक्त स्राव (Black Vomit) होता है। इसकी उत्पत्ति अमेरिकाके उष्णता-प्रधान देशोमे होती है। यह ज्वर विशेषतः भारतमें नही होता। (औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—सोमल २॥ तोले और भेंडका दूध २॥ सेर लेवें । थोडा-थोडा दूध मिलाकर खरल करते रहें । लगभग २०-२५ दिनमें सब दूध मिल जानेके पश्चात् जब रबडी जैसा गाढा दूध हो जाय, तब ५०१ गुलाबके फूल मिलाकर खरल करें । फिर गोली बनाने लायक होनेपर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें ।

(पं० लक्ष्मीनारायणजी आ० भू०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ देवें ।

उपयोग—यह रसायन जीर्ण उपदंशके उपद्रव, सधिवात, पक्षाघात, रक्त-विकार, कुष्ठ, नेत्रोंमें लाली, तालुव्रण, गुदापर पुष्प समान गुदशूक हो जाना, दुष्टव्रण, विद्रधि, अन्तर्विद्रधि आदि सम्पूर्ण भयंकर उपद्रवोंको थोडे ही दिनोंमें दूर करता है । पहिली विधिके प्रयोग और इस प्रयोगमें गुण लगभग समान हैं । दाह, वृक्कविकृति, आमाशय रसमें उग्रता आदि कारणोंसे कितनेही रोगियोंको पहिली विधिवाली औषधि अनुकूल नहीं रहती, तब यह निर्भयतापूर्वक दीजाती है ।

सूचना—गरम-गरम भोजन, गरम चाय, मिर्च, खटाई और नमकका त्याग करें । भोजनमें थोडा सैंधानमक लें ।

[१२४] उपदंशकुठार वटी ।

विधि—नीलेथोथेका फूला छोटी हरड, काबुली हरड और सोहागेका फूला १-१ तोला और कौडी भस्म ४ तोले मिला, ३ दिन नीबूके रसमें खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें ।

मात्रा—१ से ४ गोली सुबह-शाम ७ दिन ठण्डे जलके साथ दें ।

उपयोग—यह वटी नये और पुराने उपदंश रोगको दूर करती है । एवं पुराने उपदंश रोगके उपद्रव—दृष्टिमांद्य, नेत्रलाली, फोडा-फुन्सी, सन्धिवात, अतिसार, संग्रहणी, मूत्र पिडकी विकृति, रक्तविकार आदिको भी नष्ट करती है ।

सूचना—नीलेथोथेमें वमन करानेका दोष है । वह नीबूके रसके संयोगसे कम हो जाता है, फिर भी किसीको उबाक हो तो नीबू या सेंलका सेवन करे । विशेष सूचना तुत्थ भस्ममें देखें ।

[१२५] रसकपूर ।

प्रथम विधि—शुद्ध पारा, कच्ची फिटकरी, सैंधानमक और कसीस सम-भाग, और नौसादर २० वां हिस्सा मिलाकर घीकुवारके रसमें ६ घण्टे खरल कर डमरू-यन्त्र और वालुकायन्त्र द्वारा उडा लेवे । (आ० नि० मा०)

सूचना—डमरूयन्त्रको केवल २-३ घण्टे अग्नि देकर रसकपूर उडा लेवे । फिर यन्त्रको खोल ऊपर लगे हुए रसकपूरको निकाल पुनः बन्दकर ३ घण्टे अग्नि देकर शेष रसकपूरको उडा लेवे । पश्चात् उस रसकपूरको पकड मिट्टी लगी

हुई बोतलमें भर ईंटका मजबूत डाट लगाकर वालूकायन्त्रमें रख १२ घण्टे मन्द और मध्यम अग्नि देकर उड़ा लेवें। इस तरह दूसरी बार उड़ानेपर रसकपूर उत्तम प्रकारका बनता है। तेज अग्नि न लग जाय यह सम्हालें; अन्यथा पारद पृथक् हो जायगा।

मात्रा—$\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{4}$ रत्ती तक दूसरी ओषधिमें मिलाकर दें।

दूसरी विधि—डाक्टरीमे हाइड्रार्जिरी परक्लोराइडम् (Hydrargyri Perchloridum) नामकी ओषधि आती है। उसका दूसरा नाम कारोसिव सब्लिमेट (Corrosive Sublimate) है; वह भी एक प्रकार का रसकर्पूर ही है। बनानेकी विधि निम्नानुसार है :—

शुद्ध पारद २० औंस और गन्धकके तेजाब १२ औंसको एनेमलके (लोहेकी सफेदी लगे) पात्रमें मिलाकर चूल्हे पर चढ़ावें। थोड़ी आंच लगनेपर अपने आप अग्नि लगकर सफेद धुआं निकलने लगेगा। तेजाब जल जाने पर नीचे उतार लेवें। इसे डाक्टरीमें परसल्फेट आफ् मरकरी (Persulphate of Mercury) कहते हैं।

इस परसल्फेट आफ मरकरी २० औंसको सैंधानमक (Sodium Chloride) १६ औंसके साथ मिलावें। फिर उसमें ब्लैक आक्साइड आफ मैंगनीज (Black Oxide of Manganese) १ औंस मिला अच्छी तरह खरलकर हरी आतशी शीशीमें भर बालूकायंत्रमें रखें। पश्चात् यथाविधि १२ घण्टे अग्नि देकर उड़ा लेनेसे रसकर्पूर तैयार हो जाता है। इसे नीले कांचकी शीशीमें या नीला कागज लगाई हुई शीशीमें भरकर सम्हाल पूर्वक रक्खें।

स्व० पं० हरिप्रपन्नजीने लिखा है कि, पारदकी ४ गुने गन्धकके तेजावमें ऊपरकी विधिसे भस्मकर फिर भस्मके समान सैंधानमक मिला आतशी शीशीमें भर ६ घण्टे अग्नि देनसे रसकर्पूर ऊपर लग जाता है।

उपयोग—यह रसकर्पूर रक्तविकार, कुष्ठ, उपदंश आदि रोगोंमें खाने तथा घावको सुखानेवाले कीटाणुनाशक मलहम और घाव धोनेकी ओषधिमें मिलानेके लिये उपयोगमें आता है। उपदंशकी तो यह विशेष औषध है।

सूचना—रसकर्पूरवाली औषधके सेवनकालमें गेहूंका फुलका, घी, दूध, शक्कर और भात खायँ। तैल, मिर्च, खटाई, नमक आदिका त्याग करें। थोड़ा सैंधानमक मिलाना चाहें, तो गेहूंके आटेमें मिलावें।

रसकर्पूरका उपयोग बहुत कम मात्रामें करना चाहिये। मात्रा ज्यादा देनेसे मुंह आना, मसूड़ोंमें सूजन, दांतोंमेंसे रक्त गिरना, जीभ मोटी होना, श्वासमें दुर्गन्ध, मुंहपर सूजन, कोष्ठ और मूत्रमें जलन, थूकमें रक्त आना, उदरमें तीक्ष्ण पीड़ा आदि विकार हो जाते हैं। यदि बहुत ज्यादा परिमाणमें दिया जायगा, तो हृदयावरोध, होंठ काले होना, शरीर पसीनेसे भीग जाना, पेशाब बन्द होना आदि उपद्रव उत्पन्न होकर रोगीकी मृत्यु होजाती है।

यदि रसकर्पूरका तीक्ष्ण असर हो जाय—मुंह आ जाय या अन्य उपद्रव उत्पन्न हो जाय, तो दूध, अंडेकी मफेदी आदि पौष्टिक पदार्थका सेवन करना चाहिये, तथा बबूल या बेरकी छालके क्वाथमें फिटकरी और नीलाथोथा मिलाकर कुल्ले करना चाहिये ।

(१२६) अबीर रस ।

प्रथम विधि—रसकर्पूर, सिंगरफ, दालचिकना और सुनहरी गोटा, चारों १-१ तोला लें । रसकर्पूर, सिंगरफ और दालचिकनेको कुछ कूटकर मूंग समान टुकडे करें। गोटमेंसे सूत निकाल दें, फिर कतरकर सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकडे कर दें। पश्चात् लोहेके मोटे तवेपर ८ तोले सैंधानमक बिछाकर ऊपर रसकर्पूरवाले टुकडोको फैला दें, उनको गोटेसे ढक दें, और ८ तोले सैंधानमकसे चारों ओर किनारा इस तरह बांधे कि इस घेरेको ऊपर रखीहुई हुई प्याली लगती रहे। फिर चीनीमिट्टीकी प्याली ढक दें, तत्पश्चात ४-८ तोले या अधिक सैंधानमक और १-२ तोले कतीरा गोंदको जलमें भिगो तवा और प्यालीकी सन्धियोंको दृढ बन्द करें। (कितनेही चिकित्सक कतीरा नहीं मिलाते)। फिर यन्त्रको चूल्हेपर चढा बेरकी लकडी (पैरके अंगूठे जैसी मोटी) की १२ घण्टेतक मन्द-मन्द अग्नि देवें । पश्चात् स्वांग शीतल होनेपर ऊपरकी प्यालीमें लगे हुए अबीर रसको निकाल लेवें । कितनेही चिकित्सक प्याली रखनेके समय उसके भीतर मट्ठा (तक्र) लगा लेते हैं ।

(सि० भ० म०)

वक्तव्य—मूल ग्रन्थकारने जो विधि लिखी है, उस तरह बनानेमें बहुत कम तैयार होता है। एवं अनेक वार पारद कुछ अंशमें पृथक हो जाता है, इस तरह रसायनका वियोजन होनेपर उसके सेवनसे मुंह आजाता है, अतः हम दूसरी विधि अनुसार तैयार कराते हैं—

पारदके वियोजनयुक्त रसका सेवन करानेसे कदाच मुंह आजाय तो बबूलकी छाल या बेरकी छाल या चमेलीके पानके क्वाथसे दिनमें ३-४ वार कुल्ले करावे प्रत्येक वार २५-५० कुल्ले करावे ।

दूसरी विधि—रसकर्पूर, दालचिकना, सिंगरफ १०-१० तोले, सोमल २॥

---

*दाल चिकना—(Hydrargyrum Ammoniatum)-रसकर्पूर (मर्क्युरिक क्लोराइड) ८ औंस, लाइकर एमोनिया ४ औंस और वाष्प जल यथा प्रयोजन लेवें । पहले रसकर्पूरको वाष्प जलमें मिला मृदु अग्नि पर द्रव करे। फिर लाइकर एमोनिया मिलाकर चलावे । जो तल भागमें बैठ जाय, उसे वाष्प जलमें पुनः पुनः धोवे । जब धोए हुए जलमें शोरा द्रावक (Acid Nitric dil.) मिश्रित नाइट्रेट आफ सिल्वर द्रव मिलानेपर कुछ भी द्रव्य तलस्थ न हो, तब औषधि शुद्ध मानी जाती है । उसे २१२ डिग्रीके कम अग्निपर सुखानेपर मैले सफेद रंगका दालचिकना बन जाता है । यह दालचिकना जलमें अथवा इथरमें द्रवीभूत नहीं होता ।

तोले और सैंधानमक ५ तोले । रसकपूर और दालचिकनाको हम कल्याण रसायनशालामें तैयार कराते हैं । सैंधानमक भी रसकर्पूरके साथ मिलाया हुआ लेते हैं । । सबको मिला बड़े उदरवाली कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भर बालुकायंत्रमें रखकर तैयार करते हैं । धुआँ निकले तबतक डाट चिपकाया हुआ रखते हैं । फिर डाटको दढ़ करके ६ घण्टे मध्यमाग्नि देते हैं ।

यह रसायन सुन्दर सफेद बनता है । रसकर्पूरके भीतर मिले हुए गन्धकके तेजाबमें से कुछ अंश पीले गंधक रूपसे पृथक् होजाता है ।

सुनहरीगोटा मिलानेपर वह नीचे रह जाता है, उसका कोई विशेष गुण अमीर रसमें नहीं आता । सोमलके संयोगसे गुणमें अति वृद्धि होती है । इस हेतुसे हम सोमल मिलाते हैं । फिर भी किसीको सुनहरी गोटेके तन्तु मिलाना हो, तो भी बन सकेगा ।

मात्रा—आधा से १ रत्ती मुनक्कामें रख सुबह १ बार निगल जायं । दांतोंको न लगे, यह सम्हालें । ७ से १४ दिनतक सेवन करें ।

उपयोग—इस रसके सेवनसे उपदंश, सन्धिवात और उपदंशजनित एक-दो वर्षके भीतर उत्पन्न हुए रक्त और मांसतक पहुंचे हुए उपद्रव थोड़े ही दिन में दूर होजाते हैं । उपदंशके लिय अति लाभदायक ओषधि है । भोजनमें गेहूंका फुलका, गायका दूध और मिश्रीके सिवा कुछ भी नहीं लेना चाहिये ।

इस रसमें कीटागुनाशक गुणके अतिरिक्त उत्तेजक कफघ्न गुण होनेसे यह कफप्रधान सान्निपातमें भी प्रयुक्त होता है । जब कफ बहुत बढ़ गया हो; तब कीटाणु नष्ट करना, कफको सुखाना, उत्पत्तिको रोकना और उत्तेजना देकर उत्तान कफको बाहर निकालना, इन सब क्रियाद्वारा कफ प्रकोपको दूर करना पड़ता है । ये कार्य इस रसायन (रसकपूर और मल्लमिश्रित होनेसे) से संतोषप्रद होता है ।

इन गुणोके हेतुसे कफप्रकोपसह तमकश्वासके दौरेमें तथा न्युमोनिया, इनफ्लूएंजा और अन्य कफप्रकोपसह सन्निपातमें जब ज्वर १०० लगभग हो तथा बहोशी या व्याकुलता हो, तब इसका प्रयोग होता है । १-१ चावल रसायन मनक्काके टुकड़ेमें लपेट कर निगलवा दिया जाता है । यदि वृक्कोंसे योग्य कार्य न होनेसे मुंहपर शोथ आया हो, मुंह पर छाले रहते हों या ज्वर १०२ से अधिक हो, तो उस अवस्थामें अमीर रस या इतर मल्ल-प्रधान ओषधि नहीं दी जाती ।

[१२७] मल्लादि वटी ।

विधि—पीला सोमल १ तोला और सफेद कत्था ३ तोले मिलाकर कज्जली करें । फिर नागरबेलके पानके रसमें ३ दिन खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें । (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार नागरबेलके पानके साथ दें ।

उपयोग—यह वटी जीर्ण उपदंशके उपद्रव, सन्धिवात, पक्षाघात, गुदशूक, तालुव्रण, वातविकार, कफवृद्धि, मन्दाग्नि, कुष्ठ, गलत्कुष्ठ, रक्तविकार, नाडीव्रण, नेत्रव्रण, दुष्टव्रण, आदि सबको १ मासमें नष्ट करती हैं। उपदंशजनित ५-७ वर्षके जीर्ण उपद्रव भी इस औषधसे दूर होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

यह वटी प्रबल कीटाणुनाशक और विषघ्न हैं। इसका उपयोग विशेषत फिरंगजनित उपद्रवोंपर होता है। फिरंग विष रक्तमें रह जानेपर मांसादि धातुओंमें लीन होकर कुछ मास या वर्षोंके पश्चात् रक्तविकार, फोडे-फुन्सी, कुष्ठ, त्वचारोग, गुदशूक, तालुक्षत, पक्षाघात, धमनीकोष्ठकाठिन्य, रक्तदबाववृद्धि और नासादि स्थानोंमे मस्सेकी उत्पत्ति इत्यादि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन उपद्रवोंको मूल रोग मानकर उपाय करनेपर सच लाभ नही पहुँच सकता। फिरंग विषको जलानेपर ही वे निर्मूल होते हैं। इस विषको जलानेमें मल्लप्रधान औषधि श्रेष्ठ मानी गई है। अष्टमूर्ति रसायन, अमीररस, मल्लसिंदूर (नं० २), उपदंश सूर्य और मल्लादिवटी आदि मल्ल कल्प हैं। ये सब उत्तरोत्तर उग्र हैं। आयु, प्रकृति, ऋतु, रोगबल, उपद्रव, पथ्यापथ्य, आर्थिक स्थिति, सामयिक अनुकूलता शारीरिक बल और व्यवसायादिका विचार करके योजना की जाती हैं।

रसविकृति, आमप्रकोप, कफप्रकोप, धूम्रप्रधान ज्वर, नेत्रव्रण, नासाव्रण, तालुव्रण आदिपर इस वटीकी योजना विशेष हितावह हैं। कारण, इस वटीमे कत्था मिला हुआ है, जो उक्त विकृतियोंको दूर करनेमे विशेष सहायक होता है।

श्वसन संस्थामे जब अत्यधिक कफ संगृहीत हो जाता है,तब शारीरिक उत्ताप प्राय ९६° से ९७° लगभग हो जाता है। एव अग्निमांद्य, अरुचि, व्याकुलता,कफ थोडा-थोडा निकलते रहना, छातीमें भारीपन, आलस्य, थकावट, नाडी अति मन्द होजाना, मलावरोध और किसी किसीको शोथ आ जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इसपर यह वटी दूधकी मलाई और मिश्रीके साथ या दूधके साथ दीजाती है। जिनको दूध अनुकूल न रहता हो, तो उनको मक्खन-मिश्री या घृत अनुपान रूपसे साथ दिया जाता हैं।

वक्तव्य—यकृत् निर्बल हो तो अधिक घृत नही देना चाहिये। जो कडवा तैल खा सके उसे पक्वड़े तलकर खिलाना चाहिये। कफको बाहर निकालनेमे और छातीका शोधन करनेमे कडवा तैल विशेष उपयोगी हैं।

जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाना चाहिये। शीतल वायु और शीतल जल का उपयोग हानिकर है।

धूम्रपानका व्यसन हो तो छुडा देना चाहिये।

सूर्यका ताप, मिर्चादि गरम पदार्थ, अति उष्ण भोजन और चाय आदिका सेवन कमसे कम करना चाहिये।

कफप्रधान सन्निपातमे ज्वर १०१° से अधिक न हो, नेत्रमे लाली न हो, मलावरोध न हो, मूत्रशुद्धि होती हो तथा गलेमेंसे कफकी आवाज आती रहती हो, व्याकुलता, मद

प्रलाप, बेसुधी और श्वास ऊपर-ऊपर चलना आदि लक्षण उपस्थित हों तो उस अवस्थामें नागरवेल या तुलसीके पानका रस और शहदके साथ यह वटी दी जा सकती है। मुख्य औषधि संचैतनी वटी और समीरपन्नग हैं, तथापि इनके अभावमें मल्लादि वटीका प्रयोग किया जाता है।

सूचना—जल गरम करके शीतल किया हुआ देवें। अच्छी तरह सुधी न आ जाय, तब तक खानेको कुछ भी नही देना चाहिये।

गलत्कुष्ठ होनेपर प्रारम्भावस्थामें रक्तके भीतर कुष्ठ कीटाणु (Bacielus leprae) प्रवेशित होकर अपना अड्डा जमाते हैं। उनकी आबादी बढ़नेपर उसके विषका प्रवेश मांसादि धातुओमें होता है। फिर मुखमण्डल फूला हुआ या शोथमय विकृत बन जाता है। रोगवृद्धि होनेपर त्वचा शुष्क बनकर सड़ने लगती है। फिर अंगुलियोके पर्व गलकर टूटने लगते हैं। उन स्थानोंसे दुर्गन्धमय रसस्राव होता रहता है। अति अशक्ति आ जाती है। निद्रा, तन्द्रा और आलस्य बने रहते हैं। इस विकारकी प्रथमावस्थामें पथ्य-पालनसह इस वटीका सेवन कराया जाय, तो लाभ होजाता है।

वक्तव्य—(१) भोजनमें गेहूं-चने मिश्रित रोटी, दूध, घी और शक्कर। अति कम सेंधानमक। उदरशुद्धि नियमित होनी चाहिये।

(२) यदि औषध सेवन करनेपर मूत्रावरोध हो जाय, रात्रिको २-४ बार लघुशंकाके लिये उठना पड़ या ज्वर आ जाय अथवा मुखमण्डलपर शोथ आजाय, तो यह दवा छोड़ देनी चाहिये। कुष्ठकुठार, आरोग्यवर्दिनी, चावलमोगरा तैल या अन्य औषधि देनी चाहिये।

नाड़ीव्रण, भगंदर, अन्तर्विद्रधि और दुष्ट विद्रधि, जो दीर्घ कालतक न भरते हों, जिसके हेतुसे ज्वर आजाता हो, उसके बाह्योपचारके साथ मलई या मक्खन और (या शहद) के साथ यह नहीं दी जाती है।

श्री पं० सुखरामदास टी. ओझा आयुर्वेद मार्तण्ड सफेद सोमल १ तोला, सफेदकत्था ३ तोले और रसोईघरका धुंआ १ तोला मिला, नागरबेलके पानमें ३ दिन खरलकर आध आध रत्तीकी गोलियां बनाते हें। इनमेंसे १ से ४ गोली कफप्रधान श्वासरोगीको शीतल जलके साथ सेवन कराते हैं। भोजनके साथ घी, सरसोंके तैलसे बनाये हुए पकवड़े, आमके आचार, शाकमें भी सरसोंका तैल देते हैं। दूध-दही नहीं देते। कदाच् रोगी दूध लेना चाहे तो थोड़ा दे सकते हैं। सरसोंका तैल जितना अधिक हो, उतना ही हितकर है।

सूचना—गोदुग्धके अलावा भोजनमें कुछ भी न लें।

(१२८) पंचनिम्ब चूर्ण।

विधि—निम्ब पचांग (जड़, पत्ती, फूल, फल और छाल) ६० तोले

लोह भस्म, छोटी हरड़, पुंवाड़के बीज, चित्रकमूल, भिलावा, बायविडंग, मिश्री, आंवला,

हल्दी, पीपल, कालीमिर्च, पाठ, बावची अमलतासका गूदा और गोखरू, ये १५ औषधियें ४-४ तोले लेकर चूर्ण करें। फिर लोहभस्म मिलाकर भांगरेके रस और खैरकी छालका तथा विजयसारके अष्टावशेष क्वाथकी १-१ भावना देकर सूखा चूर्ण बना लेवें।

(शा० स०)

मात्रा—६ माशेमें १ तोले तक खैरकी छालके काढ़ेके साथ दें।

अनुपान—रोग बहुत अधिक हो और पाचनशक्ति प्रबल हो तो, खैर-छाल और विजयसारके अष्टावशेष क्वाथमें दें। साथ ही यह भी स्मरण रहे कि, कषाय प्रधान औषधियें पाचनमें पचकर शक्तिको नष्ट (श्रम) होता है, अतः रोगीके बलाबलका अवश्य विचार कर लेना चाहिये। यकृत् सबल है और दाह है तो, घृतसे, पाचक शक्ति मन्द है तो दूध दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे सब प्रकारके कुष्ठरोगोंका एक मासमें शमन होता है, दूषीविषके उपद्रव रूप और पाचन क्रिया-विकृतिसे होनेवाले कुष्ठ, सब दूर होते हैं, एवं भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, नाडीव्रण, विषप्रकोप, सब प्रकारके प्रमेह, रक्तविकार उपदंशके उपद्रवके कुष्ठ, प्रदर, शिरदर्द, उदरपर मेदवृद्धि और स्थूलता आदि रोग भी नष्ट होते हैं। इस चूर्णके सेवनसे रोगी सब प्रकारके रोग (पचनेन्द्रियकी विकृतिजनित और त्वचारोग) तथा जरावस्थाकी निर्बलतासे मुक्त होकर चन्द्रके समान कान्तिवाला बनता है।

(१२६) रस माणिक्य।

विधि—बिना शोधी हुई तबकिया हरतालका चूर्ण करें। फिर अभ्रकके समान आकारके दो पत्रे लें। इनके बीचमें मोटे कागज जितनी मुटाई हो उतना हरतालका चूर्ण फैला दोनों पत्रोंको दबाकर गोबरकी निर्धूम अग्निपर रखें। तीन-तीन मिनटपर पलटते रहें। तीन चार [illegible] लाल रंग हो जाता है। पश्चात् [illegible] होनेपर अग्नि परसे उतार [illegible] ठण्डा होनेपर माणिक्य रस निकाल लेवें।

(आ० [illegible]० पा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती कफज ज्वरमें नागरबेलके पानके साथ तथा कुष्ठ और रक्तविकार आदिमें गोघृत और शहदके साथ दें। ऊपर खैरकी छालका क्वाथ पिलावें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे वातश्लेष्म ज्वर, [illegible], सन्निपात, श्वास, कास, [illegible], कुष्ठ और गला हुआ कुष्ठ, वातरक्त, [illegible], नाडीव्रण, दुष्टव्रण उपदंश, विचर्चिका, नाक और मुँहके रोग, भयंकर क्षत (घाव) और पुण्डरीक कुष्ठ चर्मदल कुष्ठ, विस्फोटक और मण्डल कुष्ठ थोड़े ही दिनोंमें नाश होजाते हैं।

[illegible], कुष्ठ, [illegible], पहुत [illegible] विशेषतः और प्रमेहको कीटाणुप्रकोप और आम-विरज या वातकफज व्याधिपर दिया जाता है। हरतालके भीतर सोमल और गन्धक स्वा-

भाविक रहा है। इसकी भस्म बनानेपर गन्धक सब उड़ जाता है और सोमलका भी कुछ अंश निकल जाता है। रस माणिक्य बनानेपर गन्धक परिपक्व होकर रूपान्तरित हो जाता है और सोमल भी रह जाता है। मात्र २% सोमल उड़जाता है। इस रसायनमें सोमल और गन्धकका इस प्रकारका संयोजन होजाता है कि, यह रक्तमें शीघ्र मिलकर अपना प्रभाव तत्काल दर्शाता है।

वर्षामें भीगने या शीत लग जानेपर स्वरयन्त्र, श्वासनलिका और फुफ्फुसोंपर आघात पहुंचता है। फिर मन्द मन्द ज्वरसह प्रतिश्याय उपस्थित होता है। नासिकासे जल टपकता है, बारबार छीकें आती हैं, आवाज बैठ जाती है, ऐसी अवस्थामें १-१ रत्ती हरताल रसायन शहदके साथ सुबह और रात्रिको देनेसे दूसरे ही दिन प्रतिश्याय दूर हो जाता है।

सूचना—सूर्यके तापका आघात होकर प्रतिश्याय होनेपर इस रसायनका उपयोग न किया जाय तो अच्छा। जिन रोगियोंको वृक्कप्रदाह हो, उनको पारद, सोमल और तालप्रधान ओषधि अधिक दिनोंतक नहीं दी जाती।

शीत लग जानेपर छाती जकड़ जाती है। उसका तुरन्त उपचार न करनेपर फुफ्फुसोंमें कफोत्पत्ति होकर ज्वर आजाता है। घबराहट, फुफ्फुसोंका खिचाव, शिरमें दर्द, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होता है। इसकी प्रारंभावस्थामें यदि हरताल रसायन १-१ रत्ती शहद-पीपलके साथ प्रातःकाल और रात्रिको दिया जाय, तो आगे होनेवाले सब लक्षण रुक जाते हैं। ज्वरादि उत्पन्न होगया हो तो मलावरोधको दूर करे ऐसा पंचसम चूर्ण आदि औषधियां, शीतभंजी अथवा त्रिभुवनकीर्ति रसके समान ज्वरघ्न औषध या वच आदि वामक औषधिका सेवन करानेके साथ १-१ रत्ती हरताल रसायन मिलानेपर सत्वर लाभ पहुंचता है।

अनेक वार प्रतिश्याय होकर वातश्लैष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएंजा) की सम्प्राप्ति होती है। इस ज्वरकी प्रथमावस्थामें इस रसायनका उपयोग करनेपर कीटाणु नष्ट होते हैं और कफोत्पत्ति बन्द होती है। फिर ज्वर सरलतासे शांत होजाता है।

कफप्रधान प्रकृति बन जानेपर यदि दूषित कफ फुफ्फुसोंमें संगृहीत होता है, तो उसमेंसे विषका शोषण रक्तमें होजाता है। रक्तमें विषवृद्धि होनेपर श्वासका आक्षेप होता है और अन्य समयमें भी थोड़ा-सा परिश्रम होनेपर श्वासावरोध और घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। रोगी गलेमें आये हुए कफको भी बाहर निकालनेमें असमर्थ होजाता है। किसी किसीको ज्वर भी आजाता है; ऐसे रोगीको १-१ रत्ती हरताल रसायन शहदके साथ या वासा स्वरस और शक्करके साथ दिनमें २ वार १५ दिनतक देते रहनेसे लाभ पहुंच जाता है। यदि पूरा लाभ न हुआ तो १५ दिन छोड़कर पुनः हरताल रसायन दे सकते हैं।

सूचना—यदि रोगीको धूम्रपानका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये। एवं गोमूत्रक्षार चूर्णका सेवन भी कराते रहना चाहिये।

कफप्रधान ज्वर होनेपर छातीमें कफका अतिसंग्रह, कण्ठमेंसे कफकी आवाज निकलना, ज्वर १००° से १०२° तक रहना, मुँहमें मीठापन और चिकनापन, आलस्य, प्रतिश्याय, नाड़ियोंका खिंचाव, वारवार लघुशंका होना, मूत्रका वर्ण श्वेत होना, अन्त्रमें भारीपन, हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस ज्वरपर रस माणिक्यका उपयोग अदरखके रस और शहदके साथ होता है। इसके सेवनसे कफ सरलतासे बाहर निकलता है, आमका पचन होता है, उदरमें अफारा आया हो, तो वह भी दूर होता है, और फिर ज्वर शमन होजाता है।

फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia) रोग होनेपर फुफ्फुसके भीतरसे न्यूमोकोकाई कीटाणु कफके साथ बाहर निकलते रहते हैं। इस रोगमें कितनेक रोगी अधिक अशक्त होजाते हैं। उनके फुफ्फुस सरलतापूर्वक कफको बाहर नहीं फेंक सकते, एवं कफकी नयी नयी उत्पत्ति होती रहती है। ऐसे रोगियोंको रोगनाशक मुख्य औषधिके साथ इस रसायनका सेवन कराते रहनेपर कफोत्पत्ति कम होती है, घबराहट दूर होती है और कफ सरलतासे बाहर निकलने लगता है।

सूचना—यदि रक्तमय कफ निकल रहा हो, तो यह रसायन नहीं देना चाहिये।

परिवर्तित ज्वर (Relapsing fever) विशेषतः निर्धनोंको और दूषित अन्नका सेवन करने वालोंको होता है। दुष्काल पीडित प्रदेशोंमें इस ज्वरकी उत्पत्ति अधिक होती है। इस ज्वरमें पीडितोंको शुद्ध अन्न देनेके साथ इस रसायनका सेवन कराया जाय, तो थोडे ही दिनोंमें रोग निवृत्त हो जाता है।

छोटे बालकोंको श्वासप्रणालिका प्रदाह (डब्बारोग) होनेपर फुफ्फुसोंमें कफ संग्रह होजाता है। इस अवस्थामें पहले एक वमन और एक दस्त लानेवाली औषध-डब्बानाशक गुटिका दी जाती है। इसके पश्चात् भी फुफ्फुसोंमें बल न आया हो और उदरमें खड्डा पडता हो, तब हरताल रसायन शहदके साथ मिलाकर दिया जाता है। यदि इसके साथ अडूसेका रस भी मिलाया जाय, तो सत्वर लाभ पहुँचता है।

वातरक्तका विकार प्रायः चिरकारी और दीर्घकाल स्थायी होता है। यह रोग हाथ या पैरोंके अंगूठेसे प्रारंभ होता है। अंगुष्ठ सूजता है और उसमें वेदना होती है। फिर कुछ समयमें ऊपर बढकर संधिस्थानोंको पकडता है। उस समय त्वचा मलीन होजाती है तथा तीव्र वेदना, सारे शरीरमें नाड़ियों खिंचना, कम्प, जकडाहट, उस स्थानमें स्पर्शका बोध न होना और शीतल वायु असह्य भासना इत्यादि लक्षण प्रकाशित होते हैं। किसी किसीको सारे शरीरमें शुष्क कण्डू, फोड-फुन्सिया या व्युची आदि त्वचारोग भी हो जाते हैं। इस विकार पर रक्तशोधक क्वाथके साथ पथ्य पालनसह माणिक्य रस देते रहनसे २-३ मासमें रोग दूर हो जाता है।

श्वेतकुष्ठ पर लेप करनेके लिये---१ भाग हरताल रसायन और दो भाग बावचीका चूर्ण मिला गोमूत्रमें खरलकर वर्ति बनावें। फिर उसे गोमूत्रमें घिसकर लेप करते रहें। २-३ दिनमें वहां पर फाले होजाते हैं। पश्चात् औषधका लेप बन्द करें और वहां पर मक्खन लगाते रहें। फाले मिटनेपर पुनः लेप करें। इस तरह ३-४ बार करनेपर सफेद दाग निर्मूल जातेहो हैं।

सूचना--कुष्ट और रक्तविकारमें रोगीको नमक रहित भोजन (दूध भात) देनेसे सत्वर लाभ होता है।

(१३०) मंजिष्ठादि तालसिन्दूर।

विधि--तालसिंदूर ४ तोले और बृहद् मंजिष्ठादि क्वाथका चूर्ण ४ तोले मिलावें। पश्चात् बृहद् मंजिष्ठादि चूर्ण ६-६ तोलेको अष्टगुण जलमें मिला अष्टमांश क्वाथ कर ३ भावना देकर मूंगके समान गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा---१ से २ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग---यह रस कुष्ठ, उपदंश, रक्तविकार और त्वचाके रोगोंको दूर करता है। यह उपदंशके जीर्ण विकार रूप कुष्ठ और वात-कफ़-प्रधान कुष्ठमें थोड़ ही दिनोंमें लाभ पहुंचाता है। विशेष गुण तालसिंदूरमें लिखे हैं।

(१३१) सूतशेखर रस।

विधि--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागका फूला, शुद्ध बच्छनाग, सुवर्ण भस्म, ताम्र भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, धतूरेके शुद्ध बीज, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, इलायची, बेलगिरी, शंख भस्म, कचूर, इन १७ औषधियोंको, समभाग मिला भांगरेके रसमें १२ घण्टे घोटकर एक-एक रत्तीकी गोलियां बनावें। (यो० र०)

सूचना--भाँगरके रसको निकाल कुछ समयतक स्थिर रहने देवें; जिससे स्थूल अंश तलमें बैठ जायगा। फिर अच्छी तरह रूईकी मोटी तहसे छानकर काममें लें अन्यथा वनस्पतिका अंश रसमें मिलकर व्यर्थ वजन बढ़ जायगा।

वृद्ध परम्परा अनुसार सूतशेखरकी घोटाई २१ दिनतक करानेका रिवाज है। अधिक खरल होनेसे यह रसायन आशु फलप्रद बनता है।

सुवर्णके स्थानपर सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाकर सूतशेखर बनानेपर पित्तशमन और मस्तिष्कशूल आदि रोगोंपर अच्छा लाभ पहुंचता है। उसका भी हमने अनुभव किया है।

मात्रा-- १ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार दूध-मिश्री, घी और शहद अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

अम्लपित्तमें सूतशेखर, अपामार्ग क्षार, लोटिया सज्जी (सोडा बाई कार्ब) और

गुलकंदके साथ दिनमें ३ बार देवें। अथवा प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व और द्राक्षावलेहके साथ मिलाकर प्रातः सायं देना चाहिये।

उपयोग—इस रसके सेवनसे अम्लपित्त, वमन, शूल, पांचो प्रकारके गुल्म, पांचो प्रकारकी खांसी, संग्रहणी, दाह, त्रिदोषज अतिसार, श्वास, मन्दाग्नि, भयंकर हिक्की उदावर्त, ज्वर, क्षय आदि रोग ८० दिनमें निःसंदेह मिटते हैं।

सूतशेखर पित्तकी अम्लता और तीक्ष्णताका शमन करता है, एवं वातप्रकोपको भी नष्ट करता है, जिससे वातविनाशक विकारोंको दूर करनेमें यह अत्यन्त हितकर है। यह रसायन आमाशय और पित्ताशयमें पित्तप्रकोपका शमन करके पित्तोत्पत्तिको नियमित बनाता है, जिससे अम्लपित्त, खट्टी वमन, पित्तवृद्धिसे उत्पन्न होनेवाला कोष्ठस्थशूल, हिक्का, उदावर्त, पित्तज शीर्षशूल, दाह, घबराहट, चक्कर आना, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, नाकमेंसे तीव्र रक्तस्राव, मुहमें छाले होना, शीतपित्त आदि रोग नष्ट होते हैं। एवं यह पित्तशामक, हृद्य और संग्राह्य होनेसे मधुरा, सूतिकारोग, क्षयकी प्रथमा और द्वितीयावस्था, पित्तातिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार, तथा पित्तज ग्रहणी रोग आदिमें सेन्द्रिय विषको नष्ट करके दस्तको बांधता है, दाहको कम करता है, और ज्वरका शमन करता है। वातपित्तात्मक सूखी खांसी, जो घंटोंतक आती रहती है, जिसमें कफ नहीं निकलता, जो सोनेके समय अधिक त्रास पहुंचाती है, उसे और पित्तप्रधान श्वास रोगको भी यह दूर करता है। पित्ताशय कमजोर हाजानेसे पित्तोत्पत्ति कम होती है। इस हेतुसे अरुचि मन्दाग्नि निर्बलता आदि रहते हो, तो वह भी इस रसायनके सेवनसे नियमित होती है।

समीरपन्नग, पंचसूत और मल्लसिन्दूर तीनों सिंदूर कल्पकी ओषधियां उत्तेजक हैं। कज्जली कल्पमेंसे महावातविध्वंसन, एकांगवीर, स्मृतिसागर और सूतशेखर, चारों शामक हैं। वातविध्वंसनका शामक कार्य वातवाहिनियों और वातवहमण्डलपर होता है। एकांगवीर वातवाहिनियां और मांसपेशियोंके क्षोभको दूर करने में लाभदायक है। स्मृतिसागर कफभूयिष्ठ पक्षाघात, आक्षेपक, अपतानक आदि वातप्रकोपका शमन करता है, तथा सूतशेखर पित्त और वातविकारमें विशेषतः कोष्ठके भीतर पचनक्रिया करनेवाले अवयव-समूहपर शामक असर पहुंचाता है। इस शामक शब्दका तात्पर्यार्थ अधिक स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है।

यह औषध अफीमके समान तीव्र शामक नहीं है, इसलिये इसके सेवनके पश्चात् तीव्र प्रतिक्रिया भी नहीं होती। अफीम तीव्र शामक होनेसे सेवन करनेपर स्वल्प समयमें शामक गुण प्रदर्शित करता है, और वेदनाका शमन करती है, परन्तु वेदना जितना जल्दी कम होती है, उतनी ही जल्दी पुनः जागृत हो जाती है, जिससे रोगीको पुनः संताप होने लगता है। इतना ही नहीं, क्वचित् वेदना अधिक तीव्र हो जानेका भी अनुभवमें आया है। ऐसी शामक औषधका परिणाम वातवाहिनियोंकी संवेदना शक्तिको कम करनेके लिये ही है। रोगके मूल कारण या वेदनाके मूल कारणका नाश इससे नहीं होता। किंतु

कालपर्यन्त संवेदनाका ह्रास हो जानेसे उस स्थानकी पीड़ाका रोगीको बोध नहीं होता। शामक औषधमें जितनी अधिक तीव्रता हो, प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र होती है। रबड़की गेंद जितने बलसे पटको उतने ही वेगसे वह उछलती है। उस न्यायानुसार तीव्र शामक औषधकी तीव्र प्रतिफलित क्रिया होती है।

परन्तु सूतशेखर आदि शामक ओषधियोंकी शामकता इस तरह की है कि इसके योगसे वेदनाके मूल कारण रूप जो विकार है वही दूर होता है, और वेदना का निवारण होता है। उदाहरणार्थ सूतशेखर अम्लपित्तमें शामक है। इसमें उदरपीड़ा और उदरमें दर्द होकर वान्तिके साथ अम्लपित्त पडता है, यह लक्षण बहुधा मुख्य होताहै। इस विकारमें उदरमें दर्द यह लक्षण वात और पित्त संयोगसे होता है। इस स्थानपर अनेक भिन्न भिन्न प्रकारकी योजना शामक और संशोधक रूपसे की जाती है। इनमें तीव्र शामक या केवल पित्तकी अम्लता कम करनेवाले स्निग्ध द्रव्य आदिका परिणाम केवल काम चलाऊ होता है। यदि यथोचित सच्चा शुद्ध प्रयोग करना हो, तो दोषप्रत्यनीक चिकित्सा करनी चाहिये। वात और पित्त ये दो दोष आमाशयमें बढ़ने पर अम्लता और वेदना दो प्रमुख लक्षण उपस्थित होते हैं। ये ही दोष पक्वाशयमें बढ़नेपर लक्षण पृथक् हो जाते हैं। वेदना तो होगी ही; परन्तु अम्लताके स्थानमें अब्धातु वृद्धि होगी; और अतिसार हो जायगा। अथवा स्थूल वायु वृद्धि होकर आध्मान हो जायगा। यहांपर पाचक पित्त और समान वायु (धातु रूप जो हैं वे) अपने साम्यको स्थिर रखनेकेलिये प्रयत्न करते हैं। विकारको निर्दलन करनेकी चेष्टा (लड़ाई) करनेपर उस स्थानपर युद्धके आविष्करण होनेपर लक्षण उपस्थित होते है। पाचक पित्तमें अम्लताबढना, यह पित्तविकारका लक्षण है, और अन्न ग्रहणकार्य विकृत होना, यह समान वायुका रोगलक्षण है। इस दुष्टावस्थाको दूर करनेके लिये जीवनीय शक्तिका प्रयत्न चालू रहता है। इस हेतुसे अम्लताऔर वेदना उत्पन्न होती है। सूतशेखरके द्रव्य समूहोंका परिणाम पित्तकी अम्लता और समान वायु दोनोंपर होता है। जो औषधि आमाशयस्थ पित्तवृद्धिपर उपयुक्त होती है; वही औषध पक्वाशयगत वात पित्तवृद्धिपर भी शामकता दर्शाती है। इन इन स्थानोंमें मुख्य धातुओंकी साम्यावस्था स्थापित करना यह सूतशेखरका विशिष्ट कार्य है। इससे वातवाहिनियाँ बधिर नहीं होतीं, वातवाहिनियोंमें वातवहन कार्य व्यवस्थित होताहै। जिस तरह लवणके योगसे पित्तस्रावकी अम्लता नष्ट होकर मधुरता आ जाती है, उस तरह इस औषधिसे रूपान्तर न होकर मूल पित्तधातु व्यवस्थित होतीहै। फिर अम्लपित्तमें अधिक बढ़ी हुई अम्लता स्वयमेव शमन हो जाती है।

बढ़े हुए दोषोंकी चिकित्सा करनेमें जो औषधि क्षणिक शामक न हो; जिसका प्रयोग दोषोंके वृद्धिह्रास रूप वैषम्य (जिस तरह की विषमता हो उस मूल-विकृति) का नाश करनेवाला हो, उससे चिकित्सा करनी चाहिये। दोषका शमन अर्थात् किसी एक स्थानमें उत्पन्न विकृति द्रव्यका शमन नहीं है; एवं विकृत हुए अवयवोंका शमन भी नहीं है; परन्तु

जिसके योगसे अवयवोंमें विकृति होनी है, और विकृत द्रव्य उत्पन्न होजाता है, जो सम स्थितिमें रहने पर देहका सधारण करते हैं, तथा जिनमें वैषम्य होने पर जो दोषरूप कहलाते हैं, उन मूल धातुओंके वैषम्यको नष्ट कर धातुओंको मूल स्थितिमें प्रस्थापित करना, वही सच्चा दोषशमन है। यह कार्य अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुपर्यन्त होता है। अम्लपित्तमें वेदना और अम्लता इतनी गहराईमें सम्बन्ध होनेंसे ऊपर-ऊपरसे कार्य करनेवाली तीव्र शामक ओषधिमें सूतशेखर की समानता नहीं होसकती। सूतशेखरसे मूल धातुओंके वैषम्यका नाश होकर धातुसाम्य प्रस्थापित होता है। इस तरह यह मूल ग्राह्य चिकित्सा सूतशेखरसे साध्य होती है। यद्यपि सूतशेखरसे कार्य होनेमें कुछ विलम्ब लगता है, परन्तु कार्य होने लगता है। फिर प्रतिफलित क्रिया अधिक सबल नहीं होती। इस हेतुसे इस ओषधिसे अधिक विपरीत परिमाणकी प्रतीति नहीं होती।

सूतशेखर शामक होनेंसे हृद्य भी है। सूतशेखरका परिणाम वातवाहिनियां और रक्तवाहिनियाँ, दोनों पर शामक होता है। रक्तवाहिनियोंका कुछ आकुंचन होता है। इसहेतुसे हृदयकी जवाबदारी कुछकम होकर उसे विश्रान्ति मिलती है। इस तरह यह हृद्य है। इससे कुछ अधिक स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है। किसी भी प्रकारके सान्निपातिक, संक्रामक या सेन्द्रिय विषजन्य ज्वरमें हृदयकी क्रिया अधिक वेगपूर्वक होने लगती है। इसका कारण रक्तमें प्रवेशित सेन्द्रिय विष या कीटाणुओंको नष्ट करने या इनका प्रतिरोध करनेके लिये रुधिराभिसरण क्रिया अधिक बलसे होती है। इसहेतुसे हृदयको अधिक काम करना पड़ता है। हृदय और नाडी, दोनों बलपूर्वक अधिक कार्य और अधिक स्पन्दन करते हैं। फिर अधिक व्यापारके हेतुसे आगे-आगे हृदयको थकावट आती है, रोगी भी क्लांत होता है। फिर आगेकी स्थिति शक्तिपात की है। बुद्धिमानोंको चाहिये कि, इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेंसे पहिले ही हृदयको सम्हाल लें। यह कार्य उत्तेजक ओषधिसे नहीं होता। उत्तेजक ओषधि देनेपर हृदयको उत्तेजना मिलनेसे हृदय-क्रिया अधिक वेगसे होने लगती है, परिणाममें हृदय जल्दी थक जाता है, फिर शक्तिपातावस्थाकी प्राप्ति होती है। हृदयके कार्यमें होनेवाली यह अवस्था वातपित्तात्मक है। ऐसे समयपर हृदयको उत्तेजक ओषधि नहीं देनी चाहिये। यह एक प्रकारकी हृदय क्रिया ही है। सूतशेखरके सदृश ओषधिसे हृदयकी क्रिया कम हो जानेसे कुछ अंशमें विश्रांति मिलती है, और वह सबल बनता है। इस दृष्टिसे हृद्य इस ओषधियोंमें सूतशेखर अत्युत्तम ओषधि है।

सान्निपातिक ज्वरोंमें विशेषतः आन्त्रिक सन्निपातमें सूतशेखरका महत्वका उपयोग होता है। वह यह है कि, इस रोगके निमित्त कारण रूप कीटाणुओंका प्रतिकार होता है रक्तमें कीटाणुजन्य विषसे और दोषप्रकोपसे रक्ताभिसरण क्रिया वेगवती होती है। इस हेतुसे सान्निपातिक ज्वरोंपर सूतशेखरके शामक गुणका उपयोग होता है।

(जब आन्त्रिक सन्निपात—मधुरामें पित्तप्रकोपकी प्रधानता हो तब इसका उपयोग होता है। निद्रानाश, अति पीला जलता हुआ पतला दस्त, तृषा, चक्कर आना, शीर्ष

शूल, प्रलाप आदि लक्षण होनेपर सूतशेखर, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर दिये जाते हैं। इस तरह रक्तपित्तके लक्षण उपस्थित हों, रक्तस्राव होने लगे, तो कामदूधा और रक्तकमलके फूलोंके अवलेहके साथ सूतशेखर दिया जाता है।)

यदि आंत्रिक ज्वरमें अधिक दाह और शुष्ककास हों, शौचशुद्धि न होती हो, और पेशाबमें अधिक पीलापन या लाली हो तो सारिवा, नागरमोथा, कुटकी, चिरायता और धमासा ३-३ रत्ती मिला क्वाथकर फिर शक्कर मिलाकर सुबह-शाम देते रहनेसे ज्वर-विषको दूर करनेमें सहायता मिल जाती है।

सूतशेखरका कार्य सहस्रार और वातवाहिनियोंपर शामक होता है। इनमें भी हृदय, फुफ्फुस, आमाशय और अन्त्रपर अधिकार रखनेवाली वातवाहिनियोंपर विशेष कार्य होता है।

सूतशेखर देने योग्य वातवाहिनियां और वातनाड़ीकेन्द्र विकृतिके रोगीके मस्तिष्ककी स्थिति अति विलक्षण होती है। यह उन्माद रोगीके सदृश भ्रमपीड़ित और जड़-सा होता है। कुछ विलक्षण, असम्बद्ध और अस्पष्ट बोलता है। ऐसे रोगीके प्रलापमें एक विशेष विलक्षणता यह है कि, उसे सचेत करनेपर यह शुद्धिपर आ जाता है; और नेत्र बन्द होने, तन्द्रा आने या निद्राके लक्षण प्रतीत होनेपर वड़े-बड़े करने लग जाता है। वातविध्वंसन देने योग्य रोगीका प्रलाप सर्व अवस्थामें सम रहता है; रोगीको बिल्कुल शुद्धि नहीं रहती; बेशुद्धिमें निरन्तर बकवाद करता रहता है। कोई-कोई बार रोगी स्वच्छंद, क्रुद्ध होकर मारना काटना, जोरसे चिल्लाना, रोना, भागना आदि कार्य करने लगता है। यह अवस्था केवल वातवृद्धिसे होती है। इसपर रोगीको महावातविध्वंसन देना चाहिये। सूतशेखरसे कार्य नहीं होता।

निद्रामें बोलते रहना, करवट लेकर शयन करनेपर प्रलाप, अर्द्धावभेदक, नेत्रमें दर्द आदि लक्षणोंके साथ आधी तन्द्रा होनेपर सूतशेखर अप्रतिम ओषधि है।

भ्रम (चक्कर) रोग होनेपर भूमण्डल फिरनेका भास होता है; अथवा कुम्हार चाकको जैसे घुमता है; या कांटेमें डालकर वस्तु तोलनेके समय जैसे दण्ड ऊपर नीचे होता रहता है; उस तरह रोगीको भ्रमण या गतिका भास होता हो, उसपर सूतशेखर अति उत्तम कार्य करता है। यह भ्रमणावस्था कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि, शय्यापर पड़े रहनेपर भी अपनेको कोई फेंक देता है; या चक्कर-चक्कर फिरा रहा है या बांध रहा है, ऐसा भ्रम होजाता है। इस अवस्थापर सूतशेखर अमृत सदृश हितकारक ओषधि है।

कोई भी कार्य प्रारंभ करने, पुस्तक पढ़ने और दूसरेके साथ वार्तालाप करनेपर मस्तिष्कको थकावट आजाना, शिरमें बार-बार चक्कर आना; यह इतने तक कि चलते-चलते समतोलपनेका भंग होकर एक ओर गिर जायंगे कि क्या, ऐसा लगना। यहांपर समतोलपना चला जायगा, ऐसा भासता है; परन्तु नष्ट नहीं होता और रोगी गिर नहीं जाता। यदि समतोलपना नष्ट होकर बेहोशी आजाती है, तो स्मृतिसागर देना चाहिये;

आक्षेपके झटके बार-बार होनेपर हाथ-पैर मुड जाना, अंगुलियाँ टेढी हो जाना, मेरु दण्डपर कुछ अच्छा मालूम पडना, झटकेका वेग अति त्वरित होना, परन्तु झटका अति जोरदार न होना, हाथ-पैरोंमें ऐंठन आना अर्थात् हाथ पैरके मांस कठिन और संकुचित होने, एवं मरामर विसूचिका होनेपर मर्मांगमें होनेवाले ऐंठन, सबपर सूतशेखर तत्काल अच्छा लाभ दर्शाता है।

तीव्र अम्लपित्तके योगमें होनेवाला कण्ठकी जलन, खट्टी डकार, उदरमें दाह, दिन जैसा-जैसा बढता है वैसा-वैसा उदरमें दर्द बढना, साथ-साथ कडवी और खट्टी वमन होना, कै होनेपर कण्ठ, तालु, मुख, जिह्वा आदिपर दाह होना, कण्ठ और मुहमें फाडे होना, तथा उदरकी वेदनाके साथ-साथ शिरदर्दका भी प्रारम्भ होना और भयंकर व्याकुलता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस रोगकी तीव्रावस्थामें पहिले सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवालपिष्टी और अनाररस आदि तत्काल शामक गुणदायक औषध देनी चाहिये। तीव्र लक्षण कम होने पर उदरमें पित्तका अधिक स्राव होनेकी और पित्त तीव्र होनेकी जो आदत लगजाती है, उसे कम करनेके लिये सूतशेखरका उपयोग करना चाहिये।

आमाशयमें पित्तोत्पादक ग्रंथियां विविध कारणोंसे अधिक पित्त (आमाशय रस) उत्पन्न करने लगजाती हैं। और पित्तमें तीक्ष्णता भी अधिक उत्पन्न होती है। इस हेतुसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें पहिले संरम्भ होता है। पश्चात् शोथ और स्फोटके सदृश अवस्था होती है, अन्तमें उन स्थानोंमें पतले और सूक्ष्म व्रण होजाते हैं। फिर उन स्थानोंमें कठोर अन्न चुभते हैं, अन्न उनमें प्रवेशित होकर सडने लगते हैं, उदरशूल उपस्थित होता है, फिर वान्ति होकर अन्न-आहार निकल जाता है। जब चुभनेवाले अन्नकी वमन होजाती है, तब कुछ शान्ति होती है। इसे आयुर्वेदमें अन्नद्रवशूल संज्ञा दी है। इसपर सच्ची मूलग्राही चिकित्सा उसे कहेंगे कि जिससे आमाशय व्रणका रोपण हो। सूतशेखरके योगसे पित्तका स्राव नियमित होता है और व्रणरोपणमें सहायता पहुंचती है। इसी न्यायानुसार अग्न्याशयके आग्नेय रसके विकारजनित शूलपर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

पित्ताशयमेंसे निकलनेवाला पित्त गाढा हो जानेपर उसमेंसे छोटे-छोटे पत्थर बनजाते हैं। फिर उसमेंसे एक प्रकारका तीव्र कोष्ठशूल उत्पन्न होता है। ग्रहणीमें आनेवाले पित्तवह स्रोतमेंसे या पित्ताशयमें ही यह शूल चलने लगता है। पित्ताश्मरीके कण चुभने पर या क्वचित् पित्तके तीक्ष्ण ज्वरके हेतुसे शूलोत्पत्ति होती है। यह शूल प्रत्यक्ष सूतशेखरके सेवनसे कम नहीं होता, तो भी इससे पित्तमार्गमें अश्मरी उत्पन्न होनेकी आदत दूर होसकती है। पित्तकी अति तीक्ष्णता वृद्धि भी नियमित होती है। अनुपान रूपसे घमासा गिलोय, मुनक्का, मुलहठी और मिश्रीका क्वाथ देवें। इसके पहिले पित्तस्राव करानेवाली औषधि देनी चाहिये। इस तरह पित्ताश्मरी उत्पन्न होनेकी स्थिति दूर हो जाती है।

वातातिसार और पित्तातिसार, दोनोंपर सूतशेखरका अच्छा उपयोग होता है। विदाही भोजन आमसंचयसे अतिसारकी उत्पत्ति होती है। अन्नका पचन सम्यक् नहीं

होता। उसमे यकृत्के पित्तका योग्य मिश्रण न होनेसे जो अन्न अन्त्रमे जाता है; उस अन्नका विदाह होता है; उसका सम्यक् वियोजन नहीं होता,और शोषण भी यथोचित नहीं होता। इस हेतुसे अन्त्रमें अन्नरसका संचय होकर अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर अतिसार होकर विदग्ध अन्नका स्राव होने लगता है। पित्तातिसार पित्तके सान्द्रत्व और द्रवत्व गुणकी वृद्धि के हेतुसे उत्पन्न हुआ हो,तो सूतशेखर विशेष उपयोगी होता है। इससे पित्तका नियमन होता है; अर्थात् पित्तोत्पत्ति अत्यधिक परिमाणमे होती हो, वह रुक जाती है। फिर अतिसार स्वयमेव दूर होजाता है।

क्वचित् पित्तका अतिरेक होनेपर अतिसार होता है; वह उसमे वैषम्य और वैगुण्यके हेतुसे होता है। शरीरमे धातु-द्रव्य विशिष्ट परिमाणमे और विशिष्ट गुणवीर्ययुक्त होना, यह स्वास्थ्यकी दृष्टिसे आवश्यक है। इसमें विषमता होनेपर व्याधि उत्पन्न होती है। कम परिमाण या गुणक्षयसे एक प्रकारका विकार और अधिक परिमाणमें और गुणवृद्धिसे दूसरे प्रकारका विकार होता है। मर्यादासे अधिक तीक्ष्ण पित्त तथा सान्द्र और द्रव पित्त अन्नमें मिल जानेपर अन्त्रमे विस्फोट और शोथ आकर अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर अतिसार होजाता है। पित्तकी अधिकतासे होनेवाले विरेचन बड़े-बड़े गरम-गरम पीले रंग के होते हैं। दस्त होनेके समय उदरमें दाह, घबराहट, व्याकुलता अति तृषा,क्वचित् भ्रम और प्रलाप आदि लक्षण होते हैं। सूतशेखरसे अतिसार तो कम होता ही है; साथ-साथ प्रलाप, घबराहट, तृषा, भ्रम, व्याकुलता आदि भी शमन होजाते हैं। ऐसी परिस्थितिमें सूतशेखर अति कम मात्रामें आध या एक-एक घण्टे पर देते रहें।

अन्त्रमें अनेक प्रकारके विविध विकारोंपर सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है। सूतशेखरमे विशेष धर्म यह है कि, शारीरिक घटकोंको बाधा न पहुंचाते हुए कीटाणुओंका नाश करना, यह सौम्य गुण होनेसे कीटाणु नाश तो होता ही है; और शारीरिक घटकोंपर दुष्ट परिणाम बिल्कुल भी नहीं होता।

विसूचिकामे कीटाणुजन्य, और अपचनजन्य ऐसे दो प्रकार है। कीटाणुजन्य विसूचिका बिल्कुल प्रथमावस्थासे तृतीयावस्थातक प्रत्येक स्थिति और अवस्थान्तरमे सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है। विसूचिकामे अति जुलाब लगनेपर शरीरमेसे अब्धातु कम होती है; अधिक वमन होनेसे यह स्थिति होती है। इसके पश्चात् उदर, पीठ, पैर और सर्वांगमे ऐंठन होने लगती है। सब स्नायु निचोड़नेके समान मुड़ जाते है; भयंकर वेदना होने लगती है। रोगी अति व्याकुल होजाता है। ऐसी त्रासदायक स्थितिमे सूतशेखर देनेसे १५-२० मिनटमे ऐंठन रुक जाती है। इस तरह बड़ी-बड़ी खट्टी जलके सदृश वमन होनेपर उदरमें तीव्र वेदना, मरोड़ा, उदरमे ऐंठन आदि लक्षण उपस्थित हो, तो सूतशेखर अमृत ही है।

विसूचिकाकी प्रथमावस्थासे बिल्कुल अन्तिम अवस्था तक सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है। अन्त्रशक्ति कम होनेपर कितनी ही बार रोगियोंको बिल्कुल बड़े-बड़े जुलाब

लगते रहते हैं । नलके डाटको हटानेके समान जलके सदृश दम्न होने लगता है । अन्यथा शक्ति क्षीण होजानेसे गुदमार्गसे स्राव होना ही रहता है । सूतशेखरसे इस अवस्थामें अति उत्तम कार्य होता है ।

आयुर्वेदमें उदरके भीतर होनेवाले गोलेको गुल्म संज्ञा दी है। इनमेंसे कितने ही गुल्ममें मांस और मेदका संचय होता है । यह संचय धातुपोषण-क्रममें वृद्ध विकृति होनेपर होता है, सूतशेखरके योगसे पित्तज गुल्मकी यह विकृति नष्ट होती है । इस तरह गुल्मका मूल कारण नष्ट होनेसे गुल्मकी वृद्धि कम होजाती है ।

कास अनेक कारणोंसे उत्पन्न होती है । इनमें पित्तज कास, विशेषतः यकृद्वृद्धिसे उत्पन्न कासमें सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है । अनुपान रूपसे आमला मुरब्बा देना चाहिये ।

संग्रहणीमें तीव्र और जीर्ण, ऐसे दो भेद हैं । नूतन संग्रहणीमें भी सज्वर और विज्वर ऐसे दो विभाग होते हैं । सज्वर संग्रहणीमें कुडाकी छालका कुछ भी उपयोग नहीं होता । उसमें ज्वर, रक्तयुक्त आम, विलक्षण प्रवाहण (पिचिश), दिनमें १००-२०० दस्त होने प्रत्येक बार किंड-किंछ कर आम या रक्तके एक-दो बूंद गिरने, मल बिल्कुल न गिरना, जल और रक्तमिश्रित या लाल रंगकी बूंद गिरना, साथ-साथ उदर और हाथ-पैरोंमें ऐंठन, नेत्रकी दृष्टि स्थिर न रहना, अधिक प्रस्वेद आना आदि लक्षण होनेपर सूतशेखर अति उत्तम औषधि है । सूतशेखर और सुवर्णमाक्षिकको मिलाकर बेलके मुरब्बेके साथ देवें । ऐसी व्याधिमें मल गिरने लगता है कि, रोगीकी प्रकृति सुधरने लगती है । रोग जीर्ण हो, तो पर्पटीका कल्प उपयोगी होता है ।

शुष्क कासके साथ श्वासमें भी सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है । सूतशेखर शामक और हृद्य होनेसे हृदय रोगसे उत्पन्न कास-श्वासपर अच्छा लाभदायक है ।

हिक्का अनेक प्रकारके विकारोंमें एक लक्षण है । आमाशयमें आगन्तुकमें आगन्तुक द्रव्यसंचय होकर हिक्का होती है, उसमें वमन करा, उस द्रवको दूर करनेपर हिक्काका हेतु नष्ट होजाता है । परन्तु उदर और महाप्राचीरा पेशीको हिक्क-हिक्क करनेकी आदत होगई तो, वह जल्दी दूर नहीं होती । उस समयपर सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है । निज दोष कोष्ठमें संचित होकर हिक्का होती है, उसमें पित्त और वात दोषसे उत्पन्न हिक्कामें यह उत्तम कार्य करता है । हिक्का उग्र स्वरूपकी होती है । विसूचिकाकी अंतिमावस्था या मध्यमावस्थामें भी हिक्का उत्पन्न होजाती है । उसपर भी सूतशेखर उत्तम उपयोगी औषधि है । चंचल, क्रोधी और स्वच्छंदी विचारवाली स्त्रियोंको अनेक बार हिक्का उत्पन्न होती है । वह किसी बाह्य उपचार या अन्य औषधसे नहीं रुकती । इसपर सूतशेखर प्रभावशाली औषध है ।

गंभीरा और महती हिक्का अति त्रासदायक है । ५-७ दिनतक एक समान रह जाती है । उनपर सूतशेखर उपयुक्त है । आध्मान, आनाह, छिद्रोदर या बद्धोदर इन रोगोंमें हिक्का उपद्रव रूपसे होती है । यह मरणका निमन्त्रण माना जाता है । उस पर भी कुछ अंशमें सूत-

शेखर लाभ पहुंचा ही देता है। उस हिक्काको उग्र हिक्का कहते हैं।

हिक्काके साथ अति शुष्कता, शुष्क उवाक, प्रस्वेद आना, नेत्र बार-बार फिर देना कण्ठमें दाह, शीतल जल या शीतल पेयसे किंचित शांति लगना, फिर बलपूर्वक हिक्का होने लगना आदि लक्षण होते हैं। उस पर सूतशेखर अति उत्तम कार्य करता है।

उदावर्तकी उत्पत्ति वातविकृतिसे होती है। इस रोगमे विशेषतः अपान और समान वायुकी विकृति होती है। अपानके अवरोधसे अन्त्रकी क्रिया प्रतिलोम होती है, और अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया विलोम होकर अन्त्र फूलने लगती है। अफारा आनेपर उदरमें पीड़ा होने लगती है। श्वासावरोध-सा भास होता है; व्याकुलता, मलावरोध और कभी मूत्रावरोध भी होते है। इस प्रकारमें सूतशेखर विशिष्ट कार्य करताहै। इससे वायुका अनुलोमन होता है; पुरःसरण क्रिया व्यवस्थित होती है और बेचैनी दूर होतीहै। फिर शौच-शुद्धि लगती है। यह औषध रेचक नहीं है; किन्तु शामक होनेसे वायुका शमन करके उसे अनुलोमन करती है।

त्वचाके अन्तर्भागमें रही हुई वातवाहिनियां, विशेषतः संज्ञावाहिनियांमें क्षोभ होकर दाह उत्पन्न होता है। शराबियोंको यह दाह अति उग्र होता है। अन्य कारणोंसे भी त्वचामें रही हुई संज्ञावाहिनियां दुष्ट होकर दाह उत्पन्न हो जाताहै। रक्तकी विकृतिसे दुष्टि होकर दाह होता है। इन सबपर सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है।

अन्त्रमें अन्न पचन योग्य न होनेपर अन्न सड़ने लगता है। फिर उससे घोर आम-विषकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारकी स्वयं दुष्टिसे उत्पन्न सेन्द्रिय विषमें से विविध व्याधियोंकी सृष्टि होती है। इस विषको नष्ट करनेमें सूतशेखर अत्युत्तम औषध है।

संक्षेपमे सूतशेखर कीटाणुनाशक, योगवाही, वातवाहिनियों पर शामक, हृद्य और सेन्द्रिय विषनाशक है। इसका कार्य आमाशय, पक्वाशय, बृहदन्त्र, यकृत्,अग्न्याशय,प्लीहा और वातवाहिनियोंपर होता है; तथा वात और पित्तदोषका शामक है।

(औ० गु० ध० शा०)

(१३२) लघु सुतशेखर रस।

विधि—शुद्ध सोनागेरू २० तोले और सोठका वारीक चूर्ण १० तोले मिला नागरबेलके पक्के-पीले पानके रसके साथ ३ दिनतक खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१से २ गोली मिश्री मिलाय दूधके साथ दें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे पित्तजन्य शीर्षशूल, अर्धावभेदक, सूर्यावर्त आदि मस्तकशूल, खट्टी वमन, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, दाह,पसीनेमें दुर्गन्ध, ऊर्ध्व रक्त-पित्त, नाकमेंसे रक्त गिरना, मुंहमें छाले होना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

लघु सूतशेखर पित्तधातुकी अम्लता और तीक्ष्णताका नाशक, प्रसादक और स्तम्भक

है, एवं पित्तप्रकोपसे होनेवाले सब रोगोंमें लाभदायक है। सामान्य औषधि होनेपर भी इसमें दिव्य गुण रहे हैं।

पित्तज शीर्षशूल और उसके साथ चक्कर, उदरमें दर्द, व्याकुलता, वमन होनेपर शिरदर्दमें न्यूनता आदि लक्षण हों, तो सूतशेखर देना चाहिये। अर्धावभेदक और सूर्यावर्त (अर्धशीशी) में जैसे उष्णताकी वृद्धि होती है, वैसे शिरदर्द भी बढता जाता है, और वमन होजानेपर शिरदर्द शमन होजाता है। ऐसा लक्षण होनेपर लघु सूतशेखर देना चाहिये।

पित्तज उन्मादमें बुद्धि कम परन्तु त्रास, प्रलाप, निद्रानाश, चक्कर, भ्रम और सारे शरीर और शिरमें भी प्रस्वेद आना, प्रस्वेदमें एवं श्वासमें दुर्गन्ध आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर लघु सूतशेखर और सुवर्णमाक्षिक भस्मको मिला पेठेके रसके साथ देनेमें उत्तम उपयोग होता है।

निद्रानाश पित्तप्रकोपसे होता है, तब सर्वांगमें दाह होता है, और हाथ-पैर टूटते हैं एवं मस्तिष्कमें भ्रमके सदृश या उठा-उठाकर फेंकनेके सदृश भान होता हो, तथा उदरमें दाह आदि लक्षण हो, तो लघु सूतशेखर दूधके साथ देना चाहिये।

नाकसे होनेवाले रक्तस्राव में पित्ताधिक्य होनेपर इसका उपयोग होता है। रक्त गिरनेके समय या गिरनेके पश्चात् दाह, सारे शरीरमें जलन आदि लक्षण होनेपर लघु सूतशेखर उपयोगी होता है। अति वमन होनेके पश्चात् थोडा-सा रक्त गिरनेपर उसमें लघु सूतशेखरका उपयोग हितकारक है। (औ० ध० शा०)

(१३२) लीलाविलास रस।

(भै० र०)

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ये सब समभाग लेकर आवलेके रस तथा बहेडेके रसमें ३-३ दिन तक खरल करें। पश्चात भांगरेके रसमें १ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बांधें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ से ३ बार शहदके साथ दें। अथवा दूध और कूष्माण्डका रस या आवलेका रस मिला पकाकर फट जानेपर जल छानकर ऊपरसे पिलावें।

उपयोग—यह रसायन अम्लपित्त, तृषा, शूलसहित वमन, हृदयदाह, कृमि, पाण्डु आदि रोगोंका नाश करता है।

इस रसमें पारद और ताम्रभस्म तीक्ष्ण, उष्ण, व्यवायी और स्रोतोगामी है। साथमें अभ्रकभस्म और लोहभस्मका सम्मिश्रण करा उष्णता और तीक्ष्णताको जितनेही अंशमें दबा दियाहै। फिर आंवले, बहेडे और भांगरेके रसकी भावना देकर इन सेंद्रिय औषधियोंके योगसे गुणोंमें उत्कर्ष करायाहै, एवं द्रव्य-संयोग और संस्कारद्वारा अम्लपित्त नाशक गुणकी वृद्धि कराई है।

आवला उत्तम अम्लपित्त शामक औषधि है, आमाशयके प्रकुपित पित्तको शांत करता है, परन्तु केवल आवलेका सेवन करनेपर पित्तशामक गुणका शोषण होकर

लाभ होनेमें दीर्वकाल लगता है; तथा यकृत् और रक्तमें रहे हुए मृत घटकोंको, जीवित घटकों से पृथक् कर बाहर निकाल देना या जला देना, यह कार्य जितना जल्दी ताम्रभस्म द्वारा होता है; उतना केवल आंवलोंके सेवनसे सत्वर नहीं हो सकता। इस हेतुसे शास्त्रकार ने ताम्रभस्मका सम्मिश्रण किया है। पारद, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म आदि ओषधियां योग-वाही होनेसे अपने गुणोंका त्याग न करते हुए सम्मिश्रण सेन्द्रिय ओषधियोंके गुणोंमें वृद्धि करा देते हैं। पित्तप्रधान मोतीझरा आदि ज्वर दीर्घकाल तक रहना, लवणका अति योग, विषप्रदान, कीटाणुप्रकोप या तमाखूका अति व्यसन आदि कारणोंसे आमाशय पित्तकी वृद्धि और श्लैष्मिक त्वचामें उत्तेजना उपस्थित होती है; तथा यकृत् निर्बल हो जानेसे योग्य पित्तस्राव नहीं कर सकता। फिर अम्लपित्तकी संप्राप्ति होनेपर यदि कफका संसर्ग हो तो वमनमें चिपचिपापन आजाता है। एवं अन्य देहमें भारीपन, शीतलता, अरुचि, निद्रा-वृद्धि आदि कफभूयिष्ठ लक्षण प्रतीत होते हैं। अथवा वातका संसर्ग होनेसे जब आमाशय, पित्ताशय, हृदय, अन्त्र, वस्ति, पार्श्व, इनमें शूल चलना, झागयुक्त वमन, बार-बार डकार आना, कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, अंधेरा, आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। अनेकोंको मलावरोध भी रहता है, उन कफ और वातप्रधान लक्षणोंपर लीलाविलास रस अच्छा काम देता है।

बार-बार अत्यधिक भोजन करते रहना, सूर्यके तापका अति सेवन, विषप्रकोप और किसी रोगके हेतुसे निर्बलता आ जाने पर आमाशय अशक्त हो जाता है। फिर भोजनको पचन करानेके लिये शक्तिसे अधिक पित्तस्राव कराते रहने या उग्र पित्तस्राव कराते रहने पर अम्लपित्त रोग उत्पन्न हो जाता है। अपचन भोजनका विदाह होकर छातीमें जलन होना, उदरमें भारीपन बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनपर यह लीलाविलास रस दिया जाता है। भोजनमें मधुर फलोंका रस या थोड़ा लघु अन्न देवें। यदि मुंहमें छाले, भयंकर तृषा, अति खट्टी और उष्ण वमन, बार-बार बड़ी-बड़ी वमन, नेत्रोंमें जलन, गरम-गरम पतले दस्त, भोजन कर लेनेपर तुरन्त वमन हो जाना, बार-बार वमन होना आदि पित्तप्रकोपजनित घोर लक्षण प्रतीत होते हों, तो बिना शोधन किये लीलाविलास या अन्य अम्लपित्त नाशक औषधि नहीं देना चाहिये। पहिले वमन करावें या आमाशय नलिका (Stomach pipe) द्वारा आमाशयको शुद्ध करें। फिर प्रातःकालको -विपत्तिकर चूर्ण, सायंकालको लीलाविलास रस तथा दोपहरको पित्तके तीव्रत्व और अम्लत्वको कम करानेवाली ओषधि प्रवाल, वराटिका, शुक्ति, सूतशेखर या वान्तिहृद् रसमेंसे आवश्यकता अनुसार योजना करें। यदि आमाशयमें व्रण होकर वमन होती हो, तो लीलाविलास नहीं देना चाहिये; इसपर सुवर्णमाक्षिकका प्रयोग करना चाहिये।

[१३४] सारिवादि वटी।

विधि—सारिवा (अनन्तमूल), मूलहठी, कूठ, दालचीनी, तेजपत्र, इला-यची, नागकेशर, प्रियंगू, कमलके फूल, गिलोय, लौंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सब द्रव्य

१-१ माशा तथा अभ्रक भस्म और लोहभस्म १४-१८ माशे लेवे। काष्ठादि औषधियोंका कपडछान चूर्णकर भस्ममें मिलावें। फिर भांगरेके रस, श्वेत अर्जुनकी छालके क्वाथ, जवके क्वाथ, मकोयके रस और गुजामूलके क्वाथकी १-१ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार धारोष्ण दूध, चन्दाके अर्क अथवा शतावरीके क्वाथके साथ दें।

उपयोग—यह वटी कानका बहना, कानका गजना कम सुनना आदि कानके रोगोंमें लाभदायक है, और समस्त प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, तमकश्वास, जीर्णज्वर, अपस्मार, मोह, अर्श, हृदरोग मदात्यय, सबको दूरकरती है। मस्तिष्कमें किसी उष्ण औषधिके योगसे या अन्य कारणसे उष्णता पहुचनेके कारणसे कर्णमें बधिरता आई हो या वातवाहिनियामें विकृति होनेसे कर्णरोग हुए हों, या वातप्रकोपसे कानमें पीडा होती हो, उसपर यह हितावह है। इसके सेवनके साथ बाह्य उपचार भी करते रहना चाहिये। यदि रक्तमें मूत्रविष वृद्धि, उष्णता आमविष प्रवेश आदि कारणोंसे धमनी-विकार या हृदयकी निर्बलता, कम सुनना और कान गूंजना आदि उपद्रव उत्पन्न हुए हों तो यह रसायन हृदय और धमनीको सबल बनाकर कर्ण-रोगोंको दूर करता है।

(१३५) प्रदरान्तक लोह।

विधि—लोह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध हरताल, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, वराटिका भस्म, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड, बहेडा, आवला, चित्रकमूल, वायविडंग, सेंधानमक, कालानमक, समुद्रनमक, बिडनमक, काचनमक, चव्य, पीपल, शंख भस्म, बच, हाऊबेर, कूठ, कचूर, पाढ, देवदारु, छोटी इलायची और विधारा, इन ३० औषधियोंको समभाग लें। काष्ठादि औषधियोंका कपडछान चूर्ण करें। पश्चात् भस्मोंको मिला ६ घण्टे खरलकर रखें। (र० र०)

मात्रा—प्रदरान्तक लोह, मिश्री और घृत १-१ माशा और ३ माशे शहद मिलाकर दिनमें २ बार लेवें,

उपयोग—इस रसके सेवनसे रक्तपित्त, नील और श्वेतप्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल, योनिशूल, सब प्रकारके शूल, मन्दाग्नि अरुचि, पाण्डु, मन्यास्तम्भ, श्वास और कास आदि रोग नष्ट होते हैं, तथा मासिकधर्म साफ आता है। प्रदरांतक लोह समस्त जीर्ण प्रदरोंके लिये बहुत लाभदायक औषधि है। आमाशय, यकृत, प्लीहा आदि अवयव कार्य करनेमें असमर्थ होगये हों, मासपेशियां, फुफ्फुस और वातवाहिनियां क्षीण हो गये हों, गर्भाशय और बीजकोष (Ova ries) शिथिल हो गये हों, अग्निमांद्य, अरुचि, सिरदर्द, कफयुक्त कास, थोडे परिश्रमसे हृदय और श्वासका वेग बढ जाता है, कटिशूल आदि लक्षण हों तथा समस्त अवयवोंमें सामान्य निर्बलता भासता चिकचिपा, लाल, पीला या

नीला आदि प्रदरका स्राव होता रहता हो; ऐसे बढ़े हुए असाध्य प्रदरोंको भी यह प्रदरांतक लोह दूर करता है ।

दूसरी विधि—लोह भस्म २ तोले, वंगभस्म, शुद्ध खर्पर या जसद भस्म, कहरवापिष्टी, घीमे पकाया हुआ सोनागेरू, मोचरस, सफेद राल, ये ६ ओषधियां १-१ तोला ले । सबको मिला दूब, अनार और आंवलेके रसकी ७-७ भावना देकर सूखा चूर्ण बना लेवें । (र० यो० सा०)

मात्रा—३-३ रत्ती दिनमें २ बार पाषाण भेदके मूलके ३ माशे चूर्णके साथ देवे । ऊपर मिश्री मिला दूध पिलावें ।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके प्रदरोंको नाश करता है । जिस प्रदररोग को असाध्य कहकर वैद्य या डाक्टरोंने छोड़ दिया हो वह भी इस रसायनके सेवनसे अच्छा हो जाता है । ऐसा रसयोगसागरकारका अनेक वर्षोका अनुभव है ।

गर्भाशयके भीतर गुल्म (Tumour) या कर्कस्फोट (Cancer) हो, तो इस रसके सेवनसे विशेष लाभ होनेकी आशा नहीं है । यदि गर्भाशयमें विद्रधि (Abscess) या क्षत (Ulcer) हो, तो बाह्योपचार भी करते रहना चाहिये ।

रोग पुराना हो तो मात्रा कम कर देनी चाहिये; किन्तु दीर्घकाल तक पथ्य-पालनसह औषध सेवन कराना चाहिये ।

यदि यह रस तैयार न हो, तो शुद्ध मुर्दासंग ३ रत्तीको ३ माशे मिश्री के साथ मिलाकर देवें । ऊपरमें पाषाणभेदके मूलका चूर्ण १॥ माशे समान मिश्री मिलाकर खिलावें; और थोड़ा दूध पिलावें; इस प्रयोगसे बहुत ही विलक्षण लाभ होता है । परन्तु कच्चा मुर्दासंग अधिक दिन तक नही देना चाहिये; वरना वान्ति होने लगेगी, और शरीरमें एक तरह की ऐंठन पैदा होगी । इसलिये शुद्ध करके ही देना चाहिये ।

मुर्दासङ्ग शोधन विधि—चतुर्थांश सैंधानमक मिला १ प्रहर खरलकर, ४ गुने जलमें मिलाकर रख देवें । दूसरे दिन जलको सम्हालकर निकाल दें । फिर नया सैंधानमक मिलाकर खरल करे और जलभरकर रख दे । इस रीतिसे २१ दिन शोधन करनेसे मुर्दासंग सब दोषोसे मुक्त होकर श्वेत होजाता है । यह उपदंशकी परमौषधि है । (र० यो० सा०)

(१३६) प्रदरान्तक रस ।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध आँवलासार गन्धक, रौप्य भस्म, वंग भस्म, कौड़ीभस्म, शंख भस्म, प्रवाल भस्म, सेलखड़ी की भस्म और राल, सब समभाग और लोहभस्म सबके बराबर मिला दूब, अनार और आंवलोंके स्वरसमे ३-३ दिन और घीकुंआरके रसमें १ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बांधे ।

मात्रा—२-२ गोली आंवलोंके स्वरस और शहदके साथ देवे ।

उपयोग—इस रससे सब प्रकारके नील, श्वेत, रक्त और मूलमह प्रदर तथा सामरोग दूर होते हैं, मासिकधर्म साफ आता है, अन्तर्दाह शमन होता है, तथा शरीर नीरोग और तेजस्वी बनता है।

जिन स्त्रियोंका शरीर निस्तेज पाण्डुवर्ण होगया हो, बार-बार चक्कर आना, सहन-शक्तिका अभाव, नेत्रके चारों ओर कालापन, हृदयकी अनियमित गति, थोड़ेसे परिश्रमसे हृदयके वेगकी वृद्धि होजाना, हाथपैर टूटना, मानसिक उदासीनता बनी रहना, दाह, अग्निमांद्य, जड पदार्थका योग्य पचन न होना, उदरमें भारीपन और प्रदरका स्राव गरम-गरम पतले जल सदृश होना आदि लक्षण हों, उनको प्रदरान्तक रस अमृत सदृश लाभदायक है।

[१३७] प्रदरारि रस।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक और नागभस्म १-१ तोला, रसौत ३ तोले, लोद ६ तोले लें। सबको मिला अडूसेके रसमें ६ घंटे घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें दो बार शहद अथवा चावलके धोये हुए जलके साथ देवें।

उपयोग—यह रस श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर और गर्भाशयके दोषको दूर करता है, तथा पाचनशक्तिको बलवान बनाता है।

यदि शरीरमें आमसंचय अधिक हो, तो प्रदरकी औषधि कुमार्यासवके साथ देना विशेष लाभदायक है। एवं निद्रावस्थामें ही स्राव होजाता हो, स्राव होनेपर रुग्णा जागृत हो जाती हो, तो उसे पाचक और मलनिःसारक कुमार्यासव अनुपानरूपसे देना चाहिये।

यदि गर्भाशय आदि अवयवोंकी निर्बलताके हेतुसे उत्तेजना आये बिना बार-बार स्राव होता रहता हो, तो मात्रा अधिक देनी चाहिये। परन्तु अधिक मात्रासे मलावरोध होजाय, तो स्वतन्त्र रूपसे अधिक पुटवाली नागभस्म दें और इस रसायनका सेवन भी करावें।

अनेक स्त्रियोंको अति व्यवाय, चरपरे पदार्थ, कामोत्तेजक पदार्थ और शराब आदिके अति सेवनसे अति श्रमदायक प्रदररोग होजाता है। हाथ-पैर टूटना, दाह, निस्तेजता, कमर जकड जाना, स्वभाव क्रोधी होजाना, मानसिक क्षोभ होनेपर प्रदरस्राव अधिक होना आदि लक्षण होते हैं। उनको प्रदरारि रस अति हितकारक है। मात्रा कम देनी चाहिये यह रसायन बढ़े हुए रोगमें अधिक समयतक ब्रह्मचर्य और पथ्यपालनसह देते रहना चाहिये।

(१३८) गर्भचिन्तामणि रस।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म २-२ तोले, अभ्रक भस्म ४ तोले, कपूर, वंग भस्म, ताम्र भस्म, जायफल, जावित्री, गोखरूके बीज, शतावर, खरेटी और गंगेरन २-२ तोले लें। प्रथम पारद-गंधककी कज्जली करके भस्म मिलावें। फिर

काष्ठादि ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिला, शतावरके रस या क्वाथके साथ १ दिन खरल करके दो-दो रत्तीकी गोलियां बांधें ।

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें २ बार दूधके साथ देवें ।

उपयोग—यह रस गर्भिणीके ज्वर, मन्दाग्नि, दाह, श्वास, कास, निबलता, वमन और प्रदर आदि रोगोंको दूर करके गर्भको बलवान बनाता है । सतत ३-४ मास तक सेवन करनेसे प्रसवके समय दुःख नही होता और बालक भी नीरोग और बलवान जन्मता है ।

अनेक ग्रंथकारोंने पारद और गंधकके स्थानमें रससिंदूर और रौप्य भस्म मिलाये हैं; ऐवं कतिपय ग्रंथकारोंने रस सिंदूर और हरताल भस्म लिये हैं । हमने जिसका अनुभव किया है; वही पाठ दिया है ।

निर्बल और कोमल शरीर तथा पित्तप्रधान प्रकृतिवाली स्त्रियोके लिये पारद-गन्धक प्रधान गर्भचिन्तामणि निर्भय और विशेष हितकर है । सामान्यतः यह सब प्रकृतिवालोंके लिये व्यवहृत हो सकता है ।

अनेक स्त्रियोंका शरीर रोगोंके हेतुसे या वारम्बार सन्तान होनेसे या छोटी आयुसे निर्वल होनेपर उनको पोषण देने और गर्भको पुष्ट बनानेके लिये पोषक आहार और पोषक औषधिका सेवन कराना चाहिये ।

इस गर्भचिन्तामणिमे लोह, अभ्रक, वंग और ताम्र भस्म मिलायी है । इस हेतुसे यह रक्तसंस्थान, मांस और वातसंस्थान प्रजनन और मूत्रसंस्थान तथा यकृत्, प्लीहा और वृक्कोंको लाभ पहुंचाता है । गर्भके पोषण और वर्द्धनार्थ माताके देहमेसे रक्तादि धातुओंके सत्वका शोषण होता रहता है । इनकी पूर्ति करनेके लिये और यकृत् आदि अवयवोंको सवल वनानेके लिये यह रसायन आशीर्वादके समान है ।

यदि सगर्भा स्त्रीको वमन होती रहती हों, फिर उस हेतुसे आमाशय पित्त संचित होकर मुखपाक तथा कण्ठ और छातीमें जलन रहती हो तथा अग्नि मन्द हो गई हो तो मूल कारणरूप वमनको शांत करनेके लिये यह रसायन दिया जाता है । अनुपान-सोठ, नागरमोथा, धनियां और मिश्रीका क्वाथ ।

सगर्भा स्त्रियोंका देह निर्बल बननेपर थोड़े परिश्रमसे भी कितनेकोंको रात्रिको मन्द ज्वर आजाता है । फिर हाथ पैर टूटते हैं, मूत्रमें पीलापन रहता है तथा आलस्य,थकावट, निद्रावृद्धि, अग्निमांद्य, श्वेतप्रदर, मलावरोधादि लक्षण उपस्थित होते हैं । उनको यह धनियेके फाण्टमें दूध मिलाकर उसके साथ दिया जाता है ।

कफ या वातप्रधान प्रकृतिवाली निर्बल स्त्रियोंको रक्तविकार, श्वास, कफविकार, यकृत्की निर्बलता, हृदयकी निर्बलता, पहले किसी स्थानमे पूयोत्पत्ति हुई हो या उपदंश, सुजाकादि रोग हुये हों और वृक्क निर्बल हों, तो रससिंदूर और रौप्य भस्म मिला हुआ गर्भचिन्तामणि हितावह है ।

वातविकृति, त्वचाविकार, बारबार ज्वरपीड़ित होजाना, ज्वरजन्य निबलता और यकृत पित्तस्रावकी न्यूनतादि उपद्रव हो, तो उनसे पीड़ित रुग्णाओंको गर्भ पोषणार्थ रस-सिंदूर और हरताल (माणिक्य रस) मिश्रित गर्भचिन्तामणि विशेष हितावह है।

वक्तव्य—इस रसके सेवनके साथ प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण मिला लेनेसे गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु दोनोंकी अस्थियोंको बल मिल जाता है तथा गर्भ बलवान और तेजस्वी बनता है।

[१३९] गर्भपाल रस।

विधि—शुद्ध शिंगरफ, नाग भस्म, बंग भस्म, त्रिजात (दालचीनी, तेजपात और इलायची), त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), धनिया, कालाजीरा, चव्य, मुनक्का देवदारु, ये १४ द्रव्य १-१ तोला, और लोह भस्म ६ माशे लें। सबको यथाविधि मिला सफेद अपराजिता (कोयल) के रसमें ७ दिनतक खरल करके मटरके समान गोलियां बनालें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार मुनक्काके जलमें देवें। मुनक्काको जलमें भिगो मसल २ तोले स्वरस निकालकर ऊपर पिलावें।

उपयोग—यह रस गर्भस्राव और गर्भपात होनेसे बचाता है, तथा गर्भिणीके अतिसार, ज्वर, प्रदर श्वास, कास, वमन, मन्दाग्नि, अरुचि, वातवृद्धि, शूल, मलावरोध, शिरदर्द आदिको दूर करके गर्भको बलवान और नीरोग रखता है।

उपदंश अथवा सूजाकके कारण गर्भाशयमें विकृति होनेपर गर्भपात होनेकी विशेष सम्भावना रहती है। उसपर पहिले रक्तशोधक औषधके साथ गर्भपाल देनेसे गर्भिणी और गर्भ, दोनोंकी रक्षा होती है। यदि बीजकोषोंकी पूर्ण परिमाणमें वृद्धि न होनेसे गर्भस्राव या गर्भपात होता हो, तो बंग या त्रिवंग भस्मके साथ गर्भपाल देनेसे गर्भवृद्धि और रक्षणमें सहायता मिलती है। अनेक स्त्रियोंको गर्भधारणके पश्चात् भोजन कर लेनेपर तत्काल वमन, चक्कर, घबराहट, ऐंठन, शिरदर्द, कमरमें शूल आदि लक्षण होते हैं। उसपर गर्भपाल रसके साथ कामदुधा, प्रवाल भस्म अथवा सुवर्णमाक्षिक भस्म देनेसे सब विकारोंका शमन होता है। किसी-किसी स्त्रीके बच्चे जन्मके बाद थोड़े ही दिनोंमें अथवा थोड़े ही महीनोंमें बार-बार मर जाते हैं, उनमें प्रायः रजोवीर्य या स्त्रीदुग्धमें दोष रहता है। यह दोष गर्भ-चिंतामणि या गर्भपालके सेवनसे दूर होता है।

[१४०] प्रतापलंकेश्वर रस।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, तीनों एक-एक तोला, काली-मिर्च (या चित्रकमूल) ३ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला, लोह भस्म ४ तोले, शंख भस्म ७ तोले और आरनेकंडोंकी कपड़छानकी हुई राख १६ तोले लें। फिर सबको यथाविधि मिला लेवें। (यो० र०)

कालीमिर्चके बदलेमे चित्रकमूल मिलाया जाय, तो प्रसूताके गर्भाशयमे रहे हुए दूषित रक्तको बाहर निकालनेका कार्य सत्वर हो सकता है।

मात्रा—३ से ६ रत्ती दिनमे २ से ३ बार अदरखके रस और शहद या तुलसी रसके साथ देवें।

उपयोग—यह रस प्रसूताके ताप, उन्माद, खांसी, शिरदर्द, वमन, कफदोष, दांत भिचना, आफरा, गृध्रसी, धनुर्वात, जुकाम, शूल, त्रिदोष, अतिसार आदि रोगोंको दूर करनेमें अति लाभदायक है।

प्रताप लंकेश्वर सूतिका ज्वरमे उत्तम प्रकारसे कार्य करनेवाली ओषधि है। यह रस गर्भाशयमें संचित हुए रक्ताश्रित दोषको दूर करता है; वातवाहिनीका क्षोभ शीघ्र दबाता है; लसीका आदि स्रावकी विकृतिका नाश करता है; निद्रा लानेमे सहायता पहुंचाता है और वातप्रकोपके कारणसे होनेवाले प्रलाप और भ्रांतिको शीघ्र शांत करता है। एवं सूतिका ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले श्लैष्मिक अथवा श्वसन सन्निपातको भी सत्वर दूर करता है।

सूतिका ज्वर अति दुष्ट और भयप्रद विकार है; इस हेतुसे प्रसूताकी सम्हाल प्रसव होनेपर पहिले दिनसे ही पूर्णरूपसे रखना चाहिये। प्रसूताको पहनने योग्य वस्त्र, रजाई, शय्या, बांधनेकी पट्टी आदि स्वच्छ और कीटाणु रहित होने चाहिये (मूर्ख अज्ञानी स्त्रियों द्वारा प्रसव कार्य करानेपर स्वच्छता नही रहती; और मलिनता उत्पन्न होती है। इस हेतुसे कीटाणुओका गर्भाशयमे प्रवेश होकर सूतिका-ज्वरकी उत्पत्ति होती है। जच्चाके प्रसव-कालमे पीड़ासह गर्भजल, लसीका और रक्तका स्राव होता है, एवं गर्भाशय की पूर्व स्थिति प्राप्त करानेके लिये जीवनीय शक्तिका तीव्र प्रयत्न होने लगता है। ऐसे समय पर कीटाणु या गन्दे द्रव्यका गर्भाशयमे प्रवेश होजाय, तो वह भी अति तीव्र गतिसे बढ़कर सेन्द्रिय विषका निर्माण करता है। फिर उसका रक्तमे शोषण होने पर भयंकर लक्षणात्मक सूतिका ज्वरका जन्म होजाता है।

इस ज्वरका प्रारंभ शीत लगकर होता है। मुखमें शुष्कता, व्याकुलता, भ्रम, प्रलाप, देहशुद्धि, तीव्र और भारी नाड़ी, जननेन्द्रियसे होनेवाले स्रावमे एक प्रकारकी दुर्गन्ध आना और शिरदर्द आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। क्वचित् दांत भिचना और फिर धनुर्वात भी उपस्थित होजाता है। इस विकारपर प्रतापलंकेश्वरसे कीटाणुजन्य विष कम होनेमे सहायता मिलती है। गर्भाशयको मूल स्थितिकी प्राप्ति करा देनेमे प्रतापलंकेश्वरके समान दूसरी कोई सबल औषधि नहीं है। इस रसायनसे ज्वर कम होता है। वातवाहिनियोंकी विकृति नष्ट होती है; निद्रा आनेमें सहायता मिलती है। वातप्रकोपजनित प्रलाप, भ्रम, खड़े हो-होकर भागना आदि लक्षणोंका प्रशमन हो जाता है सूतिका ज्वरमें अन्य लक्षण अति तीव्र न हों; केवल निद्रानाश अधिक हो, तो प्रतापलंकेश्वर देनेसे निद्रा आने लगती है; ऐसा अनुभव है।

सूतिका-ज्वरमें या मर्योव्रण आदिके पश्चात् व्रण विकृति होकर हनुस्तम्भ (दांत भिचना) लक्षण उत्पन्न होनेपर वह धनुर्वातका पूर्व रूप है। फिर धीरे-धीरे धनुर्वातके झटके आने लगते है। अतः हनुस्तम्भका प्रारम्भ होनेपर तुरन्त प्रतापलंकेश्वर देवें, तो धनुर्वातकी उत्पत्ति रुककर अन्य लक्षण शनैः शनैः कम होजाते हैं।

सूतिकाको शिरदर्द अनेक बार वातवाहिनियोंके उद्रेकसे होता है। उसपर इसका उपयोग करनेसे शिरदर्द त्वरित शमन होता है।

सूतिका ज्वरमें लक्षण रूप या उपद्रव रूपमें उत्पन्न श्लैष्मिक (कफात्मक) सन्निपात, श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) पर प्रतापलंकेश्वरका उपयोग अवश्य करना चाहिये। अन्य समयमें होनेवाले श्वसनक या श्लैष्मिक सन्निपात और सूतिका-ज्वरमें उत्पन्न, इन दोनोंमें संप्राप्ति दृष्टिसे महदन्तर है। इसका कारण सूतिका विष होनेपर उसे नष्ट करनेका उपक्रम करना, यही मुख्य चिकित्सा तत्व है।

सूतिका ज्वर न आकर अर्थात् दोषोद्रेक अधिक तीव्र न होकर केवल पित्तोद्रेकके हेतुसे कितनीही स्त्रियोंको वमन होने लगती है। वान्तिसे जच्चाको अति श्रम होता है। कै करते-करते उदरमें ऐंठन आ जाती है। ऐसे समयपर प्रतापलंकेश्वरका अच्छा उपयोग होता है।

गृध्रसी, विश्वाची और खल्लीरोगमें वातका उद्वहन कार्य विकृत होता है, वात-वाहिनियोंके कार्यमें प्रतिबन्ध उत्पन्न होता है। इस हेतुसे इन दोनों-तीनों विकारोंमें एक प्रकारका दर्द होता है। उसे प्रतापलंकेश्वर दूरकर वातविकारको सत्वर शमन कर देता है।

वातज श्वास रोगमें प्रतापलंकेश्वर अप्रतिम ओषधि है। यह औषध सगर्भा स्त्रीको नहीं देना चाहिये, वर्ना गर्भपात होनेकी भीति रहती है। इससे गर्भाशयका संकोच भी होता है। अन्य रोगियोंके लिये इसका उपयोग श्वासनाशक और वातशामक होता है। यह श्वास बहुधा शोक, आदिसे वातवाहिनियोंमें क्षोभ होकर होता है।

सूतिका-ज्वरमें कफ प्रधान दोष प्रकुपित होकर कास होने या कफभूयिष्ठ सन्नि-पात, श्वसनक या श्लैष्मिक सन्निपात होने या कफप्रधान तृषा, कफज अरुचि, कफज वमन आदि विकार तीव्र रूपमें होनेपर और उष्ण पेय आदिसे उपशम होते हो, तो उनपर प्रतापलंकेश्वरका उत्तम उपयोग होता है। (कफवृद्धि हो तो अभ्रकभस्म, अदरखका सत्व और सोहागेका फूला मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुचता है।)

सूतिका रोगके पश्चात् उत्पन्न कफज गुल्म या कफप्रधान परिणामशूलपर प्रताप-लंकेश्वरकी गणना उत्तम ओषधियोंमें होती है।

प्रसवके पश्चात् आवश्यक गर्भ स्थानकी शुद्धि न होनेसे गर्भकोष्ठ शनैः शनैः प्रदुष्ट होकर यह दुष्टि सर्वांगमें फैल जाती है। उसका परिणाम पक्वाशय और बृहदन्त्र पर भी होता है। फिर उबासी आना, सूक्ष्म ज्वर, कम्प, तृषा, अंग भारी पडना आदि

प्रारंभिक चिन्ह होते हैं। यह अवस्था बढनेपर सर्वांगमें शोथ, कोष्ठशूल और अतिसार, बार-बार त्रासदायक पतले बडे-बड़े जुलाब लगना, किसी-किसी रोगिणीको केवल आम और रक्तमिश्रित दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। उसपर पर्पटीकी अपेक्षा प्रतापलंकेश्वर रसका अधिक उपयोग होता है। कारण, मूल कारण गर्भाशयस्थ सूतिका दोष है।

सूतिकावस्थामें उत्पन्न उन्मादपर इस ओषधिका अन्य मादक ओषधियोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा उपयोग होनेके उदहरण मिले हैं। इस ओषधिसे मादक निद्रा न आकर उन्मादके कारणभूत सूतिका विषयका प्रशमन होकर मनोविभ्रमकी निवृत्ति होती है। ऐसे विकारोंपर प्रतापलंकेश्वरको धमासेके क्वाथ, पेठेके रस या सारिवाके लेहके साथ देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(१४१) सूतिकारि रस।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म सब सम-भाग मिला ब्राह्मीके रसमें ३ दिन तक खरल करके एक-एक रतीकी गोलिया बना लेवें।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार त्रिकटु अथवा अदरखके रस और शहदके साथ देवे।

उपयोग—यह रस प्रसूताके ज्वर, तृषा, दाह, मन्दाग्नि, श्वास, निद्रा-नाश, शोथ, उदरशूल और अरुचि आदि विकारोंको सत्वर दूर करके शांति प्रदान करता है। यह रसायन गर्भाशयमे संचित विष और दूषित रक्तको तत्काल बाहर निकाल डालता है; रक्तमें प्रवेशित कीटाणुओंको नष्ट करता है; और वातवाहिनियोंके क्षोभको शमन करता है; यकृत्, प्लीहा और मूत्रपिण्डोंकी विकृतिको दूर करता है; और मस्तिष्कको भी शांत बनाता है। संक्षेपमें सूतकारि रस वातकफात्मक व्याधियोंका शमन करनेमें अति लाभदायक है।

(१४२) चन्द्रांशु रस।

विधि—शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, वंग भस्म और शुद्ध गन्धक' सबको समभाग मिला घीकुंवारके रसमे १२ घंटे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० चं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार जीरेके क्वाथ, दूध अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके गर्भाशयके दोष, योनिशूल, योनिमें पीड़ा, योनिदाह, योनिकी स्थानभ्रष्टता, योनिखाज, स्मरोन्माद (Hysteria) आदि विकारोंको शीघ्र दूर करता है, और शिथिल हुए गर्भाशयको बलवान बनाता है।

(१४३) कुमारकल्याण रस।

विधि—रससिंदूर, मोती पिष्टी, सुवर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म,

सुवर्णमाक्षिक भस्म, इन ६ ओषधियोंको समभाग मिला १ दिन घीकुवारके रसमें घोट-कर मूंगके बराबर गोलिया बांधें। (भैं० र०)

मात्रा—आधीसे एक गोली तक दिनमें २ बार माताके दूध, वच और अद-रखके स्वरस या शहद अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग—यह रस ज्वर, श्वास, कास, वमन, बालशोष, बालग्रह, कामला, पसली (डब्बा), दूषित ज्वर, अतिसार, मन्दाग्नि, निर्बलता, कृशता, इन सबको दूर करता है, रोगकी भयंकर अवस्थामें शक्तिका रक्षण करता है और हृदयको उत्तेजना देता है। इस रसके नित्य सेवनसे बालक पुष्ट और उत्साही बनता है।

आचार्योंने इस रसायनको कुमारकल्याण संज्ञा दी है, वह सार्थक है। क्योंकि, यह रस निर्बल, कृश और रोगी बालकोंके लिये सच्चा कल्याणकर है। आचार्योंने इस रसकी योजना इस तरह की है कि, यह वात, पित्त और कफ, तीनों प्रकृतिवाले बच्चोंको लाभ पहुंचा सके। एवं वातज, पित्तज और कफज विकृतिमें प्रयोजित हो सके। इन तीनों विकृतियोंमें भी वातज और कफजपर यह रस अधिक प्रभाव दर्शाता है। एवं पित्त प्रकोपमें इसके साथ प्रवाल पिष्टी आदि शामक और पौष्टिक ओषधि सम्मिलित की जाय या अरविंदासव अनुपान रूपसे दिया, तो सत्वर फल दर्शाता है।

सामान्यतः बालकको पारदप्रधान ओषधि अधिक अनुकूल रहती है। पारदप्रधान औषध सेवनसे इन्द्रियोंपर सत्वर लाभ पहुंचता है। यह रस पारद (रससिन्दूर) प्रधान होनेसे सुवर्ण आदि धातुओंके गुणको अनेक गुणा बढ़ा देता है तथा सत्वर लाभ पहुंचाता है। रससिंदूर रसायन, यकृत्, हृदय और रक्त आदिके लिये उपकारक और कीटाणुनाशक है। मोती मस्तिष्क, नेत्र, हृदय, रक्त और अस्थिको बलवान बनाता है तथा पित्त प्रकोप को दबाता है। सुवर्ण शीतल, रसायन, मस्तिष्कके वातनाडी और हृदयके लिये पोषक, विषका संशोधक, कीटाणुनाशक और आयुवर्द्धक है। अभ्रक रसायन, उत्तेजक, सर्वरोग-हर वातनाडी, मांसपेशियां, हृदय आदिके लिये हितकर तथा कीटाणुनाशक है। लोह भस्म रक्तपौष्टिक है। सुवर्णमाक्षिक रक्तपौष्टिक, पित्तशामक तथा मस्तिष्कके लिये हितकर है। घीकुवारकी भावना देनेसे अन्त्रस्थविकृति, यकृद्विकृति और मलावरोधमें भी लाभ पहुंचता है। इस रसायनका संयोगजन्यगुण धातु परिपोषण क्रमको नियमित बनाना, इन्द्रियोंको सबल बनाना तथा कीटाणुविषको नष्ट करना आदि है।

कोई भी प्रबल व्याधि होजानेपर बालकोंकी जीवनीयशक्ति सत्वर कम हो जाती है। फिर धातुपरिपोषण सम्यक् नहीं होता। इस हेतुसे यकृत् आदि इन्द्रियां सबल नहीं बन सकतीं। फिर दूध या भोजनका पचन योग्य नहीं होता, रसोत्पत्ति लग-भग बन्द हो जाती है और बालक दिन-प्रति-दिन गलता जाता है, उसे बालशोष कहते हैं। उस अवस्थामें शुष्क, निस्तेज मुखमण्डल, म्लानदेह, दुर्बल हाथ पैर, उदरवृद्धि, नितम्बपर सलवट पड़ना, सारा दिन रो-रो करना, अग्निमांद्य, अरुचि, अपचन और

मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। मल-मूत्र दुर्गन्धयक्त हो जाते हैं तथा मलम आमकी प्रतीति होती है। ऐसी अवस्थामें इस रसका सेवन करानेसे पचन क्रिया सुधरती है; इन्द्रियां अपना अपना कार्य नियमित करने लगती हैं; रस, रक्तादि धातुओंकी उत्पत्ति नियमित होने लगती है और शरीर थोड़े ही दिनोंमें सबल बन जाता है।

यद्यपि यह रस श्वास, कास, वमन, त्रिदोषजज्वर, सन्निपात, डब्बा आदि रोगोंकी मुख्य औषधि नहीं है, तथापि इन रोगोंकी तीक्ष्णावस्थामें हृदयका संरक्षण करनेके लिये, रोग दूर होजानके पश्चात् रोगनिरोधकशक्ति बढ़ानेके लिये तथा शारीरिक यन्त्रोंकी क्रिया नियमित करके देहको सबल बनानेके लिये यह निर्भयरूपसे व्यवहृत होता है।

वर्तमानमें भारतवर्षके भीतर बहन बेटियोंको योग्य शिक्षण न मिलने और आर्थिक कठिनताके हेतुसे कितनीहीं माताएं निर्बल और कृश होनेसे या सगर्भावस्था में बिमार रहनेसे गर्भका योग्य विकास नहीं होता। शिशु जन्मके समय निर्बल और कृश भासता है। फिर माताकी निर्बलताके हेतुसे शिशुका योग्यपोषण और संवर्द्धन हो उतने परिमाणमें दूध (स्तन्य) की प्राप्ति नहीं होती। जो थोड़ा बहुत दूध आता ह, वहभी पौष्टक नहीं होता। ऐसी अवस्थामें यह रस इन निर्बल बालकोंको अरविंदासवके साथ दिया जाय तथा माताको कुमारकल्याण + प्रवालपिष्टी + सितोपलादि चूर्ण मिलाकर सेवन कराया जाय और माताके भोजनमें दूधकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो बालकको सत्वर लाभ पहुँचता हैं। यदि शैशवावस्थामें ही लक्ष्य नहीं दिया जायगा, तो फिर ३ वर्षके पश्चात् प्रयत्न करनेपर भी योग्य लाभ नही पहुँच सकेगा।

माताओंके अज्ञानके हेतुसे सन्तानोंको योग्य रक्षण नहीं होता। माताएं अपनी प्रिय सन्तानोंको दांत आनेकेपहले ही अन्न और घी खिलाना प्रारम्भ करदेते है। यथार्थमें ३ वर्ष तक बच्चोंको अन्त्रमें पचन होनेवाला आहर नहीं देना चाहिये। आमाशयमें पचजाय वैसा आहर-दूध, फलोंका रस आदि देना चाहिये। इस भूलके हेतुसे यकृद्वृद्धि होती है, अन्त्र शिथिल बनता है और शरीर निर्णल हो जाता है। फिर अग्निमांद्य, अपचन, कियीको मलारोध और किसीको अतिसार हो जाता है। ऐसे बालकोकों पथ्य आहारसह कुमार कल्याणका सेवन कराया जाय। यदि आवश्यकता रहे तो कुमार्यासव भी दिया जाय तो यकृत सबल होकर सर्व शारीरिक क्रिया नियमित बना देता है जिससे थोड़े ही समयमे देह पुष्ट हो जाता है। किसी किसीको हरड़का घासा अनुपानरुपसे विशेष अनुकूल रहता ९। कितनेही बालक विषमज्वर, मोतीझरा, डब्बा आदि रोग हो जानेके पश्चात् निर्बल रहते हैं। पौष्टक आहार देने पर भी रसोत्पत्ति योग्य नही होती। फिर शरीर कृश हो जाता है। रोग निरोधकशक्ति निर्बल होनेसे प्रतिश्याय बना रहता है या बार-बार होता रहता हैं, नाकसे श्लेष्मस्राव सतत होता रहता हैं, मंद-मंद ज्वर रहता है। मानसिक प्रसन्नता भी प्रतीत नहीं होती ऐसे बच्चोंको कुमार कल्याणरस अदरखके रस (या सोंठके घासे)

और शहदके साथ देते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें रोगनिरोधकशक्ति सबल बनती है। धातु परिपोषण क्रम नियमित हो जाता है। फिर थोडे ही दिनोंमें बालक, नीरोगी और बलवान बन जाता है।

कितने ही बालक शीतल वायुके आघातको सहन नहीं कर सकते। जिससे उनको थोडी भूल होनेपर स्वरयन्त्र, श्वासनलिका या फुफ्फुसोंको वायु लगकर कास श्वास या डब्बा (Broncho Pneumonia) होजाता है। ऐसे निर्बल शक्तिवाले बच्चोंको बहुधा कण्ठमें घुर घुर आवाज होती रहती है, एवं मन्द ज्वर, अग्निमांद्य, अपचन आदि लक्षण भी कभी-कभी उपस्थित होते हैं। इन बालकोंकी निर्बलताको दूर करनेके लिये कुमार कल्याण अमृतके समान उपकार दर्शाता है। इस अवस्थामें अनुपान रूपसे वच और सोंठका घासा तथा शहद विशेष अनुकूल रहता है। यदि बालकका आमाशयिक रस योग्य न बननेसे दूध पिलानेपर वमन हो जाती हो (दूध दोषवाला न हो) तथा इसी हेतुसे शरीर निर्बल रहता हो, तो जायफलके घासेके साथ कुमार कल्याण दिया जाता है।

यदि बच्चेके आमाशयका रस अति उग्र होजानेके हेतुसे बारबार जिह्वा क्षत होना रहता हो या बना रहता हो फिर इस हेतुसे वान्ति होती हो और देह कृश रहती हो तो कुमार कल्याणके साथ प्रवाल पिष्टी भी देनी चाहिये और माताको प्रवाल पिष्टी और सितोपलादि चूर्णका सेवन कराना चाहिये तथा माताको मिर्च तेज खटाई, गरम गरम भोजन कम देना चाहिये। इस तरह माताके आहारका भी सम्हाल रखने पर कुमारकल्याण बालकको जल्दी लाभ दर्शाता है।

(१४४) बालसंजीवन रस।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, जावित्री और लौंग, सबको समभाग लें। प्रथम कज्जली करें। फिर जायफल आदिका बारीक चूर्ण मिलाकर खरल करलें। (बा० चि०)

मात्रा—आधसे १ रत्ती माताके दूध या शहदके साथ दें।

उपयोग—यह रस बालकोंके ज्वर, कास, अतिसार, वमन, जुकाम, अपचन, मन्दाग्नि आदि रोगोंमें अति लाभदायक है। कब्ज हो तो पहले उदरशुद्धि करके बालसंजीवन रस देना चाहिये।

यह रस बालकोंके लिये अति हितकारक है। इसमें कीटाणुनाशक, विषहर, पित्तशामक, मस्तिष्कशामक, दीपन-पाचन और ग्राही गुण अवस्थित हैं। अतः जिन शिशुओंको बारबार मंद ज्वर, कफप्रकोप, अपचन, दुर्गन्धमय अतिसार, वान्ति, प्रतिश्याय और उदरवृद्धि आदि रोग हो जाते हैं, उनके लिये यह निर्भय और उत्तम औषधि है। आवश्यकतापर दिनमें ३ बार दे सकते हैं।

कतिपय शिशुओके देहमे शुद्ध रसोत्पति नही होती। बार-बार कफप्रकोप और प्रतिश्याय होते रहते है। फिर शरीर कृश, निर्बल और निस्तेज बन जाता है। पचनक्रिया योग्य नही होती। मल शुष्क होकर गांठे वन जाती हैं। किसी किसीको फक्क रोग(Ge.'s disease) की संप्राप्ति होकर दस्त आम और वसाप्रधान वन जाता है। × तथा उदर बड़ा हो जाता है। इस रसविकृतिको सुधारनेके लिये लघुवसन्त नं०२ और बालसंजीवन रसका मिश्रण अति हितवाह है। एकाध मासतक नियमित सेवन कराना चाहिये। यदि कफप्रकोप अधिक हो तो शृंगभस्म भी साथमें मिला लेनी चाहिये।

माताको देहमें रक्तकी न्यूनता रहनेसे शिशुका योग्य पोपण नही होता। एव सवर्धन अति कम होता है। यदि माताका यकृत् निर्बल है और वह घृत-तैल अधिक खाती रहती है, तो स्तनद्वारा बच्चेपर भी असर पहुचता है। बच्चा पाण्डु पीडित हो जाता है और यकृत् भी निर्बल (बड़ा) रह जाता है। इन बालको-को पुष्ट बनानेके लिये बालसंजीवन रस और मण्डूरमाक्षिक भस्मको मिश्रित करके दिया जाता है। यदि मन्द मन्द ज्वरभी आता रहता हो, तो मण्डूरमाक्षिकके स्थान पर लघुवसन्त नं-२ मिलाकर सेवन कराया जाता है।

शिशुको जल्दी बलवान बनानेकी आशासे थोड़े थोड़े समयपर विशे दूध पिलाते रहेनेसे आमाशयकी पचनक्रिया विकृत हो जाती है। फिर योग्य पचन नहीं होता। पतले दुर्गन्धमय सफेद मैले दस्त होते हैं। किसी किसीको थोड़ा ज्वर भी रहता है। इनको बालसंजीवन रस और गोदन्तीभस्म मिश्रित करके दिनमें २ बार सेवन कराते रहनेपर कुछ दिनोंमें स्वास्थ्य सुधर जाता है।

कतिपय शिशुओंको आमाशयप्रदाह हो जानेसे दूध पिलानेपर तुरन्त वान्ति हो जाती है। जिससे बालकोंको पूरा पोषण नहीं मिलता। एवं तृप्ति न मिलनेसे बच्चा सारा दिन रोता रहता है और सूखता जाता है। उन बच्चोंको बालसंजीवन रस दिनमें २-३ बार देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें आमाशयप्रदाह दूर होकर पचनक्रिया सुधर जाती है।

इस रसायनमें मिले हुये पारदमे कीटाणुनाशक, विकासी और योगवाही गुण है। पारद बालकोको अधिक अनुकूल रहता है। रसायन गुणके हेतुसे विषको नष्टकर न्यून हुई शक्तिको सत्वर बढा देता है। कीटाणुनाशक गुणके हेतुसे रोगोत्पादक कीटाणुओका नाश करता है। योगवाही गुणके हेतुसे साथमें मिली हुई औषधियोंके गुणमे वृद्धि कराता है। गन्धकमें कीटाणुनाशक और शोधन गुण रहे हैं। जाय-

× मलको सुखाकर जाच की जाय, तो ५० % तक वसा पृथक् हो जाती है।

फल, जाविली और लोगमें दीपन पाचन, कुछ ग्राही, कीटाणुनाशक, कफघ्न और वातहर गुण अवस्थित है।
इन तीनोंमें उड्डयनशील तैल रहा है, यह तैल भी पारदके समान देहके अणु अणुमें फैल जाता है और कीटाणुओंको नष्ट कर देता है। यह कार्य जातिफलादि नया होनेपर जैसा होता है वैसा पुराना लेने पर अथा बालसंजीवन रस पुराना होनेपर नही होता।

सूचना—(१) माताके खान-पानके हेतुसे शिशुको कष्ट पहुचता हो, तो उसमें सुधार करना चाहिये। माताके रोगके उपद्रवरूपसे बच्चेको रोग उत्पन्न हुआ हो, तो माताको भी साथ साथ औषधि देते रहना चाहिये। माताको रोग अधिक प्रबल और दुःखदायी हो, तो माताका दूध छुडा देना चाहिये और अनुपानरूपसे शहद मिलाना चाहिय।

(२) रोगावस्थामें शीत, वर्षादिका आघात न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये।

(३) बालकको अन्नका सेवन कराया जाता हो और अपचन हो तो अन्न और घी कम करके दूध और फलोंका रस अधिक परिमाणम देना चाहिये।

[१४५] चन्द्रशेखर रस।

विधि—रससिंदूर, अभ्रक भस्म, कांत लोह भस्म, मडूर भस्म, गोरोचन और सोहागेका फूला, सबको समभाग मिला गोरखी (कोयल) के रसम १२ घण्टे खरल करके उडद परिमाण गोलिया बनावें। (भै० र०)

मात्रा—आधीसे १ गोली तक माताके दूध, जल या रोगानुसार अनुपानके साथ दिनम २ से ३ बार देवें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे बालकोंके सबप्रकारके रोग, ज्वर, स्तन्यदोष, से उत्पन्न सन्निपात, खासी, श्वास, अजीर्ण, वमन, अतिसार, शूल, जुकाम, धनुर्वात, डब्बा आदि सब रोग दूर होते हैं, और बालक पुष्ट होते हैं।

[१४६] बालार्क गुटिका।

विधि—शुद्ध खर्पर, प्रवाल भस्म, शृंग भस्म, शुद्ध सिंगरफ, सोहागेका फूला, सफेद मिर्च, कचूर और केसर, इन ८ ओषधियोंको समभाग मिला जलमें खरल कर आध-आध रत्तीकी गोलिया बनावें।

मात्रा—१-१ गोली माताके दूध अथवा शहद और वायविडगके चूर्णके साथ दिनमें दो बार देवें।

उपयोग—यह वटी बालकोंके वातश्लेष्म-विकार, सूक्ष्म ज्वर, अस्थिमार्दव रोग, खासी, श्वास, कृमि, जुकाम, मन्दाग्नि, वमन, अतिसार, आदिको दूरकरके बालकोंको प्रसन्न और पुष्ट बनाती है।

जिन बालको की माताका शरीर निर्बल होनेसे या माताको योग्य पोषण न मिलनेसे बालकका योग्य विकास न होता हो, अस्थि निर्बल हो, दांत जल्दी न निकले हों, स्फुर्ति कम हो और पचनक्रिया सदोष होनेसे बार-बार पतले दूषित दस्त हो जाते हों, उन बच्चोंको बालार्क गुटिकाका सेवन कराते रहनेसे उनके देहका योग्य विकास हो जाता है, तथा वे नीरोगी और सबल बन जाते हैं ।

कफ प्रकृतिवाली माताके अथवा क्षय या श्वास-कास पीड़ित माता ी संतानको ऋतुपरिवर्तन या थोड़ी भूल होनेपर कफप्रकोप होजाता है । फिर प्रतिश्याय, छीके आना, कण्ठमे घर घर आवाज और कफसे छाती जकड़ जाना, कभी कभी ज्वर भी आजाना आदि विकार हो जाते हैं । उन बालकोंको बालार्क गुटिकाका सेवन करानेसे वे नीरोग और सबल बन जाते हैं ।

माताका दूध न मिलनेसे कितनेक बालकोंको ऊपरके दूधपर रखना पड़ता है । उस दूधमें जल मिलाकर माताके दूधके समान पतला बनाना पड़ता है और ताजा लेना पड़ता है । भूल होनेपर पचनक्रिया विगड़ती है । फिर रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती । बालक दिनपर दिन गलता जाता है । उनको स्वस्थ बनानेके लिये पथ्यकी योग्य योजना के साथ बालार्क गुटिकाका सेवन कराया जाय तो वे स्वस्थ और सबल बन जाते है ।

किसी कारणवश बालकको ज्वर जीर्ण हो जानेपर अति निर्बल और कृश होजाता है । मन्द मन्द ज्वर रहना, थोड़ा थोड़ा दुर्गन्धयुक्त दस्त होते रहना, मूत्रमे पीलापन, स्फूर्तिका अभाव, जुकाम और कास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । शारीरिक उत्ताप ९९° तक हो जाता हो, उसे थोड़े ही दिनोंतक बालार्क गुटिकाका सेवन करानेपर स्वास्थ्य सुधर जाता है और उसका योग्य विकास होने लगता है ।

[१४७] दन्तोद्भेदगदान्तक रस ।

विधि—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अजमोद, अजवायन, हल्दी, मुलहठी, देवदारु, दारुहल्दी, बायविडंग, छोटी इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, कचूर, काकड़ासींगी, बिड़नमक, अभ्रकभस्म, शंख भस्म, लोह भस्म, और सुवर्णमाक्षिक भस्म, सबको यथाविधि समभाग मिलाकर दूधके साथ ६ घण्टे खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें । (भै० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार जल या माताके दूधके साथ दें या गोलीका चूर्ण कर दिनमें ३ बार दन्तपाली पर घर्षण करें ।

उपयोग—इस रसके उपयोगसे बालकोंको दांत आनेके नम [illegible] अतिसार, ज्वर, धनुर्वात आदि विकार दूर होकर दांत शीघ्र बिना कष्ट बाहर निकल आते हैं ।

बच्चोंको दांत आनेके समय मसुढेमें कण्डू आती है और एक प्रकारका विषमय

रस उत्पन्न होता है। उसे यकृत निगलता रहता है। इस रसके हेतुसे आमाशयके भीतर होने वाली पचनक्रिया विकृत होती है। फिर यकृत निर्बल होने पर अन्त्रमें भी यकृत्के पित्तद्वारा उसका रूपान्तर नहीं हो सकता, तब हरे-पीले फटे हुए दुर्गन्धमय अतिसार होते रहते हैं। यदि इस विषका शोषण रक्तमें होता है, तो ज्वर भी उपस्थित होता है। वातनाड़ियों और वातकेन्द्रपर अधिक असर होनेपर आक्षेप आता है। इन सब विकारोंका मूल विषमय रस है। यह रसायन आमाशयमें उत्पन्न होनेवाले रस (Gastric juice) और यकृत्से निकलनेवाले पित्त (Bile) का स्राव अधिक कराता है, एवं उसे सबल बनाता है। इस हेतुसे विषमय रसका रूपान्तर हो जाता है। फिर वह ज्वर, अतिसार या आक्षेप आदि विकारोंको उत्पन्न नहीं कर सकता।

[१४८] मृदुविरेचन रस।

विधि—छोटी इलायचीके दाने १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, शुद्ध मुर्दासंग २ तोले और सौंफ ३ तोले लें। सबको यथाविधि मिला बारीक चूर्ण करें।

(र० च०)

मात्रा—बालकोंको आधी-आधी रत्ती दिनमें ३ बार दूधके साथ ५ दिन तक रोज सुबह दें। बड़ी स्त्रियोंको ४-४ रत्ती दिनमें ३ बार।

उपयोग—मिट्टी खानेसे पाण्डु अथवा अन्य रोग हुआ हो तब उसके लिये यह ओषधि दी जाती है। इस ओषधिसे मिट्टी दस्तमें निकलकर प्रकृति स्वस्थ बन जाती है। यह ओषधि स्त्रियों और बालकोंके लिये अति हितकर है।

मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डुरोग जीर्ण होनेपर प्रायः उदरकृमि होजाता है, अतः सेण्टोनाइन १-१ रत्ती और ६-६ रत्ती शक्कर मिलाकर दिनमें ३ बार देवें। फिर सुबह त्रिवृतमिश्रित विरेचन देवें। अथवा कपीला, वायविडंग, डिकामाली और कालानमक भोजनके प्रारम्भमें देकर कृमियोंको निकाल देना चाहिये। रोग अति पुराना हो, तो मदु-विरेचन रस १ दिन दें, १ दिन न दें, इस तरह १ मास तक या पाण्डु दूर होकर उदर नरम होनेतक प्रयोग करना चाहिये।

(१४९) सर्वाङ्गसुन्दर रस।

विधि—समगुण गन्धकवाली रसपर्पटी २ तोले तथा जायफल, जावित्री, लौंग, निम्बपत्र, निर्गुण्डीके पत्ते और छोटी इलायचीके दाने १-१ तोला लें। काष्ठादि ओषधियोंका महीन चूर्ण करें। फिर पर्पटी मिला जलके साथ १२ घण्टे खरल करें, पश्चात् जिनमें मोती होते हैं उन सीपोंमें लेकर २-२ सीपोंका संपुट बनालेवें। ऊपर दो-दो अंगुल मिट्टी लगा पुटपाक विधि अनुसार आरन्य कण्डोंमें पकालें। संपुट लाल होनेपर निकाल लें। स्वांग शीतल होनेपर ओषधि

को निकाल पीसकर शीशीमें भर लें । यदि इस रसको पुटपाक विधिसे न पकावें तो यह महागन्धक कहलाता है । (र० चं०)

मात्रा--आधीसे १ रत्ती माताके दूध या शहदके साथ देवें ।

उपयोग—यह रस बालकोके रक्षणके लिये महौषध है । ज्वरघ्न, दीपन बल और कान्तिको बढानेवाला है । भयंकर संग्रहणी, प्रवाहिका (पेचिश),सूतिका-रोग, रक्तार्श और अन्य रक्तज व्याधियोको नष्ट करता है । जहाँ इसका उपयोग होता है वहाँ पिशाच, दानव, दैत्य आदि, जो बच्चोको पीड़ा देते है वे, प्रवेश ही नहीं करते । बालकोंके समान स्त्रियोको भी प्रदर आदि व्याधियोंमें हितकर हैं ।

बाहरके दूषित दूधसे उत्पन्न अतिसार, मलमें जल ही जल, या जलमिश्रित दूषित दूध, बार–बार जल समान जुलाब होते रहना, मलमें खट्टीसी दुर्गन्ध, मलका सफेद रंग या आटेमें जल मिला हो ऐसा रंग, साथमे थोड़ी वमन, अफारा, वार-बार डकार, कण्ठ में काँटेसे पर होना आदि लक्षण होतेहैं । इनमें यह रस उत्तम लाभदायक है । (उस अवस्थामें सर्वाङ्गसुन्दरके साथ लोहवान पुष्प और लहशुनादि वटी मिला देना विशेष लाभदायक है ।)

गर्मीके दिनोंमें दूध फट जाने या कीटाणु-मिश्रित हो जानेसे किसी-किसी बच्चेको भयंकर ज्वरातिसार हो जाता है । ज्वर १०१°डिग्रीसे १०५°–६° तक बढ जाता है । प्रारम्भमे वार-बार हरे, पीले, गर्म गर्म जलके समान दस्त होते हैं, पश्चात् जुलाब वार-बार किन्तु मल या जल थोड़े-थोड़े परिणाममें आता है । साथ-साथ वमन, वेचैनी, प्यास आदि भयङ्कर लक्षण भी होते हैं । प्यासके हेतुसे बालक अति वेचैन होता है । यदि दूध अधिक दिया जाता है, तो अतिसार वढ़ जाता है, और तृषा भी अधिक लगती है । व्याकुलता इतनी अधिक होती है कि, बालक शय्यापर सो नही सकता । ऐसी स्थितिमें दूध बन्दकर देना चाहिये । (सन्तरा या मोसम्मीका रस, अथवा बकरीका दूध दे सकते हैं) । चावलकी खीलको उबाल-छानकर जलको पिलाते रहना चाहिये और सर्वाङ्गसुन्दर रस वहुत थोडे परिमाण में वार-बार देते रहना चाहिये । यदि अफारा अधिक हो और जुलाव वार-बार थोड़े-थोड़े परिणाममें किन्तु अधिक समय होते हों, और ज्वर भी अधिक हो तो, लक्ष्मी–नारायण रसको प्रवालपिष्टीके साथ मिलाकर देना अधिक हितकर है । वड़े–बड़े जुलाव जल-समान प्रवाही पीले रंगवाले होते हों, तो सर्वाङ्गसुन्दर रस देना चाहिये । साथमें कम मात्रामे दूधकी शक्कर (Lactose) ,सैंधानमक अथवा सोहागेका फूला या सोडाबाई कार्ब देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है । इस तरह दुग्ध विकृति, अन्न-विष या अन्य कारणसे उत्पन्न ज्वरातिसारमें भी यह रस अति हितकर है ।

निकाल लें।

मात्रा—⅛ से ¼ रत्ती तक श्वेतपुष्प नागरबेलके पान या शहद या गोघृतके साथ दें। सर्पविषमें १५-१५ मिनटके बाद, कफोल्बण सन्निपातमें ३-३ घण्टेपर और कुष्ठमें दिनमें ३ बार दें। तीव्र श्वास-प्रकोपमें नागरवेलके पानके साथ दें।

उपयोग—यह श्वेत पुष्प सर्पविष, कुष्ठ, सन्निपात, उपदंशविकार, रक्त-विकार, श्वास, कास, विषमज्वर आदि रोगोंको दूर करता है। सब प्रकारके कफ और वातप्रधान रोगोंपर लाभदायक है।

यह पुष्प वातज, कफज, वातकफज और कफपित्तज कुष्ठ पर लाभदायक है। जिस कुष्ठमें केवल पित्तकी प्रधानता हो, मात्र उस पर नहीं देना चाहिये। निम्नस्तरमें रहा हुआ गन्धक १ से २ रत्ती दे सकते हैं। शीतांग सन्निपात, निमोनिया, श्लेष्मिक सन्निपात एवं अन्य सन्निपातमें जब बेहोशी, नाडी अत्यन्त मन्द होना, श्वासवाहिनी कफसे भर जाना, हृदयका अवरोध होने लगना आदि लक्षण उपस्थित हों, उनपर यह हरताल पुष्प अच्छा काम देता है।

उपदंश रोग जीर्ण होनेपर श्वास, कास, त्वचापर काले-लाल धब्बे, कुष्ठ, फोडा-फुन्सी, नेत्रोंमें कमजोरी, सन्धिवात आदि उपद्रव होते हैं। रक्त, मांस,अस्थितक विकृति पहुँच जाती है। ऐसी अवस्थामें यह रसायन रक्त-शोधक अरिष्टके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। विषमज्वर पालीके एकान्तरा, चातुर्थिक आदि ज्वर, बार-बार अनियमित समयपर थोडे-थोडे दिन बाद आनेवाले परिवर्तित ज्वर, सबपर तुलसीका रस या द्रोणपुष्पीके रस या त्रिकटु, शक्कर और घीके साथ देनेसे सबको दूर करता है।

(१५२) आखुविषान्तक रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहागेका फूला और कुटकीको समभाग लें। फिर यथाविधि मिला, पुनर्नवाके रस और गोमूत्रकी ३-३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

(यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली वध्या कर्कोटकी (ककोडा) के मूलके चूर्णके साथ अथवा पाठाके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—यह रस जहरी चूहना विष और अन्य विषैले जीवोंके विष-प्रकोपको दूर करता है।

सूचना—इस ओषधिके सेवनके साथ पारद, गन्धक, हल्दी, दुपह-

रिया (बाँकुली फूल) के फूल, घरका धुआँ और सिरसके बीज, सबको समभाग मिला, आकके दूधमें खरल करके दंशस्थानपर लेप करते रहना चाहिये।

(१५३) कामिनीविद्रावण रस।

विधि—शुद्ध हिंगुल ६ माशे, शुद्ध गन्धक ६ माशे, शुद्ध अफीम ८ तोले, केशर, जायफल, अकलकरा, जावित्री, पीपल, लोंग, सौंठ और लाल चन्दन, ये आठ द्रव्य २–२ तोले लें। पहिले हिंगुल, गन्धक और अफीमको मिलावें। फिर शेष वस्तुओंका चूर्ण मिला, जल या नागरबेलके पानके रसमें ६ घण्टे घोटकर १–१ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ गोली रोज शामको दूध के साथ लें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे धातुका पतलापन, निर्बलता, मन्दाग्नि और मस्तिष्ककी कमजोरी दूर होकर वीर्यस्तम्भन शक्तिकी वृद्धि होती है।

सूचना—इस ओषधिमें अफीम बहुत ज्यादा परिमाणमें है; अतः कम मात्रामें प्रकृति और ऋतुका विचार करके सेवन करना चाहिये। अधिक दिनोंतक सेवन करनसे प्रकृति ओषधिवष बन जाती है; इसलिये थोड़े दिन सेवन करके ओषधिको बन्द कर देना चाहिये।

[१५४] शुक्रमातृका वटी।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म और लोह भस्म प्रत्येक ४–४ तोले, छोटी इलायचीके दाने, गोखरू, हरड़, बहेड़ा, आँवला, तेजपात, रसोंत, धनियाँ, चव्य, जीरा तालीसपत्र, सोहागेका फूला और मीठे अनारदाने, ये १३ ओषधियां २–२ तोले तथा शुद्ध गूगल १ तोला लें। पहिले पारद और गन्धककी कज्जली करके अभ्रक भस्म और लोह भस्म मिलावें। फिर अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिला, गोखरूके क्वाथ या मीठे अनारके रसमें १२ घण्टे घुटाई कर मटरके समान गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ वार जल, बकरीके दूध अथवा मीठे अनारके रसके साथ देवें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे वीर्यस्राव, सब प्रकारके वातज, पित्तज, कफज प्रमेह तथा,सव कारके मूत्रकृच्छ्र आदि दोष दूर होकर वीर्य शुद्ध और गाढ़ा वनता है। यह ब ०, वर्ग, अग्निको प्रज्वलित करके जीर्णज्वर (अस्थिगत ज्वर) को नष्ट करता है। अश्री (पथरी) में भी लाभदायक इ ।इसके सेवनसे

रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है, मांसग्रन्थियाँ सुदृढ बनती हैं, एवं मानसिक शक्ति भी बढती है।

(१५५) पुष्पधन्वा रस ।

विधि—रससिंदूर द्विगुण गन्धक-जारित या पारद भस्म, नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वङ्गभस्म, ये ५ ओषधियाँ समभाग मिला, धतूरा, भाँग, मुलहठी, सेमलकी छाल और नागरवेलके पत्तोंके रसकी १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें । (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोलीतक दिनमें २ बार दूध, घी, मक्खन, मलाई अथवा शहदके साथ लेवें ।

उपयोग—यह रस अत्यन्त कामोत्तेजक और वीर्यवर्द्धक है । अण्डकोष, फलवाहिनी और शुक्रवाहिनीकी निर्बलतासे आई हुई नपुंसकता, मानसिक दोषसे होनेवाली नपुंसकता, स्मृतिनाश, निद्रानाश, वीर्यका पतलापन, इन्द्रियकी शिथिलता, स्त्रियोंके बीजकोष (Ovaries)का विकास न होनेवाला वन्ध्यात्व, उपदंश अथवा सुजाकके विकारसे गर्भाशय दूषित होकर होनेवाला योनिस्राव स्त्रियोंके नये अस्थिक्षय (हड्डी कमजोर होजाना), शुक्रमेह, लालामेह, अथवा और प्रमेहके कारणसे होने वाली नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करनेवाला औषधियोंमें पुष्पधन्वा रस प्रथम श्रेणीका माना गया है ।

नपुंसकत्व अनेक कारणोंसे आता है । इनमें अण्डकोष, फलवाहिनियाँ, शुक्राशय, शुक्रवाहिनियाँ आदिका योग्य विकास न होना, यह भी एक हेतु है । यदि इन अण्डकोषादिमें वैगुण्य होनेसे नपुंसकता आई हो, तो पुष्पधन्वाका उपयोग होता है । इससे पुरुषोंके अविकसित अण्डकोष और स्त्रियोंके अविकसित बीजाशयका योग्य विकास होता है । इस तरह फलवाहिनियाँ और शुक्रवाहिनियाँ मोटी और भारी होजानेसे, शुक्रवहन कार्य या रजोवहन कार्य न होनेसे नपुंसकता आई हो, तो इस रसके सेवनसे इन वाहिनियोंका विकार कम होकर नपुंसकता दूर होती है ।

अनेक व्यक्तियोंको मानसिक कारणोंसे शयन मात्रकी या कुछ अंशमें आई हुई नपुंसकता इस रसके सेवनसे दूर हो जाती है । अन्य कारणोंसे बीच-बीचमें भासमान नपुंसकता और फिर चेतना आना, ऐसा संशय होनेपर पुष्पधन्वाका उपयोग उत्तम होता है।

अति व्यवाय और उससे उत्पन्न स्मृतिनाश या निद्रानाश, स्त्री-समागमकी तीव्र इच्छा होनेपर उसका अकस्मात् भेद हो जानेसे होनेवाला स्मृतिनाश या निद्रानाश, इस विकारपर पुष्पधन्वाका अच्छा उपयोग होता है। यदि अनिच्छासे

ब्रह्मचर्य पालन प्रयत्न करनेपर निद्रानाश हुआ हो, तो उसपर इस रसका उपयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये; वरना विपरीत परिणाम आता है।

अति व्यवायी मनुष्यको व्यवाय-विषयक या स्त्री सम्बन्धी विचार आनेपर शीर्षशल उत्पन्न होकर रेत स्खलन हो जाता है फिर शीर्षशूलकी निवृत्ति होती है। यह स्खलन इन्द्रिय शैथिल्यावस्थामें ही होता हो, तो उसपर इस ओषधिका उत्तम उपयोग होता है। स्त्री सम्बन्धी ध्यान होकर उन्माद या आक्षेपकी प्राप्ति हुई हो, तो इस रसको ब्राह्मीके सदृश शीतवीर्य अनुपानके साथ देना चाहिये।

स्त्रियोंके बीयाशयों (Ovaries) का योग्य विकास न होनेसे उत्पन्न होनेवाले वंध्यत्वपर यह औषध उत्तम प्रकारसे कार्य करती है। इसी हेतुसे यदि जननेन्द्रियके अन्य अवयवका पूर्ण विकास न होनेसे ग्राम्य-धर्मके सुख-स्वादका अभाव रहता हो, तो उसपर भी पुष्पधन्वाका उत्तम उपयोग होता है। मनोव्याघातसे यह विकार उत्पन्न हुआ हो, तो उसपर भी यह लाभदायक है। सुजाक या उपदंशके हेतुसे गर्भाशय दुष्ट होकर योनिमुखमें स्राव होता हो और बीजकोषपर्यन्त दुष्टि फैल गई हो; और उसके विविध लक्षण प्रतीत होते हों, तो उसपर अनेक ओषधियोंमें पुष्पधन्वाको विशेष महत्व दिया जाता है।

स्त्रियोंके उत्पन्न होनेवाले एक प्रकारके अस्थिक्षयमें पुष्पधन्वा उत्तम लाभदायक है। इसमें अस्थिमे मृदुता आती है। विशेषतः नितम्बास्थि मृदु होनेपर चलनेमें विलक्षण गति होती है। मुड़कर चलना पड़ता है। पैरको उठाकर आगे बढ़ना पड़ता है; परिश्रम मालूम पड़ता है; क्वचित् अन्य स्थानोंकी हड्डियोंपर भी गाँठे होजाती हैं। यह विकार अति जीर्ण हो, एवं अशक्त और निर्बल स्त्री, जो बार-बार सगर्भा होती रहती हो, उसे यह विकार हुआ हो, साथ साथ अन्य इन्द्रियाँ भी अति क्षीण होगई हों, तो नागभस्मका उपयोग करना चाहिये। किन्तु विकार अति पुराना न हो, मनोव्याघात आदि कारण स्पष्ट हों, या मानसिक विकृतिके लक्षण अधिक हों, तो यह उत्तम कार्य करता है।

प्रमेह या मधुमेहके उपद्रवरूपसे या इन रोगोंके लक्षणोंमें एक व्यभिचारीके लक्षण रूपसे नपुंसकता आई हो, तो पुष्पधन्वा उपयोगी है। शुक्रमेह और लालामेह पर यह अत्युत्तम है।

संक्षेपमें पुष्पधन्वा रस अण्डकोष आदि अवयवोंको शक्तिदायक, उत्तेजक, वायुकी पूर्ति कम होनेसे उत्पन्न शिथिलताको नष्ट करनेवाला, अण्डकोषमें अंतःस्राव बढानेवाला, किञ्चित् स्तम्भक, शक्तिवर्द्धक और वृष्य ओषधि है।

(औ० गु० ध० शा०)

कितनेही निर्बल और शिथिल मांसपेशीवाले रोगियोंको केवल पुष्पधन्वा रस देनेसे

योग्य लाभ प्रतीत नहीं होता। उनको मधुमालिनी वसन्त साथमें मिलाकर देनेपर आशातीत गुण मिल जाता है।

जितनेही ब्रजभगसे पीडित रोगियोंमें रक्तके भीतर कुछ अंशमें मूत्रविष बना रहता है, उनका मूत्र जलनके साथ बार-बार आता रहता है। स्वभावमें उग्रता, निद्रामें विकृति, बार बार स्वप्नदोष होजाना और मूत्रमें पीलापन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन रोगियोंमें स्थानिक शिथिलताके अतिरिक्त रक्तादि धातुमें भी विकृति उत्पन्न हो गई है। पहिले उनके रक्तको निर्दोष बनाये बिना यदि पुष्पधन्वा रस दिया जायगा तो कुछ भी गुण नहीं होगा, विपरीत हानि ही होगी। मानस उत्तेजना बढ़कर स्वप्नमें शुक्रस्राव होता रहेगा, शुक्र अधिक पतला भी बन जायगा और स्तम्भनशक्ति नष्ट हो जायगी। उनको पहिले चन्द्रप्रभा (बड़े गोखरू और शीतलमिर्च) के क्वाथसे २-४ मासतक सेवन करना चाहिये तथा मूत्रेन्द्रियपर कपूरके तैलकी पट्टी रखवाकर स्थानिक चेतनाधिक्यको शान्त करना चाहिये। फिर पुष्पधन्वा (मधुमालिनीसह) देना चाहिये।

सूचना—जीर्ण और अधिक अशक्त रोगियोंको यदि मात्रा अधिक दी जायगी, तो प्रतिकूलित क्रिया होकर हानि पहुँचेगी। अतः कम मात्रामें अधिक कालतक औषधि सेवन करानी चाहिये।

(१५६) मृगनाभ्यादि वटी।

विधि—सोनेके वर्क १॥ माशे, मोतीकी पिष्टी ६ माशे, चाँदीके वर्क ४॥ माशे, कस्तूरी ३ माशे, केशर ६ माशे, वशलोचन १०॥ माशे, छोटी इलायचीके बीज ७॥ माशे, जायफल ९ माशे और जावित्री १ तोला लें। पहले मोती पिष्टीके साथ सोने और चाँदीके वर्कको मिलावें। बादमें अन्य दवाओंका चूर्ण मिला नागरबेलके पानकारस डाल दो दिन खरलकर मटरके समान गोलियाँ बनावें। (स्वा० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दूध या मलाईके साथ लें।

उपयोग—इसके सेवनसे वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुविकार, प्रमेह, क्षय, श्वास, मदाग्नि, सब विकार दूर होते हैं, देह नीरोग बनती है, तथा बल, बुद्धि, स्मरणशक्ति, वीर्य और आयुकी वृद्धि होती है।

यह वटी वातवहानाड़ियों और रक्तवाहिनियों, दोनोंको लाभ पहुँचाती है। इस वटीमें सुवर्ण, मुक्ता आदि शीतवीर्य औषधियोंका प्राधान्य होनेसे यह उष्ण प्रकृतिवालोंको विशेष अनुकूल रहती है, एवं पुरुष और स्त्रियोंको उष्ण ऋतुमें भी निर्भयतापूर्वक दी जाती है।

सुजाक, उपदंश या पित्तप्रकोप होनेपर पेशाब बार-बार पीले रंगका थोड़ी-थोड़ा होता रहता है । रक्तमें विष-वृद्धि होकर नेत्रमें दाह, मस्तिष्कमें भारीपन, चक्कर आना, तन्द्रा, आलस्य, मंदाग्नि और निस्तेजता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर इस वटीके सेवनसे सब लक्षणोंका शमन होकर वीर्य शुद्ध, शीतल और गाढ़ा बन जाता है ।

मानसिक आघात, चिन्ता, अधिक प्रवास, चाय, गाँजा, या तमाखूका अधिक सेवन आदि कारणोंसे मस्तिष्क जब निर्बल हो जाता है; तब निद्रानाश, स्मरणशक्तिमें न्यूनता, निकम्मे विचार आते रहना, उदासीनता, अरूचि, मलावरोध आदि विकार उत्पन्न होने लगते हैं; उनपर इस वटीका बहुत अच्छा उपयोग होता है ।

गरम पदार्थोंके अति सेवन या अधिक स्त्री-समागमसे वीर्य पतला और उष्ण हो जाता है, फिर बार-बार पेशाबके साथ निकलते रहने या स्वप्नमें शुक्रपात होते रहनेसे निस्तेजता और उदासीनता प्रतीत होने लगती है; अन्य धातुओंका क्षय होता है; तथा थोड़ा कार्य करनेपर थकावट आती है, उसपर यह वटी अति हितकर है ।

अधिक मानसिक परिश्रमसे वातवाहिनियाँ और वातवह केन्द्र निर्बल हो जाते है । फिर सुस्ती बढ़ जाती है; स्मरणशक्ति घट जाती है, और मन चिन्तातुर रहता है; ऐसी परिस्थितिमें इस वटीके सेवनसे मस्तिष्क और वातवह यन्त्र सबल होकर सब विकार दूर होजाते है।

उपदंश, सुजाक या मधुमेह होनेपर जब शरीरके घटक शनैः शनैः गलते जाते हैं; रक्तमें उपदंश आदिके कीटाणु या विषका प्रवेश होता है; अथवा मधुमेहसे रक्तमें शर्करा वृद्धि, फिर मूत्रविष वृद्धि होती है; पश्चात् विष फैलनेसे विविध अवयवोंमें दाह होता रहता है; या शूल निकलता रहता है, क्वचित् सूक्ष्म ज्वरके समान शरीर गरम रहता है, ऐसे रोगमें इस वटीका सेवन अति लाभदायक है ।

इन रोगोंके हेतुसे अण्डकोष और शुक्राशयकी वातवाहिनियां या सूक्ष्म रक्त-वाहिनियाँ विकृत होकर यदि नपुंसकता आ गई हो, तो वह भी इस औषधसे दूर हो जाती है ।

संक्षेपमें यह वटी रक्तमें रहे हुए विषको दूर करती है; वीर्यको शुद्ध, शीतल और गाढ़ा बनाती है; मस्तिष्कको सबल बनाती है; मनको प्रसन्न करती है, और शरीरको स्वस्थ बनाती है ।

(१५७) वीर्यशोधन वटी ।

विधि—चाँदीके वर्क, वंगभस्म, प्रवालपिष्टी, शुद्ध शिलाजीत और गिलोय

सत्व, सब एक एक तोला तथा कपूर ३ माशे लें। सबको यथाविधि मिला शिलाजीत-के जलमें खरल करके मटरके समान गोलियाँ बना लें। (चि० च०)

सूचना—प्रवालपिष्टीके स्थानपर सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलानेपर उष्णताको शान्त करनेमें विशेष गुण दर्शाती है।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ दें।

उपयोग—यह वटी शुक्रमें रहे हुए दूषित घटकोंका शोधन करती है, उष्णताका शमनकर स्तम्भनशक्तिको बढाती है, तथा शुक्राशय और शुक्रवाहिनी के वातप्रकोप और शिथिलताको दूर करती है। एव वटीसे सब प्रकारके प्रमेह, धातु-दोष, मूत्ररोग, निर्बलता आदि विकार दूर होकर शक्तिकी वृद्धि होती है।

शुक्र और शुक्र स्थानमें विकृति होनेके अनेक हेतु हैं। फिरग, सुजाकविष, तमाखूका सेवन, गरम गरम चायका सेवन, अति मद्यपान, मिर्चादिका अति सेवन, अति स्त्री सहवास, हस्तमैथुन, विवनाइनादि उग्र औषधियोंका अधिक मात्रामें सेवन, जीर्ण पूयप्रधान रोग, दीर्घ कालतक मधुरा, विषमज्वरादि रोगकी स्थिरता-मलावरोध और वातनाडियोंको शिथिल करनेवाले आहार–द्विदल धान्यादिका अत्यधिक सेवन, सर्वदा सूर्यके ताप और अग्निकी उष्णतामें परिश्रम करना, पचन होनेके पहले पुन पुन भोजन अथवा अन्त्रमें उष्णता (मलावरोध) बनी रहना और दिनमें शयन और रात्रिमें अनियमित जागरण आदि आदि कारण हैं। इन कारणोंमेंसे जो कारण हो या अन्य जो कारण हो, उसे दूर करना चाहिये। यदि मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न नही किया जायगा, तो औषधिसे स्थिर लाभ या पूरा लाभ नही मिल सकेगा।

यदि पूय या रक्तप्रकोपक इतर विष, विषमज्वरादिके कीटाणु, आम, कफ, मलादि जो रक्तको दूषित करनेवाले हैं, उनमेंसे किसीका प्रवेश हो गया हो, तो पहले उसे दूरकर रक्तप्रसादन करना चाहिये। क्योकि, रक्तमेंसे ही शुक्र बनता है। रक्त मलिन होनेपर शुक्र कभी शुद्ध नही बन सकता। अत रक्तविकार नाशक औषधि चोपचिन्यादि चूर्ण, सारिवासव, रक्तशोधक क्वाथ या और औषधिका सेवन पहले करना चाहिये।

फिरग या सुजाकका रोग पहले हो गया हो तो उसके कीटाणु और विष-को नष्ट करना चाहिये। फिरग विषको नष्ट करनेमें मल्लप्रधान औषधि–अष्ट-मूर्ति रसायन, उपदश सूर्य और अमीर रसादि तथा सुजाक विषको नष्ट करनेमें रौप्य भस्म, सुवर्ण वग, गोक्षुरादि गुग्गुल और चन्द्रप्रभादि विशेष व्यवहृत होते हैं। चोपचिन्यादि चूर्ण इन दोनों रोगोंके विषपर तथा रक्तमें प्रवेशित पूय कीटाणुके विषपर हितकारक है। अत इस वटीके सेवनके पहले अथवा साथ साथ उक्त औष-

धियों मेंसे विशष अनुकूल औषधिका सेवन करना चाहिये ।

फिरंग, सुजाक या अन्य मूत्रविकार होनेपर इस वटीके साथ अनुपान-रूपसे बड़े गोखरू १ तोला और शीतलमिर्च ६ माशेका क्वाथ (६ माशे शहद मिला हुआ) देना विशेष अनुकूल रहता है । इस अनुपानसे रक्तमें रही हुई उष्णता और विष, मूत्रके साथ निकल जाते हैं । जिससे औषधि अपना कार्य सरलतापूर्वक करती है ।

यदि पूयप्रकोपसे मंद मंद ज्वर भी रहता हो, देह निस्तेज और निर्बल हो गई हो, मूत्रमें कुछ जलन होती हो, तो चन्दनादि लोहका सेवन भी कराते रहना चाहिये । यदि मूत्रमें दाह आधिक होता हो तथा फोड़े फुन्सियाँ भी होते हों, तो रक्तशोधक क्वाथ अनुपानरूपसे देना चाहिये ।

तमाखूका व्यसन--(खाना, पीना, सूंघना) वर्तमानमें बहुत बढ़ गया है । किशोर वयके विद्यार्थी और स्त्री समाजमें भी यह व्यसन प्रवेश कर रहा है । छोटी आयुमें व्यसन होनेपर शुक्रोत्पादक अवयव, शुक्रवाहिनी और शुक्राशय, ये सब दूषित हो जाते हैं । इस तरह जिन माताओंको तमाखूका व्यसन हो, उसकी सन्तानोंको मन, देह, रक्त और शुक्रादि धातुएँ सब स्वभावत; निर्बल रहतीं है । अतः इस भूलसे बचना चाहिये और शुक्र विकृतिवालोंको यदि तमाखूका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये । यदि तमाखू विष (निकोटिन) नित्यप्रति रक्तमें प्रवेश करता रहेगा, तो कोई भी औषधि शुक्रको शुद्ध और शीतल अधिक समयतक नहीं रख सकेगी । धूम्रपानके व्यसनीको इस वटीका सेवन धारोष्ण दूध या गरम करके शीतल किये हुये दूधके साथ कराना चाहिये । यदि मलावरोध भी सर्वदा रहता हो, तो रात्रिको ४-६ माशे इसबगोलकी भूसी, समान शक्करके साथ मिलाकर औषधि और दूधके साथ लेते रहना चाहिये ।

गरम गरम चाय, गरम गरम भोजन, अत्यधिक मिर्च और अति मद्यपानादि कारणोंसे रक्त रचना विकृति हो जाती है । उष्णता बढ़ जाती है तथा रक्ताणु निर्बल और निस्तेज बन जाते है । इस हेतुसे यदि शुक्रमें उष्णता और पतलापन आया हो, तो पहले मूल कारणको दूर करें फिर वीर्यशोधन वटी और चन्द्रकला रस मिलाकर धारोष्ण गोदुग्धके साथ सेवन करें ।

शुक्रमेह, अधिक स्त्री सहवास, हस्तमैथुन अथवा स्वप्नदोषादि कारणोंसे वीर्यका अति क्षय हुआ हो और पतला हो गया हो, तो इस वटीका सेवन गिलोय, गोखरू और आंवलेके क्वाथके साथ करना चाहिये । एवं मालावरोध करनेवाले भोजनका त्याग करना चाहिये । वीर्य शुद्ध होनेके पश्चात् आवश्यकता रहे तो वीर्यवर्द्धक औषधि शतावर्यादि चूर्ण, कौंच पाक या वसन्तकुसुमाकर रसका

सेवन कराना चाहिये तथा तिलाकी मालिश भी करानी चाहिये।

ज्वरविष या क्विनाइन आदि उग्र ओषधियोंके, विषसे रक्तमें उष्णता आई हो और फिर उसी कारणसे शुक्र जलसदृश पतला हो गया हो, स्तम्भनशक्ति नष्ट हो गई हो और देह कमजोर हो गई हो, तो लोह प्रधान संशमनी वटीके साथ इस वटीका सेवन कराना चाहिये इस विकारमें प्रवालके स्थानपर सुवर्णमाक्षिक मिलाकर बनायी हुई वीर्यशोधन वटी विशेष कार्य करती है।

पुरुषोंके समान यह वटी स्त्रियोंको भी ज्वरादिसे उत्पन्न रक्तकी उष्णता पर दी जाती है। सगर्भावस्थामें भी यह निर्भयरूपसे दे सकते हैं।

सूर्यके तापमें अत्यधिक परिश्रम करके तुरन्त जलपान करना, वातनाड़ियों को दूषित करनेवाला आहार, मलावरोध, अपचनमें भोजन (अध्यसन) आदि कारणों से उष्णता और पतलापन आ जाता है, किसी किसीको स्वप्नदोष भी हो जाता है, मल पीला और मैला हो जाता है तथा स्वभाव क्रोधी बन जाता है। यह कारण होनेपर मूल कारणको दूर कर फिर माक्षिकमिश्रित वटीका सेवन कुछ दिनोंतक करनेपर शुक्र सबल और शुद्ध बन जाता है।

रक्तमें उष्णता लम्बे समयतक रहनेपर देहमेंसे वसा और मज्जाका ह्रास होता है। वसाकी न्यूनतासे त्वचा शुष्क हो जाती है। मज्जाकी कमीसे सन्धि स्थानोंमेंसे कट कट आवाज निकलती रहती है तथा थकावट आ जाती है। फिर देह कृश हो जाती है। यह विकृति पुरुष और स्त्री, दोनोंको होती है। इन दोनोंके लिये यह वटी हितावह है। अनुपान ह्रीबेरादि क्वाथ विशेष अनुकूल रहता है।

वातप्रकोप या वातपित्तप्रकोप होनेपर मंदाग्नि होकर शुक्रमेहकी प्राप्ति हो जाती है। फिर शनैं शनैं शरीर गलता जाता है। त्वचा श्याम हो जाती है। थोडा-सा परिश्रम होनेपर शारीरिक उत्ताप बढ जाता है। इस विकारपर इस वटी का सेवन कराया जाता है। अनुपान छोटी इलायची, वंशलोचन, गिलोयसत्व, आवलेका चूर्ण और शहद अथवा न्यग्रोधादि क्वाथ।

इस वटीमें मिला हुआ रौप्य रसायन, पूयकीटाणुनाशक, वृक्क बलवर्द्धक और शुक्रशोधक गुण दर्शाता है। यह शुक्रोत्पादक स्थान और शुक्राशयको पुष्ट करता है तथा शुक्रको भी सबल बनाता है। प्रवाल और माक्षिक दोनों शीतवीर्य हैं। इनमें प्रवाल अस्थिपोषक और माक्षिक रक्तपौष्टिक है। शिलाजीत रसायन, विकृतिनाशक और बल्य है। गिलोय सत्व शीतवीर्य और त्रिदोषहर होनेसे वीर्यको शीतल, शुद्ध और सबल बनाता है। कपूर कीटाणु और विषका नाशक, बल्य और शामक है।

(१५८) वीर्यस्तम्भन वटी।

प्रथम विधि—कस्तूरी और सोनेके वर्क १–१ माशा; चाँदीके वर्क, इलायची, जुंदेवेदस्तर १–१ तोला, नरकचूर, दरूनज अकवरी; वहमन लाल, वहमन सफेद, जटामांसी, लौंग तेजपत्र ६–६ माशे; पीपल और सोंठ ३-३ माशे लें। जुन्देवेदस्तरको शहदमें घोटें फिर क्रमशः वर्क, कस्तूरी और शेष वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिला ३ घंटे शहदमें खरल करके १॥–१॥ माशेकी गोलियाँ वाँधें।
(आ० नि० मा०)

मात्रा—१-१ गोली शहदमें मिलाकर सुवह-शाम लेवें। ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

उपयोग—तीसरी विधिमें लिखा है।

द्वितीय विधि—चन्द्रोदय १ माशा, कस्तूरी एक माशा, केशर २ माशे, जुन्देवेस्तर ८ माशे, लोवानले फूल २ माशे, जावित्री २ माशे और अकलकरा २ माशे लें। प्रथम जुन्देवेदस्तरको शहदमें घोटें। फिर चन्द्रोदय और कस्तूरी मिलावें, वादमें शेष दवाइयोंका वारीक चूर्ण मिलाकर मटरके समान गोली वना लें।

मात्रा—१ से २ गोली दिन में २ वार दूधके साथ लें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और प्रमेह आदि रोग दूर होकर स्तम्भनशक्ति और शरीर वलकी वृद्धि होती है।

तृतीय विधि—जायफल, लौंग, जावित्री, केशर, छोटी इलायचीके दाने, शुद्ध अफीम और अकलकरा, ये सव १-१ तोला और भीमसेनी कपूर ३ माशे लें। इन सवको मिलाकर नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ वनावें।
(यो० र०)

मात्रा—१–१ गोली रात्रिको सोनेके आधे घण्टे पहले मिश्री मिलाये दूधके साथ लेवें। कब्ज न हो, तो सुवह भी ले सकते हैं।

उपयोग—इस वटीसे शीघ्रपतन दूर होता है, वीर्य शुद्ध और गाढा वनता है; तथा पचनक्रिया वलवान और शरीर तेजस्वी वनता है।

सूचना—इस गुटिकामें १ तोला रससिंदूर या शुद्ध हिंगुल मिला लेनेसे यह वटी अधिक लाभ पहुँचाती है। हम रससिंदूर मिलाकर उपयोगमें लेते हैं।

[१५९] महावातराज रस।

विधि—धतूरेके शुद्ध वीज, शुद्ध दारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, प्रत्यक २–२

तोले, अभ्रक भस्म, दालचीनी, लौंग, जायपत्री, जायफल, इलायचीके बीज, भीमसेनी कपूर, कालीमिर्च, चन्द्रोदय या रससिंदूर प्रत्येक १-१ तोला और अफीम १२ तोले लें। पहिले पारद-गन्धककी कज्जली कर लोहभस्म, अभ्रकभस्म और चन्द्रोदय मिलाकर खूब मर्दन करें। फिर शेष अन्य ओषधियोंका कपडछान चूर्ण और अन्तमें अफीम मिलावें। पश्चात् सबको धतूरेके रसमें एक दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। यह प्रयोग सुजानगढके स्व० यतीजी महाराजका है। सिद्धभैषज्य मजूषाकारने भी इसे अपने ग्रन्थमें ले लिया है।

(श्री० पं० गोवर्द्धनजी छांगाणी, भिषक्केसरी)

मात्रा—½ से १ रत्ती जलके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २ बार दें। अतिसार आदिमें शहद और न्युमोनिया, कफज्वर आदिमें अदरखके रसके साथ दें। इसी तरह अन्य रोगोंपर उचित अनुपानोंकी योजना करें।

उपयोग—यह रस अनुपानभेदसे कास, हिक्का, अतिसार, संग्रहणी, मधुमेह, प्रमेहपिटिका आदि रोगोंमें बहुत उपयोगी है। कफज्वर, श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) प्रवाहिका, जीर्ण पक्व आमातिसार और रक्तातिसार आदिमें रामबाणके समान काम करता है। श्वास-कास आदिमें कैसा भी पार्श्वशूल क्यों न हो, यह आध घण्टेमें प्रतिज्ञापूर्वक शमन करता है। मधुमेहमें कितनीही शक्कर जाती हो, चाहे जितने परिमाणमें रोग बढ गया हो, साथमें हृदयविकृति, कम्प और प्रमेहपिटिका भी होगये हो, सब उपद्रवोंका शमन करनेके साथ मधुमेहको निश्चित दूर करता है।

आमवात, निमोनिया, उरस्तोय, वृक्करोग, मधुमेह और सूतिकाज्वर आदि रोगोंमें हृदयावरण प्रदाह उपद्रव रूपमें उपस्थित होता है। फिर रोगी की छातीमें खिचाव होता है, हृदयमें बारबार शूल चलता है और रोगी हृदयविकारसे अति पीडित होता है। ऐसी अवस्थामें रोगीको शान्ति देने और शूलका शमन करनेके लिये तुरन्त उपचार करना चाहियें। मलावरोध हो तो एरण्डतैल या ग्लिसरीनकी पिचकारी द्वारा उदरशुद्धि करके महावातराज रस पूरी मात्रामें अर्थात् १ रत्तीतक दें। अनुपान इसबगोलकी भूसी ६ माशे और शक्कर ६ माशे। पहले गोली निगलवा देवें। ऊपर ३-४ बारमें शक्कर मिश्रित भूसी थोडे जलके साथ दे देवें। यदि १ घण्टेमें शान्ति न हो जाय, तो पुन आधी मात्रामें महावातराज देनेसे आशुकारी शूल शमन हो जाता है।

इस रसमें मुख्य औषध अहिफेन होनेसे इसका विविध अविराम ज्वर (न्युमोनिया, इन्फ्लुएन्जा आदि) तथा विसर्प, विस्फोटक आदि प्रादाहिक ज्वरोंमें उपयोग होनेपर अशेष उपकार होता है। इन ज्वरोंके उपद्रवरूप प्रलाप

स्थिरता, अनिद्रा, अतिसार, तीव्रवेदना, शूल और भ्रम आदिके निवारणमें यह ़च्छा कार्य करता है; किन्तु अहिफेनका उपयोग किन किन अवस्था विशेषमें निषिद्ध है, इन बातोंको लक्ष्यमें रखकर इसका प्रयोग करना चाहिय । यथादि (१) अनिद्रा है किन्तु उसके साथ प्रलाप या अचेतना नहीं है; अथवा (२) अस्थिरता और प्रलाप है; उसके साथ नाड़ी कोमल है । मुखमण्डल और नेत्र लाल नहीं है । तथा जिह्वाशुष्क और गुलाबी नहीं हैं, आर्द्र और निर्मल है । तो इन ोनों प्रकारके लक्षणोंपर इस रसायन को प्रयुक्त करना चाहिये ।

उदरमें यदि मल संगृहीत है, तो पहिले बस्तिद्वारा कोष्ठ शुद्धि करके फिर इसका प्रयोग करना चाहिये । इन्फ्ल्युएन्जाकी प्रथमावस्थामें इसका प्रयोग निषिद्ध है; किन्तु मल और कफ सरलतापूर्वक निकलने लगे और फुफ्फुस-में रक्त-संग्रह न होनेपर भी वेदना, प्रलाप भी उपस्थित हुए हों तो इसे प्रयुक्त कर सकते हैं ।

यदि दुर्बल रोगीके सन्निपातमें प्रलाप, खुजली, अस्थिरता, अनिद्रा और धिक अतिसार आदि लक्षण उपस्थित हों, तो यह रस महोपकारक होता है । फिर भी दो वातोंकी ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये ।(१) नाड़ी पुष्ट और कठिन हो; मुखमण्डल और नेत्र उज्वल और लाल हो, तो यह रस देना चाहिये । (२) चक्षु की पुतली कुछ आकुंचित हो, तो कदापि अफीमप्रधान औषधका उपयोग नहीं करना चाहिये, अन्यथा विपत्ति खड़ी हो जायगी ।

यदि अन्त्रावरण (उदर्य्याकला) प्रदाह, आमाशय-प्रदाह, अन्त्रप्रदाह आदि कारणोसे रोगोत्पत्ति हुई हो, तो अफीम प्रधान औषध निर्भय होकर प्रयुक्त की जाती है । प्रदाहकी चिकित्सामें प्रधान उद्देश्य यह है कि, प्रादाहिक स्थानको शान्ति मिले, उस अवयव (इन्द्रिय) की कोई क्रिया न होनी चाहिये; उसे अधिक परिश्रम न होना चाहिये; अन्त्र और अन्त्रावरण प्रदाहमें अफीम द्वारा इस उद्देश्य की सहज सिद्धि होती है । अफीम प्रधान औषध सेवनसे अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कलाकी वातनाड़ियोंकी उग्रता शमन होती है; आन्त्रिक पेशियोंकी क्रियामें स्थैर्यता आ जानेसे कोष्ठबद्धता हो जाती है ।इन सब प्रदाहोंमे स्वभावत: इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये चेष्टा होती है । उस कार्यमें अफीम सहायता पहुँचाती है । इस हेतुसे इस रससे सत्वर लाभ हो जाता है ।

अतिसार और प्रवाहिकाके वेग, शूल, वेदना, कुंथन आदिके निवारणमें अफीम महौषध होनेसे यह रसायन सत्वर लाभ पहुंचा देता है । एक प्रकारके अजीर्ण रोगमें अतिसार होता है । उसमें बहुधा आमाशय और अन्त्रकी मांसपेशियोंकी क्रिया अत्यन्त बढ जाती है । इसी हेतुसे आहार-द्रव्य उदरस्थ होनेपर थोड़े ही

ममर्में अर्द्ध परिपक्व अवस्थामें ही आमाशयके मुद्रिका-द्वारमेंसे ग्रहणीके भीतर प्रवेश कर जाता है। फिर वह उग्रता उत्पन्नकर अन्त्रकी मल-निर्गमन क्रियाको बढ़ा देता है। सम्यक् जीर्ण होनेके पहिले ही भेद हो जाता है। रोगी, उदरको खाली अनुभव करता है, और क्षुधा लगी है, ऐसी भावना हो जाती है। एवं भोजन कर लेनेपर क्षणिक शान्ति जानी जाती है, किन्तु आहार द्रव्य शोषित, होनेके पहिले मलरूपसे निर्गत हो जाता है। इस हेतुसे देहको योग्य पोषण नही मिलता और विविध वेदनाप्रद लक्षण प्रकाशित होते हैं। ये लक्षण चिरकारी अजीर्ण रोगमें सामान्यत ६ से १२ वर्षकी आयुवाले बालकोंको देखनेमें आते हैं। यदि इन लक्षणोंके साथ मुँहमें छाले, खट्टी डकार, आमाशयमें दाह, ये लक्षण न हो, तो भोजनके १५ मिनट पहिले इस रसकी एक मात्रा दे देनेसे आमाशय और अन्त्रकी मांसपेशियोंकी क्रिया ठीक हो जाती है, जिससे आहार-द्रव्य निर्गमनमें विलम्ब होता है और आहार पचन होनेके लिये समय मिल जाता है। यदि कीटाणु-प्रकोप हो, उबाक होती हो, ज्वर भी रहता हो, तो इस रसकी अपेक्षा बातेभकेसरी विशेष हितावह माना जाता है, और आमाशयके रसस्रावमें उग्रता और अम्लता अधिक हो, तो ग्रहणीकपाट रस देना चाहिये।

नाग-विषजशूल रोगमें शूल और आक्षेप-निवारणके लिये यह रस अति उपयोगी है। अनुपान रूपसे एरण्ड तैल देना चाहिये।

आमाशयकी वातवाहिनियोंकी उग्रताके हेतुसे वमन और हिक्का होनेपर यह रस तत्काल लाभ पहुँचाता है। मात्रा बहुत कम देनी चाहिये, और २-२ घंटे पर ३-४ बार देनी चाहिये।

मूत्राश्मरी या पित्ताश्मरीका मूत्र-प्रणाली या पित्त-प्रणालीमें प्रवेश होनेपर भयानक वेदना होती है। वह इस रसकी पूर्ण मात्रा देनेसे निवृत्त हो जाती है। यदि एक मात्रासे वेदना शमन न हो, तो आधसे एक घण्टा पश्चात् पुन दूसरी बार एक मात्रा दें। साथ-साथ मूत्राश्मरीमें रोगीका उष्ण जलपूर्ण टबमें बिठावें, जिससे सब यातना सहज दूर हो जायगी। पित्ताश्मरीमें रोगीको गरम जल (सहन होसके ऐसा) पिलाया जाता है, जिससे सत्वर वेदना दूर हो जाती है।

सूचना—इस औषधिमें आधी मात्रामें अफीम मिलायी है, इसलिये सम्हालकर प्रकृतिका विचार करके उपयोग करना चाहिये।

(१६०) कालारि रस।

विधि—शुद्ध पारा ३ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले, शुद्ध बच्छनाग ३ तोले, कालीमिर्च ५ तोले, पीपल १० तोले, लौंग ४ तोले, धतूरेके शुद्ध बीज ३ तोले,

सोहागेका फूला ५ तोले जायफल ५ तोले और अकलकरा ३ तोले लें। पहिले पारदगन्धककी कज्जलीकर अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलावें। फिर करीर (कैर) के स्वरस (ताजे कैरकी बारीक शाखाओंको जलके साथ कूटकर रस निकाल लें) और अदरखके रसमें २–२ दिन खरल करके १–१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। योगचिन्तामणिकारने "करीरार्द्रक निबुकैः" कह कर नीबूके रसकी भावना भी बताई है। परन्तु हमारी गुरुपरम्परामें कैर और अदरखके रसको ही भावना देनेका रिवाज है। (पं० श्री० गोवर्द्धनजी शर्मा छांगाणी)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ से ३ बार गरम जल अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ दें। कतिपय चिकित्सक अदरखके साथ भी देते हैं। सन्निपातोंमें प्रलाप आदि लक्षण होनेपर वैद्यजीवनोक्त अर्कादि क्वाथ या योगरत्नाकरके तगरादि कषायके साथ दिया जाय, तो उन सब विकारोंको दूर करनेमें अच्छा चमत्कार दिखाता है।

उपयोग—यह रस सन्निपातमें उत्पन्न श्वास, कास, हिक्का और प्रलाप आदि लक्षणोंका शमन करनेमें बहुत उपयोगी है। यह कफप्रधान और वातप्रधान सन्निपातमें विशेष हितकारी है। अन्त्रके शोधन और वातकफको शमन करनेके साथ सेन्द्रिय विषको सत्वर जलाकर रोगको दूर करता है। इसके अतिरिक्त यह रस कफज्वर तथा शीतज्वर पर भी तत्काल गुण दर्शाता है।

(१६१) कफकर्त्तन रस।

विधि—अपामार्ग पञ्चाङ्ग १ सेर, जायपत्री २ तोले, छोटी इलायची साबुत; जायफल, और लौंग १-१ तोला तथा कालीमिर्च ३ तोले लें। सबको कड़ाहीमें डालकर जलावें। निर्धूम राख हो जानेपर खरल कर पीस लें। फिर १ तोला चरस की भस्म मिलावें। अभावमें गाँजा और तम्बाकूके चिलममें रहे गुलकी निर्धूम राख बनाकर मिला लें। बादमें सोहागेका फूला १ तोला और पारे-गन्धककी कज्जली ६ माशे मिला, अच्छी प्रकार मर्दन कर लेवें।

(श्री० प० गोवर्द्धनजी छांगाणी)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें ३-४ बार नागरवेलके पानके साथ सचाबर कर धीरे-धीरे निगलते रहें।

उपयोग—यह रस खाँसी और श्वास रोगका शमन करनेमें अच्छा उपयोगी है। क्योंकि जमे हुए कफको बाहर निकाल देता है। सूखी और गीली, दोनों प्रकारकी खाँसियोंमें अच्छा उपयोगी है। इसका उपयोग श्रीधन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालयके धर्मार्थ औषधालय, नागपुर, मे अनेक वर्षोंसे होता है।

यह प्रयोग हमें एक सन्यासी महाराजसे मिला था। उनके हम आभारी हैं इसलिये कि, यह प्रयोग दीनदुखियोंके लिये महोपकारी सिद्ध हुआ है।

(१६२) वातेभ केसरी रस।

विधि—शुद्ध सोमल, कालीमिर्च, लौंग, शुद्ध वत्सनाग, छुहारेकी गुठली, जायफल और करीरकी कोंपलें, १-१ तोला, अफीम और मिश्री २-२ तोले लें। सबको यथाविधि मिला बड़के दूधमें मर्दनकर सरसोंके बराबर गोलियाँ बनालें। (सि० भै० म०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार देवें।

अनुपान और उपयोग—इस रसको श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) में मिश्रीके साथ देनेसे तत्काल लाभ प्रतीत होता है। श्वास, कास और कफप्रधान सन्निपातमें शहदके साथ और मरणासन्न बेहोशीकी अवस्थामें १-१ रत्ती सफेद कत्था और अकेलकरेके साथ देनेसे सत्वर कफप्रकोपका शमन होकर बेहोशी और त्रिदोष निश्चयपूर्वक दूर होते हैं, एवं रोगीकी रुकी हुई जबान खुल जाती है। हिचकीमें मूलीके बीजके साथ, अतिसारमें छोटी हरड, सौंफ और जीरेके साथ, रक्तप्रदरमें शहद या घीके साथ, शिरदर्दमें नकछीकनीके साथ, नस्य रूपसे अफारामें अदरखके रसके साथ सेवन और नाभिपर मूषककी मेंगनीका लेप करनेकेलिये, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि विषमज्वरोंमें गुडके साथ, पित्तज्वरमें शक्करके साथ, नपुंसकतामें दूधकी मलाईके साथ, सुजाकमें गुलाबके गुलकन्द या शक्करके शर्बतके साथ, तथा वाजीकरणके लिये जायफल और कस्तूरीके साथ देनेसे यह रसायन अच्छा चमत्कार दिखाता है। हमने इसका उपयोग सन्निपात, शीतज्वर आदि रोगोंपर अनेक बार किया है। और यह फलप्रद प्रतीत हुआ है। (श्री प० गोवर्द्धनजी शर्मा छांगाणी)

[१६३] अर्द्धाङ्गवातारि रस।

विधि—पारा २० तोले और ताम्रभस्म ४ तोलेको जम्भीरी नीबूके रसमें १ दिन खरल करें। सूख जानेपर शुद्ध गन्धक २० तोले मिला कज्जलीकर नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् गोला बांधकर सुखा लें। बादमें हांडी या सरावमें संपुट कर ३ कपडमिट्टी करें। तत्पश्चात् जमीनमें खड्डाके भीतर संपुट रख उसपर ४ या ६ अंगुल मिट्टी दबा दें। फिर खड्डेमें २-३ गोबरीकी अग्नि जलावें। १२ घण्टेतक बराबर १-१ गोबरी डालते जायें। स्वांग शीतल होनेपर संपुट खोल औषधि निकाल त्रिकटुके क्वाथकी ३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (र० र०)

वक्तव्य—इस रसका पाक योग्य न हुआ हो, गंधक शेष रह गया हो, तो पुन

संपुट करके कपोतपुट देना चाहिये। सामान्यतः गोलेका वजन लगभग २८ तोले रहना चाहिये।

मात्रा—१ से २ रत्ती त्रिकटुके चूर्ण और शहदके साथ देवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे अर्द्धाङ्गवात तथा एकांगवात दूर होते हैं। अर्द्धाङ्गवातमें जो थोड़े-थोड़े दिनके पश्चात् बार-बार कम्प (झटका) आता रहता है वह भी इसके सेवनसे शमन हो जाता है।

यह रसायन उष्ण, दीपन, पाचन, कफहर, विषनाशक, मांसपेशियोंके लिये बल्य और रक्त वाहिनियोंमें रहे हुये दोषका संशोधन करनेवाला हैं। अतः यह कफप्रधान प्रकृतिवाले, मेद बढ़े हुये मनुष्य, अत्यधिक चावल सेवन करनेवाले और अति शीतल जलपान करनेवालेके लिये अमृतके समान उपकारक है।

अर्धाङ्गवातमें एकांगवीर और अर्धाङ्गवातारि, ये २ रस विशेष व्यवहृत होते हैं। वातप्रकृतिवाले, उपदंश विषसे पीड़ित और शराबीके लिये एकांगवीरका प्रयोग अधिक होता है। एवं पित्तप्रकृतिवाले, निर्बल हृदय और अधिक मेदवाले तथा जिनके रक्तवाहिनियोंमें आम या कफका संग्रह हो, उनके लिये अर्धाङ्गवातारि हितावह है।

यह रसायन मंदाग्नि और अधिक मेदवालोंके लिये उपयोगी होनेसे अनुपानमें त्रिकटु और शहदकी योजना की है एवं आम-मेद जल जानेके पश्चात वातनाड़ियोंके बलको वृद्धिके लिये महारास्नादि क्वाथ दशमूल क्वाथ (गिलोय, एरंडमूल, रास्ना, सोंठ और देवदारु मिलाकर) या देवदार्व्यादि क्वाथ अनुपानरूपसे दिया जाता है।

यदि रोगीको पहले फिरंग रोग हो गया हो तो मल्लसिंदूर नं० २ अथवा चोपचिन्यादि चूर्ण इस रसायनके साथ देते रहना चाहिये।

यह रसायन हृदयपेशी और रक्तवाहिनियोंकी दीवारोंको बल देता है और पचनक्रिया सुधारता है। जिससे कच्चा रस जो रक्तमें प्रवेशित होकर रक्तवाहिनियों के मार्गका रोधकरता था उसकी उत्पति या प्रवेश बन्द हो जाता है। एवं विषघ्न और कीटाणुनाशक गुणसे हेतुसे रक्तमें रहे हुये कीटाणु और विषका नाशहोकर रक्तप्रसादन होजाता है। फिर आक्षेप या कम्पकी उत्पत्ति नहीं होती; कैशिकाओंके टूटने की आदत दूर होजाती है तथा रक्तवाहिनियां और मांसपेशियोंके बलकी वृद्धि होती है और पक्षाघात दूर होजाता है।

पक्षाघात रोग नया होनेपर लाभ थोड़े ही दिनोंमें होजाता है। यदि ८-१० मास हो गया हो और केन्द्रस्थान मृत न हुआ हो, तो लाभ पहुंच सकता है; किन्तु समय लगता है। ऐसे जीर्ण रोगवालेको मात्रा कम देनी चाहिये। कारण, उनकी

रोग निरोधक शक्ति अति कमजोर होजाती हैं । अनुपान-महारास्नादि क्वाथ ।

अर्धाङ्गवातके समान मुखमण्डलका पक्षाघात, (अर्दित),हाथपैर या अगुलियोंका पक्षाघात, गृध्रसी, कम्पवात, आक्षेप (बहिर्याम,अन्तरायामादि) वात, इन सबपर हितकारक है । जिस वातरोगमें पीडित स्थानकी चेतनाका लोप हो गया हो,उसपर, य था लाभ नहीं पहुच सकता ।

सूचना—(१) इस रसायनमें ताम्रकी प्रधानता है । अत इस औषधिके साथ दूधका सेवन नही करना चाहियें । जिन रोगियोंको तक्र अनुकूल हो, उनको तक्र देनेसे यह रसायन विशेष लाभ पहुँचाता हैं ।

(२) चायका व्यसन हो तो अर्धांगवातारि रसलेनेके१घण्टे पहले या २ घण्टेबाद देवें । उसमें दूधभी कम मिलावें । शराबका व्यसन हो तो छुडा देना चाहियें ।

(३)वृक्कदूषित हों तो यह रस नही देना चाहिये ।

(४) मात्रा, शक्तिका विचार करके कम देनी चाहिये । मात्रा अधिक होनेपर प्रतिफलित क्रिया होकर वातवाहिनिया और वैहिकाए टूट जाती हैं ।

(१६४) अचिन्त्यशक्ति रस ।

विधि—शुद्ध सोमल, शुद्ध हरताल और शुद्ध हिंगुल १–१ तोला मिला करेलेके १॥ सेर रसमें खरलकर सरसोंके बराबर गोलियाँ बना लें । करेलेका रस थोडा-थोडा मिलाकर १॥ सेर पचन कराना चाहियें ।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार बलाबल देखकर देवें ।

अनुपान और उपयोग—इस रसको श्वसनक सन्निपात (Pueumonia) फुफ्फुस शोथ, श्वास, कास, कफज्वर और सन्निपात आदिमें शक्करके साथ देनेमे सत्वर चमत्कारिक लाभ दिखाता है । भोजनमें केवल दूध ही दें, अन्य भोजन नहीं देना चाहियें । रोगका वेग शान्त होनेपर थोडे दिनो तक प्रात साय शृङ्ग भस्म और अभ्रक भस्म १–१ रत्ती मिला, घृत शक्कर या केवल घृतके साथ चटाना चाहियें । श्वसनक सन्निपातके समान यह रसायन विषमज्वरोंमें अच्छा लाभ पहुँचाता हैं । सतत, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक इन सबपर सत्वर भाव पडता हैं । पालीके ज्वर एक दिनमें ही ३ समय औषध सेवन करनेपर बहुधा रुक जाते हैं । ज्वर रुक जानेपर भी ८–६ दिनतक इस रसका सेवन करते रहना चाहियें। अनुभव करनेपर यह रस वस्तुत अचिन्त्य शक्तिशाली ही सिद्ध आ है । यह रस हमें जुनागढके स्वर्गी य यतीजी महाराजके शिष्य प॰ नारायणदत्तजी ज्योतिर्विद् कलकत्ता निवासीसे प्राप्त हुआ हैं । हम उनके नितान्त कृतज्ञ हैं ।

(श्री प० गोवर्द्धनजी छांगाणी भिषक्केसरी)

(१६५) क्षुद्‌बोधक रस ।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, सोंठ, कालीमिर्च; पीपल, सज्जीखार, जवाखार, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चित्रकमूल, चव्य, पाँचों नमक, डाँसरिया (अभावमें खट्टे बेर), अनारदाना, लोह भस्म, भीससेनी कपूर, सब समभाग लेवें । पहिले पारा-गन्धककी कज्जली करके लोह भस्म मिलावें । पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिला अम्लबेंतके कषाय, अदरखके रस, नींबूके रस, और अजवायनके क्वाथकी क्रमशः ३-३ भावना देकर चनेके समान गोलियां बना लेवें ।

(श्री पं० गोवर्द्धनजी छांगाणी भिषक्केसरी)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ से ३ वार जलके साथ दें।

उपयोग—इस रसका उपयोग किसी भी रोगजनित अग्निमांद्यपर अच्छा होता है । भूख जल्दी खुल जाती हैं, ऐसा हमारा दीर्घ कालसे अनुभव है । वातज और कफज अग्निमांद्य, बद्धकोष्ठ, अरुची, उदरशूल और अपचन आदि विकार इसके सेवनसे दूर होजाते हैं तथा मुखमण्डलपर लाली और स्फूर्ति आ जातीं है ।

इस रसका उपयोग आमाशयके रसस्रावमें लवणाम्लकी न्यूनतासे उत्पन्न अग्निमांद्यपर होता है, अर्थात वातज और कफज विकारपर यह प्रयुक्त होता है । वातज विकारमें मलावरोध, कभी अनाजका अपचन, कभी पचन न होना आदि लक्षण । कफज विकारमें आमोत्पत्ति, उदरमें भारीपन बना रहना, मुंहमें मीठापन वना रहना जिह्वा मललिप्त रहना, उदरशुल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । चाहे यह अग्निमाद्य किसीभी रोगमें उत्पन्न हुआ है कितनेही रोगियोंमें लवणाम्लस्राव अधिक होता है उसे भी अग्निमांद्य हो जाता है । किन्तु उसे पैत्तिक अग्निमांद्य कहा है । पैत्तिक अग्निमांद्यमें विदग्ध अजीर्णके लक्षण-छातीमें जलन, तृषाधिक्य, खट्टी डकार, स्वेद आदि होते हैं । उनपर इस रसका उपयोग नहीं होता ।

तमक श्वाससे पीड़ित रोगी जो गरम-गरम चाय, गरम-गरम भोजन आदिका सेवन अधिकांशमें करते रहते हैं । उनकी पचन क्रिया विल्कुल मन्द होजाती हैं । वहुधा आयाशयके रसस्रावमे लवणाम्लका अभाव होजाता है । जिनसे उनको तमक श्वास सर्वदा संताप देता रहता है । ऐसे रोगियोको गरम पेय आदि छुड़ाकर इस रसका सेवन कराया जाय तो थोड़ेही दिनोंमें पचनक्रिया सुधर जाती हैं ।

(१६६) प्रमेहगजकेसरी रस ।

विधि—लोहभस्म, नागभस्म, वङ्गभस्म तीनों १-१ तोला; अभ्रकभस्म ४ तोले, शिलाजीत ५ तोले और खखसाके फूलोंकी केसर ६ तोले लें । सबको मिला नीवूके रसमें ७ दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें । (वै० सा० सं०)

और पाण्डुता आदि विकारमें इसका उत्तम उपयोग होता है । ग्रहणीके रोगमें एक प्रकारकी पाण्डुता आती है, उसे यह दूर करता है ।

अश्मरीसे मूत्र मार्गमें निर्बलता आजाने पर अश्मरीके सूक्ष्म-सूक्ष्म कण किसी किसी स्थान में रुक जाते हैं । फिर भयङ्कर वेदना होती है पेशाब अति कष्टसेहोता है, क्वचित् उसमें अश्मरीके कण निकलते हैं, तथा मूत्रगेंदला होजाता है । इसपर मेहान्तक रसका उत्तम उपयोग होता है । अनुपान गिलोयका स्वरस या आलमखाना हिम देवें ।

कामलाकी उत्पत्ति पित्तस्त्रावमें रोध होने पर या यकृत्की विकृति होनेसे होती है । यदि यकृद्विकारसे मंद कामला हुआ हो, तो इस रसका उपयोग किया जाता है ।

तरुण स्त्रियोंको होनेवाले हलीमक(हारिद्रक पाण्डु) पर यह ओषधि अच्छा लाभ पहुँचाती है । इसके सेवन-कालमें गेहूँके बिना छने आटे (चोकर वाले मोटे आटे) की रोटी, गौका मक्खन या ताजा घी और शाक भाजीका अधिक उपयोग करना चाहिये ।

पाण्डुरोगके पश्चात् आये हुए शोफ, वृक्कविकारसे उत्पन्न शोफ, हृद्रोगसे उत्पन्न शोफ आदि सर्वाङ्ग शोथदूर होने पर आई हुई अशक्तिमें पुन शोथ न आनेके लिए इस रसका उत्कृष्ट उपयोग होता है

उर क्षतके पश्चात् होनेवाले क्षयरोग पर इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है । उर.क्षतमें कासके साथ रक्त गिरने या अन्य प्रकारके क्षयमें कासके साथ रक्त गिरनेपर यह रस लाभदायक है । इस रसकेसाथ अनुपानरूपसे वासा स्वरस और शहद या वासावलेह मिलानेपर सत्वर लाभ होता है ।

इस रस में रहे हुए अभ्र आदि भस्मोंके संयोगसे धातुपोषण क्रम व्यवस्थित होता है, मूत्रमें जानेवाले शर्कराकी मात्रा कम होजाती है । मूत्रपरीक्षा या रक्तपरीक्षा द्वारा वारम्वार निर्णय करते रहना चहिये । (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(१६८) सूतिकाभरण रस।

विधि—सुवर्ण भस्म, रौप्य, भस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और कुटकी, इन १३ ओषधियोंको समभाग लें । फिर यथाविधि मिलाकर आकके दूधमें खरल करें । पश्चात् चित्रकमूलके क्वाथ और पुनर्नवाके रसकी १-१ भावना देकर गोली बनावें । सूखनेपर सराव संपुटकर दृढ कपडमिट्टी करें । फिर भूधरयन्त्रमें रखकर अग्नि देवें । स्वाग शीतल होनेपर खरल करलें । (र० यो० सा०)

मात्रा——$\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग——यह रस सब प्रकार का रोग, विशेषतः धनुर्वात और त्रिदोषज व्याधियोंका नाश करता है।

सूतिका ज्वरका कारण सूतिका विष है। प्रसवके समयमें आवश्यक स्वच्छता न रखने या मलिन वस्त्र या अन्य मलिन वस्तु अथवा मूखे दाईके गंदे हाथके संपर्क होनेपर बाहरका सेन्द्रिय विष योनिमार्गमें प्रवेश कर जाता है। एवं प्रसव-कालकी वेदना, प्रसवसमयमें योनिमुख या गर्भाशय मुखमें व्रण होजाना, अमरा (आंवल) पतनसे गर्भाशयकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ होजाना, शोथ और व्रणमें विषका प्रवेश होजाना आदि कारणोंमे दोषप्रकोप होता है। फिर उसका असर सर्वाङ्गमें होनेपर सूतिका ज्वर उपस्थित होताहै। इसमें ज्वरके सामान्य लक्षण तो होते ही हैं; साथ-साथ योनिस्त्रावमें दुर्गन्ध, गर्भाशय पर स्पर्श करनेपर वेदना, रक्तयुक्त या सफेद दुर्गन्ध युक्त स्त्राव होना आदि लक्षण होते हैं। इसपर सूतिकाभरण देना चाहिये तथा उत्तर वस्तिसे योनिमार्गका प्रक्षालन करना चाहिये। केवल योनिमार्ग ही नहीं गर्भाशयके मुखमें उत्तर-बस्ति-यन्त्रके नेत्रको प्रवेश करा गर्भाशयको भी साफ करना चाहिये। यह कार्य तज्ज्ञोंसे हीकराना चाहिये। कारण प्रसव वेदना, क्लेद-वहन और अस्त्रवहन से गर्भाशय अत्यन्त नाजुक बन जाताहै। अतः सब कार्य सम्हालपूर्वक करना चाहिये। पहिले शोधन बस्ति दें। फिर आवश्यकतापर तैलकी शमन बस्ति दें। इस तरह प्रयोग करनेपर सूतिका ज्वरके सेन्द्रिय विषका नाश होता है। फिर दोषविकृति दूर होनेसे ज्वर भी शमन होजाता है।

सूतिका विष और उससे उपन्न दोषप्रकोपका परिणा वातवाहिनियों और स्नायु, विशेषतः शरीरके बहिर्मार्गमें रहे हुए स्नायु प्रतान पर होकर धनुर्वातकी उत्पत्ति होजाती है। वातवहमण्डलमे सुषुम्णाके अग्रभाग और त्रिकास्थिके अंतर्भागसें रहे हुए जलमें दोषदुष्टी अधिक होती है; फिर प्रारम्भमें हनुग्रहकी उत्पत्ति होती है। यह धनुरायामके प्रथम और स्पष्ट लक्षणहैं। फिर सर्वाङ्गमें आक्षेप आने लगते हैं। झटकाके हेतुसे समस्त शरीर धनुपके समान मुड़ जाता है। देह भीतर मुड़ता है, तो उसे अंतरायाम और बहारकी ओर मुड़ता है तो उसे बाह्यायाम कहते हैं। धनुष्कम्प आदि शब्द लक्षण द्योतक हैं। इस तरह धनुर्वात सूतिकाको एवं अन्योंको भी होता है। दूसरों को होनेमें सूतिका सूति हेतु नहीं होता। विषका विपके समान चोट आदि कारणोंसे उत्पन्न आगन्तुक व्रणमें भी सेन्द्रय विषका प्रवेश होकर धनुर्वात होता है। दोनोंपर सूतिकाभरणका अच्छा उपयोग होता है।

कालकूट रस भी धनुर्वातमें उपयोगी है; परन्तु वह अति तीव्र है और सूतिकाभरण अति सौम्य है। यह सूतिकाभरण ज्वर होनेपर भी दिया जाता है। कालकूट ज्वर होनेपर नही दिया जाता। कालकूटसे हृदय और नाड़ीका वेग वढ़ जाता है। रक्तस्राव होनपर भी कालकूट नहीं देना चाहिये। यदि रक्तस्राव

होता है, तो सूतिकाभरण और सुवर्णमाक्षिक भस्मको मिलाकर देनेसे तत्काल उपयोग होता है।

सूतिका विषसे उत्पन्न सन्निपात ज्वरमें यह रसायन उत्तम कार्य करता है। सान्निपातिक अवस्थामें जो-जो स्थान-विकृति हो, उसमें यदि वेदना अधिक हो, तो उसपर सूतिकाभरणका अच्छा उपयोग होता है।

श्लैष्मिक सन्निपातमें उरःशूल लक्षण विशेष हो, या सूतिकाको श्लैष्मिक सन्निपात हुआ हो, तो इस रसका विशेष उपयोग होता है। हृदयमें शूल चलता हो, वह भी इससे शमन होता है। कुक्षिशूल और साथ-साथ किञ्चित् आक्षेप होनेपर यह अच्छा लाभ पहुँचाता है।

संक्षेपमें यह रस सूतिका-विषघ्न, आक्षेपहर, कीटाणुनाशक और ज्वरहर है। मस्तिष्क, वातवाहिनियाँ, सुषुम्णाके मूल और अग्रभागपर शामक प्रभाव पहुँचाता है। वातादि धातु और रस, रक्त, मांस, स्नायुकण्डरा आदि दूष्यो पर हितकर है। (औ० गु० ध० शा०)

(१६६) स्मृतिसागर रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, ताम्रभस्म, ये ५ औषधियाँ समभाग मिला बच और ब्राह्मी (जलनीम) के क्वाथकी २१-२१ भावना और मालकांगनीके तैलकी १ भावना देनेसे स्मृतिसागर तैयार होता है। यदि स्मृतिसागरको ब्राह्मीके क्वाथकी भावना देनेके पहले मालकांगनी के तैलकी भावना दीजाय, तो गोलियाँ बनानेमें सुविधा रहती है। कितने ही ग्रन्थकारोंने इस रसके पाठमें सुवर्णमाक्षिक भस्म भी मिलाई है। सुवर्णमाक्षिक के योगसे गुणमें वृद्धि होती है। (यो० र०)

मात्रा—आधसे १ रत्ती मक्खन या घीके साथ देवें।

उपयोग—यह रस अपस्मारपर अति उपयोगी है। यह सहस्रार और वातवाहिनियो पर शामक असर पहुँचाता है। विशेषत आज्ञावाही (चेष्टावाही) नाड़ियोंका क्षोभ होनेपर उत्तम कार्य करता है। महावातविध्वंसन, एकांगवीर और स्मृतिसागर, ये वातशामकत्रयी है। ये स्निग्धगुणभूयिष्ट रसायनोंमें गणना करने योग्य हैं।

स्मृतिसागरका उपयोग उन्मादमें अच्छा होता है। उन्मादविकार केवल मनोवृत्तिके विभ्रमसे उत्पन्न होता है। यह अल्प सत्व मनुष्यको होनेवाली मानसिक व्याधि है। अपस्मार केवल मानसिक व्याधि नही है। उन्माद कारण-भेद से नाना लक्षणात्मक और विभिन्न प्रकारका होता है। सर्व कारणोंके मूलमें क्रोधी

स्वभाव और असहन शीलतायुक्त मनोवृत्ति बहुधा मुख्य कारण है। कितनेही व्यक्तियोंमें स्वभाव ही ऐसा होता है कि, उनसे जरा भी कम-ज्यादा सहन नहीं होता। ऐसे मनुष्योंको यह विकार सहज होजाता है। इस तरह केवल मानसिक क्षोभसे इस व्याधिकी उत्पत्ति होती है। यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकारमें शारीरिक दोषोंकी विकृति होनसे मनपर परिणाम होकर उन्माद उत्पन्न होता है। स्त्रियोंके स्वभावमें सुकुमारता, गर्भावस्था और प्रसूतावस्था आदि कारणोंसे उन्मादकी उत्तम भूमिका तैयार होजाती है। फिर दोषप्रकोप होकर या मानसिक विकृति होकर उन्माद होजाता है। यह विकार स्त्रियोंको अधिक होता है।

गर्भाशयोन्माद (Hysteria) और भूतोन्माद तरुण युवतियोंको अधिक हात हैं। बड़ी आयुवाली स्त्रियोंको कम होते हैं। इनमें भी अतिशय उतावले स्वभाववाली, संकोचित मनकी, क्षुद्र कारणोंसे चिढनेवाली युवतियोंपर इस रोगका आक्रमण अधिक होता है। जिस भूतोन्मादमें अमर्त्य लक्षण अधिक हो ऐसे उन्मादमें स्मृतिसागर अधिक उपयोगी नहीं होता। पिशाच, ब्रह्म, सर्प, यक्ष आदि ग्रहपीड़ितोंके लक्षण शास्त्रमें दिये हैं; उनपर इस ओषधिकी अपेक्षा जटामांसी माहेश्वरी (सर्पगन्धा), खस आदि ओषधियाँ, जो मानस-शास्त्रने विधान की हैं, उनका उपयोग करना विशेष हितकारक माना जाता है।

गर्भाशयोन्मादमें ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। वह पित्तावशिष्ट लक्षणात्मक विकारमें अधिक उपयुक्त है। बार-बार चक्कर, नेत्रके समक्ष अन्धकार, घबराहट, दाह आदि लक्षण होकर वमन अधिक होती हो, तो ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। परन्तु ये लक्षण न हों; बिल्कुल अंग जड़ होना, किसी भी गड्ढे या जलमें गिरने सदृश भासना, अङ्गोंमें झनझनाहट, कण्ठमें घर-घर आवाज; घुरघुराहट, दाँत भिचना, दांत चबानेपर लाला निकलना, मुँहपर जड़ता, हाथ-पैरके तलोंमें प्रस्वेद आना, प्रस्वेदके स्थान पर खुजली चलना, मोटे धब्बे पड़ना, उबाक, मुँहमें जल छूटना, उदरमें जड़ता भासना, पहले अङ्ग जड़ और शीतल होकर उन्मादके झटके आना, प्रकृति स्थूल और कफभूयिष्ट होना, मासिकधर्ममें आर्त्तव बिल्कुल कम आना और उदरमें दर्द होना, उदरमें; ऐंठन, गर्भाशयके चारों ओर जड़ता, झनझनाहट और उबाक आकर वान्ति होना आदि लक्षण हों, तो ऐसे गर्भाशयोन्माद पर स्मृतिसागर केवल अमृत सदृश फलप्रद है। झटकेके पश्चात् सर्वाङ्गमें जड़ता अतिशय आती हो, यह विशेष लक्षण होना चाहिये।

उन्मादका करण क्रोध, शोक या भय, इनमेंसे कोई भी एक होनेपर ताप्यादि लोह हितकारक है। परन्तु इनके अतिरिक्त कारण होनेपर स्मृतिसागरका अच्छा उपयोग होता है। यह अफीमके व्यसनियोंके उन्मादपर भी अति उपयोगी है।

परन्तु गाँजा, भाँग और शराबके व्यसनियोंके उन्मादपर ताप्यादि लोह अत्युत्तम है।

छोटे बालकके बालग्रहमें स्मृतिसागर उपयुक्त औषधि है। बालग्रह स्वतन्त्र व्याधि नहीं है, परन्तु परतन्त्र लक्षण है। छोटे बालकके उदरमें कुछ विकृति होनेपर इस व्याधिकी उत्पत्ति होती है। एवं सहस्रार आदि स्थानोंमें विकार होनेपर भी इसका आक्रमण हो जाता है। उदर विकृतिसे उत्पन्न बालग्रह होने पर पहले उदर-शुद्धि-कारक औषधि देकर फिर शामक औषधि देनी चाहिये। स्कन्दग्रह, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना आदि बालग्रहोंमें दोष सहस्रार, सहस्रा- रावरण, सुषुम्णा और सुषुम्णाकदमें होता है। इस विकारमें स्वस्थता, बेहोशी या तन्द्रा, हाथ पैरोंमें बिल्कुल चलनका अभाव, मूँदे हुए नेत्र, बैचमें आक्षेप आनेपर चेष्टा होना और अन्य समयमें शून्यता आदि लक्षण प्रतीत होते है। इसपर स्मृतिसागर विशेष उपयोगी है।

पक्षाघातकी तीव्र अवस्था कम हो जानेपर पहलेकी अवस्थामें स्मृति-सागरका अति उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। इस विकारमें शीतल स्थानमें शयन, गीले वस्त्र पहनना, ठण्डे पत्थरोंपर देर तक बैठे रहना, शीत लग जाना या शीतप्राय अन्य कारण होते हैं। अन्य प्रकारके कारणसे उत्पन्न पक्षा-घातकी जीर्णावस्थामें इसका उत्तम उपयोग होता है। पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें इसे स्वतन्त्र रूपसे या एकाङ्गवीर और स्मृतिसागर कुछ दिनोंतक एक ही दिनमें पृथक् पृथक् समयपर देते रहनेसे अति उत्तम परिणाम आते हैं। शरीरमें जड़ता, झनझनाहट, शोथ, बोलनेमें स्पष्ट उच्चारण न होना, जीभ रुकना, मुँहसे पानी छूटना, जिस भागमें विकार हुआ हो वह जड़ भासना आदि लक्षण होनेपर स्मृतिसागर अति उपयोगी औषध है।

स्त्रियोंको क्वचित् सगर्भावस्थामें तीव्र यकृत् सकोच और गर्भवात, ये दो अति भयकर विकार हो जाते हैं। तीव्र यकृत् सकोच होनेपर नेत्र पीले हो जाते हैं, सर्वाङ्ग पीला हो जाता है, दस्त सफेद होता है, ज्वर वेगपूर्वक आता है, वमन होती है, और फिर ४-५ दिनोंके बाद आक्षेप आने लगते हैं। इनमें पित्तभूयिष्ठ लक्षण होनेपर ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। परन्तु जड़ता, मदता, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, उबाक, वान्ति आदि लक्षण होनेपर स्मृति-सागरका उपयोग होता है। गर्भवातके विकारमें पहलेसे जड़ता आदि लक्षण होनेपर फिर बड़े बड़े झटके आने, जड़ता, उबाक, तन्द्रा, अतिशय शिथिलता आदि लक्षण मुख्य हों, तो स्मृतिसागरका उपयोग कराना चाहिये। बेहोशी होने पर भी यह अति लाभदायक है।

सन्यास अति भयङ्कर व्याधि है। इस रोगके अनेक कारणोंमें एक कारण मन,क्षोभ है। इस हेतुसे रोगी अति बेचैन, थका हुआ, असावधान पड़ा रहना

है। हाथ-पैर नहीं चलते; नेत्र भी बन्द रहते हैं। उस स्थितिमें रोगी पड़ा-पड़ा घोरता है; किसीने आवाज़ दी, तो भी प्रत्युत्तर नहीं देता; बिल्कुल बेहोश भासता है। केवल सुई चुभानेपर किञ्चित् मात्र वेदनाका भान होता है; फिर कुछ नहीं। इस रोगमें कितनेही रोगी जड़, बेहोश देखे हैं; और कितनोंहीके मस्तिष्कमें रक्तके दबावकी वृद्धि होकर नेत्र लाल, भयङ्कर शिरदर्द और गर्दन चलाते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इनमें नेत्रके लालीयुक्त लक्षणोंवाले रोगीपर इस स्मृतिसागरका उपयोग नहीं होता। परन्तु जड़ता अधिक होनेसे निश्चेष्टता, शीतलता, लालास्राव आदि लक्षणोंमें इस रसका उत्तम उपयोग होता है।

अपतानक आदि जिन विकारोंमें झटके आते हैं; उनमें सुषुम्णा और मस्तिष्कावरणकी विकृति होती है। इनमें श्लेष्म-संसर्ग और जड़ता आदि लक्षण अधिक हों, तो स्मृतिसागर अत्युत्तम औषध है।

आक्षेपक वातमें झटके कम होकर फिर सर्वाङ्गमें जड़ता, गरदन शून्य-सी भासना, सर्वाङ्गमें झनझनाहट, मुँहमें बेस्वादुपन, उबाक, नेत्रोंमें धुन्ध आजाना आदि लक्षण प्रबल होनेपर स्मृतिसागरका उत्तम उपयोग होता है।

यदि आक्षेपक वातमें कमर और मेरुदण्डमें भयंकर पीड़ा, निद्रानाश, ज्वर १०२-१०३ डिग्री रहना, अहोरात्र झटके आते रहना, हाथ-पैरोंमें शीतलता, शरीरमें जड़ता और झनझनाहट आना, आदि कफवातप्रधान लक्षण हों, तो स्मृतिसागर और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर तुलसीके रस और शहदके साथ दिनमें ४ बार देते रहनेसे आक्षेप सत्वर शमन हो जाते हैं।

ग्रन्थिक, आन्त्रिक या आक्षेपक सन्निपात या ऐसे ही भयंकर सान्निपातिक ज्वरोंमें अकस्मात् स्मृतिभ्रंश—स्मृतिनाश होकर कोई अवयव निश्चेष्ट हो जाना, कार्य करनेमें असमर्थ हो जाना आदि लक्षण उपस्थित हुए हों, तो सान्निपातिक विकारका परिणाम मानस, सहस्रार, नाड़ीचक्र या आज्ञावाहिनियोंपर हुआ है, ऐसा मानना चाहिये। ऐसे रोगको शमनकर मूल विषको नष्ट करनेमें यह अति उपयोगी है।

सन्निपात मूल कारण न होनेपर भी अकस्मात् किसीका स्मृतिनाश हो जाता है। वृद्धावस्थामें जरावस्थाके हेतुसे स्मृतिनाश होता है। वृद्धावस्थामें स्मृतिनाश मस्तिष्कको योग्य परिपोषण न मिलनेके हेतुसे होता है। वातवाहिनियोंकी क्रिया उत्तम प्रकारसे नहीं होती। कफदोषका भी अधिक प्रादुर्भाव हो जाता है। ऐसे स्मृतिभ्रंशमें आयुर्वेदीय ओषधियोंमें महावातविध्वंसन और स्मृतिसागर उत्तम कार्य करते हैं। झटके, शूल, तीव्र वेदना और मूर्च्छा आदि लक्षण होनेपर महावातविध्वंसन देना चाहिये। परन्तु स्मृतिनाश और स्मृतिभ्रंशसे मनुष्य शून्य-सा जड़ हो गया हो, तो स्मृतिसागर विशेष उपयोगी है।

संक्षेपमें इस रसकी मुख्य औषधमें तीक्ष्ण, उष्ण, और व्यवायी गुण होनेपर

भी उसे योगवाही बनाई है। इन निरिन्द्रिय द्रव्योंपर शुद्धि भस्मकरण करनेके हेतुसे गुण-वीर्यका उत्कर्ष हुआ है। इस द्रव्यगुणोत्कर्षकी वृद्धिकरानेके लिये ब्राह्मी आदि सेन्द्रिय और सचेतन द्रव्योंकी भावना दी है।

ब्राह्मी, वच और मालकांगनी, तीनों शीतवीर्य, शामक, वातघ्न और आक्षेपहर हैं। इन ओषधियोंकी भावनाके हेतुसे स्मृतिसागरमें प्रभाव-द्रव्योंका शनैः शनैः सम्मिश्रण होजाता है।

पारद आदि औषध, उष्ण, व्यवायी और सूक्ष्म स्रोतोगामी होनेसे उनके साथ मिश्र हुए ब्राह्मी आदि ओषधियोंके शामकत्व आदि गुणोंका गुणपरिपोष होता है। परिणाममें स्मृतिसागर उत्कृष्ट वीर्यवान् बन गया है। ब्राह्मीमें अति मद स्थिर गुण होनेसे उसके शामक गुणका सत्वर शोषण नहीं होता। अतः शरीरमें उसकी शामकता फैलनेमें और भी समय लग जाता है। परन्तु पारद आदिका संयोग होनेसे ब्राह्मी आदिके गुणोंका उत्कर्ष होता है, और वे शरीरमें सर्वत्र फैल जाते हैं। द्रव्य-संयोग और संस्कारसे द्रव्यान्तरोत्पत्ति होती है, द्रव्य द्रव्यान्तर प्राप्ति होनेपर भी मूल स्वभावका त्याग नहीं करता। योगवाही द्रव्योंका यह नियम है कि, अपने गुणो का त्याग न करते हुए अन्य मिश्रित ओषधिके गुणोंकी वृद्धि करा देना। इस दृष्टिसे यह कफसंसर्गयुक्त रोगोंपर उत्तम कार्य करता है।

यह रस वात और कफ दोष, तथा रस, रक्त और मांस, इन दूष्योंपर कार्य करता है। इसका कार्य मनोदेश, सहस्रार, सुषुम्णा, आज्ञावाहिनियाँ और स्नायुओं पर शामक और आक्षेपघ्न होना है। (औ० गु० ध० शा०)

स्त्रियोंके मासिकधर्मकी निवृत्ति लगभग ५० वर्षकी आयुमें होती है। उस समय किसीको शिरदर्द, कमरमें जडता और किसीको मानसिक आघात पहुँचकर उन्मादके लक्षण प्रकाशित होते हैं। उस उन्मादपर स्मृतिसार और महावातविध्वंसन रस मिला जटामांसीके चूर्ण और घीके साथ दिनमें ३ बार देने तथा भोजन करलेने पर सारस्वतारिष्ट पिलाते रहनेपर रोग दूर हो जाता है।

(१७०) कुष्ठकुठार रस।

विधि—पारद भस्म (रससिंदूर), शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, ताम्र भस्म, गूगल, हरड, बहेडा, आंवला, शुद्ध कुचिला चित्रकमूल और शिलाजतु, इन ११ ओषधियोंको ४-४ तोले तथा करंज बीज और अभ्रक भस्मको १६-१६ तोला लेवें। सबको यथाविधि मिलावें। शिलाजतु और गूगलको जलमें मिश्रित करके मिलावें। अच्छी तरह खरल होकर शुष्क और एकजीव हो जाय, तब घी मिलावें। फिर शहद मिलाकर अमृतबानमें भर देवें। (र० यो० सा०)

मात्रा—२ रत्तीसे १ माशेतक दिनमें दो बार देवें। पथ्यमें शालिचावल,

दुग्ध, शहद, मिश्री और गुड़ देवें । दाह होनेपर पातालगरुड़ीकी जड़, ओडहलके फूल और धनियाको समभाग मिलाकर सबके समान मिश्री मिला लगभग १-१ तोला सेवन करें । अथवा नागर बेलकी जड़का चूर्ण घी शहदमें मिलाकर चाटें ।

उपयोग—गलत्कुष्ठके जिन रोगियोंके कान, नाक, अँगुलियाँ आदि गल गये हों; बिल्कुल देह सड़ गया हो; देहमें से भयंकर दुर्गन्ध निकलती रहती हो; मक्खियाँ भिन भनाती हों, उनको यह रस जीवन दान देता है, और देहको सुन्दर स्वरूपवान बना देता है।

यह औषधि गलत्कुष्ठावस्थामें अति उपयोगी है। इसमें सम्मिश्रित अभ्रका धर्म जो धातु परिपोषण क्रम व्यवस्थित करनेका है, वह अति स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है । कुष्ठमें त्वचा, रक्त, माँस और रक्तवारि आदिमें क्रमसे विकृति होती जाती है । गलत्कुष्ठ होनेपर त्वचा बिल्कुल शुष्क सड़ी हुई भासती है । इसमें ऊपरका भाग, विशेषतः अँगुलियोंके पर्व गलने लग जाते है । त्वचाकी संवेदना कम होनेपर या बिल्कुल नष्टप्राय होनेपर हाथ या पैरके पर्व गिर जाते हैं; पर्व गिरने पर भी वेदना मर्यादामें ही होती हैं । जिस स्थान परसे पर्व टूट जाते हैं, उस स्थानपर मांसयुक्त भाग खुला होजाता है फिर उस स्थानसे क्लेदयुक्त दुर्गन्धमय रुसीका स्राव होता है । ये सारा स्थान बिल्कुल पककर ऊँचा उठ जाता है। तना होनेपर भी जलन या पीड़ा अधिक नहीं होती । जड़ता, हाथपैर उठानेमें अशक्ति और आलस्य इतना बढ़ जाता है कि, पड़े होतो पड़े ही रहनेकी इच्छा होना, अति निद्रा, त्वचाका रंग बदल जाना, सर्वाङ्गमें अति रूक्षता, त्वचा फूली हुई और फटी हुई होजाना, स्पर्शका बोध न होना, व्रण होनेपर उसमेंसे दुर्गन्धमय स्राव, व्रण भाग जल्दी न भरना, अति प्रस्वेद, प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना आदि लक्षणयुक्त अवस्थामें इसका सेवन अति हितकर है भोजनमें मधुर रसका सेवन अधिक करना चाहिये । इस रसका कार्य संज्ञावाहिनियोंको पुनः संज्ञाकी प्राप्ति कराना है इस हेतुसे कितनेही रोगियों को दाह होता है । (औ० गु० ध० शा०)

(१७१) पञ्चामृत रस ।

विधि—पारद भस्म (रस सिंदूर), अभ्रक भस्म, लोहभस्म, शुद्ध शिलाजतु, शुद्ध बच्छनाग, गिलोय और त्रिफलाके क्वाथसे शुद्ध किया हुआ गूगल और ताम्र भस्व, इन ७ औषधियोंको समभाग मिला शहदके साथ खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें, या चूर्ण ही रहने दें । गोलियाँ बनानेमें कुछ पारद पृथक् हो जाता है । (र० र०)

वक्तव्य—रस रत्नाकर आदि कतिपय ग्रन्थोके टीकाकारोंने पारद भस्मके अभावमें तिनिधि स्वरूप 'ताम्रभस', लेनेको और किसी किसी टीकाकारने ताम्र

भस्मका पारद भस्मके समान मिलानेको लिखा है।

पारदमें कीटाणुनाशक और रसायन गुणप्रधान है और ताम्रमें प्लीहा-यकृत शक्तिवर्द्धक गुण मुख्य है। अत हमने इन गुणोंकी आवश्यकता समझकर उक्त दोनों ही भस्मोंको मिलाना श्रेष्ठ समझा है।

मात्रा—१ से २ गोली वासावलेह, बकरीके दूध, शहद-पीपल, कालीमिर्च और घी अथवा जलके साथ दें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे राजयक्ष्माके ज्वर आदि विविध लक्षणोंका निवारण होता है। इसका उपयोग कीटाणुजन्य क्षयमें ज्वर-वेग तीव्र होनेपर किया जाता है। परन्तु क्षयकी प्रथमावस्थामें जब ज्वर अधिक न हो, तब इस तीव्र रसका प्रयोग न किया जाय तो अच्छा है। प्रथमावस्थामें अभ्रक भस्म, शृङ्गभस्म, प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वका मिश्रण देना विशेष हितावह माना जायगा। जब द्वितीय या तृतीयावस्थामें ज्वरका वेग तीव्र होजाता है, तब आवश्यकतापर यह रस देते रहें। क्षयमें रस, रक्त आदि धातु क्षीण होकर आगेकी मांस आदि धातुओंकी क्षीणता होने लगती है, बल मांसविहीनत्व आने लगता है, रोगी ज्वरसे ग्रस्त-सा रहता है, तथा कफ अधिक मात्रामें निकलता है। तब इसका सेवन अति हितकर है।

शुक्रपात होनेकी आदत होजाने या अति व्यवायसे शुक्र धातुका क्षय होनेपर अन्य धातु भी क्षीण होकर क्षय रोग होजाता है। एवं स्त्रियोंको दीर्घकाल तक प्रदर आदि विकार दृढ होजाने पर अन्य धातु क्षीण होकर क्षय रोगकी सम्प्राप्ति हो जाती है। इन दोनों प्रकारके क्षयपर इस पञ्चामृत रसका उपयोग हितकारक है।

पञ्चामृतका उपयोग प्रमेहमें उत्तम होता है। मूत्रोत्सर्गकी शङ्का बनी रहना, बार-बार अति पेशाब होना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होनेसे निद्रानाश, कृशता और क्षीणता आजाना, मुँहमें शुष्कता, सर्वाङ्गमें चिपचिपा प्रस्वेद आना, सन्धिस्थानोंके प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना या पक जाने सदृश भासना आदि लक्षण होनेपर इसका प्रयोग करें।

संक्षेपमें यह रस धातुओंकी क्षीणता कम करता है। एवं यह धातुओंकी साम्यावस्था स्थापित-करनेवाला, ज्वरघ्न, क्षयघ्न, बल्य, रसायन और प्रमेह आदिका पचन करनेवाला है।

(औ० गु० ध० शा०)

(१७२) कामधेनु रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, इन ८ ओषधियोंको समभाग मिला त्रिफलाके क्वाथमें एक दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१ से २ रत्ती शहद-पीपलके साथ देवें। (र० यो० सा०)

उपयोग—यह रस धातुक्षय, पाण्डुरोग, जीर्ण विषमज्वर, प्रमेह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, सन्निपात, घोर वातव्याधि, शूलगुल्म, कृमि, अर्श, ग्रहणी आदि रोगोंको नष्ट करता है।

यह रस बल्य, रसायन, पचनक्रिया-वर्द्धक तथा धातु-परिपोषणक्रमको एक विवक्षित प्रकारसे सहायक है। रससे लेकर शुक्र पर्यन्त सर्वधातु क्षीण होते जाना, इस अवस्थाको धातुक्षय कहते हैं। इसमें अन्न रससे बननेवाली रस धातु योग्य और सकस नहीं बनती। परिणाममें रक्त आदि; धातुएँ भी क्षीण होती जाती हैं। इस अवस्थामें पूर्व धातुमेंसे परधातुको आवश्यक द्रव्य परिपूर्ण मिलना चाहिये। एवं परधातुको चाहिये कि, पूर्व धातुमेंसे आवश्यक द्रव्य ले रूपान्तर करा अपने स्वरूपमें मिला लेवें।

इनमेंसे रस और रक्त धातुमें क्रिया सम्यक् न होनेपर रसक्षय और रक्तक्षय होता है। इन दोनोंपर कामधेनु अति उपयोगी है। इसके योगसे रसक्षयमें रसधातु बननेकी क्रिया सम्यक् होने लगती है। उदरमें अफारा, बड़े-बड़े जलके सदृश पतले सफेद दस्त, उदरमें जड़ता, रात्रि-दिवस उबाक, तृप्तिका भास होना, मुंह और जीभ पर चिपचिपापन आदि लक्षण हों, तो इसकी योजना करनी चाहिये।

रक्तक्षयमे रक्तमेंसे रक्तकण कम हो जाते हैं, फिर रक्त धातु कम होती है। रक्तकण कम होनेपर निस्तेजता बढ़ती है, तथा रक्त-धातु कम होनेपर ज्वर, दाह, तृषा, चक्कर, घबराहट, नाड़ियोंमें वेगपूर्वक स्पन्दन, बार-बार श्वास भर जाना जिह्वा शुष्क, फिक्की और स्वादरहित, चाहे उतने जल पीने पर भी तृप्ति न होना, यकृत् और प्लीहाकी किञ्चित् वृद्धि, त्वचा और सर्वाङ्गमें विवर्णता, विशेषतः कालापन आदि लक्षण होते हैं, उसपर इसकी योजना की जाती है। इस व्याधिके हेतु चिन्ता, शोक, भय, मनोव्याघात, अतिचिन्तन, अभ्यास या मानसिक श्रम अधिक होना आदि हों तो यह उत्तम लाभ पहुँचाता है। इस विकारमें ज्वर और अपचन ये लक्षण मुख्य होने चाहिये।

जीर्ण विषम ज्वरमे दोष दूष्य संयोग देकर विविध औषध-योजनाकी जाती है। संतत, सतत दोनों प्रकारके ज्वरोंकी तीव्रावस्थामें कामधेनुका उपयोग नहीं होता। परन्तु इनकी जीर्णावस्थामें ज्वरविष रस और रक्त धातुमें प्रवेशकर उनको क्षीण बनाते रहते हैं; उस अवस्थामें कामधेनु प्रयोजित होता है। सन्तत अर्थात् एकसा बना रहनेवाला ज्वर, इसके परिणाममें तीसरे या चौथे रोजसे इसके विषका रसधातु पर आक्रमण होता है। सर्वाङ्गमें जड़ता, विशेषतः उदरमें जड़ता, उबाक, मुखमें जल भर जाना, अंग गलना, विशेष ग्लानि, वमन, वमनमें मीठासा जल गिरना, अरुचि मलिन, दीन मुखमुद्रा आदि लक्षण होनेपर इसकी योजना करनी चाहिये।

जो सतत ज्वर अनेक मास तक आता रहता है, उसका असर रक्तधातु पर होता है। फिर दाह, निस्तेजता, बेचैनी, मनमें विविध विचार आकर मन शून्यसा

बन जाना, कडवी और खट्टी वमन, विभ्रम, शरीरपर पिटकाएँ होजाना, दाह, तृषा, कुछ-कुछ प्रलाप अर्थात् बड बड करते रहना, निस्तेजना, दीन वाणी, चिन्ताग्रस्त सा बन जाना आदि लक्षण होनेपर कामधेनु रसका उपयोग करना चाहिये।

बार बार अधिक मात्रामें पीले रंगका पेशाव होना, तृषा, सर्वाङ्गम दाह, अंगपर चिपचिपापन, चिपचिपा प्रस्वेद और बगल आदि स्थानोंमेंसे दुर्गन्ध निकलना आदि पित्तभूयिष्ठ प्रमेहोंमें कामधेनु रस जामुनके लेह या शिलाजतुके साथ देना चाहिये।

अधोग रक्तपित्त या रक्तार्श, दोनों विकारोंमें रक्तधातु क्षीण होकर दाह, दैन्यता, तृषा, भ्रम, घबराहट आदि लक्षण होनेपर कामधेनु रसकी योजना करनी चाहिये।

आमाशयकी अशक्तिसे आमाशय पित्तकी उत्पत्तिमें आवश्यक रक्तकी पूर्ति न होनेसे पित्तस्राव सम्यक् और सबगुणयुक्त नहीं होता। इस हेतुसे पित्तके कितनेही गुण बढकर अम्लपित्त व्याधि हो जाती है। अन्नका विदाह, अन्नका पचन न होना, आमाशयमें अन्न दीर्घकालतक पडा रहना, फिर उस हेतुसे उदरमें भारीपन, मुँहमें बार-बार जल भर जाना, मुँहका बेस्वादुपन, घबराहट, बेचैनी, मनकी अस्थिरता, खाया हुआ अन्न कुछ समयमें जलमय, दुर्गन्धित और क्लेदयुक्त बनजाना और वान्ति होकर बाहर निकल जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे अम्लपित्तपर इस कामधेनु रसकी योजना करनी चाहिये। भोजनमें पथ्य हलका अन्न, फलरस आदि देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

(१७३) बालचन्द्र रस।

विधि—सुवर्ण भस्म (अभावमें सुवर्णके वर्क) १ तोला, सोनागेरु ३ तोला और मुक्तापिष्टी १२ तोले लें। फिर तीनोंको मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ रत्ती दिनमें २-४ वार मक्खन-मिश्री, गिलोय सत्व, अनार शर्बत, दाडिमावलेह या वासावलेहके साथ देवें।

उपयोग—यह रस राजयक्ष्मा रोगमें होनेवाले वान्ति, उबाक, अतिसार, अरुचि, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, पीनस, शुष्क कास, श्वास और रक्तपित्त आदि विकारोंको दूर करता है, तथा कृत्रिम विष और दूषीविषजनित दाह आदिको शमन करता है।

यह रस रक्तमें रहे हुए कीटाणु और विषका संहार करता है, मस्तिष्क और वातवाहिनियोंपर शामक असर पहुँचता है, हृदयको सबल बनाता है, तथा

आमाशय और अन्त्र आदि पचनेन्द्रिय संस्थामें सेन्द्रिय-विप-जनित विकृतिको नष्ट कर अतिसार, अरुचि, उबाक अदिको दूर करता है।

(१७४) योगेन्द्र रस।

विधि—रससिंदूर २ तोले; सुवर्ण भस्म, कान्त लोह भस्म, अभ्रक भस्म, मुक्तापिष्टी और वङ्गभस्म १-१ तोला लेवें। सबको यथाविधि मिला ३ दिन घीकुँवारके रसमे मर्दन कर गोला बनावे। फिर एरंडके पत्तोंमें लपेट कच्चे डोरेसे बाँध धान्यराशिमें तीन दिनतक दबादेवे। पश्चात् निकाल खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना छायामें सुखा लेवें। (भैं० र०)

मात्रा—१ से २ गोली रोगानुरूप अनुपान के साथ दें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे वात-पित्तज रोग—प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर, गुदरोग, उन्माद, मूर्च्छा, राजयक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रियोंकी कमज़ोरी, शूल और अम्लपित्त आदि समस्त रोग नष्ट होते है। त्रिफलाके स्वरस अथवा शक्कर या च्यवनप्राशावलेहके साथ सेवन करानेसे स्वस्थ मनुष्य कामदेवके सदृश तेजस्वी हो जाता है। निर्बलोंको एक-एक रत्ती गोदुग्धके साथ देवे। जीर्णवात, अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया आदि रोगोंमें सारस्वतारिष्ट या धमासा, ब्राह्मी और जटामांसीके क्वाथके साथ देना चाहिये।

यह रस आयुर्वेदिक औषधियोंमें एक उत्कृष्ट और वीर्यवान् वातशामक औषध है। यह विशेषतः हृदय, मस्तिष्क, वातवहानाड़ियाँ, मन और रक्त पर अपना प्रभाव दर्शाता है। परम्परागत पचनसंस्था और मूत्रसंस्थापर भी असर पहुँचाता है। इसके सेवनसे वातवहानाड़ियाँ सबल होती हैं; अतः जीर्ण वातविकारके साथ पित्तप्रकोपजन्य दाह, व्याकुलता, निद्रानाश, मुखपाक, अपचन आदि लक्षण हों, तब यह विशेष लाभदायक है। जीर्ण वातविकार, अपस्मार और उन्माद आदि रोगोंमें यह निर्भयतापूर्वक प्रयुक्त किया जाता है।

इस रसमें हृद्य गुण होनेसे हृदय बलवान बनता है और हृदयकी संकोच-विकास क्रिया नियमित होनेसे स्पदन संख्या कम हो जाती है। रक्तमें रहे विष और कीटाणुओंका नाश होकर रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे इस रस रोग शमनके साथ शारीरिक शक्तिकी भी वृद्धि होती जाती है।

इस रसके सेवनसे पचनेन्द्रिय सबल होनेपर मूत्रसंस्थाके प्रमेह आदि रोगका भी निवारण हो जाता है; शुक्र शुद्ध और गाढ़ा बनता है; कामोत्तेजता होती है और देह दिव्य और तेजस्वी बन जाती है। मूत्रसंस्थाके रोगोंपर इसे शिलाजीतके साथ देना चाहिये।

अपचनकी जीर्ण आदत अर्थात् कुछ थोड़ा-सा खानेपर उदरमें आफरा आ जाय, स्निग्ध, द्विदल या जड़ पदार्थ थोड़ासा खानेपर भी पचन न होना, भोजन कर लेनेपर उदरमें भारीपन आजाना, जैसे कोई वस्तु कुएँमें डालनेपर नीचे बैठ जाती है, उस तरह भोजन आमाशयमें जानेपर तलमें बैठ जाना, भोजन उदरमें जानेपर इच्छा दूर होजाना, मुँहमें पानी आना, अरुचि, अन्नरस सारा उदरमें होनेपर मन्द मन्द शूल चलना, भोजन दीर्घ कालतक जैसाका वैसा ही पड़ा रहना, किसी तरह २४ घंटेमें एकबार कर्त्तव्य पूरा करने या बेगार टालनेके लिये थोड़ासा खालेना, दो ग्रास भी रुचिपूर्वक न लिया जाना, आदि परिस्थिति होने पर मन अति निर्बल होजाता है। किञ्चित् भी मानसिक आघात सहन नहीं होना, सहनशीलता बिल्कुल नहीं रहती। शरीरबल और अग्निबल भी धीरे धीरे क्षीण होते जाते हैं। इन कारणोंसे रसोत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। परिणाममें रक्त, मांस आदि धातुओंमें भी क्षीणता होने लगती है, ऐसी परिस्थितिमें शिफाजानूर्ण और शहदके साथ इस रसायन की योजना करनी चाहिये।

इस तरह अपचनका परिणाम पक्वाशय पर होकर उसमेंसे अन्नरसका शोषण योग्य प्रकारसे नहीं होता। पक्वाशय शिथिल होजाता है। उसकी अन्तस्त्वचामें भीतर रक्तकी पूर्ति चाहिये उतने परिणाममें नहीं होती। फिर इससे सारकिट्टको पृथक् करनेका कार्य सम्यक् प्रकारसे नहीहोता। एव रसवहनका कार्यभी यथायनहीं होता। परिणाममें पक्वाशयके समीपस्थ प्रदेशमें रसवाहिनियाँ मोटी हो जाती हैं और उनसे सबन्धवाली छोटी-छोटी ग्रंथियां भी बड़ी हो जाती है। इस हेतुसे अग्निविक्षेप उपस्थित होता है। सारा उदर भारी हो जाता है। सर्वदा उदरमें एक प्रकारका तृप्ति होनेका भासता है। बार-बार डकार, अरुचि, उदरमें व्यथा, मन्द ज्वर, कभी-कभी क्षुधाका भास होना, परन्तु भोजन करने की इच्छाका अभाव होजाना आदि लक्षण होते हैं। भोजन नहीं किया जाता। ऐसी परिस्थितिमें आगे आगे कुछ कच्चे झागयुक्त सफेद दुर्गन्धमय दस्त होते हैं। कितनोंहीको कुछ समय जानेपर अतिसार हो जाता है। यह विकृति पित्तधातुकी विकृतिसे उत्पन्न होती है। इस हेतुसे अतिसारका प्रारम्भ होता है। यकृत् अशक्त होजाती है, जिससे पित्तोत्पत्ति पूरी नहीं होती। परिणाममें रोगी निस्तेज, दीन वाणीयुक्त, क्षीण ओजवाला और बलहीनसा प्रतीत होता है। उस पर चतुर्मुख रस उत्तम कार्य करता है।

बृहदन्त्रका उण्डुक (Coceum) भाग अशक्त होजाने पर अन्न पर पित्तका संस्कार होकर बना हुआ अन्नरस बृहदन्त्रके आरोही भाग (Ascending Colon)में योग्य रूपसे नहीं फेंका जाता। आरोही भागमें अन्नरसको ऊपर और नीचे फेंकनेकी क्रिया (दोनों क्रिया) होता रहती है। ये दोनों क्रिया मुख्यतः लघु अन्त्रकी क्रिया पर अवलम्बित हैं। ये दोनो कार्य मन्द होजानेसे और उन स्थानमें अन्नरसके शोषणमें न्यूनता आजानेसे अन्नरस जैसाका वैसा लघु अन्त्रमें दीर्घकाल पर्यन्त रह जाता है। इस तरह प्रतिदिन अन्नरस रह जाने और पक्वाशयमें पाचक तत्व (अग्नि) कम होजानेसे अन्नका पचन योग्य प्रकारसे नहीं होता। फिर अन्न उसी स्थान पर

विकृत होने लगता है, और उस हेतुसे विविध विकारोंकी उत्पत्ति होती है । यह जीर्ण बद्धकोष्ठका विकार अत्यन्त त्रासदायक है । इससे उदरमें वायु सर्वदा भरा रहता है; शौच शुद्धि नहीं होता; अपान वायुका कार्य सम्यक् न होनेसे किट्ट भाग पूर्ण रूपसे और योग्य समयपर बाहर नही निकलता; रोगी सर्वदा उदासीन और व्याकुल रहता है; तथा मन बिल्कुल निर्बल और उत्साह-रहित बन जाता है । ऐसी परिस्थितिमें लघु अन्त्रको शक्ति प्रदानकर अन्त्रकी उत्सर्ग-क्रिया, पाचन-क्रिया और संशो ण-क्रिया को सु ारनेका कार्य इस रससे सहज होजाता है ।

इस रससे इन्द्रियसमूहको पुष्टि मिलती है, और निर्बलता नष्ट होती है। अन्न सड़नेकी क्रिया बन्द होजाती है । विशेषत: कफप्रधान और कफपित्त प्रधान लक्षण होनेपर इसका विशेष उपयोग होता है । यदि वातप्रधान लक्षण हों, तो आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये ।

धातुओंके विविध क्षयके हेतुसे धातुपरिपोषण-क्रम क्षीण हो जाता है । इस क्षीणताको दूर करनेका कार्य इस रसायनसे सरलतापूर्वक होजाता है । पचनेन्द्रियक्षीण होनेसे पाचक पित्तमें क्षीणता आती है । फिर उससे अन्नरस योग्य नहीं बनता । रसधातुकी इस क्षीणताके हेतुसे रक्त भी जितने परिमाणमें सबल और पूर्णांशयुक्त चाहिये उतने परिमाणमें नही होता । परिमाणमे आगे-आनेकी धातुएँ और शरीरके अवयवोंको एक प्रकारका उपवास करना पड़ता है । जिससे क्षीण- ताकी प्रप्ति होती है । रोगी कृश, दीन और दुर्बल बन जाता है इस अवस्थामे ज्वर रहता है, यह नियम नही है । इस प्रकारके धातुक्षय पर चतुर्मुख रसका उतम उपयोग होता है ।

इस कारण परम्पराके हेतुसे अन्न-पचन योग्य न होनेसे उत्पन्न होनेवाले अतिसारमें इस रसका उपयोग होता है । इस अतिसारमें शौच सफेद और झागयुक्त होता है । कभी-कभी बिल्कुल कच्चा अन्न जाता है । इसके साथ खाये हुए अन्नकी वमन होजाती है । उस वान्तिमें अम्लता या कड़वापन नहीं होता । जैसाका वैसा अन्न किञ्चित् मधुर बनकर निकल जाता है ।

चतुर्मुख राजयक्ष्मा कीउत्तम औषध है । इस रसमें सुवर्णकी मात्रा मर्यादित है । फिर भी इसका आरम्भ करनेपर क्वचित् तुरन्त ज्वरका परिमाण बढ़ने लगता है । ऐसी स्थितिमे इसे कुछ दिनके लिये बन्द कर देना चहियें, या मात्र अत्यन्त कम कर देनी चाहिये । क्षयका केवल संशय होनेपर एवंनेत्र, छाती, पसली तथा पैर आदिमें जलन, बेचैनी, अंग टूटना, कुछ ज्वर सदृश देह संतप्त हो जाना आदि लक्षण होनेपर इसे बिल्कुल कम मात्रामें प्रारम्भ करना चाहिये । ऐसी स्थितिमें प्रवालभस्मका भी उत्तम उपयोग होता है परन्तु पित्ताधिक्य हो तो प्रवाल और कफाधिक्यसे स्रोतसोका रोग हो तो चतुर्मुख देवें । चतुर्मुख देनेमें दूसरा विशेष लक्षण क्षीणता होनी चाहिये । अन्तरेन्द्रियकी क्षीणता, रोगीको अशक्ति लगना, यह लक्षण विशेष रूपसे होनेपर क्षयके प्रारम्भकालमें इसका प्रयोग करनेसे आगेकी सब अनर्थ परम्पराकी प्राप्ति हो नही होती ।

राजयक्ष्माके आगेकी अवस्थामें क्षीणता रूप लक्षण प्रधान होनेपर और इसी हेतुसे स्वरभेद (ज्वरका वेग तीव्र न होनेपर) सर्वगात्र क्षीणता, मर्यादित दाह होनेपर भी सहन न होना, दस्त पतला और अधिक होना, शौच दिनमें एक-दोवार होना और अधिक कष्ट न होकर होना, परन्तु प्रत्येक शौचके साथ क्षीणताकी वृद्धि होना, अन्नकी वान्छा न होना, विशेषत जड और शीतगुणयुक्त अन्न (भात-दाल)की इच्छा विल्कुल न होना, भोजन बहुत थोडा करनेपर भी उदरमें जानेपर भारीपन होना, स्वल्प भोजन भी व्यथारूप भासना, खांसी शुष्क या कफ-युक्त होना परन्तु खांसीके प्रत्येव वेगके साथ मानसिक व्याकुलता और कष्ट होना खांसीकी आवाज अति गहराईमेंसे निकलना, प्रत्येक वेगके साथ क्षीणताकी वृद्धि होनेका भास होना, बोलनेपर कण्ठमें कफ चिपका हो ऐसा भासना, क्षीणताके हेतुसे एक भी शब्दका उच्चारण नही हो सके ऐसी भावना होना, एकाध शब्द बोलनेमें भी अति कष्ट होना हाथ-पैर चलानेकी भी शक्ति न रहना और सारा शरीर शिथिल होजाना, आदि लक्षण भासते हैं। ऐसी परिस्थितिमे चतुर्मुखसे उत्तम कार्य होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

रक्तमें रक्तकण कम होजानेसे और इसका कारण विशेषत मानसिक श्रम होने पर चतुर्मुखका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है। इसमें भी क्षीणता रूप लक्षण तो होना ही चाहिये। उस पाण्डुतामें रोगी उतना क्षीण होजाता है, कि उसकी आवाज भी अतिशय कष्टसे ही बाहर निकलती है, स्वर साद होता है, तथा शेष इन्द्रियाँ क्षीण होजाती है। इस स्थितिमें ज्वर हो तो चतुर्मुखकी अपेक्षा प्रवाल, शृग, शुक्ति, लोह भस्म या सुवर्णमाक्षिक भस्मका उपयोग विशेष होता है। परन्तु ज्वर न रहनेपर और क्षीणता लक्षण प्रमुख होनेपर चतुर्मुखका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

केवल एक स्थान पर बैठे-बैठे व्यवहार करनेवाले, विशेषत कुछ भी उद्योग (परिश्रम) या व्यायाम न करते हुए स्निग्ध आहारका सेवनकर खूब सोनेवाले, मासाहार या अपनी शक्तिसे अधिक खाकर पचन-शक्तिकी ओर दुर्लक्ष्य करनेवाले, मधुर रसका सेवन अत्यधिक करनेवाले, इसी तरह मत्स्य सेवन अत्यत करनवाले और जिनकी पचनशक्ति क्षीण होगई है। ऐसे अजीर्ण भोजी मनुष्योंको प्रमेह रोगकी सप्राप्ति होती है। इस मेहरोगके मूलमे अग्निमान्द्य और उस हेतुसे उत्पन्न अपचन ही विशेष रूपसे कारण होते हैं। इस विकारमें मूत्रोत्सर्ग वार-वार अधिक परिमाणमे होता है, तृषा अधिक लगती है, मिथ्या क्षुधा बनी रहती है, हाथ-पैरोंमें दाह होना, देहपर वार-वार प्रस्वेद आना, एक प्रकारकी दुर्गन्ध रहना, शौच मर्यादित होना आदि लक्षण होते हैं। इसपर प्रारम्भमें कुछ दिन लङ्घन करा फिर चतुर्मुखका उपयोग करना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा०)

गुटिका प्रकरण।

एक या अनेक ओषधियोंके महीन चूर्णको जल, दूध, वनौषधियोंके स्वरस, क्वाथ, शहद, गुड़ या शक्करकी चाशनीमें मिला अच्छी रीतिसे खरल करके गोलियाँ बनाई जाती हैं, उन्हें गुटिका कहते हैं। गुटिकामें आकृति और परिमाण-भेदसे गुटिका, वटिका, वटी (बड़े), मोदक (लड्डू), पिण्डी (मुठियाँ), वर्त्ती (वत्तीके सदृश आकारवाली), गुड़ (गोला), सोगठी (शिखराकृतिकी गोली) अनेक प्रकार हैं।

जल, दूध, स्वरस या क्वाथ आदिकी भावना देकर गोलियाँ बनानी हों, तो ओषधि अच्छी भीग जाय उतना द्रव पदार्थ मिला खरल करके गोलियाँ बना लेनी चाहिये। यदि गोलियाँ बनानेमें किसी ओषधके क्वाथकी भावना देनी हो, तो मूल औषधियोंके चूर्णके बराबर क्वाथ करनेके द्रव्यको ले, आठ गुने जलमें औटा आठवाँ हिस्सा शेष रहनेपर उतार छानकर भावना दें।

शक्कर और गुड़ प्रायः चाशनी करके मिलाये जाते हैं शुद्ध गूगलको जलमें पका या घी मिला अन्य औषधियोंके साथ कूट करके गोलियाँ बनाई जाती हैं। शक्कर मिलानी हो तो चूर्णसे ४ गुनी, गुड़ दुगुना, शहद चूर्णके समान, और गूगल भी चूर्णके बराबर लेना चाहिये।

यदि गूगलका पाक करना हो, तो गुड़के पाकके समान करें। किन्तु गाढ़ा बनावें। जो जलमें डालनेपर डूब जाय, इधर-उधर फैल न जाय, ऐसा पाक होनेपर ओषधियोंके साथ मिलावें। यदि पाक न करना हो, तो चूर्ण और शुद्ध गूगलको मिला थोड़ा-थोड़ा घी डालकर इमामदस्तेमें खूब कूटकर अच्छी तरह मिलालें, पश्चात् गोलियाँ बाँधें।

गोलियाँ जो सेवनमें अधिक कठोर हो; उसे पीस अनुपानके साथ मिलाकर लेनी चाहिये, अन्यथा कठोर मलके साथ ज्योंकी त्यों निकल जाती हैं। एवं गोलीको पीसकर लेनेमें लाभ भी सत्वर होता है।

भस्म और रसायनकी अपेक्षा काष्ठादि ओषधियोंसे बनाई हुई गुटिका प्रायः सौम्य होती है। अतः अशक्त, नाजुक और उष्ण प्रकृतिवाले रोगियोंको और पुराने रोगोंमें लाभदायक हैं। यद्यपि चूर्ण आदिके अनेक कृति सौम्य हैं, यद्यपि उनकी मात्रा ज्यादा है। गुटिकाकी मात्रा कम है; और गुटिकाको निगलनेसे ओषधिमें रहे हुए वेस्वादुपन या कड़ुवापनसे मनमें ग्लानि भी नहीं होती। इसलिये बालक, स्त्रियाँ और नाजुक प्रकृतिवाले पुरुषोंको गोलियोंका सहज सेवन करा सकते हैं; एवं हानिकी सम्भावना न होनेसे साधारण बोधवाले चिकित्सक भी निर्भयतापूर्वक गुटिकाओंको उपयोगमें ले सकते हैं।

है । यद्यपि यह साधारण औषधि है तथापि ज्वरविष और आमको जलानेमें अति उपयोगी सिद्ध हुई है । कफवृद्धि, मन्द-मन्द प्रलाप, अति बेचैनी आदि लक्षण युक्त सन्निपातपर व्यवहृत होती है । अनुपान रूपसे तुलसीका रस दिया जाता है । यदि सन्निपातमें उदरमें भारीपन, कठोरता और मलावरोध हो तो पहिले वर्ति (सपोजिटरी) या बस्ति अथवा विरेचन औषधि देकर उदर शुद्धि करा लेनी चाहिये । कीटाणु दूषित सड़े हुए फल अथवा बासी या सड़ा हुआ अन्न खानेसे अपचन होता है । फिर पतले दस्त, उदरशूल उदरमें भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । एवं किसीको विसूचिका हो जाता है । फिर बार-बार पतले दस्त और वान्ति होती है । इन दोनो प्रकारोंपर सजीवनी व्यवहृत होती है । मंद प्रकोपमें दिनमें ३ बार और विसूचिकाके-तीव्र असरमें १-१ गोली एक-एक या २-२ घंटे पर ४-५ बार देनेसे कीटाणुओंको नष्ट करती है, अतिसार और वमन को रोक देती है, वायुको शान्त करती है, तथा पचनशक्तिको सबल बनाकर आमविषको जला देती है । जिससे अपचन जनित अतिसार, विसूचिका आदि विकार दूर हो जाते हैं । अनुपान रूपसे प्याजका रस या अदरखका रस देना विशेष लाभदायक है ।

अपचन जनित विसूचिकाके समान कीटाणु जनित विसूचिका पर भी इसका उपयोग होता है । यदि विसूचिकाकी प्रारम्भावस्थामें ही इसका प्रयोग किया जाय, तो लाभ पहुँच जाता है ।

विसूचिकामें वान्ति और अतिसार द्वारा जलांश अधिक निकल जानेके अतिरिक्त (बाहर अंग शीतल होनेपर भी) कोष्ठके भीतर उष्णता बढ़ जानेसे भी प्रायः मूत्रोत्पत्ति नहीं होती । यदि पेशाब साफ आजाय, तो विसूचिका रोगमें बहुधा आराम हो जाता है । भीतरकी उष्णताको शमनकर पेशाब लानेका कार्य इस सजीवनी वटीसे होता है। ये अन्तरकी उष्णता शामक और मूत्रल गुण वत्सनागके हेतुसे प्रतीत होते हैं ।

वच्छनाग, भिलावा, वच और त्रिकटु मिले होनेसे इस औषधि में दीपन, पाचन और वातश्लेष्महर गुण प्रतीत होते हैं । इन गुणोंके हेतुसे औषध दूषित कफ और आमका संशोषण करके शूल और अजीर्णको दूर करती है, तथा अग्निको प्रदीप्त करती है । एवं वात और कफोल्वण सन्निपातमें दूषित कफका संशोधन करना और बाहर फेंकनेके लिये उत्तेजना देना, दोनो कार्य कराती हैं, जिससे जिससे कफोल्वण और वातकफभूयिष्ठ सन्निपातकी निवृत्ति होती है । कफयुक्त कास और श्वास रोगमें भी लाभदायक है।

इस प्रयोगमें सहायक औषधियाँ त्रिफला, वायविडंग, गिलोय और गोमूत्र हैं । त्रिफला रुचिकर और मलशोधक है । वायविडंग जन्तुघ्न, और गिलोय तीनों दोषका शमन करनेवाली है । एवं गोमूत्र अग्निदीपक, मलमूत्रावरोधनाशक और कफघ्न है । इस रीतिसे साधारण द्रव्योंसे बननेपर भी सजीवनी दिव्य

प्रभावशाली सिद्ध हुई है। इसलिये इसे "अमृत संजीवनी" भी कहते हैं।

सूचना—यह वटी सूखी खाँसीवालेको नही देनी चाहिये, और हृदयकी शिथिल गति वालोंको सम्हालकर देनी चाहिये।

(२) ज्वरारि वटी।

विधि—मल्ल पुष्पके साथ बना हुआ गुलाबी फिटकरीका फूला १ भाग, पीपल और मिर्च २-२ भाग लें। सबको मिला घीकुँवारके रसमें ६ घंटे खरल कर मूँगसमान गोलियां बनावें। (र० सा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ से ३ वार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके नवीन ज्वर, जीर्णज्वर और विषमज्वरको दूर करती है। इस वटीके प्रभावसे नूतन ज्वर २-४ दिनमें ही दूर हो जाता है।

नूतन सामान्य ज्वर और नूतन विषमज्वरमें यदि मलावरोध है अथवा आमाशय और लघु अन्त्रमें अपाचित अन्न रहा है, तो पहले आचार्य वृन्द कथित आरग्वधादि क्वाथ या अन्य उदरशुद्धिकर अथवा आमपाचन औषधि देनी चाहिये। एवं रोगीको एक दिन लंघन कराना चाहिये।

विमष ज्वरमें अनेकोंसे क्विनाइन सहन नही होता, क्विनाइन देनेपर पित्तप्रकोप होकर ज्वर बढ़ जाता है। फिर शिरमें भारीपन, निद्रानाश, रक्तदबाव वृद्धि, बार-बार लघुशंका होना और आलस्य आना आदि लक्षण उपस्थित होते ह। उन रोगियोंके लिये यह वटी अति लाभलायक है।

कितनेक रोगियोंको योग्य उपचार न होनेपर या अपथ्य सेवन होनेसे दीर्घ कालतक ज्वर नही छोड़ता। रोज शामको ९९° डिग्रीतक या अधिक उत्ताप हो जाता है। देह हाडपिजर-सा शुष्क और निस्तेज बन जाता है। पचनक्रिका दूषित हो जाती है, ठण्डी और गरमी सहन नही होती। आलस्य बना रहता है, उन रोगियोको शुष्क कास न हो, तो पथ्य पालनसह इस वटीका सेवन थोड़े दिनों तक करानेपर ज्वर निवृत्त होजाता है।

फिटकरीमें विषमज्वरके कीटाणु विषको नष्ट करनेका गुण रहा है। इसके साथ सोमलका योग होनेपर उसकी शक्ति वहुत वढ़ जाती है। यद्यपि इस ओषधिमें मल्लका विशेषांश उड़ जाता है, तथापि फिटकरी मल्ल संयोगसे प्रवल ज्वरहर बन जाती है। ज्वरावस्थामें कुछ आमविष रहता है और अग्नि मन्द होजाती है। अतः आम विषको जलाने और अग्निको प्रदीप्त करनेका कार्य मल्लसंयोग और मिर्च मिश्रणसे होजाता है।

सूचना—(१) इस वटीमें सोमलका योग होनेसे मात्रा अधिक नहीं देनी

चाहिये ।

यदि रोगीका यकृत् निर्बल हो, तो गुड, शक्कर, घी और तले हुये पदार्थोंका सेवन कुछ दिनोंतक कम परिमाणमें करना चाहिये ।

(३) पित्तज्वरांतक वटी ।

विधि—कडवे अनीसका चूर्ण ५ तोले और फिटकरीका फूला २॥ तोले लें। दोनोंको मिला शहदके साथ खरलकर मटरके समान गोलियाँ बना सोनागेरूके चूर्णमें डालते जायँ और सूखनेपर शीशीमें भर लें । (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोलीतक दिनमें ३ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह वटी पित्तज्वरमें पसीना लाकर ज्वरको शीघ्र उतारती है, दस्तको बाँधती है, तथा पित्तप्रकोप शमन करती है ।

(४) विषमज्वरान्तक वटी ।

विधि—धतूरेके शुद्धबीज, रेवनचीनी और बबूलका गोंद समभाग लें । पहली और दूसरी औषधिका बारीक चूर्ण करें । फिर गोंदके जलमें मिलाकर मिर्चके बराबर गोली बनावें । (श्री रामस्वामीजी)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवें

उपयोग—सब प्रकारके विषमज्वरोंको दूर करती है । चातुर्थिक ज्वर (तिजारी) को २-३ बारके सेवनमें दूर करती है । पारीके दिन ४ घंटे पहले एक बार, और २ घंटे पहले दूसरी बार देवें । ज्वर न आवे, तो ज्वरके समयके १ घण्टे बाद तीसरी बार देवें ।

(५) त्रिवृदष्टक मोदक ।

विधि—सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, वायविडंग और आँवला, ये ९ औषधियाँ १-१ छटाँक, निशोथ ८ छटाँक, और दन्तीमूल २ छटाँक लेवें । सबको मिला बारीक चूर्णकर ६ गुनी शक्करकी चाशनीमें मिलावें । फिर १ छटाँक सेंधानमक और २ छटाँक शहद मिलाकर ३-३ मासेकी गोलियाँ बनावें । (सु० स०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह शीतल जलके साथ देवें । यदि पित्तश्लेष्म दोष हो, तो दूधके साथ देवें ।

उपयोग—यह औषधि उत्तम विरेचक और विषघ्न है । मलमूत्रावरोध, बस्तिमें शूल चलना, पित्तवृद्धिके कारणसे प्यास, वमन, दाह, शोष, ज्वर और पाण्डु आदि रोगोंको दूर करनेमें सहायक है ।

(६) कस्तूर्यादि वटी ।

विधि—कस्तूरी ४ रत्ती, कपूर १ माशा, हींग भुनी १ माशे, शुद्ध अफीम १ माशा और खुरासनी अजवायन ४ माशे लें। सबको शहदके साथ खरलकर चनेके बराबर गोलियाँ बना लें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—उन्माद और निद्रा नाशमें १ गोली जलके साथ रात्रिको सोनेसे दो घंटे पहिले और सन्निपातमे आवश्यकतापर देवें।

उपयोग—यह वटी सन्निपात और उन्माद आदि रोगोंमें निद्रा लानेके लये अति उपयोगी है। यह उन्मादके दोषको दबाती है; तथा सन्निपातमें जब रोगी बार-बार खड़ा होकर भागने लगता है, या लड़ाई करता है; तब इसके प्रयोगसे तुरन्त विष शान्त हो जाता है।

(७) करंजादि वटी ।

प्रथम विधि—करंजगिरी भुनी हुई, इन्द्रायणकी जड़, बनफशा, अतीस, फिटकरीका फूला, पीपल, बड़ी हरड़, सब समभाग ले। फिर कूट बारीक चूर्णकर शहदमें मिला चनेके समान गोलियाँ बना लें।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके नवीन ज्वरोंको दूर करती हैं। यह मलावरोध और प्लीहावृद्धिसह जीर्ण ज्वरमें हितकर है।

दूसरी विधि—करंजगिरी, पित्तपापड़ा, चिरायता, अतीत, गिलोय सत्व, कटु परवलके फल और कुटकी, ५-५ तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर द्रोणपुष्पी (या भाँगरे) के रस में खरलकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी पित्तश्लेष्म ज्वर, ठण्ड लगकर आनेवाला विषमज्वर तथा प्लीहा (तिल्ली) और यकृत् आदि दोषोंको दूर करती है। ज्वरको रोकनेके लिये ६ घंटे पहिले दो-दो घंटे के अन्तरपर ३ बार ओषधि देनेसे पालीका खार रुक जाता है।

(८) मधुरांतक वटी ।

बनावट—तुलसीपत्र २ तोले, गिलोय सत्व १ तोला, लौंग, वंशलोचन, धनिया, कासनीके बीज और इलायची छः छः माशे मिला तुलसीके रसमें खरलकर उड़दके बराबर गोलियाँ बनावें। (र० सा०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह ओषधि मधुराके विषको बाहर निकालनेके लिये अति उपयोगी है। मधुरामें लक्ष्मीनारायण रसके साथ इस वटीका सेवन करानेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। एवं सगर्भा स्त्रियों और बालकोंका ताप उतारनेके लिये निर्भयतापूर्वक दी जाती है।

(९) जया वटी।

बनावट—शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हल्दी, नीमके पत्ते, नागरमोथा और वायविडंग, इन ८ ओषधियोंको समभाग लें। फिर कूट महीन चूर्ण कर, १२ घंटे बकरेके मूत्रमें खरल करके चनेके समान गोलियां बना लेवें।

(र० स०)

जया और जयन्ती, दोनों प्रयोगोंमें रसयोगसागरकारने योगमहार्णव ग्रन्थके आधारसे शुद्ध गन्धकको भी मिलानेका लिखा है। शुद्ध गन्धक मिलानेसे गुणमें वृद्धि होती है, ऐसा उनका अनुभव है।

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें २ बार देवें।

उपयोग—यह वटी अनुपान भेदसे सब प्रकारके ज्वर, बहुमूत्र, पाण्डु, शोथ, कुष्ठ, प्रमेह, अतिसार, संग्रहणी, रक्तपित्त और नेत्ररोग आदिको दूर करती है। अनुपान जया और जयंतीका समान है। अनुपानका वर्णन जयन्तीमें लिखा है।

(१०) जयन्ती वटी।

बनावट—शुद्ध बच्छनाग, कालीमिर्च, पीपल, पाठा, असगन्ध, बच, तालीसपत्र और नीमके पत्ते, सबको समभाग मिला बारीक चूर्णकर बकरेके मूत्रमें १२ घंटे खरल करके चनेके समान गोलियां बनावें। (र० स०)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें २ बार देवें।

उपयोग—यह वटी अनुपान-भेदसे सब रोगोंको दूर करती है। जया और जयन्ती वटीके गुण और अनुपान सामान्यतः समान माने गये हैं। बहुधा इन दोमेंसे कोई भी एक दे सकते हैं। इन दोनों प्रयोगोंमें मुख्य ओषधि बच्छनाग है। अतः बच्छनागके गुणोंकी प्रधानता तो रहेगी ही। बच्छनाग स्वेदल, मूत्रल, पीडाशामक और वायुवेगनाशक है। नाडीका वेग, उष्णता और रक्तके दबावको कम करता है, तथा ज्वर, सन्निपात, श्वास, कास, प्रमेह, शोथ, शूल, अभिष्यंद, उदररोग, प्लीहा, पाण्डु, व्रण, कण्ठमाला, विसर्प आदि रोगोंको नष्ट करता है। बच्छनागमें वातपित्तघ्न गुण होनेसे जीर्ण सन्धिवात और शूलपर अति हितकर है। लेप करनेसे संचित रक्तको बिखेरता है, जिससे बच्छनागमिश्रित लेप, गांठ, बद, कण्ठमाल आदि रोगोंपर लाभ दायक है। इन सब रोगोंपर इसका असर होता है। जब पतले दस्त होते हों, या कफ-

प्रकोप अधिक हो; अथवा अपचन होनेसे आमाशयमें आम संगृहीत हुआ हो तब जय की अपेक्षा जयन्तीका उपयोग विशेष हितकारक है ।

अनुपान— (१) पित्तज्वरमें दूध । (२) सब प्रकारके ठण्डी रहित नये ज्वरमें त्रिकटु और शहद । (३) पित्तज्वरमें घृत । (४) शीतज्वरमें गोमूत्र । (५) सन्निपातमें अदरखका रस अथवा कालीमिर्च और शहद (६) रक्तपित्तमें चन्दनका क्वाथ । (७) कफयुक्त खाँसीमें शहद । (८) शोथ और पाण्डुमें दूध । (९) मूत्रकृच्छ्र और पथरीमें चावलका धोवन । (१०) कॉंकण कुष्ठमें गोमूत्रमें घिसकर लेप करे । (११) सुरामेहमें केतकीका मूल ८ माशे घिसकर उसीके साथ देवे । (१२) मधुमेहमें लोद, नागरमोथा, हरड और कायफलका क्वाथ (१३) त्रिदोषज गुल्ममें गुड और गरम जल । (१४) भगन्दरमें सोंठका चूर्ण । (१५) संग्रहणीमें मट्ठा । (१६) रतौंधीमें भाँगरेके रसमें घिसकर अंजन करें और भाँगरेके रसके सथ खिलावें । (१७) नेत्रस्राव, मांसवृद्धि और सब नेत्ररोगोंमें स्त्रीके दूधके साथ घिसकर अंजन करें । इन दोनों वटियोंको अनेक रोगोंपर कितनेही चिकित्सक अनेक वर्षों से प्रयोगमें लाते हैं । इनसे मुसाफिरीमें बहुत काम निकल सकता है ।

(११) मरिचादि गुटिका ।

बनावट—कालीमिर्च १ तोला, छोटी पीपल ६ माशे, अनारका छिल्का ४ तोले, गुड़ ८ तोले, और जवाखार ६ माशे लें । सबको कूट गुडकी चाशनीमें मिलाकर ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना ले ।

मात्रा—२-२ गोली दिनमे ३-४ वार गुनगुने जलके साथ दें ।

उपयोग—कफयुक्त कास जो अन्य ओषधियोंसे शान्त न हुई हो; जिसके मिटनेकी आशा छूट गई हो; कफमें दुर्गन्ध आती हो; कफ सफेद या पीला, चिकना बँधा हुआ कफ अधिक गिरता हो; ऐसे जीर्ण असाध्य कास रोगमे भी इस ओषधिसे लाभ होता है ।

(१२) कर्पूरादि वटी ।

बनावट—कपूर, अनार (दाड़िम) के फलकी छाल और लौंग १-१ तोले; कालीमिर्च, पीपल, वहेड़ेकी छाल और कुलींजन २-२ तोले तथा सफेद कत्था ११ तोले लें । सवको मिला ववूल छालके क्वाथकी भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ वना लें ।

सूचना—क्वाथका जल उतना मिलाना चाहिये कि ३ घण्टा खरल करनेपर गोली वन सके । विशेप जल मिलानेपर कपूर उड़कर कम हो जाता है ।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें १०-१५ वार मुँहमें रख कर चूसें ।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे सब प्रकारकी खाँसी दूर होती है। विशेषतः वातप्रकोपसे उत्पन्न सूखी खाँसी, जिसमें कफ नहीं आता, और रात्रिको अति त्रास होता है, निद्रा भी पूरी नहीं आ सकती, वह ५-७ रोजमें ही शान्त हो जाती है।

यदि कण्ठमें रही हुई गिलायु (कागल्या-Uvula) शिथिल हो जानेसे बार-बार कास आती हो तो गलेके भीतर माजूफल चूर्णको शहदमें मिलाकर दिनमें २-३ बार लगा लेना चाहिये तथा कर्पूरादि वटी १-१ गोली मुँहमें रखकर रस निगलते रहना चाहिये। शौच शुद्धि न होती हो तो अभयादि मोदक आवश्यकता पर देवें।

(१३) अतिविषादि वटी।

विधि—कड़वा अतीस, काकड़ासींगी, कायफल, नागरमोथा, पीपलामूल, पीपल, बड़ी इलायची और मुलहठीका सत्व एक-एक तोला लेवें। सबको कूट महीन चूर्ण कर अदरखके रस अथवा शहदके साथ घोटकर मटरके समान गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—एक-एक गोली मुँहमें रखकर धीरे-धीरे रस उतारें, दिन रातमें ७-८ गोली सेवन करें।

उपयोग—अदरखके रसवाली गोलीसे कफवाली खाँसी तुरन्त नष्ट होती है। शहद वाली गोली वातिक कासमें लाभदायक है।

(१४) लवंगादि वटी।

विधि—लौंग, बहेड़ेकी छाल और कालीमिर्च १-१ तोला तथा कत्था ३ तोले मिला बबूलकी छालके क्वाथमें ६ घण्टे खरलकर मटरके समान गोलियाँ बनावें।
(वै० जी०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें ५-७ बार मुँहमें रखकर चूसें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारकी कासोंको दूर करती है, और श्वासरोगमें भी हितकर है। यह वटी सूखी खाँसीमें श्वासनलिकाकी उग्रताको दूर करके खाँसीको शमन करती है। एवं कफयुक्त कासमें सरलतासे कफको बाहर निकालती है।

(१५) खदिरादि वटी।

विधि—खैरसार १० तोले, कपूर, चिकनी सुपारी, जायफल, शीतलमिर्च और छोटी इलायची दो-दो तोले लें। सबको कूट पीस छानकर जल मिला खरलकर चनेके समान गोलियाँ बनावें।
(वृन्द)

मात्रा—एक-एक गोली करके दिनमें ५-७ गोली चूसें।

उपयोग—यह वटी मुँहके छाले, जिह्वा, दाँत मसूढ़े और गलेके रोग,

खाँसी और स्वरभंगको दूर करती है; और दाँतोंको मजबूत बनाती है। यह उत्तम संशोधन और गुण दर्शाती है ।

(१६) छर्दिरिपु वटी ।

विधि—कपूरकाचरीका बारीक चूर्णकर जल (चन्दनादि अर्क) के साथ खरल करके चनेके समान गोलियाँ बना लेव । (आ० नि० मा०)

मात्रा—एक-एक गोली ५-१० बार आध-आध घंटे पर देवे ।

उपयोग—यह वटी किसी भी कारणसे होनेवाले वमन, अरुचि आदि व्याधियोंको दूर करती है। छोटे बालकोंके लिये भी हितकर है। कीटाणुजनित तीव्र वान्ति हो तो छर्दिरिपुके साथ मयूरपुच्छ भस्म और जहरमोहरापिष्टी १-२ रत्ती मिलाकर पोदीनेके अर्कके साथ देना चाहिये । वान्तिके वेगको शान्त करनके लिये यह उत्तम औषधि है ।

(१७) प्लीहांतक गुटिका ।

विधि—एलुवा, चित्रकमूल, भूनी हीग, सोहागेका फूला, नौसादर सफेद सज्जी (सोडा बाई कार्ब) सबको समभाग मिला घीकुँवारके रसमें घोटकर मटरके बराबर गोलियाँ बनालें । (इ० गु०)

मात्रा—२-२ गोली दिनमें २ बार जलके साथ लें ।

उपयोग—यह वटी प्लीहावृद्धि (तिल्ली), यकृद्विकार, अजीर्ण, उदरवात और कब्जको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करती है

(१८) कृमिघ्न गुटिका ।

विधि—शुद्ध कुचिला ५ तोले; वायविडंग, अजमोद, अतीस, पीपल और इन्द्रजव, सबको १-१ तोला मिला गुवारपाठेके रसमें १२ घण्टे खरलकर मूँग के बराबर गोलियाँ बनावें ।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार ३ दिनतक जलके साथ दें । चौथे रोज सुबह जुलाब दें। आवश्यकताहो तो ज्यादा दिन देते रहें ।

उपयोग—इस गुटिकाके सेवनसे उदरके सब प्रकारके सूक्ष्म जातिके कृमि दूर होते हैं। कृमिजन्य ज्वर, मन्दाग्नि, उबाक, कण्डू, उदरवात, हृदयकी निर्बलता, सब शमन होते हैं ।

(१९) व्योषादि वटी ।

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अम्लवेत, चव्य, तालीलपत्र, चित्रकमूल,

जीरा और इमली एक-एक तोला, दालचीनी, छोटी इलायची और तेजपत्र ६-६ माशे और गुड़ २० तोले लेवें । इमलीको अलग कूटें । और वस्तुओंको अलग कूटें, कपड़छान कर इमलीके साथ मिलावें । फिर गुड़की चाशनीमें मिलाकर मटरके समान गोलियाँ बनावें । (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार गुनगुने जलके साथ दें ।

उपयोग—यह वटी जुकाम, खाँसी, श्वास, अरुचि, पीनस, स्वरभंग (गला बैठ जाना), आदि रोगोंको दूर करती है ।

(२०) श्वासांतक वटी ।

विधि—शुद्ध कुचिला, छोटी पीपल, लौंग और मुलहठी, सबको समभाग मिला बहेड़ेके क्वाथमें १२ घण्टे खरलकरके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें ।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें दो बार । सुबह थोड़े दूध या १-२ तोले गोघृतके साथ और सायंकालको गोदुग्धके साथ देवें ।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे अरुचि, मन्दाग्नि, पार्श्वशूल, उदरवात, बद्धकोष्ठ आमवृद्धि आदि लक्षणासह कफयुक्त श्वास रोग थोड़े ही दिनोंमें दूर होता है ।

(२१) नाग गुटिका ।

विधि—शुद्ध बच्छनाग, पीपल, लौंग, पीपलामूल, जायफल, दालचीनी, जावित्री, माठ, अकरकरा, कालीमिर्च, शुद्ध सिंगरफ और सोहागेका फूला, ये १२ ओषधियाँ १-१ तोला, केशर ३ माशे और कस्तूरी १ रत्ती लें । सबको कूट, कपड़छान कर अदरखके रस और नागरबेलके पानके रसमें अनुक्रमसे १२-१२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें । (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१-२ गोली दिनमें २ बार नागरबेलके पान या जलसे दें ।

उपयोग—यह गुटिका जुकाम, ज्वर, गला और छातीका दर्द, अरुचि, जुकामसे होनेवाले अतिसार, उबाक, सिरदर्द, अपचनके हेतुसे उदरमें भारीपन आदि विकारोंको दूर करती है ।

इस गुटिकामें प्रधान औषध बच्छनाग होनेसे इसका प्रयोग अति सम्हाल-पूर्वक करना चाहिये । बच्छनाग शोथहर, ज्वरनाशक, अवसादक और पीड़ाहर है । इसके प्रयोगसे नासिका और कण्ठकी श्लैष्मिक त्वचामेंसे होनेवाला स्रावका शोषण होकर कम हो जाता है । यह स्राव शरीरके किसी स्थानमेंसे बाहर निकलना चाहिये । अतः इस वटीके प्रभावसे प्रस्वेद अधिक होता है, एवं मूत्रोत्पत्ति भी अधिक होती है । प्रतिश्यायमें जो श्लेष्मस्राव होता है, वह इस हेतुसे कम

होजाता है ।फिर विकार कम होनेपर मूत्रकी मात्रा कम होजाती है ।

मुंहमे पानी भर जाना, उवाक, अरूचि आदि अपचनसे होनेपर झागयुक्त कफ गिरता हो तो अग्निकुमार रस दिया जाता है । परन्तु शीतल स्थानमें शयन करने पर, वर्षाके जलसे भीगने पर या शीत लग जानेसे क्षुधा नष्ट होना, उदरमें भारीपन, कब्ज, मस्तिष्कमें जड़ता, अंग अकड़जाना आदि लक्षणोंसह ज्वर होने पर नाग गुटिका अवश्य देनी चाहिये । फिर मूत्रका रंग पीला होने लगे या मूत्रस्राव कम हो जाय, तब नाग गुटिका वन्दकर देनी चाहिये । यदि ऐसी परिस्थितिमें गुटिका दी जायगी, तो अपाय होता है । अर्द्धावभेदक या वृक्क-विकार होकर शोथ आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं ।

ठण्ड लगकर जुकाम होना, फिर ज्वर; ज्वर होनेसे त्वचापर चिपचिपापन, सर्वाङ्गमे जड़ता, आलस्य, जँभाई आना, मुँहमें मधुरता और चिपचिपापन, खाँसी आनेपर छाती और कण्ठमें दर्द होना आदि लक्षण होनेपर नाग गुटिका अति हितक. औषध है।

इस गुटिकामें सफेद बच्छनाग मिलानपर मधुमेह, अच्छमेह, हस्तिमेह, इन प्रमेहोंपर अच्छा लाभ पहुँचाती है । इसके योगसे मधुकी उत्पत्ति कम नहीं होती, केवल बार-बार होनेवाली मूत्रकी शंका नष्ट होती है। मधुकी उत्पत्ति कम करानेके लिये नागभस्स, वसन्तकुसुमाकर, जातिफलादि वटी या प्रमेहगजकेसरीका प्रयोग करें ।

नाग गुटिकाके योगसे रसका संशोषण होनेसे देहमें शीतलता आदि गुण कम होते हैं; बच्छनागके योगसे त्वचामें रही हुई केशिकाओंमें रक्तका दबाव बढ़ता है; जिससे प्रस्वेद वृद्धि होकर सेन्द्रिय विष त्वचासे बाहर निकल जाता है । इस गुण के हेतु से बच्छनागप्रधान ओषधियाँ क्षोभजन्य ज्वर और क्षोभयुक्त अन्य रोगोंमे प्रयुक्त होती हैं। (औ० गु० ध० शा०)

(२२) धनंजय वटी

विधि—जीरा, चव्य, सफेद चन्दन, बच, दालचीनी, छोटी इलायची, कचूर, हाऊबेर, कलौंजी, नागकेशर, प्रत्येक १—१ तोला, सौंफ ६ माशे; अजवायन, पीपलामूल, सज्जीखार, हरड़, जायफल, लोंग. सब २-२ तोले; धनिया ३ तोले; चित्रक मूल, पीपल और साँभरनमक ४-४ तोले, कालीमिर्च ७ तोले, निसोत ८ तोले, समुद्रनमक, संधानमक और सौंठ १०-१० तोले, चूका (खट्टी भाजी) ३२ तोले और इमली १६ तोले लें । सवको मिला कूट, कपड़छान कर चूकेके रसमें ६ घंटे खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें । (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से ३ गोली तक दिनमें ३ वार मट्ठा, नीबूका रस, अनारका

रस अथवा जलके साथ देवें ।

उपयोग—धनञ्जय वटी प्रभावशाली वीर्यवान् औषधि है । यह पाचक, अग्निप्रदीपक, विरेचक, सारक और रुचि-उत्पादक है, आमाशयसे बृहदन्त्र तकके विबंध को दूर करती है, पक्वाशयमें पाचक रसका स्राव नियमित करती है, तथा जलन, उदरशूल और मलावरोध को दूरकर लघु अन्त्र और बृहदन्त्रकी पुर सरण-क्रिया को बढाती है ।

इस धनंजय वटीका कार्य तत्काल देखनेमें आता है । अत अपचनके विकार-में विशेषत आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्णपर इसका अच्छा उपयोग होता है इस वटीमें वातनाशक औषधियोंका सम्मिश्रण होनेसे डकारें आकर आमाशयके विबंधका नाश होता है ।

शक्तिकी अपेक्षा अधिक खा लेनेपर ही केवल अपचन होता है, ऐसा नही । अप्रिय, विष्टम्भकारक, जले हुए, अधकच्चे, जड रूक्ष, शीतल, बासी, दुर्गन्धयुक्त और अपवित्र भोजन करनेपर भी अपचन हो जाता है । अर्थात् प्रत्येक प्रकारके अन्नके अलग अलग प्रकारके अपचन होते हैं । गुरु अन्नसे उत्पन्न अजीर्णमें कफदोषका प्राधान्य और रूक्ष अन्नसे वातप्राधान्य होता है । इस तरह विविध प्रकारके भोजनोंसे उत्पन्न अजीर्णोंमें विविध दोषप्रकोप होते है । अत औषधयोजना करनेपर दोष-दूष्य विवेक अवश्य करना चाहिये । आँखें मूदकर दीपन पाचन औषधि देते रहना, यह शास्त्रीय चिकित्सा नही है । इसका विशेष विचार औषधगुणधर्म विवेचन में किया है ।

केवल गुरुअन्नके सेवनसे आमाजीर्ण होता है, इस तरह स्निग्ध भोजनसे भी आमाजीर्ण होता है । परन्तु दोनोंकी दोषदृष्टिकी दृष्टिसे दोनोमें अन्तर है । केवल गुरु स्वभाववाले भोजन या गुरु मात्रा (अधिक भोजन)के सेवन करनेसे उत्पन्न अजीर्णमें क्रव्याद् रसका अच्छा उपयोग होता है । स्निग्ध अन्नसे उत्पन्न अजीर्णमें शंख वटी गन्धकवटी, लहशुनादि वटी आदि अधिक लाभदायक है । रूक्ष, निस्नेह, विष्टम्भकारक, कच्चा अन्न, शीत बासी अन्न और अपवित्र भोजनके सेवनसे विष्टब्धाजीर्ण होनेपर उदरमें वायुकी उत्पत्ति, उदरपीडा, शूल आदि होते हैं । डकार साफ नही आती या अधोवायु नही सरता । उदरमें भारीपन और बेचैनी होती है । यदि वेदना अधिक हो, तो रोगी चिल्लाता है, तथा अधिक लगती है, उदरमें अल्पा स्थान नही रहता, फिर भी तृषा शमन नही होती । ऐसे अजीर्णमें धनञ्जय वटीका उत्तम उपयोग होता है । इससे विबन्ध दूर होता है । शूल शमन होता है, शौचशुद्धि होती है, और वायुका अनुलोमन होता है । पक्वाशयमें पाचक रसका योग्य स्राव होता है, और आँतोकी पुरःसरण क्रिया

व्यवस्थित होकर मलावरोध कम हो जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२३) चित्रकादि वटी।

विधि—चित्रकमूल, पीपलामूल, जवाखार, कालानमक, सैंधानमक,-साँभर-नमक, बिड़नमक, समुद्रनमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, सज्जीखार, भूनीहींग, अजमोद, चव्य, पाठा, जीरा, धनिया, कटेलीकी जड़, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें। फिर बिजौरे या खट्टे अनारके रसमें खरल करके मटरके समान गोलीयाँ बनालें। (वृ० नि० र०)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी आमशूल, उदरशूल, अरुचि, मन्दाग्नि और उदरगत वातप्रकोप दूर करती है तथा आमको पाचन करके अग्निको प्रदीप्त करती है। दस्तको साफ लाती है।

यह वटी आमशयके पित्त और यकृत्पित्तका स्राव बढ़ाती है। जिससे आमाशय और अन्त्रकी पचनशक्ति बढ़ जाती है। फिर उदरशूल, अफ़ारा और आमवृद्धि दूर होती है। दस्तका रंग सफेद हो तो वह पीला बन जाता है। कफात्मके अग्निमांद्यमें यह अच्छी गुणकारक है।

(२४) कुटजादि वटी।

विधि—कुड़ाकी छाल ८० तोले; माजूफल, लौंग, मरोड़फली, बहेड़ा, बायविडंग, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, जावत्री, बेलगिरी, प्रत्येक एक-एक तोला लें। पहले कुड़ेकी छालके जौकुट चूर्ण का ८०० तोले जलमें क्वाथ करें। २०० तोले जल शेष रहनेपर छान लें। फिर मन्दाग्निसे पाक करें गाढा होनेपर शेष ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलाकर चनेके बराबर गोलियाँ बनालें। (आ० भि०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार जल या मट्ठेके साथ दें।

उपयोग—यह वटी संग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसार, पैचिश और ज्वरातिसारको दूर करती है, तथा रक्तार्शमे से रक्त गिरना बन्द करती है। बालकोंके लिये भी हितकर है।

(२५) तेजोवत्यादि गुटिका।

विधि—बच, दारुहल्दी, पीपल, जवाखार, रसोंत और पाठा, इन ६ घोषधियोंको समभाग मिला कूट कपड़छान चूर्ण करें। फिर शहदमें ३ घण्टे घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। (वृ० यो० त०)

मात्रा—१-२ गोली करके दिनमें ५-७ गोलियोंका रस चूसें ।

उपयोग—इस गुटिकाके सेवनसे सब प्रकारके गलेके रोग, आवाज बैठ जाना, श्वासनलिकामें कफ भर जाना, घण्टिका (कागल्या) शिथिल हो जाना, गलेमें फुन्सी होना इत्यादि दूर होते हैं ।

(२६) कण्ठसुधारक वटी ।

विधि—सत मुल्हठी ७ तोले, पीपरमेंटके फूल ३ माशे, कपूर, इलायची और लौंग १-१ तोला, जावित्री २ तोले और मेकगेन २ रत्ती लें । सबको मिला जलमें आध घंटे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बाँधें । (धन्वन्तरि)

मात्रा—१-१ गोली मुहमें रखकर दिनमें १०-१५ बार धीरे-धीरे रस चूसते रहें ।

उपयोग—यह वटी अरुचि, मन्दाग्नि, गला बैठना, उबाक, बेचैनी, अजीर्ण, उदरवात, कफ, श्वास आदि रोगोंको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करती है, और चित्तवृत्तिको प्रसन्न बनाती हैं ।

(२७) एलादि वटी ।

विधि—इलायची, तेजपात और दालचीनी ६-६ माशे, पीपल, २ तोले, मिश्री, मुलहठी, गुठली रहित पिण्डखजूर और बीज निकाली हुई मुनक्का, ४-४ तोले लें । सबको पीस शहदमें मिलाकर झाड़ी बेरके समान गोलिया बना लें । (च० स०)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें ३ बार दूधके साथ दें । या १-१ गोली मुंहमें रखकर चूसते रहें ।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे उर क्षत, शोष, ज्वर, खाँसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, थूकमें खून आना, पसलियोंकी पीड़ा, अरुचि, प्लीहा, उरुस्तम्भ, रक्तपित्त और स्वरभङ्ग आदि रोग नष्ट होते हैं, एव पित्तप्रकोपका शमन होकर बेचैनी भी दूर होती हैं । शुष्ककासमें जब शान्ति नहीं मिलती, छातीमें दर्द बना रहता है, दाह होता है, ज्वर भी रहता है, उसपर यह वटी अति हितकारक है । क्षयकी प्रथमावस्थामें शुष्क कास होती है, उसपर भी लाभ पहुँचाती है ।

(२८) चन्द्रप्रभा वटी ।

विधि—कपूर, वच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चित्रक, धनिया, हरड, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायविडङ्ग, गजपीपल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सज्जीखार, सेंधानमक, कालानमक, काँचनमक, ये सब तीन-तीन माशे, निसोत, दन्तीमूल, तेजपत्र,

दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, बंशलोचन एक-एक तोला; लोह भस्म २ तोले, मिश्री चार तोले, शुद्धशिलाजीत ८ तोले और शुद्ध गूगल ८ तोले लें। सबको बारीक कूट गूगलके जलमें मिला, घीमें हाथ करके चनेके समान गोलियाँ बाँधें। गूगलको जलमें मिला, उबालकर एक रस बना लेना चाहिये; पश्चात् कपड़छान चूर्ण मिलावे। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ वार देवें।

अनुपान—१—सब प्रमेहोंपर १ तोला गिलोयका स्वरस और ६माशे शहद या त्रिफला; दारुहल्दी, देवदारु और नागरमोथाका क्वाथ।

२—मधुमेहमे निम्बपत्र और बेलपत्रका स्वरस, जामुनका रस, या अरनीकी छालका क्वाथ।

३—लालामेहमे त्रिफला और अमलतासका क्वाथ।

४—मांजिष्ठ मेहमें नीमकी छाल, अर्जुन छाल और कमलगट्टेकी गिरीका हिम।

५—मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, शर्करा और सिकतामेहमें शीतलमिर्च और गोखरूका क्वाथ।

६—पुष्टिके लिये गोदुग्ध और मिश्री एवं रोगीकी प्रकृति, देश और कालका विचार कर अन्य अनुपानोंकी योजना करें।

उपयोग—यह वटी मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, भगन्दर, अण्डवृद्धि, पाण्डु, कामला, ववासीर, कमरका दर्द, नेत्ररोग, स्त्रियोंके गर्भाशयके विकार, पुरुषोंके धातु-सम्बन्धी विकार आदि सबको दूर करती है। जीर्णरोगमें इसका सेवन शान्ति-पूर्वक ३-४ मास तक करना चाहिये। ज्यादा समय तक इसके सेवनसे असाध्य भगन्दर जैसा रोग भी दूर हो जाता है। मानसिक श्रम करनेवाले विद्यार्थियोंके लिये अति लाभदायक है।

चन्द्रप्रभाका मुख्य कार्य मूत्रेन्द्रिय और शुक्रार्तवकी उत्पादक इन्द्रियपर शामक बल्य और रसायन असर पहुँचानेका है। शरीरके धातु परिपोषण क्रममें प्रतिवन्ध आकर जो व्यवस्था भंग होती है, उसे यह व्यवस्थित बनाती है। अर्थात् पूर्वधातु-मेंसे परधातु-निर्माणक्रिया सम्यक् होने लगती है। सुजाक, उपदंश, शराबका सेवन, तीव्र रसायन आदि ओषधि सेवन अथवा गरम मसालेका अधिक उपयोग करते रहना, तमाखू, गाँजा, सूर्यके तापमें भ्रमण आदि कारणोंसे मूत्रेन्द्रिय संस्थामें क्षोभ उत्पन्न होकर मूत्रेन्द्रियमें दाह आदि विकार उपस्थित होते हैं। इसका परिणाम वृक्कों पर होकर मूत्रकी मात्रा कम बनती है। कमरमें दर्द, मूत्रमें अधिक जलन, मूत्रमें सिकता (रेत), शर्करा (कंकड़) जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इसपर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है।

भिन्न भिन्न कारणोंसे विशेषतः पित्तोत्पादक कारणोंसे, पित्त-विकृति होकर वृक्कों पर शोथ आजाता है फिर सर्वाङ्ग शोफ उपस्थित होता है । मूत्र अति कम और अति लाल रंगका उतरता है। उसमें ओजस द्रव्य (Albumen) न्यूनाधिक अंशमें जाता रहता है । कभी अधिक कभी कम ओजस द्रव्य जाता है । इस विकार में आशुकारी तीव्र और मंद चिरकारी, ऐसी दो अवस्था होती हैं । इनमेंसे चिरकारी और जीर्णावस्थामें इसका उपयोग शहद मिश्रित जल या शामक मूत्रल अनुपानके साथ करना चाहिये । मूत्रलके शामक और उत्तेजक भेदका विवेचन औषधगुणधर्मविवेचन में किया है ।

मूत्रकृच्छ्र यह विकार मूत्रमार्गका है । इसमें मूत्रोत्पत्ति योग्य होती है, परन्तु गवनी, मूत्राशय, पौरुषग्रन्थि या मूत्रप्रसेकनलिकामें जीर्णव्रण, व्रणशोथ या मूत्रप्रसेकनलिकाका संकोच आदि इन्द्रियविकृति रूप कारणोंमेंसे कोई भी एक होनेपर मूत्र दाहयुक्त, पीला, लाल और दुर्गन्धयुक्त आता है । कभी कभी क्षार, सिकता, शर्करा या श्लेष्म आदि भी होते हैं । इसपर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है । विशेषतः मूत्रेन्द्रियमें जीर्णव्रण होनेपर मूत्रकृच्छ्र हुआ हो, तो चन्द्रप्रभाके साथ उसीरासव या सारिवासवकी योजना करें । *

मूत्राघातमें कितने ही प्रकार मूत्रकृच्छ्रके समान इन्द्रियजन्य विकृतियें होते हैं । परन्तु मुख्यतः इस विकारमें मूत्रोत्पत्ति कम होती है । वृक्ककी भिन्न-भिन्न कारणोंसे होनेवाली विकृति ही मूत्राघातका हेतु है , और इस विकृतिका परिणाम समस्त शरीर पर होकर वातवस्ति, वातकुण्डलिका आदि मूत्राघातके कष्टसाध्य प्रकार उत्पन्न होते है । इन सबके मूलमें अवस्थित वस्तुस्थिति यह है कि, मूत्र कम उत्पन्न होना और मूत्रद्वारा शरीरसे बाहर जानेवाले क्षार और विष शरीरमें ही रह जाना । इस परिस्थिति पर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है । यह शामक, बल्य और मूत्रल होनेसे इसका असर मूत्रपिंडोपर होकर मूत्रपिण्डके दाह शोथ आदि विकार कमहो जाते हैं । इसपर चन्द्रप्रभा, पुनर्नवासव, पलाश पुष्पासव या गोक्षुरादि अवलेहके साथ देना विशेष हितकर है । इसका कार्य अधिक गहराईमें होता है । इस हेतुसे जीर्ण विकार पर यह अच्छी उपयोगी है ।

अश्मरी रोग जब अधिक बढ़ जाता है, तब शस्त्रचिकित्सा करना ही इष्ट

---

* अनेक समय अश्मरी, सिकता या शर्कराके हेतुसे मूत्रोत्सर्गमें कष्ट होता है, उसपर यह चन्द्रप्रभावटी १–२ मास तक दी जाती है । अनुपानरूपसे दर्भमूल, कासमूल, छोटेगोखरू, हरड़, अमलतासकीफलीका गूदा, पाषाणभेद और धमासा, इन ७ औषधियोंका क्वाथ दिया जाता है । यदि पौरुषग्रन्थि (Prostate gland) कीवृद्धि होनेसे कष्ट होता हो, तो भी उक्त प्रयोगसे लाभ पहुंचता है ।

है; परन्तु अश्मरीकी अधिक वृद्धि न होनेपर औषध चिकित्सा द्वारा अश्मरी-भेदन हो सकता है। इसके सूक्ष्म सूक्ष्म कण मूत्र द्वारा बाहर निकल जाते हैं। इस कार्यके निमित्त चन्द्रप्रभाका उपयोग तृणपञ्चमूल क्वाथके साथ करना चाहिये।

सुजाक(शुक्रमेह), जिसमें मूत्रके साथ पूय जाता है और मूत्र त्यागके समय जलन होता है उसको जीर्णावस्थामें विविध जीर्ण व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। जितना रोग जीर्ण और जितना अधिक गहराईमें हो, उतना ही चद्रप्रभाका अधिक अच्छा उपयोग होता है। व्याधि नूतन हो, विष शाखागत और स्नायुगत हो, तो सुवर्ण वंग उपयोगी है। परन्तु विषका परिणाम रक्त आदि धातुपर होकर उससे विविध विकार उत्पन्न हुए हों तो चन्द्रप्रभा उपयुक्त है। शीर्षशूल, जीर्ण संधिशूल, स्नायुसंकोच; जीर्ण नेत्राभिष्यंद, अण्डकोष शोथ आदि उपद्रवोंमें और पूयशुक्रके पश्चात् हाथ पैर टूटने, नेत्रका दाह, मूत्रमें दाह, वृषण और शिश्नपर विष फैलकर पिटिका होना, खुजली चलना और मांसार्बुदके सदृश उपद्रव हो जानेका भय लगना आदि विकारोंपर चन्द्रप्रभाने अप्रतिम काम किया है। जीर्ण रोगमें सेवन अधिक काल करना चाहिये। अनुपान रूपसे दारूहल्दी, गिलोय, गोखरू और आँवलेका क्वाथ देवें। कब्ज अधिक हो तो कुटकी आवश्यकता पर मिला देनी चाहिये।

गर्भस्त्राव, गर्भपात, सुजाक, जीर्ण उपदंश, जल्दी-जल्दी गर्भधारण, अनेक सन्तान हो जाने या अति व्यावय आदि कारणोंसे गर्भाशय अशक्त होकर समस्त शरीर निर्बल हो जाता है; फिर निस्तेज मुखमण्डल, उत्साहका अभाव, नेत्रोंमें दाह, हाथ पैर टूटना, शिर, कमर और सर्वाङ्गमें दर्द, शूल निकलना, विशेषतः मासिकधर्मके समयपर शूल या अति वेदना होना, रजोदर्शन होनेमें कष्ट होना, अनियमित रजोदर्शन, किसी-किसीको ३-४ मास तक रजोदर्शन न होना, रजोदर्शन हो तो भी रजःस्राव बहुत कम होना, रजःस्रावका रंग नीला, काला, पीला या मलीन होना, योनिमुखमें से सफेद जलके सदृश चिपचिपा या गाढ़ा दुर्गन्धमय स्राव होते रहना आदि लक्षण होनेपर चद्रप्रभाका सेवन घीके साथ करना चाहिये। या वाग्भट शारीरिक स्थानमें कहे हुए ५ मासमें देनेके ९ कषायोंके साथ चन्द्रप्रभा देनी चाहिये।

उक्त कारणोंसे गर्भाशय अशक्त होकर शिथिलता आनेपर भीतर एक ओर गिर जाता है। फिर उस हेतुसे बस्तिशूल और अनार्तव होते हैं। इस विकृतिमें भी चन्द्रप्रभा हितकर है, प्रसूतिके समय मूर्खतावश या अन्य समयमें गर्भाशयपर अधिक आघात पहुँच जानेपर यह अत्यंत शिथिल होकर बाहर निकल जाता है। ऐसी स्थितिमें तुरन्त गर्भाशयको स्निग्धकर भीतर यथास्थान बैठा दिया जाय, ऊपरसे कोपिनके सदृश बन्धन बाँध दें, कुछ समय विश्रान्ति लें और चन्द्रप्रभाका सेवन करें, तो गर्भाशय स्थिर हो जाता है। रोग जीर्ण होनेपर फिर लाभ नहीं होता।

गर्भाशयकी अशक्तिसे बीजका ग्रहण न होना, गर्भ न रहना या रहनेपर-

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ दें। उपर नागरवेलका पान खिलावें। भोजनमें घी दूध अधिक दें।

उपयोग—ब्रह्मचर्य और पथ्यपालनसह इस औषधके २१ रोज सेवन करनेसे नपुंसकता दूर होकर शरीर बलवान बन जाता है।

(३०) शुक्रस्तंभन गुटिका।

विधि—लौंग, जायपत्री, दालचीनी, अकरकरा, समन्दरशोषके बीज और शुद्ध अफीम, सबको १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण करें। फिर ६ तोले मिश्री मिला शहदके साथ खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें इन गोलियोंको ८-१० दिन खुली वायुमें रहने देनेसे अच्छी सूख जाती हैं। पश्चात् बोतलमें भरें।

(आ० भि०)

मात्रा—१-१ गोली रोज सायंकाल दूधके साथ लेवें।

उपयोग—यह गुटिका शुक्रका पतलापन और नपुंसकताको दूर करती है। शुक्रका स्तंभन अधिक समय होता है। अतिसार और प्रवाहिकामें भी इससे लाभ पहुँचता है। यह निद्रा भी ला देती है।

सूचना—बद्धकोष्ठ होनेपर इस औषधि या अन्य अफीम वाली औषधियाँ सेवन नहीं करना चाहिये।

(३१) कासमर्दन वटी।

विधि—सफेद कत्था ४ तोले, सेलखडी २ तोले, कपूर १ तोला और छोटी इलायचीके बीज ६ मासे लें। सबको खरल करके बारीक चूर्ण करें। पश्चात् ३० तोले बबूलकी छालको २॥ सेर जलमें मिलाकर मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। जल चतुर्थांश रहनेपर उतारकर छानलें। फिर क्वाथ और चूर्णको मिला, मन्द-मन्द अग्नि देकर पकावें, और चलाते रहे। जब गोली बाँधने लायक अवलेहके समान गाढा पाक हो जाय, तब नीचे उतारें। शीतल होनेपर चनेके समान गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। यदि मसाला हाथ से चिपकता हो, तो थोडी सी सेलखडी लगा-लगाकर गोलियाँ बना लेवें। (चि० च०)

वक्तव्य—कपूर और छोटी इलायचीके दानेका चूर्ण अवलेहको नीचे उतारनेपर मिलाया जाय, तो दोनों द्रव्यका गुण पूर्णांशमें रहजाता है।

मात्रा—१-१ गोली मुँहमें रखकर रस चूसें। १ दिनमें १०-१५ गोली तक चूसें।

उपयोग—यह वटी वातिक और पैत्तिक नया कास तथा जीर्ण कासको थोडे ही दिनोंमें दूर करती है। इस गोलीके सेवनसे रोगीको पहिले ही दिनसे

अच्छी निद्रा आने लगती है; एवं मुंहके छाले, दाँतोकी शिथिलता, घंटिका (कव्वे) की शिथिलता, आवाज बैठ जाना, इनमें भी लाभ पहुँचता है। छोटे बच्चे, जो रस न चूस सकें, उनकी जिह्वा पर गोलीके चूर्ण को लगा देना चाहिये।

(३२) कांकायन वटी (गुल्म)

विधि—कचूर, पुष्करमूल, दन्तीमूल, चित्रकमूल, अरहर, सोंठ, निसोत, बच प्रत्येक ४-४ तोले; भूनी हींग १२ तोले, जवाखार ८ तोले; अम्लबेत ८ तोले; अजवायन, जीरा, कालीमिर्च, धनिया प्रत्येक १-१ तोला; स्याहजीरा और अजमोद २-२ तोले लें। सबको कूट-कपड़छानकर बिजौरेके रसमें १ दिन खरल करके मटर समान गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार दें।

अनुपान—वातज गुल्म पर— मद्य अथवा काँजीके साथ।

पित्तज गुल्म पर—घी, दूध अथवा कुलथीके यूषके साथ।

कफज गुल्म पर—गोमूत्रके साथ।

रक्त गुल्म पर—ऊँटनीके दूधके साथ।

त्रिदोषज गुल्म पर—त्रिफलाके क्वाथ या गोमूत्रके साथ।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके गुल्म—वातज गुल्म, पित्तज गुल्म, कफज गुल्म, त्रिदोषज गुल्म, रक्त गुल्म, अर्श, हृद्रोग और कृमि आदि रोगोंको दूर करती है। इन रोगोंमेंसे विशेष उपयोग वातज गुल्म, सूक्ष्म कृमि, उदरवात, मलावरोध और वातार्श पर होता है।

(३३) अन्त्रवृद्धिहर गुटिका।

विधि—शुद्ध सिंगरफ ५ तोले, एलुवा, १० तोले; गूगल, लाल बोल, करंजके बीज, नौसादर, कालानमक, हींग, ये सब पाँच-पाँच तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर घी कुँवारके रसमें खरल करके मटर समान गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—इन गोलियोंके १ मास सेवनसे आँत उतरना (Hernia), उदरशूल, मलावरोध, उदरवात आदि दूर होते हैं।

(३४) जातिफलादि वटी।

विधि—जायफल, छुआरा और अफीम, तीनोंको समभाग मिला नागरवेलके पानके रसमें तीनघण्टे खरलकरके मूँगके समान गोलियाँ बनावें।

(वृ० नि० र०)

मात्रा—एक से दो गोली दिनमें २ से ३ बार जल, मट्ठे अथवा बकरीके दूधके साथ दें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके रक्तातिसार और प्रवाहिकाको तुरन्त रोक देती है, प्रवाहिकाके कीटाणुओंको नष्ट करती है, आंतोंकी स्तम्भन शक्तिको बढाती है, उदरपीडा शमन करती है, तथा आंतोंकी शिथिलताको दूरकर मलको बांधती है।

इस वटीमें पारद गन्धक मिलाकर रसयोगसागरकारने 'गङ्गाधररोरस' नाम रक्खा है, और संग्रहणी, आम, अतिसार पर हजारों बारका अनुभूत लिखते हैं। परन्तु जब तक कच्ची आम हो तबतक इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(३४) विषतिंदुकादि वटी।

प्रथम विधि—शुद्ध कुचिला १० तोले, सुपारी १ तोला, कालीमिर्च ९ माशे, इमलीके बीज ८ नग लें। सबको मिला बारीक चूर्ण कर जलमें खरलकर चनेके बराबर गोलियां बांधें। (आ० भि०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलसे दें।

उपयोग—यह वटी अतिसार, जुकाम, अजीर्ण, मन्दाग्नि, हृदयकी निर्बलता, पुराना वातरोग, धातुक्षीणता और उदरशूल आदि रोगोंको दूर करती है।

इस वटीका उपयोग विशेषतः हमने अफीमका व्यसन छुडानेमें किया है। अफीमके व्यसनीको अफीम छुडानेके लिये अफीमके समान वजनमें गोली देनेमें पूरा-पूरा नशा आता है, और ८-१० रोजमें अफीम छूट जाती है। अफीम छूटनेके बाद शरीरका कालापन दूर होकर लाल बन जाता है। अफीम और औषधि, दोनों छूटने पर कुछ भी तकलीफ नहीं होती।

दूसरी विधि—शुद्ध कुचिला और कालीमिर्च समभाग मिला कूट-छान इन्द्रायनके फूलोंके रसमें १२ घण्टे खरल करके मूंगके समान गोलियां बनावें। (सि० यो० सं०)

सूचना—इस प्रयोगके लिये कुचिलेका शोधन एरण्ड तैलमें भूनकर (शोधन प्रकरणमें लिखे अनुसार) करना चाहिये।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवें। वातरोगमें नागरबेलके पानके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी नवीन बुखार, विषमज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, उदरवात, उदरशूल, पुराना वातरोग, पागल कुत्तेका विष आदि रोगोंको दूर करती है। पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, गृध्रसी, आमाशय और पक्वाशयमें वातप्रकोप तथा चेष्टा तन्तुओंकी विकृतिको दूर करती है।

(३६) अर्शोहर वटी।

प्रथम विधि—नीमकी निम्बोली, बकायनकी निम्बोली, बीज निकाली हुई मुनक्का और छोटी हरड पांच-पांच तोले और हींग ३ तोले लें। मुनक्काको छोड़ शेष चार ओषधियोंको घीमें भूनकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर मुनक्का मिला, पीसकर छोटे बेरके बराबर गोलियाँ बना लें।

मात्रा—१ या २ गोली सुबह खाकर ऊपर मिश्री मिला बकरीका दूध पी लें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके बवासीरमें लाभदायक है। बवासीरमें गिरता हुआ रक्त जल्दी बन्द करती है।

दूसरी विधि—छोटी हरड़, काबुली हरड़, पीली हरड़, आँवले, बहेड़े और शुद्ध गूगल, ६ ओषधियोंको समभाग मिला कुकरोंधेके रसकी ३ भावना देकर झड़बेरके समान गोलियाँ बनावें। (पं० मंगुलालजी)

मात्रा—३-३ गोली दिनमें दो बार ताज़े जलके साथ देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे थोड़े ही दिनोंमें रक्तार्श और वातिक आदि सब प्रकारके बवासीर दूर होते हैं। गुदामें उत्पन्न सूजन दूर होती है, एवं रक्त गिरना भी बन्द होजाता है।

तीसरी विधि—रसोंत ८ तोले, काबुली हरड़ ८ तोले तथा सोनागेरू, गिलोय सत्व और कालीमिर्च २-२ तोले लें। सबको मिला कुकरोंधेके रसकी ७ भावना देकर मटरके समान गोलियाँ बनावें। कितने ही चिकित्सकोंने इसे (अर्शकुठार) नाम दिया है।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे रक्तार्शका रक्त गिरना बन्द होता है; गुदामें होनेवाला दाह और मलावरोध दूर होते हैं। शान्तिपूर्वक १–२ मास सेवन करनेसे सब प्रकारके अर्शका नाश होता है।

(३७) प्राणदा गुटिका।

विधि—सौंठ १२ तोले, कालीमिर्च ४ तोले, पीपल ६ तोले, चव्य ४ तोले, तालीसपत्र ४ तोले, नागकेशर २ तोले, पीपलामूल ८ तोले, तेजपात ६ माशे, छोटी इलायची १ तोला, दालचीनी ६ माशे और खस ६ माशे लें। सबको कूटपीस छान कर पुराना गुड़ १॥ सेर मिला २–२ माशे की गोलियाँ बनावें। (वं० से०)

सूचना—यदि अर्शके साथ मलावरोध हो, तो इस गुटिकामें सोंठके स्थानमें

हुग्ड मिला लेनी चाहियें । यदि अम्लपित्त या पित्तार्शमें सेवन करना हो, तो गुडके स्थानमें चूर्णसे-४ गुनी शक्करकी चाशनी मिला लेनी चाहिये, गुडकी चाशनी करके मिला लेनेसे पाकमें लघु गुणवाला होता है ।

मात्रा—१ से २ गोली भोजनके पहले या पीछे शराव, मासरस, यूस, दूध या जलके साथ देनी चाहिये ।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज और सहजार्श, सब प्रकारके ववासीर नष्ट होते हैं । एवं मदात्यय, मूत्रकृच्छ्, वातरोग, गलग्रह, विषमज्वर, मदाग्नि, पाण्डु, कृमि, हृद्रोग, गुल्म, श्वास, कास आदिके रोगियोंको भी यह गुटिका प्राण देनेवाली होनेसे इस गुटिकाको प्राणदा गुटिका कहा है ।

(३८) काँकायन वटी (अर्श)

विधि—हरड २० तोले, जीरा, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च और छोटी पीपल ४-४ तोले, जवाखार ८ तोले, भिलावा ३२ तोले तथा मूरण ६४ तोले लें । सबको कूट दुगुना गुड मिलाकर १-१ माशेकी गोलियां बना लें । (वृन्द)

मात्रा—एकसे दो गोली तक दिनमें २ वार मट्ठे अथवा जलके साथ दें । पहले और पीछे एक-एक माशा घी चाट लें ।

उपयोग—यह वटी विशेषत वातकफज अर्शको नाश करनेमें अति लाभदायक है, और मन्दाग्नि, संग्रहणी' तथा पाण्डु रोगको भी दूर करती है ।

(३९) दुर्नामकुठार वटी ।

विधि—कालीमिच, छोटी पीपल, कूठ, संधानमक, जीरा, सोंठ, वच, भूनी हींग, वायविडग, हरड, चित्रकमल और अजमोद, सबको समभाग मिला सब औषधियोंसे दुगुने गुडकी चाशनीमें डालकर १-१ माशेकी गोलियां बनावें । (आ० भि०)

मात्रा— १ से २ गोली दिनमें २ वार गरम जलके साथ दें ।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे सब प्रकारके वातज अर्शका नाश होता है, पचनक्रिया सुधरती है तथा कोष्ठबद्धता दूर होती है ।

इस वटीमें मुख्य गुण दीपन, पाचन और वातहर है । इसके सेवनसे यकृत्का पित्तस्राव अधिक होता है जिससे लघु अन्त्रमें होनेवाली पचनक्रिया सबल होती है । अन्त्रमें उत्पन्न वायुका सरलतासे नि सरण होता है और वातोत्पत्तिका रोध होता है । यह गुण विशेषत हींगसे मिलता है । त्रिकटु, चित्रक, अजमोद,

आदि सहायक होते हैं। वायु उत्पन्न होनेपर अन्त्र शिथिल और प्रसारित हो जाती है; वह हरड़, जीरा आदि द्वारा दृढ़ और आकुंचित बनती है। जिससे रुका हुआ मल सरलतासे बाहर गिरता है। अग्नि या पचन क्रिया मन्द होनेपर आमवृद्धि और कफवृद्धि होती है। इनमेंसे हरड़के सम्मिश्रणसे आमोत्पत्तिका रोध होता है तथा बच, पीपल, कूट आदिके मिश्रणसे आमाशय और फुफ्फुसमें उत्पन्न आम और कफ सहज दूर होजाते हैं। इनके अतिरिक्त रोग जीर्ण होनेपर उदरकृमि और आमविषवृद्धि होकर अग्निमांद्य, शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, व्याकुलता, तन्द्रा आदि उपद्रव हुए हों तोभी इस दुर्नामकुठार वटीके सेवनसे १ मासके भीतर अग्नि और शरीर बलकी वृद्धि होकर सब उपद्रव शमन होजाते है।

(४०) योगराज गुग्गुल।

विधि—सौठ, कालीमिर्च, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चीतेकी छाल, भुनी हींग, अजमोद, पीली सरसों, जीरा, कालाजीरा, रेणुक बीज (सामालूके बीज), इन्द्रजौ, पाठा; बायविड़ङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारङ्गी, बच, मूर्वा, तेजपात, देवदारु, कूठ, रास्ना, नागरमोथा, सैंधानमक, छोटी इलायची, गोखरू, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दालचीनी, खस और जवाखार, सबको समभाग मिला कूटकर बारीक चूर्ण करें। फिर चूर्णके बराबर शुद्ध गूगल मिला घी दे-देकर ३ दिनखूब कूटकर मटरके समान गोलियाँ बनाले। (आ० नि० मा०),

मात्रा—२ से ४ गोली तक दिनमें २ बार देवें।

अनुपान—सब प्रकारके वातरोगमे रास्नादि क्वाथ। उदररोगमें पुनर्नवादि क्वाथ। मेदवृद्धिमें शहद। प्रमेहमें दारूहल्दीका क्वाथ। वातरक्तमें गिलोयका क्वाथ। नेत्ररोगमें त्रिफलाका क्वाथ। कामलामें गोमूत्र। शोथमें पुनर्नवादि क्वाथ या गोमूत्र। श्वेतकुष्ठमें नीमका क्वाथ। शूलमे मूलीका स्वरस। चुहेके विषमें पाढलमूलका क्वाथ।

उपयोग—यह गुगल सब प्रकारके वातरोग, आमावात, मृगी, वातरक्त, कुष्ठ, दुष्टव्रण, बवासीर, उदररोग, मेह, शुक्रदोष, नाभिशूल, कृमि, हृद्रोग, क्षय, भगंदर और उदावर्त आदि रोगोंको अनुपान-भेदसे नाश करता है। पुराने रोगोंमें मात्रा हर आठवें दिन बढाकर तीन माशे तक पहुँचा देनी चाहिये। २ से ३ मास तक सेवन करनेसे सब पुराने रोग भी निवृत्त होजाते हैं।

सूचना—जिसके मुँहमें छाले, नेत्रोंमें दाह और मलावरोध रहता हो, उसे योगराज गूगल नहीं देना चाहिये।

(४१) गोक्षुरादि गुग्गुल

विधि—गोखरु ११२ तोलेका ६ गुने पानीमें क्वाथ करें। आधा जल

बाकी रहे तब उतार लें। फिर छानकर पुन. उबालें, लगभग आधा जल शेष रहने पर २८ तोले गूगल मिलाकर पकावें। गुड पाकसे समान गाढा होजाय, तब सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, नागरमोथा, सबको समभाग मिला, कूट महीन २८ तोले चूर्ण कर गूगलकी चाशनीमें मिला लें। फिर मटरके समान गोलियाँ बनालें। (शा०स०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार दूध या जलके साथ दें।

उपयोग—यह गूगल प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रदर, वातरोग वातरक्त शुक्रदोष और पथरी आदि रोगोंका नाश करताहै।

कभी-कभी रक्तप्रदरका योग्य उपचार न करने और दुर्लक्ष्य करनेपर बहुत बढजाता है। भारतीय स्त्री समाजमें लज्जावश रोगको छिपाते है, जिससे रक्त-प्रदर और रक्तगुल्म दोनो बहुत बढ जाते है। फिर अशक्ति अधिक आ जाती है। इस अवस्थामें गोक्षुरादि गूगल, वङ्गभस्म, मूत्रदाहान्तक चूर्ण * और अमृतासत्व मिला-कर दिनमें ४ बार दाडिमावलेहके साथ देते रहने और अशोकारिष्ट प्रात साय देते रहनेसे दो मासमें दोनो विकार नष्ट हो जाते हैं।

मूत्राशयमें अश्मरीकण (शर्करा और सिकता) उपस्थित होनेपर मानसिक अस्वस्थता, सांधो-सांधोमें पीडा, अपानवायुकी शुद्धि न होनेसे उदरमें अफारा आना, कम्प आदि लक्षण उत्पन्न होते है। उसपर यह गोक्षुरादि गूगल गोखरूके क्वाथ और दशमूलारिष्टके साथ दिनमें ३ समय देते रहने और भोजनके प्रारम्भमें हिंग्वष्टक चूर्ण सेवन करानेसे छोटे-छोटे पत्थर और रेती निकलकर रोग दूर हो जाता हैं।

(४२) काँचनार गुग्गुलु ।

विधि—कचनारकी छाल १२० तोलेको जौकुटकर ८ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर छान शुद्ध गूगल ८० तोले मिलाकर पुन मन्दाग्निपर पाक करें। गाढा होनेपर त्रिफला २४ तोले, त्रिकटु १२ तोले, वरनाकी छाल ४ तोले और इलायची, दालचीनी, तेजपात १-१ तोलेका चूर्ण मिला मटरके समान गोलियाँ बांधें। (शा० स०)

मात्रा—२ से ३ गोली तक त्रिफलाके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—यह गूगल कण्ठमाला, अपची, अर्बुद, कर्कस्फोट (Cancer), ग्रन्थि, व्रण, गुल्म, कुष्ठ,और भगदर आदि उग्ररोगोमें अति लाभदायक है। ओषधि ३-४मास तक सेवन करनेसे ये सब रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

(४३) लाक्षादि गुग्गुलु।

विधि—लाख, हडसंधारी, अर्जुन वृक्षकी छाल, असगंध, नागबला (गंगेरण)

* मूत्रदाहान्तक चूर्णका पाठ द्वितीयखण्डमें दिया हैं।

ये सब समभाग लें, और सबके बराबर शुद्ध गूगल लें । सबको मिला घीके साथ ५ दिन कूटकर मटर समान गोलियाँ बनावें। (चक्रदत्त)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ बार घी-शहद मिलाकर चाटें।

उपयोग—यह गूगल मूढ़मार चोट, रक्तका जमाव, हड्डी टूटना, हड्डी मुड़ना आदि दोषोंको दूर करता है । अस्थिसंधानक लेप लगानेके साथ इस ओषधिका सेवन करनेसे शीघ्र आराम होता है ।

(४४) आभा गुग्गुलु ।

विधि—बबूलकी छाल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोठ, कालीमिर्च और पीपल सबको सम ाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें । फिर चूर्णके-बराबर शुद्ध गूगल लें। फिर गोघृत मिला १२ घण्टे कूटकर मटरके समान गोलियाँ बनावें (चक्रदत्त)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार घी-शहदके साथ दें ।

उपयोग—इस औषधके सेवनसे हड्डी मुड़ना, हड्डी टूटना, आमाशय या अन्त्रमें रक्त जम जाना, आँतपर चोट लगना, और मूढ़मार आदि दोष दूर होते हैं ।

(४५) कैशोर गुग्गुलु ।

विधि—भैंसके नेत्रके समान चमकवाला उत्तम भैंसागूगल, हरड़, वहेड़ा और आँवला प्रत्येक ६४–६४ तोले और जौकुट ताजी गिलोय १२८ तोले लेवें । पहिले त्रिफला और गिलोयको ८ गुने जलमें मिलाकर अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर छानकर कड़ाहीमें भरें। उसपर कपड़ा बाँध, उसमें गूगल रखें । पश्चात् कड़ाहीमें से बार-बार कुड़छीसे भर-भरकर क्वाथको गूगलपर डालते जायँ । गूगल सब छन जानेपर कपड़ेपर रहे हुए कचरेको फेंक देवें और जलको छानकर पुन: कड़ाहीमें पकावें । गाढ़ा होनेपर गूगलकी सुगन्ध आने लगे तब नीचे उतार लें । शीतल होनेपर उसमें हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडङ्ग २-२ तोले; निसोत और दन्तीमूल १-१ तोला, सूखी गिलोय ४ तोलेका चूर्ण मिलावें । फिर गोघृत ३२ तोले, थोड़ा-थोड़ा मिलाकर कूटें । पश्चात् ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बनावें । (चक्रदत्त)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें २ बार यूष, दूध या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवे ।

उपयोग—इस गूगलके सेवनसे नये वातरक्त, समस्त शरीरमें फैले हुए एकदोषज, द्विदोषज, पीपके स्रावयुक्त और जीर्ण शुष्क, सब प्रकारकें वातरक्त

दूर होते हैं । यह गूगल व्रण, कास, सब प्रकारके कुष्ठ, समस्त गुल्म, शोथ, उदररोग, पाण्डु, प्रमेह, मन्दाग्नि, मलमूत्रावरोध और प्रमेहपिटिका (अदीठ Carbuncle) आदि सब रोगोंको नष्ट करता है । नित्य सेवनसे जरा और समस्त रोग नष्ट होकर किशोरावस्थाकी प्राप्ति होती है । इसके सेवनमें वात-रक्तके रोगी को आहार-विहारका अधिक बन्धन नहीं है, ऐसा मूल ग्रन्थकारने लिखा है, फिर भी रोगको बढ़ानेवाले आहार-विहारका त्याग करना ही हितकर माना जायगा ।

(४६) सप्तविंशतिको गुग्गुलु ।

विधि—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, नागरमोथा वायविडङ्ग, गिलोय, चित्रकमूल, कचूर, छोटी इलायची, पीपलामूल, हाऊबेर, देवदारु तुम्बरु (नेपाली धनिया), पुष्करमूल, चव्य, इन्द्रायणकी जड, हल्दी, दारुहल्दी, बिडनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, गजपीपल, इन २७ ओषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें । पश्चात् चूर्णसे द्विगुण शुद्ध गूगल मिला घी डाल, कूटकर १-१ मासेकी गोलियाँ बनावें । (चक्रदत्त)

मात्रा—१ से २ गोली शहदके साथ दिनमें २ बार दें ।

उपयोग—यह गूगल भगन्दर, अर्श, कास, श्वास, शोथ, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बृक्कशूल, गुदामें पीडा, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि और कृमिरोगको नष्ट करता है, जीर्णज्वर और क्षय रोगीके लिये हितकर है, तथा इस गूगलका दीर्घकाल तक सेवन करनेपर आनाह, उन्माद, कुष्ठ, समस्त प्रकारके उदररोग, नाडीव्रण, दुष्ट व्रण, सब प्रकारके प्रमेह, श्लीपद आदि समस्त रोग नष्ट होते हैं ।

(४७) विरेचन वटी ।

विधि—एलुवा ४ तोले, उसारेरेवन २ तोले, भुनी हीग और सोहागेका फूला ६-६ मासे मिलावें । फिर अमलतासकी फलीके गर्भको जलमें उबाल मसलकर छान लें । इस जलके साथ घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेलखडीके चूर्णमें डालते जायें ।

मात्रा—१ से ४ गोली रात्रिको सोनेके समय जलके साथ देवें ।

उपयोग—इन गोलियोंसे सुबह एक या दो जुलाब लगकर पेट साफ होता है । उदररोग, बवासीर, और दूसरे रोगोंमें पेट साफ रखनेकी जरूरत हो, तब इसका उपयोग होता है । सामान्यतः एक गोली लेनेसे एक ही दस्त होता है । इसके सेवनसे उदरमें बिल्कुल तकलीफ नहीं होती ।

यह वटी अन्नको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचाती । उदरमें पीडा नहीं करती । उदरमें वायु भरा रहता हो, तो उसे दूर करती है और

कीटाणुओंका नाश करती है। यह निर्भय ओषधि है। इसका उपयोग अनेक वर्षोंसे हम करते रहे हैं। बालक, युवा, वृद्ध, कोमल प्रकृतिकी स्त्रियाँ, सबको आवश्यकतापर देते रहते हैं।

(४८) हिस्टीरियानाशक वटी।

विधि—गाँजा, कपूर, बच १-१ तोला, जटामांसी २ तोले, खुरासानी अजवायन ४ तोले और केशर ३ माशे लें। सबको मिला, कूट करके बारीक चूर्ण करें। फिर ६ घण्टेतक अदरखके रसमें खरल करके चनके समान गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे हिस्टीरिया रोग २१ रोजमें दूर होता है। यह मगजको शान्त बनाती है। निकम्मा विचार दूर करती है पुरुषोंको शक्ति प्रदान करती है, एवं पचनक्रिया सुधारती है।

(४९) वातहर गुटिका।

विधि—भिलावा ८ तोले, पीपलामूल, पीपल, अकरकरा, सोंठ और मालकांगनी प्रत्येक १-१ तोला लें। सबको बारीक पीसकर ५ तोले गुड़ मिलाकर बेरके समान गोलियाँ बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार घीके साथ दें। ६ माशे घी चाटकर गोली निगलें, फिर ६ माशे घी और चाट लें।

उपयोग—यह गुटिका संधिवात, अर्दित, आमवात, ऊरुस्तंभ (आढ्यवात) कटिग्रह, पक्षाघात आदि वात रोगोंका नाश करती है।

सूचना—तैलमें बने हुए पदार्थ ज्यादा खानेसे जल्दी लाभ होता है। दूध और मीठा पदार्थ उपयोगमें नही लेना चाहिये।

(५०) चींचाभल्लातक वटी।

विधि—इमली और भिलावा समभाग मिला कूटकर झाड़ीबेरके समान गोलियाँ बाँधे। इमली नई लें; नमक मिली हुई नहीं लेनी चाहिये। दोनों वस्तुओंको कूटनेसे गोली बन जाती हैं। जल मिलानेकी जरूरत नहीं है। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २-३ बार मट्ठे या जलके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे विसूचिका (कॉलेरा), संग्रहणी अतिसार, उदरशूल, उपदंशके हेतुसे होनेवाले संधिवात, पक्षाघात, अर्दितवायु, मन्यास्तम्भ,

कटिग्रह, गृध्रसी, शिरागतवायु आदि दोष दूर होते हैं । इसके साथ पथ्यापथ्यका विशेष बन्धन नही हैं । यह विसूचिकाकी अक्सीर औषधि समझी गई हैं, एव और रोगोमें भी अच्छा प्रभाव दिखाती है ।

विसूचिकाके कीटाणुओंके आक्रमणजन्य और अपचनजन्य २ प्रकार हैं । इन दोनोमें कीटाणु प्रधानरोग विशेष घातक है । इसके प्रारम्भिक लक्षण दस्त और वमन हैं । दस्त और वमन थोडे थोडे समयके अन्तरपर होते रहते हैं । प्यास लगती है, देह शीतल होने लगता हैं । और निर्बलता बढती हैं । यदि १० घण्टेतक योग्य उपचार न किया जाय, तो रोग असाध्य बन जाता हैं । अपचनजन्य विकारमें भी दस्त और वमन होते हैं, किन्तु बहुत समयके पश्चात् । उदरमें वायु उत्पन्न होती हैं, अधिक प्यास नही लगती और अधिक निर्बलता भी नही आती । इन दोनो प्रकारके विसूचिकाकी प्रथमावस्थामें इस वटीका उपयोग किया जाय, तो रोगवृद्धि रुक जाती हैं और थोडे ही समयमें रोगी स्वस्थ होजाता हैं । अपचनजन्य विसूचिकामें २-२ गोली दिनमें ३ या ४ बार मट्ठेके साथ देनी चाहिये । यदि कीटाणुजन्य प्रबल विसूचिका है तो १-१ गोली आध आध घण्टे पर प्याज के रस या २-२ तोले जलके साथ देनी चाहिये । विसूचिका रोग जब तक शमन होकर प्रकृति स्वस्थ न बने, तब तक जलके अतिरिक्त कुछ भी भोजन नही देना चाहिये । जलभी १-१ चम्मच वारम्वार देते रहना चाहिये ।

यदि कीटाणुजन्य विसूचिका उपचार न करनेसे बढ गया हो, रोगी अशक्त हो गया हो, ५-५ मिनटपर सफेद जल जैसा दस्त होता रहता हैं, वमन भी बराबर होती रहती हो, मांसपेशियोमें आक्षेप आते हो, देह शीतल हो गया हो, तथा मुखमडल तेजोविहीन हो गया हो, ऐसी अवस्थामें इस वटीका उपयोग नही करना चाहिये । विसूचिकान्तक रस या विसूचिकाहर वटीका प्रयोग करना चाहिये । अग्निमावस्था जैसी स्थिति हो गई हो तो शिराद्वारा नमक जल चढाना पडता हैं ।

सग्रहणीमें अनेक प्रकार है । आमाशयकी पचनक्रिया निर्बल होनेपर आम विष होता रहता हैं । फिर मलके साथ आम अधिक निकलता रहता हैं । उसे आमग्रहणी कहते हैं । दूसरे प्रकारमें अन्त्रकी पचनक्रिया भी दूषित हो जाती हैं । यकृत् पित्तका स्राव न होनेसे मल सफेद रगके और दुर्गन्धयुक्त होते हैं तथा लघु अन्त्रमें उग्रता होनेसे पचनक्रिया नही होती और शोषणक्रिया योग्य न होनेसे पतला रस रह जाता हैं । यदि आमाशय, यकृत् और अन्त्र सब दूषित हो, तो दोनो स्थानकी पचनक्रिया बिगडती हैं । फिर आमाधिक्य सफेद, दुर्गन्धमय पतले

दस्त होते हैं । यदि पतलापन मर्यादामें हो और दिनमें ३–४ दस्तसे अधिक न होते हों तो यह चीचाभल्लातक वटी व्यवहृत होती है । यह वटी आमाशय, अन्त्र और यकृत्, तीनोंको बलप्रदान करती है । इस हेतुसे उक्त तीनों प्रकारकी ग्रहणी में इसका उपयोग निर्भयतापूर्वक होता है ।

वक्तव्य—जिस संग्रहणीमें अधिक पीला, उष्ण और जलसदृश प्रवाही मल हो, उदरमें मरोड़ा आता हो, कभी कभी रक्तस्राव भी होता हो, एक दिनमें १०–२० या अधिक बार दस्त होते हों, उसपर इस वटीका प्रयोग नहीं हो सकता । पर्पटी कल्पका उपयोग होता है ।

अतिसार और ग्रहणीरोगमें मट्ठेके साथ इस वटीका सेवन करानेपर सत्वर लाभ पहुँचता है । दस्त कम होते हैं; वेदनाका शमन होता है, और उदरमें अफारा नहीं आता ।

उपदंश, (फिरंग) रोग कीटाणुजन्य है । रोग शमन हो जानेके पश्चात् यदि रक्तके भीतर इस रोगके कीटाणु शेष रहजाते हैं, तो विस्फोटि, फोड़े-फुन्सी, संधिवात, पक्षाघात, अर्दित, कटिवात आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं । इस रक्त विकारकी अथवा उपद्रवरूप वातविकारकी प्रथमावस्थामें ही इस वटीका प्रयोग किया जाय और पथ्यपालन किया जाय, तो लाभ पहुंच जाता है । यदि रोग जीर्ण हो गया हो, तो मल्लप्रधान औषधिका सेवन कराया जाता है ।

उपदंशके हेतुसे संधिवात हुआ हो, या अर्दित, पक्षाघात, कटिग्रह, गृध्रसी आदि वात हुए हों, अथवा शिरागत वातविकार हुआ हो, तो २-२ गोली जलके साथ देते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है ।

सूचना—इस वटीके सेवनकालमें मांसाहारका त्याग कर देना चाहिये । एवं मूत्र लाल हो जाय, तो इस वटीका सेवन बन्दकर देना चाहिये और नारियल का जल पिलाना चाहिये ।

[५१] धात्रीभल्लातक वटी ।

विधि—भिलावा १ सेर, हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक ४०-४० तोले; सौंठ, कालीमिर्च और पीपल३०–३० तोले; काले तिल एक सेर और गुड़ पुराना १ सेर लें । सबको बारीक कूट, गुड़ मिलाकर छोटे बेरके समान गोलियाँ बांधें ।

(आ० नि० मा०)

सूचना—भिलावा कूटने समय हाथको तैल लगा लें; लोहेकी कलछीसे चलावें और निकालें । दूसरी औषधियोंका चूर्ण मिलाकर कूटनेपर भिलावेके तैलका भय कम हो जाता है ।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह वटी आमाशय और उदरके सब विकार, शूल, आमवात, सब प्रकारके वातरोग, उपदंश अथवा किसी हेतुसे होनेवाला संधिवात, अर्धाङ्गवात, ऊरुस्तम्भ (आढ्यवात) और सुजाकके उपद्रव आदिको दूर करती है।

आमाशयकी पचनक्रिया आमाशय रसके स्रावपर अवलम्बित है। आमाशयस्राव कम होनेसे पचनक्रिया मन्द हो जाती है, आमोत्पत्ति होती है और मुंह फीका रहता है। यह कफविकार कहलाता है। आमाशयस्राव कभी कम और कभी अधिक होनेपर आमाशयकी वातवाहिनियोंकी शिथिलता और उत्तेजना मानी जाती है अतः इसे वातविकार कहा है। आमाशय रसस्राव तीव्र, अति अम्ल और अधिक मात्रामें होनेपर उसे पित्तप्रकोप संज्ञा दी है। यह प्रकार विशेषतः अम्लपित्त रोग प्रतीतमें होता है। इनमेंसे वात विकारज या कफविकारज अग्निमांद्य होनेपर धात्रीभल्लातक वटीका सेवन कराया जाता है।

उदररोग बहुधा पचनक्रिया विकृत होनेपर होता है। यह वटी आमाशय और यकृत, दोनोंको बल देती है। इस हेतुसे वातप्रधान उदररोग, प्लीहोदर और यकृद्दाल्युदरकी प्रथमावस्थामें इस वटीका उपयोग होसकता है।

उदरमें मलकी गांठ बनकर रुकने या कच्चा मल संगृहीत होनेपर उदरशूल उत्पन्न होता है। साथ साथ अपचनके या मलावरोधके अन्य लक्षण उपस्थित होते हैं। इनमेंसे अपचनके हेतुसे उदरशूल हो, दूषित डकार आती हो, उदरमें भारीपन हो, तो यह वटी जल या मट्ठेके साथ दी जाती है। यदि मलावरोधज उदरशूल हो तो ६ माशेसे १ तोले हरडके क्वाथके साथ इस वटीका सेवन कराया जाता है।

आमवात (Rheumatism) की सम्प्राप्ति आमप्रकोप होनेपर होती है। डाक्टरीमें इसे कीटाणुजन्य माना है। इस रोगकी तीव्रावस्थामें स्थान स्थानपर बिच्छू काटनेके समान वेदना होती है, पेशाब लाल होता है तथा ज्वर १०२° से १०४° तक बढ जाता है। कितनेक रोगियोंको हृदयमें भी विकृति होती है। इस तीव्रावस्थामें यह वटी अच्छा लाभ पहुंचाती है। चिरकारी अवस्थामें ज्वर नहीं रहता तथा वेदना मन्द होजाती है उस समय भी यह वटी रक्तमें रहे हुये विषको जलाती है तथा हृदयेन्द्रिय और आमाशयिक पचन अवयवोंको सबल बनाती है। जिससे भावी आक्रमणसे रक्षा मिल जाती है। इसरोगसे पीडितोंको चाहिये कि, मधुर पदार्थोंका सेवन कमसे कम करें।

जिसतरह प्रदाह प्रधान वातरोगोंमें चोपचीभल्लातक वटी व्यवहृत होती है। उसी तरह यह वटी भी दी जाती है। जिन रोगियोंके रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल रहती है, जिनको खट्टे पदार्थके सेवनसे सब सांधे जकडे जाते हैं और दांत आम जाते हैं उनको चोपचीभल्लातकके स्थानपर धात्रीभल्लातक वटी दी जाती है।

सुजाकरोग अति दुःखदायी है। इसका दमन होनेपर रोगी उससे निवृत्त हो गया, ऐसा मान लेता है और उपचार बन्द कर देता है। इतना ही नहीं आहार-विहारमें स्वच्छन्दी बन जाता है। परिणाममें सुजाकके कीटाणु विष रक्तादि धातुओंमें लीन होकर दृढ़ होजाता है। फिर साँधे साँधे जकड़ना, फोड़े फुन्सी होना, मूत्रमें जलन होना आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन उपद्रवोंके दमनार्थ इस धात्रीभल्लातक वटीका प्रयोग होता है। इस वटीसे कीटाणुनाश और रक्तप्रसादन होकर उपद्रव दूर होजाते हैं। यथार्थमें पूर्णरूपसे विषको नष्ट करनेके लिये चन्द्रप्रभावटी और गोक्षुरादि गुग्गुलुका सेवन १ वर्ष पर्यन्त पथ्यपालनसहन कराना चाहिये।

उक्तरोगोंके अतिरिक्त अर्श रोगपर भी यह वटी हितकारक है। इस वटीके सेवनसे गुदनलिकामें रक्तदबाव कम होजाता है। उदरमें वायुकी उत्पत्ति बन्द होती है तथा उदरशुद्धि होती है। इस हेतुसे अर्शका कष्ट दूर होजाता है।

स्त्रियोंके मासिकधर्ममें कष्ट होता हो, रजःस्राव कम गिरता हो। फिर उस हेतुसे कटिमें वेदना, मस्तिष्कमें भारीपन, दृष्टिमान्द्य, निर्बलता, श्वेतप्रदर और अग्निमान्द्यादि रहते हों, तो उनको धात्रीभल्लातक वटी दी जाती है।

(५२) गन्धक वटी।

विधि—शुद्ध गन्धक २ तोले, चित्रकमूल, पीपल, कालीमिर्च, सब १-१ तोला; सोंठ २ तोले; जवाखार, सैंधानमक, कालानमक और साँभरनमक आधा-आधा तोला लें। सबको मिला नीबूके रसकी ७ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें ३ बार भोजनके दो घण्टे बाद।

उपयोग—यह वटी मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण, शूल, सूक्ष्म कृमि, ग्रहणी दोष, आमवृद्धि, गुल्म और उदावर्तका नाशकर अग्निको प्रदीप्त करती है। नीबूके रसकी ७ भावना देनेपर यह तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है। उदावर्त—उदरमें उत्पन्न दूषित वायुके ऊपर चढ़नेको तुरन्त दबाती है, एवं शूल, बेचैनी आदिको दूर करती है।

यह वटी उत्तम कीटाणुनाशक और दीपन-पाचन है। इसके सेवनसे आमाशयिक रस तथा यकृत् पित्तका स्राव अधिक होता है। जिससे आमाशय और अन्त्र, दोनों स्थानोंकी पचनक्रिया सबल बनती है। इस हेतुसे अग्निमान्द्य, आमवृद्धि उदरमें भारीपन, उदरकृमि और मलावरोधादि विकार दूर होजाते हैं। एवं यकृत् पित्त कम मिलनेसे उत्पन्न मलमें दुर्गन्ध, मल श्वेत वर्णका हो जाना, सूक्ष्म कृमि हो जाना आदि लक्षण भी दूर होजाते हैं। आमाशय, अन्त्र, और यकृत् निर्बल

होनेपर घृतादिका सेवन अधिक हो जाय, तो अपचन होता है। फिर उदरमें वेदना, आफरा, बार बार दूषित डकार आना, किसीको थोड़ा थोड़ा दस्त दिनमें ३–८ बार होना और अरुचि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं तथा बार बार भोजन करने का स्वप्न आता रहता है। इस विकारपर इस वटीका अच्छा उपयोग होता है। १–१ घंटेपर २–३ वार गन्धक वटी देनी चाहिये। यदि रोग जीर्ण हो तो इस वटीका सेवन एकाधमास तक करानेपर आमाशय, अन्त्र और यकृत् सबल बन जाते हैं। फिर अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। इस वटीमें गन्धक, चित्रकमूल, पिप्पली, कालीमिर्च, सोंठ, ये सब अग्निप्रदीपक द्रव्य हैं। यदि अपचनमेंसे विसूचिकाकी प्राप्ति हो गई हो अर्थात् वमन और दस्त होते रहते हैं तथा उदरमें पीड़ा बनी रहती हो, तो इस वटीका सेवन १-१ घंटे बाद ३-४ बार प्याजके रसके साथ करनेसे लाभ होजाता है। रोग मंद मंद बना रहे, तो यह वटी दिनमें ३ बार मट्ठेके साथ ४–६ दिनतक देनी चाहिये।

शारीरिक निर्बलता और पाण्डुताकी संप्राप्ति आमप्रकोपसे हुई हो, तो गंधक वटीका सेवन भोजन करनेके २घण्टे बाद कुछ दिनोंतक करानेसे पचनक्रिया सबल बनती है और आमोत्पत्ति नहीं होती। फिर शनैः शनैः पाण्डुता और निर्बलता दूर हो जाती है।

यकृत् पित्तका स्राव कम होने तथा दूषित पदार्थ खाने, मांसाहार अधिक करने अथवा अपथ्य या संयोग विरोधी पदार्थोंका एक साथ सेवन करनेपर उदरमें सूक्ष्म कृमियोंकी उत्पत्ति होजाती है। अनेक बार ये कृमि १२ घण्टोंमें ही उत्पन्न होकर मलके साथ असंख्य निकलते हैं। इस विकृतिको दूर करनेके लिये पहले एरण्ड तैलका विरेचन लेकर उदरको साफ कर लेना चाहिये। फिर गंधक वटीका सेवन पथ्य पालनसह कुछ दिनोंतक करानेसे विकार दूर होजाता है।

वक्तव्य—सूक्ष्म कृमिवालोंको प्रायः दूध अनुकूल नहीं रहता। दही और मट्ठा विशेष अनुकूल रहता है। ल्हसुन और प्याज भी हितावह है।

(५३) कन्यालोहादि गुटिका

विधि—एलुवा १० तोले, कसीस ७॥ तोले, दालचीनी ५ तोले, इलायची ५ तोले, सोंठ ५ तोले, गुड़कन्द २० तोले लें। सबको मिलाकर मटरके समान गोलियाँ बाँधलें। (आ० औ०)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ वार जलके साथ दें।

उपयोग—यह गुटिका अति सौम्य है। स्त्रियोंको मासिकधर्म ज्यादा होता हो, या अनियमित आता हो, ऋतु ज्यादा दिनोंसे बन्द हो, इन सबको सुधारती है।

मासिकधर्म आनेपर १० दिनतक यह औषधि बन्द रखें; पश्चात् पुनः प्रारम्भ कर ।

इस वटीका उपयोग हम अनेक वर्षोंसे सफलता पूर्वक करते रहे हैं। कितनीक युवतियोंको मासिकधर्म आनेके प्रारम्भकालसे ही उदरमें अधिक पीड़ा होती है और मासिकधर्म शुद्धि नही होती । फिर शिरदर्द, व्याकुलता, अग्निमान्द्य, अरूचि मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । ऐसी स्त्रियोंको ४-६ मासतक इस वटीका सेवन करानपर मासिकधर्म नियमित आने लगता है। छोटी आयुवाली स्त्रियोंके समान बड़ी आयुवाली स्त्रियोंको भी यह वटी दी जाती है।

वक्तव्य—यदि रुग्णाके देहमें पाण्डुता आ गई हो, रक्तकी न्यूनता हो, तो पहले रक्तवर्द्धक औषधि देनी चाहिये । फिर मासिकधर्मकी शुद्धि न हो तो इस वटीका प्रयोग करना चाहिये ।

इस औषधिके सेवनकालमें द्विदल धान्य (चना, मटर, सेम आदि), मिठाई और पचनमें भारी हो ऐसे पदार्थोका सेवन कम करना चाहिये । अन्यथा क्वचित् किसीको उदरमें पीड़ा होने लगती है ।

(५४) कासीसादि वटी।

प्रथमविधि—कसीस, सोहागेका फूला, भुनी हींग और एलुवा, सबको समभाग मिला घीकुँवारके रसमें ६ घंटे खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें। इस वटीका नाम भैषज्यरत्नावली और आयुर्वेद संग्रहकारने रजः प्रवर्त्तनी वटी रक्खा है।

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी स्त्रियोंके मासिकधर्म कम होना, मासिकधर्मके समय दुःख होना; अनियमित ऋतु आना; इन सब दोषोंको दूर करके गर्भाशयको शुद्ध बनाती है । मासिकधर्म आनेपर १० दिनतक ओषधि-सेवन बन्द करें। यह वटी कन्यालोहादि वटी की अपेक्षा उष्ण है ।

दूसरी विधि—कसीस, भुनी हींग, सोहागेका फूला, सोंठ, चित्रकमूल, इन्द्रायनकी मूल, इन्द्रायनके फल, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, हल्दी, दारुहल्दी, कपूर और समुद्रझाग, इन १४ ओषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। पश्चात् घीकुँवारके रसमें खरलकर चनेके समान गोलियाँ और सोगठियाँ (गिखरके आकारवाली गोलियाँ) बना लेवें । (र० त०)

मात्रा—२ से ४ गोलीतक दिनमें २ वार जलके साथ देवें और आवश्यकतापर सोगठीको जननेन्द्रियमें रखें।

उपयोग—यह वटी स्त्रियोके नष्टार्त्तव और पीड़ितार्त्तव आदि मासिक-

उपयोग—यह गुटिका बालकोंके डब्बारोग (Broncho Pneumonia) को दूर करनेमें अति उपयोगी है। एक दस्त और एक वमन कराकर रोगको सत्वर शान्त करती है।

[६०] बालजीवन वटी ।

विधि—गोरोचन ३ माशे, एलुवा ६ माशे, उसारेरेवन, केशर, कटेलीका जीरा, जवाखार और सत्यानाशीके बीज, प्रत्येक १-१ तोला लेवें। सबको कूट-पीस छानकर अदरखके रसमें ३ घंटे घोट मूंगके समान गोलियां बना कर छायामें सुखालें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१ गोली आवश्यकतापर माताके दूध या शहदमें दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे बच्चोंके पसली (डब्बा) रोग, कब्जियत, मूत्रावरोध, अफारा, कास आदि रोग दूर होते है, और बच्चे नीरोग होजाते हैं। इस वटीका उपयोग विशेषत डब्बानाशक गुटिकाका उपयोग करनेके पश्चात् किया जाता है। क्वचित निर्बल शिशु के लिये प्रारम्भमे ही यह देनी पडती है।

(६१) तृष्णाघ्नि गुटिका

विधि—नीलकमल, कूठ, धानकी खील और बडके अंकुर, सबको समभाग मिला, महीन चूर्णकर शहदके साथ २–२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (चक्रदत्त)

मात्रा—१-१ गोली मुंहमें रखकर एक दिनमें १५-२० गोलियोंका रस चूसते रहें।

उपयोग—यह वटी भयंकर बढी हुई तृषा और वमनको तत्काल नष्ट करती है। किसी भी रोगमें तृषाकी वृद्धि होनेपर इस गुटिकाका उपयोग हो सकता है।

(६२) चतुःसमो मोदक ।

विधि—सोंठ ५ तोले, शुद्ध भिलावा ५ तोले, विधारा ५ तोले और पुराना गुड १५ तोले लेवें। सोंठ आदि ओषधियोको कूट, गुडकी चाशनीमें मिलाकर ३-३ माशेके मोदक बना लेवें। (व० से०)

मात्रा—१ से २ मोदक दिनमें २ बार लेवें। मोदक-सेवनके पहिले और पीछे ३-३ माशे गो-घृत चाट लेवें।

उपयोग—यह मोदक सब प्रकारके अर्शका नाश करनेमें अति उपयोगी है। यह पाचनक्रिया सुधारता है, दूषित आमदोषको नष्ट करता है, और वृद्ध मनुष्यको भी तरुण बना देता है।

(६३) अग्निप्रदीपक गुटिका ।

विधि—हरड़, आँवला, वहेड़ा, जवा हरड, चित्रकमूल, अजमोद, काला-जीरा, सफेद जीरा, सैंधानमक प्रत्येक ४-४ तोले मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। पश्चात् १० सेर अमरबेलके रसमें ७ दिन भिगोदे । ओपधिके १ इञ्च ऊपर रहे, उतना रस भरें । ८ वें दिन कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढ़ा मन्दाग्नि देकर रस सुखा देवें । कडाही शीतल होनेपर ८ माशे शुक्ति भस्म मिला खरलकर छोटे बेरके समान गोलियाँ बनावें । (साईंजी गुढ़ा ग्रामवाले)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ लेवे । ओषध लेनेके पहले १ मूली खा लेवें ।

उपयोग—यह गुटिका मन्दाग्नि, पुराना अजीर्ण रोग, मलावरोध, अरुचि, उदरशूल, मूत्रविकार, रक्तदोष, खट्टी डकार आना आदि दोषोंको दूरकर जठराग्निको प्रदीप्त करती हैं ।

जब पित्तप्रकोप होकर विदग्धाजीर्ण रोग उत्पन्न होता है, फिर रोग पुराना होनेपर कफ और आमकी वृद्धि होती है, हृदयकी गति मन्द होती है, और शरीर बहुत अशक्त होजाता है; ऐसी स्थितिमें यह गुटिका अच्छा प्रभाव दिखाती है ।

पथ्य—मूली अथवा चौलाईका शाक और बाजरे तथा गेहूँकी रोटी । खट्टा पदार्थ और पक्का भोजन छोड़ देना चाहिये ।

(६४) कस्तूर्यादि स्तम्भन ।

विधि—कस्तूरी १ भाग, केशर, जायफल और लौंग २–२ भाग, शुद्ध अफीम ३ भाग और शुद्ध भाँग ७ भाग लें । सबको मिला शहदमें खरल कर १–१ रत्तीकी गोलियाँ बना लें । (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली शामको मिश्री मिले दूधके साथ दें ।

उपयोग—यह गोली अत्यन्त कामोत्तेजक और शुक्रका स्तम्भन करानेवाली है । कफ, श्वास, मन्दाग्नि, निद्रानाश अतिसार और पेचिश आदि रोगोंको भी दूर करती है ।

(६५) लहशुनादि वटिका ।

विधि—लहशुन, जीरा, भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध गन्धक और सैंधानमक, इन ८ ओषधियोंको समभाग मिला नींबूके रसमें ३ दिन खरलकर मटरके समान गोलियाँ बनालें । (वै० जी०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें ३ बार जल या मट्ठेके साथ दें । विसूचि-

कामें ३—३ गोलियाँ आध-आध घण्टेपर देते रहें ।

उपयोग—यह वटी अजीर्ण, कृमि, उदरशूल, अफारा और विसूचिकाको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करती है । यह औषधि अपचन और विसूचिकाके लिये अत्यन्त लाभदायक है ।

रसायोगसागरमें इस वटीका नाम 'गंधक वटी', 'विसूचिका विध्वंसिनी और 'विषदुरसायन' लिखे हैं । यह वटी विसूचिकाके लिये अति हितकर है । नींबू और अदरखके रसमें संधानमक और कालानमक १–१ रत्ती मिलाकर इस रसके साथ यह वटी देनेसे शूल, वमन, विसूचिका और कृमि-आदि रोग नष्ट होते हैं ।

(६६) विसूचिकाहर वटिका ।

विधि—भुनी हींग ३ तोले; आमकी गुठलीकी गिरी और लालमिर्चके छिलके २—२ तोले, अफीम, जायफल, जावित्री और शुद्ध सिंगरफ १—१ तोला और पिपरमेन्टके फूल ६ माशे लें । इन आठ औषधियोंको मिलाकर ६-६ घंटे नींबू और लहसुनके रसमें खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें ।

मात्रा—१से दो गोली १ १ घंटेपर रोग काबूमें आने तबतक १ तोला जलके साथ या अर्कके साथ देते रहें । रोग कम होनेपर औषधिकी मात्रा कम करें । वमन, अतिसार या पेचिशमें दिनमें ३ बार जलके साथ देवें ।

सूचना—पिलानेके लिये १। सेर जलमें १ तोला लौंग या जायफल मिलाकर उबाल लें । शीतल होनेपर छानकर आवश्यकतानुसार बार-बार १-१ तोला जल पिलाते रहें ।

उपयोग—विसूचिका (कालेरा) के लिये यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है । अनेक मरणोन्मुख रोगी इससे थोडे ही घंटोंमें स्वस्थ हो गये हैं । इसके प्रयोगसे कालेराके वमन और दस्त, दोनों सत्वर रुक जाते हैं, तृषा कम होती है, कीटाणु नाश होते हैं, अन्तर्दाह शमन होता है । हाथ-पैरमें ऐंठन आना रुक जाता है । नाडियोंमें रही हुई शीतलता सत्वर दूर होती है, तथा पचनक्रिया प्रदीप्त होकर रोगी सत्वर नीरोगी बन जाता है । ऐसे ही यह वटी पेचिश अतिसार, अजीर्णजन्य अतिसार, अरुचि, वमन आदि रोगोंको भी दूर करती है । यह छोटे बालकोंको थोडे परिमाणमें दी जाती है । बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष आदि सबके लिये यह लाभदायक है ।

[६७] हिंग्वादि वटी ।

विधि—भुनी हींग, अम्लवेत, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, संधानमक, विडनमक और कालानमक, इन ९ औषधियोंको समभाग मिलाकर बिजौरे नीबूके

रसमें ३ दिन खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें । (च० द०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २-३ बार मट्ठेके साथ सेवन करें, अथवा १-१ गोली करके रस चूसते रहें ।

उपयोग—इस गोलीके उपयोगसे वातशूल कैसा ही हो, तत्काल बन्द हो जाता है । अफारा दूर होता है, तथा पचन-क्रिया प्रबल बनती है ।

(६८) त्र्यूषणादि गुग्गुलु ।

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड, बहेड़ा, आँवला, १०-१० तोले और शुद्ध गूगल ६० तोले लेवें । सबको मिला गोखरूके क्वाथमें ३ दिन खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनालें । (च० द०)

मात्रा—इस गूगलके सेवनसे वायुका अनुलोमन होता है; संचित आमविष जल जाता है; नये आमकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध होता है; पचनक्रिया सबल बनती है, और कोष्ठ-शुद्धि नियमित होती रहती है । इन हेतुओंसे उदरमें वायु भरा रहना, बेचैनी, शिरदर्द, पचनशक्तिके विकार-जनित प्रमेह, मूत्रविकार और उदररोग नष्ट होकर शरीर सुदृढ और उत्साही बन जाता है ।

(६९) स्वादिष्ट पाचनवटी ।

विधि—सोंठ, पीपल, लौंग और दालचीनी २-२ तोले; धनिया, अकलकरा, चित्रकमूल, कालीमिर्च, ४-४ तोले; कालाजीरा, सैंधानमक, कालानमक, ८-८ तोले; भुना जीरा १२ तोले और अनार की खटाई ६० तोले मिलाकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें ।

वक्तव्य—यदि अनार खटाई न मिल सके तो ४ गुने नींबूके रसमें त्रिकटु आदि ओषधियोंके चूर्णको मिला मिट्टीके या एनेमलके पात्रमें गरमकर गोली बांधने लायक कल्क बना लेवें । फिर उसमें नमक मिलाकर गोलियां बना लेवें ।

मात्रा—२ से ६ गोली दिनमें ३ बार लेवें; या १-१ गोली मुँहमें रखकर रस चूसते रहें ।

उपयोग—इस गोलीका रस चूसते रहनेसे लालास्राव बढ़ता है; फिर उसके अनुरूप पाचक पित्तके स्राव की वृद्धि होती है । इस हेतुसे अपचन, आमवृद्धि, अरुचि, अग्निमान्द्य, उदरमें वायु भरा रहना, उदरशूल, अपानवायुका अवरोध, कब्ज, उबाक, बेचैनी, शिरदर्द आदि विकारपर इस वटीसे सत्वर लाभ पहुँच जाता है ।

रुचि उत्पादक मुख्य ओषधियोंके भीतर यह उत्तम समझी जाती है । आमाशयसे लेकर बृहदन्त्र तकके दोषोंको हटाती है, और मनको प्रफुल्लित बनाती है ।

(७०) सर्पगन्धादि गुटिका।

विधि—सर्पगन्धा १० सेर, खुरासानी अजवायन २ सेर, जटामांसी और भांग १-१ सेर मिला जौकुट-चूर्ण करें। उसे अठगुने जलमें रात्रिको भिगो सुबह मन्दाग्नि पर पकावें और लकडीसे हिलाते रहें। अष्टमांश जल शेष रहनेपर नीचे उतार मसलकर कपडेसे छान लेवें। फिर दूसरी बार छान मन्दाग्निपर पकावें। जब क्वाथ कुडछीमें लगने लगे ऐसा गाढा हो, तब उसे नीचे उतार धूपमें सुखावें। गोली बनने योग्य होजाय तब उसमें पीपलामूलका चूर्ण २० तोले मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें (श्री० प० यादवजी त्रिकमजी)

मात्रा—२ से ३ गोली रात्रिको सोनेके १-२ घण्टे पहले जल या दूधसे दें।

उपयोग:—इस औषधिमें निद्राप्रद और रक्तदबावशामक गुण है। जब किसी रोग विशेषसे वेदना होने या मदात्यय, क्विनाइन विष, हिस्टीरिया, या शराब, उन्माद या मस्तिष्कमें अधिक उत्तेजना पहुँचनेसे निद्रा न आती हो, तब निद्रा लानेके लिये इस गुटिकाका प्रयोग किया जाता है। इसके सेवनसे शान्त निद्रा आ जाती है, तथा मस्तिष्कमेंसे रक्तका दबाव कम हो जाता है।

वृक्क प्रदाह होनेपर मूत्रमें ओज-धातु (एल्ब्युमिन) जाती है, तथा रक्तमें मूत्र विषका सञ्चय होता रहता है। फिर मस्तिष्कमें विष पहुँचकर रक्तदबाव वृद्धि करता है, निद्रा नहीं आती, शिरमें भारीपन बना रहता है। चक्कर आता है, तथा सर्वाङ्गमें शोथ प्रतीत होता है। उसपर इस वटी को सेवन करानेसे शान्त निद्रा आने लगती है। साथमें वृक्क विकार और मूत्रविष शमनार्थ योग्य उपचार करना चाहिये।

हिस्टिरिया रोगमें विविध लक्षण प्रकाशित होते हैं। अनेकोंको मस्तिष्कमें रक्तदबाववृद्धि होकर मुखमण्डलपर लाली, शिरमें भारीपन, चक्कर आना, निद्रा नहीं आना, मनमें विविध कल्पना आती रहती है, उसपर रक्तदबाव कम करके निद्रा लानेके लिये यह वटी प्रयुक्त होती है मानसिक उद्वेग अधिक रहता हो, तो साथमें कस्तूरी भी दीजाती है।

शराब क्विनाइन आदि उग्र ओषधियोंकी मात्रा अधिक हो जानेपर निद्रानाश, रक्तदबाव वृद्धि, शोथ, धडकन, अरुचि, बेचैनी, मूत्रावरोध, मलावरोध आदि अनेक उपद्रव प्रकाशित होते हैं। इनमें रक्तदबाव वृद्धि को शमन करा शान्त निद्रा लानेके लिये शामको सर्पगन्धादि वटी दी जाती है।

(७१) ज्वरमुरारि गुटिका।

विधि—क्विनाइन सल्फास और शुद्ध रसोतको समभाग मिला जलके साथ

खरलकर १॥-१॥ रत्तीकी गोलियाँ बनाव । गोलियाँको बना बनाकर मेगनेशिया कार्बमे डालते जायँ । (श्री० डा० कपूरसिंहजी)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार दूध या जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह गुटिका सब प्रकारके विषमज्वरोंका नाश करती है । सतत, एकांतरा, तिजारी आदि बुखारोंको एक ही दिनमें रोक देती है । तापकी पाली हो उस दिन ६ घंटे पहले १ मात्रा दें । फिर २ घंटे बाद दूसरी बार दें । फिर ताप न आया हो, तो २ घंटे बाद तीसरी बार देनेसे ताप नहीं आ सकता है ।

जीर्णज्वरमें आधी मात्रा सुबह शाम देनेसे जीर्णज्वर, प्लीहावृद्धि, निर्बलता, अग्निमान्द्य, निस्तेजता आदि दूर होते हैं । इन्फ्लुएन्जा, आमवातिक ज्वर और क्षयज्वरमें भी यह वटी लाभदायक है ।

अपचन, कफप्रकोप या ऋतुपरिवर्त्तनसे उत्पन्न ज्वर तथा शीत लगकर आने वाले सब प्रकारके ज्वरोंपर वह वटी तत्काल गुण दर्शाती है । कब्जको भी दूर करती है । जिनको अधिक कब्ज हो, उनको पहिले कब्ज दूर करनेके लिये अश्वकंचुकी रस या ज्वरकेसरी वटी देकर कोष्ठशुद्धि कर लेनी चाहिये ।

सूचना—(१) चढ़े हुए ज्वरमें और बुखार बढ़नेके समय इस वटीका उपयोग नही करना चाहिये । ज्वर उतर जानेपर रोकनेके लिये देवें । (२) जो ज्वर उतरकर फिर तुरन्त बढ़ने लगता है; ऐसे ज्वरमें ताप उतरने लगे; तब यह वटी दीजाती है । जब तक शरीरमें ज्वर तीव्र हो; तब तक भोजन नहीं देना चाहिये । क्षुधा लगनेपर दूध, चाय, काफी या मोसम्बीके रसका सेवन कराना चाहिये । (४) जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाना चाहिये ।

चूर्ण प्रकरण ।

एक अथवा अनेक वनौषधियोंको मिला कूटकर चूर्ण तैयार किया जाता है । यदि सब ओषधियोंको अलग अलग कूट कपडछान करके मिलाया जाय, तो ठीक शास्त्रोक्त मात्रा अनुसार चूर्ण तैयार होता है । मुनक्का, अनारदाना, इमली आदि ओषधियाँ मिलाना हो, तो उनको पृथक् कूट करके ही मिलाना चाहिये । चूर्ण अति सौम्य होनेसे विशेष परिमाणमें सेवन करना पडता है । चूर्णमें हानि होनेकी प्रायः सम्भावना नहीं है । अनेक प्रकारके रसायन और भस्म वर्षों पर्यंत सेवन करके जिन्होंने अपनी प्रकृतिको परावलम्बी बना दी हो, उनके लिये चूर्णोंकी कृति अति शान्तिदायक मानी जाती है ।

चूर्ण बनानेके लिये ओषधियाँ शुद्ध, नयी और अच्छी—देखकर लानी चाहियें । पुरानी और दूषित ओषधियां त्याग दें । शास्त्रकारोंने ओषधियों का संग्रह करनेका कार्य वैद्यपर ही रक्खा है । भिन्न-भिन्न ओषधियोंके वीर्यका परि-पाक- काल शरद शिशिर और वसन्त ऋतु हैं । इनमेंसे जिस ऋतुमें ओषधिका पाक होता हो, उस समयपर जङ्गलके शुद्ध स्थानोंमें उत्पन्न हुई ओषधियोंको विधि-पूर्वक ला छायामें सुखाकर सम्हालपूर्वक रखना चाहिये ।

अपक्व, मकडीकी जाल लगी हुई, कीटाणुओंसे दूषित, अशुद्ध स्थानमें और असमयपर उत्पन्न हुई हो, ऐसी ओषधियोंको नहीं लेना चाहिये । किन्तु इस नियमका पालन वर्तमानमें बहुत कम अंशमें होता है ।

वर्तमानमें प्रायः पसारियोंके पाससे ही ओषधियां लीजाती हैं । ओषधि नयी-पुरानी, अच्छी-बुरी, शुद्ध-अशुद्ध कैसी है, इन बातका निर्णय करना दुष्कर होगया है । कितनेही वैद्य भी ओषधियोंको नहीं पहिचानते और पसारी अज्ञान, प्रमाद या स्वार्थवश गलत ही ओषधि दे देते हैं । फिर इच्छित लाभ कैसे हो सकेगा ! चिकित्सकोंको चाहिये कि, अच्छी रीतिसे जाच किये बिना ओषधियों को प्रयोगमें न लें ।

चूर्णोंको आवश्यक परिमाणमें तैयार करके कांचकी अच्छे डाटवाली शीशियोंमें सम्हालपूर्वक रखना चाहिये । बिना सम्हाल खुले रहे हुए चूर्ण थोडे समयमें ही हीनवीर्य होजाते हैं । क्षार-मिश्रित चूर्णोंको लोहपात्रमें नहीं रखना चाहिये, अन्यथा दूषित होजाते हैं ।

स्वादिष्ट विरेचन, लवणभास्कर, हिंग्वष्टक आदि शक्कर या लवणमिश्रित चूर्ण वर्षाके दिनोंमें नहीं बनाना चाहिये ।

इस प्रकरणमें कतिपय क्षारयुक्त चूर्ण भी लिखे हैं । क्षारको अस्थिपोष-णार्थ हितावह माना है, परन्तु धमनियोंकी दीवालोंको हानि पहुँचाता है । क्षार

में साधारणतया पाचक, तीक्ष्ण, पित्तवृद्धिकर और शुक्रनाशक गुण है। इसलिये पाचन-क्रियामें हितावह होनेपर भी क्षारयुक्त ओषधि क्षय, प्रमेह, व्रण, नेत्ररोग और पित्ताधिक रोगोंमें, सगर्भा स्त्रियों बालक और वृद्धोंको तथा उष्ण ऋतुमें सब रोगियोंके लिये विचार करके देना चाहिये। दुरुपयोग होनेसे दाँतोंमें दर्द, मुखमें छाले, आमाशयमें दाह, धातुक्षीणता, मगजमें उष्णता, सन्धि स्थानोंमें पीड़ा आदि विकार उत्पन्न होकर शरीर निस्ते जवनता जायगा।

कितनेही चूर्णोंमें अफीम आदि विष मिलाया है। वे चूर्ण जहरी बनते हैं। अतः आवश्यक सूचना प्रकरण और गुटिका प्रकरणके प्रारम्भमें लिखी हुई सूचना लक्ष्यमें रखकर उपयोग करना चाहिये।

[१] महासुदर्शन चूर्ण।

विधि—हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दारुहल्दी, बड़ी कटेली (बनभटा), छोटी कटेली (भटकटैया), कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा (मोरबेल), गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, कुड़ाकी छाल, मुलहठी, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रवाला, पुष्करमूल, नीमकी छाल, अजवायन, इन्द्रजव, भारङ्गी, सुहिंजनेके बीज, फिटकरीका फूला, बच (मीठा), दालचीनी, पद्माख, सफेद चन्दन, अतीस, खरेंटी, शालपर्णी (सरिवन), पृष्ठपर्णी (पिठवन), बायविड़ङ्ग, तगर, चित्रकमूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, श्वेत कमलपुष्प, काकोली (अभावमें अश्वगन्ध), जीवक (अभावमें विदारीकन्द), ऋषभक (अभावमें वंशलोचन), खस, लोंग, वंशलोचन, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र, इन ५३ ओषधियोंको समभाग ले, और सबसे आधा चिरायता मिलाकर बारीक कपड़छान चूर्ण करें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें ३ बार जलके साथ दें। अथवा ४ से ६ माशे चूर्णका फाँट बनाकर पिलावें।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारके पुराने और नये ताप, एक दोषज, धातुगदज्वर, त्रिदोषज, द्विदोषज, सन्निपात, शीतज्वर, विषमज्वर, धातुगत ज्वर, मदाग्नि, अजीर्ण, निर्बलता, शिरदर्द और ज्वरके साथ श्वास, कास, पाडु, हृद्रोग, कामला, कटिशूल आदि सब विकारोंका नाश करता है। ज्वर हो तब उतारनेके लिये और न हो तब रोकनके लिये दिया जाता है। इस चूर्णके उपयोगमें किस जातिका ज्वर है, इस बातके निर्णयकी विशेष आवश्यकता नहीं है। एवं यह चूर्ण वात, पित्त और कफप्रकोप, द्वन्द्वज और त्रिदोषज ज्वर पुरुष और स्त्री, सगर्भा और प्रसूता, बालक युवा और वृद्ध इन सबको निर्भयता पूर्वक दे सकते हैं।

ज्वरोंकी उत्पत्ति विशेषत; आमप्रकोप होनेके पश्चात् प्रस्वेद द्वारा विष बाहर न निकलनेपर होती है। इस चूर्णसे आमका पचन, कोष्ठशुद्धि, विषका

निर्विष बनाना और प्रस्वेद ग्रन्थियोंको बन्धनमुक्त बनाना, ये चारों कार्य सरलतापूर्वक हो जाते हैं। इस हेतुसे यह चूर्ण सब प्रकारके ज्वरोंपर उपयोगी होता है।

यह महासुदर्शन चूर्ण जिस तरह नूतन ज्वरमें उपयोगी है उसी तरह जीर्ण ज्वरपर भी लाभदायक है। कभी-कभी मधुरा (आन्त्रिक ज्वर) उतर जानेपर रोगी आहार विहारमें भूलकर देता है। जिससे ज्वर पुन प्रकुपित होकर आ जाता है। मधुराके पहिले आक्रमणमें रोगी बहुधा क्षीण हो जाता है, उसपर पुन, आक्रमण होनेसे रोगी अधिक कृश और दीन बन जाता है। उसपर महासुदर्शन चूर्ण मिला, सिद्ध दूध बनाकर देते रहनेसे सरलतापूर्वक कीटाणु, विष और आम जलकर ज्वर शमन हो जाता है, क्षुधा प्रदीप्त होकर शरीरमें बल आने लगता है।

ज्वर अधिक दिनोंतक बना रहनेपर या बारम्बार आता रहनेसे देह निर्बल हो जाती है, फिर किसीको मन्द ज्वर रहता है (जिसे अस्थिगत ज्वर कहते हैं) या रात्रिको कुछ ज्वरांश हो जाता है। मूत्रमें पीलापन, बेचैनी, अग्निमांद्य, अरुचि, निर्बलता, आलस्य, हाथ-पैर टूटना, मलावरोध, स्वभावमें उग्रता आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें क्विनाइन आदि तीव्र औषधिके सेवनसे प्राय हानि पहुँचती है। उसपर ४ से ६ माशे इस महासुदर्शन चूर्णका फाण्ट, २ रत्ती शिलाजीत, १ रत्ती कपूर और ६ माशे शहद मिलाकर प्रात साय देते रहनेसे थोडेही दिनोंमें ज्वरका निवारण होता है, पचनक्रिया सुधरती है, स्फूर्ति आती है और बल वृद्धि होता है।

कोमल स्वभावकी निर्बल रुग्णा या रोगी, जो पित्त प्रकोपसे पीडित हो, उनको विषमज्वर आनेपर क्विनाइन नही दे सकते। यदि क्विनाइन अल्प मात्रामें भी दिया जायगा, तो विविध स्थानोंसे रक्तस्राव, निद्रानाश, वृक्क कार्यमें प्रतिबन्ध दाह, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते है, किन्तु इस महासुदर्शन अर्कका सेवन करानेपर सर्व लक्षणोंसह ज्वरकी तुरन्त निवृत्ति होती है।

रक्तमें विष लीन हो जानेपर रोगीकी पचनक्रिया अधिक निर्बल हो जाती है। फिर भोजन करनेकी रुचि नही होती। मूत्रमें पीलापन, अग्निमांद्य, कठोर उदर, कभी कभी उदरमें शूल चलना, हाथ पैर टूटना, किसी-किसीको छातीमें जलन किसीको कभी २ उदरमें शूल चलना, किसीको श्वास-कास होजाना, शिरमें भारीपन बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर महासुदर्शन चूर्ण खिलाते रहनेसे सब लक्षणो सह ज्वर शमन होता है।

ज्वर लगभग २१ दिनसे अधिक हो जानेपर जीर्णज्वर माना जाता है। फिर रक्तमेंसे रक्तजीवाणु ह्रास होता है। थोडा परिश्रम करनेपर हृदयकी

गति बढ़ जाती है । आलस्य बना रहता है । पांडुके साथ शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, आलस्य बना रहना, शिरमें भारीपन, अरुचि और अग्निमांद्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । इस विकारपर सुदर्शन चूर्णका फांट और संशमनी वटीका सेवन करानेपर थोड़ही दिनोंमें शरीर स्वस्थ हो जाता है ।

सगर्भावस्थामें कब्ज होनेपर कितनी ही स्त्रियोंको बार-बार ज्वर ९९° तक आ जाता है । पचनक्रिया मन्द हो जाती है । भोजन करनेपर आहार उदर में जड़ होकर पड़ा रहता है । इनके अतिरिक्त शिरदर्द, आलस्य, जुकाम, कफ-वृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । उसपर सुवर्ण वसन्त या लघुवसन्तके साथ इस चूर्णका फांट देते रहनेसे ज्वरकी निवृत्ति हो जाती हैं ।

प्रसव होनेके पश्चात् कितनीही स्त्रियोंको दूसरे तीसरे दिन पित्त प्रकुपित होकर मन्द-मन्द ज्वर आ जाता है । तृषावृद्धि, दाह, व्याकुलता, प्रस्वेद आना आदि लक्षण उपस्थित होते है । यदि उनको दशमूल क्वाथ दिया जाय, तो पतले गरम दस्त हो जाते है । और दाह बढ़ जाता है । उनके लिये सुदर्शन चूर्णका फांट अति हितकारक है । यदि मलावरोध हो तो थोड़ा निशोथका चूर्णभी शक्करके साथ देना चाहिये । यदि ज्वर ९९° से अधिक बढ़ गया हो तो रत्नगिरी रसके साथ सुदर्शन फांट देना चाहिये । यदि गर्भाशयमें रह जानेके हेतुसे शूल भी चलता रहता हो तो प्रारम्भमें गर्भाशय शुद्धिके लिये प्रतापलंकेश्वर रसके साथ दशमूल क्वाथ देना चाहिये । फिर गर्भाशय शूल बन्द होनेपर सूतशेखरके साथ सुदर्शन फांटका सेवन करना चाहिये ।

कितनेही बालकोंको मधुर पदार्थका अत्यधिक सेवन और तमाम दिनभर खाते रहनेके कारण मलावरोध और अपचन होकर बार-बार ज्वर आता रहता है। फिर धीरे-धीरे प्लीहा बढ जाती है और अग्निमांद्य हो जाता है । उनको पथ्यसह सुदर्शन चूर्णका सेवन थोड़े दिनोंतक नियमित रूपसे कराया जाय और मधुर पदार्थ बन्दकर दिये जायं तो ज्वर निवृत होता है । प्लीहावृद्धिका ह्रास होता है और पचनक्रिया सबल बन जाती है ।

(२) लघुसुदर्शन चूर्ण ।

विधि—गिलोय, छोटी पीपल, हरड़, पिपलामूल, सफेद चन्दन, कुटकी, नीमकी अन्तरछाल, सोंठ और लौंग सब समभाग और सबके वजनसे आधा चिरायता मिलाकर बारीक चूर्ण करें । (यो० र०)

मात्रा—३ से ४ माशे दिनमें ३ बार जलके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारके नये और पुराने बुखार, मन्दाग्नि और शिर दर्दको दूर करता है । अर्क बनाकर लेनेसे कड़वापन चला जाता है, जिससे सब कोई

ले सकते है, और गुणभी पूरा करता है ।

किसी-किसीकी देहमें मद अत्यधिक बढ जानेसे भयंकर प्रस्वेद आता रहता है । शीतकालमें भी प्रस्वेदसे कपडे भीग जाते हैं । उनको यह चूर्ण भोजनके बीचमें शहद या शक्करके साथ देते रहनेसे प्रस्वेद कम हो जाता है । मात्रा ८-६ रत्ती ।

सगर्भा स्त्रीको मलेरिया आनेपर उसे शीत कम्प अधिक त्रास पहुँचाता है, तृषा, शिर दर्द, फिर अति प्रस्वेद आना, थकावट, घबराहट आदि लक्षण प्रतीत होते है । उसपर इस लघुसुदर्शन चूर्णका फाण्ट बनाकर देनेसे ज्वर निवृत्त हो जाता है ।

(३) अमृत चूर्ण ।

विधि—नौसादर और फिटकरी समभाग मिलाकर डमरूयन्त्र द्वारा पुष्प उडा लें । फिर अपामार्गक्षार और आकका क्षार आठवा-आठवा हिस्सा मिला, काली तुलसी और आकके पत्तोके रसकी एक-एक भावना देकर चूर्ण बनालें । (धन्वन्तरि)

सूचना—सफेद फिटकरीकी अपेक्षा लाल फिटकरी मिलानेपर विशेष लाभ पहुँचता है ।

मात्रा—२ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार दूध, चाय या गुनगुने जलसे ।

उपयोग—यह चूर्ण नये बुखार, जीर्णज्वर, ठंडीसहित या ठंडीरहित विषम ज्वर (सतत, चातुर्थिक आदि) को दूर करता है । केवल फिटकरी और नौसादरके पुष्पको ही ३-३ रत्ती मिश्रीके साथ मिलाकर देवे, तो भी अपना प्रभाव दिखा देता है । यह चूर्ण दोषोको पचन करा प्रस्वेद लाकर ज्वरको उतार देता है ।

यह अमृत चूर्ण सब प्रकारके सतत आदि विषमज्वर पर तथा अपचनजनित ज्वर (आम ज्वर) पर प्रयुक्त होता है । यह स्वेद लाकर ज्वरविष और उष्णताको २-४ घण्टोमें बाहर निकाल देता है, तथा विषम ज्वरोत्पादक कीटाणुओको मारकर रक्तको शुद्ध बना देता है । यह चूर्ण क्विनाइनके समान रक्तके रक्ताणुओको हानि नही पहुँचाता * । यह वात, पित्त

*क्विनाइनको डाक्टरोमें विषमज्वरकी सर्वोत्तम औषधि मानी है । वह सब प्रकारके मलेरियाके कीटाणुओको नाश कर देती है, फिर भी आयुर्वेदकी दृष्टिसे उसे औषधि नही कह सकेंगे । आयुर्वेदकी मर्यादानुसार वह विष है । कारण वह कीटाणुओके नाशके साथ रक्तके रक्ताणुओको भी नष्ट कर देती है । इसके अतिरिक्त मस्तिष्कमें उष्णता पहुँचाती है, रोग निरोधक शक्तिको निर्बल बनाती है तथा वृक्कोंके कार्यमें बाधा पहुँचाती है । पित्त प्रकृतिवालोको या पित्तप्रकोपवालोको क्विनाइनका सेवन करानेपर रक्तस्राव होता है, कानोंमें बधिरता आती है, निद्रा दूर हो जाती है और व्याकुलता उत्पन्न होती है । सगर्भावस्थामें प्रयोग करनेसे गर्भपात या गर्भस्रावका भय रहता है । अतः क्विनाइनका उपयोग सर्वरोगियोपर और सब समयमें बिना विचार किये नही हो सकता ।

और कफ, तीनों प्रकृतिवालोंकी और सगर्भा स्त्रियोंको भी निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं । जब कीटाणु-विष अति बढ़ गया हो तब उसे नष्ट करनेमें क्विनाइनके समान जल्दी सफल नहीं होता । एवं घातक तृतीयक ज्वर और चातुर्थिक ज्वरके प्रबल कीटाणुओंको नष्ट करनेमें यह जल्दी कार्य नहीं कर सकता । अतः इसे क्विनाइनके समकक्ष नही मान सकेंगे । फिर भी यह असफल नही होता। क्विनाइनकी अपेक्षा कुछ देरसे लाभ पहुँचाता है ।

विषमज्वर पीड़ितोंमें प्रायः जिनकी रोगनिरोधक शक्ति सबल हो, ऐसे रोगियों की संख्या अत्यधिक होती है । इन सबके लिए इस चूर्णका प्रयोग क्विनाइनकी अपेक्षा विशेष हितावह माना जायगा । जो शेष थोड़े रोगी प्रबल कीटाणु पीड़ित हों या क्षीण शक्तिवाले हों, उनके लिए समयकी असुविधा होते ही क्विनाइनका प्रयोग करना चाहिये ।

मधुर पदार्थके अत्यधिक सेवनसे अनेकोंको अपचन होकर ज्वर आ जाता है । इस प्रकारके ज्वरमें आत्मोत्पत्ति अधिक होती है । ज्वर १००°से १०२°तक, उदरमें भारीपन, आलस्य, रोंगटे खड़े हो जाना, मूत्रमें पीलापन, मुखमे मीठापन आदि लक्षण प्रतीत होते है । इस ज्वरपर इस चूर्णका सेवन करनेसे प्रस्वेद आकर सत्वर ज्वर शमन हो जाता है ।

अनेकोंको आश्विन, कार्तिकमे सूर्यके तापमें भ्रमण करके तुरन्त शीतल जलपान करनेसे मलेरिया सदृश शीतज्वर आ जाता है । उनको ३-४ घंटे मन्द-मन्द शीत लगकर ज्वरावस्था उत्पन्न होती है । सामान्यतः ज्वर १०१° डिग्रीतक बढ़जाता है । फिर २-३ घंटेमेंही स्वेद आजाता है । इस ज्वरमे अमृत चूर्णका सेवन करानेपर ज्वरका लीनविष (रक्तमें लीन आमविष) जल्दी जलजाता है और पचन क्रियासबल बन जाती है । जिससे ज्वरका पुनः आक्रमण नहीं होता ।

सूचना—इस चूर्णके सेवन कालमें पथ्यका आग्रह पूर्वक पालन कराया जाय अर्थात् ज्वरावस्थामे अन्न न दिया जाय, मलावरोध हो तो उसे दूर किया जाय, जल गरमकर शीतल करके पिलाया जाय, रोगीको दूध, चाय, मोसम्बीका रस, संतरा, अमरूद आदिपर रख दिया जाय तो लाभ जल्दी पहुंचता है । प्लीहावृद्धि नहीं होती, शक्तिका ह्रास नही होता और ज्वर शमनके पश्चात् थोड़े ही दिनोंमें शरीर पूर्ववत् सबल बन जाता है ।

मलावरोध हो, तो पहले ज्वर केसरी, अश्वकंचुकी रस, पंचसकार अथवा अन्य ओषधिसे कोष्ठ-शुद्धि कर लेनी चाहिये ।

(४) सितोपलादि चूर्ण ।

विधि—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन* ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायचीके बीज २ तोले और दालचीनी १ तोला लें। सबको कूटकर कपड़छान चूर्ण बनावें। (च० सं०)

सूचना—मिश्री, वंशलोचन और अन्य ओषधियोंको अलग-अलग कूट कपड़-छान करें। कपड़छन वंशलोचनको ६ घंटे खरल करें। फिर शेष ओषधियाँ मिला ६ घंटे तक और खरल कर लेवें।

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें २ बार घी और शहदके साथ। कफ प्रधान रोगोंमें घीसे शहद दूना लें। वात और पित्तप्रधान रोगोंमें घीसे शहद आधा मिलावें। घी पहले मिलावें फिर शहद मिलावें। कफ सरलतासे निकलता हो ऐसी खाँसीमें केवल शहदके साथ।

उपयोग—यह चूर्ण क्षय, खाँसी, जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्रमेह, छातीमें जलन, पित्तविकार, खाँसीमें कफके साथ खून आना, बालकोंकी निर्बलता, गर्मीमें ज्वर आना, नेत्रमें उष्णता तथा गलेमें जलन आदि विकारोंको दूर करता है। सगर्भा स्त्रियोंको ३-४ मास तक सेवन करानेसे गर्भ पुष्ट और तेजस्वी बनता है।

राजयक्ष्माकी प्रथमावस्थामें श्वासप्रणालिका और फुफ्फुसके भीतर रहे हुए वायुकोषोंमें क्षय कीटाणुओंके विषप्रकोपसे शुष्कता आजाती है। उस अवस्थामें यदि ज्वर शमनार्थ क्विनाइन आदि उग्र ओषधियोंका या त्रिकटु, चित्रकमूल आदि अग्निप्रदीपन ओषधियोंका सेवन प्रधानरूपसे या विशेषरूपसे किया जाय, तो फुफ्फुस मस्यामें शुष्कता की वृद्धि होती है। फिर शुष्ककास अति बढ़ जाती है और किसी-किसी रोगीको रक्तमिश्रित थूक या झाग आता रहता है दिनमें शान्ति नहीं मिलती और रात्रिको पूरी निद्रा भी नहीं मिलती। व्याकुलता बनी रहती है। प्राय ज्वर ९९° से अधिक नहीं बढ़ता। अग्निमांद्य, शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, मूत्रमें पीलापन, शुष्क कासका वेग चलनेपर बारम्बार स्वेद आते रहना, नेत्रमें जलन होते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्थामें अभ्रक आदि उत्तेजक ओषधिसे लाभ नहीं मिलता, अपितु कष्टवृद्धि होती है। शामक ओषधिके सेवनकी ही आवश्यकता रहती है। अत यह सितोपलादि चूर्ण अमृतके सदृश उपकार दर्शाता है। मात्रा २-२ माशे गोघृत और शहदके साथ मिलाकर दिनमें ४ समय देते रहना चाहिये। मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी साथमें मिला दी जाय तो लाभ सत्वर मिलता है, एवं क्षयकीटाणु-

*हम सितोपलादि चूर्णमें उत्तम प्रकारका सच्चा वंशलोचन मिलाते हैं।

ओंकी क्रियामें प्रतिबन्ध होता है तथा मस्तिष्क, रक्त और अस्थिसंस्था सबल बनते हैं ।

राजयक्ष्माकी प्रथमावस्थामें शामक औषधियोंका सेवन न होनेपर फुफ्फुस-संस्थामें उग्रताके हेतुसे कफोत्पत्ति होने लगती है । प्रारम्भमें झाग सदृश कफ होता है, उसमेंसे क्रमशः सफेद पतला कफ ,सफेद गाढ़ा कफ, पीला कफ, पीला बंधा हुआ कफ आदि रूपान्तर होता है । कफ जितना जीर्ण हो जाता है, उतना ही पीतवर्ण और गाढ़ापन बढता जाताहै । इस कफसे श्वासप्रणालिकायें और वायुकोष्ठ, सब भरे रहते है । जिससे श्वासोच्छ्वास रूप क्रिया भी योग्य नही बनती । उस कफमेसे दूषित द्रवका शोषण रक्तमें होता रहता है, क्षय कीटाणुओंकी वृद्धि होती रहती है और इन कीटाणुओंकी फुफ्फुसके भीतर विवर बनानेकी क्रिया शनैःशनै उग्र बनती जाती है । ऐसी अवस्थामें अभ्रक, शृङ्ग, रससिन्दूर आदि उत्तेजक कफघ्न ओषधियोंके सेवनकी आवश्यकता रहती है; परन्तु किसी-किसी रोगीको फुफ्फुससंस्थामें अधिक शुष्कता आजाने या कैशिका आदिके टूटनेसे कफके साथ रक्त निकलता रहता है जिससे उग्रता शमनार्थ और रक्तस्रावके रोधनार्थ शामक ओषधि भी देनी पड़ती है ।पीला, दूषित या पूयमय हरा कफ अत्यधिक हो गया हो तब तो वासाप्रधान ओषधि दी जाती है; परन्तु पीला कफ दुर्गन्ध रहित हो, कफके हेतुसे ज्वरवृद्धि न होती हो तो मुक्ता, प्रवाल मिश्रित सितोपलादि चूर्णका ही सेवन विशेष हितावह माना गया है । इस मिश्रणसे विषकी शुद्धि होती है, ज्वर मर्यादित बनता है । रस, रक्तादि धातुओंको पोषण मिलता है कास वेगका ह्रास होता है और व्याकुलता दूर होकर आवश्यक निद्रा (या शान्ति) मिल जाती है ।

कितनेही रोगियोंको राजयक्ष्माकी प्रथमा, द्वितीय या तृतीयावस्थामें कफ विकृतिके साथ पित्तप्रकोप भी होता है, जिससे कण्ठ, छाती, नेत्र, हथेली, पैरोंके तले आदिमें जलन, मुखपाक, मस्तिष्कमें उग्रता, व्याकुलता, मूत्रमें दाह आदि लक्षण भी प्रतीत होते हैं । उनको रोगशामक मुख्य ओषधिके साथ-साथ सितोपलादि चूर्णका सेवन कराते रहनेसे पित्तप्रकोपज लक्षणोंकी निवृत्ति होती है तथा कफोत्पत्ति, ज्वर और कीटाणु विषका भी ह्रास होता है ।

ज्वर जीर्ण होनेपर देह निर्बल बन जाती है, फिर थोड़ा परिश्रम भी सहन नहीं होता; आहार विहारमें स्वल्प अन्तर होनेपर भी ज्वर बढ़ जाता है । शरीरमें मन्द मन्द ज्वर बना रहता है या रात्रिको ज्वर आ जाता है और शुष्क कास भी चलती रहती है ।ऐसी अवस्थामें क्विनाइन, सुदर्शन चूर्ण आदि तिक्त ओषधियाँ कितनेही रोगियोंसे सहन नहीं होती । तिक्त ज्वरघ्न ओषधिके सेवनसे कास बढ़ जाती हैं और ज्वरकी निवृत्ति भी नहीं होती । उन रोगियोंको प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण शहद मिलाकर दिनमें ३ समय देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें

श्वास शान्त हो जाती है, ज्वर विषका पचन हो जाता है और रस, रक्त आदि धातुएँ पुष्ट बनकर ज्वरका निवारण होता है।

गर्भकी अस्थिका पोषण माताकी अस्थि संस्थागत मज्जासे होता है। माता निर्बल होनेपर सन्तान निर्बल रह जाती है। उनकी हड्डियाँ बहुत कमजोर होती हैं। ऐसे शिशुओंको प्रवाल सितोपलादि मिश्रण १ से २ रत्ती दिनमें २ समय लम्बे समय तक देते रहनेसे बालक पुष्ट बन जाता है। यह उपचार प्रथम वर्षमेंही कर लिया जाय तो लाभ अधिक मिलता है।

कितनेही मनुष्योंकी निर्बलतासे उनकी सन्तान निर्बल होती है। ऐसी सन्तानवाली माताओंको सगर्भावस्थामें अभ्रक प्रवालसह सितोपलादिका सेवन ५-७ मास तक कराया जाय, तो सन्तान बलवान, तेजस्वी और बुद्धिमान बनती है। इस प्रयोगका उपयोग हमने अति कृश और क्षय पीडित रोगियोंकी स्त्रियोंपर भी अनेक समय किया है।

कितनीही स्त्रियोंको अधिक सन्तान होनेके पश्चात् बारम्बार अधिक बाल जानेके पहले गर्भधारण हो जाने, किसी रोग विशेषसे शरीर कृश और निर्बल हो जाने अथवा छोटी आयुसे ही देह अति कृश होने पर सगर्भावस्थामें अति कष्ट होता है। इनमेंसे कितनीही स्त्रियोंमें थोडा चलने जितना बल भी नहीं रहता। आलसीकी तरह पडी रहती हैं (यदि सगर्भावस्थामें वे परिश्रम नहीं करती, तो उनको प्रसवावस्थामें अधिक कष्ट पहुँचता है) इनको अभ्रक प्रवाल और सितोपलादिके मिश्रण का सेवन ५-७ मासतक कराया जाय तो गर्भिणी और गर्भ, दोनों पुष्ट बन जाते हैं शरीरमें स्फूर्ति रहती है और मन भी प्रसन्न रहता है।

रोग विशेषके हेतुसे अथवा अधिक गरम गरम मसाला, अधिक उष्ण चाय आदि अथवा आमाशय पित्तकी वृद्धि करनेवाले लवणभास्कर आदि चूर्णोंका अधिक सेवन होनेपर आमाशयस्थ पित्तकी वृद्धि हो जाती है या पित्त तीव्र बन जाता है अर्थात् आमाशयपित्त (Gastric Juice) लवणाम्ल (Acid Hydrochloric) की मात्रा बढ जाती है। जिससे छाती और कण्ठमें जलन, मुखपाक, खट्टी-खट्टी डकारें आते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं आहारका योग्य पचन नहीं होता, और अरुचि भी बनी रहती है। इन रोगियोंको, प्रवालभस्म (या वराटिका भस्म) और सितोपलादि चूर्णका सेवन करानेसे थोडे ही दिनोंमें अम्लपित्तके लक्षण और अरुचि दूर होकर अग्निप्रदीप्त हो जाती है।

आमाशय पित्त तीव्र बननेके हेतुसे पचनक्रिया मन्द हो जाती है। इसका उपचार शीघ्र न किया जाय तो किसी किसीको विदग्धाजीर्ण होता रहता और पित्तप्रमेह (विशेषतः हारिद्रमेह) की प्राप्ति होती है। पेशाबका वर्ण अति पीला भासता है। सर्वाङ्गमें दाह, तृषा, मूत्रके परिमाणमें कमी, मूत्रस्राव अधिक

बार होना, देह शुष्क हो जाना, चक्कर आते रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्थामें मुख्य औषधि चन्द्रकला रसके सेवनके साथ साथ आमाशय पित्तकी शुद्धि करनेके लिये सितोपलादि चूर्णका सेवन कराया जाय तो जल्दी लाभ पहुँचता है।

जीर्णज्वर या प्रकुपित हुआ ज्वर दीर्घकाल पर्यन्त रह जानेपर शरीर अशक्त बन जाता है और मस्तिष्कमें उष्णता आजाती है। जिससे सहनशीलता कम हो जाती है, थोडीसी प्रतिकूलता होने या विचार विरुद्ध होनेपर अति क्रोध आ जाता है। यकृत् निर्बल हो जाता है। मलावरोध रहता है और मलमें दुर्गन्ध आती है, एवं मन्द मन्द पित्तप्रकोप, पाण्डुता, हृदयमें धड़कन और अति निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते है। ऐसे रोगियोंको सितोपलादि चूर्ण खमीरेगावजवाके साथ कुछ दिनोंतक देते रहनेपर सब लक्षणोंसह पित्तप्रकोप दूर होकर शरीर बलवान बन जाता है।

(५) बृहत् सितोपलादि चूर्ण ।

विधि—दालचीनी १ तोला, छोटी इलायची २ तोले; छोटी पीपल, मुलहठी, बनफशाके फूल, गोजिह्वा (गाजवाँ) और तालीसपत्र चार-चार तोले; वंशलोचन ८ तोले और मिश्री १६ तोले लें। सबको कूट-पीस छानकर चूर्ण करें।

मात्रा—२-से ४ माशे दिनमें ३ बार घी और शहदके साथ।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारकी खाँसी, श्वास, जुकाम, मंद ज्वर, दाह और मन्दाग्निको दूर करता है; निमोनियामें भी अति हितकर है। यह चूर्ण श्वासवाहिनियोंकी श्लैष्मिक कलाके क्षोभको दूर करता है, जिससे शुष्क कास ज्वरसह सरलता पूर्वक शमन हो जाता है।

जब प्रतिश्यायमें नीलगिरी तैल, पीपरमेण्ट, सोंठ, पिप्पली या अन्य उष्ण और शोषक औषधियोंका सेवन अत्यधिक होता है, तब कफ सूखकर छातीमें चिपक जाता है। वार बार कास वेग उपस्थित होता है; गलेमें या छातीमें कफ भरा हो, ऐसा भास होता है; कफकी आवाज भी निकलती रहती है; किन्तु कफ सरलतासे बाहर नहीं आता। किसी किसी रोगीको मंद मंद ज्वर भी आजाता है। इस अवस्थामें बृहत् सितोपलादि चूर्णका सेवन करानेपर कफ आर्द्र बन जाता है। और फिर सरलतासे बाहर निकलता रहता है।

श्वासरोगमें सोमल, मिर्च, पिप्पली आदि उग्र और उष्णवीर्य औषधियोंका सेवन अधिक मात्रामें या अधिक समयतक होने और घृत-दुग्धादि स्निग्ध पदार्थोंका सेवन न होनेपर छाती कफसे जकड़ जाती है; थोड़ा चलने या थोड़ासा श्रम लेने पर श्वास भर जाता है, कास चलनेपर कफकी आवाज आती है, और श्वास गहरा नहीं चल सकता आदि लक्षण उपस्थित होते है। ऐसे रोगियोंको पथ्य

पालनसह यह चूर्ण नियमित कुछ दिनोंतक देते रहनेसे कफ, कास और ज्वरसह प्रतमक श्वास थोडे ही समयमें मर्यादामें आजाता है।

(६) लवणभास्कर चूर्ण ।

विधि—समुद्रनमक ८ तोले, कालानमक ५ तोले, काच लवण, सैंधानमक, धनिया, पीपल, पीपलामूल, कालाजीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र, अम्लवेत सब २-२ तोले, कालीमिर्च, जीरा, सोंठ, तीनों १-१ तोला, अनारदाना ४ तोले, इलायची और दालचीनी आधा-आधा तोला लें। सबको मिला कूट करके बारीक चूर्ण करें। (शा० सं०)

सूचना—कितनेही चिकित्सक काचलवणके स्थानमें नौसादर मिलाते हैं। नौसादर मिला हुआ चूर्णका असर तीव्र होता है। मात्रा कम देनी चाहिये।

मात्रा—२ से ३ माशे दिनमें २ बार मट्ठे या जलके साथ लें।

उपयोग—यह चूर्ण उदररोग, वात और कफसे उत्पन्न गुल्म रोग, प्लीहा-वृद्धि, बवासीर, संग्रहणी, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कब्ज, शूल, शोथ, आमवात आदि दोषोंको दूर कर अग्निको प्रदीप्त करता है।

अग्निमान्द्य और निर्बलतामें लवणभास्करके साथ १-१ रत्ती शुद्ध कुचिलेका चूर्ण और १-१ माशा सोडा बाईकार्ब मिला देनेसे विशेष लाभ पहुँचता है। एवं मलावरोध होनेसे लवणभास्कर और पचसकार मिलाकर सेवन करानेपर मला-वरोध, उदरपीडा, अग्निमान्द्य आदि विकार दूर होते हैं। यदि अपचनसह उदर-वात रहता हो, तो शुद्ध कुचिला, लहशुनादि वटी और सोडा बाईकार्ब मिला देना चाहिये। लहशुनादि वटी मिलानेपर अपचन रूप विकार सरलतासे दूर होता है।

कभी कोष्ठबद्धता होनेपर अपानवायु दूषित हो जाती है। फिर सरलतासे बाहर नहीं सरती। परिणाममें अफारा रहना और किसीको हृदयशूल उपस्थित होता है। उसपर यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता है। दिनमें ३ समय देना चाहिये। सुबह निवाये जलसे, दोपहर और रात्रिको घीके साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावे। इस तरह योजना करनेपर अग्निमान्द्य, अफारा, शूल आदि दूर हो जाते हैं। आवश्यकता होनेपर उदर पर एरण्ड तैल और कालानमककी मालिश कर सेक भी करना चाहिये।

आमाशय रसस्राव कम होनेपर भोजन कर लेनेसे उदरमें भारीपना आजाता है, पचनक्रिया ठीक नहीं होती। किये हुए भोजनकी डकारें बार बार आती रहती हैं। ऐसी अवस्थामें भोजनके आध घण्टे या भोजन करलेनेके पश्चात् तुरन्त लवणभास्कर चूर्णका सेवन कराया जाता है। भोजनके पहले सेवन करना हो तो जलसे और भोजन कर लेनेपर सेवन करना हो तो मट्ठेके साथ सेवन करना चाहिये।

अर्श रोगकी उत्पत्ति अग्नि मंद होनेके पश्चात् उदरमें वायु भरा रहने

पर भी हो सकती है । एवं सब प्रकारके अर्श रोगमें अग्नि मन्द रहती है और प्राय: मलावरोध भी रहता है । अत: अर्श रोगमें अग्नि प्रदीप्त करनेके लिये लवण-भास्कर चूर्णका मट्ठेके साथ (या घी और निवाये जलके साथ) सेवन कराया जाता है ।

ग्रहणी रोगमें प्राय: अग्नि मन्द होती है तथा अन्त्र निर्बल होजाने से पञ्चामृत पर्पटी आदि पर्पटी-कल्पका सेवन करनेपर कितने ही रोगियोंको मलावरोध भी होता रहता है । ऐसे रोगियोंको लवणभास्कर चूर्ण ताजे मट्ठेके साथ दिनमें २ बार देते रहनेसे अग्नि प्रदीप्त होती है और मलावरोध नहीं होता ।

उदरमें वातनाड़ियोंकी निर्बलता आ जानेपर भोजनके ३-४ घण्टे बाद आमाशय या अन्त्रमें वायुकी उत्पत्ति होती है । आमाशयमें वायु उत्पन्न होनेपर वह डकार रूपसे बाहर निकलनेका प्रयत्न करती है और अन्त्रमे होनेपर वह अपानवायु रूपसे बाहर निकलती है । इस वायुकीउत्पत्ति रोकने और वातनाड़ियों-को सबल बनानेके लिये लवणभास्कर चूर्णके साथ शुद्ध कुचिलेका चूर्ण १-१ रत्ती देते रहना लाभदायक माना गया है । यदि अपचन होकर आमाशयमें दूषित अम्लरस भी साथमें रहा हो तो सोडाबाई कार्ब १-१ माशा साथमें मिला देना चाहिये ।

अग्निमांद्यके रोगीको मलावरोध होनेपर उदरशूल चलता है । यह शूल मलकी आगे गति होनेमें रुकावट आनेपर उपस्थित होता है । प्राय: मलकी गांठ बन जानेपर ऐसा होता है । ऐसी अवस्थामें लवणभास्कर चूर्णके साथ पंचसकार चूर्ण मिलादेनेसे शूलका तुरन्त निवारण हो जाता है ।

सूचना--(१) यदि आमाशय रसमें लवणाम्ल तीव्र होजानेसे पचनक्रिया योग्य कार्य न करती हो, अपचन होजाता हो, छातीमें जलन तथा जीभपर छाले आदि लक्षण भी प्रतीत होते हों, तो ऐसी अवस्थामें लवणाम्लवर्द्धक लवण-भास्कर चूर्ण आदि औषधियां नही दी जातीं ।

(२) आमाशय अथवा अन्त्रमें क्षत होजानेके हेतुसे आमाशय या अन्त्र-में शूल चलता हो, तो ऐसी अवस्थामें लवणभास्कर चूर्ण लाभ नहीं पहुँचा सकता । यदि लवणभास्कर चूर्णमें नौसादर मिला हो, तो क्षत स्थानमें हानि पहुँचती है, या श्लैष्मिक कलामें अधिक उग्रता पहुँचकर नये क्षत होजाते है ।

(३) इस चूर्णको अच्छे डाटवाली शीशीमें रक्खें । खराब डाट वाली शीशी या टीनके डिब्बेमें रखनेसे वर्षाऋतुमें दूषित होजाता है ।

(७) हिंग्वष्टक चूर्ण ।

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजमोद (या अजवायन), सैंधानमक, जीरा, कालाजीरा और भुनी हींग इन ८ औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें ।

(अ० हृ०)

वक्तव्य—वर्तमानमे वैद्यसमाज हिंग्वष्टक चूर्णमे हींग एक भागके स्थान पर हीराहींग $\frac{1}{4}$ भाग मिलाते है । हींग कम होनेसे इस चूर्णका सेवन सरलतासे हो सकता है । किन्तु कम मात्रामे सत्वर लाभ प्राप्त करनेके लिये हीराहींगको घीमे भून पूरी मात्रामे ही मिलाना विशेष हितावह माना जायगा ।

मात्रा—२ से ४ माशे भोजनके समय घीके साथ लेवे ।

उपयोग—यह चूर्ण अजीर्ण रोग, अपचन, मन्दाग्नि, हैजा, पतला दस्त, वात संग्रहणी, वातगुल्म, वातशूल, आफरा आदि दोषोको दूर करके पाचनशक्तिको सुधारता है । कफज और वातज विकारमे लाभदायक है । पित्तविकारमे और पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंके लिये इसका उपयोग नही करना चाहिये ।

इस चूर्णमे प्रधान औषधि हींग है । हींगमे, उदर, वातघ्न और शूलहर गुण प्रधान है । यह आमाशय और अन्त्रमें संगृहीत वायुको दूर करती है, उदर-शूलका शमन करती है, पाचक रसका, स्राव अधिक कराती है और कीटाणुओंको नष्ट करती है । इस हींगके साथ मिलाये हुए त्रिकटु आदि द्रव्य यकृत्पित्तको सबल बनाकर पित्तस्राव करानेमें सहायक होते है । इस हेतुसे यह चूर्ण आमाशय और अन्त्र दोनोकी पचन क्रिया बढाता है ।

जब अन्त्रकी निर्बलता,या पचन ,विकृतिके कारण भोजन करनेपर तुरन्त शौच जाना पडता हो अथवा दिनमें ४-५ वार थोडा थोडा मल त्याग होता हो, उदरमें भारीपन बना रहता हो, तथा, मुखका स्वाद फीका रहता हो तब इस चूर्णके साथ जायफल, जावित्री और कपूर मिलाकर थोडी मात्रामें देते रहनेसे, तुरन्त लाभ पहुँचता है ।

(८) शिवाक्षारपाचन चूर्ण ।

विधि—हिंग्वष्ट चूर्ण, छोटी हरडका चूर्ण और शुद्ध सज्जीखार, तीनो समभाग लें । सबको मिला बोतलमे भरें । (आ० नि० मा०)

मात्रा—३ से ४ माशे दिनमें २ वार जलके साथ लें ।

उपयोग—यह चूर्ण वायु, अजीर्ण, कब्ज, आफरा, हिचकी, वमन, अरुचि, शूल, हैजा और कृमि आदि रोग नष्ट करता है । इस चूर्णसे अग्नि प्रदीप्त होती है, आमपचन होता है, आपानवायु शुद्ध होती है तथा मलावरोध दूर होता है ।

यह चूर्ण पाचक, अग्निप्रदीपक, यकृत् शक्तिवर्द्धक और सारक है । इस चूर्णका उपयोग अधिकतर उदरमें भारीपन होनेपर होता है । जब आमाशयके पित्तमें अम्लता बढने तथा यकृत्मेंसे पित्तस्राव कम होनेसे उदरमें वायु भरा रहता है, शूल चलता रहता हो, और शुद्धि न होती हो, अन्त्रमें सूक्ष्म कृमि बने रहते हो, तब इस चूर्णके सेवनसे तत्काल लाभ होता है । यह चूर्ण

यकृत् पित्तको सबल बनाता है आमका पचन कराता है, उदरमें संगृहीत वायुको बाहर निकालता है, कीटाणुओंको नष्ट करके उदरमें उत्पन्न होनेवाली दुर्गन्ध को दूर करता है तथा शौचशुद्धि करानेमें सहायता पहुँचाता है । यह सामान्य ओषधि होते हुए भी विकृत् पचन क्रिया और निर्बल यकृत् वालोंके लिये अति हितावह है ।

(९) स्वादिष्टपाचन चूर्ण ।

विधि—नीबूका सत्व (Citric Acid) १॥ तोले, मिश्री १६ तोले, त्रिजात (इलायची, दालचीनी, तेजपात) ६ तोले, सोंठ ४ तोले, कालीमिर्च २ तोले, पिपल, २ तोले, सफेद जीरा भुना हुआ १२ तोले, धनिया ८ तोले और सैंधानमक १० तोले ले । पहिले पत्थरकी खरलमें नीबूके सत्वमे लगभग ६ माशे जल मिलावें । पश्चात उसके साथ काष्ठादि ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलाकर ३ घंटे खरल करें । बादमें मिश्री मिलाकर १ घंटेतक खरल करें । फिर सैंधानमक मिलाकर ३ घटे खरल करनेसे कटु, अम्ल, मधुर और लवण, इन सब रसोंका स्वाद एक होजाता है ।

मात्रा—३ से ४ माशे दिनमें ३ बार जलके साथ लें ।

उपयोग—यह चूर्ण, अरुचि, मन्दाग्नि, उदरवात, अजीर्ण कब्ज, अरुचि आदि दोषोंको दूर करता है ।

सूचना—मिश्रीके स्थानमें शक्कर मिलानेपर चूर्णमे कुछ चिपचिपापन हो जाता है । अतः मिश्री या बूरा मिलाना चाहिये ।

[१०] चन्दनादि चूर्ण ।

विधि—सफेद चन्दन, नेत्रावाला, अगर, तगर और वंशलोचन सबको समभाग और सबके बराबर मिश्री मिलाकर महीन चूर्ण करें ।

मात्रा—३ से ६ माशे २ बार दूधके साथ लें ।

उपयोग—यह चूर्ण दाह, पित्तज शिरदर्द, तृषा और मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है, तथा मस्तिष्कको शान्त बनाता है ।

(११) पाठादि चूर्ण ।

विधि—पाठा, बेलकी गिरी, चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, जामुनकी गुठली, अनारदाना, धायके फूल, कुटकी, अतीस, मोथा, दारुहल्दी, चिरायता, कुड़ेकी छाल, ये १५ औषधियाँ समभाग और सबके बराबर इन्द्रजौ मिला कूटकपड़छानकर चूर्ण करें । (च० द०)

मात्रा—४ से ६ माशे शहदमें मिलाकर दिनमें ३ बार दें ऊपर चावलोंका धावन पिलावें ।

उपयोग यह चूर्ण वमन, ज्वरातिसार शूल, तृषा, दाह, ग्रहणीरोग, अरुचि और मन्दाग्निको नष्ट करता है ।

(१२) यवानीखांडव चूर्ण ।

विधि—अजमोद, अनारदाने, सोंठ, इमली, अम्लवेंत और सुखाये हुए बच्चा गूदा प्रत्येक ४-४ तोले, कालीमिर्च २॥ तोले, पीपल १० तोले, दालचीनी, कालानमक, धनिया और जीरा २-२ तोले और मिश्री ६४ तोले लें । सबको एकत्र मिला, कूटकर चूर्ण करे । (शा० सं०)

मात्रा—४ से ६ माशे दिनमें २ बार जलके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण पाण्डुरोग, हृदयरोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोथ, अतिसार, प्लीहा, अफारा, मल-मूत्रावरोध, अरुचि, शूल, मंदाग्नि, बवासीर, जिह्वा और कण्ठके रोग को नष्ट करता है, तथा पचनक्रियाको सुधारता है । पित्त-प्रधान प्रकृतिवालोंके लिये हितकर है ।

(१३) प्लीहांतकक्षार चूर्ण ।

विधि—सेंधानमक, बिडनमक और कसीस प्रत्येक ८-८ तोले मिला गोमूत्रमें पीस, १०० पक्के पाले आकके पत्तोंपर लेप करें । फिर हांडीमें संपुट करके गजपुटमें भस्म करें । भस्म (क्षार) निकाल पीस कर रख लें । भस्म अपक्व हो, तो फिरसे संपुट करके पकालें ।

मात्रा—½ से १ माशा दिनमें २ बार शहदके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण प्लीहावृद्धि, वातरोग, वातगुल्म, शूल, आमवृद्धि, अपचन, पुराना अजीर्ण रोग, पाण्डु और उदरवात आदि रोगोंको नष्ट करता है । चूर्ण अपक्व होगा, तो उबाक लाता है ।

(१४) प्लीहांतक चूर्ण ।

विधि—शुद्ध नौसादर ८ तोले, कालानमक और सोनागेरू १-१ तोला मिलाकर बारीक चूर्ण करें । (ब्र० स्वा० सदानन्द गिरिजी)

मात्रा—४ से ८ रत्ती दिनमें २ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह चूर्ण यकृत्का पित्तस्राव अधिक कराता है, यकृत् और प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि, उदररोग, शोथ, मूत्रदोष और मदज्वर को दूर करता है, तथा पचनक्रिया को बढाता है ।

सूचना—यह औषध खाकर तुरन्त चूना लगा हुआ पान और तमाखू नहीं खाना चाहिये, नहीं तो जिह्वा पर घाव होजायगा।

(१५) एलादि चूर्ण।

विधि—छोटी इलायची, लोंग, नागकेशर, बेरके बीजकी गिरी, मुरमुरे (धानका लावा), प्रियंगु, नागरमोथा, सफेद चन्दन और पीपल, सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (वै० जी०)

मात्रा—२ से ४ माशे समभाग मिश्री मिलाकर शहदमें देवे।

उपयोग—यह चूर्ण आमाशयकी उग्रताको शमन करता है, जिससे सब प्रकारकी वातज, पित्तज और कफज वमन दूर होती हैं। एवं यह पित्तदोष और अरुचिको भी दूर करता है।

कभी कभी वान्ति इतनी त्रासदायक होती है, कि जल तक भी पचन नही होसकता। थोड़े थोड़े समय में वान्ति होजाती है। वान्तिमें पीया हुआ जल और आमाशयका पित्त निकलता है। उसपर यह चूर्ण दिनमें ५–७ बार देनेसे वान्ति दूर होजाती है। यदि वान्ति पित्ताशयशूल, वृक्कशूल, अथवा उपान्त्रशूल आदि कारणोसे होती हो, तो इस चूर्णका उपयोग नहीं होता। यह चूर्ण केवल आमाशयिक विकार पर व्यवहृत होता है।

(१६) नारायण चूर्ण।

विधि—अजवायन, हाऊबेर, धनियाँ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कलौंजी, कालाजीरा, सौफ, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, बच, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सत्यानाशीकी जड़, चीतामूल, जवाखार, सज्जीखार पुष्करमूल, कूठ, सैंधानमक, कालानमक, साँभरनमक, समुद्रनमक, बिड़नमक, और वायविडङ्ग प्रत्येक एक-एक भाग; निसोत २ भाग, दन्तीमूल ३ भाग, इन्द्रायणकी जड़ २ भाग और थूहरके पत्ते ४ भाग लें। सबको मिला चूर्णकर थूहरके दूधकी भावना दे सुखाकर बोतलमें भरलें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ माशे सुबह जलके साथ देवें।

अनुपान—अजीर्णमें गरम जल। उदरके रोगमें मट्ठा। जलोदरमें ऊँटनीका दूध। बवासीरमें अनारदानोंका रस। स्थावर-जंगम विषोंमें घृत। गुल्मरोगमें बेरका क्वाथ। कब्जमें दहीका पानी। वातरोगमें सुराका मण्ड। अफारेमें शराब। परिकर्त्तिका (गुदामें कैंचीसे काटनेके समान पीड़ा होना) में कोकम आमचूर (वृक्षाम्ल) का क्वाथ।

उपयोग—नारायण चूर्णका उपयोग विशेषतः उदरशोधनके लिये होता

है। मलसंग्रहजनित उदररोग, संग्रहणी, बवासीर, विषविकार, हृद्रोग, पाण्डु, कास, श्वास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कुष्ठ, गुल्म, गलग्रह और वातरोग आदिपर इस चूर्णका उपयोग किया जाता है। इसके प्रभावसे मूलभूत वात, पित्त या कफकी विकृतिसे उत्पन्न सेन्द्रिय विष और मलसंचय, दोनों दूर होते हैं, जिससे रोग शमन होकर अग्नि प्रदीप्त होती है।

सर्वाङ्ग शोथ और जलोदरमें अन्तस्त्वचा और उदर्य्याकलामें जलसंचित होता है उस पर ऊँटनीके दूधके साथ इसका सेवन करानेसे जलके सदृश पतले जुलाब लगकर जलका बहुत अंश निकल जाता है; फिर शेष जल रक्तमें आकर्षित होनेसे शोथ और उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

वक्तव्य—मूल ग्रन्थमें थूहरके दूधकी भावना नहीं लिखी। हमने मलशुद्धिमें हितकर समझकर बढ़ाई है। नाजुक प्रकृतिवालोंको मात्रा कम देनी चाहिये। इस चूर्णका उपयोग करनेके पहिले स्नेहपान करा कोठेको स्निग्ध कर लेनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

[१७] स्वादिष्टविरेचन चूर्ण।

विधि—शुद्ध गन्धक, मुलहठी, सौंफ ५-५ तोले, सनाय १५ तोले और मिश्री ३० तोले लें। सबको मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें।
(आ० नि० मा०)

मात्रा—३ से ६ माशे रात्रिको सोनेके समय निवाये जलसे दें।

उपयोग—यह चूर्ण कब्ज, आमवृद्धि, सिरदर्द बवासीर, रक्तविकार, पामा, खुजली आदिमें कोष्ठशुद्धिके लिये उपयोगी है। सुबह एक या दो दस्त आते हैं। इस चूर्णके सेवनसे उदरमें किसी भी प्रकारका दर्द नहीं होता और अन्नकी श्लैष्मिक कलामें उग्रता भी नहीं आती। इस चूर्णमें मुलहठी, सौंफ और मिश्री सम्मिलित रहनेसे श्लैष्मिककलाकी स्निग्धता बनी रहती है।

अपचन और आमातिसारमें इस चूर्णके साथ हरड़ और सोंठका चूर्ण मिला लेनेसे विशेष लाभ पहुँचता है। दस्तमें दुर्गन्ध, वमन, उदरशूल और वातावरोध होनेपर यवक्षार ४ रत्ती मिला देना चाहिये।

(१८) त्रिफला चूर्ण।

विधि—बड़ी नयी रसदार हरड़, उत्तम बहेड़ा, और नया आंवला, तीनोंके छिलकोंको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। (च० सं०)

सूचना—पुराने, नीरस और सदोष हरड़ आदिसे या पुराने चूर्णसे योग्य लाभ नहीं मिलता।

मात्रा—२ से ६ माशे दिनमे १ या २ बार देवें ।

अनुपान—(१) नये मन्द ज्वरमें पीपल और शहद ।

(२) चातुर्थिक ज्वरमें दूध ।

(३) खांसीमें शहद और गोघृत ।

(४) मेदरोगमें शहद या शहदमिश्रित जल ।

(५) रसायन गुणके लिये २-२ माशे त्रिफलाको पीपल, वंशलोचन और शहदसे देवें । या रात्रिको कांतलोहके पात्रमें त्रिफलाके कल्कका लेप कर दूसरे दिन सुबह शहद और जल मिलावें । पचन होनेपर गोघृत पिलावें ।

(६) ऊरुस्तंभमें कुटकीका चूर्ण मिलाकर निवाये जलसे दे ।

(७) नेत्ररोगोमें घी और शहदके साथ सेवन करते रहनेसे बढता हुआ मोतिय बिन्दु आदि रोग रुक जाते हैं ।

(८) शनैर्मेह पर गिलोयके स्वरसके साथ ।

(९) सब प्रकारके प्रमेह पर त्रिफला चूर्णके समान हल्दी और दुगनी मिश्री के साथ ।

(१०) फेनमेह (थोड़ा-थोड़ा झागसह मूत्र आने) पर त्रिफला, अमलतासके गूदे तथा शहदके साथ दें । ऊपर मुनक्काका क्वाथ पिलावें ।

(११) वृषणशोथमें गोमूत्रके साथ ।

(१२) भगन्दरमें खदिरछालके क्वाथके साथ ।

(१३) मूर्च्छा रोगीको शहदके साथ ।

(१४) पितज विद्रधि पर त्रिफलाके क्वाथमें निसोतका चूर्ण और घी मिलाकर पिलावें ।

(१५) संधिस्थानोंमें शूल होनेसे निन्द्रा न आती हो, तो त्रिफलाके क्वाथमें शहद मिलाकर पिलावें ।

उपयोग—यह चूर्ण प्रमेह, शोथ, कब्ज, विषमज्वर, रक्तविकार, वीर्यदोष, कफ, पित्त, और कुष्ठरोगमें अति उपयोगी है । इसके सेवनसे अग्नि प्रदीप्त और मलशुद्धि होती है । घी-शहदके साथ खानेसे सेन्द्रिय विषप्रकोप और पित्त-विकारजनित नेत्ररोग दूर होते हैं । पुराने रोगोंमें कम मात्रामें दीर्घकाल पर्यन्त सेवन करना चाहिये ।

इस त्रिफला चूर्णमें अनेक अद्भुत गुण अवस्थित हैं । यह दीपन, रुचिकर, चक्षुष्य, रसायन, आयुस्थापक, वृष्य, सारक, हृद्य और बृंहण है । शास्त्रीय अनेक ग्रंथोंमें इसका वर्णन मिलता है । चरक संहितामें त्रिफलाको रसायन कहा है, और लिखा है कि "जो मनुष्य त्रिफलाको घृत और शहदके साथ नित्य सेवन करता है; वह नीरोग रह कर पूरी १०० वर्षकी आयु भोगता है ।"

(१९) पंचसम चूर्ण ।

विधि—सोंठ, छोटी हरड, पीपल, निसोत और कालानमक, इन सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (शा० स०)

सूचना—कितनेही चिकित्सक इस चूर्णको नीबू के रसकी भावना देते हैं।

मात्रा—३ से ६ माशे तक निवाये जलके साथ ले।

उपयोग—यह चूर्ण शूल, अफारा, कब्ज आमवात आदि रोगोंमें, मलशुद्धि करके रोगोको दूर करता है। इस चूर्णके सेवनसे कोष्ठशुद्धि होकर अग्नि प्रदीप्त होती है। कितने ही व्यक्तिको बार-बार मलावरोध हो जाता है, और शारीरिक उत्ताप कुछ अंशमें बढ जाता है। उनके लिये यह चूर्ण हितावह है।

(२०) विरेचन चूर्ण ।

विधि—सनाय, गुलाबके फूल, हरड,बहेडा, आंवला, ३-३ तोले, बादामकी गिरी और कुलफाके बीज १-१ तोला, तथा शुद्ध जमालगोटा ३ माशे ले। सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें

मात्रा—१॥ से २ माशे चूर्णको ३ माशे मिश्रीमें मिलाकर रात्रिको सोते समय लें। ऊपर गरम दूध अथवा गरम जल पीवें।

उपयोग—यह चूर्ण नवीन और पुराने कब्जको दूर करता है, जिससे आंतें तथा आमाशय शुद्ध बन जाते हैं। इसके दस्तोंसे कमजोरी नही आती, कोमल चित्तवाला भी ले सकता है। एक या दो दस्त सुबह खुलकर हो जाते है।

(२१) पंचसकार चूर्ण ।

विधि—सोंठ, सोफ, सनाय, सेंधानमक और बडी हरड, सबको समभाग मिला कूट-छानकर चूर्ण बना लें। (सि० भे० म०)

मात्रा—३ से ६ माशे तक रात्रिको निवाये जलके साथ लें।

उपयोग—यह चूर्ण सौम्य विरेचन है। कब्ज, आमवृद्धि, शिरदर्द, अजीर्ण, उदरवात, अफारा, उदरशूल, गुदशूल आदि दोषोको दूरकर पाचनक्रियाको सुधारता है।

यह चूर्ण अर्शरोग, आमप्रकोप, जीर्ण आमवातमें अधिस्थानोकी पीडा और मलावरोध तथा नये अम्लपित्तके रोगियोंके लिये हितकारक है। इसके सेवनसे आमाशय रसकी अम्लता और उग्रताका ह्रास होता है। आंतोमें गये हुये दूषित आमका पचन होता है और नये आमकी उत्पत्तिका ह्रास होता है। इसके अतिरिक्त यकृत् पित्तका स्राव बढता है जिससे छोटी आंतमें होनेवाली पचन क्रिया सुधरती है। यकृत्पित्त पूरा मिलनेपर मलमें दुर्गन्ध नही होती। कीटाणु और विष

नष्ट हो जाते तथा मलको आगे फेंकनेका कार्य सरलता पूर्वक होता है और शुद्धि होनेके पश्चात् उसका आंकुचन होनेमें भी सहायता मिल जाती है ।

यह चूर्ण अति सामान्य औषधियोंके सम्मिश्रणसे बना है, फिर भी कफ-प्रधान रोगी, जीर्ण आमवातपीड़ित, अर्शरोगी, जीर्ण आमातिसार और अन्य रोगोंमें होनेवाली आमवृद्धिपर अमृत सदृश उपकारक है ।

सूचना—आमातिसारमें आमवृद्धि और मलावरोध होनेपर यह चूर्ण २ माशा सुबहको निवाये जलके साथ देना चाहिये । मात्रा अधिक होनेपर अन्त्रमें उग्रताकी वृद्धि होती है और उदरमें मरोड़ा आता है ।

(२२) हिंग्वादि चूर्ण ।

विधि—भुनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पाठा, हाऊबेर, हरड़, कचूर, अजमोद, अजगन्धा (वनतुलसी या वन अजवायन), इमली, अम्लबेंत, अनारदाना, पुष्करमूल, धनियां, जीरा, चित्रकमूल, वच, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, कालानमक, सांभरनमक, बिड़ लवण, समुद्र लवण और चव्य, इन २६ औषधियोंको समभाग मिला कूटकर महीन चूर्ण करें । (च० सं०)

मात्रा—२ से ३ माशे भोजनके पहले निवाये जल या शराबसे ।

उपयोग—यह चूर्ण वातप्रकोपसे उत्पन्न व्याधियां—पार्श्वशूल, हृदय-शूल, बस्तीशूल, वातज और कफज गुल्म, अफारा, मूत्रकृच्छ्र, गुदा और योनि-में पीड़ा, ग्रहणी, वातज अर्श, प्लीहा, पाण्डु, अरुचि, फेफड़ोंका जकड़ना, हिक्का, श्वास, कफ कास और गलेकी जकड़ाहट आदिको दूर करता है ।

वक्तव्य—इस चूर्णको विजौरेके रसकी ७ भावना दे गोलियां बनाकर चूसनेसे विशेष लाभ होता है ।

[२३] तालीसादि चूर्ण ।

विधि—तालीसपत्र, वच, वंशलोचन, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, चित्रकमूल, चव्य, हल्दी, बेलकी गिरी, अजमोद, कचूर, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर, लौंग, धायके फूल, अतीस, जायफल, अजवायन, पाठा, मोचरस, इमली, समुद्रनमक, विड़नमक, सैंधानमक, कालानमक, सांभरनमक, जीरा, कालाजीरा, वायविड़ङ्ग, अम्लवेंत, अमचूर, हरड़, वहेड़ा, आंवला, हुलहुल, जटामांसी, नागरमोथा, नेत्रवाला, छोटी इलायची, ब्राह्मी, भुइँ आंवला और कूठ, सब १—१ तोला; असगंध ४७ तोले, शोधनकी हुई भाँग ९४ तोले, और मिश्री १८८ तोले मिलावें । भाँगके स्थानपर हरड़का चूर्ण लेनेका भी रिवाज है । जब मादक गुण और पित्तवृद्धि कराना इष्ट हो, तब भाँग मिलानी चाहिये;

-और जब मल शोधनकी आवश्यकता हो, तब हरड मिलानी चाहिये ।

मात्रा—३ से ४ माशे तक दिनमें ३ बार जलके साथ भांगमिश्रित चूर्णकी मात्रा १ से २ माशे ।

उपयोग—यह चूर्ण अति दिव्य है । अरुचि और मलावरोध सह अग्निमान्द्यको दूर करता है । पित्तज, कफज, वातज, तीनो दोषप्रकोपसे उत्पन्न विकारो को दूर करता है । संग्रहणी, क्षय, खांसी, दमा, अरुचि, प्लीहा, अर्श, अतिसार, ताप, वायु, स्थूलता, प्रमेह, मृगी, पाण्डु, गोला, उदररोग, कफज व्याधि, पित्तज व्याधि, चित्त भ्रम, अफारा, विसूचिका, मन्दाग्नि इत्यादि रोगोंका नाश करता है । यह चूर्ण बालकोके लिये भी अति हितकर है । वाणीकी स्पष्टता, पुष्टि, आयुष्य, बल, कान्ति, बुद्धि, स्मृति और धारणशक्तिको देनेवाला है ।

[२४] प्रवाहिकारिपु चूर्ण ।

विधि—शीशियोको बन्द करनेके टकडोके डाट पुराने अथवा नयोको हांडी में भर जलाकर कोयला करें । निधूम होनेपर बरतनसे ढक देवें, जिससे सफेद राख न होजाय । एक सेर डाटमेंसे ९ तोले भस्म मिलती है । (आ० नि० मा०)

सूचना—जो डाट साफ हो, अन्य दूषित ओषधियोके संयोगसे खराब न हुए हो, ऐसे डाटोको उपयोगमें लें । अथवा कारखाने वालोसे डाटके नये टुकड लेकर उसकी भस्म बना लेवें ।

मात्रा—२ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार दहीके साथ देवें ।

उपयोग—यह चूर्ण ग्राही, स्तम्भक, शूलघ्न कीटाणुनाशक और पाचक है, घोर रक्तातिसार, पेचिश, दस्तमें पीप और रक्तका जाना इत्यादि दोषों को दूर करता है । प्रवाहिकाके समान रक्तप्रदरमें भी तत्काल लाभ पहुँचाता है ।

(२५) वज्रक्षार चूर्ण ।

विधि—समुद्रनमक, सेंधानमक, बिडनमक, जवाखार, कालानमक, सोहागे का फूला और सज्जीखार, सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें । फिर समभाग आक और थूहरके दूधको मिला तीन दिन तक भावना देकर धूपमें सुखावें । पश्चात् गोला बना आकके पत्तोमें लपेट हाडीमें रख, कपडमिट्टी करके गजपुट दें । स्वांग शीतल होनेपर क्षारको निकालकर चूर्ण करें । फिर सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, हरड, बहेडा, आँवला अजवायन, जीरा और चित्रकमूल, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें । पश्चात् क्षार और चूर्णको समान मात्रामें मिलालें । (नि० र०)

मात्रा—२-२ माशे दिनमें २ बार देवें ।

अनुपान—वायु अधिक होनेपर निवाया जल । पित्त अधिक हो तो घी ।

कफकी अधिकताम गोमूत्र । तीनों दोषोंके प्रकोपमें काँजी ।

उपयोग—यह चूर्ण गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ, सब प्रकारके उदर-रोग, अग्निमान्द्य, उदावर्त और प्लीहा आदि रोगोंको थोड़ेही दिनोंमें नष्ट करता है ।

(२६) लघुगंगाधर चूर्ण ।

विधि—नागरमोथा, इन्द्रजव, बेलगिरी, लोद, मोचरस और धायके फूल सबको समभाग लेकर चूर्ण करें । (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ माशे मट्ठे या चावलोंके धोवनके साथ दिनमें ३-४ बार । तीव्र रोगमें कम मात्रामें अधिक बार देवें ।

उपयोग—यह चूर्ण अतिसार और पेचिशमें लाभदायक है । रक्तातिसार वाले बालकोंको भी दिया जाता है । और ग्रन्थकारोंने इसमें सोंठ मिलाकर 'अतिसारगजकेशरी,' नाम दिया है । यह चूर्ण सामान्य ओषधियोंसे बना है, परन्तु नूतन तीव्र अतिसार जिसमें दिनमें २५-५० दस्त होते हों, रोगी बिलकुल गल गया हो, ऐसी अवस्थामें भी इसने अनेकोंको बचाया है ।

सूचना—ज्वर हो तो जलके साथ दें ।

[२७] जातिफलादि चूर्ण ।

विधि—जायफल, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर कपूर, सफेद चन्दन, तिल, वंशलोचन, तगर, आँवले, पीपल, हरड़, कलौंजी, चित्रकमूल, सोंठ, बायविड़ंग, तालीसपत्र और कालीमिर्च, सबको समभाग लें । सबकी बराबर शुद्ध भाँगको मिलाकर बारीक करें । फिर सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिला लें । (यो० र०)

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें ३ बार शहदके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण संग्रहणी, श्वास, क्षय, खाँसी और अरुचिको दूर करता है । इस चूर्णमें मुख्य ओषधि भाँग है, उसमें उत्तेजक, मादक, निद्राप्रद, वेदना-निवारक, आक्षेपहर और गर्भाशय-संकोचक गुण हैं । यह व्यवायी, आमपाचक, ग्राही, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तवर्द्धक और अग्निप्रदीपक भी है । इन सबके साथ मादक गुण होनेसे इसका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये ।

[२८] अविपत्तिकर चूर्ण ।

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविड़ंग, छोटी इलायचीके दाने और तेजपात, सब एक एक तोला, लौंग १० तोले, निसोत ४० तोले और मिश्री ६० तोले लें । इन सबको मिला कूटकर बारीक चूर्ण करें । (भै० र०)

मात्रा—४ से ६ माशे भोजनके पहले ठण्डे जलके साथ देवें ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे अम्लपित्त, शूल, अर्श, प्रमेह, मूत्राघात और मूत्राश्मरीका नाश होता है । केवल दूध और भातका भोजन करनेसे जल्दी लाभ होता है ।

यह चूर्ण अम्लपित्त रोगमें विशेष व्यवहृत होता है । अम्लपित्त होनेपर छातीमें जलन होती रहती है, रोग अधिक बढनेपर उबाक और वमन भी होती रहती है, वमन खट्टी और जलती हुई होती है । वमन होनेपर कण्ठमें दाह होता है और नेत्रोंमें जल आजाता है । भोजन कर लेनेपर थोडेही समयमें उदरमें भारी-पन अधिक आता है । इस विकारमें अपचन होने या रोग जीर्ण होनेपर आमाशय पित्त अत्यधिक बढ जानेसे सुबह भी खट्टी डकारें आती रहें, और वमन होती रहे तब अविपत्तिकर चूर्णका सेवन शीतल जल या नारियलके जलके साथ कराया जाता है, जिससे आमाशयका पित्त आंतोंमें चला जाता है ।

सूचना—यदि आंतोंमें शोथ हो, ऊपर दबानेपर वेदना होती हो, तो इस चूर्णका सेवन नहीं कराना चाहिये । आमाशय नलिकासे पित्तको निकाल लेना चाहिये ।

वृक्क दाह होनेपर रक्तमें मूत्र विषकी वृद्धि होती है । फिर नेत्र और मुखमण्डलपर शोथ उत्पन्न होता है । देह कृश और निस्तेज हो जाती है, आलस्य की वृद्धि होती है । दृष्टि मंद होती है, रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है । आमाशयमें पित्त तेज हो जाता है । ऐसी स्थितिमें प्राय. मलावरोध भी दु ख देता रहता है, इस मलावरोधको दूरकर उदरको शुद्ध करनेके लिये इस चूर्णका उपयोग किया जाता है ।

इसके अतिरिक्त आमवात और रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल होनेसे उत्पन्न सधिवात, पक्षाघात, उदरशूल, पित्तप्रकोपज, उन्माद, रक्तदबाववृद्धि आदि रोगोंमें विरेचनकी आवश्यकता होनेपर इस चूर्णका उपयोग किया जाता है ।

[२६] लवंगादि चूर्ण ।

विधि—लौंग, कपूर, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, जायफल, खस (वीरण), सोंठ, कालाजीरा, पीपल, अगर, वंशलोचन, जटामासी, नीलाकमल, सफेद चन्दन, तगर, नेत्रवाला और शीतलमिर्च सब समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें । फिर सबके वजनसे आधी मिश्री मिलावें । (शा॰ सं॰)

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें दो बार शहद या जलके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण शामक और शीतल है । पित्तप्रकोपसे उत्पन्न रोग-हृदय रोग, कण्ठ रोग, खांसी, हिचकी, पीनस, क्षय, उर क्षत, प्रतमक श्वास, अतिसार

अरुचि, प्रमेह, गुल्म, संग्रहणी आदिका नाश करता है। इसके सेवनसे अग्नि-प्रदीप्त होती ह; वातपित्त और कफकी विकृति दूर होती है।

[३०] गोमूत्रक्षार चूर्ण ।

विधि—१० सेर गोमूत्र एक कड़ाहीमें औटावें। चौथा हिस्सा शेप रहनेपर सोंठऽ।, जवाहरड़ऽ।, सेंधानमक २।। तोले और लौंग १।। तोले कूट-पीसकर डाल दें। फिर खुरपेसे हिला-हिलाकर अग्निपर भस्म बना लें। शीतल होनेपर बारीक चूर्ण कर लें।

मात्रा—१ से २ माशे दिनमें २ बार निवाया जल, नागरबेलके पान या तुलसीके पत्तेके साथ देव

उपयोग—यह चूर्ण कफ-सहित श्वास, कास, उदररोग, मलावरोध आदि रोगोंको दूर करता है। साधारण औषध होनेपर भी श्वासरोगियोंके लिए वहुत लाभदायक है। तमाखूके व्यसनियोंको श्वासरोगमें सत्वर लाभ पहुँचाता है। आमाशयमें रहे हुए औरआमको दस्तके साथ बाहर निकाल देता है तथा श्वासवाहिनियोंमें रहे हुए कफको पिघलाकर प्रणालियोको कफमुक्त करता है।

[३१] कर्पूराद्य चूर्ण ।

विधि—कपूर, खस, शीतलमिर्च, जायफल, तेजपात और लौंग १-१ तोला, नागकेशर २ तोले, मिर्च ३ तोले, पीपल ४ तोले, और सोंठ ५ तोले लें। सवको कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर चूर्णके समान मिश्री मिलाकर खरल करें।

(यो० र०)

मात्रा—१ से २ माशे तक दिनमें ३ बार जल, बकरीके दूध, शहद अथवा घृतके साथ देवें।

उपयोग—यह चूर्ण राजयक्ष्मा रोगमें अरुचि, कास, स्वरभंग, श्वास, गुल्म, अर्श, वमन और कण्ठ रोगको नष्ट करता है।

जब स्वरयन्त्रमें कफ चिपका ही रहता हो, तथा आमाशयमें कफ चले जानेसे बेचैनी बनी रहती हो, मुँह मीठा या फीका रहता हो तब इस चूर्णका सेवन करानेसे स्वरयन्त्र साफ रहता है, उबाक दूर होती है, मुँहका स्वाद सुधर जाता है और मानसिक प्रसन्नता रहती है।

(३२) वृद्धदारुकादि चूर्ण ।

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, दारुहल्दी, वरनाकी छाल, गोखरू, गोरखमुण्डी और गिलोय, इन १२ ओषधियोंको १-१

तोला और वृद्धदारुको १२ तोले लेवें । सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करें।
(वृन्द)

मात्रा--६-६ माशे दिनमें २ बार जल या काँजीके साथ दें ।

उपयोग- यह चूर्ण श्लीपद, स्थूलता, दारुण आमवात, कुष्ठ, गुल्म, अरुचि और वातकफजन्य विकारको दूर करता है ।

[३३] अर्शोघ्न चूर्ण ।

विधि--जहरी सूरण (जमीकन्द) २॥ सेर लेकर मोटा-मोटा कूटें । फिर ४० तोले लाल फिटकरीका फूला मिला हाँडीमें भर मुखमुद्रा करके १० सेर आरन्य कण्डोंमें फूँक दें। शीतल होनेपर सफेद रंगकी भस्म हो जाती है । उसे कपडछान करके भर लें ।

मात्रा--१ से २ माशे दहीकी मलाईके साथ दिनमें २ बार ।

उपयोग--यह चूर्ण मस्सोंमेंसे खून गिरता हो, उसे थोडे ही दिनोंमें बन्द करता है । शुष्क वातज अर्शमें भी यह लाभदायक है ।

भस्म तैयार न हो, तो सूरणका चूर्ण विलायती कैपसूल (एक प्रकारकी छोटी डिब्बी) में भरकर निगल जानेसे भी पूरा लाभ मिलता है । जिलेटीनकी बनी हुई जीरो (शून्य) अथवा एक नम्बरकी कैपसूल लेनी चाहिये ।

(३४) पुनर्नवादि चूर्ण ।

विधि--पुनर्नवाकी जड, देवदारु, गिलोय, पाठा, सोंठ, गोखरु, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, छोटी कटेली, बडी कटेली, चित्रकमूल, वासाके पत्ते, सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें । विरेचनकी आवश्यकता हो, तो कुटकी और निसोत भी मिला लें । (यो० र०)

मात्रा--३ से ६ माशे दिनमें २ बार गोमूत्रके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

उपयोग--यह चूर्ण सर्वाङ्गशोथ (सारे शरीरमें फैली हुई सूजन) आठो उदर रोग और भयंकर व्रण आदिको दूर करता है ।

[३५] अन्त्रवृद्धिहर चूर्ण ।

विधि--भुनी हींग, छुआरा, सोया, अजवायन, वायविडंग, सौंफ, पोदीना इन्द्रजव, सफेद मिर्च, इलायची और छोटी हरड, १-१ तोला, बडी हरड और सनाय १॥-१॥ तोले तथा काटेवाले करंजकी गिरी और काला नमक २-२ तोले लें । इनमेंसे सनायको छोडकर शेष औषधियोंको अलग-अलग तवेपर भूनें । फिर

सबको मिला कूट कपड़छान चूर्ण बनावें। (वै० स० वि०)

मात्रा—४ से ६ माशे दिनमें २ बार मिश्री, इलायची, दालचीनी, सोंठ और लौंगका चूर्ण मिलाये हुए आधसेर गरम दूधके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण उदरमें वायुकी उत्पत्तिको रोकता है, संगृहीत पुराने मलको निकालता है; तथा अन्त्र आदि अवयवोंको सबल बनाता है। इससे आँत उतरना (Hernia), उदरशूल, मन्दाग्नि, मलावरोध और उदरवात आदि विकार १ से १॥ मासमें दूर होते हैं।

(३६) मंजिष्ठादि चूर्ण।

विधि—मजीठ, गुलाबके फूल और निसोत २॥-२॥ तोले, सनाय १० तोले और मिश्री ४० तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (वै० चि० सा०)

मात्रा—४ से ६ माशे रात्रिको सोनेके समय निवाये जलसे।

उपयोग—यह चूर्ण उदरविकार और रक्तमे रहे हुए विषको नष्ट करता है; जिससे रक्तविकार, पामा, त्वचा रोग और कब्ज दूर होते हैं। भोजन हल्का पथ्य लेवें। अति खट्टे, अति नमकीन और अति चरपरे पदार्थोंका सेवन न करें। शक्कर वाले मधुर पदार्थ भी कम लें।

[३७] दन्तप्रभाकर मञ्जन।

विधि—शुद्ध चाक मिट्टी ८० तोले, माजूफल, शीतलचीनी और लोद ५-५ तोले; कपूर, लोंग और छोटी इलायचीके दाने २॥-२॥ तोले, फिटकरीका फूला १। तोले, एसिड कारबोलिक २॥ तोले और पीपरमेंन्टका तैल १। तोले ले। पहिले कारबोलिक एसिड और कपूरको मिलावें। जल होजानेपर चाक मिला ले। बादमें अन्य ओषधियाँका कपडछान चूर्ण मिलावे। अन्तमे पीपरमेंटका तेल मिला कर मजबूत डाटवाली शीशीमें भरें। डिब्बेमें भरनेसे थोड़े ही दिनोमे मंजन कमजोर और दूषित होजाता है। इस चूर्णमें ४ तोले बोरिक एसिड मिलानेसे गुणमें वृद्धि होती है। रंग और मधुरता लाना हो, तो १॥-१॥ माशे रेड कार-माइन और सैकरीन मिलावें। सुगन्धके लिये आइल जिरेनियम १ ड्राम को १०० तोले मंजनमें डालें।

उपयोग—यह दन्त मञ्जन दाँत और दाढ़के सब प्रकारके दर्द, पीप आना, रक्त गिरना, चीस चलना, दाँत हिलना, मसूड़े फूलना, मैल लगना, दुर्गन्ध आना, इत्यादि सब विकारोंको दूर करके दाँतोंको सफेद और मजबूत बनाता है। साथमे गले और जीभ पर लगे हुए कफ और मुंहके बेस्वादुपनको भी दूर करता है।

इस मञ्जनमें कपूर, कार्बोलिकएसिड, बोरिक एसिड, पीपरमेंट तेल आदि

कीटाणुनाशक ओषधि मिलायी है। कपूर, लौंग, इलायची आदि कण्ठमें नीचे रहे हुए कफ और मलको खच लेते हैं। मेलखड़ी और खड़िया दाँतोंको स्वच्छ और उज्वल बनाते हैं, तथा माजूफल, लोद, फिटकरी आदि मसूढ़ोंको सबल बनाते हैं।

[३८] दन्तदोषहर मञ्जन।

प्रथम विधि—नीलेथोथेका फूला १ तोला, कपूर १ तोला, लौंग २ तोले, दालचीनी २ तोले, फिटकरीका फूला ४ तोले, समुद्रझाग ८ तोले, सोनागेरू ६ तोले और शुद्ध चायमिट्टी १६ तोले लेवें। सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें।

(आ० नि० मा०)

उपयोग—यह मञ्जन दाँतों पर रगड़नेसे दाँत स्वच्छ और मजबूत होते हैं। दन्तशूल, कृमि, मसूढ़े फूलना, पीप, रक्त निकलना आदि दूर होते हैं अधिक दर्द होने पर दिनमें २-३ बार उपयोग करें।

सूचना—दर्दके समय इस दंतमंजनको लगाकर थोड़ी देर मुँह नीचा रख कर लार टपकावें। फिर निवाये जलसे कुल्ले करे। गलेके नीचे मञ्जनके रसको न उतरने दे। अन्यथा नीलेथोथेके हेतुसे उबाक आने लगती है।

द्वितीय विधि—कासीस, नीलाथोथेका फूला, मीठा कूठ, पाठा, कत्था, माजूफल, कालीमिर्च, दालचीनी, लौंग, और सैंधानमक, सोहागेका फूला और सांभरनमक इन १३ औषधियोंको समभाग मिला बारीक कपड़छान चूर्ण करें।

उपयोग—यह मञ्जन दाँतोंका हिलना, तीव्र दन्तशूल, मसूढ़ेकी सूजन, दन्तकृमि, आदिको तत्काल मिटाता है। मञ्जन लगाकर लार टपकाते रहनेसे कीटाणु बाहर निकल जाते हैं, फिर शूल शमन होजाता है। कासीसके हेतुसे दाँतोंपर कुछ कालापन आजाता है, परन्तु वह थोड़े ही दिनोंमें दूर होजाता है।

[३९] उष्णवातघ्न चूर्ण।

प्रथम विधि—फिटकरीका फूला, कलमीशोरा, छोटी इलायची सगजराहत, सफेद चन्दन, रेवतचीनी शीतलचीनी और सफेद जीरा एक-एक तोला, गधे बिरोजेका सत्व २ तोले, सफेद राल ३ माशे और मिश्री सबके बराबर मिला कूट-पीस कर छान लें।

मात्रा—आधा से १ तोले प्रातःकाल दूधकी लस्सीके साथ दे।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे नया सुजाक (पूयमेह उष्णवात) ३-४ दिनमें ही दूर होते हैं।

सूचना—सगजराहतको कूट कपड़छान करनेके पश्चात् ३ घण्टे तक

खरल करके मिलाना चाहिये ।

दूसरी विधि—कपूर, गिलोयका सत्व, वंशलोचन, शीतलचीनी, छोटी इलायची, नागकेशर, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, बड़ा गोखरू, सतावर, सफेद चन्दन, तगर, पीपल, लोंग, जटामांसी, जायफल, सब औषधियोंको समभाग लें; और सबके बराबर मिश्री मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण बना लें । (धन्वन्तरि)

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार मिश्री मिले दूधके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण सुजाककी तीक्ष्ण अवस्था दूर होनेपर लाभदायक है । सुजाककी जड रक्तमें लीन विष, मूत्रप्रसेकनलिकामें क्षत होना और मूत्रविकारको थोड़े ही दिनोमें नष्ट करता है ।

(४०) मूत्रविरेचन चूर्ण ।

विधि—शीतलचीनी, रेवतचीनी, छोटी इलायची और जीरा १-१ तोला, कलमीशोरा २ तोले और मिश्री ४ तोले मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण बनावें ।

मात्रा—तीन माशे, दूध जलकी लस्सीके साथ दिनमें ३ से ४ बार दो-दो घण्टे पर देवें ।

उपयोग—यह चूर्ण मूत्रोत्पत्तिको खूब वढाता है । सुजाकमें पीप दूर करने और मूत्रमार्ग साफ करनेके लिये उपयोगी है । भोजनमें केवल दूध-भात खानेसे इन्द्रिय जुलाब अच्छा लगता है । इस चूर्णको ३ दिन सेवन करनेसे मूत्रमार्ग साफ होजाता है, । और सुजाककी तीव्रावस्था शमन होती है ।

(४१) हजरुलयहूद चूर्ण ।

विधि—खूब बारीक खरल किया हुआ हजरुलयहूद २० तोले, खरवूजेके बीजकी मींगी, खीरा ककड़ीके वीजकी मींगी, गोखरू, कालीमिर्च, सोंफ, अजवायन, जीरा, कुलथी और ववूलका गोंद, सब २-२ तोले लें, कूट छानकर चूर्ण बना लेवें ।

मात्रा—१ से १॥ माशे चनेके काढ़ेके साथ सुवह ७ दिन तक दें ।

उपयोग—यह चूर्ण वृक्कस्थान (गुरदा) और मूत्राशय, दोनोंकी पित्त और कफप्रधान पथरियोंको तोड़-तोड़कर निकाल देता है ।

(४२) चोपचिन्यादि चूर्ण ।

विधि—चोपचीनी १६ तोले, मिश्री ४ तोले, पीपल, पीपलामूल, मिर्च, लोंग, अकरकरा, खुरासानी अजवायन, सोंठ, वायविडङ्ग और दालचीनी

१-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें । (आ० भि०)

मात्रा—३से६ माशे निवाये जल, घी शहदके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण उपदंश, सुजाक, व्रण, कोढ, संधिवात, रक्तविकार और क्षीणताको नाश करता है, तथा वीर्यको शुद्धि करता है ।

[४३] वृद्धदारु चूर्ण ।

विधि—सफेद मूसली, गिलोयका सत्व, कौंचके बीज, गोखरू, सेमलकी जडकी छाल और आंवला, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें । फिर सबके बराबर मिश्री मिलावें । (आ० औ०)

मात्रा—६ माशेसे १ तोला दिनमें २ बार दूधके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारकी धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, वृद्धावस्थामें होने वाले वातज प्रमेह आदि रोगोंको दूर करता है, थोडे ही दिनोंके सेवनसे कमरमें बहुत बल आजाता है ।

[४४] शतावर्य्यादि चूर्ण ।

विधि—शतावरी, गोखरू, कौंचके बीज, गंगेरनकी छाल, खरैंटीकी छाल और तालमखाना, सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें । (शा० स०)

मात्रा—३ से ६ माशे तक रोज प्रातःकाल या रात्रिको समभाग मिश्री मिलाकर दूधके साथ देवें ।

उपयोग—यह चूर्ण मूत्रविकार और वीर्यदोषको दूर करके वीर्यकी वृद्धि करता है, तथा रतिशक्तिको बढाता है ।

[४५] वीर्यशोधक चूर्ण ।

विधि—बबूलकी बिना बीजवाली कच्ची फली, बबूलकी कोंपल और बबूलका गोंद, तीनोंको समभाग लेकर चूर्ण करें ।

मात्रा—४ से ६ माशे मिश्री मिलाकर लें । ऊपरसे दूध पीवें ।

उपयोग—यह चूर्ण वीर्यका पतलापन, स्वप्नदोष, शुक्रमेह (पेशाबके साथ वीर्यका जाना) इत्यादि धातुदोषको दूर कर वीर्यको शुद्ध, गाढा और श्वेत बनाता है । यह औषध सामान्य होनेपर भी अच्छा काम देती है ।

[४६] न्यग्रोधादि चूर्ण ।

विधि—बड, गूलर, पीपल (अश्वत्थ), अरलू, अमलतास और असन (विजयसार), सब वृक्षोंकी छाल, आम और जामूनकी गुठली, कैथ, चिरौंजी, अर्जुन छाल, धायकी छाल, महुएकी छाल, मुलहठी, लोद, वरनाकी छाल, नीमकी अन्तर छाल,

कड़वे परवरके पत्ते, मेढासींगी, दन्तीमूल, चित्रकमूल, पाढ़ी, करंजके बीज, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इन्द्रजौ, भिलावेकी गिरी (गोडंबी), सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें । (यो० र०)

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार शहदके साथ लें, और ऊपर त्रिफलेका क्वाथ पीवे ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे सब प्रकारके वातज, पित्तज और कफज प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिटिका और सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र शमन होते हैं । शान्तिपूर्वक ३-४ मास तक सेवन करना चाहिये ।

[४७] नारसिंह चूर्ण ।

विधि—शतावरी, गोखरू, छिलके निकाले हुए तिल और विदारीकन्द ६४-६४ तोले, वाराहीकन्द १ सेर, गिलोय १। सेर, शुद्ध भिलावे १२८ तोले चित्रकमूलकी छाल आधसेर, त्रिकटु ३२ तोले, मिश्री ३॥ सेर, शहद १॥। सेर और घृत ७० तोले लेवें । इनमेंसे सूखी ओषधियोंको कूट छान, महीन चूर्ण करके मिश्री मिलावे । पश्चात् घृत और फिर शहद मिलावे । बादमें अमृतबानमें भरें । (चक्रदत्त)

वक्तव्य—हम घी और शहद नहीं मिलाते । सेवन समयमें ६ मासे घी और १ तोला शहद मिला लेना विशेष हितावह माना है ।

रसायन और वाजीकरण गुणके लिये चूर्ण बनाना हो, तो गिलोयके स्थानमें गिलोय सत्व, भिलावेके स्थानमें भिलावेका मगज (गोडंबी) और त्रिकटुके स्थानमे त्रिजात लेना विशेष लाभदायक है ।

मात्रा—४-८ माशे चूर्ण या घी-शहद मिला हो तो ६ माशेसे १ तोला दिनमें २ बार दूधके साथ लेवें ।

उपयोग—इस चूर्णका १ मास तक सेवन करनेसे क्षय, कास, वृद्धावस्थाकी निर्बलता, गंज, प्लीहा, अर्श, पाण्डु, हलीमक, महाश्वास, पांचों प्रकारके कास, पीनस, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, १८ प्रकारके कुष्ठ, ८ प्रकारके उदर रोग, अति दुस्तर मेह, कष्टसाध्य पाँच प्रकारकी कास, ८० प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग, २० प्रकारके कफरोग, द्वन्द्वज रोग, त्रिदोषज रोग, सब जातिके अर्श, ये समस्त रोग दूर होकर पुरुष कंचनके सदृश तेजवाला, सिंहके समान पराक्रमी, घोड़ेके समान वेग और गम्भीर स्वरवाला बन जाता है । १०० स्त्रियोंके साथ रमण कर सकता है और भगवान् नारसिंहके समान कान्तिमान् और पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करता है ।

भिलावे मिलानेसे चूर्ण अधिक उग्र बनता है । वातप्रधान और कफप्रधान

है। फिर उसके विषका रक्तमें शोषण होनेपर ज्वर आ जाता है। ज्वरावस्थामें पथ्यका योग्य पालन न होने या अन्य कारणसे विषमज्वरके कीटाणुओंका प्रवेश प्लीहामें हो जानेपर प्लीहावृद्धि हो जाती है। यदि यह वृद्धि ज्वर निवृत्त हो जानेपर भी रह गई है, ज्वर न आता हो और पचनक्रिया निर्बल हो तो उस अवस्थामें इस चूर्णका सेवन कराया जाय, तो रक्त द्वारा प्लीहामें भिलावेके तैलका प्रवेश होनेपर कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर प्लीहावृद्धि शमन हो जाती है।

अर्श—पचनक्रिया मन्द होजाने पर अनेकोंको मलावरोध रहता है तथा उदरमें वायु उत्पन्न होती है, इस अवस्थामें योग्य उपचार न हो तो अफार आता है, और मलावरोध रहता है। तत्पश्चात् गुदनलिकामें रही हुई शिराओंपर मल और वायुका बोझा पड़कर अर्शकी सम्प्राप्ति हो जाती है। अर्शके मस्से शुष्क और कठोर बन जानेपर चुभते हैं। देह कृश और निर्बल हो जाती है। इन अफारा, मलावरोध और अर्श रोगपर इस चूर्णका सेवन तक्रके साथ कराया जाता है। मिर्चादि मसाला, द्विदल धान्य और बद्धकोष्ठ करनेवाले पदार्थोंका सेवन कम कर देनेसे रोगका सत्वर दमन होता है और देह सबल बन जाती है।

पाण्डु—पचनक्रिया दूषित होने, उदरमें कृमि होने और विषमज्वरकी सम्प्राप्ति होनेपर रस रक्तादि धातुएं भी दूषित हो जाती हैं। फिर रक्तमें वर्ण द्रव्य अथवा रक्तका परिमाण ही कम हो जाता है। जिससे पाण्डु और हलीमक रोगकी सम्प्राप्ति होती है, यदि उदरमें कृमि हो तो पहिले कृमिघ्न औषधि लेकर उनको दूर कर देना चाहिये। ज्वर विष रहा हो, तो पहिले ज्वरघ्न औषधिका सेवन कर उसका निवारण करना चाहिये। इस तरह उत्तान दोषको दूरकर फिर लीन विषको जलाने, रक्तको बढ़ाने और शरीरको सबल बनानेके लिये नारसिंह चूर्णका सेवन कराया जाता है।

श्वासरोग—इसकी उत्पत्ति श्वसन संस्थामें विकृति होनेपर होती है, इसके कारणोंमें कफ धातुकी विकृति, शुक्रक्षय और पचनक्रिया दूषित होना, ये मुख्य हैं। इन तीनों कारणोंपर इस चूर्णका अच्छा असर होता है। इस हेतुसे कफप्रधान श्वासरोग दूर हो जाता है यदि धूम्रपानका व्यसन हो और सेवन चालू रहे, तो इस चूर्णका सेवन करनेपर पूरा लाभ नहीं मिलता। यदि कफ-रहित शुष्क वात पित्तप्रधान श्वासप्रकोप हो, तो थोड़ासा परिश्रम भी सहन नहीं होता। परिश्रमसे हृदयमें धड़कन होती हो, तो उसपर चूर्णका कुछ विपरीत ही प्रभाव पड़ता है।

पीनस—भिलावेका तैल जिस तरह तैल ग्रन्थियोंसे निकलता है, उस समय श्वसन यन्त्रमें या नासापथमें रहे हुये कीटाणु, कफ और मांसकोषका नाश

होता है । इस हेतुसे पीनस रोगमें भी इस चूर्णसे लाभ पहुंचजाता है । नस्यादि बाह्योपचार भी आवश्यकता अनुसार करते रहना चाहिये ।

भंगदर--रोग नया हो और गुदद्वारकी रक्तवाहिनी वहुत दूरतक दूषित न हुई हो तो बाह्योपचार (मर्यादि वेलके कल्ककी पुल्टिस) के साथ इस चूर्णका सेवन कराया जाय, तो पूयोत्पत्ति बन्द हो जाती है और मांसकोथमें भी लाभ पहुँचता है । कारण, भिलावेका तैल पूयमें रहे हुये कीटाणु और कोथमें उत्पन्न कृमियोंको नष्ट कर देता है, यह क्रिया रक्तमेसे भिलावेका तैल वाहर निकालनेपर होती है ।

अश्मरी—यकृत् पित्तकी रचनामे विकृति होनेपर या यकृत् पित्त गाढ़ा वननेपर अश्मरी द्रव्यकी उत्पत्ति होती है । फिर यह द्रव्य वृक्क या मूत्राशय में संचित होकर अश्मरी बन जाता है । इस अश्मरीके कारणरूप यकृत् पित्त की रचनाको यह चूर्ण सुधारता है । इस हेतुसे अश्मरी उत्त्पत्तिको रोकनेके लिये प्रथमावस्थामें यह चूर्ण हितावह है ।

उदररोग—इसकी संप्राप्ति अग्निमान्द्य होनेके पश्चात् होती है । पचनविकृतिके साथ अन्य सहायक अवयव या धातु विकृतिके भेदसे उदररोगके ८ प्रकार पृथक् हो जाते हैं । इन ८ प्रकारोंमेंसे वातोदर, कफोदर, यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदरकी प्रारम्भावस्थामें यह चूर्ण सहायक औषधिरूपसे व्यवहृत हो सकता है । कारण भिलावा, चित्रकमूल, और त्रिकटुका प्रभाव यकृत् और प्लीहाकी क्रियापर तथा वात और कफ विकृतिपर होता हैं । इनके अतिरिक्त शतावरी, गोखरू और तिल भी वातनाड़ियोंको पुष्ट करते हैं ।

प्रमेह--प्रमेहके २० प्रकार शास्त्रमें कहे हैं । इन सबपर इस चूर्णका उपयोग हो, ऐसा नही कह सकेंगे । हस्तिमेह, जिसमे मूत्रका परिमाण अत्यधिक होता है और अधिक बार होता है, रात्रिको निद्रामेंसे भी बार बार उठना पड़ता है । उसमें मूत्रकी अधिक उत्पत्ति इस चूर्णके सेवनसे रुक जाती है । यदि ज्वरादिकी उष्णताके हेतुसे मूत्र आम, कफ, लसीका जाते हों, तो उसे दूर करनेमे यह-चूर्ण सहायक होता है । इसी तरह शुक्राशयको उष्णता पहुँचाने से शुक्र पतला होकर शुक्रमेह हो गया हो (मूत्रके साथ बाहर निकलता है), तो इस चूर्णके सेवनसे विष नष्ट हो जानेसे वह भी दूर हो जाता है ।

जिन प्रमेहोंमें वृक्क और मूत्राशय अपना कार्य योग्य रूपसे न कर सकते हों उन प्रमेहोंमें या मूत्रकृच्छ्रमें इसका सेवन कराना हितकर नही हो सकेगा ।

इक्षुमेह--इसमें अग्याशयका अंकुश यकृत्परसे हट जानेसे यकृत्

निरकुश होकर अत्यधिक शक्कर उत्पन्न करता है । इसमें विकृति अन्य प्रकारकी होती है । अत इस विकारपर इस चूर्णका उपयोग नहीं हो सकता ।

भिलावा सामान्यत, वातज और कफज विकृतिपर अति लाभदायक है । यह इस चूर्णमें मुख्य औषधि है । साथ साथ चित्रकमूल, त्रिकटु आदि सहायक औषधियोंमें भी वातकफघ्न गुण रहा है । इस हेतुसे वात और कफ धातुकी विकृतिसे उत्पन्न रोगोंके पूर्वरूप और प्रथमावस्थामें यह चूर्ण व्यवहृत होता है ।

पित्तप्रकोपमें सामान्यत, भिलावा, त्रिकटु, चित्रकमूलादि औषधिया हानि पहुचाती हैं, किन्तु इन औषधियोंकी उग्रताको दमन करने और पित्तको शमन करनेके लिये गिलोय, शतावरी, विदारीकद, मिश्री और घृत मिलाया है । इस हेतुसे वात कफकी प्रधानतासह गौण पित्तप्रकोप हो, तो इस चूर्णका उपयोग हो सकता है । पित्तप्रकोप होनेपर गिलोयके स्थानमें गिलोयघन या गिलोय सत्व तथा भिलावेके स्थानपर गोडम्बी (भिलावेकी गिरी) का उपयोग करना विशेष हितावह माना जायगा ।

इस चूर्णमें शतावरी, बड गोखरू, छिलके रहित तिल, विदारीकद और वाराहीकद, ये सब औषधिया मिलानेसे यह चूर्ण रसायन, शुक्रवर्द्धक और कामोत्तेजक गुण दर्शाता है । कामोत्तेजनाके लिये यथार्थमें इस चूर्णका सेवन न कराया जाय, तो अच्छा । कारण, जितनी कामोत्तेजना होती है, उतना ही वीर्यका व्यय होता है । फिर परिणाममें हानि होती है ।

कष्टार्तव—जिन स्त्रियोंको मासिकधर्म असमयपर होता हो, उस समय वेदना होती हो और रज स्राव कम होता हो, फिर उसी हेतुसे शारीरिक निर्बलता, पाण्डुता, मस्तिष्कमें दर्द रहना, दृष्टिमान्द्य, अग्निमांद्य, अरुचि, मलावरोध, आलस्य बना रहना और प्रदरादि लक्षण प्रतीत होते हों, उन रुग्णाओंको नारसिंह चूर्णका सेवन करानेपर लाभ पहुचता है ।

मासिकधर्मकी अप्राप्ति—कतिपय नवयुवतियोंको आयु बढनेपर भी बीजाशय या समग्र प्रजनन संस्थाका योग्य विकास न होनेसे मासिकधर्मका आरम्भ नहीं होता । उनका देखाव छोटी कुमारियोंके सदृश भासता है । देह कृश और निस्तेज होती है । एव स्तनोंमें मासवृद्धि नहीं होती । उनको यह चूर्ण, त्रिवग भस्म और मधुमालिनीके साथ दिया जाता है ।

सूचना—(१) यदि उबाक, वमन, मुखपाक, छातीमें दाह, मुहमें कडवापन, स्वेदाधिक्य, अधिक उत्ताप, व्याकुलता, निद्रानाश और क्रोधाधिक्यादि पैत्तिक लक्षण प्रबल हों, तो इस चूर्णका सेवन नहीं कराना चाहिये ।

(२) अधिक प्रवास, अधिक सूर्यके ताप या अग्निका सेवन करनेवालोंको यह चूर्ण नहीं देना चाहिये । एवं ग्रीष्म ऋतु और शरद् ऋतुमें भी इस चूर्णका प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

(३) इस चूर्णके उपयोग कालमें अधिक मिर्चादि गरम पदार्थ, गरम गरम चायादि पेय, धूम्रपान, मांसाहार, स्त्री समागम, चिन्ता और क्रोधादिसे हो सके उतना बचना चाहिये ।

(४) शुष्ककास, प्रतमक श्वास (कफरहित श्वास प्रकोप), अम्लपित्त, नूतनज्वर, अतिसार, ग्रहणी, पेचिस, निद्रानाश, विदग्धाजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रका अति पतलापन और अति उष्णता, इन रोगोंसे पीड़ितोंको नारसिह चूर्ण नही देना चाहिये ।

(५) इस चूर्णका सेवन १६ वर्षसे कम आयुवालोंको नहीं करना चाहिये । एवं सगर्भा स्त्री और अति वयोवृद्धोंको भी नहीं देना चाहिये ।

(६) इस चूर्णके सेवन कालमें बारंबार मूत्रके परिमाण और वर्णपर लक्ष्य देते रहना चाहिये । यदि मूत्र परिमाण अति कम और वर्ण पीला हो जाता है, अति स्वेद आने लगता है और दाह होता है, तो इसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिये । और विकार शमनार्थ नारियलका जल पिलाना चाहिये ।–

(७) यदि वातनाडियां या सुषुम्णाकाण्ड (पीठकी हड्डी) से सम्बन्ध वाले रतिकेन्द्रमें चेतनाधिक्य (Hyperesthesia) है, तो नारसिंह चूर्ण या भिलावे मिश्रित अन्य ओषधिका सेवन नहीं कराना चाहिये ।अन्यथा स्वप्नदोष बार-बार होता रहेगा ।

[४८] वैश्वानर चूर्ण ।

विधि—सैंधानमक और अजवायन २-२ भाग, अजमोद ३ भाग, सोंठ २ भाग और बड़ी हरड़के छिलके १२ भाग ले । सबको मिला, कूटकर बारीक चूर्ण करें । (वृन्द)

मात्रा—४–६ माशे दिनमें २ वार दहीका तोड़, काँजी, मट्ठा, घृत या गुनगुने जलके साथ देवें ।

उपयोग–यह चूर्ण उत्तम दीपन-पाचन और सारक है । आमवात, गुल्म, हृदयका भारीपन, वस्तिपीड़ा, प्लीहा, सारे शरीरमें विच्छूके काटनेके समान पीड़ा होना, अफारा, अर्श आदि गुदाके रोग, मल—मूत्रावरोध, उदररोग, हाथपैरोंकी नसें खिचना इत्यादि रोगोंको नष्ट करता है, और वातकी गतिकी अनुलोम कराता है ।

(४९) अजमोदादि चूर्ण ।

विधि—अजमोद, वायविडङ्ग, सैधानमक, देवदारु, चित्रकमूल, पीपलामूल,

सौंफ, पीपल और कालीमिर्च १-१ तोला, छोटी हरड ५ तोले, विधारा १० तोले और सोंठ १० तोले लें । सबको मिला कूटकर कपडछान चूर्ण करें । (शा० सं०)

मात्रा—३ से ४ माशे दिनमें २ बार गरम जलके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण आमवात, सन्धिवात, गृध्रसीवात, कमर, गुदा, पीठ और पेटके शूल, उदरवात, वातविकार, शोथ और कफ दोषको दूर करता है ।

[५०] कृमिघ्न चूर्ण

विधि—करजकी गिरी, पलासके बीज, किरमाणी अजवायन, कबीला और वायविडंग सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें ।

मात्रा और उपयोग—२ से ३ माशे दिनमें ३ बार गुड मिलाकर गुनगुने जलसे लेवें । फिर दूसरे दिन सुबह एरंड तैलका जुलाब लेनेसे सब प्रकारके उदरकृमियों का नाश होता है ।

(५१) हिस्टीरियानाशक चूर्ण ।

विधि—भुनी हींग २ तोले, बच २ तोले, जटामासी २ तोले, कूठ ८ तोले, कालानमक ४ तोले और वायविडङ्ग १६ तोले लें । सबको मिलाकर कपड-छान चूर्ण करें ।

मात्रा—१ से ३ माशे दिनमें ३ बार गुनगुने जलके साथ दें ।

उपयोग—इस चूर्णका धैर्यपूर्वक एक दो मास तक सेवन करनेसे हिस्टीरिया रोग दूर होता है, और उदरवात, कृमि, निद्रा न आना इत्यादि विकार भी शमन हो जाते हैं ।

इस चूर्णमें मुख्य औषधि हींग है । हींग हिस्टीरिया और इतर समस्त आक्षेप-जनक रोगोंमें अति उपकारक है । इसे हिस्टीरियाकी सब अवस्थाओंमें प्रयुक्त कर सकते हैं । गर्भाशयके विकार-जनित कम्प वात और अपस्मार पर भी लाभ पहुँचाती है ।

बच और जटामासी वातशामक और मस्तिष्कके लिये अति लाभदायक हैं । इन औषधियोंके हेतुसे हिस्टीरिया रोगिणीकी अशान्ति कम होती है, और निद्रा भी आजाती हैं । कूठ आमाशय आदि स्थानोंके दोषको दूर करता है, तथा आक्षेप निवारक है । कालानमक अग्निप्रदीपक और दोषपाचक है । वायविडङ्ग उदरशोधक है ।

[५२] प्रदरान्तक चूर्ण ।

विधि—चिकनी सुपारी, माजूफल, चोलाईकी जड, धायके फूल, सोना-गेरू, मोचरस, पठानीलोद और राल, सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें फिर सबके बराबर मिश्री मिलावें ।

मात्रा—६ माशेसे १ तोला चावलोंके धोवनके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण गर्भाशय आदि प्रजननयन्त्र पर शामक असर पहुंचाता है । इसके सेवनसे सब प्रकारके रक्तप्रदर और श्वेतप्रदर दूर होते हैं; तथा गर्भाशय और बीजाशय सुदृढ़ बनते हैं ।

प्रदरके श्वेत और रक्त, ये दो भेद मुख्य हैं । अन्य रीतिसे जलसदृश प्रवाही उष्ण स्राव, गाढा सफेद स्राव, पीलास्राव, रक्तस्राव, और दुर्गन्धमय पूयमिश्रितस्राव, ये ५ प्रकार होते हैं । रोगारम्भमें उष्णता अथवा प्रदाह होनेपर जल जैसा प्रवाही स्राव होता है । यही जीर्ण होनेपर या रोग चिरकारी होनेपर गाढा सफेद स्राव होता है । जीर्णवस्थामें स्राव पीला बन जाता है । किसी रक्तवाहिनीसे सम्बन्ध होनेपर या बीजाशयसे आनेवाली नलिकोमेंसे रक्तमय या रजोमय स्राव होता है । गर्भाशयमें कर्कस्फोट होने, शिरा टूटने या क्षत होनेपर भी स्राव रक्तमय बन जाता है । बीजाशय, बीजवाहिनी, गर्भाशय या प्रजननमार्गमें क्षत होकर पाक होने या विद्रधि बननेपर पूयप्रधान दुर्गन्धमय स्राव होता है । इनमेंसे पहले ३ प्रकारोंपर इस चूर्णका उपयोग होता है । चौथे रक्तमय प्रकारमें कर्कस्फोट या अन्य अधिक विकृति न हुई हो और रोग अति जीर्ण न हुआ हो तो उसपर भी इस चूर्णके सेवनसे लाभ पहुंचता है ।

वक्तव्य— (१) यदि गर्भाशयमें अधिक मल संग्रह हुआ हो या कीटाणुप्रकोप हो, तो उत्तरबस्तिद्वारा उसे धोते रहना चाहिये । धोनेके लिये और पञ्चम प्रकारमे तैल बस्ति आदि उपचारके लिये भी किसी स्त्री चिकित्सककी सलाह लेनी चाहिये ।

(२) शराब, गरम गरम चाय, अति गरम मशाला, राई आदि दाहक पदार्थ और देरसे पचनेवाले भोजनादिका त्याग करना चाहिये गर्भाशय। शिथिल होनेपर ब्रह्मचर्यका पालन करना हितावह है ।

इस चूर्णके सब द्रव्य कषाय रस और ग्राही गुणप्रधान हैं । अतः मन्दाग्निवालोंको मात्रा कम देनी चाहिये । कारण, हरड़के अतिरिक्त सब कषाय रस प्रधान औषधियां प्रायः पचनक्रिया मन्द करती हैं । किन्तु कषाय रस और ग्राही गुणप्रधान औषधियां बहुधा शामक असर पहुँचाती हैं । इनमें इस प्रयोगकी औषधियोंका शामक गुण प्रजनन यन्त्रपर मुख्य होता है ।

सूचना—यदि प्रदरके स्रावमें गर्भाशयमें कोथ होनेसे मुर्दे सदृश दुर्गन्ध आती हो, उसपर इस चूर्णका उपयोग नहीं करना चाहिये ।

[५३] चन्दनादि चूर्ण ।

विधि—सफेद चन्दन, जटामांसी, लोद, खस, कमलकेशर, मिश्री, नागकेशर, बेलगिरी, मोथा, सोंठ, नेत्रबाला, पाठा, कुड़ाकी छाल, धायके फूल, इन्द्रजौ, अतीस, रसौत, आमकी गुठलीकी गिरी, जामुनकी गुठलीकी गिरी, मोचरस, कमलगट्टाकी गिरी, लजालू, छोटी इलायची और अनारके फलकी छाल, समभाग मिला कूट कपड़छान चूर्ण बना लेवें । (भै० र०)

मात्रा—४ से ६ मासे दिनमें २ बार लेवें । ऊपर ५-१० तोले चावलों के भिगोये जलमें ३ मासे शहद मिलाकर पीवें ।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारके घोर प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तपित्त रोगको १५-२० रोजमें दूर करता है ।

इस चदनादि चूर्णमें गर्भाशयपर असर पहुचानेके अतिरिक्त चिपके हुये आम-मल (गर्भाशयमें संगृहीत प्रदर मल) और कफादिको खोलकर बाहर फेंक देनेका गुण भी अवस्थित है । एवं इस चूर्णमें चन्दन, जटामांसी आदि सुगन्धमय कीटाणुनाशक द्रव्योंकी प्रधानता है । इस हेतुसे कीटाणु विषप्रकोपजप्रदाह होकर उत्पन्न होनेवाले रक्तस्राव या पूयस्रावमय नूतन प्रदरपर इस चूर्णका प्रयोग होता है । स्राव दुर्गन्धमय होनेपर इस चूर्णके उदर सेवनके अतिरिक्त इस चूर्णके क्वाथ या फिटकरीके जल अथवा बोरिक एसिड मिले हुए जलसे धोनेपर बाह्य शुद्धि होती है । इनमें फिटकरीके जलसे गर्भाशयकी शुद्धि और आकुंचन भी होता है । अतः गर्भाशयकी शिथिलता होनेपर फिटकरीके जलका उपयोग करना विशेष हितावह है ।

प्रदरके समान रक्तस्रावप्रधान अतिसार, अर्श और रक्तपित्त रोगमें शामक असर पहुंचाने और रक्तस्रावको बन्द करानेके लिये इस चूर्णका प्रयोग किया जाता है । रक्तातिसारमें चावलोंकी यवागू, रक्तार्शमें मट्ठा और रक्तपित्तमें आवलोंके हिम या फाण्टकी योजना अनुपानरूपसे करनेपर लाभ जल्दी पहुंचता है ।

[५४] पुष्यानुग चूर्ण ।

विधि—पाठा २ भाग तथा जामुनकी गुठलीकी गिरी, आमकी गुठलीकी गिरी, पाषाणभेद, रसौत, मोचरस, लजालू, कुड़ेकी छाल, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोद, गेरू, कायफल, मिर्च, सोंठ, मुनक्का, रक्तचन्दन, श्योनाक (अरलू) छाल, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलहठी, अर्जुनछाल, सब समभाग मिलाकर चूर्ण करें । (च० सं०)

मात्रा—१॥ से ३ माशे दिनमें २ बार लें। ऊपर चावलोंका भिगोया जल शहद मिलाकर पीवें अथवा लोदका चूर्ण दूधमें मिलाकर उसके साथ सेवन करें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे सब प्रकारके श्वेत, नील, पीत और रक्त प्रदर, योनिदोष, रजोदोष, रक्तातिसार और अर्श रोग आराम होते हैं। इस चूर्णकी ओषधियोंको पुष्य नक्षत्रमें लाकर तैयार करनेका चरक संहिताकारने लिखा है।

(५५) रजःप्रवर्तक चूर्ण।

विधि—भारंगी, कालीमिर्च, पीपल और सोंठ, ये सब ८-८ माशे और भुनी हींग ३ माशे लें। सबको पीसकर चूर्ण करें।

मात्रा—२ से ३ माशे, ब्राह्मी १ तोला और काले तिल ५ तोलेके क्वाथके साथ दें। मासिकधर्म आनेके समयसे १० दिन पहलेसे रोज सुबह देवें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे मासिकधर्म नियमित रूपसे आने लगता है, और कष्ट नही होता। मासिकधर्म आनेपर चूर्ण देना बन्द करें। इस रीतिसे ४-६ मास तक देते रहनेसे मासिकधर्म की रुकावट, शूल, कमरमें दर्द, अरुचि, बेचैनी आदि दूषित रक्तकी विकृतिसे होनेवाली पीड़ा दूर होती है।

बीजाशय नलिकामें अवरोध होनेसे जब रजःस्रावमें कष्ट होता है तथा पूरा स्राव नही होता। इसी हेतुसे मस्तिष्कमें भारीपन और वेदना, दृष्टिमान्द्य, शारीरिक निर्बलता और पाण्डुतादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर इस चूर्णका प्रयोग किया जाता है।

वक्तव्य—यह औषधि सामान्यतः १५ से ३५ वर्षकी आयुवाली स्त्रियोंको दी जाती है। ५० वर्षकी आयुमें प्राय: रजोधर्म बन्द होता, है। ऐसे समयपर उत्पन्न विकारोंपर इसका उपयोग नही करना चाहिये। यदि रुग्णाका शरीर निर्बल हो, पाण्डुरोगसे पीड़ित भी रहती हो, तो मासिकधर्मके ५-५ वें दिनसे सुवर्णमालिनी वसन्त या लोहप्रधान औषधिका सेवन १५-१५ दिनतक कराते रहना चाहिये।

मासिकधर्मके दिनोमें मलावरोध नही रहना चाहिये। भोजन लघु पौष्टिक लेवें। ३ दिनतक स्नान न करें और शीतल वायुका सेवन भी न करें। नेत्रोंको अधिक कष्ट न देवें। शान्तिसे लेटे रहना विशेष हितावह है।

सूचना—यदि रुग्णाको मासिकधर्मकालमें मलावरोध हो, तो सनाय या स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण देकर उदरशुद्धि करा लेनी चाहिये। अन्यथा रजःस्राव पूरा नही हो सकेगा।

[५६] रक्तप्रदरारिपु चूर्ण ।

विधि—पुराना ऊनी वस्त्र या ऊनको जलाकर काली राख करें, सफेद राख नहीं होनी चाहिये । खुले मैदानमें जलावें, निर्धूम होनेपर ढक देनेसे काली राख होजाती है ।

मात्रा—१ से ३ माशे तक दिनमें २ बार ठण्डे जलके साथ दें ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे घोर रक्तप्रदर आराम होता है । बडी बडी औषधियों से अच्छी न हुई अनेक रुग्णाएं इस औषधिसे अच्छी हो गयी हैं । यह चूर्ण ६ माशे गुनगुने जलमें घोलकर पिला देनेसे उदरशूल पर भी तत्काल लाभ पहुँचाता है ।

(५७) शृंग्यादि चूर्ण ।

विधि—काकडासींगी, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, बडी कटेली, पुष्करमूल, समुद्रनमक, कालानमक, सैंधानमक, बिडनमक, जवाखार, सबको बराबर मिला कूटकर छान लें । (धन्वन्तरि)

मात्रा—बालकोंको १ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार गरम जल या शहद के साथ । बडे मनुष्यको १ से ३ माशे दें ।

कफको बाहर निकालनेके लिये शहदके साथ । ज्वरपर गुनगुने जलसे । दांत निकलनेकी पीडापर शहदसे । डब्बारोगमें कफप्रकोप अधिक होनेपर अभ्रक भस्म या शृंगभस्मके साथ (सहायक रूपसे हृदयको बल देनेके लिये) । अन्न भोजी बच्चेको कफ प्रकोप होनेपर शृंग्यादि चूर्ण अलसीके यूषके साथ ।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंकी छातीमें कफ जमना, कफयुक्त कास, कब्ज, दांत निकलनेके समयकी पीडा, पसली रोग (Broncho Pneumonea), हरे, पीले दस्त और ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है बच्चोंके लिए बडा लाभदायक है । वैसे बडोंके लिए भी हिक्का, श्वास, ऊर्ध्ववात, कास, अरुचि, जुकाम आदिमें अति उपयोगी है ।

(५८) पिप्पल्यादि चूर्ण ।

विधि—पीपल, नागरमोथा, अतीस कडवा और काकडासींगी सब सम-भाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे ।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ से ३ बार बालकोंके लिये माताके दूध अथवा शहदके साथ चटावें ।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंके ज्वर, अतिसार, जुकाम, वमन, श्वास, कास इत्यादि रोगोंको दूर करता है । इस चूर्णको 'मुस्तादिचूर्ण, 'घनादिचूर्ण, और

और बाल 'चातुर्भद्रिका' भी कहते है। यह बालकोंके लिए अति हितकर ओषधि है ।

(५९) केशरादि चूर्ण ।

विधि—केशर १ तोला, जायफल १ तोला, दालचीनी २ तोले, लौंग ६ माशे, इलायची ३ माशे, शुद्ध चाक ५ तोले और मिश्री १६ तोले लें । सबको मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें ।

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिनमें ३ बार शहद या माताके दूधमें ।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंके अतिसार, पेचिश और उदरपीड़ाको दूर करता है । बड़े मनुष्योंको भी लाभदायक है

(६०) बालघोरकासघ्न चूर्ण (खोखली) ।

विधि—काली तमाखूके पत्तेका डण्ठल २० तोले साफ करके लें । शाखाका कोई भाग आगया हो, तो निकाल डालें । फिर एक एक इञ्चके टुकड़ेकर मिट्टीके बरतनमे रखकर जलावें । निर्धूम होनेपर ऊपर ढक्कन लगा देवें, जिससे कोयले होजायँ । राख न होनी चाहिये । फिर सैंधानमक२० तोले मिलावें । दोनोंको कूट कपड़छान कर डाट् वाली शीशीमें भरें । वर्षा ऋतुमें जलाने, कूटने और शीशीमें भरनेकी क्रिया एक दिनमें ही कर लेनी चाहिये, अन्यथा सर्दी पाकर ओषधि निर्बल होजायगी । (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें ३ बार देवें ।

अनुपान—बालकोंके श्वास, ज्वर और अतिसार आदि व्याधियोंमें नागरबेल के पक्के १ पान और १ से २ रत्ती अजवायनके चूर्णको ३-४ माशे जलमें मिलाकर बारीक पीसें । फिर छान जलको गुनगुना कर औषधि मिलाकर पिलादें ।

काली खाँसीमें नागरबेलके १ पक्के पान और २ इलायची (छिलका सहित) को साथमें मिला जल डालकर पीसें । फिर छान जलको गुनगुना कर ओषधि मिलाकर दिनमें २-३ बार पिलादें ।

सामान्य खाँसी पर शहदमें चटावें ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनमें बालकोंकी काली खाँसी (Whooping Cough), सादी खाँसी, श्वास, ज्वर, अतिसार, हरे रंग के दस्त आदि रोग बहुत जल्द दूर होते हैं ।

(६१) बाल-अतिसारहर चूर्ण (गुलाबी) ।

विधि—आमकी गुठलीकी गिरी, जामुनकी गुठलीकी गिरी, मोचरस और खस १०-१० तोले तथा शुद्ध सिंगरफ १ तोला लें । सबको कूट कपड़छान चूर्ण बना लें । आमकी ऋतुमें बनानेसे चूर्ण अच्छा बनता है ।

फिर विशेष गुणकारी नहीं बनता । (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे बालकोंके अतिसार, पेचिश और ज्वर आदि रोग दूर होकर बालक पुष्ट बनते हैं ।

(६२) बालमित्र चूर्ण ।

प्रथम विधि—कमलकी केशर, लजालू, धायके फूल और मोचरसको समभाग मिलाकर चूर्ण करे । (वृन्द)

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार जल या शहदसे दें, अथवा जलमें उबाल छानकर पिलावे ।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंके अन्त्रकी उग्रताका शमनकर रक्तातिसारको तुरन्त दूर करता है ।

दूसरी विधि—लोद, इन्द्र जव, धनियाँ, आँवला, नागरमोथा और नेत्रबाला सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें बार शहदसे चटावे ।

उपयोग—यह चूर्ण बच्चोंके प्रवाहिका, उदरपीडा और ज्वरको दूर करता है ।

तीसरी विधि—१० तोले कुटकीके छोटे-छोटे टुकडेकर तवेपर मन्दाग्निसे भूने, कलछीमे बराबर चलाते रहें । जल न जाय, यह सम्हालें । अच्छी रीतिसे भुन जानेपर उतार लें । शीतल होनेपर बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णका मूलग्रन्थकर्ताने "कटुभर्जित चूर्ण" नाम रक्खा है ।

मात्रा—१ से ४ रत्ती (बडे मनुष्योको २ से ४ माशा) दिनमें ३ बार गुनगुने जलके साथ, अथवा मंडूर भस्म मिलाकर गुडके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण बच्चोंके यकृत्की वृद्धि, मलावरोध, ज्वर, सुस्ती, उदरविकार, सूजन आदिको ४-६ रोजमें ही दूर करता है । बडे मनुष्योंको १ से २ माशे तक देना चाहिये ।

बालकोंको शीत लग जाने या माताके आहार-विहारमें भूल होने अथवा भैंस आदिका दूध पिलानेसे यकृत्की वृद्धि होकर बुखार आ जाता है । फिर उदरमें कुछ भारीपना मालूम पडता है, तथा मलावरोध, उत्साहका अभाव और निस्तेजता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं । उसपर इस चूर्णका प्रयोग दिनमें ३ बार करते रहनेसे एक दो दिनमें उदर शुद्धि होकर ज्वर शमन हो जाता है, और यकृत्में लाभ होने लगता है । फिर ५-७ दिनमें यकृत् मूल स्थिति में आजाता है ।

वक्तव्य—यदि यकृद् वृद्धि अत्यधिक हो गई हो, तो बालकोंको उबले हुए दूधमें नीबूका रस डाल कर फाडें, फिर जल छानकर पिलाते रहना

चाहिये । दूध, अन्न आदि सब आहार बन्दकर देना चाहिये ।

यदि बड़े मनुष्यको जीर्ण मलावरोध और आमवृद्धि होकर अग्निमान्द्य हुआ हो तो इस चूर्णके साथ सज्जीखार (Soda bi-Carb) मिलाकर दिनमें एक या २ बार दिया जाता है ।

यदि यकृद्वृद्धि, यकृत्में रक्तसंग्रह या प्रदाह हुआ हो, तो इस चूर्णके साथ नौसादर २-२ रत्ती मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहना चाहिये । ऐसी अवस्थामें मात्रा कम दी जाती है ।

यदि बड़ी आयुवालोंको ज्वरादि रोगोंमें उदरशुद्धिके लिये बालमित्र चूर्ण देना हो तो लगभग ३ माशे और सौंठका चूर्ण १ माशा मिला सुबह जलके साथ देना चाहिये । सोंठका चूर्ण मिलानेसे उदरमें वेदना नहीं होती और आमको निकालनेमें सहायता मिल जाती है ।

श्री०वैद्यराज कान्तिलालजी आचार्य कुटकीको जला काले कोयले करके बालकोंकी कासपर उपयोगमें लेते रहते हैं । वे दिनमें २ या ३ बार २-३ रत्ती शहदके साथ देते हैं । इसे उन्होंने **कृष्णा चूर्ण** संज्ञा दी है । इस चूर्णके सेवनसे बालकोंको वमन होकर कफ सरलतासे निकल और जाता है कास शमन हो जाती है ।

श्री० वैद्यराज नगीनदासजी इस चूर्णका उपयोग अति परिमाणमें करते हैं । इस चूर्णमेंसे कड़वापन कम कराने और गुणमें वृद्धि करानेके लिये वे भुनी हुई कुटकी १० तोला, कालानमक ५ तोला, कालीमिर्च २॥ तोला और भांग १। तोला मिलाकर मिश्रण बना लेते हैं । इस मिश्रणोंमेंसे बच्चोंको १ माशे और बड़े मनुष्योंको ३ से ६ माशेका क्वाथ देते हैं । जब विषमज्वरमें मलावरोध हो और उदरमें कच्चा आहार हो, तब उदरशोधन करके ज्वर शमनार्थ यह चूर्ण दिया जाता है । विषमज्वरमें सोडा बाई कार्ब भी १-१॥ माशेतक मिला देते हैं । इसके अतिरिक्त अपचन या उदरमें अफारा होनेपर नौसादर पुष्प भी २ रत्ती मिला देते हैं ।

बालकोंके ज्वर, अपचन, उदरशूल, उदरकृमि, कामला और यकृद् वृद्धिपर यह निर्भय रूपसे व्यवहृत होता है ।

सूचना—ज्वर होनेपर भोजनमें दूधके अतिरिक्त कुछ भी नहीं देना चाहिये । यकृद्वृद्धिपर और कामलाके रोगीको घी नहीं देना चाहिये ।

इस चूर्णमें विरेचन गुण होनेसे छोटे या बड़े, सभी को इस चूर्णके सेवनके पश्चात् लघु भोजन, खिचड़ी दूध भात या तक्र देना चाहिये ।

चौथी विधि—सोंठ, नागरमोथा, बेलकी गिरी, चित्रकमूल, पीपलामूल और बड़ी हरड़का छिलका, इन ६ ओषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें । (वृ० नि० र०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिनमें ३ बार शहदके साथ चटावें ।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंकी कफज ग्रहणीको दूर करता है ।

पाँचवी विधि—हरड़, वच और कूठको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे ।

मात्रा—आध-आध रत्ती दिनमें ३ बार शहद मिलाकर माताके दूधके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे बालकोंका तालुपातन (गला पटना) रोग नष्ट होता है।

(६३) भस्मकनाशक चूर्ण।

विधि—हरड, बहेडा, आवला, नागरमोथा, वायविडंग, पीपल, मिश्री और अपामार्गके बीज, इन ८ ओषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (आ० भि०)

मात्रा—६ माशेसे १ तोले तक शहद और घृतके साथ दिनमें ३ बार चटावें।

उपयोग—यह चूर्ण आमाशयपर अवसादक असर पहुंचाता है, जिससे बढ़ी हुई अग्नि सम होकर भस्मक रोग शांत हो जाता है।

(६४) नाराच चूर्ण।

विधि—मिश्री ४ तोले, निसोत ४ तोले और छोटी पीपल १ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। (व० से०)

मात्रा—६ माशे सुबह भोजनके पहिले एक बार शहदके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण कब्ज, आमवृद्धि, शिरदर्द, उदरमें भारीपन, वातरोग और पित्तरोगमें उपयोगी है। इसके सेवनसे बिना तकलीफके दस्त साफ आता और आध्मान भी दूर होता है।

(६५) चिंतामणि चूर्ण।

विधि—रास्ना, खरेंटी, पद्मकाष्ठ, देवदारु, हरड, बहेडा, आवला, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडंग, इन सब ओषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपडछान चूर्ण करें। (वै० जी०)

मात्रा—२ से ३ माशे शहद और घीके साथ मिलाकर दिनमें २ बार चाटें। घी १ से २ माशे तक पहिले मिलावें। फिर चाटने लायक शहद मिला लेवें।

उपयोग—यह चूर्ण वातप्रकोप और पचनेन्द्रिय संस्थाकी विकृतिको सुधारकर सब प्रकारके श्वास और कास रोगोंको दूर करता है।

[६६] वासादि चूर्ण।

विधि—अडूसेके ५ सेर पत्ते लेकर उनके बीचमें रही हुई नसें निकाल डाले। फिर २० सेर जलमें मिलाकर गरम करे। पश्चात् कालानमक और सैंधानमक ४०-४० तोले तथा जवाखार और पापडखार २०-२० तोले डाले। पत्ते पक जाय और पानी जल जाय, तब कडाहीको उतार ले। फिर पत्तोंको सुखाकर कपडछान चूर्ण करे। (आ० नि० मा०)

मात्रा—२ से ८ रत्ती दिनमें ३ बार शहद या नागरवेलके पान अथवा घीमें मिलाकर देवें। जलमें देना हो, तो भी चल सकेगा।

उपयोग—इस चूर्णके उपयोगसे नई और पुरानी खासी, सूखे हुए कफवाली खासी, अति कफवाली खासी, सब दूर होती है। सामान्य ओषध होनेपर भी अच्छा काम पहुंचाती है।

कषाय प्रकरण।

स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट, ये कषायके ५ भेद हैं। ये उत्तरोत्तर लघु गुणवाले हैं। अर्थात् स्वरससे कल्क हल्का, कल्कसे क्वाथ, क्वाथसे हिम और हिमसे फांट लघु होता है।

स्वरस—ताजी ओषधियोंको कूट निचोड़कर रस निकाला जाता है, उसे स्वरस कहते हैं। कितनी ही ओषधियोंका रस स्वरसयन्त्र द्वारा निकाला जाता है। अर्द्ध सूखी ओषधियोंको कुचल या कूट, द्विगुण जलमें २४ घण्टे भिगो, छानकर रस निकाल लेनेको ही स्वरस कहते हैं। एवं सूखी ओषधियोंको ८ गुने जलमें पका चतुर्थांश जल शेष रहनेपर छान लेनेसे भी स्वरसका काम निकलता है।

सूचना—अनेक वृक्षोंकी छाल और पत्तोंमें रस बहुत कम होनेसे कूटकर निचोड़नेसे नहीं निकलता। ऐसी ओषधियोंको कूटकर एक कलई किये हुए कटोरदानमें भरें। फिर यन्त्र वर्णनमें लिखे अनुसार स्वरस यन्त्रद्वारा स्वरस निकाल लेवें।

अनेक ओषधियोंका स्वरस पुटपाक कृतिसे निकाला जाता है, और अनेकोंको कूट निचोड़कर कपड़ेसे छान लिया जाता है।

कल्क—ताजी ओषधियोंको विना जल मिलाये और सूखी ओषधियोंमें जल मिलाकर चटनी (लुगदी) तैयार करनेको कल्क कहते है। यदि कल्कमें प्रक्षेप शहद घृत,या तैल मिलाना हो तो कल्कसे द्विगुण; शक्कर या गुड़ मिलाना हो तो कल्क समान और कांजी आदि द्रव पदार्थ मिलाना हो, तो कल्कसे चतुर्गुण मिलाना चाहिये।

क्वाथ—ताजी या सूखी एक या अनेक ओषधियोंको मोटी-मोटी कूटकर औषध कृत विधिमें लिखे अनुसार उबाल लेनेसे क्वाथ तैयार होता है।

क्वाथ द्रव्योंको कूटकर रखनेसे ६-७ मास बाद या वर्षा ऋतुके पश्चात् हीनवीर्य हो जाते हैं। अतः आवश्यकतानुसार थोड़े-थोड़े परिमाणमे तैयारकर कांचकी शीशियों या चीनीमिट्टीके बर्तनमें सम्हालकर बन्द रखें, जिससे ओषधिया अधिक समयतक अच्छी रहें।

क्वाथ करनेकी ओषधियोंको रात्रिको मिट्टी अथवा कांचके पात्रमें भिगो सुबह चूल्हेपर चढ़ा मन्दाग्निसे उबालकर क्वाथ करें। मोटे चूर्णको १६ गुने जलमें भिगो—उबालकर चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये। बारीक कूटे हुए चूर्ण अथवा तैलयुक्त मृदु ओषधियोंका क्वाथ करना हो, तो ४ या ८ गुना जल मिला पौना या आधा जल शेष रहने पर्यन्त उबालकर छान लेना चाहिये।

शास्त्र विधि अनुसार कुटजारिष्टके लिये या अन्य कार्यके लिये कुटजत्वक् ताजी लेनी चाहिये। परन्तु सर्वत्र ताजी छाल नही मिल सकती। अतः सूखी छाल ही लेनी पड़ती है। उसका क्वाथ करनेके लिये १६ गुने जलमें उबालकर चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। यदि जल ८ गुना या ४ गुना लिया जायगा, तो पूरा सत्व निकल सकेगा। जलमें आये हुए सत्वमेंसे कितनेही अंशका पुनः छालमें संशोषण (पात्रको चूल्हेपरसे नीचे उतारनेके समय) हो जाता है। अतः शुष्क द्रव्योंमें ८ गुना जल मिलानेका नियम बनाया है।

क्वाथ करनेके लिये बर्तन मिट्टीका लेना चाहिये; और उबालनेके समय बर्तनका मुंह खुला रखना चाहिये, ऐसा शार्ङ्गधर संहितामें कहा है। किन्तु ढक्कन ढककर क्वाथ करनेसे अनेक सूक्ष्म परमाणुओंका संरक्षण होता है; जिससे क्वाथ अधिक गुणदायी होता है; ऐसा कतिपय विद्वान् चिकित्सकोंका अनुभव है; और वही ग्राह्य करने

योग्य हैं । यदि तेज़ी औषधियों और मृदु औषधियोंका क्वाथ करनेके बदले नलिका यन्त्र द्वारा अर्क निकाले तो विशेष लाभ होता है, और बार-बार क्वाथ करनेका श्रम भी मिटजाता है ।

क्वाथ रोज नया-नया बनाकर उपयोगमें लेना चाहिये । क्वाथ २४ घण्टेसे ज्यादा समयतक गुणदायक नहीं रह सकता । अधिक समयतक गुणयुक्त रखनेके लिये अनेक औषधालयोंमें १२ वां हिस्सा रेक्टीफाइड स्पिरिट (या शराब) और चौथा हिस्सा शहद मिला लेते हैं, परन्तु उसमें क्वाथके गुणके साथ रेक्टीफाइड स्पिरिटका गुण सम्मिलित होकर मूल गुणमें थोडा रूपान्तर कर देता है । मात्र ताजा क्वाथ करनेके लिये समयाभाव होनेपर काम चल सकता है ।

हिम—औषधियोंके चूर्णको रात्रिको ६ गुने जलमें भिगो देवें । सुबह मसलकर छान लेनेसे शीत कषाय—हिम तैयार होजाता है । भिगोनेके लिये पात्र चीनी मिट्टी या कांचका लेना चाहिये ।

फाण्ट—औषधियोंके महीन चूर्णको किसी पात्रमें गरम उबलते हुए १६ गुने जलमें डालकर ढक्कन लगा दें । आध या एक घण्टे बाद छान लेनेसे फाण्ट होजाता है ।

अथवा औषध चूर्णको ४ या ८ गुने अथवा १६ गुने जलमें १२ घण्टे भिगो देवें । फिर चूल्हेपर उबालें, आधा जल शेष रहनेपर उतार लेवें । शीतल होनेपर छानकर उपयोगमें लेवें ।

फांट पाकमें हलका है और गुण सत्वर दर्शाता है । हिम और फांट रोज ताजा बनाकर उपयोगमें लेना चाहिये ।

कषाय सरलतापूर्वक रस आदि धातुओंमें मिश्रित होकर तत्काल अपना गुण प्रदर्शित करता है, और कषायसे प्रायः अपाय होनेकी सम्भावना भी नहीं है । इसलिये रोगोंकी तीव्रावस्थामें, एवं जिनके वात आदि धातु बहुत निर्बल हो गये हों, उनके लिये गुटिका, चूर्ण आदि औषधियोंकी अपेक्षा कषाय विशेष हितकर है ।

क्वाथमें प्रक्षेप रूपसे मिश्री मिलानी हो, तो वातज रोगमें अष्टमांश, पित्तज रोगमें चतुर्थांश, और कफप्रधान रोगमें षोडशांश मिलानी चाहिये । शहद मिलाना हो, तो इसके विपरीत अर्थात् वातज रोगमें $\frac{1}{16}$, पित्तजमें $\frac{1}{8}$ और कफजमें $\frac{1}{4}$ हिस्सा मिलाना चाहिये । जीरा, गूगल, क्षार, नमक या त्रिकटु मिलाना हो तो १ से २ मासे तक, भुनी हींग २ रत्ती और शिलाजीत भी २ रत्ती डालना चाहिये । दूध, घी, गुड, तैल, गोमूत्र या अन्य कोई द्रव पदार्थ, कल्क या चूर्ण प्रक्षेप रूपसे मिलाना हो, तो १ तोला तक मिलावें ।

चिरस्थायी कषाय—वर्त्तमानमें आयुर्वेदिक औषधियां बनानेवाली कितनीही फार्मेसियोंने क्वाथ—अर्क-स्वरस शर्बत, मुरब्बा आदिको चिरस्थायी (Durable) तैयार किये हैं । इनका उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । क्वाथ आदिको दीर्घ समयतक मूल स्थितिमें रखनेके लिये निम्न विधि अनुसार एसिड सेलिसिलिक (Acid Salicylic) मिलाया जाता है ।

चिरस्थायी कषाय विधि—जिन क्वाथ आदिको टिकाऊ बनाना हो, उनमेंसे किसी एकको चीनी या एनेमलके पात्रमें ६ पौण्ड डालकर गरम करें । स्नान करनेके से जल अधिक गरम होनेपर १ ड्राम एसिड सेलिसिलिकको मिलाकर तुरन्त शिशीकी डिब्बी या बोतलमें भरकर मजबूत डाट लगा देवें । फिर यह प्रवाही वर्षोंतक मूल स्थितिमें रह जाता है ।

इस तरह कषाय आदिको चिरस्थायी बनानेके लिये फार्मेसीवालोंने डाक्टरी

ओषधिकी शरण ली है। इस कषायके साथ जो एसिड सम्मिलित किया जाता है, वह एक प्रकारका मन्द विष है। अतः परिणाममें कितनेही व्यक्तियोंके लिये हानि भी पहुंचा देता है। अतः दीर्घ कालतक उपयोग करनेवालोंको विचारपूर्वक लेना चाहिये।

एसिड सेलिसिलिकके सम्मिलनसे क्षुधानाश, मलावरोध और अतिसार क्रमशः होते रहना, त्वचापर रक्तविकारके धब्बे होना, वक्क विकृति (मूत्रोत्पत्तिका ह्रास) और मानसिक निर्बलताकी संप्राप्ति होती है। अधिक विकार होनेपर श्लैष्मिक त्वचामें प्रदाह, शिरदर्द, रक्तदबावका ह्रास और रक्तसंचालनमें क्षीणता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

कितनेही फार्मेसीवाले लोहबान अम्ल (बेन्झॉइक एसिड) फार्मल्डी-हाइड, सल्फाइट या क्लोरोफार्मका उपयोग करते हैं। किन्तु ये सभी रासायनिक द्रव्य स्वास्थ्यके लिये हितकर नहीं माने जायेंगे।

इनके अतिरिक्त क्वाथ आदिकी ओषधि और एसिडसेलिसिलिक, दोनोंके मिश्रणमें रासायनिक गुण क्या होता है? इस बातका भी विचार करना चाहिये। कहीं दोनोंमें विरोध होकर रोगीको विपरीत असर तो नहीं पहुंचाता? जैसे दूध और दही, दोनों हितकर वस्तु होनेपर भी दोनोंको मिलाकर सेवन नहीं किया जाता। सेवन करनेमें विविध दोष शास्त्रकारोंने दर्शाये हैं।

(१) दशमूल क्वाथ।

विधि—बेलछाल, गंभारी छाल, पाढल छाल, अरलू छाल, अरणीकी छाल, गोखरूका पंचाङ्ग, छोटी कटेलीका पंचांग, बड़ी कटेलीका पंचांग, पृष्टपणीका पंचांग और शालपणीका पंचांग ये सब समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण कर लेवे। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर दो हिस्से करके दिनमें २ बार पीपलका चूर्ण अथवा घी मिलाकर पिलावें; या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—इस क्वाथका सेवन विविध अनुपानोंके साथ करनेसे यह वातश्लेष्मज्वर, सन्निपातके लक्षण, कण्ठावरोध, हृदयावरोध, तन्द्रा, वातप्रकोप, कफवृद्धि, श्वास, पसलियोंकी पीड़ा आदि तथा प्रसूताके मुखशोष, शीत, भ्रम, स्वेद, कास, श्वास आदिको दूर करता है।

अनुपान—(१) वातश्लेष्मज्वरमें—पीपलका चूर्ण।

(२) सन्निपात पर—दशमूल, शठी, काकड़ासींगी और त्रिकटु मिला क्वाथ कर पिलावे।

(३) ज्वर और कासमें—दशमूल, पीपल, धनिया और सोंठ मिला क्वाथ करें। फिर चातुर्जात मिलाकर पिलावें।

(४) वातकफोल्वण सन्निपातमें—दशमूल, निसोत, सोंठ, नागरमोथा और गिलोय मिलाकर क्वाथ करे। शोधन करना हो, तो निसोतके चूर्णका प्रक्षेप मिला देवें।

(५) वातकफज्वर, अपचन, अतिनिद्रा, पार्श्वशूल, श्वास, कास,तन्द्रा, कण्ठावरोध और हृदयावरोधमें—पीपलका चूर्ण ।

(६) सन्निपात, श्वास, कास और पार्श्वशूल पर—क्वाथके साथ पीपल और पुष्करमूलका चूर्ण मिलावें ।

(७) कफज पाण्डु, ज्वरातिसार, शोथ, संग्रहणी, कास, अरुचि, कण्ठावरोध और हृदयावरोध पर—सोंठ ।

(८) हृदयावरोध पर—जवाखार और संधानमक ।

(९) सूतिका रोग पर—(१) निवाये क्वाथमें घी मिलालें। (२) क्वाथमें लोहेको गर्म करके बुझावें। (३) शराव मिलाकर पिलावें (४) दशमूलमें १६ गुना जल और ४ गुना दूध मिला सिद्ध कर शक्कर मिलाकर पिलावें ।

(१०) जलोदर पर—दशमूल, देवदारु, सोंठ, गिलोय, सफेद पुनर्नवा और हरडका क्वाथकर पिलानेसे जलोदर, शोथ, श्लीपद, गलगण्ड और वातरोग नष्ट होते हैं।

(११) मुखरोगमें—दशमूल, मूग और कुलथीको उबालकर निवाया निवाया पिलावें ।

(१२) बाधिर्य (बहरापन) में (१) इस क्वाथमें चतुर्थांश तिलके तेलको सिद्ध करके कानमें डालें। (२) दशमूल, त्रिफला, कायफल, और भारंगीका क्वाथ कर त्रिकटु और हींग मिलाकर पिलावें ।

(१३) वातरक्तमें शूलपर—इस क्वाथके साथ दूधको सिद्ध करके पिलावें और दशमूलसे सिद्ध किये हुए घृतसे परिषेक करें।

(१४) अपस्मार (हृदयकंप सहित) में —कल्याण घृतके साथ ।

(१५) गृध्रसी वातपर—भुनी हींग १ रत्ती और पुष्करमूलका चूर्ण २ माशे मिलाकर देवें ।

(१६) गृध्रसी और आमवृद्धि (कुक्षि, वस्ति और कटिस्थानके शूलसह) पर-दशमूल, गिलोय, अरंडीकी जड, रास्ना, सोंठ और देवदारुको मिला क्वाथ कर अरंडीका तेल मिलाकर देवें ।

(१७) वातज मूत्राघात पर—शिलाजीत और मिश्री पिलावें ।

(१८) विस्फोटकमें—दशमूल, त्रिफला, चिरायता और धमासेका क्वाथकर पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलावें ।

(२) अष्टादशांग क्वाथ ।

विधि—बेलछाल, गम्भारी, अरलू, पाढल, अरनी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, काकडासींगी, पुष्करमूल, कचूर, धमासा, भारंगी इन्द्रजव, पटोलपत्र और कुटकी, इन १८ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकुट करें। (वृन्द)

मात्रा--२ से ४ तोलेका क्वाथ कर दो हिस्से कर दिनमें दो वार दें।

उपयोग--अष्ठादशांग क्वाथमें, उत्तेजक, कफघ्न, आमपाचन, विरेचन, वातहर और विषनाशक गण रहे है। यह क्वाथ सन्निपात ज्वरको दूर करनेमें अति उपयोगी है। इसके सेवनसे सन्निपातमें खांसी, हृदयावरोध, पसलियोंकी पीड़ा, श्वास, हिचकी और वमन आदि लक्षण दूर होजाते हैं। यदि मलशोधन कार्य अपूर्ण हो या न हुआ हो तो कुटकीकी मात्रा बढ़ानी चाहिये अथवा वस्ति देकर जल्दी अन्त्रको शुद्ध बना लेना चाहिये।

दूसरी विधि--दशमूल, देवदारु, चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनिया और गजपीपल, इन १८ ओषधियोंको समभाग मिलाकर क्वाथ करें।

मात्रा--२ से ४ तोले दिनमें दो वार दो हिस्से करके देवें।

उपयोग--यह क्वाथ तन्द्रा, प्रलाप, खांसी, अरुचि, दाह, मूर्च्छा और श्वास आदि लक्षणों सहित सबप्रकारके सन्निपातको दूर करता है।

[३] लघुमंजिष्ठादि क्वाथ।

विधि--मजीठ, हरड़, वहेड़ा, आंवला, कुटकी, बच, दारुहल्दी, गिलोय और नीमकी अंतरछाल, इन ९ औषधियोको समभाग मिलालें। (शा० सं०)

मात्रा--२ से ४ तोलेका क्वाथ बना दो हिस्से करके पिलावे।

उपयोग--यह क्वाथ रक्त और उदरकी शुद्धिकारक है; वातरक्त, पामा कुष्ठ और रक्तविकारको नाश करता हैं।

वृन्दने इस क्वाथका नाम 'नवकार्षिक क्वाथ' रक्खा है। और वातरक्त, कुष्ठ, पामा, कपाल कुष्ठ आदि पर लाभदायक कहा है।

(४) बृहद् मंजिष्ठादि क्वाथ।

विधि--मजीठ, नागरमोथा, कुड़ेकी छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारंगी, कटेली पंचांग, बच, नीमकीअंतरछाल, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, वहेड़ा, आंवला, पटोल पत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडंग, विजयसार, चित्रकमूल, शतावर, त्रायमाण, पीपल, इन्द्रजौ, अड़सेके पत्ते, भांगरा, देवदारु, पाढ़, खैरसार, लालचन्दन, निसोत, वरनेकी छाल, चिरायता, बावची, अमलतासका गूदा, सहोढेकी छाल, बकायन, करंजकी छाल, अतीस, नेत्रवाला, इन्द्रायनकी जड़, धमासा, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा, सब समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण तैयार करें। (शा० सं०)

मात्रा--१। से २॥ तोलेका क्वाथकर सुबह पीपलका चूर्ण और गूगल मिलाकर पीवें। शामको पुनः नया बनाकर पीवें।

उपयोग--यह क्वाथ १८ प्रकारके कुष्ठरोग, वातरक्त, उपदंश, श्लीपद

अगशून्य, पक्षाघात, मेदरोग और नेत्ररोगका नाश करता है । रक्तशुद्धिके लिये अति उपयोगी है । विशेषत यह क्वाथ गन्धक रसायन या हरताल में बनाये हुए माणिक्य रसके साथ कुष्ठादि रोगोंपर प्रयुक्त किया जाता है। मेदोवृद्धिमें महायोगराज गूगलके साथ दिया जाता है ।

(५) आरग्वधादि क्वाथ ।

प्रथम विधि—अमलतासका गूदा, कुटकी, निसोत, बीज निकाली हुई मुनक्का, सनाय, बड़ी हरड और सूखे गुलाबके फूल २-२ तोले और गुलकन्द ८ तोले लेवें । सबको जौकुट कर फिर गुलकन्द मिला लेवें । (र० सा०)

मात्रा—२ से २॥ तोले द्रव्यमें २० तोले जल मिलाकर क्वाथ करें । आधा जल शेष रहने पर उतार छानकर सुबह एक बार पीवें ।

उपयोग—यह क्वाथ उदरविकार और कब्जियतको दूर करता है । इस क्वाथके सेवनसे पेटमें दर्द भी नहीं होता । जीर्णज्वरमें दोष-पाचनके लिये अत्यन्त हितकर है । उदर-शुद्धि होजानेपर क्षुधा प्रदीप्त होती है, और मन प्रफुल्लित होता है ।

दूसरी विधि—अमलतासकी फलीका गूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड, सबको समभाग मिला २ से ३ तोलेका क्वाथ करके दिनमें २ बार पिलावें । पिलानेके समय थोड़ा निसोतका चूर्ण मिलावें । इस क्वाथको "गिरिमाला पचक" "आरोग्य पचक" भी कहते हैं । (वृन्द)

उपयोग—यह क्वाथ वातकफज्वर, आमशूल और कब्जको दूरकर अग्निको प्रदीप्त करता है । कच्चे आमका पाचन करता है, और पक्के दोषको निकालता है ।

[६] अमृताष्टक क्वाथ ।

विधि—नीमगिलोय, नीमकी अन्तरछाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजो, पाठ, पटोलपत्र और लालचन्दन, आठ वस्तुएं समभाग लेकर २ से ३ तोले तकका क्वाथ करें । दिनमें २ बार पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलावें । (शा० स०)

उपयोग—यह क्वाथ पित्तज्वर, वमन, अरुचि, दाह, तृषा, आदि विकारोंको दूर करता है ।

[७] कंटकार्यादि क्वाथ ।

विधि—छोटी कटेली, बड़ी कटेली, सोंठ, धनिया और देवदारु, पांचोंको समभाग मिला २ से ४ तोले तकका क्वाथ करें । दिनमें २ बार पिलावें । (शा० स०)

उपयोग—यह क्वाथ सब प्रकारके नूतन ज्वरोंमें कच्चे दोषको पकानेमें उपयोगी है । इसको "नागरादि पाचन" भी कहते हैं ।

दूसरी विधि—छोटी कटेली, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, वासाके पत्ते, चिरायता, रक्तचन्दन, नागरमोथा, परवलके पत्ते और कुटकी इन ११ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। २ से ४ तोलेका क्वाथ करके दिनमें २ बार पिलावे। (भा० प्र०)

उपयोग—यह क्वाथ पित्तश्लेष्मज्वरको दाह, तृषा, अरुचि, वमन, कास और शूल आदि लक्षणोंसह नष्ट करता है। मलावरोध, श्लेष्मप्रकोप और आमवृद्धि हो, तो उसे दूर करता है तथा आमाशयकी श्लैष्मिककलाके प्रदाहको शमन करके उबाक और वांतिको शांत करता है।

(८) गुडूच्यादि क्वाथ।

विधि—नीमगिलोय, नीमकी अन्तरछाल, पद्माख, लालचन्दन और धनियां, इन पांचों ओषधियोंको समभाग लेकर २ से ४ तोलेका क्वाथ करके दिनमें २ बार दें। (व० जी०)

उपयोग—इस क्वाथका उपयोग सामान्य रीतिसे सम्पूर्ण जातिके नये ज्वरोंपर होता है। विशेषतः पित्तकफ ज्वरके शमनके लिये मूल ग्रंथकारने लिखा है। यह क्वाथ अग्निप्रदीपक है; एवं दाह, उबाक, तृषा, वमन और अरुचिको भी दूर करता है।

आमाशयकी श्लैष्मिक कलाके प्रदाह या अपचन होकर वमन और व्याकुलता सह ज्वर होनेपर यह गुडूच्यादि क्वाथ अति उपकारक है। यह विष और कीटाणुओंको नष्ट करता है, पाचनक्रियाको सुधारता है। तथा प्रस्वेद लाकर ज्वरको दूर करता है।

(९) नागरादि क्वाथ।

विधि—सोंठ, छोटी कटेलीका मूल, पुष्करमूल और गिलोय, सबको मिला २ से ४ तोलेका क्वाथ करके दो विभाग करें। दिनमें २ बार १-१ तोला शहद और २-२ रत्ती शिलाजीत मिलाकर पिलावें। (अ० हृ०)

उपयोग—यह क्वाथ वातकफ ज्वर, श्वास, कास, अरुचि, पार्श्वशूल आदिको दूर करता है। जो ज्वर दीर्घकालसे आता रहनेसे देह अति कृश होगया हो, आमप्रकोप और कफवृद्धि होगई हो, ऐसी अवस्थामें यह नागरादि क्वाथ अमृतके समान लाभ पहुंचाता है।

दूसरी विधि—सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, आंवले, पाठा, कमलनाल और नेत्रवाला १-१ तोला लेकर क्वाथ करें। २ हिस्साकर सुबह-शाम ३ माशे मिश्री और ६ माशे शहद मिलाकर पिलावे। (हा० सं०)

उपयोग—यह क्वाथ पित्तकफज्वर और रक्तदोषको दूर करता है, और पाचन क्रियाको सुधारता है।

तीसरी विधि—सोंठ, गिलोय, कटेलीकी जड, नागरमोथा और आवले प्रत्येक १-१ तोले मिलाकर क्वाथ करे। २ हिस्सा करके शहद-पीपल मिलाकर सुबह-शाम पिलावें।

उपयोग—सब प्रकारके विषम ज्वरोंको रोकता है, और पाचन क्रियाको सुधारता है।

चौथी विधि—सोंठ, गिलोय, चिरायता, बेलगिरी, नेत्रबाला, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अतीस और खस, इन ९ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकूट चूर्ण करें। फिर ३ से ६ तोलेका क्वाथ बना ३ हिस्सेकर दिनमें ३ बार पिलावें। (च० द०)

उपयोग—यह क्वाथ ज्वरातिसार, मन्दाग्नि, अरुचि, सिरदर्द और दाहको दूर करनेमें अति लाभदायक है। यदि यह क्वाथ सर्वांगसुन्दर रसके साथ ज्वरातिसारमें दिया जाय तो सत्वर लाभ पहुंचाता है।

[१०] पंचमूलादि कषाय।

विधि—शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, बडी कटेली, गोखरू, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता, इन ९ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकूट चूर्ण करे। (वै० जी०)

मात्रा—४ से ६ तोलेका क्वाथ कर २ हिस्से करके पिलावें।

उपयोग—यह वातपित्तशामक, आमपाचक, विषहर और ज्वरघ्न है। यह कषाय वातपित्त-ज्वरमें कच्चे दोषोंको पका ज्वरको सम्पूर्ण लक्षणो सहित बहुत जल्दी नष्ट करता है।

[११] मधुरज्वरान्तक क्वाथ।

विधि—रक्तचन्दन, नेत्रवाला, खस, धनिया, पित्तपापडा, नागरमोथा और सोंठ, इन सब ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करे। (धौ० र०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथकर २ हिस्से करके पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ पाचन, कीटाणुनाशक, आमविषहर और शामक है। लक्ष्मीनारायण रस या संजीवनी वटीके साथ इसका सेवन अनुपान रूपसे कराते रहनेसे दबे या विलीन हुए दाने भी जल्दी बाहर निकलकर बिना त्रास दिये मोतीझरा दूर होजाता है।

(१२) अर्कादि क्वाथ।

विधि—आकका मूल, धमासा, देवदारु, चिरायता, रास्ना, निर्गुण्डीके पत्ते, वच, अरनीकी छाल, सुहिजनेकी छाल, चित्रकमूल, पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अतिविष और भागरा, इन १६ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (वै० जी०)

मात्रा--४ तोलेका क्वाथकर, तीन हिस्से करके २-२ घण्टे पर पिलावें । आवश्यकता पर एकबार ज्यादा भी पिला सकते हैं ।

उपयोग--यह क्वाथ वातप्रधान सन्निपातमें अति प्रभावशाली है । इसमें वातनाड़ी उत्तेजक, स्वेदल, कफघ्न, और उष्णगुण रहा है । एवं अधिक स्वेद आनेपर यह स्वेदोत्पत्ति का ह्रास भी कराता है । सन्निपातमें तन्द्रा, शीत, धनुर्वात, श्वास, दाँत भिच जाना, पसीना ज्यादा आना आदि तथा सूतिकाज्वरमे वात प्रकोपके लक्षणों को दूर करता है; तथा छातीमें कफ संगृहीत हुआ हो तो उसे भी सरलतापूर्वकबाहर निकालता है ।

(१३) देवदार्वादि क्वाथ ।

प्रथम विधि--देवदारु, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, छोटी हरड़, गजपीपल, छोटी कटेली, गोखरू, धमासा, बड़ी कटेली, अतीस, गिलोय, काकड़ासींगी और कालाजीरा, इन २० द्रव्योंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (नि० र०)

मात्रा--२ से ४ तोलेका क्वाथ कर दिनमे २ बार आधा-आधा पिलावे । क्वाथसे जल १६ गुना लें । अष्टमांश रहने पर उतारकर छान लें । १ रत्ती भुनी हींग और ४ रत्ती सैंधानमक मिलाकर पिलावें ।

उपयोग--प्रसूता स्त्रीके सब त्रिदोषज रोग, विशेषतः शूल वातप्रधान और पित्तवृद्धिसह उदररोग, खांसी, ज्वर, प्रलाप, दाह, तृषा, श्वास, मूर्च्छा, अतिसार वमन, मस्तकशूल, तन्द्रा, धनुर्वात आदि तुरन्त दूर होते है । यह क्वाथ सूतिका रोगकी तीव्रावस्थामें अति उपकारक है ।

द्वितीय विधि--देवदारु, दारुहल्दी, पीपल, चिरायता, इन्द्रजौ, मजीठ, अमलतासका गूदा, पाठा, पदमाख, कुडेकी छाल, धनिया, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रबाला कालीमिर्च, पियाबांसाकी छाल, कुटकी, धमासा, गिलोय, एरंडकी जड़, छोटीकटली, हरड़ और पित्तपापड़ा, इन २३ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकूट चूर्ण करें । (वैं० सा० सं०)

मात्रा--२ से ४ तोलेका क्वाथ कर २ हिस्से करके सुबह-शाम शहद-पीपल मिलाकर पिलाते रहें ।

उपयोग--यह क्वाथ ज्वरकी जीर्णावस्थाम अमृत सदृश उपकारक है । सब प्रकारके धातुगतज्वर, सब प्रकारके विषमज्वर, जीर्णज्वर, त्रिदोषज्वर, भूतज्वर आदि सब ज्वरोंको थोड़ेही दिनोंमें दूर करता है । आमाशय और अन्त्रका शोधन करता है; यकृत् और प्लीहावृद्धिको दूर करता है, तथा पाचन-क्रियाको प्रबलबनाता है ।

[१४] त्रिवृतादि कषाय ।

विधि—निसोत, इन्द्रायनका मूल, कुटकी, हर्ड, बहेड़ा, आवला और अमलतासका गूदा, सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ करके उसमें जवाखार मिलाकर प्रातःकाल पिलावें ।

उपयोग—यह कषाय अंतड़ीमें रहे हुए दोषको निकालकर सब प्रकारके ज्वरको दूर करता है । विशेषतः जीर्णज्वर और सन्निपातके दोषोंको शमन करता है ।

(१५) कटफलादि क्वाथ ।

विधि—कायफल, नागरमोथा, वच, पाठा, पुष्करमूल, जीरा, पित्तपापड़ा, देवदारु, छोटी हर्ड, काकड़ासींगी, पीपल, चिरायता, सोंठ, भारंगी, इन्द्रजौ, कुटकी, कचूर, रोहिष घास और धनिया सबको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ करके १ रत्ती हींग, ६ माशे शहद और ३ माशे अदरखका रस डालकर पिलावें ।

उपयोग—इस क्वाथसे सन्निपात और गलेके सब रोगोंका शमन होता है यह क्वाथ कफप्रकोप, स्वरभेद, हिक्का, कर्णमूल-शोथ, गलेकी सूजन, हनुग्रह, कफवात ज्वर, सन्निपात, खांसी और गलेके सब विकारोंको नष्ट करता है ।

[१६] उशीरादि क्वाथ ।

विधि—नेत्रबाला, खस, नागरमोथा, धनिया, कच्चे बेलफल, मजीठ, धायके फूल, लोध और सोंठ, इन ९ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें ।

(भै॰ र॰)

मात्रा—४ से ६ तोलेका क्वाथकर ३ हिस्सेकर दिनमें ३ बार दें ।

उपयोग—यह क्वाथ दीपन-पाचन है, अरुचि, आम, शूलसहित मलावरोध, अतिसार, रक्तातिसार और ज्वरसहित अतिसारको नष्ट करता है ।

(१७) कुटजादि कषाय ।

विधि—कुडकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, इन ७ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (वृन्द)

मात्रा—४ से ६ तोलेका क्वाथकर ३ हिस्से करके दिनमें ३ बार मिश्री और शहद मिलाकर पिला

उपयोग—यह कषाय मलको बान्धता है, तथा पित्तकफज अतिसारको शीघ्र शमन करता है ।

(१८) खदिराष्टक क्वाथ ।

विधि--खैरकी छाल, त्रिफला, नीमकी छाल, कडुवे परवलके पत्ते, गिलोय, अडूसा (वासा) के पत्ते, इन आठ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चर्ण कर । (वृन्द)

मात्रा--२ से ४ तोलेका क्वाथ करके दिनमें २ बार पिलाव ।

उपयोग--यह क्वाथ रक्त आदि धातुओंमें रहे हुए कीटाणु और विषको नष्ट करता है; शीतला और रोमान्तिक (कसूमी माता) को शीघ्र शमन करता है; तथा कुष्ठ, विसर्प, विस्फोटक और खुजलीको दूर करता है ।

(१९) त्रिकंटकादि क्वाथ ।

विधि--गोखरू, अमलतासका गूदा, दर्भमूल, कासमूल, धमासा, पाषाण-भेद और हरड़, सबको समभाग मिलाकर ४तोलेका क्वाथ करें । और शहद मिलाकर पिलावें । (भै० र०)

उपयोग--यह क्वाथ अश्मरी (पथरी) और भयंकर मूत्रकृच्छ्र रोगको दूर करता है । तीव्रावस्थामें आवश्यकता पर दो घण्टे बाद दूसरी वार पिलावें ।

वृक्कस्थानमें अश्मरी हो गई हो, उसके अणु या ऊपरकी नलिकामेंसे अश्मरी कण आकर वृक्कमेंसे मूत्राशयमें जानेवाली नलिकामें फंस जाता है, तब भयंकर वृक्कशूल उत्पन्न होता है । साथ साथ अति व्याकुलता, बारंबार वमन होना और निर्वलता आ जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । ऐसी अवस्थामें अश्मरी कणको पिघलाकर मूत्राशयमें फेंक देनेकी योजना करनी चाहिये । यह कार्य हजरूलयहूद चूर्णके साथ इस क्वाथके सेवनसे सरलतासे होजाता है । तीव्रावस्थाशमन होनेके बाद अश्मरीकी उत्पत्ति रोकनेके लिये शिलाजीत या चन्द्रप्रभाके साथ इस क्वाथका सेवन दिनमें २ बार २-३मासतक कराया जाता है ।

सूचना--यदि धूम्रपानका व्यसन हो तो उसे छोड़ देना चाहिये । यकृत् निर्वल है तो घृत-तैलादिका सेवन कम करना चाहिये और उसे सबल बनाने केलिये चित्रकादि वटी या पिप्पल्यासव, चविकारिष्ट या अन्य औषधिका सेवन करना चाहिये ।

(२०) जातीपत्रादि क्वाथ ।

विधि--चमेलीके पत्ते, गिलोय, मुनक्का, धमासा, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा और आंवलाको बराबर लेकर जौकुट चूर्ण करें । (वं० से०)

उपयोग--इस चूर्णका क्वाथ बना शीतल करके, कुल्ला करनेसे मुंहके छाले, दाह, मसूढ़ेका शोथ और कण्ठ दोष दूर होते हैं ।

पारदप्रधान औषधि अथवा दाहक, तीक्ष्ण या अति उष्ण पदार्थके सेवनसे मुंहमें क्षत हो जाते हैं । उसपर यह क्वाथ तुरन्त लाभ पहुंचाता है । यदि रोग जीर्ण होनेसे

क्षत पूयमय बन गया हो, तो इस क्वाथका उपयोग दिनमें ३ या अधिक वार करते रहनेपर १०-२० दिनमें क्षतका रोपण हो जाता है ।

सूचना—(१) भोजन करनेके पहले क्षतपर रहे हुए पूयको कुल्ले करके दूर कर देना चाहिये । एव भोजनके आध घण्टे पश्चात् पुन कुल्ले कर लेना चाहिये । ताकि अन्नका परमाणु , जो क्षतपर लग गये हों, वे सब साफ हो जाय ।

(२) पूयका प्रवेश आमाशयमें न हो, इस बातको पूण रूपसे सम्हालना चाहिये । अन्यथा आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें पूयप्रधान क्षत हो जायगा । फिर आमाशय में वेदना, उबाक, वान्ति और दाह आदि लक्षण उपस्थित होंगे और पचनक्रिया विकृत हो जायगी ।

मधुमेहादि रोगोंसे उत्पन्न कोथ (Gangrene) प्रधान क्षत हो, तो मूल रोगको दूर करनेवाली औषधिके सेवनके साथ इस क्वाथसे बारम्बार गण्डूप करते रहना चाहिये, यदि कोथ अधिक गहरा हो गया हो, तो उस स्थानको प्रति मारणीयक्षारके जल द्वारा जलाकर इरिमेदादि तैलके गण्डूष कराया जाता है । ऐसी अवस्थामें इस क्वाथका उपयोग बहुत कम होता है ।

[२१] महारास्नादि क्वाथ ।

विधि—रास्ना—५० तोले मतान्तरमें २तोले, धमासा, ख टी, अरण्डीकी जड, देवदार, कचूर, वच, अडूसेके पत्ते, सोंठ, हरड, चव्य, नागरमोथा, साठी (पुनर्नवा) की जड, गिलोय, विधारा, सौंफ, गोखरु, असगन्ध, अतीस,अमलतासका गूदा, शतावर, पीपल, पियावासा, धनिया, छोटी कटेली और बडी कटेलीयें सब १-१ तोला मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (शा० स०)

महारास्नादि क्वाथ के पाठके आरम्भमें 'रास्नाद्विगुणभागास्यादेकभागास्तत परे' यह वचन शारगधर सहितामें है । वगसेनने 'समभागान्वितैरेतै रास्ना त्रिगुणभागिकं' यह वचन लिखा है । इन वचनो परसे टीकाकारोमें मतभेद होता है । किसीने २या ३तोला रास्ना ली है,तो किसीने ५० या ७५ तोले रास्ना लेना हितावह माना है ।रास्ना वातशामक है । रास्ना प्रधान औषध है, वह अधिक मात्रामें हो तो वातरोगीके लिये हितावह है ।

मात्रा—२॥ तोले चूर्णका क्वाथ करके दिनमें दो वार पिलावें । इस क्वाथके साथ अजमोदादि चूर्ण या सोठ अथवा पीपलका चूर्ण अथवा अरण्डीका तेल मिला लेवे या योगराज गूगलके साथ दें

उपयोग—यह क्वाथ वातरोगकी तीव्रावस्थामें विशेष उपकारक है । सब प्रकारके वातरोग—सर्वांगवात, कम्पवात, अर्धांगवात, गृध्रसी, कमर, जघा आदि स्थानोंमें फिरता वात, श्लीपद, आमवात, अन्त्रवृद्धि, पक्षाघात, अपतानक, कुब्जवात,

मूत्राशय और वीर्याशयमें रही हुई वायु, अफारा, स्त्रियोंके योनिदोष, वन्ध्यादोष आदि को नाश करता है ।

वातरोगकी संप्राप्ति वातवहासंस्थामें विकृति होनेपर होती है। वातनाड़ियोंके प्रदाह होनेपर बहुधा वातरोगकी उत्पत्ति होजाती है। जिस स्थानकी वातनाड़ी दूषित हों, उस स्थानमें रोगोत्पत्ति होती है । फिर स्थानभेदसे नामभेद होता है। विविध स्थानोंके वातरोगोंमें मुख्य विकृति वातनाड़ियोंकी होती है । इस हेतुसे सब प्रकारके वातरोगोंपर यह क्वाथ व्यवहृत होता है । यदि वातनाड़ियोंकी विकृतिके साथ वात नाड़ीकेन्द्रका घात होकर पक्षवध होगया हो, तो वातरोग असाध्य होजाता है ।

वातरोगकी उत्पत्ति होनेमें आमप्रकोप और रक्तमें विषवृद्धि भी कारण होते हैं वातशमनके साथ उन कारणोंको भी दूर करना चाहिये । इस हेतुसे रास्नाके साथ सहायक रूपसे दीपन-पाचन, आमशोषक, मूत्रल और कफघ्न ओषधियोंका मिश्रण किया है। जिससे यह क्वाथ आशुकारी वातप्रकोपमे तत्काल अपना प्रभाव दर्शाता है ।

गृध्रसी नाड़ी, जो नितम्ब प्रदेशमें रही है और नीचे पैरोंकी ओर गति करती है, उसमें प्रदाह होनेपर कटिप्रदेश, नितम्ब, पैरोंकी पिछली जंघा और टखने आदिमें शूल निकलता है; पैरोंमें खिचाव होता है और पैर जकड़ जाते हैं । ऐसी अवस्थामें एरण्ड तैलके साथ यह क्वाथ देनेसे उदरशुद्धि होकर वातशमनमें सहायता मिल जाती है। इसके सेवन करनेपर भी शूल शमन न हुआ हो तो शूल शमन और निद्रालानेके लिये अफीम प्रधान औषधि-निद्रोदय रस, महावातराजरस या समीरगजकेसरी या अन्यका सेवन कराया जाता है । अति तीव्रशूल न हो तो महावातविध्वंसनरस प्रदाह शमनार्थ रास्नादि क्वाथके साथ दिया जाता है। देह अधिक मेदमय हो या आम प्रकोप हो तो महायोगराज गुग्गुलुके साथ महारास्नादि क्वाथ देना चाहिये ।

वातनाड़ियाँ, जो ऐच्छिक मांसपेशियोंका संचालन करती है और चेतना प्रदान करती हैं, उनको शीत लग जाने, मानसविकृति, उपदंशादि रोगोंमें विष प्रकोप और मधुमेहमें रक्तके भीतर विषकी अति वृद्धि होकर रक्तदबाव अत्यधिक हो जानेपर वे नाड़िया दूषित हो जाती है । फिर आक्षेप आकर पक्षाघात होजाता है। संचालन नाड़ियोंका वध हो जानेपर मांसपेशियां क्रिया करनेमे असमर्थ होजाती है। वातनाड़ी विकृतिके साथ साथ कतिपय छोटी मोटी रक्तवाहिनियां टूट जाती है। फिर मस्तिष्कगत वातकेन्द्रमे रक्तदबाव बढ़ जाता है । यह रक्तसंग्रह ज्ञानकेन्द्रके पास हो तो चेतनानाड़ियोंसे बोध होनेवाले ज्ञान-शीत, उष्ण, सूची आदिके स्पर्शका ज्ञान नहीं होता ।

यह विकार तुरन्त दूर नहीं होता, तो दीर्घकाल स्थायी बन जाता है । प्रारम्भिक अवस्थामें चन्द्रप्रभा, शिलाजीत अथवा योगराज गुग्गुलुके साथ इस क्वाथका (एरण्ड तैल मिश्रित) सेवन कराया जाय, तो लाभ हो जानेकी आशा

रख सकते हैं। इसके सेवनसे वातनाडियोंकी विकृति दूर होती है, मस्तिष्कका दबाव कम होजाता है, रक्तप्रसादनमें सहायता मिल जाती है। फिर रक्तवाहिनियोंका संधान सरलतासे हो जाता है।

यदि फिरंग, सुजाकादिके कीटाणुविष या मधुमेहज विषके हेतुसे वातरोग हुआ हो, तो उन मूल रोगके कीटाणु या रोगारम्भ द्रव्यको दूर करे, ऐसी चिकित्सा भी साथ साथ करनी चाहिये। इन सब रोगोंपर गुग्गुलु शिलाजीतसह इस क्वाथका सेवन दीर्घकालतक पर्यन्त पथ्यपालनसह कराना चाहिये। जिससे पुन आक्षेप आकर पक्षाघात न हो जाय।

कभी कभी प्रसूताकी योग्य सम्हाल न रहनेपर प्रजननमार्गसे गर्भाशयमें कीटाणुओंका प्रवेश होकर वहां सडाव उत्पन्न होता है। फिर उसमेंसे विषका शोषण रक्तमें होनेपर आक्षेप आने लगते हैं। शीतसह ज्वर १०२°से १०४°तक बढजाता है। फिर अति स्वेद आकर वह शमन होजाता है। किसी किसीको प्रलाप होता है, दांत बार-बार भिचते हैं और बेहोशी आ जाती है। इस अवस्थामें कालकूट रस या महावातविध्वंसन रसके साथ इस क्वाथका सेवन करानेपर तुरन्त लाभ होजाता है। फिर ४-६ दिन तक गर्भाशयमें नतादि तैलकी बस्ति देकर उसे शुद्धकर लेना चाहिये।

देहके किसी भी भागमें चोट लगकर पूयपाक हुआ हो या विद्रधि होकर उसके विषका संचार रक्तमें होता हो, तो आक्षेप आने लगते हैं। उस अवस्थामें स्थानिक कीटाणुनाशक उपचारके साथ उदर सेवनार्थ यह क्वाथ शिलाजीत, वंगभस्म और शृंगभस्मके साथ दिया जाता है। यदि रोगी मधुमेह पीडित हो तो शिलाजीत और महावातराजके साथ इस क्वाथका सेवन कराया जाता है। आमाशयमें वातप्रकोप होनेपर आमाशय शिथिल बन जाता है और उसमें वायु भरी रहती है। वह बारम्बार बडी जोरोंसे डकार आकर बाहर निकलती रहती है। वायु न निकले तब तक व्याकुलता भासती है और आमाशयमें भारीपन रहता है। इस विकारमें पचनक्रिया मन्द हो जाती है। मलावरोध बना रहता है। यह विकार दीर्घकाल स्थायी है। यदि इसका उपचार प्राथमिक अवस्थामें रौप्यभस्म, शंखभस्म और अजमोदादि चूर्णके साथ इस क्वाथका सेवन कराया जाय, तो लाभ हो जाता है। रोग जीर्ण होनेपर कुचिलाप्रधान औषधिके साथ इस क्वाथका सेवन दीर्घकाल पर्यन्त कराना पडता है। मात्रा कम देनी चाहिये। भोजन भी दिनमें ४ बार थोडा थोडा कराते रहनेसे आमाशयको कष्ट नहीं पहुंचता।

यदि अन्त्र चौडे और शिथिल हो गये हों, तो अन्त्रमें अफारा आता रहता है, अपानवायु सरलतासे नहीं सरती, मलावरोध और व्याकुलता रहते हैं, ऐसी अवस्थामें इस क्वाथके साथ हरड और हिंग्वष्टक या शिवाक्षारपाचन चूर्ण देते रहनेसे कुछ दिनोंमें लाभ पहुंचता है।

मूत्राशयकी वातनाडियां शिथिल हो जानेपर उसकी मांसपेशियां योग्य कार्य नहीं

कर सकतीं। मूत्राशय फूला हुआ रहता है। मूत्रत्यागमें कष्ट पहुंचता है। उसपर चन्द्रप्रभा या शिलाजीतके साथ इस क्वाथका सेवन १-२ मासतक करानेपर रोग निवृत्त होकर मूत्राशय सबल बन जाता है।

वीर्योत्पादक ग्रंथियां या वीर्याशयकी वातनाड़ियां शिथिल बननेपर उस स्थानमें वायु भरी रहती है। फिर पतले, उष्ण वीर्यका स्राव बार बार होता रहता है; मनमें कामोत्तेजनाका विचार आने, स्त्री स्पर्श होने या स्त्री दर्शन होने मात्रसे तत्काल वीर्य निकल जाता है। वीर्यको धारण करनेकी शक्तिका ह्रास होजाता है। इस रोगपर वीर्यशोधन वटी या शिलाजीतके साथ इस क्वाथका सेवन २-४ मासतक ब्रह्मचर्यके पालनसह करानेपर रोग निवृत्त होजाता है।

संक्षेपमें किसी भी स्थान या प्रकारके वातरोगपर यह क्वाथ मुख्य औषधि रूपसे अथवा अनुपान रूपसे व्यवहृत होता है। इसके सेवनमें किसी भी प्रकारकी हानिका भय नहीं है। यह बालक, युवा, वृद्ध, प्रसूता और सगर्भादि सबको निर्भयरूपसे दिया जाता है।

[२२] पञ्चकरास्नादि क्वाथ।

विधि—रास्ना, सोंठ, गिलोय, देवदारु, और एरंडमूल, सबको समभाग लेकर २ से ४ तोलेका क्वाथ करके पिलावें। (शा० सं०)

उपयोग—यह क्वाथ सब प्रकारके नये वातरोगको दूर करता है। आमवात पर एरंडतैलमें देनेसे तीव्र वेदना और शूल नष्ट होते हैं।

[२३] पर्पटादि क्वाथ।

प्रथम विधि—पित्तपापड़ा, अड़ूसा, कुटकी, चिरायता, धमासा और प्रियंगुको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर आधा सुबह और आधा शामको थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ प्यास, दाह और रक्तपित्त आदि लक्षणोंसहित पित्त ज्वरको नाश करता है। इस क्वाथका अर्क निकालकर देनेसे बेस्वादपन दूर होजाता है; और गुण भी विशेष दर्शाता है।

द्वितीय विधि—पितपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता, सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। ४ तोलेका क्वाथकर २ हिस्से करके सुबह-शाम पिलावें। इसे "पंचभद्रादि कषाय" भी कहते हैं। (वृ० मा०)

उपयोग—यह क्वाथ उदरस्थित दोषका पचन करा वातपित्तज्वरको समस्त लक्षणोंसह दूर करता है।

(२४) पिप्पल्यादि क्वाथ ।

विधि—पीपल, पीपलामूल, कालीमिर्च, गजपीपल, सोंठ, चित्रकमूल, चव्य, निर्गुण्डीके बीज, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारंगी, पाठा, इन्द्रजौ, जीरा, बकायनके फल, मूर्वा, अतीस, कुटकी और वायविडंग, सबको सममाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। फिर २ से ४ तोलेका क्वाथ कर दो हिस्से करके दिनमें २ बार पिलावें।

(भा० प्र०)

उपयोग—यह कफज्वरमें आमपचनार्थ अति हितकर औषध है। कफ और वातनाशक है। गुल्म, जुकाम, शूल, और ज्वरको दूर करता है, और आमका पाचन करके अग्नि प्रदीप्त करता है।

(२५) वासादि क्वाथ।

विधि—अडूसा (वासा) के पत्ते, हल्दी, धनिया (मतान्तरमें रुद्रजटा), गिलोय, भारंगी, पीपल, सोंठ और छोटी कटेलीकी जड, सब सममाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें।

(वै० जी०)

वैद्यजीवनमे धनियाके स्थानमे घना अर्थात् रुद्रजटा लिखा है। वैद्यजीवन परसे लिखे हुए योगरत्नाकरके पाठमें धनिया (धनिया) है।

मात्रा—४ तोलेका क्वाथ बना, २ हिस्से करके दिनमें २ बार कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ श्वास, कास और क्षयमें लाभदायक है। कण्ठ और हृदयावरोध तथा श्वासके तीव्रवेगको शीघ्र शमन करता है। कठिनतासे छूटनेवाले कफको विना तकलीफ बाहर निकालता है।

(२६) दार्व्यादि क्वाथ।

विधि—दारुहल्दी, रसौत, नागरमोथा, भिलावा, वेलगिरी, अडूसेके पत्ते और चिरायता, सबको सममाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। इनमेंसे २॥ तोलेका क्वाथ कर दिनमें २ बार शहद मिलाकर पिलावें। भिलावेके स्थानमें अनेक चिकित्सक रक्त चन्दन लेते हैं।

(शा० सं०)

उपयोग—इस क्वाथके एक मास सेवनसे स्त्रियोंके सब प्रकारके प्रदर रोग शूलसहित नाश होते हैं। फिर गर्भाशय सुदृढ बनकर मासिकधर्म साफ नियमित समय पर आता है।

यह क्वाथ प्रजननयन्त्रके शोधनार्थ प्रयुक्त होता है। बीजाशय या बीजाशयनलिका या गर्भाशयमें विकार उत्पन्न होता है, तब प्रदर उत्पन्न होता है। वह दृढ बननेपर रक्तमें विष शोषित होता रहता है। फिर शारीरिक निर्बलता, दृष्टिमांद्य, कटिवेदना, शिरदर्द, मंद ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें यह क्वाथ प्रजनन यन्त्रके

सर्व अवयवोंको बल देता है, दोषको जलाता है और ग्दरको दूर करता है । नये और पुराने रोग, सब पर यह लाभ पहुँचाता है । यदि गर्भाशयमें क्षत (Ulcer) होकर दूषित स्राव होता हो, तो उसे भी यह दूर करनेमें सहायता पहुंचाता है । ऐसी अवस्थामें धातक्यादि तैल या नतादि तैलकी पिचकारी भी लगाते रहना चाहिये ।

यदि गर्भाशयमे कर्कस्फोट (Cancer) हुआ हो और नया रोग हो, तो चन्द्रप्रभावटीके साथ इस क्वाथका सेवन करानेसे लाभ पहुंच जाता है ।

(२७) स्तन्यशोधक क्वाथ ।

विधि--अनन्तमूल, पाढ, देवदारु, चिरायता, मोरबेल, कुटकी, गिलोय, तगर, सोंठ, नागरमोथा और इन्द्रजौ, सबको भागभाग लेकर जौकुट चूर्ण कर ।

मात्रा--२-२ तोले चूर्णका क्वाथ दिनमें २ बार माताको पिलाते रहनेसे दूध शुद्ध होता है; और बालककी प्रकृति स्वस्थ रहती है ।

[२८] रजः प्रवर्तक क्वाथ ।

विधि--चौलाईकी जड, गुलाबके पत्ते और तेलियागेरू ६-६ माशे, कपासकी जड़ १॥ तोला और ३ वर्षका पुराना गुड़ २ तोले लेवें । सबको ३ पाव जलमें मिलाकर क्वाथ करें । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर छान लेवें । (श्री पं० मंगुलालजी)

उपयोग--इस क्वाथको ३ दिन तक रोज सुबह पिलानेसे मासिकधर्म साफ खुलकर आजाता है । रुका हुआ दोष दूर होकर गर्भाशय शुद्ध होजाता है ।

[२९] रक्तशोधक क्वाथ ।

विधि--अनन्तमूल, उशवा, मुलहठी, सफेद मूसली, गोरखमुण्डी, रक्तचन्दन, सनाय और असगन्ध आठों ५-५ तोले तथा सौफ, पीपल, इलायची और गुलाबके फूल चारों २॥-२॥ तोले लें । सबको मिलाकर जौकुट चूर्ण करें ।

मात्रा--१-१ तोलेका क्वाथ कर दिनमें २ बार पिलावें ।

उपयोग--यह रक्तशोधक क्वाथ रक्तशोधक, मूत्रल, शीतल और पौष्टिक है । इनके अतिरिक्त इसमें रसायन गुण भी रहा है । यह क्वाथ सब प्रकारके रक्तविकार, उपदंश और सुजाकके उपद्रव, वातरक्त और कुष्ठको एक मासमें दूर करता है ।

[३०] उपदंशहर क्वाथ ।

प्रथम विधि--कटेली पंचांग, २० तोले, बबूलकी कच्ची फली सूखी २० तोले, इन्द्रायनके फल, इन्द्रायनकी जड़, बड़ी हरड़, सौफ, कचनारकी छाल, नीमकी अतरछाल, छोटे बेरकी जड़की छाल और १० वर्षका पुराना गुड, ये ८ औषधियां १०-१० तोले; दन्तीमूल ५ तोले और बेख जुलाब (कालेदानेकी जड़) १ तोला लें । सबको जौकुट कर ३२ सेर जलमें मिलाकर मिट्टीके घड़ेमें उबालें । लगभग ४ सेर जल शेष रहनेपर उतार, मलकर छानलें । इस तरह ४ बार छाननेसे अति स्वच्छ जल हो जाने पर बोतलोंमें भर लेवें । (स्वामी जगदानन्द गिरिजी)

मात्रा—पहले दिन २॥ तोले एक बार । दूसरे दिन २॥-२॥ तोले दो बार तीसरे दिन सुबह १ छटाक, शामको आधी छटाक । चौथे दिन दोनो समय १-१ छटाक पाचवे दिन-सुबह १॥ छटाक, शामको १ छटाक । छठे दिन दोनों समय १॥-१॥ छटाक इस रीतिसे २ बोतल समाप्त होवें तब तक बढाते जाय, पश्चात् मात्रा घटाते जाय ।

उपयोग—यह क्वाथ उपदंश और सुजाकके उत्पन्न विष और कीटाणुओंको नष्ट करता है, एव लीनविषको भी दूर करनेके लिये प्रयुक्त होता है । इस क्वाथके सेवनसे घोर उपदंश और सुजाक २१ दिनमें दूर होते हैं । उपदंशजनित कुष्ठमें भी लाभदायक हैं । जीर्णरोगमें रक्तशोधन की आवश्यकता होनेपर इस क्वाथका उपयोग किया जाता है ।

सूचना—पहले उष्णवातघ्न क्वाथमें लिखे हुए मुजिसका ४ दिन सेवन करें । बादमें इसका आरम्भ करें । इसके सेवनके समयमें भोजनके साथ घृत पचन हो सके, उतनी मात्रामें अवश्य लेते रहे ।

दूसरी विधि—नीमकी अन्तरछाल, बकायनकी छाल, कचनारकी छाल, बबूलकी कच्ची फली, इन्द्रायनकी जड, छोटी कटेलीका पचाग, ये ६ औषधियां २०-२० तोले और पुराना गुड १॥ सेर लेवें । सबको मिला जौकुट कर १० गुने पानीमें मिट्टीके घडेमे क्वाथ करें । चतुर्थांश शेष रहने पर उतार मलकर छान लेवे ।

(श्री० प० म[illegible]लजी)

मात्रा—१० तोले रोज सुबह ४० दिन तक पिलावे ।

उपयोग—उपदंश और सुजाकमे दूषित हानिकारक औषधियोके सेवन अथवा अपथ्य पालनसे विष या कीटाणु शेष रह जाते हैं, उन सबका इस औषधिके सेवनसे जडमूलसे नाश हो जाता है । भोजन हल्का और सादा लेना चाहिये ।

२१ उष्णवातघ्न क्वाथ ।

विधि—रेवतचीनी ६ माशे, काटेवाली चौलाईकी सूखी जड २ तोले, भृंगराजका सूखा पचाग १ तोला, काकमाची (मकोय) १तोला और१०सालका पुराना गुड ६ माशे ले । सबको मिला जौकुटकर मिट्टीके बरतनमें ३ पाव जलके साथ उबालें । चौथा हिस्सा जल शेष रहने पर उतार छानकर पिला देवें । शामको पुन उसी औषधिके कचरेको आध सेर जलमें उबाल चौथा हिस्सा जल शेष रहने पर छानकर पिला देवें ।

(स्वा० जगदानन्द गिरजी)

उपयोग—इस रीतिसे ७ से १४ दिन तक इस औषधिका सेवन करानेसे नये और पुराने सुजाक दूर होते हैं, तथा विपरीत औषधियोंसे उत्पन्न हुए दोष भी साथ साथ दूर होजाते हैं । इस औषधिके सेवनके पहिले नीचे लिखा मुजिस ४ दिन तक सेवन कराना चाहिये ।

मुंजिस विधि—गावजवां, गुलबनफशा, जौकुट की हुई सौंफ,सनाय, गुलाबके फूल, हंसराज, ये ६ ओषधियां ६-६ माशे; उन्नाव ६ नग, अमलतासका गूदा २ तोले और तुरंजबीन ६ माशे लेवें। पहिली ७ ओषधियोंको ३ पाव जलमें मिलाकर मिट्टीके बरतनमे उबाले। तीसरा हिस्सा जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। फिर अमलतासके गूदे और तुरंजबीनको २० तोले गरम दूधमे मसलकर ऊपर-ऊपरसे अमलतासके कचरेको निकाल देवें। पश्चात् क्वाथमें ४ तोले शक्कर मिलाकर पी लेवें। पुनः शामको उक्त ७ ओषधियोंके कचरेमें आध सेर जल मिला क्वाथ कर तीसरा हिस्सा जल शेष रहने पर उतार ३ तोले शक्कर मिला, मलकर छान लेवें। बादमें १० तोले गरम दूध मिलाकर पी लेवें। इस रीतिसे पेढ नरम हो, तबतक, लगभग ३-४ या ५ दिन, मुजिस सेवन करानी चाहिये।

(३२) कृमिघ्न क्वाथ।

विधि—अनारकी जड़की ताजी छालके टुकड़े कुचले हुए ५ तोले, पलासबीजका चूर्ण ६ माशे, बायविडंगका चूर्ण १ तोला और जल १०० तोले। सबको मिला ढक्कन ढके हुए कलईके बरतनमें (१॥ घण्टेतक) आधा जल शेष रहने तक उबालें। फिर शीतल होनेपर छानकर बोतलोंमें भर लेवें।

मात्रा—५-५ तोले ६ माशे शहद मिलाकर सुबहसे आध-आध घण्टेपर ४ बार पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ उदरावेष्टाकृमि (चिपटे कदुदानाकृमिTepe Worms), महागुदा (गोलकेंचवे कृमि-Round Worms) चुरव कृमि (सूतीकृमि-Thread Worms), अन्त्रदाकृमि (धान्यांकुरके सदृशगुड़े हुए-Hook Worms), इन सबको निकाल देता है। इन सबमें यह प्रयोग विशेषतः उदरावेष्टाके लिये है। जो कृमि अतिकष्ट देनेवाले हैं।

अनारके मूलकी छालमें कद्दुदानाको नष्ट करनेका गुण अधिक है। पलासबीज और बायविडंग कैंचवे और कद्दुदाना, दोनोंको निकालनेमें सहायक है। बायविडंग सूक्ष्म कृमियोंका नाशक, दीपनपाचन, रक्तप्रसादन, सारक और चर्मरोगहर है।

इस क्वायके सेवनसे कुछ बेचैनी होती है, परन्तु वांति नहीं होती। उस अवस्थामें कृमि च्युत होते हैं। फिर वे स्थिर न हों, इसके पहिले जुलाब देकर निकाल देना चाहिये। इसके लिए एरंडतैलका जुलाब विशेष हितकर है, जो अन्त्रमें स्निग्धता लाता है, कृमि और आमको निकालता है, तथा विरेचन होजानेके पश्चात् अन्त्र संकुचित होनेमें सहायक होता है।

सूचना—कद्दुदाना कृमि होनेपर उसके पर्व दस्तोंके साथ निकालते रहते हैं, जब तक गिर न निकल जाय, तब तक ओषधि सेवन करानी चाहिये। चाहे १,२, ३ दिन

या अधिक दिन लगें। रोगीके दस्तको देखते रहना चाहिये। कि कद्दुदानाका शिर निकला या नही ।

हरडके अतिरिक्त कषाय रसवाली सब ओषधिया प्राय न्यूनाधिक अशमें अग्निको मन्द करती हैं, इसलिए इस कृमिघ्न क्वाथको भी आवश्यकतासे अधिक दिन नही लेना चाहिए ।

कृमिरोगमें बहुधा पाण्डु, अग्निमाद्य, अरुचि, वमन, रक्तविकृति, मासपेशिया और वातवाहिनियोकी निर्बलता आदि अनुगामी विकार उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये इस क्वाथके सेवनके पश्चात् ताप्यादिलोह, नवायसलोह, अथवा लौहभस्म, अभ्रकभस्म और ६४ प्रहरी पीपलका मिश्रण कुछ दिनो तक सेवन कराना चाहिए ।

(३३) मूत्रशोधक क्वाथ ।

प्रथम विधि—सोनागेरू, मेंहदीके पत्ते, रसोत और सफेद सुरमा, सब दो-दो तोले लेकर जौकुट करें। फिर १॥ सेर पानीमें क्वाथ करें, आधा जल शेष रहनेपर उतार लेवें। शीतल होने पर छान कर एक बोतलमें भर लेवें ।

उपयोग—पेशावमें पीप जाता हो, तो सुबह-शाम दिनमें दो बार इस क्वाथ की तीन-तीन पिचकारी देनेसे ७ दिनमें घाव मिट जाता है, और पीप निकलना बन्द होजाता है ।

सूचना—पिचकारी लगानेके पहले पेशाब कर लेना चाहिये । फिर उकडू बैठकर लिंग मार्गमें पिचकारी द्वारा क्वाथ डालें, और ३-४ मिनट लिंगका मुह बन्द रक्खे । इस तरह ३ पिचकारी देवें । पिचकारीका उपयोग करनेके बाद आध घण्टे तक पेशाब नही करना चाहिये ।

दूसरी विधि—मुर्दासींगी, फिटकरी, रसोत, सुरमा, सफेद कत्था प्रत्येक १०-१० तोले, नीलेथोथेका फूला १। तोले, रसकपूर १। तोले और पानी १। सेर ले । सबको बारीक पीसकर जलमें मिलावें । इसमेंसे ३-३ माशे जल लेकर १०-१० तोले पानीमें मिलाले । फिर तीन-तीन पिचकारी दिनमें ३ बार दें । (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस ओषधिसे सुजाकका पीप और जलन दूर होते हैं । यह नये और पुराने सुजाकको नष्ट करनेमें अति उपयोगी है ।

(३४) मुंजिस (मल फुलानेवाली औषध ।)

विधि—बनफसाके फूल, गावजवा पान, गावजबाके फूल, सुव्वाजी, सनायके पान, पाचा ३-३ माशे, खतमीके बीज, कासनीके बीज, सौफकी जड, कासनीकी जड, मकोय, बादीआन (सौंफ), मुलहठी, सातो ओषधिया ५-५ माशे, उन्नाव ६ नग और मुनक्का ६ नग लेवें । सबको जोकुटकर रात्रिको ४० तोले जलमें भिगो देवें । सुबह पूरे एफचला २० तोले जल शेष रहनेपर उतार छान २ तोले मिश्री मिलाकर पिला

देवे। इस रीतिसे रोज सुबह ५ दिन पिलानेसे आंतोंमें जमा हुआ मल पककर फूल जाता है। फिर छठे दिन जुलाब देवें। (चि० चं०)

वक्तव्य—क्वाथको छाननेके समय कपड़ेमें रहे हुए द्रव्योंको दबाकर जल न निचोड़ें। अन्यथा चिपचिपा द्रव अधिक आजानेसे बेस्वादु बन जाता है। यदि चिपचिपा द्रव पीनेमें दुःख न हो, तो निचोड़ लेने पर अधिक गुण मिल सकेगा।

[३५] जुलाबकी ओषधि।

विधि—गुलाबके फूल, बनफशाके फूल, सफेद निशोथ, बादीआन (सौंफ), मकोय, जूफा, ताजी गिलोय, ये ७ औषधियां ५-५ माशे, सनायके पत्ते ९ माशे, बेख इंजल (इन्द्रायणकी जड़), तुख्म हंजल (इन्द्रायणके बीज) काबुली पीली हरड़का बक्कल और गाजीफून, ये ४ ओषधियां ६-६ माशे लेवें। असबन्द ३ माशे, अंजीर ८ नग और मुनक्का १३ नग लें। सबको जौकुटकर रात्रिको ४० तोले जलमें भिगो दें। सुबह क्वाथकर १५ तोले जल शेष रहने पर छान २ तोले गुलकन्द मिलाकर पिला देवें। एक घण्टे बाद सौंफका अर्क १० तोले या निवाया जल पिलावें। इस ओषधिसे २-३ घण्टे बाद ५-६ दस्त साफ आकर पेट स्वच्छ होजाता है। ऊपरवाला मुंजिस और जुलाब प्रायः सब प्रकृतिवालों को अनुकूल रहता है। (चि० चं०)

सूचना—जुलाब लेनेके बाद सोना नहीं चाहिये और निवाये जलसे हाथ-पैर, धोना चाहिए। चिकित्सातत्वप्रदीपके प्रथमखण्डमे विरेचन विधिमें जुलाबके विशेष नियम लिखे हैं, उनको देख लेवे।

[३६] बृहत्यादि क्वाथ।

प्रथम विधि—बड़ी और छोटी कटेलीके फल, भूमिकदम्ब (गोरखमुण्डी), अरण्डीकी जड़, इन ४ औषधियोंको २-२ तोले मिलाकर क्वाथ करे। (वं० से०)

उपयोग—इस क्वाथमे तिलका तेल मिलाकर कुल्ले करनेसे दांतोमे रहे हु कृमि निकल जाते हैं।

दूसरी विधि—छोटी और बड़ी कटेलीके मूल, गोखरू, अरण्डीकी जड़, कुश, कास और ईखकी जड़, इन ७ ओषधियोको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे। (वृ० मा०)

उपयोग—४ तोलेका क्वाथ करके पिलानेसे पित्तप्रकोपजनित दारुण शूल नष्ट होता है। शूल वातपित्तज हो, तो शहद मिलाकर पिलावे।

(३७) बिल्वादि क्वाथ।

विधि—बेलकी छाल, अरण्डीकी जड़, चित्रकमूल और सोंठको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (वृन्द)

लिया जाता है ।

उपयोग—यह कल्क अपचन, अपचनसे होनेवाला ज्वर, शिरदर्द, उदरशूल, आम, उदरवात, जुकाम, अरुचि आदिको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करता है ।

(४४) प्रतिश्यायहर कषाय ।

विधि—उनाव ७ नग, सपिस्ता (लिहसोडे) ७ नग, वनफशा, खसखस, मुलहठी, गावजवा और सौंफ ६-६ माशे, तुरजवीन १ तोला और मिश्री २ तोले लेवें। सबको कूटकर आध सेर जलमें उबालें। आधा जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। इसमे से आधा सुबह और आधा शामको पीवे ।

उपयोग—इस क्वाथके सेवनसे नया जुकाम, मन्दज्वर, मलावरोध, हृदयका भारीपन और सिरदर्द आदि २-३ दिनमें दूर होते हैं ।

(४५) शुष्ककासहर क्वाथ ।

प्रथम विधि—जूफा, परशीआवसान (हसराज), बेख सोसन (केवडेका मूल), मुलहठी, बहेडा और अडूसेके पत्ते ६-६ माशे, मिश्री २ तोले और अजीर ८नग लेकर ४ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें। आधा शेष रहने पर उतार कर छान लें ।

उपयोग—आधा-आधा सुबह-शाम ५-७ रोज लेनेसे पित्तज और वातज सूखी खासीका शमन होता है, एव मलावरोध, शिरदर्द, उवाक, वमन आदि विकार भी दूर होते हैं ।

दूसरी विधि—गुलवनफशा, हसराज, छिली हुई मुलहठी, तीनो ६-६ माशे, खतमीके बीज और अलसी ३-३ माशे और उनाव ६ दाने लें। सबको कुचलकर डेढ पाव जलमें क्वाथ करें चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार मलकर छान लें। शीतल होनेपर ३ माशे शहद और ७ माशे मिश्री मिलाकर पिला देवें । (चि० च०)

उपयोग—इस क्वाथको दिनमें २ बार पिलाते रहनेसे १०-१५ दिनमें सूखी खासी (वातज कास) जडसे चली जाती है ।

[४६] मधुकादि शीतकषाय ।

विधि—मुलहठी, सफेद सारिवा, काली सारिवा, मुनक्का, महुआ, रक्त-चन्दन, नीलोफर, काश्मरीका फल, पद्माख, लोध, आवला, बहेडा, हरड, कमलकेशर, फालसा और कमलकी नाल इन १६ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करे ।

(च० द०)

मात्रा—३ से ६ तोले रात्रिको षड्गुण गरम जलके साथ मिट्टीके बरतनमें भिगो देवें सुबह मल-छानकर मिश्री, शहद और खीलोका सत्तू मिलाकर पिला देवें ।

उपयोग—यह कषाय वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, वमन, चक्कर और रक्तपित्तको शमन करता है ।

(४७) सप्ताष्टिक यूष ।

विधि--जौका सत्तू, वेर, कुलथी, मूंग, मूलीके टकड़े, धनिया और सोंठ, इन ७ ओषधियोंको एक-एक मूठी (४-४ तोले) मिलाकर अठगुने जलमें पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार, मसलकर छान लेवें।

उपयोग--सन्निपातमें भोजन देनकी आवश्यकता हो, तब इस यूषका उपयोग करना चाहिये। यह यूष, वात, पित्त, कफ तीनों दोषोंको हरनेवाला, गुल्म, शूल, श्वास कास, धातुक्षय और ज्वरका नाशक, आमदोषघ्न, हृद्य, एवं कण्ठसे मुंह तकके दोषोंको नष्ट करनेवाला है।

(४८) द्वात्रिंशदाख्य क्वाथ।

विधि--भारंगी, चिरायता, नीमकी अन्तरछाल, नागरमोथा, कुटकी, वच, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, वासापत्र, इन्द्रायनकी जड़, रास्ना, अनन्तमूल, परवलके पत्ते, देवदारु, हल्दी, पाडर, अरलूकी छाल, ब्राह्मी, दारुहल्दी, गिलोय, निसोत, अतीस, पुष्करमूल, त्रायमाण, छोटी कटेलीकी जड़, बड़ी कटेलीकी जड़, इन्द्रजौ, हरड़, बहेड़ा, आंवला और कचूर इन ३२ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (यो० र०)

मात्रा--४ से ८ तोलेका क्वाथ कर २ हिस्सा करके ४-५ घण्टे पर पिलावें। आवश्यकता पर २४ घण्टेमें चार वार दें।

उपयोग--इस क्वाथके सेवनसे १३ प्रकारके सन्निपातोंके शूल, कास, हिक्का श्वास, अर्श, अफारा, सन्धि-सन्धिमें पीड़ा, अरुचि, ऊरुस्तम्भ, अन्त्रवृद्धि, कंठके रोग आदि सब विकार शमन होजाते हैं।

कफज्वर, कफप्रधान सन्निपात, श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया), फुफ्फुसावरण प्रदाह (प्लूरिसी), पार्श्वशूल आदिमें नौसादर और यवक्षार ४-४ रत्ती मिला करके देवें तो सत्वर लाभ होता है। यह क्वाथ अभ्रकभस्म शृंगभस्म या मल्लभस्मके साथ भी दिया जाता है।

(४९) मधुकादि हिम।

विधि--मुलहठी, बिहदाना, गावजवां, गुलवनफशा, रेशाखतमी, मुनक्का और लिहसोड़ा, सबको १-१ तोला ले, जौकूट करके ७ पुड़ियां बनावे। (र० यो० सा०)

उपयोग--१-१ पुड़ियाको १० तोले जलमें मिट्टी या कांचके पात्रमें रात्रिको भिगो दे। सुवह मसल-छान, मिश्री मिलाकर पी लेवें। ऐसे ही सुवह १ पुड़िया भिगोकर शामको पी लेवे। इस तरह ७ पुड़ियोके उपयोगसे अर्द्धावभेदक, पित्तवृद्धिजनित शिरदर्द, लू लगनेसे होनेवाले मन्द ज्वर, जुकाम, शिरदर्द आदि विकार दूर होते हैं।

सूचना--जिनको श्वास, कास या कफवृद्धि स्वाभाविक रहते हों, उनको हिमके स्थानमें क्वाथ करके पिलाना चाहिये।

(५०) मुस्तादि क्वाथ

विधि—नागरमोथा, मूसाकानी, हरड, बहेडा, आवला, देवदारु, सुहिजनेके बीज, नव समभाग लेकर जोकूट चूर्ण करे । (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर छोटी पीपल और वायविडगका चूर्ण मिलाकर दिनमें २ बार पिलावें ।

उपयोग—यह क्वाथ सब प्रकारके उदरकृमि और कृमिजन्य रोगोंका नाश करता है ।

(५१) ह्रीवेरादि क्वाथ ।

विधि—नेत्रवाला, धनिया, सोठ, रक्तचन्दन, मुलहठी, अडूसेके पत्ते, खसकी जड, इन ७ औषधियोंको समभाग मिलाकर २ तोले लें । फिर क्वाथ कर शहद-मिश्री मिलाकर पिलावें । (यो० र०

उपयोग—यह क्वाथ तीव्र रक्तपित्त (दाह और ज्वर आदि लक्षणोंसह) को दूर करता है । ऊर्ध्व और अधो दोनों प्रकारके रक्तपित्तके शमनमें लाभदायक है ।

(५२) वीरतर्वादि क्वाथ ।

विधि—वीरतरु (बेल्तर Dichrostachys cineria), नीले फूलका पियावांसा, पीला पियावांसा, दर्भमूल, वादा, शर, नरसल, कुशकी जड, कासकी जड पाषाणभेद, अरनीका मूल, ईखकी जड, सफेद आकके फूल, अपामार्गकी जड, श्योनाक (सोना पाठा), लाल फूलका पियावांसा, नीलकमल, हुलहुल और गोखरू इन ११ औषधियोंको मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (सु० स०)

मात्रा—४-४ तोलेका क्वाथ कर दिनमें २ बार २ से ४ रत्ती शिलाजीत मिलाकर पिलावें ।

उपयोग—यह क्वाथ वातविकार, वृक्क और मूत्राशयकी अश्मरी, मूत्रपिण्डमें शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, वृक्कशूल, वृक्कदाह, मूत्राशयदाह, मूत्रेन्द्रियमें दाह इन मूत्र-रोगोंका नाश करता है, और पथरीको तोडकर निकालनेमें अच्छा लाभ पहुंचाता है ।

(५३) तगरादि कषाय ।

विधि—तगर, असगन्ध, पित्तपापडा, शखपुष्पी, देवदारु, कुटकी, ब्राह्मी (जलनीम), जटामासी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, छोटी हरड और मुनक्का, इन १२ औषधियोंको समभाग मिला ४ से ८ तोलेका क्वाथ करें । फिर चार हिस्सा कर १-२-३ या ४ बार तीन-तीन घण्टे पर आवश्यकतानुसार पिलावें । (यो० र०)

उपयोग—यह कषाय सन्निपातमें उत्पन्न वातप्रधान, पित्तप्रधान और वातपित्तप्रधान प्रलापोंको तत्काल शमन कर देता है । यह मस्तिष्कको शांत बनाता है, अन्त्रके दोषोंका शोधन करता है, पचनेयोग्य दोषोंको पचन कराता है, निकालने योग्य दोषोंको बाहर निकालता है, तथा वात-संस्थापर शामक असर पहुंचाकर रोगीको निद्रा ला देता है ।

आसवादि प्रकरण ।

काष्ठादि ओषधियाँ पुरानी होनेपर न्यून गुणवाली होकर नष्ट हो जाती हैं। एवं वनौषधियोंके रस और क्वाथ भी थोड़े ही समयमें बिगड़ जाते हैं। अतः इनके गुणोंको दीर्घकालतक अवस्थित रखनेके लिये आसव अरिष्ट बनाये जाते हैं। आसुतत्वादासव संज्ञा अर्थात् आसुत पद्धति (संयोगज मूर्च्छा प्रक्रिया) से तैयार हो,उसे आसव कहते हैं। ये आसवअरिष्ट वर्षोतक खराब नहीं होते; बल्कि गुणमें वृद्धि हो जाती है। अतः ओषधियोंके गुणोंके संरक्षणार्थ आसव-अरिष्ट विधि व्यवहारमे आई है।

आसव-अरिष्ट दीर्घकालतक अवस्थित रहनेका कारण, उसमें रहा हुआ मद्यार्क (Absolute alcohol) है। इस मद्यार्ककी उत्पत्ति आसुत प्रक्रियासे होती है। ये आसव-अरिष्ट मद्यके भेद हैं। यथार्थमें मद्यके आसव, अरिष्ट, सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेय ६ भेद हैं।

(१) आसव--यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। । अर्थात् अपक्व औषधियोंको मधुर द्रव्य और धायके फूल आदिके साथ जलमें मिला विना क्वाथ किये पात्रमें भर मुखमुद्रा कर कुछ कालतक वन्द रखकर जो मद्य सिद्ध किया जाय, उसे आसव कहते हैं।

(२) अरिष्ट--अरिष्टः क्वाथसिद्धः व स्यात् सम्पक्वो मधुर द्रव्यैः। अर्थात् ओषधियोंका क्वाथकर फिर मधुर द्रव्य और धायके फूल आदि मिलाकर मद्य तैयार किया जाय वह अरिष्ट कहलाता है।

(३) सीधु—सीधुः इक्षुरसैः पक्वः। अर्थात् ईखके रसको उवाल कुछ काल वन्द रखकर जो द्रव्य सिद्ध किया जाता है; उसे सीधु —सिरका कहते हैं वर्तमानमें रसको बिना पकाये ही सिरका बनाते हैं। गन्ने (ईख) के समान द्राक्षा या जामुनके रसको किसी बरतनमें भरकर संधान उठानेपर भी सीधु तैयार होता है। इसमे पक्वरस, शीतरस, गुड़, शर्करा, आक्षिक और जाम्बव भेद माने गये हैं।

(४) वारुणी--यत्तालखर्जूररसैरास्रुतं सैव वारुणी। अर्थात् ताल या खर्जूरके शिखर-प्रदेशपर कुल्हाड़ीसे तिरछे घाव करनेसे काटे हुए भागमें जो रसस्राव होता है; उसे बरतनमें भरकर रख देनेसे थोड़े ही समयमे खमीर आकर मद्योत्पत्ति हो जाती है; वह वारुणी (ताड़ी) कहलाती है। इस तरह पुनर्नवा मूल और चावलोंको पीस पिठ्ठी बना जलमें घोल देनेसे खमीर आकर मद्य वन जाताहै; उसे भी वारुणी संज्ञा दी है।

(५) सुरा--परिपक्वान्न संधानसमुद्भूता सुरामता। अर्थात् चावल आदिको पका, मीठा मिला खमीर उठाकर तैयार की जाय उसे सुरा (शराब) कहते है। इसके

गौडी (गुड़ मिलाकर बनाई हुई), माध्वी (महुआके फूल मिलाकर तैयार की हुई) पैष्टी (चावल आदि अन्नके मद्यसन्धान्य) और निर्याम (ईखके रस और फलोंके रसमें तैयार की हुई), ये चार भेद हैं। ये सब नलिकायन्त्र द्वारा वाष्पको खेंचकर तैयारकी जाती हैं। ये सब स्वच्छ वर्णरहित और एक प्रकारकी गन्धयुक्त होती हैं।

(६) मैरेय—आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने ।
सन्धानं तद्विजानीयात् मैरेयमुभयात्मकम् ॥

अर्थात् आसव द्रव्य और सुरा (अन्न या फलरस आदि) मिलाकर सन्धान कराया जाय उसे मैरेय कहते हैं। एवं बबूल या बेरकी छाल और गुड़-शक्कर आदिको जलमें मिलाकर मद्य बनाया जाय, वह भी मैरेय कहलाता है।

मद्य और आसव, दोनोंकी क्रियामें भेद है। घटक अवयव और गुणमें भी भेद है। 'मद्यमल्पं च श्रेष्ठम्' तथा 'आसव विनष्ट अम्लता यातम्' इस प्रकारसे भेद शास्त्रकारोंने दर्शाया है। तथापि सारग्राही दृष्टिसे मदार्कपनकी दृष्टिसे शराब और आसवारिष्टकी एक ही जाति है। शराबमें मद्यार्क और जल रहते हैं, तथा आसवारिष्टमें मद्यार्क और जलके अतिरिक्त विविध औषधद्रव्योंका सत्व भी रहता है, एवं मद्यार्ककी मात्रा अति न्यून होती है शराबमें मादक गुण प्रधान है, और आसवारिष्टमें औषध गुणोंका ही प्राधान्य है, यह इन दोनोंमें अन्तर है। आसवारिष्टोंमें औषधगुणोंका प्राधान्य होनेसे मर्यादित मात्रामें ही सेवन किया जाता है।

बिना क्वाथ किये हुए मद्यको आसव और क्वाथ कर बनाये हुए मद्यको अरिष्ट कहते हैं, ऐसे अनेक आचार्योंका मत है। किन्तु कितनेही विद्वान् चरक सुश्रुत आदि आचार्योंके वचनोंके आधारसे इस व्याख्याको निर्मूल दिखाते हैं। लोध्रासव, दुरालभासव, द्राक्षासव आदि अनेक आसवोंकी मुख्य ओषधियोंका क्वाथ करनेकी आज्ञा शास्त्रकारोंने दी है। एवं चरक संहिताके चिकित्सा स्थानमें तक्रारिष्ट, अष्टशतारिष्ट, त्रिफलारिष्ट और अन्य अनेक अरिष्टोंमें क्वाथ करनेका विधान नहीं है। इनके अतिरिक्त सुश्रुत संहितामें भी अनेक अरिष्टोंमें क्वाथ विधि कही नहीं। अतः आसव और अरिष्ट दोनों पर्याय शब्द हैं, ऐसा अनेक विशेषज्ञोंका मत है।

आसव-अरिष्टके द्रव्योंमें (कार्य दृष्टिसे) ३ विभाग होते हैं—१—मधुसर्जन २-कोहल (Alcohol) सर्जन, ३ कार्मुक तत्व (Active principles) निष्कासन। इनमेंसे पहिला और दूसरा कार्य मधुर पदार्थों द्वारा होता है। धातकी पुष्प, सुराबीज, महुएके फूल, सुपारी, बबूलकी छाल, नागकेशर आदि द्रव्य दूसरा कार्य निश्चयपूर्वक मर्यादित समयमें कर देते हैं। तीसरा कार्य औषध द्रव्योंमें रहे सत्वद्वारा होता है। कार्मुक तत्व जल (प्रवाही द्रव्य) में उतरना, फिर अवस्थित रहना और उसके सामर्थ्यको बढ़ाना, ये तीन कार्य सन्धान विधि द्वारा सिद्ध होते हैं। इस हेतुसे जल औषधद्रव्य, मधुर द्रव्य आदिको मिला अमृतबान आदि पात्रमें भर, मुखपर ढक्कन लगा संधि स्थान

पर लेपन (संधान) करते है। इस विधिमें संधानक्रिया अत्यन्त आवश्यक मानी है, इस हेतुसे इस क्रियाके अनुरूप आसवारिष्ट निर्माण विधिको संधान विधि संज्ञा दी है।

अनुमान होता है, कि, आसवोंके रूप, गुण, स्वाद और स्वभाव चिरकालतक न्यून नहीं होते। इसी हेतुसे आसवको गुणात्मक नाम अरिष्ट दिया गया है। इन ६ प्रकारके मद्योंमेंसे आचार्योंने विशेषतः आवसव अरिष्टको ही ओषधि रूपसे प्रयोगमें लिया है। इसी हेतुसे आसव अरिष्ट रोगनाशक ओषधियोंमेंसे ही तैयार किये हैं। सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेयको ओषधियोसे नही बनाया। विशेषतः वारुणी, सुरा आदिका उपयोग मादकताके लिये ही होता रहता है; औषध रूपसे उपयोग बहुत कम अंशमें किया है।

आसव तैयार हो जानेपर जितनी मादकता ऊपरके भागमें होती है उतनी नीचेके भागमें नही होती। यह मादकता अधिक उष्णता पहुंचने और पात्र खुला रह जानेपर उड़ती जाती है। अधिक कालतक पात्र खुला रह जाय, तो आसव खट्टा हो जाता है, और मादकता बिलकुल नष्ट हो जाती है।

जो ओषधि कठोर हो, उसमेंसे उबाल करके अरिष्ट और सौम्य, तैल और सुगन्ध-युक्तहो, उसमेंसे आसव बनाना चाहिये। क्योंकि तैल ओषधि उबालनेपर तैल-सत्व उड़ जाता है, और औषध हीनगुण होजाती है।

आसवमें निवाया जल मिलानेसे खमीर जल्दी उठता है, तथा ठंडा जल मिलानेसे खमीर उठनेमें २-४ दिन ज्यादा लगते हैं।

आसवीभवन-परिवर्तन-Fermentations- समें २ प्रकार हैं। १--अम्ल (Acid) २--कोहल (Alcohol) इस परिवर्तनके लिये शक्कर, गुड़, शहद, मुनक्का, गंभारीफल, महुएके फूल और धायके फूल आदि द्रव्योंका उपयोग होता है। कितनेही चिकित्सक धायके फूलके स्थानपर धायके फूलका कषाय करके मिलाते हैं। क्वाथ मिलानेसे परिवर्तनरूप कोहल क्रिया अति सरलतासे और उत्तम प्रकारसे होती है।

परिवर्तन क्रियामें अम्ल परिवर्तन इष्ट नही है। कोहल परिवर्तन अपेक्षित है। किन्तु जैसा अम्ल परिवर्तन प्रतीत होता है; वैसा कोहल परिवर्तन प्रतीत नहीं होता। कुछ-न-कुछ अंगमें अम्ल रूपान्तर होता ही है। यदि अम्ल रूपान्तर अधिक हो जाय, तो आसव बिगड़ जाता है। अम्लत्व यह मद्यका सहज रस है और मधुर यह आसवका रस है।

धातु की कषायविधि--धायके फूलोंके चूर्णको १० गुने जलमें २४ घण्टे तक भिगो उबालकर कपड़ेसे छान लेवें। फूलोके चूर्णको अच्छी तरह दवाकर निचोड़ लेवें। फिर १ सेर मधुर पदार्थयुक्त मिश्रणमे २॥ तोले धातकी पुष्प कषाय मिलावें।

इस जलके मिलानेसे (१) फफूँदी कम आती है, (२) कोहन क्रिया सरलतापूर्वक सत्व और इष्ट परिणाम होती है, (३) आसव छाननेके समय भाग कम होता है। यदि आसव (प्रक्षेप) द्रव्यको पोटलीमें बांधकर डालें तो छाननेकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

आसव-अरिष्ट के पात्र—प्राचीनकालमें घीसे रंगा हुआ मिट्टीका पात्र लेनेका रिवाज था। परन्तु ऐसे पात्रोंको यदि धूपमें रखकर घीको न पोंछ लिया जाय, तो आसवमें घीका अंश आजाता है, एवं पात्र घीसे रंगा हुआ न होनेपर आसव बाहर निकलता रहनेसे कम हो जाता है।

इसके अतिरिक्त मिट्टीके बर्तनमें उत्तापवाहक गुण होनेसे भीतरकी उष्णताको बाहर फेंकता रहता है। एवं शीतकालमें बाहरकी शीतल वायुका सम्बन्ध होता रहे तो भी भीतर रहा हुआ आसव शीतल हो जानेसे उसका यथोचित पाक नहीं होता। इस हेतुसे पूर्वकालमें जमीनमें या धान्यराशिमें दबाते थे। परन्तु वर्तमानमें मृत्पात्रके स्थानपर चीनी मिट्टीके अमृतबान, लकड़ीके टांक, या सीमेण्टके हौजका उपयोग करना विशेष हितकर माना जाता है।

यदि मिट्टीके ही पात्रोंका उपयोगमें लेना हो, तो घड़ेके भीतर निम्न रालमिश्रणका लेपकर लेना चाहिये, जिससे आसवका शोषण न हो, एवं भीतरकी उष्णता बाहर न निकले।

रालमिश्रण—१० तोले रालको १ बोतल (२४ औंस) मेथीलेटेड स्पिरिट में मिलाकर लेप करें। एक लेप सूखनेपर दूसरी बार, फिर तीसरी बार लेप करें। इस तरह ७ बार लेप करनेपर घड़ेके सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र बन्द हो जाते हैं। फिर उसके भीतर भरे हुए आसवोंमेंसे जल बाहर नहीं निकल सकता। भीतरकी उष्णता जैसीकी वैसी बनी रहती है और आसव यथासमय सिद्ध हो जाता है।

विदेशी शराबके लिये लकड़ीके ढोल आते हैं, उनका उपयोग करना हो, तो पहले गरम जल और सोडा आदिसे या चूनेके जलसे उनको भले भांति साफ कर लेना चाहिये। जिससे उनमेंसे शराबका अंश निकल जाय। ये टोल शीशम, सागवान आदि दृढ लकड़ीके आते हैं, जो वर्षोंतक खराब नहीं होते। उनमें भरे हुए आसव-अरिष्ट मूल स्थितिमें कायम रह सकते हैं। इस टोलकी लकड़ी उत्तापरोधक होनेसे भीतरकी उष्णताका वहन नहीं होने देती। अतः मिट्टीके पात्रोंकी अपेक्षा ये अच्छे माने जाते हैं।

पहले आसव अथवा अरिष्टकी वस्तुओंके क्वाथ अथवा स्वरसको तैयार करें। फिर शक्कर, गुड़ अथवा शहद मिलाकर चीनी मिट्टीके अमृतबानमें भरें। पश्चात् मुंह तक थोड़ा भाग खुला रख, ऊपर कपड़ा बांधकर एकान्त स्थानमें १०-१५ दिनतक खमीर आकर शांत होजाने तक रहने दें। प्रारम्भमें कार्बोलिक गैस उत्पन्न होकर बाहर निकलती रहती है। इस गैसको यदि अरिष्टके पात्रपर मुखमुद्रा करके रोक दी जाय,

तो आसवमें अम्लता बढ़ेगी, और आसवके स्थानपर शुक्त बन जायगा। खमीर उठनेके समय 'सूं सू' जैसी आवाज अमृतवानके पास कान लगानेसे सुननेमें आती है। खमीर शांत होनेपर आवाज सुननेमें नहीं आती। विशेष निश्चय करनेके लिये अमृत-बानके मुंहपर जलती दियासलाई रखें। यदि खमीर बैठ गया होगा तो दियासलाई जलती रहेगी, और खमीर बनता होगा तो दियासलाई बुझ जायगी। इस तरह परीक्षा करके खमीर शांत होनेपर प्रक्षेप (धायके फूल, जायफल, जावित्रीका चूर्ण अथवा कल्क) डालना चाहिये; ऐसा कितने ही विद्वानोंका मत है। इसके विरुद्ध अनेक चिकित्सक प्राचीन पद्धति अनुसार प्रक्षेपको तुरन्त मिला देते हैं। हमने इस ग्रंथमें प्राचीन मत अनुसार विधि लिखी है। नव्यमत अनुसार प्रक्षेप मिलानेवालोंके लिये खमीर आजानेके बाद कदाचित् आसव-अरिष्टोंके ऊपर पुड़ी जैसी पपड़ी आगई हो तो फेंक दें, और आसव-अरिष्टोंको छान करके प्रक्षेप मिलावें। प्रक्षेप मिलाकर अमृतबानका पौन हिस्सा भरें। चौथाई हिस्सा खाली रखना चाहिये,जिससे अमृतबान न फूटे। खमीर शांत हुए विना पहलेसे एक साथमें प्रक्षेप मिला देनेसे अमृतबान फूटनेका और उफान आकर ओषधि निकल जानेका डर रहता है। प्रक्षेप मिलाकर अमृतबानका मुंह बन्द करें। फिर मुंहपर अच्छी रीतिसे कपड़मिट्टी कर एकान्त स्थान या धूपमें रखें, अथवा जमीनमें दबा दें। इस तरह १ से ३ मास तक रहने देवें। धूपमें रखनेसे ओषधियोंमेंसे जलका अंश बहुत जल जाता है। जमीनमें दबानेसे बर्तन फूट जानेका भय रहता है। परन्तु मकानमें एक तरफ सम्हालपूर्वक रखनेसे उफानका या फूटनेका भय नहीं रहता और कच्चे पक्केकी परीक्षाका लक्ष्य भी रह सकता है।

बड़ी-बड़ी फार्मेसियोंमें वर्तमानमें आसवारिष्ट विशेषतः लकड़ीके ढोल और टांकीमें बनाये जाते हैं। उनको जमीनमें दबानेकी आवश्यकता नहीं है। एवं मुखमुद्रा भी नहीं करते। मुंहपर ढक्कन लगाकर ऊपर कपड़ा बांध देते हैं, जिससे कूड़ा-कचरा या जन्तु बाहरसे, प्रवेश न करें।

द्राक्षासव बनानेके समय जो गाढ़ा भाग तलेमें रह जाता है, उसे किण्व (सुराबीज) कहते हैं। उसे तेज धूपमें सुखाकर सुरक्षित रख लेवें और आवश्यकतानुसार आसव-अरिष्ट बनानेपर दूधमें दहीके जामनेके सदृश मिलाते रहें। दो द्रोण (२०४८ तोले) द्रवमें १ सेर किण्व मिला लेनेसे आसव-अरिष्टकी संधान-क्रिया सत्वर होती है और आसव बिगड़नेका भय दूर होता है।

यदि उक्त किण्वको न मिलावें तो भी आसव-अरिष्टका खमीर तो उठता ही है। कारण, धायके फूल आदिमें किण्व रहते हैं। परन्तु किण्व मिलानेसे सत्वर संधान होता है और आसव अच्छा बनता है। सुराबीज विरोधी कीटाणुओंको नष्ट कर डालते हैं, और आसवकी रक्षा करते हैं।

आसव-अरिष्टोंके पाठमें कषाय-रस प्रधान धातुकी पुष्प, बबूलछाल, बेर छाल, महुआका फूल, सुपारी, नागकेशर आदि द्रव्य मिलाये जाते हैं; वे भी सुराबीज हैं। परन्तु

इनकी अपेक्षा द्राक्षासवके तथा अन्योंमें मिले किण्वमें सुराकीटाणुओंकी संख्या अत्यधिक होती है, और वे सब सबल होनेसे सफलतापूर्वक सत्वर कार्य कर सकते हैं।

किण्व कीटाणु (Yeast) लम्बे और अति सूक्ष्म होते हैं। ये अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा प्रतीत होते हैं। ताड़ वृक्षकी मंजरी, ईखका रस, विविध पुष्प आदिमें भी ये कीटाणु प्रतीत होते हैं। धायके फूलोंमें बहुत रहते हैं। इन किण्व कीटाणुओंको शर्करामूयिष्ठ और पिष्टमय पदार्थका आहार मिलनेपर ओषधि द्रव्यका मद्यमय रूपान्तर होने लगता है।

शीतकालमें आसव निश्चित समयसे ४-८ रोज पीछे तैयार होता है, और उष्ण ऋतुमें ४-८ रोज पहिले ही तैयार हो जाता है। इसलिये ओषधिकी जाति और ऋतुभेदसे तैयार हो जानेका अनुमान हो, तब अमृतबानको खोलकर परीक्षा कर लेनी चाहिये। परीक्षाके लिये थोड़े आसव-अरिष्टको एक बोतलमें भर डाट लगाकर जोरसे हिलावें। कच्चा होनेपर खूब झाग आयेंगे, और डाट उड़ जायगा। अथवा डाट खोलनेके समय एकदम बलपूर्वक वायु निकलेगी। आसव-अरिष्ट पक गया होगा, तो झाग नहीं आयेंगे। झाग ज्यादा समयतक रहे, तो आसव कच्चा समझकर फिरसे बन्द करके पाच-दस रोज रख देना चाहिये, बादमें पुन परीक्षा करनी चाहिये।

मधुर पदार्थ मिश्रण—आसवोंमें गुड, शक्कर, शहद आदि मिलानेके लिये प्राचीन आचार्योंने सामान्य परिमाण लिखा है कि —

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलागुडम्। क्षौद्रं क्षिपेज गुडादर्धं प्रक्षेप दशमांशिकम्।

जहां गुड आदि परिमाण शास्त्रमें न दिये हों, वहांपर १ द्रोण (१०२४ तोले) द्रवमें १ तुला (४०० तोले) गुड, शहद गुडसे आधा और प्रक्षेप दशमांश मिलाना चाहिये।

मधुर द्रव्योंकी आसुत क्रियाद्वारा आसवों या मद्यकी उत्पत्ति होती है। मधुर गुण-युक्त अणुओंको किण्व कीटाणु भक्षणकर आसवके अणुओंमें रूपान्तरित कराते हैं, मधुर द्रव्य न मिलाया जाय, तो आसव या मद्य बन ही नहीं सकता। फिर भी जलकी दृष्टिसे मधुरद्रव्य अत्यधिक हो जानेपर आसव अति गाढा रहता है, जिससे आसुत क्रिया योग्य रूपसे नहीं बन सकती। अत क्वाथके शेष रहे हुए जलकी अपेक्षा लगभग आधा मीठा (गुड आदि) हो, तो सधान क्रिया सम्यक् प्रकारसे होती है। गुड, शक्कर आदिकी मात्रा अधिक कम हो जाती है, तो भी आसवारिष्ट अच्छा नहीं बनता। अत मधुर द्रव्यका परिमाण मर्यादामें मिलाना चाहिये।

आसव बननेकी क्रिया निश्चित उष्णता मिलनेपर ही होती है, अर्थात् ३० से ३५ सेन्टिग्रेड (८६ से ९५ फेरनहीट) उष्णतामें यह क्रिया अच्छी होती है। अधिक उष्णता बढ़नेपर या अधिक शीतलता आ जानेपर आसव क्रिया बन्द हो जाती है। आसव क्रिया प्रारम्भमें प्रबल होती है। फिर जैसे-जैसे मद्यांश अधिकाधिक तैयार होता जाता है वैसे-वैसे यह क्रिया मन्द होती जाती है। १५ प्रतिशत मद्यांश बनजाने पर उसमें कीटाणु

जीवित नही रह सकते। इस हेतुसे क्रिया बन्द हो जातीहै। ऐसे समय जलकी मात्रा और मिलाई जाय, तो पुनः क्रिया प्रारम्भ हो सकती है। अतः शर्करा, गुड आदिका परिमाण शास्त्रकथित परिमाणसे अधिक भी नहीं मिलाना चाहिये।

यद्यपि पाश्चात्य रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे गुड़, शक्कर आदि सब प्रकारके द्रव्याणुओं-की रासायनिक प्रक्रिया सामान्य रूपसे समान होती है। सब प्रकारके मीठेमेंसे बने हुए आसवको समान गुणवाला माना गया है; तथापि इस विचारके साथ आयुर्वेद सहमत नही हो सकता। गुड़की अपेक्षा शक्करवाले आसवका स्वाद और रूप अच्छा हो सकता है और गुण दोनोंके पृथक्-पृथक् ही अनुभवमें आते हैं।

वर्तमानमें भौतिक रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे अभ्रक भस्म और गोबरीकी राखमें अधिक अन्तर नहीं माना जाता। परन्तु जीवनरसायन शास्त्रकी दृष्टिसे अभ्रक भस्म और गोबरीकी राखमें आकाश-पातालका अन्तर है; वैसे ही गुड़, शक्कर और फलोंके रस आदिकी मधुरतामें जो अन्तर है वह मानव-शरीरपर वस्तुके प्रयोगसे स्पष्ट प्रतीत होता है। उसे भौतिक शास्त्र चाहे अभी न मान सके तथापि प्रयोगसिद्ध सत्य मिथ्या नही हो सकेगा।

कभी-कभी आसव-अरिष्टोमे सुवर्ण या लोह आदि धातु मिलाईजाती है। इन धातुओंका लवण बनाकर मिलानेपर वे अच्छी तरह मिल सकती हैं। भस्म रूपसे धातुएं पूर्णागिमे नहीं मिल सकती। सब धातुओंमें सुवर्ण अधिक मूल्यवान होनेसे उसके लिये विशेष सम्हा-लना चाहिये। सुवर्णका लवण निम्न पाश्चात्य विधि अनुसार बनाकर मिला सकते हैं।

सुवर्ण लवण—नमकका तेजाब (Hydrochloric Acid) ३ औंस और ३ ड्राम और शोरेका तेजाब (Nitric Acid) ४ औंस मिश्रित करें। उसे आतशी शीशीमे डाल उसके भीतर शुद्ध सुवर्ण ३ तोलेके पतरे डालकर १ दिन रहने देवें। दूसरे दिन आतशीशीशीको स्पिरिट लेम्पपर रखकर गरम करें। अच्छी तरह गरम हो जानेपर १० तोले सैंधानमक मिलावें। जल सूख जाय और सुवर्ण रंग नारंगीके सदृश प्रतीत होने लगे तब शीशी उतार लेवे। स्वांग शीतल होनेपर सुवर्ण लवणको निकाल लेवें। इस लवणको डाक्टरीमें ओरम क्लोराइड (Aurum Chloride) संज्ञा दी है।

ओरम क्लोराइडकी मात्रा डाक्टरीमें $\frac{1}{60}$ से $\frac{1}{10}$ ग्रेन है। क्रमशः मात्रा बढ़ाकर $\frac{1}{2}$ ग्रेनतक दे सकते हैं। इसकी १५-१५ ग्रेनकी ट्यूब डाक्टरी ओषधि बेचनेवालोंके पास तैयार मिलती है। इसने रक्तशोधक, उत्तेजक, बल्य, कामोद्दीपक और रसायन गुण हैं। यह डाक्टरीमे वातवहा नाड़ियोंकी निर्बलता, चिरकारी वृक्कदाह, शिरःशूल, कष्टा-र्त्तव, गर्भाशयका चिरकारी दाह, बीजाशयमे वातजशूल, राजयक्ष्मा, श्वासरोग, मृगी, हिस्टीरिया, आक्षेपकवात, नपुंसकता आदि पर प्रयोजित होता है।

यदि सुवर्ण लवणका सेवन अधिक मात्रामें किया जाता है, तो पारदके समान

हु आजाता है, तथा आमाशय और अन्त्रमें उग्रताकी उत्पत्ति हो जाती है । फिर क्षुधाका लोप, उदरमें पीडा, जुकाम, हाथ-पैर टूटना, व्याकुलता तथा हाथ-पैरोंमें पक्षाघात और श्वासावरोध होकर मृत्यु हो जाती है । इस लवणका सेवन करनेपर यह मूत्रद्वारा देह से निर्गत हो जाता है ।

लोह आदि धातु मिश्रण—जहा लोह, ताम्र या अन्य धातु मिलानी हो, वहांपर भस्म ही मिलानी चाहिये । कच्ची धातु मिलानेमें आसवोंमें उचित गुण नही आसकते ।

लोहभस्म मिलानेके लिये लोहभस्म और हरडके चूर्णको जलमें मिलाकर ३ दिन खरल करें । फिर आवले और बहेडे का चूर्ण मिला खरल करें । पश्चात् और जल मिलाकर एक सप्ताह तक रहने देवें ताकि लोहभस्म त्रिफलाके जलमें विलीन होजाय । तत्पश्चात् इस जलको क्वाथ आदिमें मिलाकर आसवको सिद्ध करें ।

लोहासवमें लोह परिमाण अत्यधिक मिलानेका शास्त्रविधान है । उसमें लोहेका बुरादा, मण्डूरभस्म या कासीसमेंसे कौनसा विशेष हितकर है, यह प्रश्न विचारणीय है । यद्यपि विलायती कासीस मिलानेपर आसवमें लोह परिमाण अधिक आता है, तथा उनमेंसे लोहका शोषण कितना होता है, यह अभी निश्चित नहीं हुआ ।

कस्तूरी केशर आदि मिश्रण—आसव- अरिष्ट तैयार होजानेपर उनको बोतलोंमें भर लेवें । फिर कस्तूरी, केशर, कपूर आदि सुगन्धवाली औषधियोंको आसव या मद्यार्क (Alcohol) मे घोल, बोतलोंमें यथाविभाग थोडी-थोडी बूंद डाले, फिर मजबूत डाट लगा दें ।

आसव तैयार करनेमें तिक्त आदि रसका परिवर्तन हो जाता है । कडवापन, चरपरापन, मधुरता और कषायत्व बहुत कम हो जाते है । अम्लरस और लवण रस, दोनो विरोधी हैं । अम्लरस होनेपर आसवमें अम्लता आजाती है । एव लवण रससे भी आसव क्रिया उचित रूपमें नही होती ।

प्राय आसव-अरिष्ट भोजनके पश्चात् दिये जाते हैं, किन्तु रोग और रोगीकी परिस्थिति अनुसार समयमें अन्तर किया जाता है, आसव-अरिष्टके लिये क्वाथ करनेकी औषधियोंको रात्रिको जलमें भिगोकर सुबह उबालें । आसव-अरिष्टमें गुड मिलाना हो, तो १ से ३ वर्षका पुराना लेना चाहिये ।

सामान्य रीतिसे आसव-अरिष्ट एक समयमें १। से २॥ तोले तक समानभाग जल मिलाकर सेवन करना चाहिये । जलके साथ लेनेसे आसव नाडियोंमें शोषित होकर शरीरपर तत्काल असर पहुचाता है; और बिना जल मिलाये लेनेसे गलेमें खरसरी और आमाशयमें दाह हो जाता है ।

आसव-अरिष्ट साधारणतः दीपन, पाचक, मलशोधक और पौष्टिक हैं । आसव-अरिष्टके सेवनसे शीघ्र गुण प्रतीत होता है । अनेक प्रकारके आसव-अरिष्ट पुराने रोगोंमें,

बहुत हितकर हैं, और कोई-कोई तीव्र प्रकोपके समय भी लाभदायक हैं। आसव-अरिष्ट जितने पुराने होते ह; उतने ही विशेष गणयुक्त और दोष रहित बनते हैं। अगर आसव-अरिष्ट कच्चे रह जावेंगे, तो थोड़े समयमें ही दुर्गन्धयुक्त होकर खराब हो जायेंगे। इसलिये ऊपर लिखी विधिसे सम्हालपूर्वक बनाना चाहिये। आसव-अरिष्ट तैयार होनेपर भी उग्रता रहती है, वह धीरे धीरे शांत होती है। इसलिये ३-४ मासतक तो नवीन आसव-अरिष्टका सेवन नहीं करना चाहिये।

नये आसव-अरिष्ट या शराब विशषतः गुरु और वातुल होते हैं और जीर्ण होनेपर (कमसे कम ४ मासके पश्चात्) तेजीका शमन होकर स्त्रोतशोधक, लघु, दीपन और रुचिकर हो जाते हैं। यदि आसव-अरिष्टोंको सम्हालपूर्वक बोतलोंमें बन्द रखा जाय, तो जितने पुराने होते हैं, उतने ही विशेष गुणकारी होते हैं।

सूचना—(१) आसव-अरिष्ट वर्षाऋतुमें नहीं बनाने चाहिये। थोड़ीसी असावधानी होजाने पर दूषित हो जाते हैं; एवं शीतल वायुवाले स्थानमें भी आसव-पात्रको नहीं रखना चाहिये।

(२) जल अत्यन्त स्वच्छ मिलावें। जलको गरम कर फिर छानकर मिलावें। या वाष्प-जल मिलावें। दूषित जल होनेपर आसव क्रिया सम्यक् नही हो सकती। जिस जलमें खारापन हो, ऐसे जलको उपयोगमें न लेवें।

(३) आसव-अरिष्टकी ओषधियोंका मोटा चूर्ण लेवे। सूक्ष्म चूर्ण मिल गया हो, तो उसे निकाल डालें। कारण, गाढ़ापन आसव प्रक्रियामें अति बाधक होता है। क्वाथ करनेके लिये पहले दिन शामको ही जौकुट चूर्णको जलमें भिगो देवें। फिर दूसरे रोज क्वाथ करें।

(४) क्वाथ मन्दाग्नि पर करना चाहिये, और तैयार होनेपर गरमागरमको ही छान लेना चाहिये। शेष रही हुई ओषधिको अच्छी तरह दबाकर जल निकाल लेना चाहिये।

(५) आसव-अरिष्ट बनानेके लिये पात्र साफ लेना चाहिये। पहले जटामांसी, चन्दन, अगर, गूगल, कपूर, कालीमिर्च, शक्कर आदिकी धूप देकर कीटाणु और दुर्गन्धको दूर करें, फिर आसव-अरिष्टका द्रव भरें।

(६) मधुर द्रव्य क्वाथ शीतल होनेपर मिलावें। अच्छी तरह मिलजानेपर शेष चूर्णादि मिलावे; फिर डण्डेसे चलाकर अच्छी तरह मिश्रण कर दें।

(७) धायके फूल ताजे नये लेने चाहियें। मुनक्का भी नयी लें, और जलसे अच्छी तरह धोकर उपयोगमें लेना चाहिये।

(८) गुड़ और शहद पुराना हितकर है। परन्तु गुड़ दुर्गन्धयुक्त, काला, खट्टा या खारा नहीं लेना चाहिये। एवं शहद भी खट्टा, काला या दुर्गन्धयुक्त न होना चाहिये।

(९) गुड़ आदि मधुर द्रव्यमें अम्लगुणका संयोग हुआ हो; किसी प्रकारकी दुर्गन्ध हो या खमीर आजानेसे तिजाव जैसा असर उत्पन्न हुआ हो, तो आसव तैयार होनेके पश्चात्

वे अधिक काल तक नहीं टिक सकेंगे ।

(१०) अनेक वार गुड और शहद खट्टे और दुर्गन्धयुक्त हो जाते हैं, एवं सड़ी गली द्राक्ष या फलोंका स्वरस निकालनेके पश्चात् कुछ समयतक पड़ा रहनेपर वह भी दूषित हो जाता है । ऐसे सदोष पदार्थको आसव-अरिष्ट बनानेके लिये उपयोगमें नहीं लेना चाहिये ।

(११) आसव प्रक्रिया समाप्त होनेपर अम्ल द्रव्यकी क्रिया होने लगती है । जब तक आसव क्रिया विद्यमान होगी तब तक अम्लक्रिया निष्क्रिय रहती है । फिर अम्लक्रिया द्वारा आसवका सिरकामें रूपांतर हो जाता है ।

(१२) आसव-अरिष्ट तैयार होनेपर पहले मोटे कपडेसे छान लेना चाहिये । फिर दूसरे अमृतबानमें बन्दकर १०-१५ दिन रहने दें । फिर ऊपर-ऊपरसे साफ प्रवाही नितरा हुआ हो, उसे सम्हाल-पूर्वक बोतलोंमें भरकर मजबूत बंद करें । गाढा द्रव नीचे पेंदेमें हो, उसे निकाल डालें ।

(१३) आसव-अरिष्ट बोतलमें मुहतक लबालब नहीं भरना चाहिये मुहतक भर देनेसे आसव-अरिष्टमें जोश आकर बाहर निकल जाने या बोतलके फट जानेका भय रहता है । अतः कुछ स्थान खाली छोड देना चाहिये ।

(१४) आसव बोतलमें भरनेके समय यदि उसमें जलकी कुछ बूंदें रह गई होंगी, तो आसव दूषित होजायगा ।

(१५) आसवको बोतलमें भरनेके समय तलस्थ गाढे भागको भीतर नहीं जाने देना चाहिये ।

(१६) जो मद्य या आसव-अरिष्ट आदि बहुत गाढे, पचनकालमें दाह उत्पन्न करने-वाले, दुर्गन्धयुक्त, बिगडा हुआ, बेस्वादु, कृमियुक्त, गुरुपाकी, मनको अप्रिय, नया बना हुआ, तीक्ष्ण, उष्ण (स्पर्श करनेमें गरम), मैले या दूषित पात्रमें रखा हुआ, ओषधियोंकी बहुत कम मात्रा मिलाकर तैयार किया हुआ, बिगड जानेपर पुनः पकाया हुआ या किसी खुले मुखपात्रमें रहा हुआ अति पतला या अति भारी और पात्रके तल भागमें रहा हुआ किंचित अवशेष भाग, इन सबका त्याग कर देना चाहिये ।

(१७) उष्ण उपचारके साथ, क्षुधा लगनेपर और विरेचन लेनेपर मद्य या आसव-अरिष्टका सेवन नहीं करना चाहिये ।

अनेक ओषधियोंका क्वाथ नित्यप्रति बनानेमें श्रम पडता है, और समय भी जाता है । इनके अतिरिक्त क्वाथमें बेस्वादुपन रहता है, जिससे सब कोई नहीं पी सकते, यदि उसी ओषधिका अर्क निकाल लिया जाय, तो नाजुक प्रकृतिवाले रोगी भी सहज ले सकते हैं और लाभपूर्ण रूपसे होता है ।

अनेक कठोर ओषधियोंका केवल क्वाथ ही लाभदायक रहता है, कारण, घनत्व अर्करूप होकर नहीं चढता । किन्तु अनेक उडनशील तैली ओषधियों और मृदु ओषधियोंके क्वाथकी

अपेक्षा अर्क विशेष लाभदायक रहता है। कारण, तैल द्रव्योंमेसे तेलका विशेष अंश क्वाथ करनेसे उड़ जाता है। अतःक्वाथ अथवा अर्क तैयार करनेके पहले ओषधिके स्वरूप-पर लक्ष्य देना चाहिये।

अर्क ६ मासतक प्रायः गुड़युक्त रहते है। नलिका यन्त्रद्वारा निकाले हुए अर्कमें जलकी एक बूंद गिर जायगी; अथवा गीली शीशियोंमें अर्क भरनेमे आवेंगे, तो थोड़े समयमें ही ऊपर फंफूदी आकर वह बिगड जायगा। रेक्टीफाइड स्पिरिटसे बने हुए अर्क ५-७ वर्षतक गुणयुक्त रहते हैं। रेक्टीफाइड स्पिरिटसे बने हुए अर्कोको मजबूत डाटवाली शीशीमें बन्द रखना चाहिये, अन्यथा उड़कर कम होजाता है।

(१) दशमूलारिष्ट।

विधि--दशमूल सब मिलाकर २०० तोले, चित्रक छाल १०० तोले, पुष्कर मूल १०० तोले, लोद ८० तोले, गिलोय८० तोले, आंवला ६४ तोले, धमासा ४८ तोले, खैरकी छाल, विजयसारकी छाल, हरड़की छाल,सब ३२-३२ तोले; कूठ,मजीठ,देवदारु, बायविड़ग, मुलहठी, भारंगी, कवीठ, बहेड़ा, सांठीकी जड़, चव्य, जटामांसी, गऊंला, अनन्तमूल, स्याह जीरा, निसोत, रेणुक बीज, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सुवा, पद्म-काष्ठ, नागकेशर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, काकड़ासीगी प्रत्येक ८-८ तोले; विदारीकन्द असगन्ध, मुलहठी और बाराहीकन्द १६-१६ तोले लें। सबको कूटकर आठगुने जलमें क्वाथ करें। चौथे भागका जल बाकी रहे तब उतार लें। पश्चात् २५६ तोले मुनक्काको १०२४ तोले जलमें उबालें। पौना जल शेष रहनेपर उतार लेवे। फिर दोनों क्वाथोंको मल-छानकर शहद १२८ तोले, गुड़ १६० तोले, धायके फूल १२० तोले, शीतलमिर्च नेत्रबाला, सफेदचन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पीपल, नागकेशर प्रत्येक ८-८ तोले लेकर जौकुट चूर्ण करें। यह चूर्ण और कस्तूरी ३ माशे मिला मुखमुद्रा कर १॥ मास रख दे। परिपक्व होनेपर छान लें। फिर निर्मलीके थोड़े बीज मिलाकर अरिष्टको स्वच्छ बना लेवें। (भै० र०)

सूचना--कस्तूरी पहले मिलानेकी अपेक्षा आसव तैयार होनेपर मिलानेमें सुगन्ध बनी रहती है, और लाभ भी अधिक पहुंचता है।

मात्रा--१। से २॥ तोलेतक दिनमें २ बार भोजनके वाद समान जलके साथ दें।

उपयोग--दशमूलारिष्टके सेवनसे संग्रहणी, अरुचि, श्वास, कास, गुल्म, भगन्दर, वातरोग, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षय (Atrophy) आदि दोष दूर होते हैं। दुर्वलोको पुष्ट वनाता है। स्त्रियोंके गर्भाशयकी शुद्धि करता है। वन्ध्या स्त्रीको सन्तान देता है। एवं तेज, वीर्य और बलको बढ़ाता है। यह ओषधि विशेषतः वातविकार, मूत्ररोग और उदर-रोगकी नाशक है, और उदरके अवयवोके लिय वल्य है।

यह ओषधि प्रसूता स्त्रीके लिये अत्यन्त हितकर है । पहले १० दिनमें प्रसूताको देते रहनेसे मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातविकृति आदि रोगोंके उत्पन्न होनेका भय दूर होता है, और प्रकृति स्वस्थ रहती है । इस अरिष्टमें थोड़ा स्तम्भक गुण होनेसे प्रसूताके अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी आदि विकारोंमें भी उपकारक है ।

गर्भाशयकी शिथिलता या अन्य रोग विकृतिके कारण बार-बार गर्भपात या गर्भस्राव हो जाना, या गर्भ-धारण ही न होना, यदि सन्तान हुई तो भी रोगी कृशहोना, ऐसे विकारोंमें दशमूलारिष्ट उत्तम औषध है । जिन स्त्रियोंको गर्भाशयकी अशक्तिके हेतुसे गर्भ धारण नहीं होता, उनके गर्भाशयको पुष्ट बनाकर सन्तान प्राप्ति कराता है, एवं पुरुषोंके लिये भी शुक्र शुद्धिकर और वृद्धिकर है ।

जीर्ण संग्रहणी रोगमें मन्दाग्नि होकर शरीर कृश होजाता है । ऐसे समय भोजन कर लेनेपर दशमूलारिष्ट देना अति लाभदायक है ।

सूतिका ज्वरकी तीव्रावस्थामें प्रतापलंकेश्वर और दशमूलारिष्ट उत्तम कार्य करनेवाली ओषधियां हैं । प्रसूतावस्थामें पवित्रता और सावधानता न रखनेपर सूतिका ज्वरकी उत्पत्ति होती है । यह ज्वर अति भयंकर है इसमें एक प्रकारके कीटाणुका अनुबंध होता है । प्रसवके १-२ दिनमें ही यह ज्वर उत्पन्न होजाता है। प्रसव क्लेश,फिर होनेवाला रक्तस्राव और क्लेदस्रावके हेतुसे जीवनीय शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है । इस हेतुसे कीटाणुओंको अपना प्रभाव पहुंचानेका समय मिलजाता है । इस ज्वरमें शारीरिक उत्ताप १०३ से १०५ डिग्री तक बढ़ जाता है । भयंकर तृषा,अत्यन्त व्याकुलता, भयंकर शिरदर्द, योनिस्रावमें दो-तीन दिन बाद दुर्गन्ध आना, योग्य उपचार न होनेपर सान्निपातिक लक्षणोंकी उत्पत्ति, बेसुधी, प्रलाप तथा किसी-किसी रुग्णाको धनुर्वात, दांत भिंचना और हनुग्रह आदि लक्षण होते हैं।इस ज्वरपर दशमूलारिष्ट उत्तम उपयोगी है । इससे दोषप्रशमनीक शक्ति या रोगप्रतिकार शक्तिकी वृद्धि होती है । इस हेतुसे गर्भाशयमेंसे स्राव अधिक या कभी अत्यधिक होता है।रक्तका दबाव गर्भाशयकी ओर अधिक होनेसे रक्त और क्लेदका स्राव ज्यादा होता है । परिणाममें कीटाणु और विषका देहमें प्रवेश होनेपर भी नहीं टिक सकते, एवं गर्भाशयका आकुंचन और नियमन होता है । एवं मक्कलशूल भी शमन होजाता है ।

दशमूलारिष्टमें रहे हुए अनेक जीवनीय द्रव्योंके हेतुसे प्रत्यनीक शक्ति प्रबल होती है । इस हेतुसे प्रसव होनेपर तुरन्त इस ओषधिका सेवन प्रारम्भ कराया जाय, तो रोग प्रतिरोधक शक्तिकी उत्पत्ति हो जाती है । जिससे सूतिकाज्वरकी संप्राप्ति ही नहीं होती । इस उद्देश्यको लेकर अपने देशमें प्रसव होनेपर दशमूल क्वाथ या अन्य क्वाथ देनेकी प्राचीन परम्परा है । यदि सूतिका ज्वर होनेपर भी तुरन्त इस अरिष्ट या क्वाथका उपयोग किया जाय, तो भी जल्दी लाभ पहुंच जाता है ।

प्रसव होना, यह नैसर्गिक कार्य है । उसमें किसीकी आवश्यकता न रहे, यह स्थिति

उत्तम मानी जायगी । जंगलोंमें रहनेवाले पशुओंके लिये प्रसवका प्रश्न ही नहीं आता। बिना कष्ट प्रसव होता रहता है । इस तरह नैसर्गिक नियमानुकूल रहनेवाले मानवों (ग्रामवासियों) के लिये भी ऐसा ही प्रतीत होता है । प्रसव होनेपर अनेक शरीर और बच्चेको नदीमें बहते हुए शीतल जलसे धो अपनी गोदमें सुलाकर फिरनेवाली स्त्रियां इस ब्रिटिश युगमें भी प्रतीत होती हैं । इनको प्रसूति ज्वर और तदानुषंगिक विकार नहीं होते । कारण, इसकी प्रतिकार शक्ति बलवत्तर है । ऐसे स्थानमें कीटाणुओंका प्रवेश नही हो सकता, और प्रवेश हुआ, तो भी वे जीवित नही रह सकते । कीटाणुओंकी वृद्धिके लिये उनका शरीर अनुकूल नहो है । नगर निवासियोंमें प्रतिकार शक्ति निर्बल रहती है; अतः इनके लिये दशमूलारिष्ट सूतिका रोगको उत्पत्तिमें प्रतिबन्धक रूपसे उपयोगी है ।

सूतिकावस्थामें या प्रसवके पश्चात् उत्पन्न होनेवाले संग्रहणी या अतिसारमें दशमूलारिष्ट अत्यन्त उपयोगी है । अन्य समयमें सूतिका ज्वरके निमित्त कारण (पुराने) कीटाणु मलमें प्रतीत होनेपर उनसे उत्पन्न संग्रहणीमें भी दशमूलारिष्ट उत्तम उपयोगी ओषधि है ।

यह ओषधि वातशामक होनेसे मक्कलशूलको तो शमन करती ही है । इनके अतिरिक्त कुक्षिशूल, कक्षाशूल, वातज परिणामशूल, तीव्र शिरःशूल, कोष्ठशूल आदि पर भी अच्छी उपयोगी है । इन रोगोंमें मात्रा कम देनी चाहिये ।

वातज श्वासरोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है । श्वासके साथ शुष्क कास होनेपर वह भी शांत हो जाती है । कास और श्वास, दोनोंमे प्राण और उदान वायुकी प्रदुष्टि होती है । वातज कास और श्वासमें शुष्क कास बहुत आती है । फिर ऐसे ही शुष्क कासका वेग आता है, जिसमें कफ अधिक नहीं गिरता । शुष्क वेगवती कास और हांफाके हेतुसे रोगी व्याकुल होजाता है । कितनेही रोगी बेहोश होजाते हैं; याकुछ अंशमें मूर्च्छा आजाती है और नाड़ीका वेग प्रबल होजाता है । इस अवस्थामें दशमूलारिष्ट जलमें मिलाकर थोड़ा-थोड़ा २-२ घण्टेपर देना चाहिये । सान्निपातिक ज्वरमे भी ऐसी अवस्था होनेपर यह दिया जाता है ।

जब भगन्दर बार-बार शस्त्र-चिकित्सा करानेपर भी नहीं भरता; बार-बार पूय भरते हैं, फूटते हैं, और अन्य मुख उत्पन्न होते हैं, ऐसे लक्षण युक्तको शतपोनक कहते हैं । उस स्थानमें व्रण भरनेकी क्रिया करनेवाली शक्ति क्षीण होजाती है । इस तरह कितनेही जीर्ण नाड़ीव्रणोंमें भी ऐसा ही होता है । बार-बार शस्त्र-क्रिया करानी पड़ती है । फिर भी व्रण नहीं भरता, कितनेही रोगियोंका नाड़ीव्रण सर्वदा बहता रहता है । यह स्थिति मधुमेह, जीर्ण सुजाक, उपदंश और क्षय रोगमें होती है; या अन्य ही अज्ञात कारणोंसे ऐसा व्रण होता है । रक्तादि धातुओंकी रोग-निरोधक शक्ति कम होनेके अन्य भी अनेक हेतु हैं । इन प्रकारोंपर दशमूलारिष्ट अत्युत्तम ओषधि है ।

आयुर्वेदने अनेक विकारोंकी विविध परिस्थितियोंका अन्तर्भाव वातव्याधिमें किया है। वातवाहिनियों और स्नायुओंमें प्रेरणा, प्रस्पन्दन और उद्वहन कार्य, रक्तवाहिनियों और रसवाहिनियोंमें पूर्त्ति और उद्वहन आदि कार्य तथा सचेतन परमाणु, घटक (कोषाणु) और मानस क्षेत्रमें विवेक कार्य, इन सबकी दुष्टि वातरोगमें समाविष्ट की है। वातरोगमें वातस्थान दुष्ट होनेसे अनेक विकार उत्पन्न होते हैं, एवं भय, शोक ध्यान आदि मानस विकृतिसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका भी वातरोगमें समावेश किया गया है। अकस्मात् उत्पन्न मानस आघातज विकारसृष्टिको वातरोगके भीतर स्थान दिया है। इन सब वातव्याधियोंमें दशमूलारिष्ट उत्तम कार्यकर है। इससे वातका शमन होता है। वातस्थान जीवनतत्त्व मिलनेपर दृढ़ होते हैं। एवं इस अरिष्टमें वातशामक गुण होनेसे संकोच, भेद, स्तम्भ, कलायखञ्ज, खल्ली, विश्वाची, गृध्रसी आदि वातरोगों पर अति लाभप्रद माना गया है।

अस्थि और वायुका आश्रय-आश्रयी भाव है। इस हेतुसे अस्थिक्षयके विकारमें दशमूलारिष्ट उत्तम औषधि मानी जाती है। विशेषतः प्रसवके पश्चात् यह विकार हुआ हो, तो इसका अवश्य उपयोग करना चाहिये। अस्थिमार्दव होकर कमरमें दर्द होना, चलनेमें दोनों पैरोंपर न्यून भार देकर चलना, पैर कठिनतासे उठाकर चलना, अस्थिसंधिपर गांठ उत्पन्न होने सदृश भासना, मंद-मंद ज्वर रहना, आदि लक्षण होनेपर दशमूलारिष्ट अति प्रशस्त औषधि है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—जिस प्रसूताके मुंहमें छाले, दाह, गरम-गरम जलसदृश पतले दस्त, प्यास आदि लक्षण हों, ऐसी पित्तप्रधान विकृतिमें दशमूलारिष्ट न दें।

(२) लोध्रासव।

विधि—पठानी लोद, कचूर, पोहकरमूल, छोटी इलायची, मूर्वा, वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अजवायन, चव्य, प्रियंगू, चिकनी सुपारी, इन्द्रवारुणीका मूल, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रकमूल, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, कुड़ेकी छाल, नख, तेजपात, कालीमिर्च और नागरमोथा, इन ३० औषधियोंको १-१ तोला मिला जौकुट चूर्ण कर १०२४ तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर मलकर छान लेवें। शीतल होनेपर १२८ तोले शहद मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्राकर १५ दिन रख दें। पक जानेपर छानकर बोतलोंमें भर लेवें। (च० सं०)

मात्रा—१। तोलासे २॥ तोलेतक समान जलके साथ देवें।

उपयोग—यह आसव पित्तज प्रमेह (क्षारमेह, कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, माञ्जिष्ठमेह) और कफजमेह (उदकमेह, सान्द्रमेह, पिष्टमेह, शीतमेह आदि) को नष्ट करता है। एवं पाण्डु, अर्श, अरुचि, ग्रहणी, किलास आदि विविध क्षुद्रकुष्ठोंको भी दूर करता है। लोध्रासव यकृत्बल्य होनेसे यकृत्-पित्तके विकारमें उत्पन्न व्याधियोंका नाशक है। यह आसव रक्तप्रदर, रक्तपित्त, बालकोंके मसूरिका और रोमान्तिका

होजा के पश्चात् रक्तमें रहे हुए शष विष और मूत्रावरोध आदि रोगोंमें उपकारक है। रक्तप्रदरपर लोध्रासवके साथ अरविंदासव और सारस्वतारिष्ट मिलाकर देनेपर सत्वर लाभ पहुंचता है।

(३) कुमार्यासव।

विधि—घीकुंवारका रस १०२४ तोले और गुड़ ४०० तोले लेवें। फिर हरड़ अथवा भांग १०० तोलेको १०२४ तोले जलमें मिला, उबालकर क्वाथ करें। पानी चौथा हिस्सा रहनेपर उतारकर छान लें। फिर घीकुंवारके रस, गुड और क्वाथ, तीनोंको मिलाकर अमृतबानमें भरें। उसमें शहद २५६ तोले, धायके फूल ६४ तोले; जायफल, लौंग, शीतलमिर्च, जटामांसी, चव्य, चित्रक, जावित्री, काकड़ासींगी, बहेड़ेकी छाल, पुष्करमूल, ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण तथा लोहभस्म और ताम्रभस्म २-२ तोले डालकर २० दिन बन्द करके रक्खें। पक्व होनेपर छानकर बोतलोंमें भर लें। (यो० र०)

सूचना—भस्म मिलानेकी विधि प्रकरणके प्रारम्भमें लिखी है। उस तरह मिलाना विशेष लाभदायक है। घीकुंवारका रस निकालनेके लिये छोटे-छोटे टुकड़ेकर कड़ाहीमें डाल गरम करनेसे सरलतापूर्वक रस निकलता है।

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार भोजनके बाद जलसे।

उपयोग—इस आसवसे स्त्रियोंके ऋतुदोष, गुल्म, रक्तगुल्म, प्लीहा, खांसी, श्वास, क्षय, उदररोग, अर्श, वातरोग, अपस्मार, मन्दाग्नि, उदरशूल आदि मिटते हैं, और पचनशक्ति प्रबल बनती है।

मूल संस्कृत ग्रंथोंमें विजया शब्द है। विजया भांग और हरड़ दोनोंके नाम हैं। हमने दोनों प्रकारके आसव बनाकर उपयोगमें लिये हैं।

कितनेही चिकित्सक छोटे बालकोंको देनेके लिये ताम्रलोहरहित कुमार्यासव बनवाते हैं। इस तरह भांगमिश्रित, हरड़मिश्रित और ताम्रलोहरहित ऐसे तीन प्रकारके आसव एक ही पाठमेंसे बनते हैं।

घीकुंवारके रसमें कड़वापन है, यह आसव-क्रिया द्वारा रूपान्तरित होजाती है। घीकुंवारका रस स्पर्शमें शीतल और वीर्यमें भी शीतल है। परन्तु कुमार्यासवमें ये गुण नहीं हैं। आसवक्रियाके योगसे परिवर्तन होजाता है।

हरड़युक्त कुमार्यासव—कुमार्यासव दीपन-पाचन, किंचित् स्रंसन गुण-युक्त (दस्तावर), मूत्रल, कुछ बल्य, शोथहर, रक्तप्रसादक और दाहनाशक है। इसका कार्य विशेषतः पचनेन्द्रियपर होता है। आमाशय, ग्रहणी, अग्न्याशय, यकृत्, लघु अन्त्र, बृहदन्त्र, गुदनलिका और गुदत्रिवली सबपर प्रभाव पड़ता है। इसके योगसे इन सब अवयव समूहोंमेंसे पित्तविरेचन होता है। इसका परिणाम गर्भाशय, बीजाशय, बीजवाहिनियां आदिपर भी होता है। इन स्थानोंमें किंचित् संरम्भ होकर आर्त्तव प्रवृत्ति

होती है। कुमार्यासव अधिक दिनों तक बड़ी मात्रामें देते रहनेसे बृहदन्त्र, गुदकाण्ड और गुदवलीकी सिराएं रक्तपूर्ण होकर रक्तार्शकी उत्पत्ति होती है, या रक्तस्राव होने लगता है। कुमार्यासवके सेवनसे मलशुद्धि होती है, मलका वर्ण हरा-सा होता है। शौचके समय उदरमें कुछ दर्द होता है, परन्तु सबको नहीं।

कुमार्यासव कभी सतत और अधिक मात्रामें नहीं देना चाहिये। इसका परिणाम मूत्रपिण्ड, गविनिया और मूत्राशयपर भी होता है। कभी-कभी इस मूत्रमार्गमें खलबली मच जाती है। कितनोंही को वृक्क-प्रदाहकी प्राप्ति होती है। अतः कुमार्यासवके इस दोषको लक्ष्यमें रखकर योग्य मात्रामें, योग्य समय पर, योग्य रोग पर, अधिकारी व्यक्तियोंको देना चाहिये। मूत्ररोगी, प्रवाहिका या अन्त्रमें प्रदाहयुक्त रोगीको नहीं देना चाहिये। इन बातोंको सम्हालकर इस आसवका उपयोग किया जाय, तो यह उत्तम औषध है। छोटे बालकोंके लिये यह अमृत है। इस आसवसे पचन क्रिया सुधरती है, अन्त्र सबल बनते हैं, शौचशुद्धि होती है, पाचक पित्तका स्राव अधिक होता है, आहार रस अच्छा बनता है। फिर इसकी शोषण क्रिया उत्तम होती है, रक्त सबल बनता है, शारीरिक बलकी वृद्धि होती है, तथा गुदवलीमें अवस्थित सूक्ष्म कृमि नष्ट होते हैं। इनके अतिरिक्त इसका कार्य श्वासवाहिनियों पर भी होता है, और उसमेंसे कफ पृथक् होने लगता है।

कुमार्यासव छोटे बच्चोंके बार-बार उत्पन्न होनेवाले कास रोगमें अति उपयुक्त औषधि है। इससे श्वासनलिकामें स्राव उत्तम प्रकारसे होकर संचित कफ जल्दी गिरने लगता है। इसका कार्य प्रमाण और उदान, दोनोंपर होकर कास कम होती है। श्वासोंमें कफ और वातदोषकी दुष्टिसे उत्पन्न श्वास भी इसके सेवनसे कम होजाता है। क्षयके विकारमें विषमाशन (भोजनमें नियमका अभाव) कारण होनेपर कुमार्यासव थोड़ी-थोड़ी मात्रामें देनेसे कुछ सहायता मिल जाती है।

अग्निमांद्य और अरुचिमें आमाशयस्थ अम्लपित्तका स्राव अधिक नहीं होता, जिससे बिल्कुल थोड़ा खानेपर भी पचन नहीं होता, मीठी-सी या फीकी-सी डकार आती रहती है। मुँहमें पानी छूटता है, एवं उदरमें भारीपन, भोजनमें रुचि न होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन विकारोंमें कुमार्यासवका सेवन करनेसे आमाशयमें योग्य पित्त-स्राव होने लगता है। इन विकारोंपर भोजनके आध या एक घण्टे पहले आसव लेना चाहिये।

भोजन ग्रहणीमेंसे लघु अन्त्रमें जानेपर यदि ग्रहणी सबल है तो कुछ भी त्रास नहीं होता, अन्यथा उसमें खलबली होकर अन्नकी गतिके साथ शूलोत्पत्ति होती है। यह भोजनके २-३ घण्टे पर होता है। शूल अधिक बलपूर्वक नहीं होता, सामान्य होता है, मुँहमें पानी भर जाता है, तथा वमन होगी, ऐसा भासता है। ऐसे शूल पर कुमार्यासव उत्तम लाभ करता है।

अग्न्याशयमेंसे आग्नेय रसका स्राव उचित न होता हो, तो कुमार्यासवके सेवनसे योग्य स्राव होने लगता है। यह कार्य कालमेह और नीलमेहमें प्रतीत होता है।

कुमार्यासव यकृत्बल्य होनेसे यकृत्वृद्धिमें उपयुक्त ओषधि है। यकृत् निर्बल होने पर यकृत् पित्तका स्राव सम्यक् नहीं होता। उसपर कुमार्यासव देना चाहिये। यकृत्की अशक्तिसे उत्पन्न अतिसारमें कुमार्यासव अमृतके सदृश कार्य करता है। इस विकारमें विशेषतः दस्त श्वेत वर्णके दुर्गन्धयुक्त होते हैं।

पित्ताशय विकृत होकर पित्तकी घनता और तीव्रता बढ़कर उत्पन्न शूल और पित्ताश्मरीसे उत्पन्न पित्तज शूलमें कुमार्यासवका उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं।

यकृद्वृद्धिसे उत्पन्न शुष्क कास इस आसवसे बहुत जल्दी शमन होजाती है। छोटे बालकोंके यकृद्विकारमें यह अत्यन्त उपयुक्त ओषधि है। यकृद्दाल्युदरमें जलसंचय होनेके पहले या जलसंचयका प्रारम्भ होतेही कुमार्यासव दिया जाता है। इसके साथ मूत्रल-क्षार या ताम्रभस्मके समान संघातभेदी ओषधि देनसे सत्वर लाभ पहुंचता है। इनके अतिरिक्त बीच-बीचमें तीव्र विरेचन भी देते रहना चाहिये।

प्लीहावृद्धिमें इसका उत्कृष्ट उपयोग होता है। अतिजीर्ण व्याधि होनेपर इसके साथ ताप्यादि लोह देनेसे अति उत्तम कार्य होता है। प्लीहावृद्धि अधिक होनेपर लोह प्रधान प्लीहान्तक वटी और पारिजातक (रोहितक) का चूर्ण या क्वाथ देना विशेष हितावह है।

जीर्ण कोष्ठबद्धतामे कुमार्यासवका उत्तम उपयोग होता है। इससे अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया बढ़ती है और मलशुद्धि होती है। परन्तु इसका सेवन अधिक कालतक नहीं करना चाहिये अन्यथा अन्त्रमें प्रदाह उत्पन्न होनेकी संभावना है।

कुमार्यासवका उपयोग अर्श रोगपर होता है। इससे अर्श निर्मूल नहीं होते, परन्तु मस्से मुलायम और निर्बल होते हैं। फिर शनैःशनैः इनका बल घटता जाता है। रक्तार्शके विकारमें इसका उपयोग होता है। इससे अन्त्रमें आमविषोत्पत्तिका विनाश होता है। परिणाममें अर्शरोगमें लाभ होजाता है।

सब प्रकारके उदर रोगोंपर इस आसवका उपयोग होता है। इससे अग्निमान्द्य दूर होता है। संचित मलमें से थोड़ा-थोड़ा शनैः शनैः टूट-टूट कर बाहर निकलता रहता है। इस हेतुसे उदर रोगोंपर इसका उत्तम उपयोग होता है। जलोदरमें भी यह उपयोगी है। परन्तु जलोदरमें इसके साथ क्षार-मूत्रल ओषधि और विरेचन ओषधि देनी चाहिये। यह आसव यकृत्के विकारसे उत्पन्न जलोदरमें तो दिया जाता ही है, यह ऊपर कहा है। प्लीहोदरमें भी इस आसवका अच्छा उपयोग होता है। हृदयके विकारसे उत्पन्न जलोदरमे इसका अधिक उपयोग नही होता; परम्परागत कुछ सहायता मिलती है। मूत्रपिण्डकी विकृतिसे उत्पन्न होनेवाले जलोदरमें इसका उपयोग न करना ही अच्छा माना जायगा। वृक्कविकारज जलोदरमें चन्द्रप्रभा वटी, पलाशपुष्पासव, ताप्यादि

लोह आदि औषधियोंका उपयोग करना चाहिये। इस उदररोगमें वातपित्त कफात्मक लक्षण होते हैं। अतः लक्षण अनुरोधसे औषधोपचार करना चाहिये।

विशेषतः अग्निमांद्य रोग अनेक दिनोंतक रह जानेपर आमदोष संचित होने लगता है। विशेषतः आमविषके बृहदन्त्रमें संचय होनेपर वातविकार उपस्थित होती है, इस पर कुमार्यासव लाभदायक है। इस प्रकारके विषसे आमवातकी भी उत्पत्ति हो जाती है। आमवातसे संधियोंमें शोथ, स्नायु जकडजाना, शिरदर्द, कमरमें पीडा आदि लक्षण होनेपर कुमार्यासवका उत्तम प्रयोग होता है।

कक्षाशूल, कुक्षिशूल, पृष्ठशूल आदि जीर्ण व्याधि जीर्ण आमविषमें उत्पन्न हुई हो, तो कुमार्यासवसे उत्तम लाभ होता है। इस तरह आमविषसे उत्पन्न अन्य रोगोंमें भी यह अच्छा उपयोगी है।

जीर्ण-अजीर्ण रोगसे उत्पन्न शूल और गुल्म पर कुमार्यासव प्रयोजित होता है। गुल्मका अर्थ होता है गोला। उदरमें उत्पन्न होनेवाले छोटे-छोटे गुल्मोंकी प्रथमावस्थामें कुमार्यासवसे लाभ पहुंचता है। वातज गुल्ममें केवल अन्त्रमें वातसंचय होता है, अन्य मांस आदिकी वृद्धि नही होती। कुमार्यासवके योगसे इस वातज गुल्मकी सब विकृतियोंके नष्ट होनेमें सहायता मिल जाती है।

स्त्रियोंके बीजाशय विकृतिसे उत्पन्न नष्टार्तवपर यह उत्तम उपयुक्त औषध है। है। इसे कन्यालोहादि वटी या महायोगराज गूगलके साथ देना चाहिये। आयुमें आई हुई लडकी को होनेवाला हारिद्रक पाण्डुमें इसका अच्छा उपयोग होता है। यदि कुमार्यासवके साथ लोहभस्म या मण्डूर भस्मका सेवन कराया जाय, तोउत्तम कार्यहोता है।

(औ० गु० ध० शा० के)

भांगयुक्त कुमार्यासव—भांगयुक्त आसव अन्त्र और गर्भाशयके विकारो पर अच्छा असर पहुँचाता है, अतः विसूचिका (Cholera), पुराना संग्रहणी रोग, अफारा, आमातिसार, अजीर्ण, उदरशूल आदि रोगोंको दूर करनेमें विशेष हितकर है। यह अन्त्रको सुदृढ बनाता है। स्त्रियोंके मासिकधर्ममें अधिक रक्त जानेको और रक्तार्शके रक्तको बन्द करता है। मासिकधर्ममें होनेवाले कष्टको दूर करता है। नष्टार्तव-मासिकधर्म न आता हो, तो गर्भाशयको संकुचित और उत्तेजित करके मासिकधर्म ला देता है। निद्रा लानेमें सहायता पहुंचाता है, और धनुर्वात आदि वातरोगोंके आक्षेपोंको भी दबाता है। भांग मिलानेसे आसव हरडकी अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण, उष्ण, दीपक और पाचक बनता है।

[४] उशीरासव।

विधि—खस, नेत्रवाला, नीलोफर, लालकमल, सफेदकमल, प्रियंगु, गंभारी, पद्मकाष्ठ, लोद, मंजिष्ठा, धमासा, कचूर, पाठा, चिरायता, वडकी छाल, गूलरकी छाल, जामुनकी छाल, कचनारकी छाल मोचरस, पित्तपापडा और परवलके पत्ते, सब ४-४

तोले, मुनक्का ८० तोले और धायके फूल ६४ तोले लेकर जौकुट करें। फिर निवाया जल २०४८ तोले, मिश्री ५ सेर और शहद २।। सेर मिला, अमृतबानमें भर मुखमुद्रा करके एक मासतक रख दें; बादमे छान लें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले भोजनके पश्चात् दिनमें २ बार समान जलके साथ मिलाकर देवें।

उपयोग—यह आसव रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि, रक्तविकार, शोथरोग आदिका नाश करता है। यह उशीरासव, शामक मूत्रल, पित्तशामक, दाहनाशक और प्रसादक है। यह अयोग रक्तपित्तमें विशेषतः मूत्रमार्गसे रक्त जानेपर अति उपयुक्त है। रक्तपित्तमें रक्त निर्बल और उष्ण हो जाता है; पित्तके संयोगसे विदग्ध हो जाता है। पित्तमें विदग्धत्व बढनेपर यह रक्तको विदग्ध कर देता है। फिर रक्तवाहिनियोंकी दीवार पतली हो जाती है, पश्चात् रक्तवाहिनियाँ फूटकर रक्तस्त्राव होने लगता है। क्वचित् रक्तका दबाव बढ़ जानेपर भी रक्त गिरने लग जाता है। यदि रक्त विदग्ध होकर रक्तपित्तकी सम्प्राप्ति हुई हो, तो उशीरासवका अति उत्तम उपयोग होता है।

ग्रीष्म ऋतुमें कितने ही व्यक्तियोंमें रक्तपितकी अधिक प्रवृत्ति होती है। इनको नाकमें से बार-बार रक्त गिरता है। जैसे-जैसे गरमी बढ़ती जाती है; वैसे वैसे नाकमें से रक्त गिरनेका त्रास बढ़ता जाता है; और मूत्रमें दाह भी होता है। ऐसी प्रकृतिवालोंके लिये उशीरासव अति उपयोगी होता है।

अत्यार्त्तव, रक्तातिसार, अर्श, इन व्याधियोंमें अधिक रक्तस्राव होनेपर इस आसवसे उत्तम लाभ पहुँचता है। विशेषतः पित्तप्रकृति वालोंको उष्णवीर्य पदार्थ खाने में आने, जागरण होने, सूर्यके तापमें घूमने, अथवा अग्निके पास बैठनेपर रक्तस्रावकी प्रवृत्ति अधिक बढ जाती है। इनपर उशीरासव उत्तम कार्यकारी है।

कितनेही लोगोंको किसी भी स्थानमें छोटासा जखम होनेपर या सुई लग जाने पर खूब रक्तस्राव हो जाता है। पुरुषोंकी अपेक्षा ऐसी प्रकृतिवाली स्त्रियां विशेष देखनेमे आती हैं उनके लिये यह उशीरासव अधिक हितकर है।

रक्तस्राव अधिक होनेसे उत्पन्न पाण्डुरोगमें धड़कन, धमनियोंमे स्फुरण आदि लक्षण होनेपर उशीरासव सुवर्णमाक्षिक भस्मके साथ देना चाहिये।

सुजाक या उपदंश विकार शमन हो जानेपर रक्तमें कुछ विष अवशिष्ट रहजाता है। उसका निवारण उशीरासवके सेवनसे हो जाता है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातमें मूत्र-की उत्पत्ति बढ़ाना और मूत्रमें होनेवाले दाहको दूर करना, ये दोनों कार्य इस उशीरासव से सिद्ध होते हैं। इस तरह अश्मरी या मूत्रशर्कराके चुभनेपर उसे शमन करनेका महत्व का कार्य भी इस आसवसे होता है। कालमेह, नीलमेह, मांजिष्ठमेह आदि पित्तज प्रमेहोंपर यह विशेष उपकारक है। एवं यह शोथकी तीव्रावस्थामें रक्तसंचयकी प्रवृत्ति

नष्टकर रक्तप्रसादनका महत्त्वका कार्य करता है । (औ० गु० ध० शा०)

(५) खदिरारिष्ट ।

विधि—काले खैरकी अंतरछाल या लकड़ीका बुरादा २०० तोले, देवदारु २०० तोले, बावची ४८ तोले, दारुहल्दी ८० तोले और त्रिफला ८० तोले लेकर सबको जौकुट करें । फिर जल ८१९२ तोले मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करें । १०२४ तोले जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें । फिर शीतल होनेपर मिश्री ५ सेर, शहद १० सेर, धायके फूल ८० तोले, पीपल १६ तोले, जायफल, लौंग, शीतलमिर्च, नागकेशर, इलायची, दालचीनी और तेजपात प्रत्येक ४-४ तोले डालें । १ मासतक बन्द रखें, फिर छान लें । (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ या ३ बार जलके साथ दें ।

उपयोग—इस अरिष्टके सेवनसे सब प्रकारके कुष्ठ, पाण्डु, हृदयरोग, अर्बुदरोग, कृमि, श्वास, कास, रक्तविकार, प्लीहोदर, गुल्म आदि मिटते हैं । यह रक्तशोधक किंचित् सारक और पाचक है ।

इस खदिरारिष्टका विशेष परिणाम रक्त, त्वचा और अन्त्र पर होता है । अन्त्रस्थ सेन्द्रिय विष इस अरिष्टके सेवनसे निर्विष होता है । छोटे रेंगनेवाले सूक्ष्म कृमि अन्त्र में होनेपर उनपर भी इस अरिष्टका परिणाम होता है । ये कृमि इस आसवके योगसे मूर्च्छित हो जाते हैं । उनके अण्डे नष्ट होते हैं । इस तरह अन्त्र स्वच्छ और कृमिविकारसे अलिप्त होजाता है । अन्त्रव्रण है, तो उसमें अवस्थित कीटाणु खदिरारिष्टसे नष्ट होते हैं । एवं वह भी सरलतासे भर जाता है ।

इस तरह चर्मरोगके कारणभूत होनेवाले कीटाणुओंको भी यह आसव नष्ट कर देता है । इसी हेतुसे इस अरिष्टको कुष्ठनाशक कहा है । क्षुद्रकुष्ठ अर्थात् पामा, दद्रु, विचर्चिका आदि त्वचा रोगोंमें अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे देखनेपर विविध कृमि प्रतीत होते हैं । ये कृमि विशिष्ट स्थूल धातु या उसके अंग प्रत्यंग विभाग बढ सकते हैं । उसमें परिवर्तन करानेको चरक विमानके ५ वें अध्यायमें 'ततोविघात प्रकृते"—इस वचनसे प्रकृतिविघात कहा है । इन कृमियोंकी वृद्धिमें धातुओंके भीतर विशिष्ट द्रव्य परिस्थिति कारणभूत होती है । इस परिस्थितिका परिवर्तन करा उससे प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न करा देनेपर धातुओंमें कीटाणुओंका प्रतिकार करनेवाला प्रतिविष तैयार होता है । फिर वहांपर कृमियोंका जीवित रहना अशक्य होजाता है । क्योंकि उनका जीवन व्यापार ही नहीं चल सकता । यह कार्य (प्रतिविषोत्पत्ति) खदिरारिष्टके योगसे सहज होजाता है । बावची और देवदारुमेंसे कार्यकारी द्रव्य त्वचा द्वारा देहसे बाहर निकलता रहता है, एवं खदिरभी रक्तमें मिश्रित होकर रक्तकृमियोंको निरुपयोगी बनाता है । इस तरह यह अरिष्ट कुष्ठकृमि और कृमिज कुष्ठको नाश करता है ।

महाकुष्ठ (Leprosy) में भी खदिरारिष्ट उत्कृष्ट कार्य करता है ।

महाकुष्ठकी उत्पत्ति भी कीटाणुओंसे होती है । इन कीटाणुओंको और राजयक्ष्माके कीटाणुओंकी आकृतिमें सादृश्यता है । इन कुष्ठोंमें रक्त, लसीका, त्वचा, मांस आदि दूष्य दूषित होजाते हैं । ये कीटाणु लसीकामें बढ़ते है । फिर सर्वत्र फैल जाते हैं; और अन्य दूष्योंको दुष्ट कर देते हैं । खदिरारिष्टका परिणाम लसीकापर विशेष होता है । इससे कुष्ठोत्पादक जीवाणु बढ़ नहीं सकते । फिर शनैः शनैः आगेकी धातुओंकी दुष्टि भी निवृत्त हो जाती है ।

अन्त्रमें आमदोष संचित होकर उसका परिणाम रक्त और हृदयपर होता है । परिणाममें हृत्स्पंदकी वृद्धि होकर बार-बार घबराहट होजाती है, और प्रस्वेद आ जाता है । इन लक्षणोंपर खदिरारिष्ट उत्तम उपयोगी होता है ।

पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म या अन्त्रमें गांठ, कास, श्वास, प्लीहोदर, इन रोगोंपर खदिरारिष्ट उपयोगी है । इसके योगसे जीर्ण आमविषका शनैः शनैः रूपान्तर होता जाता है; रक्तप्रसादन होता है, लसीका और त्वचा शुद्ध होती है ।

(औ गु० ध० शा०)

[६] कनकासव ।

विधि—धतूरेका पंचांग और वासामूल ३२-३२ तोले; मुलहठी, पीपल, कटेली, नागकेशर, सोंठ, भारंगी, तालीसपत्र प्रत्येकका चूर्ण १६-१६ तोले; धायके फूल १२८ तोले, साफ करके कुचली हुई बीजरहित द्राक्षा १६० तोले, शक्कर ८०० तोले, शहद ४०० तोले और जल ४०९६ तोले लें । सब औषधियोंको चीनीमिट्टीके पात्रमें डाल, मुंह बन्दकर, एक मासतक रख दें । बादमें निकालकर छान लें । (भै० र०)

सूचना—यह आसव कुछ समयमें अम्ल बन जाता है । इस हेतुसे इसे 'कनकासव' सज्ञा दी है, वह अनेक विद्वानोंकी दृष्टिमें अनुचित भासती है । यदि शक्करके स्थानपर दूना गुड़ मिलाकर आसव तैयार किया जाय, तो अम्लता उत्पन्न नही होती ।

मात्रा—आधा से सवा तोलातक दिनमें २ बार जल मिलाकर पिलावें ।

उपयोग—कनकासव सब प्रकारके श्वास, कास, राजयक्ष्मा, क्षतक्षीण, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उरःक्षतका नाश करता है ।

यह आसव उष्ण, कफस्राव करानेवाला, शोथघ्न, किंचित् मादक, वेदनाशामक और बल्य है । इस आसवसे फुफ्फुस और श्वासवाहिनीके प्रदाह दूर होकर निर्दोष बनते हैं, जिससे श्वास, कास, यक्ष्मा आदि रोगोंका शमन होता है और क्षीणता दूर होती है ।

कनकासव कास और श्वासरोगकी उपयुक्त औषधि है । श्वासवाहिनियोंके प्रदाहके हेतुसे कास, श्वास होनेपर इसका अच्छा उपयोग होता है । कनकासवसे श्वासवाहिनियोंकी संकुचित होनेकी प्रवृत्ति नष्ट होती है; कफ पृथक् होकर बाहर निकलने लगता है; तथा श्वासके हेतुसे होनेवाले घबराहट और बेचैनी तत्काल दूर होते हैं । कभी-कभी इस आसवके योगसे कितनेही व्यक्तियोंको वांति हो जाती है; परन्तु उससे हानि नहीं

होती, प्रत्युत लाभ ही होता है। श्वास-वाहिनियोंमें से श्लेष्मस्राव हो जानेमें सहायता मिल जाती है।

शरीरमें उदीरत होनेवाले स्राव कनकासवके योगसे कम हो जाते हैं, अर्थात् स्तन्य (दूध), प्रस्वेद, उदरमें पित्तस्राव, अतिसारमें अम्बुधातुका स्राव आदि कम हो जाते हैं। क्षयकी अन्तिमावस्थामें होनेवाला अत्यधिक प्रस्वेद कनकासव के योगसे कम हो जाता है।

कोष्ठशूल, विशेषत पित्तप्रधान शूलपर इस आसवका अच्छा उपयोग होता है। पित्ताशयमें पित्ताश्मरी बननेपर उत्पन्न शूलके शमनार्थ इसका अच्छा उपयोग होता है। परिणाम शूल और अन्नद्रवशूल, दोनों प्रकारके शूलोंपर इस आसवका वेदनाशामक रूपसे अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रशर्करा या अश्मरीके सूक्ष्म-सूक्ष्म कण गविनीमेंसे मूत्राशयकी ओर जानेके समय शूलोत्पत्ति होती है। इसपरभी कनकासवके शूलघ्न धर्मका अनुभव होता है।

शीतपूर्वक ज्वरमें शीत लगनेपर अंग टूटना, शिरदर्द, कम्प आदि जो त्रास होता है, वह कनकासवके योगसे कम हो जाता है। मात्रा कम देनी चाहिये।

(औ० गु० ध० शा०)

अनेक बार हिक्का किसी भी औषधिके सेवनसे शमन नहीं होती, बार-बार वेग-पूर्वक आती रहती है। उत्तेजक औषध सेवनसे हिक्काका वेग बढजाता है। ऐसे समयपर कनकासवके प्रयोगसे तत्काल लाभ पहुंच जाता है।

यदि श्वास और कासरोगमें कफ अत्यधिक संगृहीत हो गया हो, तो कनकासवके साथ अपामार्ग क्षार मिलाकर देने पर सत्वर लाभ पहुंचता है।

सूचना—कनकासवका उपयोग कम मात्रामें करना चाहिये, अन्यथा विष-प्रकोप होता है। विषलक्षण होनेपर मट्ठा अथवा नीबू या इमलीके शर्बतमें जल मिला-कर पिलाना चाहिये।

(७) अश्वगंधारिष्ट।

विधि—असगन्ध २०० तोले, सफेद मूसली ८० तोले, मजीठ, हरड, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुनकी छाल, नागरमोथा और निसोत, सब ४०-४० तोले और अनन्तमूल सफेद, अनन्तमूल काला, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, वच, चीतेकी छाल, प्रत्येक ३२-३२ तोले ले। सबको कूटकर ८१९२ तोले जलमें पकावें। अष्टमांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। शीतल होनेपर चीनी या मिट्टी के पात्रमें भरकर धायके फूल ६४ तोले, शहद १० सेर, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) ८ तोले, त्रिजात (दालचीनी, तेजपात, इलायची) १६ तोले, नागकेशर ८ तोले और प्रियगु १६ तोले मिला लें। फिर मुंह बन्दकर २ मास रहने दे। बादमें छान लेवें।

(भैं० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले दिनमें २ बार जलके साथ दें ।

उपयोग—यह अरिष्ट दीपक, पाचक, वृष्य और वातनाशक है। २० प्रकारके प्रमेह, ध्वजभंगता, नामर्दी, उन्माद, शोष, बवासीर, मूर्च्छा, मस्तिष्ककी निर्बलता, भ्रम, मृगी, वातव्याधि, हृदयरोग इत्यादिको दूर करके शरीरमें स्फूर्ति, वीर्यकी शुद्धि और वृद्धि करता है ।

यह अरिष्ट हिस्टीरिया, मूर्च्छा और उन्मादके लिये उत्तम ओषधि है । यह कोष्ठस्थ आमविषको नष्ट करता है । अतः आमवातके मन्द वेग होनेपर इसका अच्छा उपयोग होता है । यह अग्निप्रदीपक होनेसे पचन-विकृतिको दूर करता है; वातवाहिनियां और रस, रक्त आदि धातुओंको सबल वनाता है। प्रसूताकी निर्वलताको दूर करनेमें हितावह है । नपुंसकता, जो शारीरिक निर्बलताके हेतुसे आई है, उसे दूरकर उत्साह की वृद्धि कराता है ।

(८) त्रिफलारिष्ट ।

विधि—हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीपल, चित्रकमूल, अजवायन, वायविड़ंग सब १६-१६ तोले लेकर २००० तोले जलमें क्वाथ करें । चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार छानकर लोहभस्म १६ तोले, गुड़ ४०० तोले, शहद ३२ तोले मिलावें । फिर पात्रमें भर मुखमुद्रा कर १ मास बन्द रखनेसे अरिष्ट पक जाता है । (ग० नि०)

मात्रा—१। से २।। तोले तक दिनमें २ बार जलमें मिलाकर भोजनके बाद लें ।

उपयोग—इस अरिष्टमें त्रिफलाके अतिरिक्त लोहभस्मका भी प्राधान्य है । यह हृद्य, दीपक और पाचक है । इस आसवसे रक्तकी सत्वर वृद्धि होती है; एवं हृदय-रोग, घबराहट, फेफड़ेकी कमजोरी, पाण्डु, शोथ, प्रमेह, भगन्दर, अर्श, गुल्म, तिल्ली, संग्रहणी, कास, श्वास आदि रोगोंका नाश होता है ।

सूचना—लोहभस्म मिलानेके लिये प्रकरणके प्रारम्भमें सूचना दी गई है; उस तरह मिलानी चाहिये ।

(९) अर्जुनारिष्ट ।

विधि—अर्जुनकी छाला ४०० तोले, द्राक्षा २०० तोले और महुवेके फूल ८० तोले मिला जौकुट करा ४०९६ तोले जल मिलाकर क्वाथ करें । चतुर्थांश जल शेष रहे, तव उतारकर छान लें । फिर शीतल होनेपर गुड़ ४०० तोले और धायके फूल ८० तोले मिला मुखमुद्रा करके १ मासतक रख देवें; फिर छानकर भर लेवें । (भै० र०)

इस अरिष्टमें हम गुड़के साथ शहद १०० तोले मिलाते हैं । मूलग्रंथमें पार्थाद्यरिष्ट नाम लिखा है

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ वार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह अरिष्ट उत्तम हृद्य है । पित्तप्रधान हृद्‌रोग और फेफडोंकी सूजनसे फूली हुई शिथिल नाडियोंको संकुचित और दृढ बनाकर निर्बलताको दूर करता है, तथा शरीरमें बल लाता है ।

(१०) अमृतारिष्ट ।

विधि—गिलोय ४०० तोले और दशमूल ४०० तोलेको जौकुट करके ८०९६ तोले जलमें क्वाथ करें । चौथा भाग जल शेष रहनेपर उतार नकर छान लें। शीतल होनेपर गुड १२०० तोले मिलावें । जीरा ६४ तोले, पित्तपापडा ८ तोले, और सतौना, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, मोथा, नागकेशर, कुटकी, अतीस, इन्द्रजौ, प्रत्येक ४-४ तोले मिला यथाविधि चीनीमिट्टीके पात्रमें मुखमुद्रा करके १ मासतक रख दें। परिपक्व होनेपर छान लें । हम गुड १५ सेरके स्थानपर ७॥ सेर मिलाते हैं । (भा० भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोलेतक दिनमें २ वार जल मिलाकर देवें ।

उपयोग—अमृतारिष्ट जीर्णज्वर, मुद्दती ज्वर और निर्बलताको दूर करता है । जीर्ण विषमज्वर, शीत ज्वर, पित्तप्रधान ज्वर और अन्य ज्वरोंमें भी हितकर है ।

अमृतारिष्ट सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक आदि विषमज्वरोंमें अति उत्तम कार्य करता है । इसके योगसे रसरक्तगत दोषोंका निर्हरण उत्तम रूपसे होता है । ज्वर तीव्र होनेपर भी यह दिया जाता है । कुछ दिनों तक बन्द रहकर पुन पुन उलटकर आनेवाला परिवर्तित ज्वर इस ओषधिके सेवनसे शमन होजाता है । कितनेही दृढमूल ज्वरोंपर सौम्य सोमल कल्पके साथ इस अमृतारिष्टका उत्तम उपयोग होता है ।

जीर्णज्वरमें प्लीहावृद्धि और अग्निमांद्य होने और ज्वर अति कम परिमाणमें होनेपर यह अरिष्ट अति उत्तम कार्य करता है । अन्य हेतुओंसे अर्थात् जीर्ण विषमज्वर, काला आजार, मेदक्षय आदिसे प्लीहावृद्धि होनेपर अमृतारिष्टका अत्यन्त उत्तम उपयोग होता है । यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदर होजाने पर मूत्रल अनुपानकेसाथ अमृतारिष्टका प्रयोग करनेसे अच्छा लाभ होता है ।

अमृतारिष्टका उपयोग प्रमेह पर उत्तम होता है । इससे मूत्रदोष नष्ट होते हैं । फिर बार-बार मूत्रोत्सर्ग नहीं करना पडता । सुजाकके जीर्ण विकारमें यह अति उपयोगी है । सुजाक या उपदंशके हेतुसे संधिवात उत्पन्न हुआ हो तो उसपर इस अरिष्टका उपयोग होता है । इस तरह आमवात जीर्ण होने पर यह लाभ पहुचाता है ।

अग्निमांद्यमें अमृतारिष्ट हितकारक है । इसके सेवनसे आमाशय रसका स्राव योग्य होने लगता है । फिर आहार पचन होने लगता है और उत्तम क्षुधा लगती है, एवं रञ्जक पित्तका स्राव अच्छा होता है, जिससे रक्तकणोंकी योग्य वृद्धि होने लगती है, तथा मुखमण्डल परसे निस्तेजता दूर होकर लाली आजाती है ।

संक्रामक ज्वर अनेक दिनों तक रहजाने पर निवलताआती ह। और बलक्षय होता ह, उसपर अमृतारिष्ट अत्यन्त उपयक्त है। इससे निस्तेजताका नाश होकर शक्ति और बल मांसकी वृद्धि होती है।

अमृतारिष्टसे यकृत् सबल बनता है; उसमेसे पित्तस्राव उत्तम प्रकारसे होने लगता है। यकृत्में पित्तोत्पादक घटकोंको बलकी प्राप्ति होती है। फिर उनका कार्य सम्यक् प्रकारसे होने लगता है। इस हेतुसे यह अरिष्ट पित्तजशूल उदरशूल, और अपचनपर अच्छा लाभ पहुंचाता है। कामलेके कितनेही प्रकारमें यह उत्तम कार्य करता है। विशेषत: शीतल वायु या शीतल स्थानोंमें फिरने या रहनेपर कामलाकी उत्पत्ति हुई हो, तो उस पर यह लाभदायक है। अतिसार या जीर्ण संग्रहणीमें यकृत् कार्य सम्यक् न होता हो, तो यह अरिष्ट देना चाहिये। अतिसारमें इसके योगसे अव्धातुकी प्रवृत्ति कम होजाती है और यकृत्पित्तका स्राव योग्य मात्रामें होने लगता है।

अमृतारिष्ट त्वचाके कितनेही विकारोंमें अति उपयोगी है। यकृत्के विकारसे त्वचा पर काले धब्बे या सूक्ष्म पिटिका उत्पन्न होनेपर अमृतारिष्ट देवें। जीर्ण कण्डूपर भी यह उत्तम उपयोगी है।

अमृतारिष्टका उपयोग सूतिकाज्वरमे अच्छा होता है। रक्तमें सूतिका विष कम करनेके लिये इसके साथ प्रतापलंकेश्वर देना चाहिये। दशमूलारिष्ट भी सूतिका ज्वरमें दिया जाता है; परन्तु पित्तप्रधान पतले गरमागरम दस्त लगने पर जब वह न दिया जाय तब ज्वरावस्थामें इसका उपयोग किया जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(११) सारस्वतारिष्ट।

विधि—ताजी ब्राह्मी (जल नीम) ८० तोले; शतावरी, विदारीकंद, हरड़, नेत्रबाला, अदरख, सौफ, सब २०-२० तोले लेकर जौकुट करें। जल १०२४ तोले मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेसे उतार कर छान लें। फिर शीतल होने पर शहद ४० तोले और शक्कर १०० तोले मिलावें। धायके फूल २० तोले; रेणुक बीज, पीपल, वच, असगन्ध, गिलोय, बायविड़ंग, निसोत, लौंग, कूट, बहेड़ा, इलायची, दालचीनी और सोनेके वर्क, प्रत्येक १-१ तोला डालें। मुखमुद्रा करके एक मास तक रखें; फिर छानकर भरलें। (भै० र०)

मात्रा—३ माशेसे २॥ तोले तक दिनमे २ बार जलके साथ दें।

वक्तव्य—५०० तोले छने हुए (अच्छी तरह नितरे हुए) सारस्वतारिष्टमे १ तोला स्वर्णवर्कके स्थानमें १ तोला स्वर्णलवण हम मिलाते हैं। २ औंस अरिष्ट निकाल उसमें १ तोला स्वर्णलवण मिलावें। बिलकुल गलकर एकजीव होजाने पर १ बोतलमें डालकर १६ औंस लगभग और अरिष्ट मिला अच्छी तरह चलाकर फिर उसे ५०० तोले अरिष्टमें मिला लेवें।

उपयोग—यह अरिष्ट आयु, वीर्य, धृति, मेधा, बल और कांतिको बढाता है, तथा वाणीको शुद्ध करता है । यह उत्तम हृद्य रसायन है । बालक, युवा और वृद्ध, पुरुष और स्त्री सबके लिये हितकारक है ।

यह स्वरकी कर्कशता और अस्पष्टताका निवारण करके स्वरको कोयलके समान मधुर बनाता है । स्त्रियोंके रजोदोष और पुरुषोंके शुक्रदोषको नष्ट करता है । अति अध्ययन अति गाना आदि कारणोंसे स्मरणशक्ति शिथिल होगयी हो तो उसे सबल बनाता है । एवं चित्तको प्रसन्न और मनोबी बनाता है । यह अरिष्ट एक मासमें हृद्रोगका नाश करता है और एक वर्षके सेवनसे शारीरिक सिद्धि देता है ।

सारस्वतारिष्ट उत्तम बल्य, हृद्य, रसायन, वातवाहिनियां और वातकेन्द्र पर शामक, चित्तप्रसादक, बुद्धिप्रद और स्मृतिवर्द्धक है । वातवाहिनियोंके क्षोभसे उत्पन्न व्याधियोंपर अप्रतिम कार्यकारी औषध है ।

छोटे बालकोंको बालग्रहमें कोष्ठशुद्धि कराकर सारस्वतारिष्ट देनेसे लाभ पहुंच जाता है । तोतलापन, बुद्धिमान्द्य, श्रवणशक्ति और स्मरणशक्तिमें न्यूनता, विचार-रहित बोलना आदि विकारोंपर यह अच्छा उपयोगी है, एवं उन्माद, अपस्मार, उत्साहका अभाव, उतावलापन आदि व्याधियोंमें सारस्वतारिष्ट लाभदायक है ।

स्त्रियोंके मासिकधर्म बन्द होनेपर होनेवाले अनेक विकार—घबराहट, चक्कर, हाथ पैरमें शून्यता आजाना, बेचैनी, कहीं भी चित्त न लगना, निद्रानाश आदि होते हैं । उनपर यह सारस्वतारिष्ट उत्तम कार्य करता है । इन विकारोंमें कितनीही स्त्रियोंको चक्कर बहुत आते हैं, वह इतने तक कि ऊंची दृष्टि भी नहीं कर सकती । सोते-सोते मोटर गाडी चलनेके सदृश मस्तिष्क फिरता है, सर्वदा कानमें नाद गजता रहता है । ऐसे समयपर सारस्वतारिष्ट सुवर्णमाक्षिकभस्मके साथ देनेसे उत्तम कार्य करता है ।

स्त्रियोंके बीजाशय या पुरुषोंके अण्डकोषकी वृद्धि योग्य रूपमें न होनेसे स्त्री-पुरुषोंके शरीर आयुवृद्धि होनेपर भी उचित अंशमें नहीं बढते । युवावस्थाकी भावना भी नहीं होती । ऐसी स्थितिमें मकरध्वज और वंगभस्मके साथ सारस्वतारिष्ट देना चाहिये ।

सूचना—स्वर्णलवणमिश्रित अरिष्ट १ तोलेसे अधिक मात्रामें नहीं लेना चाहिये । अन्यथा स्वर्णलवणका परिमाण अधिक हो जायगा, फिर मुंह आना आदि उपद्रव उपस्थित होंगे । प्रारंभमें ½ तोला ले । फिर धीरे-धीरे मात्रा बढावें ।

(औ० गु० ध० शा०)

[१२] द्राक्षासव ।

प्रथम विधि—५ सेर मुनक्काको थो कुचल कर ४०९६ तोले जलमें उबाले । चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार मलकर छान ले । फिर ५ सेर मिश्री और ५ सेर शहद मिलावें । धायके फूल ६४ तोले, शीतलमिर्च, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, लौंग, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, चव्य, पीपलामूल और निर्गुण्डी

के बीज, प्रत्येक चार-चार तोले ले जौकुट कर मिला देवें। फिर पात्रमें कपूर, अगर और चन्दनका धुंआ देकर आसव भरें और मुखमुद्रा करके १।। मास तक रख देवें। परिपक्व होनेपर निकाल कर छान लें। (यो० र०)

जो मुनक्का दूषित या शुष्क हो गई हो उसको उपयोगमें न लेवें।

मात्रा–१। से २।। तोले समभाग जल मिलाकर दिनमें २ से ३ वार लेवें।

उपयोग––यह द्राक्षासव ग्रहणी, अर्श, उदावर्त, रक्तगुल्म, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, विविध प्रकारके व्रणरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग,गलरोग, ज्वर,आम, पाण्डु और कामला रोगको नाश करनेमें श्रेष्ठ है। यह बृंहण, बलवर्णकारक और अग्नि प्रदीपक है।

किसी भी रोगमें शक्तिके संरक्षणार्थ और निर्बलताको दूर करनेके लिये यह उपयोगी है। अरुचि, आलस्य, थकावट और बेचैनीको दूर कर शारीरिक उत्साह बढ़ाता है। इसके सेवनसे शांत निद्रा आजाती है। मलशुद्धि होती है और मन प्रफुल्लित बनता है।

यह आसव पाचक पित्तका स्राव बढ़ाता है, इस हेतुसे अग्निमांद्य और उससे उत्पन्न विविध व्याधियोंमें यह लाभदायक है।

रक्तार्श या पित्तार्श पर इसका सेवन हितकारक है। यदि उदावर्त (आमाशयसे गेसका ऊपर उ ना) रोग प्रबल न हो गया हो,तो इसका प्रयोग अच्छा माना गया है। पित्तज गुल्ममें ज्वर, तृषा,समस्त देह लाल हो जाना,मुखमण्डललाल हो जाना,भोजनके ३-४ घण्टे पर मंद-मंद उदरशूल, गुल्म पर स्पर्श करनेपर वेदना,जिस तरह व्रण पर हाथ लगानेसे वेदना होती है उस तरह गुल्मपर स्पर्श करनेसे तीव्र वेदनाका भान होना आदि लक्षणोवाले गल्ममें यह अच्छा उपयोगी है।

नवप्रसूता स्त्रीको अपथ्य सेवन करानेपर या बार-बार गर्भपात होनवाली स्त्रीको रक्तगुल्म हुआ हो; गर्भधारणके सदृश लक्षण प्रतीत हों; साथमें अग्निमांद्य, बार-बार वमन आदि चिन्ह हों, तो द्राक्षारिष्ट अधिक उपयुक्त होता है, इससे रक्तगुल्म शमन तो नहीं होता; परन्तु अधिक सन्ताप दूर होता है,और वमन आदि लक्षणोंका नाश होता है।

पित्तभूयिष्ठ उदररोगम सहायक औषधि रूपसे द्राक्षासवका उपयोग किया जाता है।

आमज्वरकी प्रथमावस्थामें ज्वर,पाचन रूपसे इसका प्रयोग हितकारक है। ज्वर में कास होनपर यह उपयोगी है। पाण्डु और कामलापर यह सहायक, पसे प्रयुक्त होता है। (औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि––शुद्ध जलसे धोई हुई नयी मनक्का २०० तोलेको २०४८ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ कर। शीतल होनपर मसलकर छान लेवें। फिर

८०० तोले गुड, धायके फूल ३२ तोले, वायविडंग,प्रियंगू, पीपल,दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, तेजपात,नागकेशर, कालीमिर्च और सोंठ, प्रत्येक ८-४तोले मिला कर अमृतबानमें भरें। मुखमुद्राकर १ मास रख दें। मूलग्रन्थमें सूर्यके तापमें रखनेको लिखा है। परन्तु सुरक्षित मकानमें रखना विशेष हितकर है। फिर आसव परिपक्व होने पर छान लेवें।

(यो० र०)

हम इस आसवमें गुड मिलाते हैं, गुड मर्यादासे अधिक हो जानेपर मधुरता कम हो जाता है।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक जल मिलाकर सेवन करें।

उपयोग—यह आसव कास, श्वास, गलरोग और उग्र राजयक्ष्मा आदि रोगों का नष्ट करता है। यह उर सन्धानकारक होनेसे उर क्षतको भी दूर करता है।

छोटे बच्चोंके कफविकारमें यह उत्तम उपयुक्त है। श्लैष्मिक और श्वसनक सन्नि-पाताके शमन हो जानेपर शेष रहनेवाले कासरोगको नष्ट करनेमें द्राक्षारिष्ट उत्तम कार्य करता है। इसके सेवनसे हृदय सबल बनता है। फुफ्फुसोंका क्षोभ शनै शनै शमन होता है। श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातोंमें इसके सेवनसे कफविकार कम होता है। शनै शनै कफ छूटकर स्राव होने लगता है। कफसे होनेवाली घबराहट दूर होती है। छोटे बालकों के श्वसनक सन्निपात (पसली रोग) में ३० से ६० बूंद तक बार-बार गरम जलमें मिलाकर देते रहें।

अन्य प्रकारके कासरोगमें भी इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः कालीखांसीपर मृगशृंगभस्म और प्रवालपिष्टीके साथ द्राक्षारिष्ट देनेसे उत्तम उपयोग होता है। इससे खांसीके वेग और श्वासका शमन होता है।

पित्तज श्वासके विकारमें घबराहट अति होती है। सारा शरीर प्रस्वेदसे भीग जाता है, और मस्तिष्क फिरने लगता है। ऐसे समय पर इस द्राक्षासवका उत्तम उपयोग होता है।

क्षयरोगकी खांसमें अति त्रास होनेपर इसके सेवनसे त्रास कम हो जाता है। यह आसव क्षय कीटाणुओंको नष्ट नहीं करता, फिर भी द्राक्षासव और च्यवनप्राशावलेहके सेवनसे क्षयपीडित व्यक्तिका बल बढ जाता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, कास कम होती है, मांस बढता है, और रोगीकी मुखमुद्रा अच्छी दीखने लगती है। इसके साथ सुवर्ण कल्प देनेपर क्षय रोगके निवारणमें अच्छी सहायता मिल जाती है। जब राजयक्ष्मामें बडे-बडे उर-क्षत होजाते हैं, तब तो किसी औषधिका उपयोग नहीं होता। परन्तु उस अवस्थामें भी द्राक्षासव देते रहने से कुछ शांति रहती है। इस आसवमें उर सधानकारकता कितने अंशमें है, यह अभी निर्णीत नहीं हुआ। शांत रहना एक बात है, और उरःसंधान होना दूसरी बात है।

(औ० गु० ध० शा०)

(१३) कुटजारिष्ट ।

विधि—काले कुड़ेकी छाल ५ सेर, मुनक्का २।। सेर, महुवेके फूल ४० तोले और गम्भारीकी छाल ४० तोले लें, जौकुट कर जल ४०९६ तोले मिलाकर उबालें, चतुर्थांश जल रहने पर उतार, मलकर छान लें। शीतल होनेपर गुड़ ५ सेर और धायके फूल १ सेर मिला, मुखमुद्रा कर १ मास रख दें। परिपक्व होने पर छान लें।

(शा० सं०)

मात्रा—१। से २।। तोले दिनमें ३ या ४ बार समभाग जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह अरिष्ट सब प्रकारकी ग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार, पेचिश, मन्दाग्नि, ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है, एवं बालकोंकी संग्रहणी, रक्तातिसार और ज्वरमें भी हितकर है।

कुटजारिष्ट किंचित् वामक और कफस्रावक है। इस हेतुसे जीर्ण कास और छोटे बच्चोंके नूतन कासमें कफस्रावी रूपसे उपयोगी है। इतना ही नहीं, श्लैष्मिक सन्निपात और श्वसनक सन्निपातमें पुनर्नवा और मुलहठीके क्वाथके साथ कुटजारिष्ट देनेसे श्लेष्म-स्राव होकर खांसीका त्रास कम हो जाता है। इसके योगसे श्वासवाहिनियोंका क्षोभ और प्रदाह नष्ट होता है। छोटे बच्चोके श्वसनक ज्वर (डब्बा) में कुटजारिष्ट और द्राक्षारिष्ट मिलाकर देनेसे सत्वर लाभ होता है।

यह औषध प्रवाहिका प्रधान संग्रहणीके विकारमे अति उत्कृष्ट है। संग्रहणीमें भी कालज अर्थात् वर्षाऋतुके प्रारम्भमें होनेवाली और अन्य समयमें होनेवाली, ऐसे दो दो विभाग होते हैं। कीटाणुओंसे उत्पन्न संग्रहणी इस अरिष्टके योगसे सत्वर शमन होती है। बार-बार अति कम मल, कुछ आम और रक्त गिरना, ज्वर हो, तो अति कम वमन होना, उदरमें भयंकर मरोड़ा आना, शौचके समय किछते ही रहना, किछनेसे कुछ ठीक लगना आदि लक्षण होनेपर कुटजारिष्ट अति उपयुक्त है।

संग्रहणीके दूसरे प्रकारमें ज्वर अधिक रहता है। शौचमे केवल रक्तमिश्रित आम गिरता है। मल पहले प्रकार समान नहीं गिरता, तथा उदरमें मरोड़ा अति प्रबल होता है। इस विकार पर कुटजारिष्टका उपयोग नहीं होता। इस प्रकारमें गुदनलिकामें मल होता है; परन्तु गुदत्रिवलीमें शोथ होने या व्रण होनेपर उसके बलसे मल-प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं हो सकती। इस प्रकारमें सर्वांगसुन्दर, कनकसुन्दर, रसपर्पटी आदि ओषधियों का विशेष उपयोग होता है।

यदि ज्वररहित ग्रहणीरोग तीव्र हो, तो कुटजारिष्ट अधिक मात्रामें (१ से २ औस तक) समान जल मिलाकर या बिना जल मिलाये दिनमें ४ समय देते रहनेसे लाभ हो जाता है उदरमे मरोड़ा बलपूर्वक आता रहता हो, तो कुटजारिष्टके साथ वेदना-शामक गुणके लिये अमृत वटी, कनकसुन्दर या सूतशेखर जैसी ओषधि देनी चाहिये। इनमें अमृत वटी विशेष हितावह है। शुद्ध वच्छनाग ६ भाग, वराटिका भस्म ५ भाग

और कालीमिर्च ९ भाग मिलानेसे अमृतवटी तैयार होती है ।

मात्रा—आध-आध रत्ती ।

दुर्निवार संग्रहणीका बल कम होकर जैसे-जैसे शौचवेग कम होता जाय, वैसे-वैसे कुटजारिष्टकी मात्रा भी कम करते जाना चाहिये । व्याधि जितनी जीर्ण हो, उतनी ही मात्रा कम देनी चाहिये । कभी-कभी रोगी संग्रहणीका वेग कम होनेपर औषधि और पथ्यका त्याग कर देता है, जिससे पुनः रोगका आक्रमण हो जाता है । इस तरह बार-बार होनेपर रोग पुराना हो जाता है । ऐसे अनेक रोगी २-२ या ४-४ वर्षसे पीडित देखनेमें आते हैं । ऐसे रोगीको नीरोगी बनानेके लिये आग्रहपूर्वक पथ्यपालनसह कुटजारिष्ट अति कम मात्रामें दीर्घकालतक देते रहना चाहिये । कभी कभी यह क्रम एक-एक वर्ष तक कायम रखनेका है । संग्रहणी रोग पुराना होनेपर कभी-कभी यकृद्विद्रधिके सदृश अनेक भयंकर उपद्रव होनेका भय रहता है, अतः इसे हो सके उतना सत्वर दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

यकृद्विद्रधि, अग्निमांद्य, कोष्ठशूल, ये उपद्रव संग्रहणीके तीव्र विकारके पश्चात् उत्पन्न होनेपर इनपर कुटजारिष्टका अच्छा उपयोग होता है । यकृद्विद्रधि पर शिलाजीत आदि शोथघ्न और कीटाणु-विषनाशक औषधिके साथ कुटजारिष्ट देना अति हितकारक है ।

संग्रहणीके विकारके पश्चात् या स्वतन्त्र दोषदुष्टिसे अग्निमांद्य उत्पन्न होनेपर कुटजारिष्टका अच्छा उपयोग होता है । इसके योगसे यकृत्का पित्तस्राव योग्य परिमाणमें होने लगता है, जिससे अग्निबलकी वृद्धि होकर आहारपचन और शोषणहोनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है ।

ग्रहणीकी विकृति होनेपर अग्निमांद्य, अग्निमांद्यसे अपचन, अपचनसे बार-बार आमदोष संचित होकर ज्वर आते रहना, फिर ज्वर अति त्रासदायक बन जाना, ज्वर सतत ज्वरके सदृश होजाना, ज्वरका वेग तीव्र न होनेपर भी व्याकुलता अधिक रहना, उबाक, क्षुधा न लगना, अरुचि, मुह फीका रहना, जिह्वापर मैलकी तह आजाना, मांस बेस्वादु लगना आदि लक्षणयुक्त सतत और संतत ज्वरमें कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है ।

अन्त्रकी संग्राहक शक्ति कम होनेपर अन्त्र शिथिल होजाते हैं। बार-बार शौच होना, कितने ही बार रक्तातिसार होजाना, गुदभ्रंश होना, आदि लक्षण होते हैं । इसपर कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है । (औ० गु० ध० शा०)

[१४] अभयारिष्ट ।

प्रथम विधि—हरड ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, वायविडंग ४० तोले और महुवेके फूल ४० तोले ले । सबको जौकुटकर जल४०९६ तोले मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान ले। शीतल होनेपर गुड ५ सेर; गोखरू,

निसोत, धनिया, धायके फूल, इन्द्रायणकी जड़,चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल,मोचरस, प्रत्येक ८-८ तोले ले जौकुट चूर्ण कर मिला लें। फिर अमृतबानमें भर मुखमुद्रा करके १ मास रख दें; पश्चात् छान लें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले समभाग जल मिलाकर लें।

उपयोग—यह अरिष्ट सब प्रकारके अर्श, आठों प्रकारके उदररोग, मलावरोध और मूत्रावरोधको दूर करता है, तथा अग्निको प्रदीप्त करता है।

अभयारिष्ट उत्तम सारक, मूत्रल और पाचक है। इसका उपयोग कोष्ठबद्धता पर अत्युत्तम होता है। बद्धकोष्ठमें जमालगोटाके सदृश तीव्र विरेचक ओषधि उपयोगी नहीं होती। उससे तो अन्त्रकी श्लैष्पिक कलामें प्रदाह हो जाता है। और अन्त्र निर्बल बनता है। फिर रूक्षता आकर अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया मन्द होजाती है, फलतः बद्धकोष्ठ व्याधि कम होनेके स्थानमें और बढ़ जाती है। बद्धकोष्ठमें मल संग्रहीत होकर सड़ने लगता है। फिर उसमेंसे सेन्द्रिय विष उत्पन्न होता है; वह रक्तमें शोषित होकर विविध व्याधियोंके निर्माणमें कारणभूत बनता है।

अभयारिष्टके सेवनसे अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया सम्यक् प्रकारसे होकर मलनिःसरण कार्य योग्य होता है। सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि अभयारिष्टके साथ थोड़ा घी सेवन किया जाय, तो स्नेहन होनेमें सहायता मिल जाती है। घी पहले दें और रात्रिको निवाये जलके साथ अभयारिष्ट दें, तो भी लाभ होता है।

अर्शरोगमें शौचशुद्धि न होना, यह प्रमुख लक्षण होता है। शौचशुद्धि न होनेसे अधिक किछना पड़ता है। गुदात्रिवलीपर दबाव पड़-पड़कर क्षोभ उत्पन्न होताहै; फिर शोथ आ जाता है। शोथके पश्चात् शिराजालमें नीलताकी वृद्धि होती है। इन शिराओंको मस्सेके रूपकी प्राप्ति होती है; इन सबका मूल है शौचशुद्धि न होना। यकृत्के कार्यमें शैथिल्य उत्पन्न होकर ही रक्तार्शके विकारकी उत्पत्ति हो सकती है। यह यकृत्शैथिल्य अभयारिष्टके योगसे नष्ट होता है।

जिस तरह उदररोगकी उत्पत्ति अजीर्ण, मलिन अन्न और मलसंचयके योगसे होती है; उस तरह दोषसंघात भी उदररोगका हेतु है। दोषसंघातसे पचनसंस्थामें शोषण कार्य विकृत होता है। उत्तरा महाशिरा और अधरा महाशिरा आदिपर दबाव आता है; और रसवहन कार्यमें प्रतिबन्ध होता है। कोष्ठस्थ कफवृद्धि होती है। समान वायु, अपान वायु, पाचक पित्त, तीनों दोष, यकृत्, प्लीहा आदि इन्द्रियां सब विकृत होते हैं। शनैः शनैः हृदय और वृक्क भी दूषित होते हैं। फिर उदर्य्याकलाके भीतर जलसंचय होता है; उसे जलोदर कहते हैं। अभयारिष्ट जलसंचयसे उत्पन्न उदररोगमें उत्कृष्ट कार्य करता है। इस तरह पित्तोदर, यकृतोदर और प्लीहोदरमें भी इसका उत्तम उपयोग होता है। कफोदरमें इसके साथ अन्य क्षारकी योजना करनी चाहिये, अथवा हरीतकी रसायन का उपयोग करना चाहिये।

इस ओषधिसे मलमूत्रवृद्धि योग्य रूपसे होती हैं। पेशाब अधिक बार और अधिक परिमाणमें होता है, अग्निमांद्य दूर होता है। अन्त्रमें विस्फोट और जलवृद्धि नहीं होती। इस हेतुसे काष्ठजलकी वृद्धि होती है। अन्त्रमें स्निग्धता बढ़ती है। फिर अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया सम्यक् होकर मल सरलतासे बाहर निकलता रहता है।

बृहदन्त्रमें जीर्ण आमविष होनेपर इस अरिष्टके योगसे शनैः शनैः नष्ट होता है। पक्वाशयमें आहार रसका सशोषण सम्यक् होने लगता है। रसाजीर्णकी आदतका नाश होता है। इस तरह यह आमाशय, पक्वाशय, बृहदन्त्र आदि कोष्ठावयवोंपर अति उत्तम प्रकारसे बल्य और दीपनाशक असर पहुचाता है। (औ० गु० ध० शा०)

[१५] अशोकारिष्ट।

विधि—अशोकछाल ५ सेर जौकुट करके ४०९६ तोले जलमें क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लें। शीतल होनेपर गुड़ १० सेर, धायके फूल ६४ तोले, काला जीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, कमल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, आमकी गुठलीकी गिरी, जीरा, अडूसेकी छाल, रक्त चन्दन प्रत्येक ४-४ तोले मिलावें। फिर अमृतबानमें भर, मुखमुद्रा करके १ मास रख दें। पश्चात् छानकर उपयोगमें लेवें। इस प्रयोगमें हम गुड़ ७॥ सेर मिलाते हैं। (भैं० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार समान जलके साथ दें। रक्तप्रदरमें चन्द्रकला रसके साथ और पीडितार्तवमें बृहद् योगराज गूगलके साथ विशेष लाभ पहुचाता है।

उपयोग—यह अरिष्ट स्त्रियोंके रक्तप्रदर, मदज्वर, रक्तपित्त, अर्श, अग्निमांद्य, अरुचि आदि विकारों तथा पुरुषोंके प्रमेह, शोफ और अरुचिको दूर करता है।

अशोकारिष्ट स्त्रियोंका परम मित्र है। इसका कार्य गर्भाशयपर बल्य होता है। गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न होनेवाले अत्यार्तव विकारमें इसका उत्तम उपयोग होता है। अत्यार्त्तव विकार अनेक कारणोंसे होता है। गर्भाशयके भीतरके आवरणमें विकृति, बीजवाहिनियोंकी विकृति, गर्भाशयके मुखपर, योनिमार्गमें या गर्भाशयके भीतरकी ओर कर्कस्फोट होना और प्रसवके पश्चात् गर्भाशयके भीतर या बाहर व्रण होजाना, आदि कारणोंसे अत्यार्त्तव व्याधिकी प्राप्ति होती है। इनमेंसे कर्कस्फोटके अतिरिक्त कारणोंसे उत्पन्न अत्यार्त्तवपर इस अरिष्टका अच्छा उपयोग होता है। मासिकधर्ममें अति रक्तस्राव होता हो तथा साथमें मलावरोध रहता हो तो अशोकारिष्टके साथ दन्त्यरिष्ट भी मिला देना चाहिये। एवं रक्तस्रावमें दुर्गन्ध आती हो तो गर्भाशय और योनिमार्गकी शुद्धिके लिये निम्बपत्रको ४० गुने जलमें मिलाकर उत्तर बस्ति भी देते रहना चाहिये।

कितनीही स्त्रियोंको मासिकधर्म आने पर उदरपीडाकी आदत पड़ जाती है, उसे पीडितार्त्तव और कष्टार्त्तव कहते हैं इसमें मुख्यतः, बीजवाहिनी और बीजाशयकी

विकृति कारण है। कितनीही रुग्णाओंको पीड़ा अत्यधिक तीव्र होती है। कमरमें भयंकर दर्द, शिरदर्द, वमन आदि लक्षण होते हैं। इसपर अशोकारिष्ट अत्युत्तम कार्य करता है।

पीड़ितार्त्तवमे मन्द ज्वर होता है। ज्वरोष्मा ९९-९९॥ डिग्री होती है। परन्तु ज्वर दिनोंतक रहता है। उस पर यह उपकारक है।

ऊर्ध्वग रक्तपित्तमे अशोकारिष्ट उपयुक्त ओषधि है। एवं रक्तार्शमें भी विशेषत: वेदना या जलन न होनेपर और बिना ज्ञान रक्तस्राव होते रहनेपर अशोकारिष्ट अति उपयोगी है। (औ० गु० ध० शा०)

(१६) कार्पासारिष्ट।

विधि—कपासके मूलकी छाल ३ सेर, बांसकी जड़ २ सेर; सुहिजनेकी छाल, रक्त चित्रकमूल, अशोक छाल और दशमूल, चारों १॥-१॥ सेर लें। सबका जोकुट चूर्ण कर ८८ सेर जलमें निकाकर चतुर्थांश क्वाथ करे। फिर बाबूनाके फूल १ सेर, धायके फूल ४० तोले; लोद, गूगल, एलुवा, देवदारू, पुनर्नवामूल, जटामासी, दारुहल्दी, शीतलमिर्च, बेलकी छाल, रक्तचन्दन, श्वेत चन्दन, ये ११ ओषधियां १०-१० तोले, धोई हुई मुनक्का १। सेर, शहद २॥ सेर और गुड़ १० सेर मिलाकर पात्रमें भरें। मुखमुद्राकर १ मास बन्द रखें। फिर छान लेवें।

(श्री पं० घनानन्दजी पन्त विद्यार्णव)

मात्रा—२ से ४ तोले तक दिनमें २ वार देवें।

उपयोग—यह अरिष्ट गर्भाशयको संकुचित करता है। अत: प्रसवकालमें गर्भाशयकी निर्बलतापर इसका सेवन अति लाभप्रद है। एवं यह गर्भाशयमेंसे संचित रक्त, गर्भ या जेरको बाहर निकालनेमें सहायक है। रक्त संचित होनेपर मासिकधर्ममे कष्ट होता हो, तो वह इसके सेवनसे दूर होता है।

(१७) चन्दनासव।

विधि—सफेद चन्दन, सुगन्धवाला, नागरमोथा, गम्भीरीके मूल, नीलकमल, फूलप्रियंगु, पद्माख, लोद, मजीठ, लाल चन्दन, पाठा, चिरायता, वड़की छाल, पीपल वृक्षकी छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलहठी, रास्ना, पटोलपत्र, कचनारकी छाल, आम वृक्षकी छाल और मोचरस इन २२ ओषधियोंका जौकुट चूर्ण ४-४ तोले, धायके फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, शक्कर ४०० तोले और गुड़ २०० तोले लेवें। सबको २०४८ तोले जलमे मिला मिट्टीके पात्रमें भर यथाविधि संधान कर तैयार करें। लगभग १। मासमें यह आसव तैयार होजाता है। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ वार समान जल सुवह और रातको मिलाकर लें। रोग जीर्ण होनेपर मात्रा कम लेवें।

गुण—यह चन्दनासव शुक्रमेहनाशक, बलकारक, पौष्टिक, हृद्य और अत्यन्त अग्निवर्द्धक है। जीर्ण सुजाकके रोगियोंके लिये हितकारक है। इसके सेवनसे रक्तमें उत्पन्न मूत्रविष, मूत्राशयदाह, मूत्रावरोध और मूत्रकृच्छ्र आदि विकार दूर हो जाते हैं।

पथ्य—लघु (शीघ्र पचनेवाला) और पौष्टिक अन्नपान, सत्संग, शास्त्र-श्रवण, शान्ति और स्वाध्याय आदि हितकारक हैं।

अपथ्य—शुक्रमेह रोगमें अभिष्यन्दी (दही आदि), तीक्ष्ण अन्नपान (लालमिर्च, तैल, शराब आदि), मूत्रका ताप, अग्निसेवन, स्त्रीप्रसंग, मलमूत्र आदि वेगोंका धारण, रात्रिका जागरण, क्रोध, शोक, दिनमें शयन, उपवास, अत्यन्त चिन्ता, आलस्य और दुष्टोंका सहवास आदिका परित्याग करना चाहिये।

चन्दनासव शीतवीर्य, बल्य, मूत्रल, दाहशामक और पित्तशामक है, तथा मूत्रमार्गकी दोषदुष्टिको नष्ट करता है। इसका उपयोग पुराने और नये सुजाकमें उत्तम होता है। इसके योगसे बार-बार मूत्रोत्सर्ग होते रहनेसे सुजाकके पूयका शोधन होता रहता है। सुजाककी प्रथमावस्थामें मूत्रप्रसेक नलिकाकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाह होता है, वह इस आसवके सेवनसे कम होता है। फिर दाहयुक्त वेदना भी कम हो जाती है, तथा निमित्त कारण जो कीटाणु (Gonococcus) हैं, उनका बल कम होता जाता है। यद्यपि कीटाणु नष्ट होते हैं या नहीं, यह अभी निश्चित नहीं हुआ, तथापि इस आसवके योगसे सुजाककी तीव्रावस्था और चिरकारी अवस्थामें लक्षण कम-कम होते जाते हैं, यह निःसन्देह है।

चन्दनासवसे सुजाक समूल नष्ट होनेके उदाहरण नहीं मिले। इसके रोगीको तीव्रावस्था, मन्दावस्था और जीर्णावस्थाकी प्राप्ति होती रहती है, तथा रोगी सर्वदा इनसे पीड़ित ही रहता है। इन सब अवस्थाओंमें चन्दनासव शामक रूपसे प्रयोजित होता है। इससे मूत्रोत्पत्तिकी वृद्धि होकर पूयका स्राव होता रहता है, मूत्रमार्गमें जीर्ण व्रण हो, तो उसका त्रास कम हो जाता है, क्षोभ हो, तो कम हो जाता है, और कुछ समयके लिये पीड़ा उपशम होती है।

सूचना—यदि मूत्रमार्ग संकुचित हो गया हो, तो चन्दनासवका अधिक उपयोग नहीं होता। इस आकुंचनको उत्तर बस्तिद्वारा या उत्तर बस्तिकी नलिको मूत्र मार्गमें प्रवेश करा शनैः शनैः कम कराना चाहिये। आकुंचन अत्यधिक है, तो चन्दनासव या अन्य मूत्रल औषधि नहीं देनी चाहिये, अन्यथा मूत्राशयमें मूत्रसंचय अधिक होकर आपत्ति बढ़ जायगी।

मूत्रमें सिकता और शर्करा (अश्मरीकण) जानेपर चन्दनासवका उत्तम उपयोग होता है। इस आसवसे अश्मरीके छोटे-छोटे अणु द्रवीभूत होकर बाहर निकल जाते हैं। अश्मरीजन्य शूलमें भी इसका उपयोग होता है।

मूत्राघातमें शामक मूत्रल रूपसे इस ओषधि का प्रयोग किया जाता है। एवं मूत्र-पिण्डोंके प्रवाहमें प्रदाहघ्न और ज्वरघ्न रूपसे यह अच्छा कार्य करता है।

(औ० गु० ध० शा०)

(१८) जीरकाद्यरिष्ट।

विधि—जीरा ८०० तोलेको ४०९६ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर मसलकर छान लेवें। शीतल होने पर गुड़ १२०० तोले, धायके फूल ६४ तोले, सोंठ ८ तोले; जायफल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायचीके दाने, नागकेशर, अजवायन, शीतलमिर्च और लौंग प्रत्येक ४-४ तोले मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्रा कर १ मास रहने देवें। परिपक्व होने पर छान लें। (भैं० र०)

सूचना—जीरेका क्वाथ करनेके पात्रपर ढक्कन रख देना चाहिये, अन्यथा तैल उड़ जाता है। छानने को मोटा वस्त्र लें। वस्त्रको जलसे धो गीला करके छानें, तथा जीरेको अच्छी तरह मसलकर निचोड़ लेवें। क्वाथका जल मन्दाग्निपर अर्द्धविशेष अर्थात् २०४८ तोले शेष रखे या फाण्ट बना लें।

नव्य प्रयोग—जीरकाद्यरिष्टमें चतुर्थांश क्वाथ करनेपर जीरेमें अवस्थित उड़नशील तैल, जो कार्यकारी द्रव्य है, वह उड़ जाता है। फिर क्वाथ रूक्ष और उष्ण होता है। इससे स्तन्यकी वृद्धि होती है; किन्तु माताको निर्बलता आती है। यदि फाण्ट बनाकर जीरेका तेल कायम रक्खा जाय तो मद्यार्ककी उत्पत्ति कम होती है। किन्तु फाण्ट बनाकर सिद्ध किया हुआ जीरकाद्यरिष्ट स्तन्यवर्द्धक, माताके लिये बल्य, दीपन-पाचन और बालकके लिये हितावह है। सामान्यतः ८०० तोले जीरेके लिये १६०० तोले जल में फाण्ट कर लेने पर शेष १०२४ तोले जल मिला लिया जायगा।

मात्रा—१। से ५ तोले दिनमें दो या तीन बार देवें।

उपयोग—जीरकाद्यरिष्ट सूतिका रोगमें उत्पन्न ग्रहणी और अतिसारको नष्ट करता है, और पाचनक्रियाको सुधारता है।

यह अरिष्ट जीर्ण सूतिका रोगमें अच्छा लाभदायक है। तीव्रावस्थामें ज्वर अधिक होनेपर प्रतापलंकेश्वर, लक्ष्मीनारायण, सूतिकारि रस, सूतिकाभरण रस और दशमूलारिष्ट आदि हितावह हैं। परन्तु रोग जीर्ण होकर ज्वरवेग मन्द होने पर यदि पित्तानुबंधके लक्षण—मन्दज्वर, अंग टूटना, आलस्य, उबासी, तृषा, जड़ता, उदर-शूल, अतिसार, शोथ आदि हों, तो जीरकाद्यरिष्ट हितकर है।

प्रसवके पश्चात् उत्पन्न क्षयरोगमें इसका उपयोग होता है। क्षयमें सुवर्ण कल्पके साथ देना चाहिये; जिससे क्षयके कीटाणुके साथ सूतिका विष भी नष्ट होकर रुग्णाको सच्चा लाभ पहुंच सके। बार-बार पतले, पीले, गरम-गरम दस्त लगते हों, और जिह्वा फटी हो या मुंहमें छाले हों तो जीरकाद्यरिष्ट फलप्रद है।

सग्रहणीमें पित्तानुबन्ध होनेपर यह विशेष उपयोगी है। बार-बार शौच होना किंछना, रक्त गिरना, रक्तके साथ कुछ झाग पड़ना, मन्द ज्वर, तृषा, निद्रानाश आदि लक्षण होनेपर यह दिया जाता है ।

प्रसवके पश्चात् संग्रहणी होनेपर भी इसका उपयोग किया जाता है। विदग्धाजीर्ण, पित्तज परिणामशूल और पित्तज अम्लपित्त रोगमें भी जीरकाद्यरिष्ट अच्छा कार्य करता है ।

इस अरिष्टके योगसे नवप्रसूताके स्तन्यकी वृद्धि होती है। मन्द ज्वर, हाथ पैरका दाह, त्वचामें जलन आदिका निवारण होता है। इस अरिष्टमें कुछ मूत्रल गुण होनेसे मूत्रकी शुद्धि होती है, तथा त्वचापर कण्डू, पिटिका, चकत्ते आदि हों तो ये सब विकार निवृत्त होते हैं । (औ० गु० ध० शा०)

(१९) चविकासव ।

विधि—चव्य २०० तोले, चित्रकमूल १०० तोले, हिंगुपत्री (डीकामाली), पुष्करमूल, वच, हाऊबेर, कचूर, कडवे परवलके मूल, हरड, बहेडा, आंवला, अजवायन, कुडेकी छाल, इन्द्रायणके फूल, धनिया, रास्ना और दन्तीमूल ये १५ ओषधियां ४०-४० तोले, वायविडंग, नागरमोथा, मजीठ, देवदार, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, ये ७ ओषधियां २०-२० तोले ले। सबको ८१९२ तोले में मिलाकर क्वाथ करें। १०२४ तोले जल शेष रहने पर १२०० तोले गुड, धायके फूल ८० तोले, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर ८-८ तोले, लोंग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और शीतलमिर्च ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण मिला अमृतबानमें भरें। मुखमुद्राकर १ मास रहने दें। हम गुड १५ सेरके स्थान पर ७॥ सेर मिलाते हैं । (ग० नि०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें दो बार समान जल मिलाकर देवें ।

उपयोग—चविकासव समस्त प्रकारके गुल्म, २० प्रकारके प्रमेह, प्रतिश्याय, क्षय, कास, अष्ठीला, वातरक्त, उदररोग और अन्त्रवृद्धि आदिको नष्ट करता है ।

इस आसवमें मुख्य ओषधियां पाचक, दीपक, मारक, उष्णवीर्य और कटु रसात्मक हैं । आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्णमें पचन व्यापार करनेवाले अवयव समूहोंमें से पाचकरसका स्राव सम्यक् नहीं होता। अत स्रावके उदीरणके लिये वायुकी पूर्ति और रक्तके दबावकी आवश्यकता रहती है अत्यन्त सूक्ष्म स्रोतसे रुद्ध होजानेसे सम्यक् स्राव नहीं होता। ऐसी परिस्थितिमें चविकासवके सेवनसे वायुकी प्रेरणा और रक्तकी पूर्ति होती है और स्रोतोरोध नष्ट होकर पाचक पित्तस्रावकी वृद्धि होती है। इस तरह इन दोनों अजीर्णोंमें इस आसवका उत्तम उपयोग होता है ।

*आमाजीर्णमें क्लेदक कफकी वृद्धि होती है । आमाशयमें आहार जानेपर उसमें पाचक पित्त योग्य परिमाणमें मिश्रित होना चाहिये, परन्तु क्लेदक कफकी अधिकताके हेतुसे पाचक पित्त (आमाशय रस) योग्य मात्रामें स्राव नहीं होता, एवं आहार

के साथ अच्छी तरह् मिश्र नहीं होता । इसके विपरीत क्लेदक कफकी मात्रा बढ़ जाती है; वही भोजनमें मिश्र होजाता है। प्रारम्भमे ऐसी परिस्थिति होनेपर आगे-आगेके अन्य पाचक रस (यकृत पित्त, आंत्रिक रस, आग्नेय रस) भी निर्बल हो जाते हैं। योग्य रूपसे नहीं स्रवते, एवं (अन्नके साथ) मिश्र भी नही होते । इस हेतुसे आहार, पचन नहीं होता; फिर वह सड़ने लगता है। इसका परिणाम समस्त शरीर पर होता है। उदर और कोष्ठके बीचका स्थान जड़ होजाता है । आलस्य, निद्रावृद्धि, निरुत्साह, हाथ-पैर टूटना, मुखमण्डलपर निस्तेजता, मुंहमें बेस्वादुपन, या मीठापन, मुंहमें बार-बार जल भर जाना आदि लक्षण उपस्थित होते है। इसपर चविकासव अति उत्तम कार्य करता है ।

वायु विशेषतः समानवायुकी प्रेरणाकी न्यूनता होनेपर पाचक पित्तका स्राव योग्य मात्रामें और योग्य रूपसे नही होता। पाचक पित्त थोडा निकलता है और पाचन करने का गुण न्यून होता है। आमाशय और अन्त्रकी गति मन्द होनेसे आहार जितने समयमें आगे बढ़ना चाहिये, उतने समयमे नहीं बढ़ सकता। इस हेतुसे उदर खिचता है; मंद-मंद शूल चलता है; शौचशुद्धि नहीं होती; सर्वांगमें मंद-मंद वेदना होती है, तथा उदरमें अफारा आ जाता है। इस प्रकारके विकारमे चविकासव उत्तम उपयोगी होता है ।

इसका प्रयोग वातज गुल्म, कफज गुल्म और वातकफज गुल्मपर अच्छा होता है; रक्तगुल्म और पित्तज गुल्मपर नही होता ।

प्रमेहोंके विकारोंमें हस्तिमेह, लालामेह और इक्षुमेहकी उत्पत्ति यकृत् और अग्न्याशयकी विकृतिसे होती है । विशेषतः पित्तका कार्य क्षीण होनेपर कोष्ठमें दोषोत्पत्ति और कफाधिक्यकी प्राप्ति होती है। फिर आहारमेंसे रस और रक्तकी उत्पत्ति सम्यक् नहीं होती । इस हेतुसे यह दोषदुष्टि मूत्रमार्गसे बाहर निकलती है । बार-बार विशेष मात्रामें मूत्रोत्सर्ग होता है । मूत्रकी मात्रा और संख्या, दोनों बढ़ जाते है। मूत्रमें मधु नहीं जाता। किसी-किसीको लालातन्तुसह मूत्रोत्पत्ति होती है; मूत्र अज्ञानावस्थामें हो जाता है या अनिच्छा वश निकल जाता है। ऐसे विकारोमें चविकासव देना चाहिये ।

इक्षुमेहके भीतर मर्यादामें मधु हो, तथा अपचन अधिक, बार-बार दुष्ट डकार, कब्ज; क्षुधा न लगना, चरपरे पदार्थोकी अधिक इच्छा होना आदि लक्षण हों तो चविकासव उपयुक्त ओषधि है ।

प्रतिश्याय और प्रतिश्याय जनित कास, बार-बार छींकें आना, नाक बिल्कुल पका-सा हो जाना, श्वासोच्छ्वासमें कुछ त्रास होना, नाक और कण्ठमें दर्द, समस्त शरीरमें दर्द (अंगमर्द) यह एक प्रकार है । दूसरे प्रकारमें नाकमेसे जल गिरते ही रहना, और खांसीमें कफ गिरना आदि लक्षण होते हैं। दोनोंपर यह हितकारक है ।

यकृतोदर और प्लीहोदरमें अग्निमांद्य अधिक होनेपर चविकासव दे, एवं क्षय,

अष्ठीला, वातरक्त और अन्त्रवृद्धिमें भी अग्निमांद्य होनेपर इसका उपयोग होना है ।

(औ० गु० ध० शा०)

(२०) रोहितारिष्ट।

विधि—रोहिडाकी छाल ४०० तोलेको जौकुट कर ४०९६ तोले जलमें मिला चतुर्थांश क्वाथ करे । फिर छानकर शीतल होनेपर ८०० तोले गुड, धायके फूल ६४ तोले, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, हरड़, बहेडा, आंवला, इन ११ औषधियोंका जौकुट चूर्ण ४-४ तोले मिलाकर अमृतबानमें भरें । मुखमुद्राकर १ मास रखें, परिपक्व होनेपर छान लेवें । (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले समान जलके साथ दिनमें २ बार दें ।

उपयोग—रोहितारिष्ट प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, ग्रहणी, अर्श, कामला, कुष्ठ, शोथ और अरुचि आदिको नष्ट करता है ।

यह यकृत् और प्लीहावृद्धिमें अत्यन्त उपयुक्त औषधि है । यह अरिष्ट जीर्ण अग्निमांद्यको दूरकर पाचक पित्तोंके स्रावकी वृद्धि कराता है । पाचक पित्तस्राव सूक्ष्म कोषोंको रक्तकी मात्रा पूर्णरूपसे मिलती है । इस हेतुसे पाचक पित्तस्राव योग्य होता है ।

विषमज्वर जीर्ण होनेपर प्लीहावृद्धि हो जाती है । उसपर यह रोहितारिष्ट उत्तम कार्य करता है ।

मध्यकोष्ठ (उदरगुहा) में रही हुई रसग्रन्थियोंके आकारकी वृद्धि होनेपर उदरमें गांठ होनेका भास होता है । यह वृद्धि क्षयरोगसे होनेपर सुवर्णकल्पका सेवन कराना चाहिये । परन्तु क्षय और उपदंशके अतिरिक्त कारणोंसे होनेपर रोहितारिष्ट देना चाहिये ।

गुल्म (पित्तज या वातज) में रोहितारिष्ट हितकर है । अष्ठीलामें इसके सेवनसे रोगशमनमें सहायता मिलती है । एवं वातार्शमें और पित्तार्शमें भी यह उपयोगी है ।

(औ० गु० ध० शा०)

(२१) पुनर्नवासव ।

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आंवला, दारुहल्दी, गोखरू, छोटी कटेली, बडी कटेली, अडूसाके पत्ते, एरंडकी जड, कुटकी, गजपीपल, पुनर्नवा, नीमकी अंतरछाल, गिलोय, सूखी मूली, धमासा, पटोलपत्र, इन २० औषधियोंको ४-४ तोले, धायके फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, मिश्री ४०० तोले और शहद २०० तोले ले । काष्ठादि औषधियोंको जौकुट करें । फिर सबको २०४८ तोले जलमें मिला अमृतबानमें भर १ मास रहने दें । परिपक्व होनेपर वस्त्रसे छान लेवें । (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले समान जल मिलाकर देवें ।

उपयोग--पुनर्नवासव शोथ, उदररोग, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, यकृत्वृद्धि, गुल्म, ज्वर आदि कष्टसाध्य रोगोंको दूर करता है।

यह औषध उत्तम मूत्रल और हृद्य है। इस हेतुसे हृदय, यकृत्, प्लीहा और वृक्कोंपर लाभ पहुंचाती है। इनमेंसे किसीके भी विकार से शोथ आनेपर उसे दूर करता है। एवं हृदयको सबल तथा यकृत् और वृक्कोंको कार्यक्षम बनाता है। अतः सर्वांग शोफपर यह आसव अति कार्यकारी ओषधि है।

शोथ तीव्र होनेपर पुनर्नवासवके साथ सारिवासव मिलाना चाहिये; जिससे रक्त-प्रसादन होकर शोथकी सत्वर निवृत्ति हो जाय। अंतर्विद्रधि या अंतर अवयवोंके शोथ पर भी यह हितकर है।

यकृत्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, वातज गुल्म और कफज गुल्मके विकारमें यह आसव अच्छा सहायक होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२२) सारिवासव।

विधि--सफेद सुगन्धवाली अनंतमूल, नागरमोथा, लोद, बड़की छाल, पीपलकी छाल, कचूर, काली काष्टमय अनंतमूल, पद्माख, नेत्रबाला, पाठा, आवला, गिलोय, खस, सफेदचन्दन, रक्तचन्दन, अजवायन और कुटकी, ये १७ ओषधियां ४-४ तोले तथा छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कूठ, सनाय और हरड़ १६-१६ तोला लें। सबको जौकुट कर जल २०४८ तोले, गुड़ १२०० तोले, धायके फूल ४० तोले और मुनक्का २४० तोले मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्राकर एक मास रहने देवे। परिपक्व होनेपर छान लें। इस आसवमें हम सुगन्धवाली अनन्तमूलका परिमाण ४ गुना अर्थात् १६ तोले लेते हैं। (भै० र०)

मात्रा--१। से २॥ तोले तक द्विगुण जल मिलाकर देवें।

उपयोग--सारिवासव २० प्रकारके प्रमेह, प्रमेहजनित शराविका आदि पीड़िका, उपदंशके उपद्रव, वातरक्त और भगन्दर आदि रोगोंको निःसंदेह नष्ट करता है।

यह आसव अत्यन्त शामक, मूत्रल, दाहशामक और उत्तम रसायन है। इसका कार्य वातवाहिनियों, वातवाहिनियोंके मूल, वातवहानाड़ी केन्द्र, नाड़ीचक्र, मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और अंतःस्रावक ग्रंथियोंपर शामक होता है। इस आसवका अधिक समय तक सेवन करनेपर उपदंशका विष नष्ट हो जाता है; वातरक्त आदि विकारका शमन होता है। प्रमेहोंमें विशेषतः पित्तज प्रमेहपर इसका कार्य अच्छा होता है।

स्मृतिनाश और बुद्धिमांद्य जन्मसे न हों; किसी हेतुसे बीचमें उत्पन्न हुए हों, तो सारिवासवका अच्छा उपयोग होता है। यदि रक्तका दबाव बढ़कर बार-बार चक्कर आता हो, तो सर्पगन्धाके सेवनके साथ सारिवासवका सेवन कराना चाहिये।

मूत्राघातमें मूत्रोत्पत्ति कम होती है। मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रोत्पत्ति तो होती है, परन्तु

बस्तिके आगेके अवयवोंमें प्रतिबन्ध होनेसे मूत्रको बाहर निकलनेमें बाधा पहुचती है। उसपर सारिवासवके सेवनसे मूत्रोत्पत्ति अधिक होकर मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्रमें लाभ पहुचता है।

मूत्राश्मरी, मूत्रशर्करा और सिकता आदिपर यह आसव अच्छा कार्य करता है। इसके योगसे अश्मरीका क्षरण होकर मूत्रके साथ अणु बाहर निकलते रहते हैं। अश्मरीपर सारिवासवके साथ तिलक्षार,केलेका क्षार या इमलीका क्षार देवें। पौरुषग्रंथिपर शोथ आनेसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें भी यह आसव लाभदायक है। वातप्रधान मूत्रकृच्छ्रपर चन्द्रप्रभाके साथ इसका सेवन कराना चाहिये।

पुराने सुजाक रोगमें उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें यह आसव अति लाभ पहुचाता है। इसके सेवनसे पूय बाहर निकलता रहता है, जिससे प्रदाह कम होकर मूत्रकृच्छ्र दूर होता है, नये सुजाकमें प्रमेहान्तक वटी प्रथम विधिके साथ सारिवासव देनेसे सत्वर लाभ पहुचता है।

ज्वरदाह या धातुक्षयमें उत्पन्न दाहमें, यह आसव उपयोगी है। उपदंश और सुजाकके पश्चात् जननेन्द्रियमें चिरकारी अनेक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। स्त्रियोंके लिये इन रोगोंकी जड जाना अति कठिन है। इसपर सारिवासव उत्तम उपयुक्त औषधि है। इससे विषनिवृत्ति होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती।

अन्तःस्रावी ग्रंथियाँकी विकृतिमें उत्पन्न विकार सारिवासवसे शमन होजाते हैं। मधुमेहमें इस आसवका सहायकरूपसे उपयोग होता है। प्रमेहपिडिका होनेपर सारिवासव उपयुक्त औषधि है।

आमवात, वातरक्त और आढ्यवातमें सारिवासव उपयोगी होता है।

(औ० ग० ध० शा०)

(२३) भृङ्गराजासव।

विधि—भागरेका रस १०२४ तोले गुड ८०० तोले और हरड ३२ तोले मिला अमृतबानमें भरकर १५ दिन रहने देवें। फिर पीपल, जायफल, लौंग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर प्रत्येक ८-८ तोलेका जौकुट चूर्ण मिला १५ दिन रहने दें। बादमें छान लेवें।

मात्रा—१ से २॥ तोले तक समान जल मिलाकर सेवन करें।

उपयोग—यह आसव धातुक्षय और पांचो प्रकारकी कासको दूर करता है। कृश मनुष्योंको पुष्ट बनाता है। यह आसव बलकारक वाजीकरण और वन्ध्या स्त्रियोंको संतानोत्पादक है।

इस आसवका उपयोग बद्धकोष्ठमें बहुत अच्छा होता है। बद्धकोष्ठ होनेपर अन्त्रके भीतर मलका संचय अधिक होता है। मल सडता रहता है। फिर उसमेंसे दुर्गन्ध और सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है। यह विष रसैष्मिक कला द्वारा शोषित होकर रक्त आदि धातुओंमें प्रवेश करता है। इस विषके हेतुसे विविध व्याधियोंकी सृष्टि निर्माण

होती है । बार-बार बिना हेतु थकावट, पित्तविकार होकर बार-बार वमन, मलसंचय से अन्त्र चौड़े और शिथिल होजाने, उनमें वायु भरा रहना, क्षुधा, तृषानाश, जिह्वा पर मैल जमना, श्वासोच्छ्वास और मुंहमेसे दुर्गन्ध निकलना, बार-बार ज्वर होते रहना, शिरःशूल, निद्रानाश, कमरमें दर्द होना, बार-बार ज्वर आते रहना, हृदयकी शिथिलता, मानसिक अक्षमता, मूत्राघात, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गलग्रंथियोंकी वृद्धि, सर्वांग शोफ, मधुमेह, अन्य प्रकारके मेह, पाण्डुता, अन्त्रक्षय, कर्कस्फोट, आमवात, संधिवात, आढ्यवात, वातरक्त, धातुक्षय, (धातुवृद्धि होनेके बदले क्षीण होते जाना), क्षुद्रकुष्ठ, दन्तव्रण, नेत्ररोग, बाधिर्य, अकालमें वार्धक्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इन सबकी उत्पत्तिको यह भृंगराजासव रोक देता है । इसके योगसे कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विष निर्विष होजाता है, या हानि पहुंचानेके लिये समर्थ नही रहता। भृंगराजासवके साथ सिद्ध घृत या एरंड तैलके सदृश स्नेह विरेचन देनेसे विशेष लाभ होता है । (औ० गु० ध० शा०)

(२४) पर्पटाद्यरिष्ट ।

विधि—पित्तपापड़ा ४०० तोलेको ४०९६ तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें । १०२४ तोले जल शेष रहने पर उतार मसलकर छान लेवें । शीतल होनेपर गुड़ ८०० तोले, धायके फूल ६४ तोले; गिलोय, नागरमोथा, दारुहल्दी, छोटी कटेली, धमासा, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, इन ११ ओषधियोंके ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण मिला १ मासतक आसवको बन्द रखें; फिर छान लेवें । इस अरिष्टमें हम १० सेरके बदलेमें ७॥ सेर गुड़ मिलाते हैं । (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले समान जल मिलाकर देवें ।

उपयोग—पर्पटाद्यरिष्ट पाण्डु, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, कामला, हलीमक, प्लीहावृद्धि, यकृत्का शोथ और सब प्रकारके विषमज्वरको नष्ट करता है ।

इस अरिष्टमें मुख्य ओषधि पर्पट है उसमें शामक, हृद्य, पित्तशामक और वातवाहिनियोंके क्षोभको नष्ट करनेका गुण है । अतः इस अरिष्टमें अम्लपित्तके विकार में पित्तकी अम्लता और तीक्ष्णताको नष्ट करनेका उत्तम गुण है यह अरिष्ट पित्तकी विषमता नष्टकर उसमें साम्य प्रस्थापित कराता है; जिससे पाण्डुरोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है । विशेषतः पाण्डुरोगमें हृदयकी धड़कन और स्पंदकी वृद्धि होनेपर यह उपयोगी है । पाण्डुता रंजक-पित्तके नष्ट होनेसे उत्पन्न होती है । रंजक-पित्तका स्राव आमाशय, यकृत् और प्लीहामेंसे होता है; उसे इस ओषधिसे सहायता मिल जाती है ।

पित्तस्राव यकृत्मेंसे अच्छा न होने या साक्षात् पित्तांशका रक्तमें शोषण होनेपर उत्पन्न होनेवाले कामला और हलीमकमें इसका उत्तम उपयोग होता है । इनमें विरेचन ओषधि भी साथमें देनी चाहिये ।

यकृत्वृद्धिमें, कामला या प्लीहावृद्धिमें शरीर पीला बन जानेपर पर्पटाद्यरिष्टका

उपयोग होता है । यकृत् और प्लीहाकी वृद्धिमें शोथ आने या अन्य कारणोंसे शोथ होनेपर भी यह प्रयोजित होता है ।

विषमज्वरकी तीव्रावस्थामें तिक्त रसात्मक ओषधि, क्विनाइन आदि ओषधियों का उपयोग करनेपर शमन हो जाता है । परन्तु तीव्रता शमन होनेपर और जीर्णावस्थाकी प्राप्ति होनेपर इन ओषधियोंका अधिक उपयोग नहीं होता। ऐसी परिस्थितिमें तीव्र कड़वी ओषधिका उपयोग किया जाय, तो घबराहट, ज्वर, पाण्डुता, विशेषतः पीली और चिकनी वमन, अन्नपर इच्छा न होना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें विष धातुओंमें लीन रहता है । इस लीन हुए विषको नष्ट कर धातुसाम्य प्रस्थापित करनेका कार्य इस ओषधि द्वारा होता है ।

पारदके अधिक मात्रामें सेवनसे उत्पन्न विकारोंपर यह अरिष्ट उपयोगी है । जिनसे पारदकी तीक्ष्णता और उष्णता सहन नहीं होती, उनके लिये इसका अच्छा उपयोग है । (औ० गु० ध० शा०)

(२५) अरविन्दासव ।

विधि—सफेद कमल, खस, गंभारीकी छाल, नीलकमल, मजीठ, छोटी इलायची, खरैंटीमूल, जटामासी, नागरमोथा, काली अनन्तमूल, हरड, बहेडा, बच, आवला, कचुर, काली निसोत, नीलके बीज, पटोलपत्र, पित्तपापडा, अर्जुनकी छाल, मुलहठी, महुआके फूल, मुरा (अभावमें जटामासी), इन २३ ओषधियां ४-४ तोले का जौकुट चूर्ण, मुनक्का ८० तोले, धायके फूल ६४ तोले, जल २०४८ तोले, शक्कर ४०० तोले और शहद २०० तोले ले। सबको मिला अमृतबानमें भर १ मास रहने देवें परिपक्व होनेपर छान लेवें । (भै० र०)

मात्रा—बालकोंको ३ माशेसे ६ माशे और बड़े मनुष्योंको १। से २॥ तोले दिनमें २ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह आसव बालकोंके सर्व रोगोंका नाशक है, बच्चोंको पुष्ट बनाता है, अग्निको बढ़ाता है, तथा ग्रहदोषको दूर करता है ।

यह आसव बच्चोंके सब रोगोंपर उपयोगी है, ऐसा गुणपाठ है । छोटे बच्चोंको होनेवाले अस्थिवक्रता रोगपर इस ओषधिका अच्छा उपयोग होता है । इस रोगमें अस्थियोंमें विकार होता है । वह नरम बन जाती हैं, जिससे बालकोंके हाथ-पैर मुड़ जाते हैं, पतले हो जाते हैं और उनपर सलवट हो जाते हैं । नितम्ब प्रदेश बैठ जाता है इस विकारमें जीवनीय द्रव्योंकी कमी होती है । फिर धातुपोषण सम्यक् नहीं होता। इस हेतुसे अपर अवयवोंको भी योग्य पोषण नहीं मिलता, उनका व्यापार ठीक नहीं चलता । खांसी, अपचन, पतले दस्त, उदरमें अफारा, सारे दिन रोते ही रहना आदि लक्षण होते हैं । इस विकारपर यह आसव जीवनीय द्रव्यकी पूर्तिकर अग्निबल बढ़ानेका कार्य करता है ।

सुजाक रोगके पश्चात् शेष विष धातुओंमें लीन रह जाता है; जिससे मूत्रमें बार-बार जलन, मूत्र गाढ़ा हो जाना, मूत्रमें पूय या पिष्ट होना आदि लक्षण होनेपर अरविन्दासव लाभदायक है। स्त्रियोंके प्रदर विशेषतः रक्तप्रदरमें यह उपयुक्त ओषधि है। (औ० गु० ध०शा०)

(२६) कर्पूरासव।

प्रथम विधि—उत्तम पुरानी देशी शराव अथवा रेक्टीफाइड स्पिरिट १। सेर, कपूर ८ तोले, छोटी इलायची, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन और वायविड़ंग प्रत्येक १-१ तोला लेकर चूर्ण करके मिला दें। अमृतवान अथवा कांचकी बोतलोंमें १ मास बन्द रखें; बादमें छानकर भर लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१० से २० बूंद बताशेमें अथवा मिश्रीके साथ दें। कॉलेरामें आध-आध घण्टे पर। शेष रोगोंमें दिनमें ३ बार।

उपयोग—यह विसूचिका (Choler) की परम ओषधि है। इसका प्रयोग विसूचिकाकी प्रारम्भावस्थासे अन्तिमावस्थातक निर्भयता पूर्वक होता है। यदि प्रथमावस्थामें ही इसे प्रयुक्त किया जाय, तो शत प्रतिशत रोगियोंको जीवन लाभ मिल जाता है। किन्तु जब देह अति शिथिल हो जाती है। और रक्तमेंसे जलका अति ह्रास होजाता है, तब रक्तमें लवण जलके प्रदान और हृदय पौष्टिक ओषधिके साथ इसका प्रयोग किया जाय, तो लाभ होनेकी आशा रख सकते हैं। इसके अलावा अतिसार, वमन, दांतके दर्द आदिको भी दूर करता है।

दूसरी विधि—रेक्टीफाइड स्पिरिट १२ औंस, कर्पूर २ औंस और ऑइल पीपरमेंट २ औंस लेवें। पहिले स्पिरिटमें कपूरका चूर्ण मिलाकर रख दें। २-४ घण्टेमें कपूर गल जानेपर पीपरमेंटका तेल डाल अच्छी रीतिसे मिला मजबूत डाटवाली बोतल भर लें।

मात्रा—३ से १० बूंद बताशे अथवा मिश्रीके साथ दें। कॉलेरामें १-१ घण्टे के बाद देते रहें। अतिसार, पेचिश, वमन आदि रोगोंमे दिनमें २ से ४ वार दें। दांतके दर्दमें फोहा रखें।

उपयोग—यह अर्क हैजा, अतिसार, वमन, दांत और डाढ़का दर्द, सबको दूर करता है। यह कॉलेरामें आशुफलप्रद है। कॉलेराके अनेक रोगियोंके प्राण इस अर्कने बचायें हैं।

सूचना—पेशाब बन्द हो, तो मूत्रेन्द्रियमें कपूर रखें। कलमीशोरा और केसूलाको जलमें पीसकर नाभिके नीचेके भागपर लेप करें। सौफका अर्क मिला जल १-१ चम्मच पिलाते रहें या बर्फका जल १-१ चम्मच पिलावें। ज्यादा जल पिलानेसे वमन नही रुकेगी। दस्त बन्द होनेपर भी वमन न रुके, तो २-२ तोले घी या तैल २-३ बार पिलावें।

(२७) देवदार्वाद्यारिष्ट ।

विधि—देवदारु २०० तोले, अडूसेके पत्ते ८० तोले, मजिष्ठा, दन्तीमूल, इन्द्रजौ, तगर, दारुहल्दी, हल्दी, रास्ना, वायविडंग, नागरमोथा, सिरसकी छाल, खैरछाल, अर्जुनछाल, प्रत्येक ४०-४० तोले, गिलोय, चित्रकमूल, अजवायन, रक्तचंदन, कुटकी, कुडेकी छाल, प्रत्येक ३२-३२ तोले लें। सबको जौकुटकर जल ८१९२ तोले मिलाकर क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलें। शीतल होनेपर शहद १२०० तोले, धायके फूल ६४ तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची, तीनो मिलाकर १६ तोले, सोंठ, मिर्च, पीपल, तीनों मिलाकर ८ तोले, नागकेशर ८ तोले और प्रियगु १६ तोले लेकर मोटा-मोटा चूर्ण कर मिला, अमृतवानमें भर मुखमुद्रा करके १ मास रख दें, फिर छानलें। हम शहद १५ सेरके स्थान में ११। सेर मिलाते हैं। (शा० स०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें ३ बार समभाग मिलाजल मिलाकर भोजनसे पहले पिलावें।

उपयोग—देवदार्वाद्यरिष्ट सेवनसे दुस्तर वातज प्रमेह, उपदंश, पूयमेह, उपदंश आदि जन्य मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, संग्रहणी, अर्श, प्रदर, गर्भाशय दोष, कण्डू, कुष्ट इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। यह अरिष्ट रक्तशोधक है। जीर्ण उपदंश और सुजाकके उपद्रवोंको दूर करता है। मलशुद्धि करता है, और पचनक्रियाको सुधारता है।

यह अरिष्ट स्त्रियोंके गर्भाशय विकार पर अधिक हितावह है। कुमारियोंको इसका सेवन नहीं करना चाहिये। तरुण स्त्रियोंको सगर्भावस्थामें या प्रसवके पश्चात यह उपयुक्त होता है। पीडितार्त्तव, नष्टार्त्तव, अनार्त्तव, इन रोगोंमें यह हितावह है। प्रसवके पश्चात् मक्कलशूलमें इसका उत्तम उपयोग होता है। प्रसूताके ज्वरको भी दूर करता है। ज्वरके साथ गर्भाशयमेंसे स्राव बन्द होगया हो, अथवा थोडा-थोडा स्राव दुर्गन्धरहित होता हो, गर्भाशयके चारो ओर वेदना हो, तो उसकी प्रारम्भिकावस्थामें देवदार्वारिष्ट देना चाहिये। इस अवस्थामें स्रोतोरोध हो, तो ही इसका उपयोग करें। वातज या सान्निपातिक लक्षण होनेपर दशमूलारिष्ट देना चाहिये।

जीर्ण सूतिकारोगमें इसका उपयोग होता है। प्रसवके पश्चात् १० दिनमें ज्वर आने और सूतिका रोगके लक्षण उपस्थित होकर अधिक दिनोंतक रह जाय, तो देवदार्वाद्यरिष्ट देना चाहिये। गर्भाशय अशक्त और शिथिल होनेसे उत्पन्न सूतिका रोगमें ये अधिक उपयोगी हैं। कीटाणुजन्य विषप्रकोप और व्रण आदिसे उत्पन्न तीव्र विकारोंमें दशमूलारिष्ट हितकारक है। (औ० गु० ध० शा०)

(२८) रक्तशोधकारिष्ट ।

विधि—अनन्तमूल ४० तोले, मुनक्का ४० तोले, उशवा, कचनारकी छाल,

खैरकी छाल और चोपचीनी २०-२० तोले; छोटी कटेली, इन्द्रायणकी जड़, सिरसकी छाल, मंजिष्ठा, चिरायता, पित्तपापड़ा, गिलोय, मुण्डी, सरफोंका, उन्नाव, शतावरी, बबूलकी छाल, जवासेकी जड़, देवदारु, तथा नीम और बकायनकी अन्तरछाल १०-१० तोले लेवें। सबको मिला जौकुटकर २५६० तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतार मलकर छान लें। शीतल होनेपर गुड़ २॥ सेर, शहद १। सेर, धायके फूल २४ तोले, रक्तचन्दनका चूर्ण १२ तोले तथा पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर २-२ तोले मिला मुखमुद्रा करके १ मास रख देवें; फिर छान लेवें।

मात्रा—२ से ४ तोले दिनमें २ बार समान जल मिलाकर ले।

उपयोग—यह अरिष्ट रक्तमे लीन कीटाणु और विषको जलाकर शुद्ध बनाता है। उपदंशके उपद्रव—लाल काले धब्बे, सन्धिवात, कुष्ठ, वातरक्त, रक्तविकार, फोड़ा फुन्सी आदिको १ मासमें दूर करता है।

(२९) चन्दनादि अर्क।

विधि—सफेद चन्दन १० तोले; लाल चन्दन; नेत्रवाला, खस, कमलके पुष्प, गुलाबके पुष्प, नागरमोथा, गिलोय, नीमकी अन्तरछाल, धनिया, सौंफ, छोटी इलायची, शीतलमिर्च, पित्तपापड़ा, दारुहल्दी, देवदारु, धमासाकी जड़, गन्नेकी जड़, कांसकी जड, दर्भकी जड, कुशकी जड़, गोखरू, सहदेवी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, गोरखमुण्डी, गावजबां, बनफशा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पोस्तडोडे, शतावर, कौंचके बीजकी गिरी और तालमखाना, इन ३५ ओषधियोंको २-२ तोले लें। सबको जौकुट करके ८ सेर जलमें भिगो दें। २४ घण्टे बाद नलिकायन्त्रमें भेंर। फिर ६ माशे केशर और १ तोला कपूरको एक पतले कपड़ेकी पोटलीमें बांध यन्त्रके मुंहपर बाहर लटका कर मन्दाग्निसे अर्क निकाल लेवें।

मात्रा—२॥ से ५ तोले दिनमें ३ बार पिलावें।

उपयोग—यह अर्क पेशाबमे जलन, पेशाबका बूंद बूंद गिरना, पेशाबमें रक्त आना, वीर्यकी उष्णता, पित्तज प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशयमें दाह, जीर्णज्वर, क्षय रोगमें पेशाबका पीलापन, एवं सूर्यके तापमे भ्रमण से होनेवाले दाह इत्यादिको दूर करता है। रक्तमें संचित विषको मूत्रद्वारा बाहर निकालकर प्रकृतिको स्वस्थ बनाता है।

(३०) महाद्राक्षासव।

विधि—मुनक्का १। सेर, मिश्री ५ सेर, झरबेरीकी जड़की छाल ५० तोले, धायके फूल २५ तोले; चिकनी सुपारी, लौंग, जावित्री जायफल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागकेशर, रूमीमस्तंगी, कमलकंद, अकलकरा और मीठा कूट, ये १५ ओषधियां १०-१० तोले ले। सबको ४ गुने (१६, सेर) जलमें

मिलाकर अमृतबानमें भरें। मुहपर कपडमिट्टी करके १४ दिन रहने दें। शीत कालमें २-४ रोज अधिक रखना पडेगा। फिर परीक्षा करके निकालें। यदि कच्चा हो तो पुन मुखमुद्रा करके ३ दिन रहने दें। अपक्व आसवको निकाल लिया जायगा, तो अर्क बहुत खट्टा बन जायगा। पश्चात् कच्छपयन्त्र (वारुणीयन्त्र) या नलिकायन्त्रमें डालकर अर्क निकाल लेवे। फिर निकले हुए अर्कमेंसे दूसरी बार अर्क निकालें, और इस समय २ तोले केशर और ३ माशे कस्तूरी मिला एक कपडेकी पोटलीमें बांधकर यन्त्रके मुहपर बाहर लटका दें। पश्चात् अर्कको कांचके बरतनोंमें ३ दिन बन्द रखें बादमें सेवन करें। (यो० चि०)

सूचना—शराब निकालनेके पुराने घडेमें पाक जल्दी होता है। अमृत बान और नये घडेमें लगभग १ मास लग जाता है

मात्रा—२॥ से ५ तोले तक दिनमें ३ बार लेवें। ऊपरसे स्निग्ध मधुर पदार्थका भोजन करना चाहिये।

उपयोग—यह आसव कास, श्वास, राजयक्ष्मा, निर्बलता, निद्रानाश, मानसिक श्रम, अरुचि, मलावरोध, मन्दाग्नि, शिरदर्द आदि रोगोंको दूर करता है, तथा बल वीर्यकी वृद्धिकर वलीपलितको नाश करता है। अधिक मात्रा होनेपर नशा लाता है, अत मात्रा कम देवें।

(३१) बालबन्धु अर्क।

विधि—कलीचूना, २ तोले, मिश्री ४ तोले और जल ३० तोले मिलाकर घोल दें। चूना नीचे बैठ जानेपर साफ जलको नितार ले। (धन्वन्तरि)

मात्रा—३ मासके बच्चेको ५ से १० बूंद। १ वर्ष तक २० से २५ बूंद ३ वर्ष तक ४० से ५० बूंद दूध मिलाकर पिलावें।

उपयोग—इस अर्कके सेवनसे आमाशय रसकी विकृति से उत्पन्न बालकों के अपचन, दूध फेंकना, उदरपीडा, जुकाम, मन्दाग्नि, कब्ज आदि रोग दूर होकर वे नीरोग और बलवान बन जाते हैं।

(३२) नींबू द्राव।

विधि—नौसादर, कलमीशोरा, सोहागेका फूला, फिटकरीका फूला, सज्जीखार और जवाखार २०-२० तोले मिला कूटकर चूर्ण करें। फिर नींबूका रस २ सेर मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्राकर एक मास रक्खें, पश्चात् छानकर बोतलमें भर लें। (र० त०)

मात्रा—५ से १० बूंद मिश्रीमें मिलाकर पिलावें, अथवा २॥ तोले जलमें मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह द्राव गुल्मरोगको थोडे ही दिनोंमें दूर करता है। प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, उदररोग और शूलको भी नष्ट करता है।

(३३) उदरामृत योग।

विधि—घीकुंवारका रस, मूलीका रस, नींबूका रस २०-२० तोले, अदरखका रस ५ तोले, सोहागेका फूला, नौसादर, चित्रकमूल, पीपलामूल, भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, भुना जीरा, अजवायन, लोह भस्म प्रत्येक १-१ तोला, इन सबको बोतलमें डालकर ७ दिन धूपमें रक्खें; बादमें छानकर बोतलमें भरें।

(धन्वन्तरि)

मात्रा—३ माशेसे १ तोला दिनमें २ बार भोजनके बाद २॥ तोले जल मिला कर पिलावें।

उपयोग—यह अर्क उदररोग, प्लीहा, यकृद्दोष, पाण्डु, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, मन्दाग्नि, कब्ज और शूल आदि रोगोंको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है।

(३४) लघुशंख द्राव।

विधि—नौसादर, कलमीशोरा, फिटकरी और जवाखार, चारोंको समभाग लेकर नींबूके रसमें खरल करें। फिर गेहूंके आटेकी दो मोटी रोटी बना, एकके ऊपर उपरोक्त कल्क रखकर उसकी किनारी मोड़ दें। ऊपर दूसरी रोटी ढक सन्धिको जल लगाकर बन्द करें। फिर तवेपर दोनों ओर पकाकर लाल करें। पश्चात् हिलाकर देखें। जल हिलनेपर रोटीमें एक ओर सलाईसे छेदकर रसको चीनीके प्यालेमें सम्हालपूर्वक निकाल लें।

मात्रा—५ से १० बूंद तक २॥ से ५ तोले जल मिलाकर दिनमें २ बार पिलावें। यह शंखद्राव थोड़े दिनोंतक अच्छा रहता है।

उपयोग—यह द्राव गुल्म, अफारा, शूल, यकृद्दोष, प्लीहा, अश्मरी इत्यादि को दूर करनेमें अति लाभदायक है। पथरीको गलाकर निकाल देता है, और तकलीफ भी नही होती।

(३५) शंख द्राव।

विधि—सैंधानमक, कालानमक, बिडनमक, समुद्रनमक ५-५ तोले, सांभर नमक १८ तोले, सज्जीखार १९ तोले, कलमीशोरा २० तोले, फिटकरी ९ तोले, नौसादर ४॥ तोले, कसीस २॥ तोले और सोहागा २॥ तोले, सबको एकत्रकर चौगुने नींबूके रसमें मिला, चीनी मिट्टीके तेजाब रखने लायक पात्रमें डालकर धूपमें रख दें और प्रतिदिन लकड़ीसे चला दिया करें। ७ दिनके पश्चात् मिट्टी या चीनी मिट्टीके वारुणी-यन्त्रसे अर्क निकाल लें।

मात्रा—१० से ६० बूंद दिनमें २ बार २॥ तोले जलके साथ भोजनके बाद दें।

उपयोग—यह द्राव गुल्म, शूल, उदररोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, अग्निमांद्य, संग्रहणी आदि रोगोंको दूर करता है।

शंखद्राव दीपन-पाचन (आमाशयपौष्टिक), यकृद्बल्य, उदरशोधन, गुल्मघ्न और अश्मरीनाशक है । यह उग्र तेजाब होनेसे इसका सेवन सर्वदा कम मात्रामें करना चाहिये । यह बहुधा लवणाम्ल (Acid Hydro Chloric) और शोरकाम्ल (Acid Nitric) के मिश्रण (जलयुक्त) के समान बन जाता है । इसका योग एसिड नाइट्रोम्युरेटिक डिल० के नामसे केमिस्टोंके यहां मिलता है ।

जब आमाशयके पित्तकी उत्पत्ति योग्य न होती हो, बहुत कम स्राव होता हो अथवा पित्त कम तेज हो, तब इस शंखद्रावका उपयोग हितावह है । भारी भोजन, अपथ्य सेवन या दूषित भोजनमें अपचन होकर दुर्गन्धयुक्त आहारमय वमन होती हो, दूषित डकार आती हो, उदरशूल चलता हो, ऐसी अवस्थामें २-२ घण्टेपर २-३ बार शंखद्रावका प्रयोग करनेपर सब उदरविकार निवृत्त हो जाते हैं ।

उदरमें वातप्रधान गुल्म जो वातवर्द्धक पदार्थका सेवन करनेपर उत्पन्न होता है और वायु शमन होनेपर दूर हो जाता हो, उस विकारको यह नष्ट करता है अर्थात् पचनसंस्थाको सबल बनाकर गुल्मोत्पत्तिको रोक देता है । इस विकारमें अफारा, मलावरोध, अपानवायुका अवरोध और अन्न पचन हो जानेपर उदरका खिचावादि लक्षण प्रतीत होते हैं । इसतरह कफज गुल्म होनेपर श्लैष्मिकावरणपर मेदके सदृश मुलायम बड़ी गांठ भासती है । उबाक, अरुचि, कास, हाथ-पैर टूटना, रोंगटे खड़े होना और अंगमें भारीपनादि लक्षण उपस्थित होते हैं । इसकी प्रथमावस्थामें यदि शंखद्राव सेवन १-२ मासतक कराया जाय, तो गुल्म गल जाता है । अधिक शराब पीनेका व्यसन, रक्तवर्द्धक औषधिका अतियोग अथवा कीटाणु विषप्रकोपसे यकृत्में रक्तसंग्रह हो जाता है । फिर यकृत्में भारीपन, अन्नकी पचनक्रिया और मूत्रमें विकृति आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं । उसपर शंखद्राव दिनमें ३ बार थोड़े दिनोंतक देते रहनेसे लाभ हो जाता है । इस तरह ज्वरादि रोगमें यकृत्की वृद्धि होजानेपर भी शंखद्रावका सेवन कराया जाता है ।

वक्तव्य—यह द्राव उग्र होनेसे छोटे बालकोंको नहीं देना चाहिये । बालकोंको कुमार्यासव या गोमूत्र सदृश सौम्य औषधि देनी चाहिये ।

पित्तनलिकामें प्रदाह होकर कामला उत्पन्न हुआ हो, पित्ताशय या पित्तनलिकामें मल न चलता हो तो शंखद्रावका सेवन ३ दिन तक दिनमें ३ बार कराते रहने और भोजनमें मट्ठा और भात देनेसे कामला दूर हो जाता है ।

वातज अश्मरी अर्थात् ऑक्जलिक एसिड (Oxalic Acid) के क्षारसे बनी हुई अश्मरी विशेष दुःखदायी और कठोर होती है । इसकी रचना वृक्कमें होनेपर कुछ कुछ दिनोंके बाद (गविनीमें अणुका प्रवेश होनेपर) तीव्रशूल उत्पन्न होता है । उसकी प्रथमावस्थामें शर्करा या सिकताको दूर करने और उत्पत्तिको रोकनेमें शंखद्राव हितावह है । यदि मूत्राशयमें अश्मरी बनती हो या सिकतासे मार्गावरोध होनेपर मूत्रकृच्छ्र होता हो, तो उसका भेदन यह सरलतासे कर देता है ।

सूचना--(१) अश्मरी और वृक्कशूलके रोगीको तमाखूका व्यसन हो, तो छुड़ा देना चाहिये । अश्मरीके रोगीको चाहिये कि प्रवाल, मुक्तादि चूने प्रधान औषधिका सेवन न करें ।

(२) आमाशयके पित्तमे उग्रता आई हो, छातीमें दाह रहता हो, तो इस द्रावका सेवन नहीं करना चाहिये ।

अन्त्रमेंसे रस शोषण क्रिया शिथिल होनेसे पतले दस्त होते रहते हों अथवा सूक्ष्म उदरकृमिके प्रकोपसे अपचन होकर पतले दस्त होते हों और त्वचापर कण्डू आती रहती हो,, तो शंखद्रावका सेवन कुछ दिनोंतक करानेपर पचनक्रिया सुधरकर अतिसार और अपचन शमन हो जाते हैं ।

सूचना--यह एक प्रकारका तेजाब है । सम्हालकर उपयोग करें । केवल तेजाब पिलानेसे दांतोंमें लगेगा तो दांत गिर जायेंगे । अतःजल मिलाकर उपयोग करना चाहिये । इस अर्कको धातुके यन्त्रमें नहीं निकालना चाहिये ।

[३६] जम्भीरी द्राव ।

विधि--जम्भीरी नींबूका रस २॥ सेर; भुनी हींग २ तोले, अजवायन, सोंठ, पीपल, मिर्च, बायविड़ंग, लोंग, शोरा और छोटी हरड़ ५-५ तोले, सैंधानमक २५ तोले और राई १० तोले लें। सबको कूट जम्भीरीके रसमें डालकर १ मास रक्खें। फिर छानकर काममें लें । (आ० भि०)

मात्रा--१। से २॥ तोले भोजनके १॥-२ घण्टे बाद दिनमें २ बार जल मिलाकर पीवें । अधिक वेदना होती हो, तो शंख भस्म १ माशा मिलाकर पिलावें ।

उपयोग--इस द्रावके सेवनसे यकृत्, प्लीहा, गुल्म, शूल, अफारा, अजीर्ण और मलावरोध दूर होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है ।

जम्भीरी द्राव सौम्य और उत्तम दीपन-पाचन, शूलहर और कृमिघ्न है । आमाशय रसस्रावके ह्राससे उत्पन्न अग्निमांद्य, अपचन, उदरशूल, अफारा और मलावरोधको दूर करनेके लिये उपयोगी है। नूतन अपचन हुआ हो तो १-२ बार सेवन करानेसे ही लाभ हो जाता है । किन्तु दीर्घकालसे अग्निमांद्य, अजीर्णादि रोग हुआ हो तो दिनमें २ या ३ बार कुछ दिनों तक सेवन कराते रहना चाहिये ।

यदि यकृत्वृद्धि, यकृत्में रक्तसंग्रह, प्लीहावृद्धि अथवा उदरमें वातप्रधान गुल्म या कफज गुल्म हो तो उसे भी यह नष्ट कर देता है। इन रोगोंपर दिनमें ३ बार शंख-भस्म या अन्य यकृत् पौष्टिक औषधि (मण्डूर भस्म, आरोग्यवर्द्धिनी या अन्य) के साथ एकाध मासतक पथ्यपालनसह सेवन कराना चाहिये ।

सूचना--आमाशयमें व्रण, आमाशयविद्रधि और अम्लपित्त प्रधान रोगोंपर इस द्रावका उपयोग नहीं करना चाहिये ।

[३७] गाजरका अर्क

विधि---गाजर १ सेर, गावजवा १० तोले, गावजवाके फूल, सफेद चन्दन, तोदरी लाल और वहमन सफेद ५-५ तोले ले। सबको ८ सेर जलमें मिलाकर नलिकायन्त्र द्वारा ४ बोतल अर्क खीचले ।

मात्रा---१ से २ छटाक दिनमें ३ बार पिलावें ।

उपयोग---यह अर्क हृदयकी धडकन, शारीरिक निर्बलता और मदाग्निको दूर करता है। वातवाहिनियोको सबल बनाता है। मूत्रको साफ लाता है। एव अजजा और यमला हिक्का, श्वास, अर्श, शोथ, अतिसार और कामला रोगियोके लिये हितकर है। सगर्भा स्त्रीको इस अर्कका सेवन नही कराना चाहिये ।कारण, गाजर गर्भाशयको उत्तेजित करता है ।

(३८) किराताादि अर्क ।

विधि---चिरायता, कुटकी, नीमकी अतरछाल, सोंठ, हरड, धमासा, पटोल-पत्र, लाल चन्दन, नागरमोथा और खस, इन १० औषधियोको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। फिर ८ गुने जलमे रात्रिको भिगोकर सुबह नलिकायन्त्रद्वारा अर्क खीचले।

मात्रा---२॥-२॥ तोले अर्क ३-३ घण्टे बाद ३ बार पिलावें ।

उपयोग---यह अर्क विषमज्वर-सतत, अन्येद्यु, तृतीयक, चातुर्थिक आदि चढे हुए तापमें दिया जाता है। प्रवालपिष्टीके साथ देनेसे ज्वरके विषको जल्दी जला देता है, और तत्काल वेगका शमन करके तापको उतार देता है । प्राय एकही दिनमें दोषका पचन करा देता है, जिससे पारी छुट जाती है। इस औषधिसे रोगीके हृदय आदि अवयवोको हानि नही पहुचती, एव निर्बलता नही आती। इनके अतिरिक्त अन्य सब प्रकारके ज्वरोंमें भी यह लाभ पहुचाता है ।

[३९] मेदोहर अर्क ।

विधि---गोमूत्रको मिट्टीके नलिका-यन्त्रमे भरकर अर्क खीचले । अर्क निकलनेके मुहपर १० बोतल अर्कके लिये ३ माशे केशरको पतले कपडेकी शिथिल पोटलीमें बाधकर रखें । जिससे अर्कमें केशर मिश्रित होजाय ।

(वैद्य श्री वशीधरजी आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा---१ से २ औस दिनमें २ या ३ बार १-१ तोला शहद मिलाकर लेवें ।

उपयोग---यह अर्क मेदवृद्धि, दुर्गन्धयुक्त पसीना आना, हृदयमें पीडा, शोथ, उदरशूल, यकृत्में शूल, रक्तविकार, मन्द-मन्द ज्वर, थोडे परिश्रमसे श्वास बढ जाना, बेचैनी, प्रमेह आदि दोषोको दूर करता है। मेदवृद्धिमें अभ्रक प्रधान लक्ष्मीविलासरस या चन्द्रप्रभावटीके साथ इस अर्कका सेवन करनेसे सत्वर लाभ होता है ।

सूचना—यदि इस अर्ककी मात्रा अधिक ली जायगी, या शहद कम मिलाया जायगा, तो व्याकुलता होने लगती है। फिर एकाध दस्त लग जाता है; पसीना आजाता है, और कुछ मिनटोंके लिये निर्बलता आजाती है।

(४०) कर्पूरधारा (जीवन रसायन अर्क)

विधि—कपूर १० तोले, पीपरमेंटके फूल ५ तोले, थाइमोल (अजवायनके फूल) ५ तोले, बेंजोइक एसिड (लोबानके फूल) २॥ तोले लें। पहले कपूर, पीपरमेंट और थाईमोलको मिलावे। जल हो जाने पर एसिड मिलादे।

मात्रा—२ से ५ बूंद तक दिनमें ३ से ४ बार बताशेमें या शक्करके साथ अथवा जलमें देवें।

अनुपान—हैजेमें आध-आध घण्टे पर बताशेमें देते रहें। जल बहुत थोड़ा-थोड़ा (चम्मचसे) पिलावें। और रोगोमे दिनमें २ से ३ बार दे। दांत और डाढ़के दर्दमें फोहा रक्खें और २ से ५ बूंद तक जलके साथ पिलावें। त्वचारोगमे ८ गुना तिलका तेल मिलाकर मालिश करें, और दिनमें ३ बार २-४ बूंद जलमें मिलाकर पिलावें। कर्णरोगमे १ माशा तिलका तेल गरम करे, गुनागुना रहे, तब उसमें चौथा हिस्सा अर्क मिलाकर २-२ बूंद कानमें डालें।

उपयोग—यह अर्क हैजा, अतिसार, मन्दाग्नि, खांसी, अरुचि, उदरशूल, वमन, रक्तविकार, आमवात, अजीर्ण, कर्णपीड़ा, शिरदर्द, ज्वर, कफविकार, जुकाम, डाढ़में चीस चलना, दातोंकी पीड़ा, कण्डू आदिको दूर करता है।

(४१) ज्वरहर अर्क।

विधि—नौसादर और चूना १०-१० तोले लेकर एक चीनी मिट्टीके बरतनमें डालें। ऊपरसे ईखका सिरका या एसेटिक एसिड या सल्फ्यूरिक एसिड १०% २० तोले डाले। झाग उतर जांय तब जल २ सेर मिलाकर रहने दे। जल ऊपरसे स्वच्छ हो जाय तब बोतलमें भर लेवें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ तोले तीन-तीन घण्टेके बाद ३ बार सौंफका अर्क अथवा जलं मिलाकर पिलावे।

उपयोग—इस अर्कके सेवनसे नवीन ज्वर पसीना आकर सत्वर उतर जाता है। पेशाब साफ आता है। कफप्रधान ज्वर, अजीर्ण ज्वर और इन्फ्लुएंजामें यह उपयोगी है।

(४२) शोथनाशक अर्क।

विधि—सोंठ १ तोला, हीराबोल २ तोले, आमाहल्दी ५ तोले, मैदा लकड़ी ५ तोले; उसारेरेवन, सज्जीखार, लोद, कपूर, और फिटकरी, ये ५ ओषधियां २॥-२॥ तोले लें। सबको जौकुट कर २४ औंस मेथीलेटेड स्पिरिटमें डाल दे। रोज बोतलको

३-४ बार चला देवें । तथा रोज शीशको १-२ घण्टे सूर्यके तापमें रक्खें । एक सप्ताह पश्चात् वस्त्रसे छानकर बोतलमें भरें। (श्री गोपालजी कुवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग—इस अर्कको सूजन, वेदना, चोट लगना, रक्त जमजाना आदिपर रुईके फोहेसे दिनमें एक या दो बार लगा लेनेसे बहुत जल्दी आराम होजाता है । यह ओषधि टिंचर आयोडीनका कार्य करती है ।

(४३) लाक्षा अर्क।

विधि—१० तोले लाखको २० औंस मेथीलेटेड स्पिरिटमें मिलावें । आध घण्टेमें रस होकर अर्क बन जाता है ।

उपयोग—शस्त्र लगने अथवा चोटसे रक्त निकलनेके स्थानपर इस अर्कमें रुईकी पट्टी भिगोकर लगा देनेसे तुरन्त रक्तस्राव बन्द होजाता है। इससे घावपर पट्टी चिपक जाती है । फिर विजातीय द्रव्यका बाहरसे प्रवेश नहीं होता ।जिससे घाव नहीं पकता । जब यह घाव भरजाता है और त्वचा मिलजाती है तब ३-४ दिन बाद वह पट्टी खुल जाती है ।

वक्तव्य—कितनेक चिकित्सक लाखके स्थानपर लोहबान पुष्प (Acid Benzoic) मिलाकर टिंचर बेंजोइक बनाते हैं । यह भी अच्छा कार्य करता है ।

यदि शस्त्र दूषित होनेसे या मिट्टी, धूल आदि लगनेसे घावमें विजातीय द्रव्य रहगया हो, तो पहले त्रिफला क्वाथ, बोरिक लोशन (टंकणाम्बुद्रव) या अन्य किसी कीटाणुनाशक धावनसे घावको धोना चाहिये ।

(४४) स्त्रीरोगदान्तक अर्क।

विधि—अशोकारिष्ट ६ औंस, आइल कोपायबा १॥ ड्राम, आइल सेन्डलवुड (चन्दनका तैल) ३० बूद, टिंचर केथारीडीस १५ बूद,लाईकर फेरी ४ ड्राम,अरबी गोंद(गम एकेसिया) १५ ग्रेन और एक्वा केम्फर कन्सटेड १॥ ड्राम ले । गोंदको २ औंस वाष्पजलमें मिलावें । फिर छानकर उसके साथ तैल मिलावें । अशोकारिष्टमें शेष ओषधि मिलावें । बादमें सबको मिला १२ औंसमें कम हो, उतना वाष्प जल डाल और लेवें ।

मात्रा—१-१ ड्राम दिनमें ३ बार २॥-२॥ तोले जलके साथ दें ।

उपयोग—इस अर्कके उपयोगसे स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, नीलप्रदर, गर्भाशयमें दाह, मासिक-धर्ममें अनियमितता, मासिक-धर्मके समय गर्भाशयमें शूल चलना, गर्भाशय विकृतिजनित मलावरोध, बेचैनी अरुची, नेत्रदाह, शिरदर्द, हाथ-पैर टूटना, अपचन आदि, ये सब विकार दूर होते हैं जीर्ण रोगमें अर्क २-३ मास तक पथ्यपालनसह लेना चाहिये ।

जब किसी भी कारणसे गर्भाशयमें उग्रता उत्पन्न होने, प्रदाह होने, दूषित अथवा द्रव्य सगृहीत होनेसे प्रदरोत्पत्ति हुई हो तब यह अर्क पिलाते रहनेसे थोडे समयमें ही लाभ पहुच जाता है । यह उत्तम गर्भाशयशोधन औषधि है । गर्भाशयके साथ यदि मूत्र

संस्थामें भी विकृति होगई हो तो उसे भी यह अर्क दूरकर देता है। इस अर्कके सेवनसे मूत्रदाह, मूत्र बूंद-बूंद गिरना, मूत्रका पीलापन, मूत्रावरोध आदि दोष दूर होजाते हैं।

यह अर्क मूल सुजाकके उपद्रवोंसे पीड़ित रुग्णाके लिये तैयार किया था। फिर इसका उपयोग सुजाक रहित रोगियोंपर भी किया गया। अनेकोंको लाभ होनेसे पाठ जैसाका वैसा दे दिया है। अभीतक इस अर्कका उपयोग १०,०००रुग्णाओंसे अधिक पर हो चुका है। यह अति निर्भय और उत्तम औषधि है।

सूचना—यदि पूयमय प्रदर हो, प्रदरमें दुर्गन्ध आती हो, तो गर्भाशयको कीटाणुनाशक धावनसे धोते रहें। फिर धातक्यादि तैल या नतादि तैलकी पिचकारी लगाते रहना चाहिये।

(४५) ज्वरमुरारि अर्क।

विधि—क्विनाईन सल्फास (हावर्ड) २ औंस, एसिड सल्फ्युरिक डाइल्युट ४ औंस, टिंक्चर नक्सवॉमिका १। औंस, टिंचर डिजिटेलिस ४ औंस, ऑइल पीपरमेंट ३० मिनिम, मेगनेशिया कार्ब २ ड्राम और डिस्टिल्ड वॉटर (परिश्रुत सलिल) २० औंस लें। क्विनाइनको थोड़े बाष्प जलमें मिला, फिर एसिडके साथ मिलावे तथा ऑइल पीपरमेंटको मेगनेशिया कार्बके साथ मिलाकर उसमे बाष्प जल मिला दें। पश्चात् सबको मिला लेवें। रंग मिलाना हो, तो १ औंस अर्कमें ३० बूंदके अनुपात रासबरी कलर मिला लेवें।

एसिड सल्फ्यूरिक डाइल्युट बनानेके लिये १ औंस वजन किये गंधकके तेजाबको ९ औंस जलमें मिलाना चाहिये। जलको तेजाबपर न डाले। तेजाबको जलपर डाल दें; फिर चलाकर रहने दे। जल शीतल हो जानेपर काममें लावें १० औंस जलमें जितना कम रहा हो उतना (३ ड्राम) जल मिला लेवे अथवा एक औंस नापसे लिये हुए गन्धक के तेजाबको १४॥ औंस जलमें मिला लेनेसे डाइल्युट होजाता है।

सूचना—अर्क तैयार होनेपर उतना परिस्रुत सलिल मिला लेवें कि एक मात्रामें क्विनाइन ४ ग्रेन और एक पौण्ड क्विनाइनमेंसे २० पौंड अर्क बन जाय।

मात्रा—½ से १ ड्राम तक १-१ औंस जलके साथ दिनमें ३ वार दें। बालकोंको मात्रा कम दें। पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको पहिले दूध पिलाकर ऊपरसे अर्क पिलावें। अथवा पित्तशमनार्थ यह अर्क या क्विनाइनवाली कोई भी औषधि देनेके ३ घण्टे पहिले सोडाबाईकार्ब २० ग्रेन जलमें मिलाकर पिला देवें; तथा अर्क देनेके समय भी पुनः २० ग्रेन सोडाबाईकार्बको जलमें मिलाकर पिला देवें। सोडाका सेवन करा देनेसे रक्तकी प्रतिक्रिया क्षारीय बन जाती है। जिससे मस्तिष्कमें उष्णता नहीं बढ़ती और वमन घबराहट, निद्रानाश आदि लक्षणभी उपस्थित नहीं होते।

उपयोग—ठण्डी लगकर आनेवाले ज्वर सब प्रकारके विषम ज्वर-एकाहिक तृतीयक चातुर्थक आदि एक दिनमें ही चले जाते हैं। पालीके बुखारमें जिस दिनकी पाली हो उस दिन रोगीको खानेको कुछ भी न दें। अति निर्बल रोगी हो या बालक हो तो थोड़ा दूध पिलावें और बुखार आने पर ६ घण्टे पहले औषधिकी १ मात्रा दे दें। फिर २-२ घण्टेपर दो बार औषधि देनेसे एक ही दिनमें ज्वर रुक जाता है। ज्वरका समय चला जानेपर रोगीको क्षुधा लगनेपर दूध दें। भोजन दूसरे दिन करावे। उस दिन स्नान भी नहीं कराना चाहिये। पालीके दिनसे अन्य दिनोंमें औषधि ३ बार देते रहें।

यह अर्क सौम्य विषमज्वर तथा घातक विषमज्वर सबपर हितावह है। सन्तत-ज्वर (Malarial Remmittent Fever), सततज्वर(Double Quotation Fever) सौम्यतृतीयक ज्वर (Quotidian Fever) एकाहिकज्वर (obvaltertian Fever) (Benigntertian Fever), मृदु तृतीयकज्वर (Malignant Tertian Fever) चातु-ज्वर (Benigntertian Fever), गम्भीर तृतीयकज्वर (Malignant Tertian Fever) चातु-र्थिक ज्वर (Quartan Fever) इन सबपर इस अर्कका उपयोग होता रहता है। अभीतक एक लक्षसे अधिक रोगियोंपर यह अर्क व्यवहृत हो चुका है। यह अति सफल प्रयोग सिद्ध हुआ है।

कितनेक रोगियोंको ज्वर ९९॥ से कम नहीं होता। बढ़कर १०४ तक होजाता है। रोगीकी अवस्था अति भयप्रद मानी जाती है। ऐसे रोगियोंपर भी इस अर्कने जादूके समान कार्य किया है। कितनेक रोगियोंको चातुर्थिक ज्वर महीनोंतक नहीं छोड़ता। ऐसे पीडित अनेक रोगियोंको यह अर्क दिया गया है। जिनकी देह हार्डपिंजर जैसी शुष्क और निस्तेज बन गई थी। उनमेंसे अनेकोंको ३ दिन अर्क पिलाने मात्रसे ज्वर चला गया था। किसी किसीको ७ दिनतक देना पड़ा है। इस अर्कसे सबको लाभ पहुचा है। कभी किसीको हानि नहीं हुई।

मलेरियाके अतिरिक्त पूयज्वर (Pyaemia), आमवातिक ज्वर(Rheumatic (Fever), परिवर्तितज्वर (Relapsing Fever), राजयक्ष्माके ज्वर, वातश्लैष्मिकज्वर (Influenza), प्रसवजनितज्वर, सूतिकाज्वर Puerperal Fever) और आगन्तुक ज्वर आदि रोगोंपर भी इस अर्कका उपयोग निर्भयतापूर्वक किया जाता है।

वक्तव्य —जिन रोगियोंके रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, उनमे क्विनाइन सहन नहीं होता। उनको क्विनाइन देनेपर मस्तिष्कमें उष्णता, निद्रानाश, रक्तदबाव-वृद्धि, वृक्कोंके कार्यमें शिथिलता और थोड़ा थोड़ा मूत्रत्याग होना आदि लक्षण उप-स्थित होते है। अतः इन रोगियोंको क्विनाइन मिश्रित औषधि देनेसे २०-३० मिनट पहले सोडाबाई कार्ब १ माशेको १०-२० तोले जलमें मिलाकर दे देना चाहिये। या अन्य क्षार देकर रक्तको क्षारीय बना देना चाहिये। रक्त क्षारीय होनेपर क्विनाइन सेवनके बादमें मूत्रशुद्धि होती रहती है। विष विकारके चिन्ह उपस्थित नहीं होतेऔर क्विनाइनसे योग्य लाभ मिल जाता है।

[४६] चांदीका तिजाब।

विधि—रौप्यक्षार (सिल्वर नाइट्रास) १ तोले और गन्धकका तेजाब १ तोलेको चीनी मिट्टीकी प्यालीमें भरकर कोयलोंकी जलती हुई सिगडी पर रखें।१५-२० मिनटमें तेजाब जलकर चांदीकी भस्म तैयार हो जायगी। फिर गन्धक आंवलासार २० तोलेको ३ दिन खरल करें। चौथे रोज थोड़ा-थोड़ा गुलाबजल मिलाकर खरल करें। ३-४ रोज खरल करनेसे गुलाबजल अच्छी तरह मिल जाता है। फिर बोतल्में भरें। ६० तोले गुलाबजलमेंसे घट गया हो, उतना और गुलाबजल तथा चांदीकी भस्म मिला दे। (श्री० ठा० रघुरामसिंह)जी

उपयोग—पहिले बालोको साबुनसे धोकर ब्रुशसे थोड़ा तिजाब लगावें। सूखनेके बाद बाल धो दें। और जगह तिजाब लगकर काला दाग हो जाय, तो तैल अथवा घीसे हाथ लगाकर साफ कर लें। पहिले रोज रग थोड़ा कम आवेगा। तीसरे समय लगानेसे नैसर्गिक बालोंका रग आजाता है।

पाक-अवलेह-शर्बताधिकार

नाजुक प्रकृतिवाले, बालक, स्त्री, वृद्ध, पुराने रोगी अथवा जो कड़वे चूर्ण आदि सेवन न कर सकें और जो भस्म आदि औषधियोंके अनधिकारी हों; उनके लिए पाक, अवलेह आदि औषधियां विशेष अनुकूल रहती हैं। पाक आदि ओषधि स्वादिष्ट होनेसे सब कोई सप्रेम ग्रहण कर सकते हैं। ये औषधियां शीघ्र पचन होनेसे, रस-रक्तमें मिलकर रोगोंको दूर करती हैं और शरीरको सुदृढ़ बनाती हैं। भस्म जिसको लाभ नहीं पहुंचाती, उनको यदि पाक अथवा अवलेहमें मिलाकर दी जांय, तो वे अपना लाभ अवश्य पहुंचाती हैं।

पाक और अवलेह बनानेकी विधि ओषधिकृति प्रकरणमें लिखी है। माजून यूनानी हिकमतवालोंका है। वे लोग शहदको उबालकर ऊपर आनेवाले मैलको निकाल देते हैं। शेष रहे हुए शुद्ध शहदको माजूनके चूर्णके साथ मिला लेते हैं। किन्तु आयुर्वेदने शहदको विष माना है; जिससे शहदको तपाना आयुर्वेदके नियमके विरुद्ध है। इसलिये शहदको बिना गरम किये मिलाया जाय, तो भी ओषधि प्रयोग न्यून गुणवाला नहीं होता।

कुछ शर्बत इस प्रकरणके अन्तमें दिये हैं। अनेक समय पर शर्बत रूपसे ओषधियां देनी पड़ती हैं; अथवा अन्य ओषधिके साथ अनुपान रूपसे शर्बत मिलाना पड़ता है शर्बत स्वादिष्ट होनेसे सब कोई ग्रहण कर सकते हैं, जिससे स्वादके साथ-साथ ओषधिका लाभ भी पहुंच जाता है।

पाक-सेवन प्रायः दिनमें १ बार प्रातःकाल होता है। अनेक पाकोंमें भस्म मिलानेको लिखा है। उनको यदि न मिलावें या न्यूनांशमें मिलावें, तो कोई दोष नही होता; पाक विशेष सौम्य बनता है। केवल भस्मोंका लाभ नहीं मिलता। अवलेह और माजूनका सेवन दिनमें २ बार किया जाता है। भस्म मिले पाक; अवलेह और माजून, सबकी मात्रा नियमित न होनेसे सबके साथ दी है।

(१) सौभाग्यसुंठी पाक।

प्रथम विधि—सोंठके ३२ तोले चूर्णको घीकी भावना (मौण) देकर ४ सेर गायके दूधमें मिलाकर खोवा बनावें। फिर खोवेमें थोड़ा २ घी डालते जांय और हिलाते जांय। १ सेर घी डालनेसे दाना अलग-अलग पड़ेगा। बादमें ४ सेर मिश्रीकी चाशनी कर उसमें खोवा डालदे। फिर धनिया ३ माशे, सौंफ १। तोले, बायबिड़ंग, सोंठ, नागकेशर, कालीमिच, पीपल और मोथा ४-४ तोलेका चूर्ण तथा थोड़े-थोड़े बादाम, पिस्ता, चिरौंजी मिलाकर पाक तैयार करें। (घ० वै०)

वक्तव्य—इस पाठमें मूल ग्रंथकारने धनिया ३ माशे और सौंफ १। तोला

लिया है। उनके स्थानपर हम ४-४ तोले मिलाते हैं।

मात्रा—५-५ तोले रोज सुबह खिलाकर ऊपर दूध पिलावें ।

उपयोग—सौभाग्यसुंठी पाक वातनाडीपौष्टिक, अग्निप्रदीपक, यकृद्बल-वर्द्धक, कीटाणु-नाशक, स्तन्योत्पादक और अन्त्रशोधक है। इस पाकके सेवनसे स्त्रियोंके प्रसूति (सुवा) रोग, वातरोग, प्यास, वमन, ज्वर, दाह, शोष, श्वास, खासी, तिल्ली, कृमि इत्यादि विकार नाश होते हैं ।

सूचना—यदि प्रसूताको निद्रा नाश, मुखपाक, छातीमें जलन, खट्टी डकार आना या गरम गरम पतले दस्त होना आदि विकार हो तो इस पाकका सेवन नहीं करना चाहिये ।

द्वितीय विधि—१९२ तोले सोंठके चूर्णको समभाग घृत मिलाकर भूनें। फिर ७६८ तोले दूध मिलाकर उबालें। आधा दूध शेष रहे, तब १९२ तोले मिश्री डालकर पाक करें। पाक तैयार होनेपर जायफल, त्रिफला, जीरा, कालाजीरा, धनियां सौंफ, इलायची, पीपल, नागरमोथा, नेत्रवाला, मुनक्का, विदारीकन्द, सफेद चन्दन और ठुहारा, सब २-२ तोले, ताजी नारियलकी गिरी ३२ तोले, शिलाजीत और लोह भस्म ८-८ तोले, मोवा १६ तोले, चिरोंजी १६ तोले, और निसोत ३२ तोलेका बारीक चूर्ण डालें, और केशर आदि सुगन्धित पदार्थ इच्छानुकूल मिलावें। मिश्री १९२ तोले मिलाने पर पाक अधिक चरपरा रहता है, इस हेतुसे हम ३८४ तोले मिलाते हैं । (आ० सि०)

शिलाजीतको ४ गुनी मिश्रीके साथ खरल करके पाक तैयार होनेपर मिला लेवें। पहिले मिलानेसे पाक ढीला हो जाता है। और शिलाजीतसे पाकका रंगभी श्याम हो जाता है। यदि शिलाजीत पाकमें न मिलावें, बल्कि पाक सेवनके साथ रोज २-२ रत्ती दूधके साथ लेते रहें, तो भी पूरा लाभ मिल सकता है ।

मात्रा—२ से ४ तोले तक सुबह खाकर दूध पीवें ।

उपयोग—इस पाकके सेवनसे बल, कान्ति, सौभाग्य, बुद्धि, स्मृति, सौंदर्य और सुकुमारताकी प्राप्ति होकर योनि शिथिलता दूर होती है। स्त्रियोंके स्तन घट्ट होते हैं और ८० प्रकारके वातरोग, २० प्रकारके कफरोग, ४० जातिके पित्तरोग, ८ प्रकारके ज्वर, १८ जातिके मूत्ररोग, एवं नासा, नेत्र, कर्ण, मुख, मस्तिष्कके रोग, बस्तिशूल, योनिशूल और अन्य सब प्रकारके रोग नष्ट होते हैं ।

[२] सुंठ्यादिपाक

विधि—सोंठ, बादामकी गिरी और पिस्ता ५-५ तोले, मेथी, चास्को (चनतुलसी), खसखस, सौंफ, मोवा, पीपल, गोखरू, सफेद मुसली, काली मूसली, काली मिर्च, धनिया, तालमखाना, वायवुवा, हालो (आहलिव) प्रत्येक १-१तोला,

शतावरी, जायफल, जावित्री, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, पीपलामूल, बायविड़ंग, कुलींजन, जीरा, हल्दी ६-६ माशे; खरेंटीके बीज २ तोले, नारियलकी गिरी १० तोले और बबूलका गोंद २० तोले लें। गेहूंका आटा सब चूर्णसे डयोढ़ा तथा घी और गुड़ चूर्णसे २॥-२॥ गुना लें। बबूलके गोंद और दूसरी औषधियोंको अलग-अलग कूटकर मोटा चूर्ण बनावे। बबूलके गोंद, चूर्ण और आटेको घीमे अलग-अलग भूने। फिर तीनोंको मिला लेवें। बादमें गुड़ मिलाकर पाक सिद्ध करें। (वै० चि० सा०)

उपयोग—यह पाक प्रसूता स्त्रियोंकी निर्बलताको दूर करता है, और जठराग्नि-को प्रदीप्त करता है। निर्बल मनुष्योंके लिये भी पौष्टिक रूपमे अच्छा काम देता है। रोज सुबह १० से २० तोले अनुकूल परिमाणमे खाकर ऊपर दूध पीवे। पाक पचन होनेपर भोजन करें।

(३) कौंचपाक

विधि—कौच १२८ तोलेको गरम जलमे १२ घण्टे भिगो दें। फिर निकाल खादीके कपड़ेसे घिस ऊपरके छिलकेको अलग करे पश्चात, छायामें सुखा कूटकर बारीक चूर्ण करें। इस चूर्णको १६ गुने दूधमे मिलाकर उबाले। जब दूध मावा जैसा गाढ़ा हो जाय, तब चूर्ण से दुगुना घी मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करें। फिर चूर्णसे चार गुनी शक्करकी चाशनी करें। पश्चात् कौंचवाला खोवा मिला ले। अगर, जायफल, जावित्री, सोंठ, लौंग, अकलकरा, जीरा, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, कपूर, शीतलमिर्च, समुद्रशोष, भिलावा, केशर, करंजके बीजकी गिरी, खुरासानी अजवायन, तालमखाना और दूधमें शोधन किया हुआ बच्छनाग २-२ तोले, काली मूसली और शुद्ध अफीम ४-४ तोले ले बारीक चूर्ण करके मिला दे। रससिंदूर, नागभस्म, वंग भस्म २-२ तोले और लोह भस्म ४ तोले डालें। ठंडा होनेपर ६४ तोले शहद मिलावे। सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी इच्छानुकूल मिला, पाक बनाकर कलईदार बरतनमें भर दें।

सूचना—इस पाकमे अफीमका परिमाण बहुत ज्यादा है। अफीमके व्यसनीसे इतनी अफीम सहन होती है; अन्य लोगोसे नही। अतः अफीम आधासे १ तोला मिलावे। ४ तोले अफीम मिलानेसे ४ तोले पाकमे १ रत्ती अफीम आती है। इसके अतिरिक्त बच्छनागका परिमाण अफीमसे आधा है। यह भी अत्यधिक है। बच्छनाग आध तोलेसे अधिक नही चाहिये।

मात्रा—२ से ४ तोले रोज सुबह खाकर ऊपर दूध पीवे।

उपयोग—यह पाक धातुवृद्धि और पुष्टिके लिये अति उपयोगी है। यह अत्यन्त कामोत्तेजक है। श्वास, पाण्डु, क्षय, खांसी, सूजन, मेद और सब प्रकारके वातरोगों का नाश करता है। क्षीणवीर्य, नष्टवीर्य, और खंजवातसे पीड़ित मनुष्योंके लिये अमृतरूप है। इस पाकके सेवनसे बुद्धिकी वृद्धि होती है; और शरीर पुष्ट होता है।

इस पाकके सेवन-कालमें अंगूर, मुनक्का, केला, चिरौंजी, मिश्री, दूध, घृत और

क्वाथ द्रवके जौकूट चूर्णको १२ से २४ घण्टे पहलेसे जलमें भिगो देना चाहिये । अन्यथा क्वाथ करनेपर पूरा सत्व नहीं निकल सकेगा ।

इस अवलेहमें जो शहद मिलाया जाता है, वह अधिक जलमय (पतला) न होना चाहिये । यद्यपि आयुर्वेदने शहदको गरम करनेका निषेध किया है, तथापि सारग्राही दृष्टिसे यूनानी मतानुसार शहदको शुद्धकर लिया जाय तो उसके मिलानेसे अवलेह दूषित होनेका भय नहीं रहता । इसके विपरीत यदि शहद अधिक पतला होगा, तो अवलेह को बिगाड देता है ।

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार १० से २० तोले दूधके साथ । उदरमें वायु उत्पन्न हो, तो आध घण्टे बाद दूध पीवें ।

उपयोग—यह अवलेह उत्तम शक्तिप्रद है । यह पचनसंस्था, श्वसनसंस्था हृदय, मस्तिष्क, रक्तवाहिनियां, वातवाहिनियां, मूत्रसंस्था और जननेन्द्रिय संस्था आदि को शक्ति प्रदान करता है । यह उत्तेजक इन्द्रियोंको सबल बनाकर आवश्यक शोधन कार्य भी कराता है । जिससे शारीरिक सर्व व्यापार सरलतापूर्वक चलने लगता है । यह क्षय, उरःक्षय, शोष, हृद्रोग, स्वरभंग, निर्बलता, कास, श्वास, प्यास, वातरक्त, नेत्ररोग, मूत्रदोष, वीर्यके दोष तथा वात, पित्त और कफके सब रोगोंमें हितकर है । बालक, सगर्भा स्त्री, वृद्ध, क्षतक्षीण, सबके लिये लाभदायक है । बल, वीर्य, मेधा, स्मृति और कांतिको बढाता है । यह किसी भी रोगसे उत्पन्न निर्बलताको दूर कर जीवनीय शक्तिको बहुत जल्दी बढा देता है, इस हेतुसे इस अवलेहको 'जीवन' भी कहते हैं । च्यवनप्राशावलेह का मूलपाठ चरक-संहिताका है । उसमें आंवलोंको घृतमें और तैलमें भूननेको लिखा है, और शार्ङ्गधर-संहिताकारने केवल घृतमें पकानेका विधान किया है । केवल इतना ही दोनोंमें अन्तर है ।

यह अवलेह रसायन, उत्तम शक्तिप्रद, कान्तिवर्द्धक, वाजीकर, दीपन-पाचन, पित्तप्रकोप शामक, सारक, मूत्रजनन, रुचिकर और चर्मरोग नाशक है । यह अवलेह बडी आयुवाले नीरोगी मनुष्योंको रसायन गुण दर्शाता है, अर्थात् शारीरिक सब यन्त्रों की क्रियाको सुधार तथा दोष को जलाकर कम हुई शक्तिकी फिरसे वृद्धि कराता है । इसकी मात्रा अधिक दी जाय तो पित्तका स्राव कराता है और सारक गुण दर्शाता है । तथा साथ-साथ उदरमें वायु उत्पन्न कराता है । (मात्रा अधिक होनेपर शक्ति वृद्धि नहीं कर सकता) ।

पित्तधातुकी-वृद्धि होनेपर उष्णता उत्पन्न होती है, फिर वह कफको पतला बनाना, नासिकामें से श्लेष्मस्राव होना अथवा प्रमेह या श्वेतप्रदरकी उत्पत्ति होना अथवा मासिक धर्ममें अति रज स्राव होना आदि विकार उपस्थित करती है । यह अवलेह उन सब विकारोंका मूल धातु वैषम्यको दूरकर साम्यावस्था ला देता है ।

कोष्ठमें दुष्ट मल संगृहीत होनेपर विविध रोगोंकी सृष्टिका आविर्भाव होता है ।

रक्तविकार, कुष्ठ, त्वचा शुष्क और काली होजाना, शिरदर्द,नेत्ररोग,नासारोग,उदर-कृमि, अरुचि, अग्निमांद्य, मंद मंद ज्वर रहना, प्रतिश्याय, श्वास,कास,शूल,उदरवात, पाण्डु, शोथ आदि अनेक रोगोंका मूल हेतु मलसंग्रह है । इस जीर्ण मलसंग्रहको दूर करनेमें च्यवनप्राशावलेह उत्तम सहायक होता है ।

यदि आंते अति निर्बल हो जानेसे च्यवनप्राशसे मलावरोध होता हो, तो च्यवन-प्राश या अन्य सारक द्रव्यका सेवन नहीं कराया जाता । अन्त्रको बलवान बनानेवाली कुचिलाप्रधान औषधि या अजवायनादि वातहर द्रव्यका उपयोग करना चाहिये ।

च्यवनप्राश हृद्य है । यह हृदयको मांसपेशियोंको पुष्ट करता है तथा रक्तको शुद्ध और सबल बनाता है । जिससे उष्णता,रक्तविष या रक्तकी न्यूनतासे बढ़ी हुई हृदयकी गति कम होती है । और धड़कन भी मर्यादित होती है । यदि रोगीको गरम गरम चाय, धूम्रपान आदिका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये ।

सूर्यके तापकी उष्णता, गरम गरम भोजन, गरम गरम चाय, तमाखू विष (Nicotin) तथा उपदंश आदि रोगोंके कीटाणुओंके विषसे मस्तिष्कमें उष्णता और रक्तदबाववृद्धि रहती हो या मस्तिष्कगत हृदयकेन्द्र अनुचित प्रकुपित होनेसे हृदयकी गति तेज रहती हो और वातनाड़ियोंकी विकृति हुई हो । परिणाममें निद्रा-नाश, चक्कर आना,निकम्मे बिकम्मे विचार आना, धड़कन, अग्निमांद्य और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो ये सब मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी और अकीक भस्मके साथ च्यवनप्राशका सेवन करानेसे दूर हो जाते हैं । मूल कारणरूप दोषको दूर करना चाहिये ।

इस अवलेहके साथ स्थानिक विकृति अनुरूप भस्म या रसादि मिला दिया जाय तो लाभ सत्वर और अधिक मिलता है । यकृत् पित्तस्राव कम हो, तो ताम्रभस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती और रससिंदूर $\frac{1}{4}$ रत्ती । प्लीहावृद्धि और रक्तकी न्यूनतामें ताम्रभस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती और लोहभस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती । फुफ्फुसकी शिथिलतामें अभ्रकभस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती । विविध प्रकारके कीटाणु विकार पर रससिंदूर $\frac{1}{4}$ रत्ती । अस्थिसंस्थाकी निर्बलतामें प्रवालपिष्टी १ रत्ती और गोदंती भस्म १ रत्ती । राजयक्ष्मामें शक्ति संरक्षणको सुवर्णभस्म $\frac{1}{100}$ रत्ती, अभ्रक भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती, शृंग भस्म १ रत्ती और प्रवाल पिष्टी ४ रत्ती । हृदयकी निर्बलता पर अकीक भस्म १ रत्ती । हृदयशूलमें शृंगभस्म । ज्वर पीछेकी निर्बलतापर सुवर्णमालनी-बसंत १ रत्ती और प्रवालपिष्टी १ रत्ती । मस्तिष्ककी निर्बलतापर बृहद ब्राह्मीवटी । वातसंस्थाकी निर्बलतापर नवजीवनरस । शुक्र की उष्णता पर रौप्य भस्म और प्रवालपिष्टी । नाड़ीसंकोच और खिंचावपर रौप्यभस्म,शतावरी और अमृतासत्व । शुक्रस्थानकी शिथिलतापर वंगभस्म । गर्भस्थान और बीजाशयकी निर्बलतापर त्रिवंग-

भस्म । व्रण, भगंदर, विद्रधि आदिपर वंगभस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती और जसद भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती । पित्तज प्रमेहपर जसद भस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती । मुजाकके लीन विषपर रौप्यभस्म और गोक्षुरादि गूगल । इस तरह योजना करनेपर यह अवलेह अनेक कष्टसाध्य जीर्ण रोगोंको दूर कर स्वास्थ्य और बलकी प्राप्ति कराता है । अकालमें वृद्धावस्था, मानसशक्तिका ह्रास और नपुंसकता आनेपर च्यवनप्राशावलेहका कल्प कराना चाहिये । यह कल्प एक वर्ष पर्यन्त चालू रखना चाहिये । रोज सुबह १।-१। तोलेतक च्यवनप्राशका सेवन करें । एक घंटे बाद दुग्धपान करें । पश्चात् क्षुधा लगनेपर भोजन करें । भोजन सत्वर पचन हो तथा प्रकृतिको अपथ्य न हो ऐसा करें । फिर रात्रिको च्यवनप्राशावलेहका सेवन करें । और सोनेके आध घण्टे पहले दूध पीते रहे,तो सब विकार निवृत्त होकर बल, बुद्धि, इन्द्रियोंकी शक्ति, अग्नि और आयुकी वृद्धि होती है तथा गई हुई युवावस्थाकी पुन प्राप्ति होती है और स्त्री समागममें उत्साह आता है ।

सूचना—(१) जिन रोगियोंको मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, रात्रिको २-८ बार मूत्रत्यागके लिये उठना पडता हो, स्वप्नदोष बार-बार होता हो,पचनक्रिया मन्द हो और उदरमें वायु भरी रहती हो,उन रोगियोंको च्यवनप्राशका सेवन नहीं कराना चाहिये ।

(२) जिन रोगियोंको मल अति पतला उतरता हो और मूत्रमें पीलापन बना रहता हो, उन रोगियोंको च्यवनप्राश नहीं देना चाहिये ।

(७) गोक्षुरादि अवलेह ।

विधि—५ सेर गोखरू जड-सह उखाड थोडा कूट २० सेर पानीमें पकावें । पानी चौथा हिस्सा रहनेपर उतार मलकर छान ले । फिर चूल्हेपर चढाकर उबालें। शेष जल १। सेर रहनेपर २॥ सेर मिश्री मिला,मन्दाग्निपर पाककर अवलेह सिद्ध करें । नीचे उतारनेपर सोंठ, मिर्च, पीपल,नागकेशर, दालचीनी, इलायची, जायफल,अर्जुन-वृक्षकी छाल और ककडीके बीजका मगज, प्रत्येक, ८–८ तोले और वंशलोचन ३२ तोलेका बारीक चूर्ण मिला दें । (आ० सि०)

मात्रा—२ से ४ तोले रोज सुबह खाकर ऊपरसे दूध पीवें ।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रमेह, पेशाबकी जलन, पेशाबमें रक्त, अश्मरी (पथरी) या रेती जाना और धातुदोष आदि दूर होते हैं । मूत्र रोगके नाशके लिये यह उत्तम औषधि है ।

(८) सितोपलादि चूर्ण ।

विधि—शुद्ध सिंगरफ, अभ्रकभस्म, श्रृंगभस्म, गिलोय सत्व और लौंग १-१ तोला और सितोपलादि चूर्ण ५ तोलेको खरलमें मिला लें । फिर शहद १० तोले मिलाकर लेह बना ले । (आ० नि० मा०)

मात्रा—१-१ माशा दिनमें ३ बार चटाकर ऊपर अडूसेका क्वाथ पिलावें ।

या ५-१० मिनट बाद बकरीका थोड़ा दूध पिलावें ।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे क्षय, खांसी, उरःक्षत, हृदयशूल, ज्वर, मन्दाग्नि,निर्बलता आदि रोग दूर होते हैं । क्षयके लिये सरल और लाभदायक औषधि है । इस अवलेहसे क्षय-कीटाणुओंकी वृद्धिमें प्रतिबन्ध होता है और शक्तिका संरक्षण होता है ।

(९) कासकंडनिवलेह ।

विधि—बकरीका मूत्र ५ सेर लेकर मन्दाग्निसे पकावें । रबड़ीके समान गाढ़ा होनेपर नीचे उतारकर छोटी कटेलीके फलोंका चूर्ण और बहेड़ेका चूर्ण ८-८ तोले तथा पीपल और लोहभस्म ४-४ तोले मिलावे । शीतल होनेपर समभाग शहद मिलावें । (वृ० यो० त०)

मात्रा—२ से ४ माशे निवाये जलके साथ दिनमें २ से ४ बार दें ।

उपयोग—यह अवलेह फुफ्फुसोंमे संगृहीत दूषित कफको बाहर निकालनेका कार्य करता है । असाध्य कास जिसमे पीला दुर्गन्धमय कफ बार-बार निकलता रहता हो तथा मन्द-मन्द ज्वर, अग्निमांद्य, अति निर्बलता, छातीमे भारीपन, उत्साहका अभाव और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत हों, जिन रोगियोंको वैद्योंने रजा दे दी हो,तथा जीर्ण कफ, कास,पथ्यके अपालनसे कुपित हुई कास, इन सबको यह सत्वर नष्ट करता है । कफको सरलतासे बाहर निकालता रहता है; तथा नयी उत्पत्तिमे प्रतिबन्ध करता है । क्षयरोगीके लिये भी यह अति हितकर प्रयोग है ।

जिन रोगियोंके फुफ्फुसोंके वायुकोष्ठोंकी आकुंचन-प्रसारण शक्ति (स्थिति स्थापक गुण) नष्ट हो गई हो, हो, फिर उसी हेतुसे उनमे कफ भरा रहता हो, थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाता हो तथा कफकास, श्वास मंद मद ज्वर बना रहना, रहना, अग्निमांद्य, मलावरोध, मूत्रमें पीलापन, आलस्य, तन्द्रा, हाथ पैर टूटना, शक्तिका अभाव भासना, ऋतुपरिवर्तन और थोडेसे अपथ्य आदिसे कष्ट बहुत बढ़ जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हों,तो उन रोगियोके लियेयह अवलेह कष्ट कम करानेमें सहायक होता है । यदि इस अवलेहके साथ लोहबान पुष्प २-२ रत्ती मिलाते रहें, तो कफनिःसरणमें विशेष सुविधा रहती है ।

सूचना—(१) फुफ्फुसोंको शीत न लग जाय, यह सम्हालें ।

(२) दूध अनुकूल हो तो सेवन करें, अन्यथा नही । किन्तु अवलेह लेनेपर १ घण्टे तक दूध नही लेना चाहिये ।

(३) दहीका पूर्ण रूपसे त्याग करना चाहिये ।

(१०) वासावलेह ।

प्रथम विधि—अड़ूसेका रस (स्वरस यन्त्रसे निकाला हुआ) ६४ तोले

और शक्कर १२८ तोले मिलाकर पाक करे। फिर पीपल और घी ८-८ तोले मिलाकर मन्द अग्निसे पकावें। चाटने योग्य हो तब उतार लेवें ठण्डा होनेपर ३२ तोले शहद मिला देवें।

वक्तव्य—कितनेही चिकित्सक इस अवलेहमें बहेड़े और हल्दीका चूर्ण ४-४ तोले मिलाते हैं। बहेड़ा-हल्दी मिलानेसे कफ सरलतासे बाहर आ जाता है।

मात्रा—६ माशेसे १ तोला तक दिनमें २ बार चटाकर गौ या बकरीका दूध पिलावें।

उपयोग—वासावलेह क्षय, दारुण, खांसी, रक्तकास, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, कण्ठके दर्द, तृषा, उरःक्षत, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करता है।

दूसरी विधि—अडूसेके पत्ते ४०० तोले लेकर अठगुने पानीमें उबालें। चतुर्थांश पानी शेष रहे तब उतारकर छान लें। फिर हरडका चूर्ण २५६ तोले और शक्कर ४०० तोले मिलाकर मन्दाग्निपर उबालकर अवलेह तैयार करे। नीचे उतार वंशलोचन १६ तोले, पीपल ८ तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर ४-४ तोलेका चूर्ण मिलावें। फिर ठंडा होनेपर शहद ३२ तोले मिला ले। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें २ बार चटाकर दूध पिलावें।

उपयोग—यह अवलेह रक्तपित्त, काम, श्वास, क्षय, विद्रधि, उदररोग, गुल्म, तृषारोग, पीनस, हृद्रोग, मलावरोध आदि दोषोंको दूर करता है। बालकोंकी काली खांसीमें भी अच्छा लाभ पहुंचाता है।

[११] अष्टांगावलेह।

विधि—कायफल, पुष्करमूल, काकडासींगी, धमासा, कालाजीरा, सोंठ, मिर्च और पीपल, सब समभाग लेकर चूर्ण करे। फिर समान शहद मिला ले। इसे 'अवलेहिका' भी कहते हैं। (वृन्द)

मात्रा—४ से ६ माशे दिनमें ३ बार चाटकर दूध पीवें। सन्निपातके रोगीको मुंहमें रखकर रस निगलवावें। अधिक कफवृद्धिमें अदरखके रसके साथ दें।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे कफज्वर, रोगीके खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, हिचकी, कफ और वात तथा सन्निपातके रोगीके गलेका रोध, कफ और कास दूर होते हैं, एवं न्यूमोनिया, आदि रोगोंमें इसके सेवनसे सरलतासे कफ बाहर आ जाता है।

[१२] कुटजावलेह।

विधि—कुडेकी छाल ४०० तोलेको जौकुटकर १०२४ तोले पानीमें डालकर काढा करें। पानी चतुर्थांश शेष रहे तब उतारकर कपडेसे छान लेवें। इसमें गुड १२० तोले डालकर फिर औटावें। गाढा होनेपर रसौत, मोचरस, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, लजालू, चीतेकी छाल, पाढ, कच्चा बेलफल, इन्द्रजौ, वच, भिलावा,

अतीस, बायबिड़ंग, नेत्रवाला, इन १८ ओषधियोंका ४-४ तोले चूर्ण मिलावें और घी १६ तोले डालें। अवलेह ठण्डा होनेपर शहद १६ तोले मिलावें। (शा० सं०)

मात्रा--१ से २ तोले दिनमें ३ वार बकरीके दूध, मट्ठा, दही अथवा घीके साथ देवें।

उपयोग--यह अवलेह बवासीर, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, कामला, अम्लपित्त, सूजन, कृशता और पेचिश आदि रोगोंको दूर करता है। भगन्दरमे हितकर है। नलाश्रित वायु और गुदपाकको भी शमन करता है।

दूसरी विधि--कुड़ेकी छालको १६गुने जलमें उबालकर ८ वां हिस्सा जल शेप रहरेपर हांडीको उतार क्वाथको वस्त्रसे छान लेवें। फिर पानीरोको कड़ाहीमें डाल पुनः चूल्हेपर चढ़ाकर गाढ़ा करें। पश्चात् कुड़ेकी छालका चौथा हिस्सा गड और ८ वां हिस्सा अतीसका चूर्ण मिलाकर अवलेह बना लेवें। (च० द०)

मात्रा--आधा-आधा तोला दिनमे ३ बार चटावें।

उपयोग--इस अवलेहके सेवनसे सब प्रकारके अतिसार (आम-अतिसार, त्रिदोषज अतिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार), अरुचि, संग्रहणी, पेचिश, अम्लपित्त आदि रोग शनन होते है। यह अवलेह अन्त्रप्रदाहको दूर करने और अन्त्रको शक्ति देन के लिये विशेष प्रयोजित होता है। अग्नि मन्द हो, तो मात्रा कम देवें।

(१३) गुलबा का गुलकन्द

विधि--मौसमी गुलावके ताजे फूलोंकी डीटें निकाल पंखड़ियोंको अलग-अलग करके उनमें १६ गुनी पिसी हुई मिश्री मिलावें। कलई अथवा कांचके तसलेमें थोड़ी पंखड़ियें और थोड़ी मिश्रीको हाथसे मसलकर अमृतबानमें डालते जांय। प्रथम अमृतबानके नीचे थोड़ी मिश्रीकी तह बिछावें; उसपर पंखड़ियेंकी मिश्री मिली तह लगावें। फिर केवल मिश्री, ऊपर पंखड़िया और मिश्री मिली हुई तह रक्खें। इसी रीतिसे तहोंको लगा सबके ऊपर मिश्रीकी तह डालें। फिर अमृतबान का मुंह वन्दकर कपड़-मिट्टी कर के रख दें। एक मास बाद गुलकन्द तैयार हो जाता है।

सूचना--पंखड़ियोके भीतर रही हुई केसर मिल न जाय, इस बात को सम्हालें। अन्यथा गुलकन्द कसैला या कुछ कड़ुवा हो जायगा।

मात्रा--आवश्यकता होनेपर १ से २॥ तोले तक लेवें।

उपयोग--गुलकन्द दाह, पित्तदोष और कब्जको दूर करता है, तथा मस्तिष्क को शांति पहुंचाता है। इससे स्त्रियोंके गर्भाशयकी गरमी शमन होकर अत्यार्त्तव (मासिकधर्ममे ज्यादा रक्त जाना) रोग शांत होता है।

(१४) कूष्माण्डावलेह।

विधि--पेठेका स्वरस ४०० तोले, गायका दूध ४०० तोले और आंवलोंका चूर्ण ३२ तोलेको एकत्र मिलाकर धीरे-धीरे मन्दाग्निसे पकावें। पिण्ड वंधने

मन्दाग्नि, उदररोग, आमवृद्धि, हृदयरोग, रक्तदोष और ११ प्रकारके क्षयका नाश करके अग्निको प्रदीप्त करता है, तथा कांति, बल और शुक्रकी वृद्धि करके शरीरको पुष्ट बनाता है ।

(१८) एरंड पाक ।

विधि—१ सेर अरंडीके अर्तिजहूवा निकाले हुए मगजको पीस ८ सेर गोदुग्धमें मिलाकर मावा करें । पश्चात् ४० तोले घृत मिलाकर भूनें । फिर २॥ सेर शक्करकी चाशनीकर खोवेको मिलादें, और सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची, पीपलामूल, चित्रकमूल, चव्य, गिलोय सत्व, शठी, अजवायन, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, असगन्ध, खरेंटीके बीज, पाठा, हाऊबेर, वायविडंग, गोखरू, कुड़ेकी छाल, देवदारु, वृद्धदारु, विदारीकंद, सब १-१ तोलेका कपडछान चूर्ण मिलाकर लड्डू बनालें । (आ० मि०)

मात्रा—४ से ८ तोले सुबह खाकर ऊपरसे दूध पीवें ।

उपयोग—यह पाक वातव्याधि, शूल, शोथ, अंडवृद्धि, उदररोग, बद्धकोष्ठ, अफारा, गुल्म, आमवात, कटिग्रह, हिक्का, श्वास, कास, पक्षाघात, पांगुल्य, अर्दित और वातरोग, अश्मरी और अर्श रोग आदिको दूरकर बल, वीर्य और कांतिकी वृद्धि कराता है, तथा अग्निको प्रदीप्त कराता है ।

(१९) बादाम पाक ।

प्रथम विधि—बादामका मगज ८० तोले, खोवा २० तोले, बिहदाना ४॥ तोले, लौंग, जायफल, जावित्री, केशर, वंशलोचन, ये सब ६-६ मासे, कमलगट्टे, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, १-१ तोले; अभ्रक भस्म, वंग भस्म सुवर्ण-माक्षिक भस्म, प्रत्येक ६-६ मासे और प्रवालपिष्टी ३ मासे ले पहिले बादामके कल्कका ३० तोले घीमें भूनें । फिर मावाको १० तोले घीमें भूनकर मिला लेवें । पश्चात् २॥ सेर शक्करकी चाशनीकर उसमें केशर और पाक मिलावें । फिर काष्ठादि ओषधियोंको कपडछान चूर्ण और उसमें भस्में मिलाकर ४-४ तोलेके लड्डू बांधे । (वैं० सा० सं०)

मात्रा और उपयोग—दूसरी विधिके साथ लिखे हैं ।

द्वितीय विधि—बादामके मगज १ सेर जलमें भिगो छिलका निकालकर कल्क करें । पश्चात् ८ गुने गोदुग्धमें मिलाकर मावा करें । फिर १ सेर घी मिलाकर भूनें । पश्चात् ४ सेर मिश्रीकी चाशनीकर १ तोला केशर और मावाको मिला दे, तथा जावित्री, जायफल, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, विदारीकन्द, सबको १-१ तोला ले कूट कपडछान चूर्ण करके मिलादें । एवं रससिंदूर, अभ्रक भस्म, लोह भस्म और वंगभस्म १-१ तोला मिलावें ।

मात्रा—२ से ४ तोले खाकर ऊपर २० तोले गोदुग्ध पीवें ।

उपयोग—बादामका पाक मस्तिष्क और हृदयको लाभदायक है । मानसिक

श्रम और वृद्धावस्थाकी निर्बलता, वातवृद्धि और शुक्रक्षय आदिको दूर करके अग्निको प्रदीप्त कराता है । बल, वीर्य, स्मृति, आयु और कांतिको बढ़ाता है ।

(२०) सालब पाक ।

विधि––पंजासालब ४० तोले, पिस्ता २० तोले, बादाम २० तोले, चिरौंजी ९ तोले, अखरोट १ तोला, सफेद मूसली ९ तोले, गोखरू ४ तोले, असगंध, तालमखाना, शतावर, रूमीमस्तंगी, कौच बीज २-२ तोले; केशर, जायफल, जावित्री, लौंग, शीतलमिर्च, वंशलोचन, दालचीनी, और बिहदाना १-१ तोले, मिश्री १२८ तोले, और घी ४० तोले लें । पहिले सालबके बारीक चूर्णको २० तोले घीमें भून लें । पश्चात् पिस्ता, बादाम, चिरौंजी और अखरोटके कल्कको २० तोले घीमें भूने । फिर मिश्रीकी चाशनीकर केशर, सालब-मिश्रित भुने हुए चूर्णको मिलावें । अन्तमें शेष ओषधियोंका अपड़छानचूर्ण मिलाकर ४-४ तोलेके लड्डू बांधें ।

मात्रा––१ से २ लड्डू खाकर ऊपर २० तोले दूध पीवें ।

उपयोग––यह पाक अत्यन्त वीर्यवर्द्धक और पौष्टिक है । अंडकोषकी नसोंके दोषसे वीर्यके पतलापन, नपुंसकता, शारीरिक, निर्बलता, मस्तिष्ककी निर्बलता, अधिक निद्रा, आलस्य और मन्दाग्नि आदि सब दोषोंको दूर करता है ।

क्षीण शुक्रवालोंके लिए यदि भस्म मिलाना हो, तो रससिंदूर १तोला, सुवर्णभस्म १ तोला, अभ्रक भस्म २ तोले और वंगभस्म २ तोले मिला लेनेसे पाक विशेष लाभदायक बनता है । भस्म मिलानेपर पाककी मात्रा कम लेनी चाहिये । शीतकालमें सेवन करनेसे विशेष लाभ पहुंचाता है ।

(२१) मदनमोदक ।

विधि––सुवर्ण सिंदूर (पूर्णचन्द्रोदय रस अथवा षड्गुण जारित रससिंदूर), लोहभस्म, अभ्रक भस्म, वंग भस्म, जलवेंतके बीज, चोपचीनी, सेमलका कंद, धामनकी छाल, केशर, जीरा, जायफल, लौग, समुद्रशोष, सोंठ, मिर्च, पीपल और वंशलोचन ये १७ ओषधियां ६-६ माशे तथा जावित्री, शतावरी, मुनक्का, खरेंटीकी जड़, काकड़ासींगी, छोटी इलायचीके बीज, कौंचके बीज, मीठा कू , नागरमोथा, बिदारीकंद, पेठा, नागकेशर, जटामांसी, ,शुद्ध कपूर, शीतलचीनी और गोखरू, ये १६ ओषधियां २-२ तोले लें । सबसे आधा (२०। तोले) भुनी भांग और सबसे दूनी (१२१॥ तोले) मिश्री लें । मिश्रीकी चाशनी लेकर क्रमशः सब ओषधियोंके कपड़छान चूर्णको मिला ३-३ माशेकी गोलियां बनालें । (र० यो० सा०)

मात्रा––१ से २ गोली सुबह-शाम मिश्री मिले निवाये दूधके साथ सेवन करें । मात्रा धीरे-धीरे बढ़ावें ।

उपयोग––इस मोदकके सेवनसे नष्टेन्द्रिय, नष्ट शुक्र और वलीपलित व्याप्त जर्जरित वृद्ध भी युवाके समान हर्षयुक्त होकर मन्दोन्मत्त स्त्रियोंके प्रीति-पात्र बनजाते

हैं, और ग्रहणी, श्वास, कास, अर्श, प्रमेह, मधुमेह, सब रोग दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है। यह मादक परम रसायन है।

(१२) भल्लातक पाक।

विधि—पक्के अच्छे भिलावे (जो जलमें डालनेसे डूब जाय) १२८ तोले लेकर २-२ टुकडे करें। फिर १०२४ तोले दूधमें मिलाकर मंदाग्निसे पचन करें। मोवा बन जानेपर भिलावेको निकाल डाले। पश्चात् मोवेमें १२८ तोले घृत मिलाकर पकावे। बादमें उसके साथ शक्कर २५६ तोलेकी चाशनी तथा त्रिफला १२ तोले, नागरमोथा, मजीठ, धनिया, जीरा, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायचीके दाने, हाऊबेर, मुलहठी, तेजपात, लौंग, नागकेशर, जायफल, शीतलमिर्च, विदारीकंद, कमल, वंशलोचन, लोह भस्म, ताम्रभस्म, भीमसेनी कपूर और कत्था, इन २२ औषधियोंके १॥-१॥ तोले चूर्ण को मिलाकर पाक बनाले। (र० यो० सा०)

सूचना—पाकके समय जो बाष्प निकलती है, उससे बचना चाहिये—अन्यथा शोथ हो जानेका भय रहता है।

इस पाकमें भिलावें जो निकाल दिये हैं, उनको भी चटनीकी तरह पीस घीमें भूनकर पाक बनाले, तो वह भी अच्छा काम देता है।

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें दो बार सेवन करें।

उपयोग—इस पाकके सेवनसे रक्तपित्त, कुष्ठ, दाद, पामा, विचर्चिका, वातरक्त, शून्यवात, वंशपरम्परा प्राप्त व्याधियों और सब प्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं। गलत्कुष्ठमें भी इसपाकके सेवनसे रोगका बढना रुक जाता है। पक्षाघातमें अच्छा लाभ पहुचता है।

सूचना—यह पाक पित्तप्रधान प्रकृतिवालेको नहीं देना चाहिये।

इस पाकके सेवनकालमें गरम-गरम भोजन, अधिक गरम जलसे स्नान, सूर्यके तापमें भ्रमण और अग्निसेवन निषिद्ध है।

इस पाकके सेवनसे कदाच खुजली हो जाय तो पाक बन्द करें, और नारियलके तैलकी मालिश करे, तथा भोजनमें बादाम, पिस्ता, काजू, नारियलकी गिरी, चिरौंजी आदि तैली फलोंका सेवन करे।

भिलावेके टुकडे करते समय हाथोंको भिलावेका तैल न लगने दे। कदाच लग जाय तो, तुरन्त घी या तेल लगा देना चाहिये।

(२३) विजयापुष्पाद्यवलेह।

विधि—शुद्ध गांजा, १४ तोले, जायफल, जावित्री, लौंग, दालचीनी, इलायचीके दाने, अकरकरा और केशर २-२ तोले तथा बादामकी गिरी ४ तोले ले। सबको मिला कूटकर कपडछान चूर्ण करे। फिर १ सेर मिश्रीकी अवलेह लायक चाशनी

कर चूर्ण मिलावें तथा कस्तूरी और अम्बर ६-६ माशे डालें ।

गांजेकी शुद्धि—गांजामेंसे शाखा और बीजोंको निकालकर केवल दलपत्र लें। उसे जलमें १ घण्टे भिगो देवें। फिर मलकर जल निकाल डालें। फिर बार-बार जल डाल-डाल कर धोवें। जबतक हरा जल निकले तब तक धोवें। पश्चात् छायामें सुखा देवें ।

मात्रा—१ से ३ माशे प्रातःकाल या रात्रिको चाटकर ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें ।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे थोड़े ही दिनोंमें नपुंसकता, शीघ्रपतन, शारीरिक निर्बलता और निद्रानाश आदि दूर होकर शारीरिक उत्साहकी वृद्धि होती है; मन प्रफुल्लित बनता है; पचनक्रिया सबल बनती है तथा शरीर पुष्ट होता है ।

यदि केवल शुद्ध गांजाके साथ समभाग गुड मिला मटरके समान गोली बनाकर हिक्का रोगीको दी जाय तो तत्काल हिक्का शांत हो जाती है। आवश्यकतापर आध या एक घण्टे पर दूसरी बार गोली दी जाती हैं। इस गोलीसे कुछ नशा आता है ।

(२४) दिवालमुश्क ।

विधि—नरकचूर, दरूजन अकरबी, मोतीपिष्टी, कहरवा, प्रवालपिष्टी प्रत्येक ३५-३५ माशे ,आबरेशम, बहमन सफेद, बहमन लाल,जटामांसी, इलायची १७।।-१७।। माशे; पत्थर फूल (छरीला) पीपल और सोंठ१४-१४ माशे तथा कस्तूरी ७ माशे लें। सबको कपड़छान करके मिलालें। पश्चात चाटने योग्य तैयार होसके उतना शहद मिल कर माजून बनालें ।

आब रेशमको कैंचीसे कतर कृमिको निकाल देनेके पश्चात् प्रयोगमें मिलानाचाहिये ।

मात्रा—१ से ३ माशे दिनमें २ चाटकर दूध पीवें ।

उपयोग—दिवालमुश्क मस्तिष्कके लिये शामक है। मस्तिष्ककी निर्बलता, उष्णता, उन्माद और हृदयकी निर्बलताको दूर करता है। सन्निपातमें मस्तिष्कको शान्त बनानेके लिये यह दिया जाता है ।

दिवालमुश्क उत्तम हृद्य है। वातप्रकोपजशूल हृदयशूल, (Angina pectoris), उदरशूल (Angina abdominis), हिस्टीरिया या अपचनजन्य हृदयशूल (Angina false) और फुफ्फुसावरणशूल आदि एवं स्वरयन्त्रप्रदाह, शीत लग जाना, वाताक्षेप, हृदयमें भारीपन और मानसिक व्याकुलता आदि विकारोंको यह दूर करता है ।

जिह्वालोलुप व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन मिलनेपर बार-बार अत्यधिक परिमाणमें खा लेते हैं; उनका आमाशय शिथिल और प्रसारित हो जाता है। इसके अतिरिक्त गरम गरम पेय, फिरंग विष, उदरकृमि आदि कारणोंसे भी ऐसा हो जाता है। उनकी चिकित्सा तुरन्त न करनेपर उदावर्त (गेस बनने) की संप्राप्ति

उपयोग—यह खमीरा हृदय और मगजको पुष्ट तथा वातवाहिनियोंको दृढ बनाता है। स्मरणशक्ति बढ़ाता है। अग्निको प्रदीप्त करता है, तथा उदरशुद्धिमें सहायता पहुचाता है।

(३१) खमीरे गावजवां अम्बरी।

विधि—गावजवा ३ तोले, गावजवाके फूल, धनिया, सफेद चन्दन, वादरजबोया, उस्तेखुद्दूस तुख्म वालुगा, तुख्म फरञ्ज, मुश्क और अगर, ये ८ औषधिया १-१ तोला लें। इन सबको मिलाकर क्वाथ करें। कतरा हुआ आवरेशम, वहमन सफेद, वहमन लाल, तोदरी लाल, तोदरी सफेद, जदवार, इन सबको १-१ तोला लेकर चूर्ण करें। फिर क्वाथमें १ सेर शक्कर मिलाकर चाशनी कर। फिर उसमें चूर्ण, १॥। माशे अम्बर, ४ मासे केशर और ६ माशे चांदीके वर्क मिला लेवें। शीतल होनेपर १० तोला शक्कर मिलाकर खमीरा बनालें। (चा० चि०)

सूचना—गावजवा आदिका क्वाथ किया जाता है। उन सबको रात्रिको १ सेर गुलावजलमें भिगोदें। सुबह मंदाग्निपर उबालकर तीसरा हिस्सा शेष रखे। उनको अधिक निचोडना नही चाहिये। कपडेमें बांधकर लटका देनेपर टपककर निकल आवे, उतनेको ही लिया जाता है।

मात्रा—५-५ माशे दिनमें २ बार दूधके साथ दें।

उपयोग—यह खमीरा हृदय और मगजको पुष्ट बनाता है, तथा नेत्रज्योति और स्मरणशक्तिकी वृद्धि करता है। प्रतिश्यायमें हितावह है।

इस खमीरेमें सुवर्णके वर्क ६ माशे, मोती, माणिक्य, पन्ना, पुखराज और कहरवा पिष्टी ३-३ माशे मिला लेनेसे "खमीरे गावजवा अम्बरी जवाहरवाला" तैयार हो जाता है।

(३१) खमीरे सन्दल।

विधि—सफेद चन्दनके १० तोले चूर्णको ८० तोले गुलावजलमें शिलापर पीसकर २४ घण्टे भिगो देवें। फिर मन्दाग्निपर पकावें। चतुर्थांश शेप रहनेपर शक्कर १२० तोले मिलाकर पुन पकावें। गुलकद जैसा खमीर बने तब उतारले।

मात्रा—१ से २ तोले सुवह-शाम लेकर ऊपर दूध पीवे।

उपयोग—यह खमीरा मस्तिष्कके लिये शामक और मूत्रसशोधक है। मूत्रमें दाह, सौर शरीरमें दाह, घवराहट, तृषा आदिको नष्ट करता है। मस्तिष्ककी उष्णता, पित्तविकार, नेत्रोंकी जलनको दूर करता है। सुजाक रोगीके लिये हितकर है।

(३३) अतरीफल कशनीज़।

विधि—चार जातिकी हरड (बडी हरड, काबुली हरड, मादी हरड और

जवाहरड़) ४ तोले चारों मिला कूट छानकर चूर्ण बनावें। फिर २ तोले बादामके तेलका मौण देकर १ तोले धनियेका बारीक चूर्ण मिलावें। बादमें २० तोले शहद मिला चीनी मिट्टीके बरतनमें भरकर जौकी कोठीमें ३ मास दबा दें। (घ० वै०)

मात्रा––६ माशेसे १ तोले दिनमें २ वार दूधके साथ लें.।

उपयोग––यह औषध नेत्र रोगियोंके लिये हितकारक है। इससे नेत्रोंकी जलन, शिरदर्द, कब्ज, रक्तविकार, आदि रोग दूर होते है। बवासीरमें लाभदायक है। मोतियाबिन्दुके रोगीको देते रहनेसे रोगको बढ़ने नही देता।

सूचना—अतरीफलको टिनके डिब्बेमें न रखें। अन्यथा रंग काला हो जायगा। चीनी मिट्टीके पात्रमें या कलईदार वर्तन में रखें।

(३४) अतरीफल मुलैयन।

विधि––काबुली हरड़, पीली हरड़, काली हरड़, आंवले, बहेड़ा १-१ छटांक, गुलाबके फूल, सनाय, तुरबुदकी छाल और सोंठ २०-२० मांशे लें। सबको कूट बारीक चूर्णकर बादामके तेलमें भून लें। बादमें ३ गुने शहदमें मिलाकर अवलेहके समान बना लेवें। इस मिश्रणको चीनीमिट्टीके अमृतबानमें भरकर ४० दिन रहने देवें। फिर उपयोगमें लेवें।

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार लें।

उपयोग––इस अवलेहके सेवनसे मस्तिष्कमें उष्णता; चक्कर आना, नेत्रोंकी कमजोरी, मोतियाबिन्दुकी वृद्धि, कफवृद्धि, कानमें शब्द होना, बहरापन, तन्द्रा, मलावरोध, दाह आदि दूर होते हैं। यह अवलेह आख और मगजके पुराने रोगोंमें प्रयुक्त होता है।

(३५) सारिवादि शारकर।

विधि––श्वेतसारिवा, मुलहठी, सनाय, श्वेतमूसली, असगन्ध, उशवा और हरड़, ७ ओषधियें १०-१० तोले; जवासा ५ तोले; लौंग, गोरखमुण्डी, उन्नाब, सौंफ, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, गुलाबका फूल, छोटी इलायची, मजीठ, और दालचीनी, १० ओषधियें २॥-२॥ तोले लें। सबको जौकुट कर १६ गुने जलमें उबालकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार-छानकर ५ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत जैसी चाशनी बनालें। (श्री० पं० लक्ष्मीनारायणजी वैद्यभूषण)

मात्रा––१। से २॥ तोले दिनमें २ वार जलके साथ दें।

उपयोग––इस शर्बतके सेवनसे उपदंश, सुजाक अथवा अन्य कारणोंसे बिगड़ा हुआ रक्त थोड़े ही दिनोंमें शुद्ध होजाता है।

(३६) लऊक सपिस्तां।

विधि––लिहसोड़े ५०, उन्नाव २०, मुलहठी १ तोला, तुख्म खतमी १ तोला,

पोस्तके छिलके २ तोले और बिहीदाना ६ माशे ले । सबको २ सेर जलमें मिलाकर क्वाथ करें । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर मलकर छान लें। फिर क्वाथमें ४० तोले शक्कर मिलाकर पकावें, और बादामकी गिरी ६ तोले, पोस्तदाना १ तोला, जवाखार १ तोला, कतीरा ६ माशे, गोंद ६ माशे और मुलहठी ६ माशेका बारीक चूर्ण मिलाकर चाटने योग्य बना लेवें । (चि० च०)

मात्रा—४ से ६ माशे दिनमें ३ या ४ बार चटावें ।

उपयोग—इस चाटनके सेवनसे श्वास नलिकामें चिपका हुआ कफ बाहर निकल आता है । फुफ्फुसोंकी उष्णताका ह्रास होकर शुष्क कास शमन होती है और फुफ्फुस निर्दोष बनते हैं ।

(३७) आंवलेका मुरब्बा ।

विधि—ताजे पक्के बड़े बड़े आवलोंको बांसकी शलाका या जर्मनसिल्वर अथवा पीतलके कलई किये हुए कांटेसे चारों ओर अच्छी तरहसे टोचें । फिर कली चूनेके नितरे हुए जलमें २४ घण्टे भिगो दें। चूनेसे ३२ गुना जल मिलाकर १ घण्टे बाद ऊपर-ऊपरसे स्वच्छ जल नितारकर उपयोगमें लें । पश्चात् आवलोंको हल्का-सा जोश देकर छायामें सुखा दें । १२ घण्टे बाद आवलोंके वजनसे दूनी शक्करकी चाशनी बनाकर आवला-मिला दें । ८–१० दिन बाद मुरब्बेमें आवलेका स्वरस मिल जानेसे ऊपर झाग आनेपर उस चाशनीको निकाल पुनः नयी दूनी शक्करकी चाशनी बनाकर मिला देनेसे मुरब्बेमेंसे अम्लता दूर होजाती है, तथा दो-तीन वर्षतक मुरब्बा अच्छा रह सकता है। १ सेर आवलोंमेंसे ६ माशेके हिसाबसे केशर दूसरी वारकी चाशनीमें मिला लेवें ।

अनेक दूकानदार आवलोंको नहीं गोदते । केवल चूनेके पानीमें फिटकरी मिलाकर उबाल लेते हैं । ५ सेर आवलोंमें २ तोले फिटकरी मिलाते हैं । कितनेही लोग पहलीबार की हुई चाशनीको पुनः पकाकर मिला लेते हैं । नई शक्कर नहीं मिलाते। परन्तु नई शक्करकी चाशनी मिला लेनेसे मुरब्बा विशेष गुणकारी होता है । दूकानदार पहली समयकी चाशनीको हरड़के मुरब्बेमें मिला लेते हैं । इस हेतुसे वह शक्कर भी निकम्मी नहीं होती ।

मात्रा—१ से २ आवले चांदीके वर्कके साथ लें ।

उपयोग—यह मुरब्बा दाह, शिरदर्द, पित्तप्रकोप, चक्कर, नेत्रजलन बद्धकोष्ठ, अम्ल, रक्तविकार, त्वचादोष, प्रमेह और वीर्यदोषको नष्ट करता है, वृद्धिका शमन करता है, और शरीरको बलवान बनाता है ।

(३८) शुण्ठ्यादि पायस ।

विधि—सोंठ और अरडीके मगज अन्तर्जिह्वा निकाले हुए १-१ तोलेके बारीक चूर्णको १६ गुने दूधमें मिलाकर पायस (खीर) बनावें । आवश्यकतानुसार

शक्कर मिलालें ।

उपयोग--इस खीरके सेवनसे आमप्रकोपसह वातविकार, कटिशूल और गृध्रसी आदि रोगोंका नाश होता है ।

(३९) एलादि घृत ।

विधि--छोटी इलायचीके दाने, अजमोद, आंवला, हरड़, बहेड़ा, खैरकी छाल, नीमकी अन्तरछाल, असन (पीतसार) की छाल; शालकी छाल (अभावमें अर्जुनछाल), बायविड़ंग, भिलावेकी गिरी (गोडंबी), चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागरमोथा, गोपीचन्दन (अभावमें फिटकरीका फूला), ये सब समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। फिर १६ गुना जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। क्वाथमें चौथा हिस्सा गोघृत मिला मंदाग्निपर घृत सिद्ध करें। घृतमें मिश्री १२० तोले, वंशलोचन २४ तोले और शहद १२८ तोले मिलाकर रईसे मथन कर लेवें ।

मात्रा--आधा से १। तोले दिनमें २ बार दूधके साथ दें ।

उपयोग--यह रसायन क्षयमें शक्ति देनेके लिये अति उपयोगी है। क्षय, पाण्डु, भगन्दर, श्वास, कास, शूल, स्वरभेद, हृदयरोग, प्लीहा, गुल्म, संग्रहणी आदि रोगोंका नाश करता है, और बुद्धि तथा आयु बढ़ाता है। नेत्रोंके लिए हितकर है।

(४०) बालामृत ।

विधि--बायविड़ंग, अतीस, पीपल, दूधियाबच, हरड़ और सनाय, सब ३-३ माशे; काकड़ासींगी, नागरमोथा और सोंठ १॥-१॥ माशे तथा समुद्रफल २ नग लें। सबको जौकुटकर ४० तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। आधा जल रहनेपर छान २० तोले मिश्री मिलाकर चाशनी करें। फिर चौकिया सुहागेका फूला ६ माशे और रूमी मस्तंगी ३ माशे बारीक पीसकर मिलादें। बादमें ४ रत्ती रतनजोतिका चूर्ण मिला देने से उत्तम लाल रंगका बालामृत बन जाता है। (धन्वन्तरि)

मात्रा--३ मासके बालकको १-१ माशा दिनमें २ बार और अन्योंको बलाबल अनुसार मात्रा योजित करें ।

उपयोग--बालकोंको सूक्ष्म ज्वर, अतिसार, कृमि, वमन, मलावरोध, जुकाम, श्वास, कास आदि रोगोंको दूरकर शरीरको पुष्ट बनाता है ।

(४१) रक्तशोधक शर्बत ।

विधि--उसवा ८ तोले, मंजिष्ठा ४ तोले, सौंफ २ तोले, उन्नाव २५ नग, सीपस्ता २५ नग, हंसराज १ तोला और गावजबां १ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करें । रात्रिको ८ गुने जलमें भिगो दें; सुबह क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। फिर २० तोले मिश्री मिलाकर शर्बत बनालें ।

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार जलके साथ ले ।

उपयोग—यह शर्बत उपदंशविकार, सुजाक, कुष्ठ, वातरक्त, फोड़ा-फुन्सी आदि रोगोंमें रक्तको शुद्ध करता है ।

(४२) बनफशाका शर्बत ।

विधि—बनफसा १० तोलेको उबलते हुए २५ तोले जलमें २४ घंटे भिगो दें, फिर छानलें । छाननेके समय दबाकर न निचोड़ें । पश्चात् ४० तोले शक्कर मिलाकर शर्बत बनाले ।

सिद्धभेषजमणिमालाकारने ८ गुने जलमें भिगो अष्टमांश क्वाथकर गाढ़े कपड़ेसे युक्तिपूर्वक छान (अर्थात् पोटलीको लटकाकर जल टपका) लेवें । फिर ४ गुनी शक्कर मिलाकर शर्बत बनानेका लिखा है, और इसे पित्तज्वर पर प्रयुक्त किया है ।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक जल मिलाकर पीवें ।

उपयोग—यह शर्बत ज्वरके पीछेकी निर्बलता, स्त्रियोंके गर्भाशयकी गर्मी, नेत्रकी उष्णता, शिरदर्द, मलावरोध, पसलीकी पीड़ा और मूत्राशयके दर्दको दूर करता है, तथा निद्रा अच्छी लाता है । बढ़े हुए पित्तको बाहर निकाल देता है, मलमूत्र साफ लाता है ।

(४३) चन्दनका शर्बत ।

विधि—आध पाव श्वेत चन्दनके चूरेको आध सेर गुलाबजलमें रातको भिगोदे, सवेरे हल्का-सा जोश दें । डेढ़ पाव जल शेष रहनेपर मलकर छानले । फिर आध सेर मिश्री मिलाकर शर्बत बनाले । उबालनेपर ढक्कन ढक देना चाहिये, अन्यथा तैल उड़ जाता है ।

मात्रा—२-२ तोले दिनमें २ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह शर्बत तृषा, दाह, बहुमूत्र, पेशाब का पीलापन, जलन होना, नाक-मुखमें खुश्की रहना, नकसीर फूटना तथा गर्मीके दिनोंमें होनेवाले पित्तके विकारोंको नष्ट करता है । गर्मी, प्यास, लू, बेचैनी सबसे रक्षा करता है । सुजाक रोगमें पेशाब साफ ला देता है ।

(४४) स्वादिष्ट शर्बत (स्वदेशी पेनकीलर) ।

विधि—नीबूका रस १ सेर, अदरखका रस ४० तोले, सैंधानमक २ तोले, कालानमक २ तोले, हींग ६ माशे और मिश्री १ सेर मिला कलईवाली कड़ाहीमें ३ उफान आवें तबतक उबाले । फिर नीचे उतारकर तुरन्त छान ले । शीतल होनेपर ऊपर ऊपरसे अलग निकाल ले । पेंदेमें कचरेवाला भाग होवे उसे अलग रखे ।

(आ० नि० मा०)

मात्रा—६ माशेसे २ तोले तक आधी रत्ती कपूर मिलाकर दें । अथवा

जलके साथ दें ।

उपयोग--इस शर्बतके सेवनसे अपचन, अपचन-जनित अतिसार, हैजा, पेचिश, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदरशूल, वमन, आदि रोग दूर होकर क्षुधाकी उत्पत्ति होती है ।

(४५) गुलाबका शर्वत ।

विधि--गुलाबजलमें १॥ गुनी शक्कर मिलाकर चाशनी करें । फिर नीचे उतारकर तुरन्त छान ले ।

मात्रा--१ से ४ तोलेतक जल मिलाकर पीवें ।

उपयोग--इस शर्बतसे मगजकी उष्णता, पित्तविकार; तृषा और दाह शांत होते हैं, तथा मलावरोध दूर होता है । स्त्रियोंके गर्भाशयकी गरमी भी कम होती है ।

(४६) नीबूका शर्वत ।

विधि--नींबूके रसमें २॥ गुनी शक्कर मिलाकर चाशनी बना लें; फिर गरम-गरमको छान लें । शीतल होनेके बाद नही छनता ।

मात्रा--१ से २ तोलेतक जल मिलाकर पीवें ।

उपयोग--इस शर्बतसे पित्तविकार, मन्दाग्नि, अरुचि, तृषा, उवाक, अजीर्ण, मलावरोध, और रक्तदोष आदि सब दूर होते हैं, तथा अग्नि प्रदीप्त होती है । सूर्यके तापमें भ्रमणसे उत्पन्न हुई व्याकुलता और पित्तप्रकोप सत्वर दूर होते हैं ।

(४७) अदरख का शर्बत ।

विधि--अदरखका रस निकालकर २ घण्टे रहने दें । रस स्थिर होनेपर सम्हालकर ऊपर-ऊपरसे निकाल लें । नीचे अदरखका सत्व रहे उसे सुखाकर अलग उपयोगमें ले । नितरा हुआ रस ६४ तोले लेकर १२८ तोले शक्कर मिलाकर चाशनी बना ले । उसमें केशर १ माशे; इलायची, जायफल, जावित्री और लौंग ३-३ माशेका चूर्ण मिलावें । इसे विशेष गाढ़ा बनालें, तो अवलेह बन जाता है ।

मात्रा--६ माशेसे १ तोला तक दिनमें २ बार पीवें ।

उपयोग--इस शर्बतके सेवनसे अपचन, अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, आमवात, श्वास, कास, अतिसार, उदरशूल आदि दूर होते हैं ।

(४८) प्रतिश्यायहर शर्बत ।

विधि--तुलसीपत्र, मरवा (सब्जा) के पत्ते, गावजवां, अफतीमून विलायती उस्तेखद्दूस और बसफायद् १-१ छटांक लेकर १ सेर गुलाबजल और आधसेर अंगूरी सिरकामें रात्रिको भिगोदें; सुबह उबालें । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलें । पश्चात् १॥ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत बना लें । (श्री पं० गुरुशरणदासजी)

मात्रा--२ से ४ तोले जलमें मिलाकर पिलावें ।

उपयोग--यह शर्बत कण्ठदाह, निद्रानाश, नाकमेसे खून गिरना, हृदयकी निर्बलता, मगजकी कमजोरी, सूक्ष्मज्वर, मलावरोध आदिको दूर करता है ।

घृत तैलाधिकार

घृतसिद्धि—सिद्ध घृत बनानेके लिये गोघृतकोही श्रेष्ठ माना है । गोघृत को पहले मूर्च्छित करें । मूर्च्छित करनेके लिये ३८ तोले घृतको पीतलकी कलई की हुई कढाहीमें डालकर मन्दाग्निपर गरम करें । झाग दूर होनेपर नीचे उतारलें। उष्णता थोडी कम होनेपर हरड़,बहेड़ा,आंवला,हल्दी और नागरमोथा इन ५ औषधियोंको ४-४ तोले लेकर बिजौरे नींबूके रसमें कल्क बनाकर डालदें । पश्चात् २५६ तोले जल मिलाकर पाक करें । थोडा जल शेष रहनेपर उतारकर ७दिन तक रहने दें । इससे घृत साफ,आमदोष-रहित और वीर्यवान् बन जाता है । इसमें घृतके साथ क्वाथ, दूध,दही आदि द्रव पदार्थ और अन्य औषधियोंके कल्कको मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करें ।

घृतपाकके लिये गिलोय आदि मृदु क्वाथ द्रव्योंमें चार गुना जल,सोंठ, अमलतास आदि मध्यम द्रव्योंमें ८ गुना जल, और देवदारु, पद्माख आदि कठिन द्रव्योंमें १६ गुना जल मिलाना चाहिये । घृत पाकके लिये जिन औषधियोंका क्वाथ बनाना हो, उन सबको मिलाकर घृतसे द्विगुण परिमाणमें लें , सामान्यतः आठ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलें । किन्तु क्वाथ करनेकी औषधियोंका परिमाण अत्यधिक हो, तो ५-५ सेर औषधियोंका क्वाथ अलग-अलग करके सबको मिला लें, तथा १। सेर औषधिके लिये जल१०२४ तो ले लें । इस रीतिसे जलके परिमाणमें थोडी औषधि और अधिक औषधिके लिये अन्तर है ।

यदि केवल दूधसे ही घृतपाक करना हो, अन्य क्वाथ आदि द्रव पदार्थ न मिलाना हो, तो घृतसे आठगुना दूध लेना चाहिये, और क्वाथ आदि द्रव मिलाना हो,तो दूध घृतके समान लेना चाहिये । यदि २ या ३ प्रकारके द्रवसे घृतको सिद्ध करना हो, तो सबको समान परिमाणमें मिलाकर घृतसे चार गुना लेना चाहिये ।(किन्तु सुश्रुत-संहिताके टीका-कार डल्हणाचार्यके मतानुसार सब द्रवोंको ४-४ गुना मिलाना चाहिये) । यदि ४ या ४ से अधिक प्रकारके द्रव पदार्थोंको मिलाना हो, तो सबको घृतके समान लेना चाहिये, और केवल स्वरस, दूध या दहीके घृतको सिद्ध करनेका लिखा हो, तो भी घृतसे ४गुने जलमें अवश्य साथमें मिलाना चाहिये । कारण, केवल स्वरस, दूध या दहीसे घृतका पाक अच्छी रीतिसे नहीं हो सकता ।

स्नेहमें प्राय चतुर्थांश कल्क डाला जाता है । किन्तु केशर, नागकेशर, लौंग, चम्पा, कमल आदि पुष्पोंका कल्क हो, तो घृतसे अष्टमांश लें । सर्पविष, वत्सनाभ आदि तीक्ष्ण विषके संयोग स्नेह सिद्ध करना हो, वहांपर इस नियमका पालन नहीं होसकेगा । यदि घृतमें क्वाथ या स्वरस न मिलाना हो, केवल जल मिलाना हो, तो कल्क चौथा भाग, क्वाथसे घृत सिद्ध करना हो, तो कल्क छठा भाग, और केवल स्वरससे सिद्ध करना हो, तो स्नेहसे कल्कको आठवा भाग लेना चाहिये । किन्तु अन्य आचार्योंका मत है कि, द्रव,

दही, स्वरस या तक्रमेंसे किसी एकको मिलाया हो,तो कल्क अष्टमांश मिलाना चाहिये। यदि द्रव इनसे भिन्न प्रकारका हो, तो कल्क चतुर्थांश लें।

जहां द्रव्योंका परिमाण न लिखा हो,वहांके लिये यह नियम है जैसे सुश्रुत संहितामे "सौवर्चल यवक्षारकटुका व्योषचित्रकैः। वचाऽभया विडंगैश्च साधितं श्वासशान्तये।।" इन ओषधियोंसे घृत सिद्ध करना हो,तब ऊपर लिखी परिभाषानुसार कल्क क्वाथ आदिको मिलावें। एवं अन्य किसी भी प्रकारके घृत-तैल आदि बनाना हो, तभी उक्त विधि अनु-सार बनावें। किन्तु जहां शास्त्रने परिमाण निश्चित किया है, वहांपर शास्त्राज्ञानुसार पदार्थ लें। उसमें परिभाषासे अन्तर होनेपर भी परिवर्तन न करें। स्नेहपाकके तीन प्रकार हैं—मृदु, मध्यम और खर। कल्क किंचित् रसयुक्त हो,तो मृदुपाक; रसरहित किन्तु मुलायम हो तो मध्यम पाक; और कल्क जलकर कठिन होगया हो तो खरपाक समझना चाहिये। इसमेंसे नस्यार्थ मृदुपाक, सभी कार्यके लिये मध्यमपाक और मालिशके लिये खरपाक उत्तम है।

स्नेह सिद्धिकी परीक्षा---घृत और तैल सिद्ध होनेपर उसमेंसे थोड़ा कल्क निकालकर अग्निमें डालें। किसी प्रकारकी आवाज न हो, तो उसे सिद्ध समझें। घृत सिद्ध होनेपर बिलकुल झाग नहीं रहते; और तैलकी सिद्धिके समय खूब झाग उठते हैं। इसके अतिरिक्त स्नेह परिपक्व होनेपर कल्कको अंगुलीसे मर्दन करनेपर गोली अथवा वर्ति (बत्ती) हो जाती है। एवं वर्ण और सुगन्धसे भी परिपाकका निश्चय हो जाता है। जिस प्रयोगमें जितने घृतका पाक करनेका विधान किया है, उतना ही लें। न्यूनाधिक परिमाण (आधे अथवा दूने) में घृतका पाक ठीक नहीं होता।

घृतको दूधसे सिद्ध करना हो तो दो दिनमें सिद्ध करें। स्वरससे सिद्ध करनेमें तीन दिन और कांजी, मट्ठा आदिसे सिद्ध करनेमें पांच दिन तक पकावें। अधिक दिन लगानेमें रोज थोड़े-थोड़े समय तक पाक करके छोड़ देवें।

घृत सिद्ध होनेपर कढ़ाही नीचे उतार तुरन्त छान लेना चाहिये। शीतल होनेतक कढ़ाहीमें रह जानेसे घृत कुछ उड़ जाता है।

घृत पुराना होनेसे भी गुणयुक्त रहता है। घृत शीतवीर्य होनेसे सिद्ध घृतमें भी प्रायः वही गुण रहता है। इसके अतिरिक्त जिन-जिन ओषधियोंसे सिद्धघृत तैयार किया जाता है, उन-उन ओषधियोंके गुण, वीर्य, विपाक आदि घृतमें सम्मिलित होते हैं। प्राचीन आचार्योंने सिद्ध घृतोंका विशेष उपयोग किया है। घृतसे रोग शीघ्र दूर होकर शरीर स्वस्थ, बलवान और कांतिवान बनता है। जो रोगी अनेक प्रकारकी ओषधियां अनेक वर्षों पर्यन्त सेवन करके निराश होगये हों; जिनकी पाचन-शक्ति अति मन्द होगई हो; जिन्होंने अपने शरीरको सदाके लिये मलावरोध,अफारा, बेचैनी, अरुचि, शिरदर्द आदि विकारोंके घर रूप बना लिये हों,उनको सिद्ध घृतके सेवनसे थोड़े ही दिनोंमें आशातीत लाभ

प्राप्त हो जाताहै। वात, पित्त अथवा कफ प्रकृतिवाले पुरुष, स्त्री, बालक, वृद्धि आदि सब मनुष्य सिद्ध घृतको सुबह-शाम अथवा भोजनके साथ सेवन कर सकते हैं ।

घृत-सेवनसे बिना कष्ट अन्नपचन और मलशुद्धि नियमपूर्वक होती है, रोगीकी मनोवृत्ति प्रसन्न रहती है, और श्रद्धापूर्वक सप्रेम नियमित सेवन कर सकता है ।किसीको सिद्ध घृतोंसे हानि होनेकी लेशमात्र सम्भावना नहीं है ।

घृत शास्त्रोक्त विधिसे सिद्ध कर लेनेपर सुगन्धयुक्त बन जाता है । घृतको सम्हाल-पूर्वक कांचकी खुले मुंहवाली शीशियोंमें अथवा चीनीमिट्टीके अमृतवानमें रखनेसे खराब होनेकी सम्भावना नहीं रहती । वृन्द माधवकारने तो लिखा है कि—"एक वर्ष पश्चात् सिद्ध घृत हीनवीर्य होजाता है,और तैल हीनवीर्य नहीं होता"।परन्तु पुराना सिद्ध घृत गुणवाला ही रहता है, और पुराना तैल दोषयुक्त होजाता है, ऐसा अनुभवमें आया है।

तैलसिद्धि—तैलको सिद्ध करनेके पहले दुर्गन्ध और अन्य दोषकी निवृत्तिके लिये मूर्च्छित करे । पश्चात् तैलका पाक घृतके पाकके समान करें, किन्तु मूर्च्छा विधिमें अन्तर है । तिलके तैल, अरंडीके तैल,सरसोंके तैल, तीनोंकी मूर्च्छाकी ओषधियां पृथक्-पृथक् हैं । तिलके तैलके लिये मजीठ, हल्दी,लोद,नागरमोथा, दाल-चीनी, आंवला, बहेड़ा,हरड़, केवड़ेका फूल और वड़की जटा ले । सरसोंके तैलमें मजीठ हल्दी, आंवला, नागरमोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, सुगन्धवाला,दालचीनी और बहेड़ा मिलावें । एवं एरंड तैलकी मूर्च्छाके लिये मजीठ, नागरमोथा, धनिया, त्रिफला, चमेलीके पत्ते, सुगन्धवाला,खजूर, वड़की जटा, दब्द, दारुहल्दी, दालचीनी, केवड़ेका फूल, दहीं और कांजी ले ।

मूर्च्छाके लिये ४ सेर तैल हो तो मजीठ ४ छटांक और सब द्रव्य एक-एक छटांक लेना चाहिये । उनमेंसे हल्दी और मजीठका कल्क अलग-अलग करे,और शेष ओषधियोंको मिलाकर कल्क करे । तैलको मूर्च्छित करने के लिये पीतलकी कलईकी हुई साफ कढाहीमें डालकर चूल्हेपर चढावें । जब तैल गरम होकर झागरहित होजाय,तब नीचे उतारे । उष्णता थोडी कम होनेपर उसमें हल्दीका कल्क, फिर मजीठका कल्क पश्चात् शेष ओषधियोंकी कल्क और तैलसे चौगुना पानी मिलाकर पुन अग्निपर चढाकर मन्दाग्निमें पाक करे । थोडा जल शेष रहनेपर उतारकर ७ दिन तक रहने दें । पश्चात् तैलको छान-कर तलपाकमें कही हुई ओषधियोंसे सिद्ध करें ।

यदि वातनाशक तैल बनाना हो तो आम, जामुन, कैथ और बड़े नीबूके पत्ते को तैलसे ८-८ वा हिस्सा लेकर चौगुने जलमें औटावें । जल चतुर्थांश शेष रहनेपर छान, मूर्च्छित तैलमें मिलाकर पाक करे । थोडा जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवें ।

सिद्ध-तैल तैयार करनेके लिये तिल,सरसों या अरन्डीका ताजा तेल रोगीकी प्रकृति, ऋतु और रोगका विचार करके लेना चाहिये । तेल सिद्ध होनेपर चिपचिपापन

मूलकी वास और तैलका मूल दोष तीनों दूर होते हैं,तथा गुणकी वृद्धि होती है। तैल स्निग्ध और उष्णवीर्य है। सिद्ध तलोंमें भी प्राय:वही गुण रहता है। तैलका मुख्य उपयोग वातजन्य रोगों पर है । सिद्ध तल शरीरके बाह्य भागमें मर्दन करने तथा पीनेके लिये उपयोगमें आता है । मर्दन करनेके समय त्वचाके रोम टूट न जांय, यह सम्हालना चाहिये । नीचेसे ऊपरकी तरफ तथा आड़ी बाजूमे मर्दन करनेसे हानि होनेकी संभावना है । अनुलोम(ऊपरसे नीचेकी ओर)धीरे हाथसे शांतिपूर्वक मर्दन करनेसे वेदना नहीं होती, और हानि होनेका भय भी नहीं रहता। तैलमर्दनसे स्नायु और शिराबन्धन नरम होते हैं तथा रक्ताभिसरग क्रियाकी वृद्धि होती है; अथवा रक्तमे रहे हुए दूषित परमाणु प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाते हैं ।

पक्षाघात (Paralysis) आदि वातरोगोंमें मर्दनके पश्चात् गर्म जलसे, निर्गुण्डीके पत्तेसे अथवा अन्य वातनाशक ओषधियोके क्वाथसे सेक करना अति हितकर है । केवल पित्ताधिक्य विकारमें विशेष तैलमर्दन अथवा सेक नही करना चाहिये। तैलमर्दन अथवा सेक करनेके बाद तुरन्त ठण्डी वायु न लगे इस बातको भी लक्ष्यमें रखना चाहिये ।

तैलपानकी प्रथा प्राय: वर्त्तमान समयमें लोप होगई है । फिर भी आवश्यकतापर पिलानेमें कोई हानि नहीं है। केवल नये ताजे तैलमेंसे सिद्ध तैल बना कृति और ऋतु विचार करके पिलाना चाहिये । तैलपानके पश्चात् तुरन्त ठण्डाजल नहीं पिलाना चाहिए ।

सूचना--घृत तैल बनानेके लिये पीतलका कलई किया हुआ बरतन लें । लोहपात्रमें घृत-तैलका रंग काला होजाता है ।

गोमूत्र आदि अधिक उफान लानेवाले पदार्थ मिलाना हो,तो कड़ाही आठगुनी बड़ी चाहिये। कारण,गोमूत्रसे उफान बहुत आता है। घृत-तैलकापाक होनेपर कड़ाहीको नीचे उतार तुरन्त छान लेना चाहिये। देर होनेसे घृत या तैल जलकर परिमाणमें कम होजाता है ।

घृत और तैलमें कोई पीनेका और कोई लगानेका है। उपयोग औषधिके साथ स्पष्ट लिखा है ।

(१) त्रिफलादि घृत ।

विधि--त्रिफला ६४ तोलेका आठगुने जलमें क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहनेपर छानकर उपयोगमें लें। यह क्वाथ, भांगरेका रस, अड़सेका रस, आंवलेका रस, शतावरका रस अथवा क्वाथ, गिलोयका रस और बकरीका दूध,प्रत्येक ६४-६४ तोले लेवे। सबको एकत्र करें। इनमे पीपल,मिश्री, मुनक्का, हरड़, बहेड़ा आंवला, नीलेकमल, क्षीरकाकोली (अभावमें मुलहठी), असगंधकी जड़ और कटेली, सबको समभाग मिलाकर १६ तोले कल्क डाल घी ६४ तोले मिलाकर पकावें। फिर उतारकर

तुरन्त छान ले। (व० से०)

मात्रा—१ से २ तोले तक दिनमें २ बार भोजनके साथ।

उपयोग—इस घृतके सेवनसे सब प्रकारके नेत्र रोग दूर हो जाते हैं। यह घृत रुधिरके बढने या दूषित होनेसे नेत्रमें जो दोष उत्पन्न हुआ हो, रतौंधी,तिमिर,मोतियाबिन्दु, मांस बढना, नेत्रकी लाली,तीव्र जलनसहित नेत्रकी लाली, वरुनीके बाल गिरना, वातज, पित्तज और कफज नेत्ररोग, अन्धता,मन्द दृष्टि, कफवातसे दूषित दृष्टि, वात और पित्त प्रकोपसे नेत्रस्राव, खुजली, आसन्नदृष्टि (दूरकी वस्तु स्पष्ट न दीखना Short Sight) दूर दृष्टि (दूरकी वस्तु अच्छी दीखना किन्तु समीपकी वस्तु या छोटे अक्षर स्पष्ट न दीखना Long Sight) आदि समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करके गृध्रके समान प्रबल दृष्टि बनाता है। शरीरबल पचनशक्ति और शारीरिक कान्ति को बढाता है। इस त्रिफलादि घृतका ४-६ मास तक श्रद्धापूर्वक पथ्यसहित सेवन करनेसे लाभ मिलता है। जीर्ण बद्धकोष्ठके रोगियोंके अन्तडी मेदा और पक्वाशयकी शुद्धि होजाती है।

मोतियाबिन्दुका विष रक्तमें शनैः शनैः दृष्टिमणि (Lens) में पहुंचता है। फिर दृष्टिमणिके तन्तु दूर-दूर होते जाते हैं जिससे बीचमें दूषित रस भरकर अपारदर्शकता आने लगती है। यदि इस रोगकी प्रारम्भावस्थामें ही इस घृतका सेवन कराया जाय, नेत्रमें नेत्रसुदर्शन अर्क डाला जाय तथा विषवर्द्धक तमाखू आदि द्रव्योंका त्याग किया जाय तो मोतियाबिन्दुकी वृद्धि रुक जाती है,इतना ही नहीं अनेकोंको दृष्टिमणि पारदर्शक होकर मोतियाबिन्दु नष्ट हो जाता है।

[२] फलघृत।

विधि—मुलहठी, हरड, बहेडा, आंवला, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, वायविडंग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायणकी जड, कायफल,काकोली और क्षीरकाकोली (अभावमें असगंध और शतावर),मेदा और महामेदा(दोनोंके अभावमें शतावर), वच, सफेद अनन्तमूल, काली अनन्तमूल,फूल प्रियंगु, सौंफ, भुनी हींग, रास्ना, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, चमेलीके फूल, कमल, वंशलोचन, मिश्री,अजमोद दन्तीमूल,इन ३२ औषधियोंको एक-एक तोला लेकर कल्क करे। फिर कल्क,गोघृत ६४ तोले,गायका दूध २५६ तोले और जल २५६ तोले मिलाकर पाक करे। पश्चात् उतारकर तुरन्त छान लेवें। इस घृत पाकमें लक्ष्मणा (अभावमें सफेद कटेली) का पंचांग डालना विशेष लाभदायक है। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ तोले रोज सुबह सेवन करें।

उपयोग—यह घृत स्त्री और पुरुष, दोनोंके लिये हितकर है। धातुदोष, रजदोष और गर्भाशय के दोषोंको दूर करता है। वंध्याको पुत्रकी प्राप्ति होती है,और जिसके बच्चा होकर मर जाता हो उसकी सन्तति नीरोग होती है। जिसको बार-बार

कन्या ही जन्मती हो; जिसको गर्भ रहकर बार-बार नष्ट होजाता हो; जो स्त्री मृत-संतान या अल्पायु संततिको उत्पन्न करती हो, वह यदि इस घृतका सेवन करे, तो दीर्घायु और नीरोग पुत्रको जन्म देनेमें समर्थ होती है। संक्षेपमें गर्भाशयदोषकी निवृत्त्यर्थ यह घृत अत्युत्तम है।

शास्त्रकारोंने १ वर्षकी जीवद्वत्सा (बछड़ा जीता हो ऐसी) बलवान गौका घृत लेनेका लिखा है; एवं पुष्यनक्षत्रमें गौके जंगली कण्डोंकी अग्निपर शास्त्रोक्त विधिसे पाक करनेकी आज्ञा की है।

(३) नाराच घृत।

विधि—लोद, चित्रकमूल, चव्य, बायविडंग, हरड़ बहेड़ा, आंवला, निसोत, शंखिनी (ओंधाफूली), अतीस, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी और दन्तीमूल १-१ तोला लें। थूहरका दूध १६ तोले, अमलतासका गूदा १६ तोले और गोमूत्र ३२ तोले लें। गोमूत्रको छोड़, शेष सबको पीसकर कल्क करे। पश्चात् कल्क, गोमूत्र, गोघृत ६४ तोले और घृतसे ४ गुना जल मिलाकर यथाविधि मन्दाग्नि पर घृतको सिद्ध करें। (भै० र०)

मात्रा—½ से १ तोला सुबह निवाये दूधके साथ लेवें।

उपयोग—यह घृत उदररोग, गुल्म, अफारा, प्लीहावृद्धि, आमवात, भगन्दर, गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ आदि रोगोंको शमन करता है। कोष्ठस्थ दोषोंको बाहर निकालनेके लिये उत्तम ओषधि है।

(४) षट्पल घृत।

विधि—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और सैंधानमक, सब समभाग मिलाकर कल्क करें। फिर कल्क १६ तोले, गोघृत ६४ तोले, दूध २५६ तोले और जल २५६ तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करे। (वृन्द)

मात्रा—६ माशे से १ तोला दिनमें २ बार दें।

उपयोग—यह घृत विषमज्वर, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, प्लीहावृद्धि और गुल्मका नाश करता है। एवं भोजनमें रुचि उत्पन्न करता है।

(५) दशमूलाद्य घृत।

प्रथम विधि—दशमूल (शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, बेलछाल, गम्भारी, पाढ़ल, अरलू और अरणीकी छाल) १२८ तोले लेकर १६ गुने जलमें चतुर्थांश क्वाथ करें। पश्चात् रास्ना, सोंठ, देवदारु, लाल पुनर्नवा और और श्वेत पुनर्नवा समभाग मिला जलमें पीसकर १० तोले कल्क करें। बादमें छाना हुआ दशमूल क्वाथ, उपरोक्त कल्क और १२८ तोले गोघृत मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। (वं० से०)

मात्रा—आधा से १ तोला दिनमें २ वार ले ।

उपयोग—यह घृत वातोदर, मन्दाग्नि, अरुचि, शूल, श्वास, कास, हिक्का, वातविकारको शमन करके प्राणवायुको बलवान बनाता है । प्रसूता स्त्रियोंके लिये विशेष लाभदायक है ।

दूसरी विधि—दशमूल क्वाथ और दधिमण्ड (दहीका पानी) २-२ सेर लेवें । पीपल, कालानमक, जवाखार, आवला, हींग, बिजौरेकी छाल और हरड, सबको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क १२॥ तोले बनावें । फिर कल्क, क्वाथ, दधिमण्ड और गोघृत १ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करें । (च० स०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ से ३ बार देवें ।

उपयोग—यह घृत हिक्का और कफ सूख जानेपर बनी हुई शुष्क कासको नष्ट करता है । श्वास और कास रोगमें कफको बिना कष्ट बाहर निकालता है । मन्दाग्नि वातविकार, प्रसूतिरोग, उदररोग इत्यादिमें लाभदायक होता है । शुष्क शरीरवाले के लिये अति हितकर है ।

(६) पंचगव्य घृत ।

विधि—दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुडेकी छाल, सतौनाकी छाल, अपामार्ग, नील, कुटकी, अमलतास, कठगूलरके मूल, पुष्करमूल, और धमासा, ये २४ ओषधियां १०-१० तोले लेकर ३२ सेर जलमें मिलाकर क्वाथ करे । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें । फिर भारंगी, पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल, निसोत, समुद्रफल, गजपीपल, मूर्वा, दन्तीमूल, चिरायता, चित्रकमूल, काला सारिवा (अनन्तमूल), सफेद सारिवा, रोहिष घास, गन्धतृण, चमेलीके पत्ते, सब १॥-१॥ तोले मिला जलमें पीसकर कल्क करे । फिर क्वाथ, कल्कके साथ गायके गोबरका रस, दही, दूध गोमूत्र और गोघृत २-२ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करे । (च० स०)

मात्रा—आधासे १ तोला दिनमें २ बार ले ।

उपयोग—पंचगव्य घृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्म, बवासीर, पाण्डु, कामला, भगन्दर इत्यादि रोगोंमें अमृतके समान लाभदायक है, चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है ।

(७) जीवन्त्यादि घृत ।

विधि—जीवंती (डोडी), मुलहठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, शठी (कचूर), पुष्करमूल, छोटी कटेली, गोखरू, खरेंटी, नीला कमल, भोय आवला, त्रायमाण, धमासा और पीपल १-१ तोला मिला जलमें पीसकर कल्क करें । फिर कडाहीमें कल्कके साथ १॥ सेर गोघृत, बकरी या गायका दूध और जल ६-६ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर सिद्ध करे । (च० स०)

मात्रा—आधासे १ तोला दिनमें २ बार सेवन करे ।

उपयोग—यह घृत ११ जातिके राजयक्ष्मा (क्षय), जीर्णज्वर, कफ प्रकोप, दाह, निद्रानाश, धातुक्षीणता आदि दोषोंको दूर करता है। क्षयके तीसरे वर्षमें भी इससे बहुत लाभ होता है।

(८) अशोक घृत।

विधि—अशोककी छाल २ सेरका चौगुने जलमें क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर नीचे उतारकर छान लेवें। पश्चात् १ सेर जीरेको ४ गुने जलमें (ढक्कनसे ढककर) पका आधा जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। फिर जीवनीय गणकी ओषधियां (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी जीवन्ती और मुलहठी), चिरौंजी, फालसा, रसौत, मुलहठी, अशोककी छाल, मुनक्का, शतावर, चौलाईकी जड़, प्रत्येक २।।-२।। तोले लेकर कल्क करें। तत्पश्चात् कल्क, अशोकका क्वाथ, जीराका क्वाथ, चावलोंका धोवन २ सेर, बकरीका दूध २ सेर, भांगरे का स्वरस २ सेर और गोघृत २ सेर लें। सबको कड़ाहीमें डाल शास्त्रोक्त विधि अनुसार पाक करें। घृत छान लेनेपर १ सेर मिश्री मिला लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ तोला दिनमें २ बार दें।

उपयोग—यह घृत स्त्रियोंके सब प्रकारके रोगोंका नाशक है। श्वेत, नील और कृष्ण वर्णके भयंकर प्रदर, गर्भाशयमें शूल, कटिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृशता, श्वास, कामला आदिको नष्ट करता है। शरीरबल; कांति और आयुकी वृद्धि करता है।

जब गर्भाशय या अपत्य मार्गके भीतर क्षत या विद्रधि होकर पूयोत्पत्ति होती है, तब नील या नीलकृष्ण (पूय रक्तमिश्रित) दुर्गन्धमय स्राव होता रहता है। व्रण स्थानमें शूल भी चलता रहता है। रोग जीर्ण होनेपर रुग्णा निस्तेज और कृश होजाती है। इस विकारपर बाह्य उपचारके साथ अशोक घृतका सेवन लाभदायक है। धातक्यादि तैल या इतर व्रणरोपण तैलकी पिचकारी गर्भाशयमे लगाते रहना चाहिये।

यदि बीजाशय या बीजाशयनलिकामें विकृति होनेसे मासिकधर्मके समय वेदना होती हो; रजःस्राव पूरा न होता हो तथा प्रदररूपसे स्राव होता रहता हो, तो ऐसी स्थितिमें चन्द्रांशु रसके साथ इस अशोक घृतका सेवन २-४ मासतक करानेसे विकार दूर हो जाता है और रुग्णा सबल हो जाती है।

मासिकधर्मकी योग्य शुद्धि न होनेपर विषका प्रवेश रक्तद्वारा मस्तिष्कम होता है; नेत्रदृष्टि मन्द हो जाती है तथा शिरदर्द, निद्रावृद्धि, और आलस्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। किसी किसीको श्वासप्रकोप भी हो जाता है। क्वचित् उन्मादका असर आजाता है। इस रोगपर चन्द्रांशु रसके साथ अनुपान रूपसे इस घृतकी योजना की जाती है।

सामान्यतः ५०-६० वर्षकी आयमें मासिकधर्मकी निवृत्ति होती है। इसके पहिले

पूर्व समयतक मासिकधर्मकी योग्य शुद्धि नहीं होती। फिर उसी हेतुसे सारे शरीरमें वेदना होना, मस्तिष्कमें भारीपन रहना, व्याकुलता और किसी किसीको स्मृतिनाश और उन्मादका असर होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें चन्द्रांशु रसके साथ अशोक घृतका सेवन कराया जाय, तो मासिकधर्मकी शुद्धि होती है और व्याकुलतादि लक्षणोंका दमन हो जाता है।

सूचना—(१) यदि रुग्णाको मलावरोध हो, तो मासिकधर्म आनेके पहले मृदु विरेचन देकर उदरशुद्धि करा लेनी चाहिये।

(२) मासिकधर्मके दिनोंमें ३ दिनतक शीतल वायुका सेवन, शीतल जलसे स्नान सूर्यके तापमें घूमना, नेत्रोंको परिश्रम पहुंचे ऐसा कार्य करना और भारी भोजन, ये सब हानिकर हैं।

(९) बृहद्धात्री घृत।

विधि—आंवलोंका स्वरस, विदारीकन्दका रस, दूध, शतावरका रस, पंचतृण (कुश, कास, ईख, मूंज और नरसल) का रस और गोघृत २-२ सेर ले। छोटी इलायची, लौंग, हरड, बहेडा, आंवला, केशर, तेजपात, मरमकी छाल, जटामांसी, केसेरू कन्द, कमलकी जड, सबको समभाग मिला जलके साथ २० तोले कल्क करें। सबको लोहेकी कडाहीमें मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। घृतमें मिश्री और शहद ४०-४० तोले, मुलहठी, निसोत, जवाखार और विधारेका चूर्ण ५-५ तोले मिला मन्थन कर एकजीव बना ले। (भै० र०)

मात्रा— ½ से १ तोला दिनमें २ बार चाटें।

उपयोग—यह घृत बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, तृषा, दाह, अरुचि, सोमरोग, पित्तवृद्धिजन्य विकार, वातिक भयंकर रोग, सबको दूर करके बलवीर्यकी वृद्धि करता है। इस ओषधिसे सोमरोग और बहुमूत्रमें तुरन्त लाभ होने लगता है।

[१०] अष्टमंगल घृत।

विधि—वच, कूठ, ब्राह्मी, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सैंधानमक और पीपल इन ७ ओषधियोंको समभाग मिला जलके साथ पीसकर कल्क करें। बादमें कल्क, ४ गुना गोघृत और १६ गुना जल मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ माशा शक्करमें या भोजनके पहिले ग्रासमें मिलाकर दिनमें १ या २ बार देते रहें।

उपयोग—यह घृत बालकोंको रोज चटानेसे उनकी बुद्धि बढती है और धारणाशक्ति तीव्र होती है, तथा पिशाच, राक्षस-भूत आदिकी बाधा नहीं होती, एवं बालक स्वस्थ और पुष्ट बनता है।

वक्तव्य—जिस बालकका यकृत् बढा हुआ (निर्बल) हो, तो उसे घृतप्रधान

औषधि या भोजन नहीं दिया जाता। ३ वर्षसे बड़ी आयुवाले बच्चोंको घृतप्रधान औषधि देनेसे मस्तिष्कको जल्दी लाभ पहुंचता है।

(११) ब्राह्मी घृत।

प्रथम विधि---ब्राह्मीका स्वरस ४ सेर और गोघृत २ सेर लेवें। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, काली निसोत, सफेद निसोत, दन्तीमूल, शंखाहुली, अमलतासकी फलीका गूदा, सातलाकी छाल (सिवककाई) और वायविडंग १।-१। तोला मिला जलमें पीसकर कल्क करे। फिर सबको ८ सेर जलमें मिला मन्दाग्निपर पचन कर घृत सिद्ध करें। (अ० हृ०)

मात्रा-- ½से १ तोला दिनमें २ बार दें।

उपयोग---यह घृत उन्माद, कुष्ठ, अपस्मार, मगजकी निर्बलता और मन्दाग्नि आदिको दूर करता है। वाणी, स्वर और स्मृतिको बढ़ाता है। वन्ध्या स्त्रीको संतानकी प्राप्ति कराता है। जिन रोगियोंको मलावरोध रहता हो, उन रोगियोके लिये यह विधि हितावह है।

यह घृत वातसंस्थाके लिये बल्य और मस्तिष्क शोधन है। जब मस्तिष्कमें कफ-संग्रह होकर मस्तिष्कमे भारीपन आजाता है, तब बुद्धि और स्मरणशक्तिका ह्रास, निद्रावृद्धि, थोड़ेसे मानस प्रयत्नसे मस्तिष्क थक जाना, मुखमण्डल निस्तेज और उदासीन भासना, पचनक्रिया मन्द रहना और मलावरोध बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्थामे मस्तिष्कको शुद्ध और सबल बनानेके लिये यह घृत आशीर्वाद के समान है।

कतिपय विद्यार्थियोंपर परीक्षाके समय अभ्यासका बोझा बहुत बढ़ जाता है। जिससे वे रात्रिको पूरी निद्रा भी नहीं ले सकते। उनके स्वास्थ्यकी रक्षा करने और मस्तिष्कको शक्ति देनेके लिये यह घृत उपयोगी है। इसके सेवनसे अनेक विद्यार्थियोंको आशातीत लाभ हुआ है।

नव्य वैद्यकके मतानुसार अपस्मार रोग कीटाणुजन्य है; अथवा अपस्मार होनेपर मस्तिष्कके भीतर विशेष प्रकारके कीटाणु संगृहीत हो जाते हैं। फिर उनके विषका प्रकोप होनेपर अपस्मारका दौरा होता है। इन कीटाणुओंको मस्तिष्कस्थ कफ या मलसे पोषण मिलता रहता है, यदि अपस्मारकी प्रारम्भावस्थामें इस घृतका सेवन कराया जाय तथा वैरेचनिक नस्य सूंघाया जाय, तो संगृहीत कफ और कीटाणु सब निकल जाते हैं। फिर मस्तिष्कका शोधन होकर रोग शमन हो जाता है।

मस्तिष्कमें आम, मल या कफका संचय होनेपर उसके विषका रक्तमें प्रवेश होता है। फिर उसी हेतुसे श्वेतकुष्ठ, दद्रु, कण्डू, आदि त्वचा रोगकी संप्राप्ति हो जाय, तो मस्तिष्-

और रक्तका शोधन होजाता है और उक्त सब विकार शमन होजाते हैं ।

सूचना—यदि यकृत् निर्बल हो और मल सफेद, दुर्गन्धयुक्त निकलता हो, तो घृतका सेवन नहीं कराना चाहिये ।

दूसरीविधि—ब्राह्मीका स्वरस या क्वाथ ४ सेर, गोघृत १ सेर तथा वच, कुष्ठ और शंखपुष्पी, तीनोंको सममाग मिला २० कल्क तोले करें । फिर सबको मिला मन्दाग्नि पर घी सिद्ध करें । (च० सं०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ बार लेवें ।

उपयोग—यह घृत उन्माद, अपस्मार और बालकोंके बालग्रहको नष्ट कर स्मरणशक्ति, बुद्धि और कांतिकी वृद्धि कराता है । जिन रोगियोंको मलावरोध न रहता हो, उन रोगियोंके लिये यह विधि अति लाभदायक है ।

(१२) गन्धक घृत ।

विधि—गोदुग्ध ८ सेरको गरम करें । उफान आनेपर आधसेर शुद्ध आंवलासार गन्धकका चूर्ण डालें । ३-४ उफान आजानेपर दूधको नीचे उतारें । शीतल होने पर दहीको मिलाकर जमा देवें । दूसरे दिन मन्थन कर मक्खन निकाल घी बना लेवें । छाछमें शुद्ध गन्धक रह जाय उसे अलग निकाल कर उपयोगमें लें ।

उपयोग—इस घृतमेंसे ६ माशे से १ तोला दिनमें २ बार दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तविकार, दाह, प्रमेह, दृष्टिमांद्य, शिरदर्द, मन्दाग्नि, कब्ज, फोडाफुन्सी और कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं । मालिश करनेसे सूखी खाज और त्वचा रोगनष्ट होते हैं । वातरक्त और गलत्कुष्ठरोग में भी यह घृत हितकारक है ।

(१३) चांगेरी घृत ।

विधि—चांगेरी (चूका) का रस, बेलफलकी छालका क्वाथ और खट्टा दही ३-३ सेर, घी गायका १ सेर, और सोंठ तथा जवाखार ५-५ तोले लें । सोंठ और क्षारका कल्क करें । फिर सबको मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें । (च० सं०)

उपयोग—इस घृतके पिलानेसे गुदभ्रंश रोग दूर होता है । आवश्यकतापर चूहेकी चरबी गुदभ्रंशपर लगाते रहें । वंगसेनने इस घृतको शूलयुक्त अतिसारनाशक कहा है । आमातिसार, अग्निमान्द्य, अरुचि और उदरपीडा को भी दूर करता है ।

(१४) दूर्वादि घृत ।

विधि—दूबका मूल, नीलकमल, कमलकी केशर, मजीठ, एलवालुक (अभावमें नेत्रबाला), मूर्वा, लोद, खस, नागरमोथा, रक्तचन्दन, पद्मकाष्ठ, मुनक्का मुलहठी, हरड गम्भारीकी छाल और सफेद चन्दन, प्रत्येक १।-१। तोले मिला जलके साथ पीसकर कल्क करें । पश्चात् बकरी अथवा गायका घी १ सेर, बकरीका दूध और

चावलोंका धोवन ४–४ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करें।

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें ३ वार चाटें और जहाँसे रक्त निकलता हो वहांपर अंजन, नस्य अथवा पिचकारी दें, या मालिश करें।

उपयोग—यह घृत ऊर्ध्व रक्तपित्त, अधो रक्तपित्त और रक्तार्शमें गिरने-वाले रक्तको शीघ्र बन्द करता है। स्त्रियोंके रक्तप्रदर और अत्यार्त्तव रोगको भी दूर करके गर्भाशयको शुद्ध वनाता है। भयंकर बढ़े हुए रक्तपित्तका भी इस घृत सेवनसे शमन होता है।

इस घृतका सेवन करानेसे सब प्रकारके रक्तपित्त दूर होते हैं। यदि वमन होती हो, तो घृतपान कराना चाहिये। नाकसे रक्त गिरता है, तो नस्य कराना चाहिये। कानोंसे रक्त आता हो, तो कानोंमें डालना चाहियें। नेत्रसे रक्त आता हो, तो नेत्रको घृतपूरित कराना चाहिये। गुदा या मूत्रेन्द्रियसे रक्तस्राव होता हो, तो बस्ति या उत्तर-वस्ति करानी चाहिये। एवं रोमकूपोंसे रक्तस्राव होता हो, तो समस्त शरीरपर मालिश करानी चाहिये। इस तरह इस घृतको विविध प्रकारके उपयोगमें लिया ज़ाता है। यदि बाह्य-स्थानिक प्रयोग कराना हो, तो भी घृतपान तो कराना ही चाहिये। घृतपान कराते रहनेसे आभ्यन्तरिक दोषकी निवृत्ति सत्वर होती है।

(१५) कल्याण घृत।

विधि—इन्द्रायनकी जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सम्हालूके बीज, देवदारु, एलवालुक (अभावमें नेत्रवाला), शालपर्णी, धमासा, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, प्रियंगु, नीलोफर, छोटी इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारदाना, नागकेशर, तालीसपत्र, बड़ी कटेली, चमेलीके ताजे फूल, वयविड़ंग, पृष्टपर्णी, कूठ, चंदन, पद्माख, इन २८ ओषधियोंको १।-१। तोले लेकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, गोघृत १ सेर और ४ सेर जल मिलाकर यथाविधि पाक करें। (च० सं०)

चक्रदत्तने इस घृतपाकमें दूध द्विगुण और जल चतुर्गुण मिलाकर नाम 'क्षीरकल्याण घृत रक्खा है।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से २ तोले दिनमें २ वार चाटें।

उपयोग—कल्याण घृत अपस्मार, चातुर्थिक ज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्णज्वर, हृदयका कम्प, कास, श्वास, मन्दाग्नि; प्रतिश्याय, वातरोग, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डु, उन्माद, दूषी विष, प्रमेह, भूतबाधा, हिस्टीरिया, बालग्रह, स्वरभेद और स्त्रियोंके वंध्यापनको नष्ट करता है, तथा आयु, बल, बुद्धिको बढ़ाता है। निस्तेजता, पाप रोग, राक्षस और ग्रहोंकी बाधाका विनाश करता है। यह घृत सन्तानो-त्पत्यर्थ उत्तम वृष्य है।

उपयोग—इसकी नस्य लेने तथा शिरमें मालिश करनेसे गिरे हुए केश नये उत्पन्न होते हैं। सफेद बाल काले होते हैं। बाल स्निग्ध दृढमूल वाले और भ्रमरके समान काले होजाते हैं।

द्वितीय विधि—सफेद चन्दन, नेत्रवाला, नख, कूठ, मुलहठी, छारछरीला, पद्माख, मजीठ, सरल (चीड), देवदारु, कचूर, छोटी इलायची, जायफल, नागकेशर, तेजपात, बेलकी छाल, शीतलमिर्च, रक्तचन्दन, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत अनन्तमूल, कृष्ण अनन्तमूल, कुटकी, लौंग, अगर, केशर, दालचीनी, निर्गुण्डीके बीज और नलिका, इन ३२ औषधियोंको २-२ तोले मिला मस्तुके साथ पीसकर कल्क तैयार करें। और पीपलकी लाखका (शास्त्रमें कही विधिसे) क्वाथ करें। फिर एक पीतलकी कलई की हुई कडाहीमें कल्क, ३॥ सेर लाक्षारस, १० सेर मस्तु (दहीका तोड) और ३॥ सेर तिलोंका तैल मिला मन्दाग्निमे यथाविधि पाक करे। (यो० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे विशेषत जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा और रक्तपित्त दूर होते हैं। यह उन्माद, अपस्मार, दाह, शिरदर्द, धातुविकृति आदि रोगोको दूर करके आयु और कान्तिको बढाता है।

(२२) चक्रमर्दादि तैल।

विधि—पवाडके मूलका कल्क १६ तोले, भागरेका स्वरस २५६ तोले और सरसोंका तैल ६४ तोले मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करें। पाक होनेके ५-७ मिनट पहिले १६ तोले सिंदूर मिलावें, फिर उतार लें, शीतल होनेपर तैल निकाल ले। (व० से०)

उपयोग—इस तैलकी पट्टी लगाते रहनेसे भयकर गडमाला नष्ट होजाती है, एव नाडीव्रण, दुष्टव्रण आदिमें भी लाभ पहुचता है।

(२३) वातहर तैल।

विधि—अरण्डीके बीज, मालकागनी और एकपोतिया लहसुन १-१ छटाक, भेडका दूध ३ छटाक और तिलो अथवा सरसोका तैल १२ छटाक ले। इन तीनो ओषधियोंको पीसकर दूधमें मिला ले। बादमें कलई की हुई पीतलकी कडाहीमें तैल डाल चूल्हे पर चढावें। फिर उस तैलमें ओषधिकी छोटी-छोटी पकोडी डालते जाय और अच्छी रीतिसे लाल होनेपर निकालते जाय। अन्तमें तैल नीचे उतार शीतल होनेपर छानकर बोतलमें भरले। (श्री प० मगुलालजी)

उपयोग—इस तैलकी मालिशकरनेसे सब प्रकारके वातरोग दूर होते हैं। न्युमोनियामें फेफडा पर मालिश करनेसे फेफडेके दोष दूर होते हैं। कानमें डालनेसे फुन्सी दूर होती हैं। देहके किसी भी भागमें वातनाडियोंके प्रदाहसे होनेवाली पीडा इस तैलकी मालिशसे शात होजाती है। यदि उदरमें वायु भरा हो, तो उदरपर इस तैलकी मालिश

धीरे हाथसे करायी जाती है। प्रसूताके गर्भाशयपर इस तैलकी मालिश कराते रहनेसे गर्भाशय सबल बनता है। ठण्डी वायुके आघातसे शरीरका कोई भी भाग रह गया हो और रोग नया हो तो इस तैलकी मालिशसे जल्दी लाभ पहुंचता है। उपयोग करनेके समय एक कटोरीमें निकाल निवाया कर लें। इस तेलको पैरोंके तले और गलेके ऊपरके भागमें नहीं लगाना चाहिये।

इस तैलका लगभग १०० से अधिक वर्षोंसे श्री मंगुलालजी के पितामह आदि उपयोग करते आये हैं। साधारण औषधि होनेपर भी बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है।

सूचना—जलप्रधान शोथमें वेदना होती हो या न होती हो, उसपर इस तैलकी या अन्य तैलकी मालिश नहीं की जाती।

[२४] अपूर्व तिला।

विधि—सफेद सोमलके १० तोले चूर्णको ७ दिन तक आकके दूधमें भिगोदें। पश्चात् सोमलकी २० तोले गायके घीके साथ ३ दिन घुटाई करें। फिर छोटी कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढाकर मन्द अग्नि दें। जब घी बिल्कुल नितरकर ऊपर आजाय और सोमल नीचे बैठ जाय, तब कड़ाही नीचे उतारलें। कड़ाही किंचित् गरम रहनेपर सम्हालकर ऊपर ऊपरसे स्वच्छ घी दूसरी कटोरीमें ले लें। जो सोमलवाला घी शेष रहे उसे जमीनमें गाड़ दें। फिर स्वच्छ घी ५ तोले, केशर और कस्तूरी १०-१० रत्ती, जायफल, जावित्री, लौंग और बीरबहूटी ५-५ माशे मिलाकर १ दिन घुटाई करें। (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस घृतमेंसे एक चनेके बराबर लेकर रातको सोते समय इन्द्रिय पर सुपारी तथा सींवनके भागको छोड़कर सम्हालपूर्वक मालिश करें। फिर नागरवेलके पानको थोड़ा गरम कर लपेट लें। ऊपर कपड़ा बांधें। इस तरह थोडे दिन मालिश करनेसे हस्तमैथुन या गुदामैथुनसे उत्पन्न नपुंसकता और इन्द्रियका टेढ़ापन दूर होता है। ४-६ रोज बाद इन्द्रिय पर छोटी-छोटी फुन्सियां होजाय तो ३-४ दिन मालिश बन्द करें और धोये घीकी मालिश दिनमें ३-४ बार करें। फुन्सी मिटे तब फिर तैलकी मालिश करें। इस रीतिसे १५-२० रोज मालिश करनेसे आशातीत रोगियोंको भी लाभ होता है।

दूसरी विधि—सफेद सोमल १ तोलेको ३ दिन आकके दूधमें खरल करें। फिर मुर्गीके २४ अंडोंकी जर्दी मिला छोटी कड़ाहीमें डाल तेज अग्नि पर रक्खें। कलछीसे सम्हालपूर्वक चलाते रहें। जर्दी जलकर काली होजाय और धुआं निकलने लगे, तब उसमेंसे तेल अलग होजाता है। इस तैलको अलग निकाल शीशीमें भरलें। दूसरे दिन धूपमें रख देनेसे साफ होजाता है। (श्री स्वा० हरिशरणानन्दजी)

उपयोग—इस तैलकी इन्द्रियपर मालिश कर नागरबेलका पान बांध देवें। एवं ४-६ बूंद बताशे या केपशूलमें डालकर निगल जायें, ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

सूचना—पहिली विधिमें लिखी है।

[२५] मल्ल सर्पि ।

विधि—शुद्ध मल्ल ४ माशे, कनेरकी जडकी छाल २ तोले, सफेद गुञ्जा ३ तोले और दूध ८ सेर ले । सबको दूधमें औटाकर दही जमा देवें । दूसरे दिन मथकर घृत निकाल लेवे । (अ० यो० मा०)

उपयोग—इस घृतकी मालिश करनेसे हस्तमैथुनजनित शिथिलता थोडे ही दिनोंमें दूर होती है । इस घृतको सुपारीका छोड लिंगपर मर्दन कर ऊपरसे नागरवेलका पान बांध देना चाहिये । विशेष सूचना अपूर्व तिलामें लिखी है ।

[२६] लिङ्ग तैल ।

विधि—कस्तूरी ७ रत्ती, कालीमिच, जुन्देबेदस्तर, हींग बढिया और बीरबहूटी ५-५ माशे, केशर १ माशा और बिनौलेकी गिरी ७ माशे ले । सबको खरल कर चमेलीके ५ तोले तेलमें मिला लेवें । (अ० या० मा०)

उपयोग—यह तैल लिंगकी शिथिलताको दूर करनेमें अति लाभदायक है। हस्तमैथुन और शारीरिक निर्बलतासे उत्पन्न नपुंसकताको दूर करता है ।

(२७) चर्मरोगनाशक तैल ।

विधि—नीमकी छाल, चिरायता, हल्दी, दारुहल्दी, लाल चन्दन, हरड, बहेडा, आवला और अडूसेके पत्ते, सबको समभाग लेकर कल्क करे । कल्कसे चौगुना तिलोंका तैल, और तैलसे चौगुना जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें । पानी जल जाने पर उतार कर तुरन्त छान लेवें । (स्वा० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिश करनेसे सब प्रकारके त्वचारोग, ब्यूची, खुजली, खाज, चमडी फटना, शुष्क होना, फुन्सी आदि दूर होते हैं । साधारण औषधियोंसे यह तैल बनता है । फिर भी बडे-बडे दृढ रोगोंको थोडे ही दिनोंमें दूर करता है ।

[२८] बिल्वादि तैल ।

विधि—कच्चे बेलकी गिरी ४० तोले, सरसोंका तैल २ सेर, जल और बकरीका दूध ८-८ सेर लेवें । प्रथम बेलगिरीको गोमूत्रमें पीसकर लुगदी बना लेवें । फिर एक पीतलकी कलईदार कडाहीमें सबको मिलाकर धीमी आंचसे पकावें । जब लुगदी लाल होने लगे, तब उतारकर तुरन्त छान ले । (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ बूंद ड्रापरसे कानमें डालें ।

उपयोग—कानका शूल, कर्णस्राव, बधिरता आदि कानके रोग मिटते हैं । लोहेकी कडाहीमें तैलका रंग काला हो जाता है, इसलिये पीतलका बरतन लेना चाहिये ।

सूचना—जब कानमें फुंसी होकर पाक हो रहा हो, तब बहुधा शूल चलता है । ऐसी अवस्थामें बिल्वादि तैल या अन्य किसी भी तैलका उपयोग नहीं करना चाहिये ।

उस समय धतूरेके पानोंका रस या अन्य वेदनाहर औषधिका रस या क्वाथ डाला जाता है । एवं शीतल जल और शीतल वायुसे कानकी रक्षा करनी चाहिये ।

(२९) क्षार तैल ।

विधि--कोमल मूलियोंका खार, सज्जीखार, जवाखार, सधानमक, काला-नमक, समुद्रनमक, बिड़नमक, सांभरनमक, हींग, सुहिंजनकी छाल, सोंठ, देवदारु, क , सौफ, बच, रसौत, पीपलामूल और नागरमोथा, सब १-१ तोला लेकर कल्क करें। सरसोंका तैल ६४ तोले; केलेके खम्भका रस, बिजोरेका रस और मधुशुक्त २५६-२५६ तोले लें । फिर सबको मिला चल्हेपर चढ़ाकर पाक करें। तल मात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेवें । (शा० सं०)

मधुशुक्त विधि--नींबूका रस ६४ तोले, शहद १६ तोले और पीपलका चूर्ण ४ तोले मिला एक बोतलमें बन्दकर अनाजकी कोठीमें ३ दिन दबा देनेसे मधुशुक्त तैयार होता है ।

उपयोग--इस तैलको कानमें डालनेसे सब प्रकारके कर्णरोग, पीप बहना, कर्णनाद, कर्णशूल और बधिरता आदि दूर होते हैं । इनके अतिरिक्त मुखरोग भी नष्ट होते है

यह तेल कर्णार्शजनित बधिरतापर उपयोगी है । इस तैलके प्रयोगसे कर्णार्शका क्षरण होता है । फिर बधिरता दूर होती है । इस तरह दोषको निकालनेके लिये इसका उपयोग कर्णपाकपर भी होता है । कभी देहके अन्य भागमें व्रण भरने लगे तब मांस वृद्धि अधिक होती है, उस मांसवृद्धिकी कमी करानेके लिए क्षारतैल का उपयोग होता है ।

(३०) निम्ब तैल ।

विधि--निम्बोलीका तैल २॥ सेर, हरताल २॥ तोले, मैनसिल २॥ तोले; चमेलीके पत्ते, मजीठ, मुलहठी, भिलावा, अगर, चन्दनका चूरा, इलायची, प्रत्येक ५-५ तोले कल्क करके तैलमे मिलावें और ५ सेर छाछ(तक्र) डालकर तैल सिद्ध करें ।

उपयोग--इस तैलमें बत्ती भिगोकर भगन्दरके छेदमें रोज रखनेसे थोड़े ही दिनोंमे आराम होता है । दूसरी जगहके सड़े घाव भी मिटते हैं। इस तैलको योगत रंगिणी कारने वल्मीकनाशक लिखा है ।

(३१) चक्रमर्द तैल ।

विधि--पुंवाड़के बीज, आहलिव (हालो), राई, सरसों, मालकांगनी ,तिल और नारियलकी गिरी समभाग ले । नारियलको छोड़ और वस्तुओंको मिलाकर चूर्ण करें । फिर नारियल मिलाकर कोल्हूमें तैल निकलवा लें । (आ० नि० मा०)

उपयोग--इस तैलको किंचित निवायाकर मालिश करनेसे वातरोगसे जकड़े हुए कमर, जाघ, पिण्डी आदि अंग अच्छे हो जाते हैं । पुराने रोगियोंको भी

लाभ पहुचता है ।

(३२) नारायण तैल ।

विधि—असगन्ध, खरेंटी, बेलकी छाल, पाठ, कटेली, बडी कटेली, गोखरू, अतिबला (कगई), नीमकी अन्तरछाल, अरलू, पुनर्नवा, प्रसारणी और अरनी, ये १३ वस्तुए ४०-४० तोले लेवें। सबको जौकुट कर ४०९६ तोले पानीमें डालकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल अवशेष रहने पर उतारकर छान लेवे । इसमें तिल तैल २५६ तोले, शतावरीका रस या क्वाथ २५६ तोले तथा गौका दूध १०२४ तोले मिलावें । फिर कूठ, इलायची, सफेद चन्दन, खरेटी,वच, जटामासी,सेंधानमक, असगन्ध, शैलेय (पत्थरफूल), रास्ना, सौंफ, देवदारु, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और तगर ४-४ तोले ले कल्क करके मिलावें। फिर कडाहीमें चूल्हेपर चढाकर मन्द ताप पर पाक करें। पश्चात् उतार कर तुरन्त छान लेवें । (भा० प्र०)

उपयोग—इस तैलका वातशमनार्थ पीने, नस्य, बस्तिकर्म और मर्दनमें उपयोग होता है । सब प्रकारके वातरोग,पक्षाघात, मन्यास्तम्भ,हनुस्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, कटिग्रहवायु, गलग्रह, गज, चलते समय पैर टेढे पडना, अंग सूखना, इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होना, वीर्यके साथ रक्त जाना,ज्वर, राजयक्ष्मा, अंडवृद्धि,अंडकोषमें शूल चलना, दन्तरोग, शिरोग्रह, पंगुता, स्मृतिनाश, कष्टसाध्य किसी भी प्रकारके वातरोग, सर्वांगवात, बहरापन, पसलियोंका शूल, ज्वर, क्षय, धातुक्षीणता, रक्तविकार आदि रोगोंमें अति लाभदायक है । इसके प्रभावसे वन्ध्याको पुत्र होता है। इसकी मालिश हाथी और घोडोंके लिये भी हितकर है ।

यह तैल वातवहानाडियोंके क्षोभको दूरकर वातवाहिनियोंको सबल बनाता है। वातके साथ पित्तविकार हो, तो भी इस तैलकी मालिश हितावह है। यदि आनदाह हो, तो इस तैलकी अपेक्षा विषगर्भ तैलकी मालिश विशेष अनुकूल मानी जायगी ।

[३३] कासीसादि तैल ।

विधि—कसीस, लांगली (कलिहारी) , कूठ, सोंठ, पीपल, सेंधानमक, मैनसिल, कनेरकी छाल, बायविडंग, चित्रकमूल, अडूसेके पत्ते, दन्तीमूल, कडवी तोरईके बीज, सत्यानाशीकी जड, हरताल, सबको १-१ तोला जलमें पीसकर लुगदी बनावें । फिर तिलोंका तैल ६४ तोले, थूहरका दूध ८ तोले आकका दूध ८ तोले और गोमूत्र २५६ तोले ले। सबको बडी कडाहीमें मिलाकर मन्दाग्निसे पकावें । फिर उतारकर तुरन्त छान लेवें । (शा० स०)

उपयोग—यह तैल अर्शपर लगानेसे मस्से मुरझा जाते हैं । यह तैल गुदाकी वलीको नुकसान नहीं पहुचाता । इस तैलको धैर्यपूर्वक ३-४ मासतक लगाते रहना चाहिये ।

(३४) लाक्षादि तैल।

विधि—पीपलकी लाख ४ सेर; सोया, अशगन्ध, हल्दी, देवदारु, रेणुक बीज, कुटकी, मूर्वा, कूठ, मुलहठी, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, पद्माख, खस, सफेदचन्दन, जटामांसी, और मजीठ १।-१। तोला लें। तिलका तैल १ सेर और दहीका पानी अथवा मट्ठा ४ सेर लें। पहले लाखको १६ सेर जलमें मिलाकर औषधि-कृति प्रकरणमें लिखे अनुसार क्वाथ (रस) करें। ४ सेर जल शेष रहे तब उतार कर छान लें। फिर और वस्तुओंको जलमें पीसकर कल्क करें। पश्चात् कलई की हुई पीतलकी कड़ाहीमें सबको मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करें। तैल शेष रहे तब उतारकर तुरन्त छान लें। (शा० सं०)

सूचना—तैल पाक होनेपर छरीला, नखी, कपूर, कूठ और सफेद चन्दन आदि सुगन्ध द्रव्य १।-१। तोला मिला लेनेसे तैल सुगन्धित बनता है। यह तैल एक साथ ४ गुना बनानेसे अच्छा बनता है और पूरा मिलता है, कम बनानेपर कुछ जल जाता है, तथा कुछ लाखके रसमें मिल जाता है, जिससे कम हो जाता है। इस पाठमें लाख १ सेर, तैल ४ सेर मठ्ठा १६ सेर लें, तो तेल योग्य बनता है।

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे जीर्णज्वर, सब प्रकारके विषमज्वर, कास, श्वास, प्रतिश्याय, कटिवात, पीठमें कफपित्तसे होनेवाला दर्द, वात-पित्त प्रकोप, अपस्मार, उन्माद, खुजली, शूल, यक्ष राक्षसका प्रकोप (कीटाणुजन्य ज्वर, धनुर्वात आदि) प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना, गात्र-स्फुरण और क्षयरोगमें अति हितकर है। इस तैलकी मालिशसे गर्भिणी स्त्री और गर्भ पुष्ट होते हैं; हाथ-पैरोंकी जलन दूर होती है। क्षयरोगमें इस तैलकी मालिश करते रहनेसे शक्तिका रक्षण होता है। क्षयरोगमें जब ज्वर मर्यादित (९९ डिग्रीसे कम) हो, तब मालिश करें। ज्वर बढ़ जानेपर मालिश न करें।

यह तैल वातवाहिनियों और मांसपेशियोंको सुदृढ बनाता है; रक्तमें रहे हुए विषको शांतकर शारीरिक उष्णताको कम कराता है तथा त्वचाको पुष्ट बनाता है।

सूचना—(१) क्षयरोगमें जब ज्वर मर्यादित (९९° से कम) हो, तब मालिश करनी चाहिये। सामान्यतः रात्रिको स्वेद निकल जानेके पश्चात् मालिशकर लेनी चाहिये। यदि बढ़ते हुये उत्तापकालमें मालिश की जायगी, तो त्वचासे बाहर निकलने वाली उष्णता और स्वेदस्रावमें अवरोध होगा। फिर विषवृद्धि हो जायगी।

(२) शीतकालमें तैलको निवाया करके मालिश करनी चाहिये। एवं शरीरको शीत न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये। यदि अन्तर्दाह होता हो, तो मालिश शीतल तैलसे करनी चाहिये।

(३) मालिश धीरे हाथसे मांसपेशियोंको और नाड़ियोंको कष्ट न पहुँचे और सहन हो सके उस तरह करनी चाहिये। मालिश सर्वदा सीधे हाथसे करनी चाहिये।

विपरीत गतिसे नहीं ।

(४) इस तैलकी मालिश मस्तिष्कपर नहीं करनी चाहिये । अन्यथा वाल चिपक जायेंगे और फिर मैल जमा हो जायगा ।

(५) मालिश करनेमें त्वचाके छिद्र कुछ बन्द हो जाते हैं । इस हेतुसे दोपहरको जब अधिक ज्वर न हो तब, तौलियेको गरम जलमें भिगोकर देहको पोंछ लेना चाहिये । एवं उस समय तेज वायु न लगे यह सम्हालना चाहिये ।

[३५] घाव तैल ।

विधि—भिलावा, लहसुन, प्याज और अजवायन ५-५ तोलेको मिलाकर ४० तोले तिलके तेलमें भूनें । ठण्डा होनेपर छान लें ।

उपयोग—यह तैल आगन्तुक जख्म (छुरी, चक्कू, पत्थर आदिसे चोट लगने पर खून निकलना) दूर करनेमें अति उपयोगी है । यह तैल साधारण वस्तुसे बना है, परन्तु अति लाभदायक है । इस तैलमें हाथ-पैरका भाग डुबो देनेसे रक्तस्राव तत्काल रुक जाता है, और घाव भर जाता है । इस तैलका फोहा बांधनेमें घाव नहीं पकता ।

दूसरी विधि—हरड़, बहेड़ा, आंवला तीनों ५-५ तोले, नीमके पत्ते २० तोले और निर्गुण्डीके पत्ते १५ तोले लें । सबको ४०० तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर छान लें । फिर इस जलमें तिल-तैल ८० तोले तथा गूगल, राल, शिलारस, गंधाविरोजा और मोम ५-५ तोले मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करें । तैल सिद्ध होनेपर उतारकर तुरन्त छानलें । पश्चात् कार्बोलिक एसिड २॥ तोले और कपूर ५ तोलेको एक बोतलमें भरें । जल सदृश प्रवाही हो जानेपर तैलमें मिला लें ।

(श्री गोपालजी कुवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य)

वक्तव्य—इस तैलका मुख्य पाठ पचगुण तैलके नामसे द्वितीय खण्डमें दिया है । यह तैल शीतल होनेपर मलहम सदृश गाढा बन जाता है । पतले प्रवाही तैलकी आवश्यकता होनेपर अग्नि पर या धूपमें रखकर किंचित् गरम कर लेना चाहिये ।

उपयोग—यह तैल चोट लगनेपर मांस कुचल जाना, चोट लगकर रक्तस्राव होना, मांस फटकर घाव होजाना, पूय निकलना, व्रणरोपण न होना, जले हुए भागमें पूयोत्पत्ति होजाना, छुरी, तलवार, कील, भाला आदि लगकर रक्तस्राव होना आदि आगन्तुक व्याधियोंपर आश्चर्यजनक लाभ पहुंचाता है । यह तैल रक्तप्रवाहको तत्काल बन्द करता है । व्रणको शुद्ध बनाता है, सड़ते हुए मांसको रोकता है, नया मांस लाता है, और व्रणको भर देता है ।

अकस्मात् जल जानेपर इस तैलका प्रयोग करनेसे और शीतल जलका स्पर्श न करानेसे उस स्थानपर त्वचा-मांस सड़कर पूयकी उत्पत्ति नहीं होती, इतना ही नहीं, लगानेके साथ बर्फके समान शीतलता पहुंचाकर वेदनाको १५ मिनटमें शांत कर देता है ।

ग्रीष्म ऋतुमें छोटे बच्चोंके शिर या देहमें छोटे-छोटे फोड़े होकर पक जाते हैं। फिर पूयस्राव होता रहता है; । उस रोगपर दो-चार दिनतक लगाते रहनेसे फोड़े सूख जाते हैं; नये उत्पन्न नहीं होते और त्वचा स्वच्छ होजाती है।

कर्णपाक होकर पूयस्राव होनेपर इसकी बूंद दिनमें १-२ बार डालते रहनेसे पूयस्राव बन्द होता है, और घाव भर जाता है।

यह तैल ड्रेसिंगके लिये अति हितावह होनेसे विविध रोगोंके ड्रेसिंगमें अनेक ओषधियोंका कार्य कर देता है। यह डाक्टरी आइडोफार्म, टिंचर आयोडीन, जिंकमलहम, बोरिक मलहम, कार्बोलिक एसिड, हाइड्राजिरी लोशन आदि ओषधियोंके स्थानपर काम देता है। यह उत्तम कीटाणुनाशक और व्रणरोपण है। लेखकका अनेक वर्षोंका अनुभव है। लेखकने नाम "ड्रेसिंगका तैल" दिया है।

सूचना—इस तैलका प्रयोग करनेके पहले घावको नीम जल मिलाकर उबाले हुए जल या कार्बोलिक लोशनसे धो लेना चाहिये।

घावमें मिट्टी, धूल, पत्थर, कांचादि कुछ भी शेष रह गया हो, तो उसे सम्हालपूर्वक निकाल डालना चाहिये।

पट्टी बांधे वह स्वच्छ कपड़ेकी होनी चाहिये। पट्टी बांधनपर भी घावमें धूलादि मैल न चला जाय, यह सम्हालना चाहिये।

[३६] नाड़ीव्रणहर तैल।

विधि—भिलावा और कौच बीज २-२ तोले; खुरासानी अजवायन, मुर्दासींग, नीलेथोथेका फूला ३-३ तोले और तिलका तैल १॥ सेर लें। पहिले तैलको चूल्हेपर चढ़ावें। उफान आनेपर भिलावा डालकर जलावें। फिर कौचका चूर्ण और अजवायनका चूर्ण डालें। पश्चात् कड़ाहीको नीचे उतार मुर्दासंग और नीलाथोथा मिलाकर अच्छी रीतिसे घोटें। फिर छानकर बोतलमें भर लें।

उपयोग—यह तैल सब प्रकारके नासूरोंको भरनेमें अकसीर है। साधारण फोड़ोंके लिये छाननेकी जरूरत नहीं। अनेक नाड़ीव्रणके रोगियोंको इस तैलके उपयोगसे लाभ होगया है, जो अनेक वर्षोंसे पीड़ित रहते थे। बड़े-बड़े शहरोंकेडाक्टरोंकी ओषधियां करके निराश हो गये थे, ऐसे रोगियोंका रोग निर्मूल हुआ है।

सूचना—भिलावेके धुएंसे शरीरको बचाना चाहिये।

[३७] भृंगराज तैल।

विधि—भांगरेका रस ४ सेर, मंडूर, त्रिफला और अनन्तमूल, इन पांच ओषधियोंको समभाग मिलाकर २० तोले कल्क और तिलका तैल १ सेर लें। सबको ४ सेर जलके साथ मिलाकर मन्दाग्निसे तैल सिद्ध करें। (शा० सं०)

उपयोग—दारुणक (शिरपर छोटी-छोटी फुन्सी होना, केशभूमि कठोर

होना, खुजली चलना), अरुंषिका (छोटे-छोटे फोडे सिरपर होना, पीप निकलना), बाल सफेद होजाना, इन्द्रलुप्त (बाल झड जाना) इत्यादि दोष इस तैलकी मालिशसे दूर होजाते हैं। इसका अनेक समय हमने अनुभव किया है। यह सत्वर लाभ पहुचाता है।

[३८] करवीर तैल।

विधि—सफेद कनेरका मूल, दन्तीमूल, हल्दी, कलिहारी, चित्रकमूल, मधानमक ३-३ तोले, बिजौरेका रस ८ सेर और आकका दूध २० तोले ले। पहली ६ वस्तुओंको जलमें पीसकर चटनी बनाले। फिर एक कडाहीमें सबके साथ सरसोंका तैल १ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर सिद्ध करें। (यो० र०)

उपयोग—भगन्दर और नासूरमें इस तैलका बत्ती द्वारा प्रयोग करनेसे थोडे ही दिनोंमें दूषित भागका शोधन होकर वे भर जाते हैं। गहरे भागमें शोधनके लिये यह अच्छा प्रयोग है।

[३९] कोशातक्यादि तैल।

विधि—कडवी तारईका रस २ सेर, तिलका तैल ४० तोले तथा कडवी तुम्बीका बीज और सोठ ५-५ तोले ले। पहिले तुम्बीके बीज और सोठका कल्क करें। फिर सबको कलईवाली पीतलकी कडाहीमें भरकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (आ० मि०)

उपयोग—इस तैलकी पट्टी बाधनेसे, सडा मास, उपदंशके घावमें कीडे पड गये हो, दुष्टव्रण, भगन्दर आदि रोग दूर होते हैं।

सूचना—इस तैलमें मोम, सिंदूर, कपीला और मुर्दासींग मिलानेसे मलहम बनता है जो घावोंको सत्वर भर देता है।

[४०] षडबिन्दु तैल।

विधि—अरडीकी जड, तगर, सोवा, जीवन्ती (डोडी), रास्ना, सैंधा नमक, भागरा, वायविडङ्ग, मुलहठी और सोठको समभाग मिला भागरेके रसमें पीसकर कल्क करें। बादमें कल्कसे ४ गुना काले तिलका तैल और उतना ही बकरीका दूध तथा तैलसे ४ गुना भागरेका रस मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करें। (ग० नि०)

उपयोग—इस तैलके नस्यसे सब प्रकारके शिरोरोगका शीघ्र नाश होता है, और बाल गिरना, दात हिलना, प्रतिश्याय, नाकमें सूजन आदि दोष दूर होकर दृष्टि तीव्र होती है, एवं पलित रोग दूर होजाता है।

(४१) सिद्धार्थादि तैल।

विधि—सफेद सरसो, पीपल, कूठ, गोमी और जटामासीको समभाग मिला

जलमें पीसकर कल्क करें। कल्कसे चार गुना सरसोंका तैल और १६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करें। (र० चं०)

उपयोग—गुदा अथवा योनिमे बस्ति द्वारा इस तैलका प्रवेश करानेसे प्रसूता स्त्रीका रुका हुआ जेर शीघ्र गिर जाता है।

[४२] कटुतुम्बी तैल।

विधि—वायविड़ंग, जवाखार, सैंधानमक, बच, रास्ना, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, और देवदारु, सबको समभाग मिला कड़वी तुम्बीके रसमें पीसकर कल्क करे। बादमें कल्कसे ४ गुना सरसोंका तैल और १६ गुना कड़वी तुम्बीका स्वरस मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (वृन्द)

उपयोग—इस तैलके नस्यसे गलगण्ड रोग शमन होता है। इसके अतिरिक्त नाड़ीव्रण और भगंदरमें इस तैलकी बत्ती रखनेसे थोड़े ही दिनोंमें भीतरके विकारका शोधन होता है।

[४३] मनःशिलादि तैल।

विधि—मैनसिल, हरताल, भिलावा, छोटी इलायची, अगर, रक्तचन्दन, चमेलीके पत्ते और तगर, सबको जलके साथ पीसकर कल्क करें। बादमें नीमके बीज (निबोली) का तैल कल्कसे ४ गुना ओर १६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करे। (वृन्द)

उपयोग—वल्मीक (सूजन होकर छोटे-छोटे अनेक छिद्र होना) रोगपर इस तैलकी पट्टी लगानेसे शीघ्र लाभ होता है।

(४४) गन्धकादि तैल।

विधि—गन्धक और हल्दी ४-४ तोले मिलाकर कल्क करें। फिर कल्क, सरसोंका तैल ३२ तोले और धतूरेके पत्तोंका रस ३२ तोले मिलाकर मन्दाग्निपर सिद्ध करें। (र० र०)

उपयोग—इस तैलके डालनेसे कानका पुराना नाड़ीव्रण (पीप आना) दूर होता है।

[४५] बालरक्षक तैल।

विधि—मकोयके पते, बियाबाँसा, करेला, भाँगरा, छोटी दूधी पंचाग और नागरबेलके पान, सबका रस४०-४० तोले लें। हल्दी, जटामांसी, अगर, कूठ, सुगन्धवाला, असगन्ध, मुलहठी, रक्तचन्दन, जायफल, लोंग सबको समभाग लेकर २० तोले कल्क करें। रस, कल्क और तिलका तैल १ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर तैल सिद्ध करें। फिर १ छटांक तैल गरमकर १ तोला कपूर डालकर सब तैलमें मिला लें।

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे बालकोंके जीर्णज्वर तालुकण्टक (बाल-

शोथ) निर्बलता, मृदुस्थि, कण्डु आदि रोग दूर होते हैं ।

[४६] धातक्यादि तैल

विधि—धायके फूल, आवले, तेजपात, जलवेंत, मुलहठी, कमलके फूल, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, कसीस, लोद, कायफल, तेंदुकी छाल, कच्ची फिटकरी, अनारकी छाल, गूलरकी छाल और कच्चे बेल फल, इन १६ औषधियोंको १।-१। तोले मिला कूट चूर्णकर बकरीके मूत्रमें पीसकर लुगदी बनावें । पश्चात् कडाहीमें २ सेर तिलका तैल, ४-४ सेर बकरीका मूत्र और बकरीका दूध मिलाकर मन्दाग्निपर यथाविधि पाक करें । (च० स०)

उपयोग—इस तैलका फोहा योनिमें रखने या उत्तर वस्ति (पिचकारी) देनेसे विलुप्ता, परिप्लुता, वातला आदि वातज योनिरोग, योनिके भीतरका शोथ, योनि बाहर उभर आना, योनिशूल, घाव होना, पीप बहना एवं योनिकन्द आदि रोग दूर होते हैं । योनिशूलमें पेड, कमर, पीठ आदिपर मालिश भी करनी चाहिये ।

(४७) नतादि तैल ।

विधि—तगर, बडी कटेलीका पचाग, कूठ, सेंधानमक और देवदारु, सबको समभाग मिला जलमें पीसकर ४० तोले कल्क करें । एक कडाहीमें कल्क, २ सेर तिलका तैल और कल्कमें कही हुई औषधियोंका क्वाथ ८ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें । (अ० हृ०)

उपयोग—इस तैलकी पिचकारी लगाने या फोहाको योनिमें रखनेसे विलुप्त योनि (योनिके भीतरकी पीडा बनी रहना), उदावृता योनि, वातला, योनि, योनिदोष, योनिशूल आदि दूर होते हैं ।

गर्भाशय शिथिल होनेपर मासिकधर्म अनियमित आता है, एवं मासिकधर्मके समय शूल निकलना, कमरमें वेदना, चारो ओर दबानेमें पीडा होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, ऐसी अवस्थामें इस तैलकी उत्तरवस्ति दिनमें १-२ बार देने (१-२ औंस तैल चढ़ाने) तथा कमर, गर्भाशय, पैर आदि भागपर मालिश करनेपर योनिशूल निवृत्त होता है, गर्भाशय सबल होता है, और मुखमण्डल तेजस्वी बनता है । यदि योनिमार्गमें ही वस्ति देना हो, तो रुग्णाको बायी करवट लेटा, बाया हाथ पीठकी ओर करा, पैर मुडवावें, अर्थात् सिम्स पोजिशन (Sims' Position)में लेटाकर पिचकारी देवें और आध घण्टेतक लेटे ही रहने देवें । योनिमुखपर रुईका फोहा लगा देवें । वस्ति गर्भाशयमें देना हो तो पलगपर चित्त लेटा, गर्भाशय और योनिमुख ऊचा रखवाकर रबरके निर्जन्तुक किये हुए कैथेटर द्वारा तैल प्रवेश करावें । इस वस्तिके प्रयोगसे अच्छा लाभ पहुच जाता है ।

(४८) बला तैल ।

विधि—बला (खरेंटी) के मूल, दशमूल, जौ, बेर, कुलथी, पाचोका अलग

अलग क्वाथ ८-८ सेर, गोदुग्ध ८ सेर, तिलका तैल १ सेर और निम्न ओषधियोंका कल्क २० तोले मिला यथाविधि पाककर तैलको सिद्ध करें। कल्कके लिये मधुरादि गण (काकोली, क्षीरकाकोली; मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मुद्गप, माषपर्णी, गिलोय, काकड़ासीगी, वंशलोचन, पद्माख, मुनक्का, जीवन्ती, मुलहठी और पुण्डरिया, इनमें जो मिल सके), सेंधानमक, अगर, राल, सरसका गोंद, देवदारु, मजीठ, सफेद चन्दन, कूठ, छोटी इलायची, कृष्णसारिवा, जटामांसी, छरीला, तेजपात, तगर, श्वेतसारिवा, बच, शतावर, असगन्ध, सोया, पुनर्नवाकी जड़, सबको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क करे। (सु० सं०)

उपयोग—इस तैलकी मालिश या योनिमें संतर्पण करने और पिलानेसे प्रसूताके संपूर्ण वातप्रकोप शमन होते हैं। यह तैल गर्भ धारणकी इच्छा रखनेवाली स्त्री और क्षीणशुक्र पुरुषके लिये हितकर है। इसके प्रयोगसे धातुक्षीणता, मर्मस्थानपर चोट लगना, टूटे हुए तथा निर्बल हुए अवयव, आक्षेप आदि वातव्याधि सब नष्ट होते हैं। इसके सेवनसे धातु और यौवन स्थिर रहते हैं।

(४९) महाविषगर्भ तैल।

विधि—धतूरेके बीज, निर्गुण्डीके बीज, कड़वी तुम्बीके बीज, पुनर्नवाके मूल, अरण्डीके बीज, असगन्ध, पुंवाड़, चित्रकमूल, सुहिंजनेकी छाल, काकमाची, कलिहारीके मूल, नीमकी अंतरछाल, वकायनकी छाल, दशमूल (शालपर्णी आदि १० ओषधियां), शतावर, छोटे करेले, सारिवा, गोरखमुण्डी, विदारीकन्द, सेहुंड, आक, मेढ़ासिंगी, सफेद कनेरके मूल, पीली कनेरके मूल, काकजंघाके मूल, अपामार्गके मूल, बला, अतिबला, नागबला, महाबला, छोटी कटेली, अडूसेके पत्ते, गिलोय और प्रसारणी, इन ४३ ओषधियोंको ४-४ तोले लेकर १०२४ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। पश्चात् त्रिकटु, कुचिला, रास्ना, कूठ, पीला सोमल, नागरमोथा, देवदारु, काला बच्छनाग, जवाखार, सज्जीखार, पंचलवण, नीलाथोथा, कायफल, पाठा, भारंगी, नौसादर, त्रायमाण, जवासा, जीरा, इन्द्रायण फल, इन २६ ओषधियोंको १-१ तोले लेकर जलके साथ पीसकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, क्वाथ और काले तिलके ४ सेर तैलको मिलाकर यथाविधि सिद्ध करें। (यो० र०)

वक्तव्य—तैल तैयार होनेपर थोड़ा गरम रहनेपर उसमें कपूरका चूर्ण १० तोले मिला लेना चाहिये।

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे सब प्रकारके आम और शूलसह वातरोग, सन्धिवात, कटिवात, अर्धांगवात, गृध्रसी, दण्डापतानक आदि वातरोग तथा कर्णनाद, कानसे कम सुनना आदि दूर होते हैं। वेदना शमनार्थ यह उत्तम प्रयोग है।

(५०) लघु विषगर्भ तैल।

विधि—काले तिलका तैल, भूसीका क्वाथ, कनेरकी जडका क्वाथ, धतूरेका रस, निर्गुण्डीके पत्तोंका स्वरस, आकके पत्तोंका स्वरस, जटामासीका क्वाथ, सबको २५६-२५६ तोले मिलाकर तैल सिद्ध करें । पश्चात धतूरेके बीज, कूठ, फूल प्रियगु, वच्छनाग, सत्यानाशीकी जड, रास्ना, सफेद कनेरकी जड, मालकांगनी, कालीमिर्च, दन्तीकी जड, जटामासी, वच, चित्रकमूल, पीली सरसो, देवदारु, दारुहल्दी, हल्दी, अरण्डीकी जड, लाख, त्रिफला, मजीठ, इन २३ ओषधियोंके ४-४ तोले बारीक चूर्णको तैलमें मिलाकर ७ दिन धूपमें रखकर छान लेवें । २१ दिन धूपमें रखना चाहिये । (यो० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे महाविषगर्भमें लिखे हुए सब प्रकारके वातरोग नष्ट होजाते हैं ।

(५१) चन्दनादि यमक ।

विधि—रक्तचन्दन, वडकी जटाके अकुर, मजीठ, मुलहठी, नीले कमल, दूब, पतग और धायके फूल, सबको समभाग मिला दूधमे पीस ४० तोले कल्क करे । फिर तिलका तैल और गोघृत १-१ सेर तथा गोदुग्ध ४ सेर मिलाकर यमक करे । (वृन्द)

उपयोग—इस यमकके लेपसे अग्निदग्ध व्रण जल्दी भर जाते हैं । लगानेके साथ तीव्र व्यथा शमन होती है, और थोडे ही दिनोंमे घाव भर जाता है ।

सूचना—अग्निदग्ध व्रणको ठण्डे जलसे नही धोना चाहिये ।

(५२) पीडाशामक तैल।

विधि—सिरस, धतूरा, निर्गुण्डी, और सिताब (सर्पदृष्ट्रा) इन चारोंके पान, मंदालकडी, सोंठ, अजवायन, वच, सेंधानमक, और कपूर, ये १० ओषधिया ५-५ तोले, वच्छनाग और कुचिला २॥-२॥ तोले और तिलका तैल१२० तोले लेवें । कपूरको छोड शेष सब ओषधियोंको मिला कूट जलमें पीसकर कल्क करें । फिर कडाहीमें तैल डालकर गरम करें । इसमें सब कल्ककी पकौडी तल-तल कर निकाल लेनेसे तैलमें गुण और सुगन्ध आजाते हैं । तैलका रंग हरा होजाता है । फिर कडाहीको नीचे उतार तैलको तुरन्त छान लेवें, और उसमें कपूरका चूर्ण मिलाकर ढक दें । शीतल होनेपर बोतलोंमें भर लेवें । (श्री गोपालजी कुवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग—इस तैलका उपयोग वातरोगमें तत्कालिक वेदना शमनार्थ किया जाता है । कभी-कभी चोट लगनेके पश्चात् कुछ कसर रह जाती है । फिर मद-मद वेदना होती रहती है, कभी-कभी शूल निकलता है, और दीर्घकालतक त्रास पहुचता रहता है । इन सबपर इस तैलकी मालिश और थोडे सेकसे अत्यन्त लाभ पहुचता है । सांधे छूटे होने, हड्डियोंमें होनेवाली वेदना दूर होती है, और ये सब अवयव पहिलेके समान दृढ बन जाते हैं ।

चोट लगकर रक्त जम जाता है । फिर रक्ताभिसरण क्रिया योग्य नही होती, और वायु प्रकुपित होकर वेदना होने लगती है । ऐसी परिस्थितिमें इस तैलकी मालिश अति हितकर है ।

सूचना—जहरी होनेसे इस तैलके मालिश करनेके पश्चात् हाथोंको अच्छी तरह साबुनसे धो लेना चाहिये ।

अंजनाधिकार ।

जीवनका आधार प्राणिमात्रके लिये नेत्र हैं । नेत्र निर्दोष होनेसे जीवन सुखमय रहता है । इसलिये औषधियाँ बनानेमें अति सम्हाल रखना चाहिये, और परीक्षाकर रोगका निश्चय करके औषधि प्रयोग करना चाहिये । एवं हो सके तबतक तीक्ष्ण औषधियोंका उपयोग नहीं करें ।

वर्षाऋतुमें वायुमंडलके भीतर विविध प्रकारके कीटाणु फैल जाते हैं । एवं बड़े शहरोंके वायुमण्डलमें तो रोगोत्पादक कीटाणु बारहों मास वर्तमान रहते हैं। वे कीटाणु वायुके संस्पर्शके साथ नेत्रकी श्लैष्मिक त्वचाबाह्य-पटल को लगते रहते हैं।इनमेंसेकितने ही कीटाणु नेत्रवारि द्वारा नष्ट होजाते हैं; दिनमें पलकके खुलने बन्द होनेकी क्रिया सतत चलती रहती है । इस हेतुसे आवश्यक नेत्रवारि बाहर निकल कर सतहको सम्हालता रहता है । किन्तु रात्रिके समय पलकोंकी क्रिया स्थगित होजाती है । इस हेतुसे नेत्रकोण या नासारन्ध्रमें प्रवेशित कीटाणुओंको समय मिल जाता है । जिससे कितने ही कीटाणु वहां दृढ़ हो जाते हैं । जो शनैः शनैः आबादी बढ़ाकर कुछ दिनोंमें विविध रोगोंकी सम्प्राप्ति कराते हैं । इस उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर शास्त्राचार्योंने सौवीरांजन (सुरमा) का नित्य प्रति अंजन और ५ या ८ दिन होने पर रसांजनका अंजन करनेकी आज्ञा की है (च०सं०सू०५ ।१२) तथापि आधुनिक विद्वानोंकी दृष्टिसे निर्दोष नीरोग नेत्रोंमें सुन्दरता दिखानेके लिये अथवा तेजवृद्धि निमित्त नित्य प्रति विविध तीक्ष्ण औषधनिश्रित नेत्रांजन डालते रहनेकी प्रथाको लाभदायक नहीं कह सकेंगे । केवल बालकोंके निर्बल नेत्रोंको सबल बनानेके लिये काजल डालनेमें विरोध नहीं है । नेत्रोंमें अवस्थित अन्तर शक्ति सबल होनेपर यदि बाह्यसहायता बिना नेत्ररोगोंकी उत्पत्तिसे संरक्षण कर सकती है,तो विविध औषधनिश्रित नेत्रांजनका उपयोग न करना यही श्रेयस्कर माना जायगा । अन्यथा वह शक्ति शनैः शनैः पराधीन और निर्बल हो जायगी । इसके अतिरिक्त जो नेत्रोंकी अच्छी स्थितिमें तीक्ष्ण नेत्रांजन डालकर ज्यादा अश्रुविन्दु निकालनेका प्रयत्न करते हैं; वे तो नेत्रोंको निःसंदेह हानि ही पहुंचाते हैं ।

आहार विहारके दोषोंसे नेत्रोंमें उष्णता बढ़कर रोग उत्पन्न हुआ हो,तो कारणभूत मूलदोषका (अपथ्य आहार-विहारका) त्याग करें । पश्चात् मस्तिष्क और नेत्रोंको शांति पहुंचानेके लिये खानेकी औषधि और अनुकूल पथ्य भोजनके साथ नेत्रौषधिका उपयोग किया जाय, तो लाभ शीघ्र पहुचता है ।

उपदंश, सुजाक आदि रोगोंसे रक्त दूषित होकर नेत्ररोग हुआ हो,तो साथमें रक्तशोधक औषधका सेवन करना चाहिये । रक्तकी शुद्धि हुये बिना केवल नेत्रौषधिसे कदापि नेत्ररोग दूर नहीं हो सकेगा ।

नेत्र-रोगोंकी चिकित्सामें निम्न सेक आदि ७ कर्म कहे हैं—

सेक आश्चोतन पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा ।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥

(१) सेक जल आदिकी धारासे नेत्रोंको स्वेद देना ।

(२) आश्चोतन—नेत्रोंमें ड्रापर आदिसे अर्क, तैल आदि औषधिकी बूंद डालना ।

(३) पिण्डी—नेत्रोंपर लुपडी बांधना ।

(४) बिडालक—नेत्रोंके ऊपरके भागमें लेप करना ।

(५) तर्पण—नेत्रोंको बन्द रखकर दुग्ध आदि नेत्रतर्पणकर औषधि भरना । विशेष विधि चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्डमें है ।

(६) पुटपाक—पुटपाक विधिसे निकाला हुआ स्वरस आश्चोतन या तर्पणरूपसे नेत्रोंमें डालना ।

(७) अंजन—परिपक्व दोष होनेपर औषधिको आंखोंमें डालना ।

इन सबमें अनेक उपविभाग हैं । इन सबको शास्त्रीय ग्रंथोंसे समझ करके ही नेत्र रोगका उपचार करना चाहिये । बिना समझे उपचार करनेपर अनेक समय हानि होनेकी संभावना है ।

अंजनमें लेखन, रोपण और स्नेहन ऐसे ३ भेद हैं । कलमीशोरा आदि क्षारयुक्त, तीक्ष्ण मिर्च आदि और अम्ल नीबू रस आदि युक्त अंजनको लेखन अंजन, हरीतकी आदि कसैले और निम्ब आदि कडवे रसवाले स्निग्ध अंजनको रोपण अंजन, एवं घी, शहद आदि मधुर रसयुक्त स्निग्ध अंजनको स्नेहन अंजन कहते हैं ।

सामान्यतः वातजरोगमें स्निग्ध और उष्ण औषधि, पित्तज व्याधिमें शीतल और मधुर औषधि, कफजमें तीक्ष्ण, रूक्ष, उष्ण और विशद औषधि, एवं सन्निपातज रोगमें तीक्ष्ण, उष्ण, मृदु और शीतल नेत्रौषधियोंके सम्मिश्रणका उपयोग करना चाहिये ।

अंजनके लिये सलाई काच, स्फटिक आदि धातु या बारहसींगेमेंसे बनी हुई चिकनी, दोनों मुंहकी ओरसे संकुची हुई, आठ अंगुल लम्बी बनानी चाहिये । लेखन औषधिके लिये तांबा, पत्थर, काच या बारहसींगेकी सलाई ले । रोपण औषधिके लिये अंगुलीसे अंजन करे । अथवा शीशे, लोहे या जस्तेकी सलाई तथा स्नेहनके लिये सोने या चांदीकी सलाई लेनी चाहिये ।

नेत्रौषधिको सुबह-शाम अंजन करे । मध्याह्नके समय नेत्रोंमें औषधि न डाले । अंजन पलके भागके नीचे करे । पहिले बायीं आंखमें और फिर दाहिनी आंखमें अंजन करे । वर्षाऋतुके समय बादल न हो तब अंजन करे ।

कच्चे दोषमें अंजन, घृतपान, स्नान, गुरु भोजन, कषाय आदि औषधिके प्रयोगका निषेध किया है । उपवास करना हितकर है । किन्तु बालक और नाजुक प्रकृति वालोंके लिये मधुर भोजन, भाफसे सेक और नेत्रों पर लेप आदिका उपचार करना चाहिये

जब अंतर-दोष-वृद्धिके हेतुसे नेत्रपीड़ा बहुत बढ़ रही हो; तब नेत्रोंमे दोषघ्न अंजनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। कच्चा दोष बाहर आजानेके पश्चात् दोषघ्न ओषधिका अंजन करनेसे सब दोष नष्ट होकर नेत्र निर्दोष बन जाते हैं। थके हुए उदावर्त्त रोगी, बहुत रोये हुए, भयभीत, मद्यपान किये हुए, क्रोध आया हो तब, तरुण ज्वरवाले, अजीर्ण रोगी, शिरोरोगसे पीड़ित और मलमूत्रके वेगको रोकनेवालेको अंजन नहीं करना चाहिये अति ठण्डी, अति उष्णता, वायुका अत्यन्त वेग, अत्यन्त बदल आ जाना, इन समयोंमें नेत्रोंम अंजन नहीं करना चाहिये। अति तीक्ष्ण अंजनका दिनमें उपयोग न करें, रात्रिमे ही लगाना चाहिये ।

लेखन अंजनमें मधुर रसका निषेध है। अन्य रसोंका प्रायः उपयोग किया जात । जैसे वातजन्य रोगमें लेखन अंजनका उपयोग करना हो, तो अम्ल और क्षार द्रव्य युक्त; पित्तज और रक्तज नेत्ररोगोंमें कड़वे और कसैले द्रव्योंका, और कफज व्याधियोंमें कड़वे, तीक्ष्ण और कसैले रस युक्त लेखन अंजन हितकारी हैं। द्वन्द्वज और त्रिदोषज प्रकोपमें दोषानुरूप लेखन अंजनकी योजना करनी चाहिये। लेखन ओषधिमें मधुर रसका निषेध होनेपर भी शहदमें लेखन, कषाय, रुक्ष और नेत्ररोगनाशक गुण होनेसे लेखन ओषधियोंमें मिलाया जाता है। कफज नेत्ररोगोंमें लेखन अंजन सुबह, वातजन्य रोगोंमें सायंकालको और पित्तज तथा रक्तज व्याधियोंमें तीक्ष्ण लेखन ओषधि रात्रिको सोनेके समय डालनी चाहिये। प्रथम लेखन, फिर रोपण और तत्पश्चात् स्नेहन अंजनका उपयोग करना चाहिये ।

लेखनके योगसे नेत्र. भांफणी, नेत्रशिरा, नेत्रपटल, नेत्रवारि, नेत्रदर्पण, नेत्रस्रोत और शृंगाटक (नासा, नेत्र, कर्ण और जिह्वाकी संतर्पणी शिराओंके भीतरके मर्मस्थान) आदि स्थानोंमें रहा हुआ दोष पतला होकर नेत्र, नासा और मुंहसे बाहर निकलकर नेत्र निर्दोष बनते हैं ।

रोपणांजन कसैला, कड़वा, स्निग्ध, शीतल और वृष्य होनेसे नेत्रदृष्टिको बलवान बनाता है। प्रसादांजन (स्नेहांजन) मधुर और स्निग्ध होनेसे दृष्टिको स्वच्छ करता है। इस रीतिसे तीनोंके गुण पृथक्-पृथक् हैं ।

(१) नेत्रप्रभाकर अंजन ।

विधि—शुद्ध काला सुरमा (या सफेद सुरमा) ४० तोले, कपूर १ तोला, इलायचीके दाने ३ माशे, शीतलचीनी ३ माशे, सफेदमिर्च ३ माशे और मोतीकी पिष्टी ६ माशा लें। कपूरको छोड़ शेष सबको गुलाबजलमें ३ दिन खरल करें। फिर कपूर मिला १ दिन खरल करके शीशीमें भर लेवें ।

वक्तव्य—हम सुरमाको पहले त्रिफलाके फाण्टमें ७ दिनतक खरल करके मिलाते हैं

उपयोग—इस नेत्रांजनका दिनमें दो बार अंजन करनेसे उष्णता, पानी गिरना, कमजोरी आदि दोष दूर होकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है ।

(२) कृष्ण नेत्राञ्जन नयनामृताञ्जन ।

विधि—शुद्ध शीशा ५ तोले लेकर रस करें। रस होनेपर कढाई नीचे उतार पारा ५ तोले मिलाकर खरल करें। पारा मिल जानेपर शुद्ध काला सुरमा २० तोले मिलावें। फिर कपूर १। तोले डाल ६ घण्टा खरल करके शीशीमें भर लेवें। (यो स०)

उपयोग—इस नेत्राञ्जनका दिनमें २ बार उपयोग करनेसे जलन, तिमिर, धुन्ध, फूला, काचबिन्दु, मांसवृद्धि आदि नेत्ररोग दूर होते हैं, और नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है।

(३) रक्त नेत्राञ्जन ।

विधि—सिंदूर ८ तोले, शोरा १ तोला और सफेदमिर्चका चूर्ण २ तोले लें। सबको मिला ३ दिन खरल करें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—बबूलादि स्वरसवाली सलाईपर रक्तनेत्राञ्जन लगाकर नेत्रोंमें आजानेसे नेत्रशोथ, फूला, लाली, जलन, कुकूणक, मांसवृद्धि, तिमिर आदि दोष दूर होते हैं। बालकों तथा बड़े मनुष्यों, सबके लिये हितकर है। नेत्रोंके ऊपरकी सूजन २-४ रोजमें ही दूर हो जाती है। मांसवृद्धिको थोड़े दिनमें कम कर देता है।

(४) बबूलादि स्वरस ।

विधि—बबूलकी हरी पत्ती काटा-कचरा रहित १ सेर, जल १० सेर पापड़-खार(सोडिया सज्जी) और सेंधानमक १०-१० तोले मिलाकर गरम करें। पानी ४ सेर रहे तब उतार मलकर छान ले। फिर पलका पीतलके कलईदार बरतनमें डालकर पकावें। आधेसे अधिक पानी कम होनेपर शहद १ सेर डालकर मन्दाग्निसे पाक करें। शहद जैसी चाशनी बना ले। चाशनी पतली रहनेसे सड़ जाती है, कड़ी हो जानेपर अञ्जनमें उपयोगी नहीं होती। नेत्रोंमें स्वरसवाली सलाई फिरानेसे औषधि फैल जाय ऐसी चाशनी चाहिये। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस स्वरसके अञ्जनसे नेत्रोंकी लाली, पानी गिरना, मल आना, खड्डा होनेसे पीप बहना, कुकूणक, शोथ, सब दूर होते हैं। छोटे-छोटे (१ मासके) बालक और बड़े मनुष्य, सबके लिये हितकर है। विशेष बढ़े हुए रोगमें रक्तनेत्राञ्जनके साथमें प्रयोग करें, और नेत्रके ऊपर रसाञ्जनादि लेप लगावें, तो जल्दी आराम होता है।

(५) नेत्र बिन्दु ।

विधि—अनारदाना ४ तोले लेकर गुलाबजल २० तोलेमें शामको भिगो दें। सुबह मलकर छान लें। फिर फिटकरीका फूला ६ माशे, बीलियोंमेंसे। फूला ४ रत्ती, रसौत ६ माशे, शुद्ध अफीम १ माशा, कपूर देशी १ माशा लें। सबको पीस उपरोक्त गुलाबजलमें मिलाकर दिनमें रख ३ बार हिला देवें। तीन दिन बाद फिल्टर पेपरसे छान लेवें।

उपयोग--इस अर्ककी २-३ बूंद दिनमें दो बार डालते रहनेसे नेत्रोंकी लाली खुजली, पानी गिरना, जलन होना इत्यादि रोग २-३ दिनमें दूर होते हैं।

(६) रसकेश्वर गुटिका।

विधि--शुद्ध खर्पर या जसद भस्म, सैंधानमक, नीलेथोथेका फूला, सोहागेका फूला, सोंठ, मिर्च, पीपल, सबको समभाग मिला नींबूके रसमें ७ दिन खरल करके वर्ति बनालें। फिर शहदमें घिसकर अंजन करें। (वैद्यामृत)

उपयोग--यह गुटिका फूला, धुन्ध, जाला, नये मोतियाबिन्दु और नेत्रवायु आदि सब पर लाभकारी है। इसके अतिरिक्त इस अंजनसे सन्निपातकी बेहोशी दूर होकर रोगी जल्दी होशमें आजाता है।

(७) चन्द्रोदया वर्त्ति।

विधि--हरड़, बच, कूठ, पीपल, कालीमिर्च, बहेड़ेकी मींगी, शंखनाभि और मैनसिल, सबको समभाग मिला कपड़छान चूर्ण करें। फिर दो दिन खरल करें। पश्चात् बकरीके दूधमें ६ घंण्टे खरल कर वर्ति बनालें। शंखनाभिको अलग खरल कर बारीक होनेपर मिलानी चाहिये। (वृन्द)

उपयोग--यह उत्तम लेखन अंजन है। मांसवृद्धि और कफवृद्धिको दूरकर दृष्टिको स्वच्छ बनाता है। इस वर्तिको शहदमें घिसकर आंखोंमें लगानेसे ३ वर्षका फूला मिटता है। सब प्रकारके मांसवृद्धि और रतौंधीको एक महीनेमें नष्ट करती है। तिमिरमें भी लाभदायक है।

मस्तिष्क और नेत्रमें उष्णता हो, तो सप्तामृत लोहका सेवन कराना चाहिये या सुवर्णमाक्षिक भस्म, वंशलोचन, त्रिफला और मुलहठी मिला घृत और शहदके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

[८] लहसुनादि अंजन।

विधि--लहसुन, पीपल, राई, बच और हरड़को गोमूत्रमें खरल कर गोलियां बनालें।

उपयोग--इस गुटिकाको जलमें घिसकर अंजन करनेसे भूतजनित ज्वर और विषम ज्वर दूर होते हैं।

[९] अंजनरस (सन्निपातहर अंजन)।

विधि--पारद, गन्धक, लोहभस्म और पीपल १-१ तोला, तथा शुद्ध जमालगोटा १२ तोले लेकर २१ दिनतक जम्भीरी नींबूके रसमें खरल करके सोगठी बनालें।

उपयोग--यह अंजन सन्निपातके तन्द्रा आदि विकार और सर्पविषमें निद्रा आना आदि दोषको दूर करता है। रोगी सचेत रहता है।

(१०) दार्व्यादि रसक्रिया ।

विधि—दारुहल्दी, परवलके पत्ते, मुलहठी, नीमकी अन्तरछाल, पद्माख, नीलोफर, पुण्डरिया, इन ७ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। रात्रिको ४ गुने जलमें भिगो सुबह मन्दाग्निपर बरतनके मुहको ढककर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब नीचे उतारकर छानलें। पुन उसका पाक करें और सम्हालपूर्वक चलाते रहें। रबडी जैसा गाढा होजाय तब नीचे उतार लें। शीतल होनेपर चतुर्थांश शहद मिलाकर खुले मुहकी शीशी या अमृतबानमें भरलें। शहदके स्थानमें बगसेनने शहद और मिश्री ८-८ वां हिस्सा मिलानेको लिखा है।

उपयोग—इस रसाजनके अंजनसे दाह, जल गिरना, रक्तप्रकोपजनित पीडा (नेत्रोंकी लाली) आदि रोग दूर होते हैं।

(११) नेत्रसुदर्शन अर्क (पलासांजन)।

विधि—पलासकी ताजी जड ५ सेर सुबह मंगाकर ऊपरसे मिट्टी लगी हो उसे साफ कर लेवें। जलसे नहीं धोवें। फिर एक-एक इंचके टुकडे करा नलिकायन्त्र अथवा आकाशपातन यन्त्र द्वारा अर्क निकाल लें। जड लाने और अर्क निकालनेकी क्रिया एक ही दिनमें होनी चाहिये। दूसरे दिनभर रखनेसे अर्क बहुत कम निकलता है। नलिका-यन्त्रद्वारा अर्क अच्छा निकलता है। आकाशपातन यन्त्रसे अर्क थोडा निकलता है, और किसी-किसी समय जल भी जाता है। अर्क यदि जला हुआ निकलेगा, तो नेत्रोंमें जलन ज्यादा करेगा और फायदा कम होगा। (स्वा० अखण्डानन्दजी)

सूचना—वर्षाऋतुमें अर्क निकालना हो, तो पलासके मूलको १ दिन रहने दें। फिर दूसरे दिन अर्क निकालना चाहिये। अन्यथा अर्क बहुत कमजोर निकलता है और खराब हो जाता है। शीतकालमें अर्क निकाला जाय, तो पूरा निकलता है और दीर्घकाल तक टिकता है।

उपयोग—इस अर्ककी २-३ बूंद दिनमें ३ बार नेत्रोंमें डालनेसे नेत्रोंके सब प्रकारके रोग—लाली, तिमिर, कमजोरी, दाह, रतौंधी आदि दूर होते हैं। इस अर्कसे हजारों मनुष्योंके चश्मे उतर गये हैं। इस अर्ककी ३-४ बूंद नागरबेलके पानोंमें डालकर दिनमें २ बार खानेसे धातुविकार दूर होता है और पाचन-शक्ति बढती है।

मोतियाबिन्दुका प्रारम्भ हुआ हो और शनैः शनैः बढनेवाला हो तो इस अर्कके ४-६ मास तक उपयोग करनेपर दृष्टिमणिकी अपारदर्शकता दूर होकर मोतियाबिन्दु नष्ट हो जाता है।

(१२) पथ्यादि अंजन।

विधि—हरडकी मींगी ३ भाग, बहेडेकी मींगी २ भाग और आवलोंकी गुठली की मींगी १ भाग लें। सबको मिला जलमें ६ घण्टे खरलकरके बत्तिया बना लें।
(यो० र०)

उपयोग--इस बत्तीको जलके साथ घिसकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे नेत्रोंकी लाली, भयंकर अश्रुस्राव, कष्टसाध्य नेत्रपाक इत्यादि रोग दूर होकर नेत्र स्वच्छ होते हैं ।

(१३) चन्दनादि वर्ति ।

विधि--रक्तचन्दन, सोनागेरु, लाख, चमेलीकी कली, चारोंको समभाग मिलाकर, महीन पीसें । फिर गुलाबजलके साथ ६ घण्टे खरल करके बत्तियां बनालें । (वं० से०)

उपयोग--इस बत्तीको जलमें घिसकर अंजन करनेसे व्रणशुक्र (घावयुक्त फूला (Corneal Ulcer); नेत्रोंमें घाव होकर पीप आना, नेत्रोंकी लाली, खुजली आदि रोग नष्ट होते हैं ।

(१४) पुष्पहर अंजन ।

विधि--कलमीशोरा ४० तोलेको पत्थरकी खरलमें शुद्ध शीशा धातुके बत्तेसे ४० दिनतक गुलाबजलके साथ खरल करें । फिर २॥ तोले कपूर मिलाकर ६ घण्टे खरल करके नेत्रांजनको शीशीमें भरलें ।

कितनेही चिकित्सक गुलाब जल और कपूर नहीं मिलाते । समुद्रझाग १६ वां हिस्सा मिलाकर ७ दिन घोट लेते हैं । यह नेत्रांजन तेज होता है; परन्तु लाभ अधिक करता है ।

उपयोग--यह अंजन फूला. कुकूणक, लाली, तिमिर, खुजली , अर्म (नेत्रके सफेद भागमें मांसवृद्धि), अजकाजात (नेत्रके काले भागमें मांसवृद्धि), रतौंधी, अश्रुस्राव, नेत्रार्बुद, दृष्टिमन्दता सबको थोड़ेही दिनोंमें दूर करता है ।

लेप-मलहम-सेक-धूम्राधिकार ।

व्रण, विद्रधि, शोथ, अस्थि-भग्न, चोट, शूल,आदिमें लेप, मलहम आदि औषधियों-का उपयोग होता है । व्रण-चिकित्साका क्रम निम्नानुसार शास्त्रकारोंने दिखाया है ।

आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनं ।
तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थं पाटनक्रमः ॥
पञ्चमः शोधनो भूयात्षष्ठो रोपण इष्यते ।
सप्तमो वर्णकरणो व्रणस्यैते क्रमान्मता ॥

पहिला शोथहर लेप, दूसरा जौंक आदिसे रक्त निकालना, तीसरा पकानेके लिये पुल्टिस आदि उपचार,चौथा शस्त्रसे चीरकर, पीप और दूषित रक्त आदिको निकाल देना, पांचवां घावका शोधन,छठवा घाव भरना और सातवा पूर्ववत् त्वचाका रंग लानेका प्रयत्न करना, ये क्रमशः चिकित्सा हैं ।

इस नियमानुसार पहिले अपक्व शोथ या गाठको बैठानेके लिये लेप, सेक और औषधियोंके क्वाथके तरडे देने चाहिये । इनमें भी पित्तज व्याधि हो तो सेक न करें । जो रक्त निकालने योग्य हो, उसमेंसे दूषित रक्तको जोंके लगवाकर निकाल देना चाहिये । जो बैठानेके अयोग्य हो, उसे पकानेके लिये लेप करना चाहिये या पुल्टिस बांधना चाहिये । पकनेपर पीप और दूषित रक्तको निकालकर घावको निर्दोष करनेवाले तथा सुखानेवाले मलहम आदिको लगाना चाहिये । फिर घावको भरकर त्वचाको पूर्ववत् रंग लानेवाले मलहम या घृत तैल आदिका प्रयोग करना चाहिये ।

लेपके चूर्ण अथवा गोलीको गरम जलके साथ पीस लेपकर उपरसे रुई लगा दे, जिससे लेप जल्दी सूखकर फट न जाय । लेपवाला भाग खुला रहनेसे पूरा लाभ नहीं मिलता ।

पहिले समयका लेप सूखनेपर नया लेप लगाना चाहिये । परन्तु नया लेप लगानेके पहिले विशेष सावधानीसे पुराने लेपको गरम जलसे धोकर सूजनवाले भागको सेंकना चाहिये, अन्यथा नये लेपका असर शीघ्र नहीं होगा । कारण, पहिलेवाले लेपने जो दूषित परमाणु रोगमेंसे खींचे हैं, वे सब पहिलेवाले लेपके साथ मिले हुए बाह्य त्वचापर ही लगे रहते हैं ।

वायुकी सूजनपर रात्रिको लेप नहीं लगाना चाहिये, और किया हुआ लेप गिर जाय,तो उसे उठाकर फिरसे नहीं लगाना चाहिये । दिनमें लेप ज्यों सूखने-पर बार-बार हटा दें । किन्तु गाठपर बैठानेका गाढा लेप किया हो,उसे रात्रिमें ही रहने दें । पकाने लिए गाठपर रात्रिको भी अवश्य लेपकरें । फोडा पकानेके लिये बांधी हुई पुल्टिस २-३ घण्टेपर बदलते रहें तो फोड़ा जल्दी पकता है । अधिक समय पुल्टिस रहने से,फोडा

जल्दी नहीं पकता। अस्थिभंगका लेप २-३ दिन अथवा अधिक दिनके बाद खोलकर बदलना चाहिये।

वातज शोथमें स्निग्ध, अम्ल और नमकमिश्रित लेप; पित्तजमें स्निग्ध, शीतल और दूध मिश्रित लेप; तथा कफज व्याधियोंमें गोमूत्र और अन्य क्षार मिश्रित निवाया लेप करना चाहिये।

वायुकी सूजनपर गरम जलकी भाफ देकर फिर लेप लगानेसे शीघ्र आराम होता है। कफप्रकोपके शमनके लिये लेप लगाकर ऊनीवस्त्र लपेट देना चाहिये और ठण्डी वायुसे भी रक्षण करना चाहिये।

(१) दोषघ्न लेप।

विधि—सुहिंजनेकी छाल, सोंठ, सरसों, पुनर्नवाकी जड़ और देवदारु, सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर कांजी या खट्टी छाछ मिलाकर चटनी जैसा पीसकर मोटा लेप करें। (शा० सं०)

उपयोग—यह लेप वात और कफसे उत्पन्न होनेवाले सब प्रकारके शोथ और गांठको दूर करनेके लिये उत्तम है। विष शोथपर गोमूत्रमें मिलाकर लेप करना चाहिये।

(२) दशांग लेप।

विधि—सिरसकी छाल, मुलहठी, तगर, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ और खस, इन दस औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (शा० सं०)

उपयोग—इस लेपको जलमें पीस चूर्णसे $\frac{1}{5}$ हिस्सा घी मिलाकर मोटा लेप करें। ऊपर रुई चिपका दें। यह लेप उग्र विस्फोटक, विसर्प, दाह, विषदोष, शोथ, सर्वांग शोथ-व्रण शोथ, दोनों, सिरका दर्द, दुष्ट व्रण आदिको दूर करता है।

पामा और व्युचीपर दशांगलेप हितकारक है। इन रोगोंमें दशांग लेपकेसाथ समान सोनागेरु मिला गुलाबजलमें चटनीके समान पीसकर लेप लगाते रहनेसे दाह कण्डूसह विकार शमन हो जाता है। दो-चार रोजमें विषका आकर्षण होकर पामा व्रण और व्युची सूख जाते हैं।

यह लेप पैत्तिक शोथ और रक्तज शोथपर सत्वर लाभ पहुंचाता है। वृषणपर शोथ आनेपर दशांग लेपके साथ निर्गुण्डीके पान मिला पीसकर लेप करनेसे शोथ शमन हो जाता है।

ज्वरमें १ तोला दशांग लेपको १०-१५ तोले शीतल जलमें मिला, उसमें कपड़ेको भिगो उसकी पट्टी कपालपर रखनेसे शिरदर्द और ज्वरका वेग कम होजाता है, यू० डी० कोलनके बदले इसका प्रयोग करना अच्छा है। ऐसा पं० यादवजी त्रिकमजी आचार्यका अनुभव है।

[३] बीजपूर जटादि लेप ।

विधि—बिजोरेकी जड, जटामांसी, देवदारु, सोंठ, रास्ना और अरनीका समभाग मिला कांजीमें पीसलें । (शा० सं०)

उपयोग—यह लेप वातज शोथको दूर करनेमें उत्तम है । गलेकी सूजनको भी शमन करता है ।

[४] मधुकादि लेप ।

प्रथम विधि—मुलहठी, रक्तचन्दन, मूर्वा, नरसल, पद्मकाष्ठ, नेत्रवाला, खस और कमलको समभाग लेकर दूधमें पीस लें । (शा० सं०)

उपयोग—इस लेपसे दाह सह पित्तज शोथ शमन होता है ।

द्वितीय विधि—मुलहठी, त्रिफला, मोरवेल, दारुहल्दीकी छाल, नीला कमल, नेत्रवाला, लोद और मजीठ, इन १० औषधियोंको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें । (वृन्द)

उपयोग—यह लेप पित्तप्रकोपज दोषोपर, हितकारक है । इसे बकरीके दूधमें पीसकर लेप करें । मसूरिका (शीतला)के फोडे आंखमें होनेपर नेत्रोंके ऊपर लेप करें और दूधमें पतला प्रवाही बनाकर नेत्रोंमें थोडे-थोडे बूंद डालनेसे फोडे अच्छे होजाते हैं । ऐसे ही शरीरके किसी भी भागमें उत्पन्न पित्तज शोथपर यह उपयोगी है ।

[५] कृष्णादि लेप ।

विधि—पीपल, पुरानी खली, सुहिजनेकी छाल, नदीकी रेत और हरडको समभाग मिला गोमूत्रमें पीसकर कल्क करें । पश्चात् थोडा गरम करके बांध देवें ।

उपयोग—इस लेपके लगानेसे कफज शोथ नष्ट होता है ।

[६] द्विनिशादि लेप ।

विधि—हल्दी, दारुहल्दी, सफेदचन्दन, लाल चन्दन, हरड, दूबका मूल, साठीकी जड, खस, पद्मकाष्ठ, लोद, सोनागेरू और रसौत, सबको समभाग मिला जलमें पीस लें ।

उपयोग—यह लेप चोट लग जानेसे आये हुए नये शोथ और रक्तजशोथको शमन करता है ।

अभिष्यन्दी गुरुभोजन अत्यधिक करलेनेपर अपचन होता है, एवं मल अन्त्रमें चिपक भी जाता है । फिर उदरमें वेदना होने लगती है । उसपर मालिश करनेऔर शुष्क सेक करनेपर अन्त्रके भीतर शोथ आजाता है । फिर जुलाब और बस्ति देनेपर भी उदर शुद्धि नहीं होती । बार-बार वमन होती रहती है । जल पीने पर भी वान्ति हो जातीहै। उदर अति कठोर बना रहता है । इस प्रकारके उदावर्त (Intestinal Obstruction)

में डाक्टरी मत अनुसार शस्त्र चिकित्सा ही एक मार्ग है। उसके लिये द्विनिशादिलेपको जलमें पीसकर उदरपर लेप करने और सूखनेपर उसे हटाकर पुनः नया लेप करते रहने से एक ही दिनमें उदर नरम होकर मलमूत्र आदिकी योग्यप्रवृत्ति होने लगती है।

(७) कुष्ठहर लेप।

प्रथम विधि—हरड़, करंजके बीज, सरसों, हल्दी, सफेद गुंजा (चौरमी), सैंधानमक और बायबिडंग, सबको समभाग मिला गोमूत्रमें खरल करके लेप करें। (यो० र०)

उपयोग—इस लेपके लगानेसे कुष्ठके सफेद दाग, व्युची, दद्रु, खाज आदि रोग दूर होते हैं।

दूसरी विधि—आंवलासार गन्धक, कसीस, हरताल, हरड़, बहेड़ा और आंवला, सबको समभाग मिला गोमूत्रमें खरल करके गोलियां बनावें। (र०चं०)

उपयोग—इस लेपको गोमूत्र अथवा जलमें घिसकर लगानेसे मुंहपरके कुष्ठके सफेद दाग दूर होते हैं।

(८) विषादि लेप।

विधि—बच्छनाग, भिलावा, रसोईघरका धुआं, हल्दी, दारुहल्दी, वरनाकी छाल, चित्रकमूल, कालीमिर्च और दूबके मूल, सबको ५-५ तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर त्रिधारा थूहरका दूध २७ तोले मिलाकर सुखा देवें। आवश्यकता पर आकके दूधमें मिलाकर लेप करें। (वृन्द)

उपयोग—इस लेपसे सब प्रकारके कुष्ठका नाश होता है। कुष्ठस्थानमें घाव होजाता है; फिर दोष बाहर निकल जाता है।

(९) व्रणशोधक लेप।

प्रथम विधि—सिरसके बीज, मैनफल, जंगाल, रेवाचीनी, प्याज और नीमके पत्ते, प्रत्येक एक एक तोला और एलुवा, गूगल, अलसी और मेथी ६-६ माशे ले। सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर तेज शराब या पानीमें मिला गरम कर लेप करनेसे भयंकर पीड़ा और शोथयुक्त कठिन फोड़ा पककर जल्दी फूट जाता है।

दूसरी विधि—साबुन, रेवाचीनी, गूगल और मैनफलको पीस कपड़ेकी पट्टी पर लगा गरमकर बांधनेसे फोड़ा जल्दी फूट जाता है।

वक्तव्य—पहिले नीम, करंज, अरंडी और तुलसी, सबके पत्तोंको जलमें उबालकर भाप देनेसे पीड़ा दूर कर सूजन उतर जाती है और गांठ नरम होजाती है।

तीसरी विधि—नौलेयोयेका फूला, पत्थरका कोयला, सज्जीखार, हल्दी, सैंधानमक एक-एक तोला और साबुन २ तोले लेवे। सबको घीकुंवारके रसमें मिला

करम करके लेप करें। केवल मुहपर लगानेसे जल्दी फुट जाता है। लेप लगाकर ऊपर पट्टी बांधें।

(१०) प्रतिसारणीय क्षार।

विधि—एक सेर लोटिया सज्जी और दो सेर चूना बिना बुझा मिलाकर हाडीमें भरें। फिर पानी १ मन मिला लकडीके डण्डेसे खूब चला हाडीको ५ दिनतक खुले मैदानमें रहने दें। दिनमें एक दो बार रोज डण्डेसे चला दें। फिर छठेदिन ऊपरसे स्वच्छ पानी लोहेकी कडाहीमें निकालकर चूल्हेपर चढावें। आध सेर जल शेष रहे तब लहसुनका रस ४ तोले मिलाकर मन्दाग्निसे पकावें। आधाजल (२० तोले) शेष रहनेपर कडाहीको नीचे उतार फिर क्षारको शीशीमें भर लें। (र० मा०)

उपयोग—यह क्षार पके फोडे और प्लेगकी गाठपर लगानेसे गाठोंको फोडकर बैठा देता है। सडे हुए घावपर लगानेसे तत्काल दोषको जला देता है। ववासीरके मस्से अथवा कुष्ठके दागपर लगानेसे तुरन्त उतनी जगह उखड जाती है, और घाव हो जाता है। इस घावपर गरम घी लगानेसे पीडा शात हो जाती है। दोषोंको जलानेके लिये यह उत्तम औषधि है।

सूचना—यह क्षार तेजाब जैसा है। इसलिये हाथ नहीं लगाना चाहिये, और जहा लगता है वहा बहुत जलन होती है। जलन दूर करनेके लिये धोया हुआ घृत लगावें। देश,काल और रोगीकी प्रकृतिका विचार करके उपयोग करें। इस क्षारसे सूजन आजाती है, कभी-कभी बुखार भी आजाता है

(११) अंगुलीपाकहर लेप।

विधि—मोमल, सोहागेका फूला और नीलेथोथेका फूला एक-एक तोलेके बारीक चूर्णकर गीला गन्धाबिरोजा ६ तोले मिलालें।

उपयोग—अगुलीपाक (Whitlow) जो कीलीकी तरह गडता रहता है, उसपर इस लेपकी पट्टी लगानेसे दर्द दूर होता है, और पककर कील निकल आती है। कील भीतरसे निकली हुई देखनेमें आवे उसे कैंचीसे काट देनी चाहिये। कील काटनेके बाद सादा मलहम लगानेसे घाव भर जाता है।

(१२) अंजननामिकाहर लेप।

विधि—रसौत, सोंठ कालीमिर्च और पीपलको समभाग मिला जलमें खरल करके मोगठिया बना लेवें।

उपयोग—आखकी आफणीपर होनेवाली फुन्सीपर जलमें घिसकर लगानेसे फुन्सी दूर होती है।

[१३] तुत्थादि लेप।

विधि--नीलेथोथेका फूला १ तोला, कावुली हरड़का छिलका, भाँग, चूना और सफेद कत्था, दो-दो तोले मिलाकर जलमें सोगठी वनावें; या सवसे चौगुना धोया घी मिलाकर मलहम वना ले।

उपयोग--इस सोगठीको धोये घीमें घिसकर लगानेसे मुंहपर तथा दूसरे भागोंमें होनेवाली सव प्रकारकी फुंसियां दूर होती है।

[१४] कंकुष्ठादि लेप।

विधि--मुर्दासंग, नीलेथोथेका फूला, सफेद कत्था, जली सुपारी, हरड़ और उसारेरेवनको समभाग लेकर कपड़छान चूर्ण करें।

उपयोग--यह लेप पिटिकाएं और फोड़ेपर हितकारक है। इस चूर्णको सव प्रकारकी फुंसियोंपर धोये हुए घीके साथ अथवा पानीमें मिलाकर लगावें। फूटे हुए फोड़ोपर सूखा चूर्ण डाले।

[१५] अस्थिसंधानक लेप।

विधि--एलुवा, हीरावोल, गूगल, कुंदरू, गूजर (गुजद Astragalus Sarcocolla), उसारेरेवन, मैदालकड़ी, आमाहल्दी, सज्जीखार, लोद और सरेस सवको समभाग लेकर वारीक चूर्ण करें (आ० नि० मा०)

उपयोग--यह लेप मूढमार, शूल, शोथ, हड्डी टूटना अथवा हड्डी उतर जाना, रक्त इकट्ठा होना आदि दोष दूर करनेमें वड़ा उपयोगी है। टूटी हुई हड्डीको जोड़ देता है। मांसमें होनेवाली वेदनाको दूर करताहै। हमने इसका हजारों वार उपयोग किया है।

विधि--थोड़से चूर्णको गरम जलमें मिला लेपकर ऊपर रुई लगाकर कपड़ा लपेटे। जरुरत हो तो लकड़ीकी पट्टी रखकर ऊपर कपड़ा वाँधें। आवश्यकतापर ३ दिन वाद दूसरा लेप करें। ३ दिन पहिले पट्टीको नहीं खोलना चाहिये।

इस ओषधिके प्रयोगसे एक, दो या तीन लेपसे चाहे जैसी चोट आई हो या हड्डी टूटी हो, वह दोष निवृत्त हो जाता है, और तीव्र वेदना सत्वर शमन हो जाती है। अनेकोंको केवल एक ही लेपसे आराम हो गया है। इस लेपको ४८ घण्टेतक रहने देना चाहिये। फिर निकाल, सम्हालपूर्वक धोकर नया लेप लगाना चाहिये।

डाक्टरी प्लास्टर वेलाडोना, एक्स्ट्रेक्ट वेलाडोना आदि ओषधियोंकी अपेक्षा इस ओषधिसे सत्वर लाभ होता है।

लाठी के मारसे गाँठ हो जाना, सूजन आ जाना, या किसी स्थानमें माँस कुचल जाना, इन सवपर यह लेप रामवाणके सदृश फलप्रद है।

सूचना--यदि लेप खोलनेपर त्वचा लाल हो गई हो, तो दूसरा लेप १२

घण्टे बाद लगाना चाहिये । तबतक उस भागको खुला रखना चाहिये ।

(१६) पार्श्वशूलनाशक लेप ।

विधि—सोंठ, कुचिला, और बारहसींगेको जलके साथ घिस उसमें २ से ४ रत्ती अफीम मिला लें । फिर थोड़ा गरमकर लेप करनेसे पसलियोंका शूल तुरन्त मिटता है ।

उपयोग—न्यूमोनियामें पसली और छातीपर लेप करनेसे फुफ्फुस-दोष सत्वर दूर होता है ।

(१७) रसांजनादि लेप ।

विधि—रसौत, मिश्री, बबूलका गोंद, समुद्रझाग, फिटकरीका फूला, सब दो-दो तोले और अफीम १ तोला लें । फिर सबको मिलाकर ३ दिन जलमें घोटें । जल उतना मिलावें कि अच्छी रीतिसे पतला हो जाय । रसौत और अफीमको शुद्ध करके डालें । ३ दिन बाद अवलेह जैसा गाढ़ाकर खुले मुंहकी शीशीमें भर लेवें । अथवा सुखाकर गोलियां बना लेवें । (ब्र० स्व० सदानन्दगिरिजी)

मात्रा—यह लेप जरूरत पड़े तब १-२ रत्ती सीप अथवा कटोरीमें निकाल जल मिला पतला दही के घोल जैसा करके नेत्रोंके ऊपर और नीचे लगावे तथा नेत्रोंमें भी अंजन करे ।

उपयोग—यह लेप नेत्रोंकी लाली, दाह, खाज, भयंकर सूजन, चोट लगना, घाव होना, पीप आना, नेत्रशूल (घाव)चलना, नासूर आदि दोषोंको जल्दी दूर करता है । १ मासके छोटे बच्चे और बड़े मनुष्य,सबके लिये हितकर है । यह निर्भय रूपसे नेत्रोंमें अंजन किया जाता है । इस लेपके अंजन से लाली, दाह और शूल बहुत जल्दी दूर होते हैं । हजारों बच्चोंको इस अंजनसे लाभ पहुंचा है ।

सूचना—(१) तीक्ष्ण नेत्ररोगमें नेत्रोंको ठण्डे जल और वायुसे बचाना चाहिये । गरम जलमें कपड़ा भिगोकर उससे आंखोंको धोवें । शूल निकलता हो, तो सोनेके समय रुईका फोहा फिटकरीके जलमें भिगा घीमें तलकर आंखपर बांध करके सोना चाहिये ।

(२) तीव्र प्रकोप बढ़ रहा हो, उस समय इस अंजनका या दूसरे रोपणादिक अंजनका उपयोग नहीं करना चाहिये ।

(१८) प्रलापहर लेप ।

विधि—तम्बाखू, कायफल, कौड़िया लोबान और हींगको पीसकर गुड़में मिलावें । फिर जल मिला गरमकर कपड़ेकी पट्टीपर लगाकर बांधें । कनपटी, कपाल और मस्तकपर लेप लगे इस रीतिसे कपड़ा बांधना चाहिये । लेप भी मोटा लगाना चाहिये । (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस लेपसे सन्निपातकी बकवाद तुरन्त शांत हो जाती है, और रोगीको निद्रा आने लगती है ।

[१९] दद्रुहर लेप ।

विधि--आंवलासार गन्धक, कच्चा सोहागा, सफेद कत्था और राल ५-५ तोले मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर ५ तोले गूगलका बारीक चूर्ण मिला नींबूके रसमें तीन घण्टे खरल करके सोगठी बनालें। इसे गोमूत्र अथवा नींबूके रसमें घिसकर लगानेसे लाल, काला, नया और पुराना, सब प्रकारका दाद चला जाता है ।

[२०] कासीसादि लेप ।

विधि--कसीस, गोरोचन, नीलेथोथेका फूला, और वर्की हरताल १-१ तोला तथा रसोंत २ तोलेकी काजी अथवा नींबूके रसमें पीसकर सोगठियां बनावें । (वृ० नि० र०)

वक्तव्य--वृद्धपरम्परा अनुसार गोरोचनके स्थानपर गन्धक मिलानेका रिवाज है ; ।

उपयोग--इस लेपको नींबूके रस अथवा जलमें घिसकर लगानेसे खाज, योनिपर खुजली, अण्डकोषकी खुजली, बालकोंको अहिपूतना रोग(गुदा पकना) और बवासीरके मस्सेकी सूजन, सब दूर होते हैं । खुजलीके स्थानको पहिले २-४ रत्ती नौसादर या फिटकरीको २० तोले जलमें मिलाकर धो लेना चाहिये । बादमें लेप करें । हमने इसका उपयोग बिना गोरोचन मिलाये किया है ।

[२१] मांस्यादि लेप ।

विधि--जटामांसी, राल, लोद, मुलहठी, निर्गुण्डीके बीज, मूर्वा, नीलकमल, लालकमल,सिरसके फूल,सबको समभाग मिला चूर्णकर धोये हुए घृतके साथ मिला कर लेप करें । (शा० सं०)

उपयोग--इस लेपको वातरक्त या पित्तरक्तज विसर्पपर लगानेसे तत्काल दाहका शमन होकर रोग दूर होता है ।

[२२] कर्णशोथहर लेप ।

प्रथम विधि--बारहसींगा, वच, सोंठ, हींग और सुहिंजनेकी जड़, सबको थोड़े-थोड़े पानीके साथ घिस गरमकर कानकी बाजूमें सूजनके ऊपर लेप करनेसे सूजन मिट जाती है, और कानके शूल,पीप निकलना आदि रोगोंमें भी बहुत लाभ होता है ।

द्वितीय विधि--गिले अरमानी, लोद, आंवला और आमाहल्दीको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे ।

उपयोग--गुलाबजलमें मिला गरमकर दिनमें ३-४ बार पतला-पतला लेप करनेसे कानकी जड़में आया हुआ शोथ दूर होताहै । केवल गिले अरमानी भी गुलाब जलमें पीसकर लगाई जाती है ।

(२३) श्लीपदहर लेप ।

प्रथम विधि—हल्दी, आंवला, अमरबेल, सम्भो, अपामार्ग, रसोईघरका धुंआ, सबको समभाग मिला पानीमें पीसकर श्लीपदपर लेप करें ।

(डा० श्री रामपाल जी)

उपयोग—इस लेपके लगानेसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, सब प्रकारके श्लीपद (फीलपाव) की सूजन नष्ट हो जाती है। डाक्टर साहबने इस प्रयोग द्वारा अनेक रोगियोंको लाभ पहुंचाया है । सामान्य ओषधियोंके बनानेपर भी श्लीपदके लिये अत्युत्तम प्रयोग है ।

दूसरी विधि—कनेरकी छाल, वच्छनाग, धतूरेके बीज, कलिहारी, सरसों, अपामार्गमूलकी छाल, करजकी छाल, सेंधानमक, कूठ,हरड, साठीकी जड, आककी जड और सुहिजनेकी जड, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें। आवश्यकतापर गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे श्लीपदका प्रकोप शमन हो जाता है ।

[२४] वृद्धिदमन लेप ।

प्रथम विधि—गूगल,एलुवा, कुंदरू,लोद,फिटकरी और गन्धाविरोजा, सबको समभाग मिला पानीमें पीसकर लेप करें ।

उपयोग—वृषण परसे बाल दूर करके इस लेपको लगाते रहनेसे सब प्रकारकी अण्डवृद्धि दूर होती है ।

द्वितीय विधि—तम्बाकू, कसूम, केसूला, सोंठ, कुंदरू, एलुवा, आमाहल्दी, रूमीमस्तगी,वच, वच्छनाग, खसखसके डोडे सबको समभाग मिला बारीक बारीक चूर्णकर मकोयके रसमें गोली बांधें ।

उपयोग—इस गोलीको पानीमें घिस अण्डकोषपर लेपकर गोबरीसे थोडा सेक करनेसे थोडे ही दिनोंमें अण्डवृद्धि दूर होती है । साथमें खानेके लिये वृद्धिबाधिका वटी चालू रखनी चाहिये ।

(२५) निशादि लेप ।

विधि—हल्दी, दारुहल्दी, खस, सिरसकी छाल, नागरमोथा, लोद, सफेद चन्दन और नागकेशर, इन ८ ओषधियोंको समभाग मिला जलके साथ पीसकर लेप तैयार करें ।

(व० से०)

उपयोग—इस लेपके लगानेसे विस्फोटक, मसूरिका (शीतला) के व्रण, विसर्प, दाह,पसीना, शरीरकी दुर्गन्ध,रोमान्तिक और कुष्ठ रोगका शमन होता है ।

[२६] कर्पूरादि मलहम ।

विधि—पारा, गन्धक, कुन्दरू, गुजर (गुजद), गूगल, लोबान, सब सम

भाग और सबके समान कपूर लें। पहले कपूरको खरलमें डाल सख्त धूपमें घुटाई करें। थोड़े समय बाद कुन्दरु, गूजर, गूगल, लोबान क्रमसे मिलाते जायँ, अन्तमें कज्जली मिलावें। जब खरल करते-करते नरम होकर मलहम बन जाय तब चीनी मिट्टीकी डिबियामें भरलें। (आ० नि० मा०)

इस मलहमको कड़क होजाने पर तिलके तैल साथ मिला गरमकर लें। जिससे लगाने लायक मुलायम बन जाता है। मूल ग्रंथकारने इस मलहमका नाम "तावड़ानो मलम" अर्थात सूर्यके तापका मलहम रखा है।

उपयोग—विद्रधि, गलगण्ड, नासूर आदि रोगोंपर यह अच्छा काम देता है। इस मलहमसे गांठ पिघलती है, पकती है और फूटकर भर भी जाती है। नासूरमें पहले निम्ब तैलकी पिचकारी लगावें। फिर इस मलहमकी पट्टी बांधनी चाहिये।

निम्ब तेल—नीमके सूखे पत्तोंसे चौगुने तिल्लीके तैलको कड़ाहीमें डालकर चुल्हे पर चढ़ावें। तैल गरम होनेपर थोड़े-थोड़े नीमके पत्तोंका चूर्ण डालते जायँ। सब पत्ते डालनेके बाद भुन जानेपर कढ़ाहीको नीचे उतारलें। ठंडा होनेपर छान कर शीशीमें भरलें।

(२७) रालका मलहम।

विधि—तिल तैल १६ तोले, राल ४ तोले और नीलाथोथा ३ माशे लें। पहले तैलको कढ़ाहीमें डाल मन्दाग्नि पर गरम करें। धुआं निकलनेपर राल और नीलाथोथा डालकर कढ़ाहीको उतार तैलको तुरन्त एक थालीमें छानलें। शीतल होनेपर जल मिला-मिलाकर धोवें। बार-बार मलकर जलको निकाल डालें। इस तरह १०-२० बार धोनेसे मलहम मक्खनके सदृश मृदु और सफेद बन जाता है। इसे कांचके अमृतवानमें भर ऊपर जल भरें। रोज सुबह पुराना जल निकाल डालें और ताजा भर दें। जब तक मलहम जलमें डूबा रहेगा; और जल बदलते रहेंगे, तब तक मलहम अच्छा रहेगा। मूल ग्रंथकारने इसे जलका मलहम और सफेद मलहम संज्ञा दी है। (आ० नि० मा०)

वक्तव्य—जल न बदलनेसे जलका रंग काला होजाता है; और मलहमपर फफुन्दी आजाती है; एवं जलमें न रखनेपर भी मलहम चिपचिपा होकर बिगड़ जाता है।

उपयोग—इस मलहमकी पट्टी लगानेसे अग्निदग्ध, व्रण, बालकोंकी गुदा पक जाना, सड़े हुए फाले और व्रण रोग तथा मूत्रेन्द्रिय के पासमें उत्पन्न शोथ, अर्शके मस्से का शोथ और पाक होना, ये अच्छे होजाते हैं। सामान्य फोड़ा-फुन्सियों पर यह बहुत अच्छा कार्य करता है।

पैरोंके तकील शिरा पर चोट लग जानेसे शोथ उपस्थित होता है। उसपर

इस मलहमकी पट्टी लगानेपर ५–१० मिनिटमें मलहमका शोषण होजाता है। और पट्टी शुष्क होजाती है फिर तुरन्त दूसरी पट्टी लगावें। इस तरह ३-४ बार पट्टी बदल देव। जैसे-जैसे पट्टी बदल दी जायगी, वैसे वैसे शीतलता आती जायगी, वेदना कम हो जायगी और विकार दूर होजायगा।

(२८) व्रणामृत मलहम।

विधि—गन्धाबिरोजा, देशी मोम, राल का चूर्ण, प्रत्येक १०–१० तोले और अलसीका तैल २० तोले लें। चारों चीजें कड़ाहीमें डाल ढककर अत्यन्त मन्द अग्निमें गलावें। जब पिघलकर एक रस हो जाय, तब नीचे उतार तुरन्त वस्त्र से छानलें शीतल होने पर बरनी में भरकर रख लें।

उपयोग—यह मलहम हर प्रकारके खुले घाव सुखानेमें श्रेष्ठ है। इससे उपदंश का घाव भी शीघ्र आराम होजाता है। दुष्टव्रण जिसका जहर चारों ओर फैल गया हो, जो अनेक प्रकारके मलहमोंसे अच्छा न हुआ हो, ऐसे अनेक रोगी भी इस मलहम से अच्छे हो गये हैं।

[२९] व्रणामृत श्वेत मलहम।

विधि—कपूर १ तोला, सफेद मोम ५ तोले, सफेदा १० तोले और मीठा तैल १० तोले लें। पहिले तैल और मोम गरम करें। थोडा ठंडा होने पर सफेदा मिला लें। फिर कपूर मिलाकर मलहम बना लेवें। यह मलहम सब प्रकारके घावों को बहुत जल्दी भर देता है।

[३०] व्रणहर मलहम।

विधि—मूलर, पीली कौडीकी भस्म, गली सुपारीकी काली भस्म, छोटी इलायचीके दाने और पपडिया कत्था, १-१ तोला और शतधौत गोघृत ५ तोले मिला कर मलहम बना लें। (पं० मगुलालजी)

उपयोग—यह मलहम सब प्रकारके व्रणोंको भर देता है। पुराने भयंकर व्रणोंमेंसे भी पीला-पीला पानी निकल कर थोडे ही दिनमें भर देता है। अग्निदग्ध व्रण (जले हुए घाव) पर भी लाभदायक है।

[३१] गुलाबी मलहम।

विधि—कोकम अमचूरका तैल (Theobromatis) और अरंडीका तैल १०-१० तोलेको कढाहीमें डाल चूल्हेपर चढाकर गरम करें। फिर छानकर १तोला सफेदा और १ तोला सिंदूर मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग—इस मलहमके लगानेसे विपादिका (हाथपैर फटना), होंठ फटना आदि रोग दूर होते हैं, और त्वचा मुलायम बनती है।

[३२] चूनेका मलहम।

विधि--चूना ५ तोले, अरंडीका तैल ३ तोले और रुई ६ रत्ती मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग--यह मलहम व्रण शोधन करके घाव भर देता है। सड़े हुए घावोंके दोषोंको निकालकर व्रणको साफ कर देता है।

[३३] दारुणकनाशक मलहम।

विधि--नीलेथोथेका फूला, कपीला, सफेद कत्था, गेरू और शोरा १-१ तोला; मुर्दासंग, कालीमिर्च और मेंहदीके पत्ते २-२ तोले, सरसोंका तैल १८ तोले और देशी मोम २ तोले ले। पहले तैलमे मेंहदीके पत्ते पकावें। जल जानेपर नीचे उतार कर मोम डाले। ठण्डा होने लगे तब और वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिलाकर मलहम बना ले।

उपयोग--इस मलहमके उपयोगसे दारुणक (केश-भूमिखुश्क होकर खुजली आना), अरुंचिका (शिरपर छोटी-छोटी फुन्सी होना), बाल गिरना आदि विकार दूर होते हैं।

[३४] पामाहर मलहम।

प्रथम विधि--पारा, गन्धक, कालीमिर्च, नीलाथोथा, सिंदूर, कालाजीरा, सफेद जीरा प्रत्येक समभाग लें। पहले पारद और गन्धककी कज्जली करें। फिर सब ओषधियोंका बारीक चूर्ण मिला फिर सबके समान धोया गोघृत डालकर चीनीके बरतन में भर लें।

उपयोग--इस मलहमको पामा (खुजली) और कच्छूपर लगानेसे ५-७ रोजमें जड़से दर्द दूर होता है। पानीमें नीमके पत्ते डाल गरम करके रोज स्नान करना चाहिये।

दूसरी विधि--पारद, गन्धक, नीलेथोथेका फूला और जमालगोटा सब १-१ छटांक लेवें। पारद गन्धककी कज्जली करके नीलाथोथा मिलावें। फिर जमालगोटेको मिलाकर ६ घण्टे अच्छी तरह खरल करें। पश्चात् १सेर धोये गोघृत या सफेद वेसलीनमे मिला खरलकर बोतलमें भर लेवें। (श्री० वैद्य कांतिलालजी आचार्य)

उपयोग--यह मलहम पामा, सुखी खुजली, ब्यूची, सड़े हुए विद्रधि और दुष्ट विद्रधि आदिपर सरलतापूर्वक व्यवहृत होता है।

इसके लेपसे पामा ३ दिनमें दूर होजाती है। सारे शरीरमें कण्डू आनेपर समग्र शरीरपर मालिशकर १-२ घण्टे सूर्यके तापमें रहकर स्नान करते रहनेसे २-४ दिनमें कण्डू शमन हो जाती है। दुःखदायी जीर्ण ब्यूचीपर इसे लगानेसे उसे पकाकर जड़ मूलसे नष्ट कर देता है।

फोड़ा जो दीर्घकाल तक दुःख देता है, जिसके भीतर सड़ा भाग होनेसे दुर्गन्ध आती रहती है या जिसका पूय दूसरे स्थानपर लगनेपर दूसरी जगह पर फोड़ा होजाता हो अथवा जो अधिक गहराईतक चला गया हो, उनके शोधनार्थ इस मलहमका उपयोग होता है। घाव शुद्ध होजाने पर दूसरा रोपण मलहमका लेप करानेसे जल्दी लाभ पहुँच जाता है।

[३५] व्युचीहर मलहम ।

विधि—पारा, गन्धक, मेनसिल, सफेद कत्था, पाषाणभेद पत्थर, मुर्दासंग, सब १-१ तोला और पुवाड़के बीज ७ तोले लें। पारा-गन्धककी कज्जली कर अन्य वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिला दें। फिर सब औषधियोंका चौगुने गोघृतके साथ तांबेके बरतनमें तांबेके दस्तेसे (या नीमके डण्डेके नीचे तांबेका पतरा लगाये हुए दस्तेसे) ६ घण्टे खरलकर मलहम बनालें।

उपयोग—इस मलहमसे सूखा या गीला व्युची (उकवत Eczema), खाज, दाद, पाँव इत्यादि दूर होते हैं। विस्फोटक और चादीके घाव पर लगानेमें भी यह उपयोगी है।

क्वचित् यकृद्वृद्धि होनेपर भी अपथ्य सेवन करनेवालोंको व्युची हो जाती है। वह बाह्य उपचारसे और गंधक रसायन आदि रक्तशोधक औषधि-के सेवनसे भी दूर नहीं होता। क्रमशः बढ़ता जाता है और अधिक दुःखदायी बनता जाता है। ऐसे विकार पर यकृत् पौष्टिक औषधिके सेवनके साथ व्युचीहर मलहमका उपयोग करनेपर लाभ होजाता है।

सूचना—(१) व्युचीको रोज सुबह शाम तमाखूके जलसे धोना चाहिए। तमाखू १ तोलेको आध सेर जलमें भिगो दें। फिर छानकर उपयोगमें लेवें। सुबह भिगोया जल शामको लें। शामको भिगोया जल सुबह लें। शीतकालमें जलको गरम कर लेवें।

(२) जिस व्युचीमेंसे जल जैसा स्राव अत्यधिक हो रहा हो, उसपर घृत-तैल युक्त कोई भी मलहम नहीं लगाना चाहिये। अन्यथा विष अधिक स्थानमें फैलता है। उसपर दशांग लेप या हरीतकी आदि कषाय द्रव्य अथवा गोमूत्रकी पट्टीका प्रयोग हितावह होता है।

(३६) दद्रुघ्न मलहम।

विधि—ऐसिड क्राईसोफेनिक ४ ड्राम, ऐसिड कार्बोलिक ४ ड्राम, ऐसिड सैलीसिलिक २ ड्राम और पीली वैसलीन १६ औंस लें। सब औषधियोंको मिला वैसलीनमें डालकर मलहम बनालें।

उपयोग—यह मलहम सब प्रकारके दादको जड़मूलसे २-४ दिनमें ही नष्ट कर देता है। मलहमवाला हाथ नेत्रोंको न लगाना चाहिये।

[३७] अर्बुद [कारबंकलका] मलहम।

विधि—पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, मुर्दासंग ४ तोले, कपीला ८ तोले, नीलेथोथेका फूला २ माशे लें। पहिले पारे और गन्धककी कज्जली करें फिर सबको मिलाकर ६ घण्टे खरल करें। बादमें धोया हुआ चौगुना गोघृत मिलाकर मलहम बना लें।

(धन्वन्तरि)

उपयोग—मलहम लगाते ही अदीठकी जलन और पीड़ा दूर होती है। व्रणको पकाकर अन्दरसे पीप, रुधिर, गले-सड़े मांसको अलग करता है। बार-बार मृतमांस काट करके अलग करना चाहिये। साथमें खानेके लिये रक्तशोधक ओषधि देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें अदीठ रोग दूर होता है।

सूचना—विशेषत: अदीठ मधुमेह पीड़ित व्यक्तिको होता है। अत: उनको शक्करप्रधान भोजन, मधुर फल आदि, जो अपथ्य हों वे बन्दकर देना चाहिये। एवं रक्तमेंसे विषको बाहर निकालनेवाली रक्तप्रसादन तिक्त औषधिका सेवन भी कराते रहना चाहिये।

(३८) भगन्दरनाशक मलहम।

प्रथम विधि—रसकपूर, सिंदूर, सेलखड़ी, मुर्दासंग, सफेदा, सफेद कत्था, कपूर, चिकनी सुपारीकी राख, प्रत्येक १-१ तोला और सत्यानाशीके बीज ८ तोले मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर चार गुना धोया गोघृत मिलाकर मलहम तैयार करे। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहमके लगानेसे भगन्दर, कंठमाल, उपदंश, नासूर, गंभीर व्रण, बवासीर, पामा, फोड़ा-फुन्सी, दाद इत्यादि रोग दूर होते हैं। छोटा छिद्र हो, तो मलहमकी बत्ती बनाकर भरदे।

दूसरी विधि—बिलावके पैर और कुत्तेके पैरकी हड्डी ५-५ तोलेको एक करवेमें संपुटकर जलाकर कोयला करे। फिर राखके समान वजनमें धोया घी मिलाकर मलहम बनालें।

उपयोग—भगन्दर, नासूर और भयंकर व्रणमें इस मलहमको भर देनेसे तुरन्त आराम होता है। त्रिफलेके क्वाथ अथवा नीमके क्वाथमें घिसकर भी लगाया जाता है। दो प्रकारकी हड्डियोंमें से किसी की भी हड्डी मिल जाय, तो भी लगानेके काममें आसकती है। ऊंटकी हड्डी घिसकर लगानेसे भी भगन्दर दूर होता है।

(३९) कण्ठमालका मलहम।

प्रथम विधि—दालचिकना, पारा, गन्धक, मुर्दासंग, सफेदा, सफेद-कत्था, सोहागका फूला, कुंदरू, भिलावां (ऊपरकी टोपी निकाला हुआ), कालीमिर्च, नीमके पत्ते और मोम २-२ तोले तथा सरसोंका तैल ४० तोले लें। पहिले दालचिकना और पारागन्धककी कज्जली मिलावें। फिर मुर्दासंग और सफेदा, पश्चात् और वस्तुओंका चूर्ण मिलावें। नीमके पत्ते बाकी रखे। सरसोंके तैल और नीमके पत्तोंको मिलाकर मन्दाग्नि पर गरम करें। पत्ते जल जांय, तब मोम मिलावे। फिर कड़ाहीको नीचे उतार अन्य वस्तुओंका चूर्ण मिलाकर पतला मलहम तैयार कर लें।

(आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहममें कपडेकी पट्टी डुबोकर कण्ठमालपर लगाते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें रोग निर्मूल होजाता है ।

द्वितीय विधि—मनुष्यकी खोपडी अथवा हड्डीका बारीक चूर्ण और मक्खीकी विष्ठा समभाग मिलावें । मक्खी रातको डोरी पर बैठती है, उस डोरीपर विष्ठा लगी रहती है, वह डोरी लेवें । इसे मनुष्यके मूत्र (या गोमूत्र) में पीसकर तैयार करें । फिर कपडेपर लगाकर कण्ठमाल पर बांध देवें । (धन्वन्तरि)

उपयोग—यह लेप थोडे दिनतक लगानेसे कंठमाल और गलगण्ड दूर होते हैं, तथा अन्य प्रकारकी गांठ भी बैठ जाती है ।

(४०) उपदंशरिपु मलहम ।

विधि—रसकपूर ६ माशे, कपूर ६ माशे, मुर्दासंग १ तोला, सफेद कत्था ६ तोले, हीरादोखी गोंद (दमुल अखवैन) २ तोले, नीलाथोथेका फूला ३ माशे और पीली वैसलीन २० तोले लें । वैसलीनको गरमकर अन्य वस्तुओंका चूर्ण मिलाकर मलहम बनालें ।

उपयोग—नीमके पत्तोंके क्वाथसे उपदंशके घावको धोकर मलहम लगाते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें घाव भर जाता है ।

(४१) अर्शोहर मलहम ।

विधि—रसौत हरताल और सफेद कत्था २-२ तोले लेकर खरल करें । फिर १०० बार पानीमें धोया हुआ ८ तोले गोघृत मिलाकर मलहम बनालें ।

(आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहमको दिनमें २ बार लगानेसे खून गिरना बन्द हो जाता है, जलन और वेदना दूर होती है, तथा शुष्क मस्से मुरझा जाते हैं ।

दूसरी विधि—सिन्दूर ४ तोले और गोघृत २० तोले मिला कांसीकी थालीमें डालकर नीमके डण्डेसे रगडें । डण्डेपर ५ तोले सीसेका पतरा लगावें और घृतको १०० बार पानीसे धो लेवें । रगडनेसे मलहम बन जाता है । (इलाजुलगुरबा)

उपयोग—दिनमें दो-तीन बार मलहम लगाते रहनेसे जलन मिट जाती है, और मस्से थोडे ही दिनोंमें मुरझा जाते हैं ।

तीसरी विधि—अफीम ३ माशे, आकका दूध १ माशा, जायफल १ तोला और धोया हुआ गोघृत १ तोला लें । सबको मिला खरलकर मलहम बना लें ।

उपयोग—शौच (जंगल जाने) के बाद दिनमें २-३ बार मस्सोंपर इस मलहम का लेप करनेसे मस्से नष्ट होते हैं । मस्सेकी वेदना शमन होती है, शोथ नष्ट होता है और धीरे धीरे मस्से मृत बन जाते हैं ।

चौथी विधि--सेलखड़ी, कलीका चूना, सोनागेरू, फिटकरीका फूला, मरोड़ फली, आमाहल्दी, इन ६ ओषधियोंको ८ भाग लेकर कपड़छान चूर्ण करें। पश्चात् ४ गुने गायके मक्खनमें मिलाकर मलहम बना लें। (स्वामी कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

उपयोग--शुष्क ओर रक्त निकलने वाले, दोनों प्रकारके मस्सोंपर यह ओषधि लाभदायक है। पहिले ही दिन वेदना और जलन शमन हो जाती है; शोथ दूर होती है; और शनैः शनैः मस्से मुरझा जाते हैं। रोज शौच जानेके बाद २-३ बार मलहम लगाते रहें।

सूचना--अधिक बद्धकोष्ठ करनेवाले पदार्थका सेवन और अधिक मिर्चका उपयोग नहीं करना चाहिये। कदाच मलावरोध हो जाय, तो स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण अथवा सौम्य ओषधिका सेवन करके उदरको साफ कर लेना चाहिये।

(४२) वातशूलहर मलहम।

विधि—कपूर ५ तोले, साबुन १ तोला और तारपीन तैल २० तोले लें। पहिले कपूर और साबुनको खरल करके मिला लें। फिर तारपीन तैल मिलानेपर कपूर मिल जाता है।

उपयोग—इस मलहमकी मालिश करनेसे वातशूल और उदरशूल दूर होते हैं। जिस स्थानपर वायुकी पीड़ा होती हो; उस स्थानपर इस मलहमकी मालिश करनेसे तत्काल लाभ पहुंचता है।

(४३) शिरःशूलान्तक मलहम।

प्रथम विधि--सफेद वैसलीन ३ पौण्ड, पेरेफीन (विलायती मोम) १ पौण्ड, लोहवान पुष्प २ औंस, कपूर २ औंस, पीपरमेंटके फूल १ औंस, अजवायनके फूल २ औंस, नीलगिरी तैल ६ औंस, दालचीनीका तैल २ औंस, पहिले (लोहेकी सफेदी लगे हुए) बर्तनमें वैसलीन और मोमको गरम करके छान ले। कपूर, पीपरमेंट और अजवायनके फूलको मिलाकर प्रवाही अर्क बना लें। पश्चात् तैल और लोहवान पुष्पको वैसलीनवाले प्रवाहीमे मिला लें। फिर जब थोड़ा गरम रहे; तब अर्कको डाल, कांच या लोहेकी शलाकासे चलाकर सबको भली भांति मिला लें और शीशीयोंमें तुरन्त भर लें।

उपयोग--इस मलहमकी मालिश करनेसे शिरदर्द, सूजन, सांधोंमें दर्द होना, चोट लगनेसे रक्त जम जाना, अग्नि, तैल, घी अथवा तेजाबसे जलना, शूल, वायुका दर्द, स्त्रियोंके स्तन फटना, होठ फटना, जहरी जन्तुका काटना आदि दर्द तुरन्त दूर होते हैं। एवं बिच्छूका जहर जब दंशस्थानमें रह जाता है, तब दंश-भागपर मालिश करनेसे जलन शांत होती है।

दूसरी विधि--नीलगिरी तैल ८ भाग, लोहवान पुष्प ४ भाग, कठिन

मोम (पॅरेफिन हार्ड) ३८ भाग । मृदु मोम (पॅरेफिन सोफ्ट) ५० भाग । पहिले मोमको गरम करें । फिर तैल और पुष्प मिला लेवे । शीतल हो तवतक चलाते रहें ।

उपयोग—पहिली विधिके अनुसार ।

(४४) अग्नि दग्धव्रणहर मलहम ।

प्रथम विधि—राल ४ तोले और अलसीका तैल ४० तोले लेकर दोनोंको कड़ाहीमें डालकर पकावें । फिर उतार तुरन्त ही वस्त्रसे छान ले । शीतल होनेपर कासी की थालीमें चूनेके पानीमें २१ वार धावें । धानके लिये कलई चूना १ तोला लेकर १ बोतलमें डालें । ऊपर १। पौंड जल डालें । फिर डाट लगा २-३ मिनट चलाकर १-२ घंटे रहने दें । चूना नीचे बैठ जानेपर ऊपरसे साफ जलको निकालकर उपयोगमें ले । इस हिसावसे अधिक जल बना लें ।

उपयोग—इस मलहमको आगसे दग्ध स्थानपर लगाते ही जलन तत्काल शांत हो जाती है । घाव जल्द भरता है और खूबी यह है कि, वहां सफेद दाग भी नहीं पडता ।

दूसरी विधि—शुद्ध चूना ४ तोले, मोम २ तोले और नारियलका तैल १६ तोले ले । प्रथम मोम और तैलको अग्निपर गलालें । फिर चूना मिलाकर मलहम तैयार करें । अग्निदग्धव्रणमें, जहां चमडी जलकर बिलकुल उतर गई हो,वहांपर भी इस मलहमको लगानेसे आराम हो जाता है । चूना भिगोकर ऊपरका जल फेंक कारके पुन सुखा लेनेसे शुद्ध होता है ।

(४५) मनःशिलादि मलहम ।

विधि—मैनसिल, छोटी इलायची, मजीठ, लाख, हल्दी और दारुहल्दीको २-२ तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें । पश्चात् ६ तोले घी और ६ तोले शहद मिलाकर मलहम बनाले ।

उपयोग—व्रण अच्छा हो जानेके बाद दाग रह जाता है, और चमडी खराब हो जाती है, यह दोष इस मलहमके लेपसे दूर हो जाता है ।

[४६] पारदादि मलहम ।

विधि—पारद और गन्धक १-१ तोला, मुर्दासंग २ तोले, कपीला ४ तोले और नीलेथोथेका फूला ३ मासे ले । सबको खरल कर ३२ तोले धोये हुए गोघृत में मिलाकर मलहम वनालें । (यो० र०)

उपयोग—यह मलहम अति प्रभावशाली है । सब प्रकारके व्रणोंपर व्यवहृत होता है । यह व्रणोंका शोधन करके उनको भर देता है । दुष्ट व्रण जिसमें अति दुर्गन्ध वाला पूय स्राव होता है, मांस सड गया हो,खूब फैल गया हो और गहरा भी हो गया हो, ऐसे गम्भीर व्रण भी इसके योगसे थोडे ही दिनोंमें भर जाते हैं । मस्तिष्क,जांघ और

सब स्थानोंके दुष्ट व्रण, पर इसका प्रयोग होता है ।

इसके लगानेसे उपदंशज व्रणका रोपण भी त्वरित हो जाता है। शीतलाके टीका लगानेपर कभी कीटाणु प्रवेश होकर दुष्ट व्रण हो जाता हैं। फिर अत्यन्त दुर्गन्धमय पूयस्राव होता रहता है—इसपर भी यह लाभदायक है ।

कितने रोगियोंके रक्त और त्वचाकी रचनामें विकृति आ जाती है। फिर थोड़ा सा घाव लगनेपर वहां व्रण होकर महीनों तक नहीं भरता। ऐसे व्रणोंका भी यह मलहम सत्वर शोधन और रोपणकर देता है ।

कितने व्रण ओषधि लगानेपर भर जाते हैं । किन्तु थोड़े ही दिनोंमें उस स्थानमें या उसके समीपमें पुनः व्रण उत्पन्न होजाता है । इस तरह बार-बार दुःख पहुंचता रहता है । ऐसे दुष्ट व्रणोंका यह मलहम सम्यक प्रकारसे शोधन करके फिर रोपण कर देता है । इस मलहममें पड़े हुए नीलाथोथ के प्रभावसे व्रणके भीतर रहे हुए विष और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं । मुर्दासंगके योगसे घावमे सत्वर शुष्कता आजाती है। कपीला घावमें सुखाने और भरनेमें सहायक है । पारद गन्धक गहराईमे रहे हुए कीटाणुओं और विषको नष्ट करनेका कार्य करते हैं ।

(४७) निम्बादि मलहम ।

विधि—निम्बके पत्तोंका स्वरस ४० तोले, गोघृत १० तोले, रसकपूर १ तोला और मोम २ तोले ले । पहले निम्बके पत्तोके रसको घीमे मन्दाग्निसे जलावें । पश्चात् मोम मिलाकर घीको छान लें। निवाया रहने पर रसकपूर मिलाकर मलहम बनालें ।

उपयोग—यह मलहम सब प्रकारके नये और पुराने घावोंको शुद्ध करके भर देता है । जिन घावोंमेंसे जहरी पानी निकलता रहता हो; वह पानी जहां-जहां लगे वहां पर नया व्रण होजाता हो; उनके विषको नष्ट करके सत्वर भर देता है ।

[४८] माहेश्वर धूप ।

विधि—राई, सरसों, नमक, गूगल, कुन्दरू, बच, बायविडंग और नीमके पत्तेको समभाग मिलाकर चूर्ण करें ।

उपयोग—छोटे बालकोंके ज्वरमें माहेश्वर धूपका चूर्ण १-२ तोला लेकर बालकसे थोड़ी दूर अग्नि पर डाल दे । जिससे वातावरणमें धूपके अणु मिलकर बालकके श्वासोच्छ्वास द्वारा शरीरमें प्रवेश करके ज्वरको उतारनेमेंसहायता पहुंचाते हैं । बड़ोंके लिये भी हितकर है ।

(४९) अपराजित धूप ।

विधि—गूगल, अगर, रोहिस घास, नीमके पत्ते, आकके पत्ते, बच, राल और दारुहल्दीको समभाग मिला ले ।

उपयोग—इसका धुंआ देनेसे सब प्रकारके ज्वर कीटाणु नष्ट होते हैं ।

(५०) जन्तुघ्न धूप ।

विधि—नमक ३० तोले, कासीस १० तोले और नौसादर २० तोले मिलाले । (रै० स० वि०)

उपयोग—प्लेगके मरीज जहां रहते हों वहां कोयलोंकी जलती हुई अगीठीके ऊपरमें तवा रखकर नमकवाली धूप रखदें, जिससे वातावरणमें धूपका असर फैल प्लेगके मरीजके श्वासोच्छ्वासमें मिलाकर रोग दूर करनेमें सहायता पहुंचाती है। शेष अंश (लालराख) तवेपर रहे, उसे गरम जलमें मिलाकर प्लेगकी गांठ पर लगानेमें जल्दी लाभ पहुंचता है ।

(५१) दशांग धूप ।

विधि—बच, हींग, वायविडंग, सेंधानमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, इन १०औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (बा० भ०)

उपयोग—इस चूर्णकी धूप देनेमें बालकोंके सब प्रकारके ग्रहदोष नष्ट होते हैं ।

[५२] जात्यादि धूम्र ।

विधि—चमेलीके पत्ते, मैनसिल, राल और गूगलको समभाग मिलाकर बकरीके मूत्रमें पीसकर गोलियां बनालें । (यो० र०)

उपयोग—इस गोलीको चिलममें रखकर धूम्रपान करनेसे कफ निकल जाता है, हृदयावरोध और कण्ठावरोध दूर होते हैं, तथा कास, श्वासका शमन होता है ।

(५३) अर्शोघ्न धूम्र ।

प्रथम विधि—कचूर (शठी) १० तोले, वायविडंग १० तोले और भांग ५ तोले लेकर चूर्ण करें । फिर एकाध तोलेका धुआं दें ।

धुआं देनेकी विधि—एक बर्तनमें निर्धूम कोयला रख ऊपर चूर्ण डाल तुरन्त हुक्का पीनेकी चिलमसे ढक दें । चिलमके छिद्रसे धुआं निकलता रहे, उसे मस्सेपर लगाते रहें । कमरतक कपडा ओढ करके धुआं देना चाहिये ।

उपयोग—इस धूम्रसे मस्से नरम होकर मुरझा जाते हैं । जो मस्से भीतरके हैं वेनरम होकर ऊपर चढ जाते हैं ।

दूसरी विधि—कुचिला, कपूर, शमी (छोकर) के पत्ते, हल्दी, छोटी कटेलीके फल सबको समभाग लेकर चूर्ण करें ।

उपयोग—कमरतक कपडा ओढा, ईंटोंपर उकडूं बैठाकर गोबरीकी निर्धूम अग्नि पर एक तोला औषध डाल, चिलमकी नली द्वारा अर्शके मस्सेको धुआं देनेसे भयंकर दर्द भी तुरन्त शांत होता है ।

(५४) कृमिघ्न धूम्र।

विधि—छोटी कटेलीके सूखे फलको एक कलछीमें रख कर कोयलोंकी सिगड़ीपर रखें और कलछीपर एक नली रखकर, दांत अथवा कानमें जहां कृमि हों, वहांपर धुआं देनेसे तुरन्त कृमि बाहर निकल जाते हैं। एवं एक-एक फल चिलममें रखकर धूम्रपान करनेसे तम्बाखूके व्यसनीकी खांसी, भयंकर कफप्रकोप, हृदयावरोध आदि उसी क्षण दूर होजाते हैं।

[५५] देवदार्वादि धूम्र।

विधि—देवदारु, खरटीकी जड़ और जटामांसीको समभाग मिला, बकरीके मूत्रमें पीसकर वर्त्ति बना लें। (भा० प्र०)

—इस बत्तीको घी चपड़कर धूम्रपान करनेसे श्वासकी भयंकर पीड़ा तुरन्त नष्ट होजाती है।

[५६] मनःशिलादि धूम्रपान।

विधि—मैनसिल, हरताल, कालीमिर्च, जटामांसी, नागरमोथा और हिंगोटके फलकी छालको समभाग लेकर चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग—२ से ४ रत्ती चिलममें डालकर धुआं लेनेसे शीघ्र कफ निकलकर एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज कास और श्वासावरोध दूर होते हैं। विशेषतः तमाखू पीनेवालोंके वातकफजनित श्वास और भयंकर कफयुक्त कासमें लाभदायक है। धुआं लेकर ऊपर गुड़ या मिश्री मिला निवाया दूध पीवें। जो सैकड़ों ओषधियोंसे अच्छे न हुए हों, ऐसे रोगी भी इस प्रयोगसे त्वरित् अच्छे होजाते हैं।

सूचना—रक्तपित्त, उदररोग, तिमिर दोष और प्रमेहके उपद्रव वालोंको धूम्रपन नहीं करना चाहिये। धूम्रपान करनेपर उनको धुआं मुंहसे निकालना चाहिये। धूम्रपान करनेपर उनको धुआं मुंहसे निकालना चाहिये। धूंएको नाकसे न निकालें।

(५७) अस्थिदोषहर सेक।

विधि—गेहूंका मैदा, मैदालकड़ी और हल्दी १०-१० तोले, सज्जीखार २ तोले और तिलका तैल २० तोले लें। पहिले तैलको गरमकर मैदा भूनें। फिर सज्जीखार, मैदा लकड़ी और हल्दी क्रमसे डाल, थोड़ा पानी मिलाकर हलवेके समान पकावें। फिर बार-बार गरमकर आध घण्टेतक चोट पर सेक करे। पश्चात् ओषधि बांध देवे। चोटके कारण हड्डीपर आघात, शोथ, रक्त इकट्ठा होना, वेदना होना, आदि दोष दूर होते हैं।

(५८) कलिंगाद्य नस्य ।

विधि—इन्द्रजौ, कच्ची हींग, कालीमिर्च, लाक्षा, कायफल, कूठ, वच, सुहिजनाके बीज और वायविडंग, इन ९ औषधियोंको समभाग मिला कूट-कपड़छान चूर्णकर बोतलमें भर लें, इस नस्यमें थोड़ा कपूर भी मिला लिया जाय तो विशेष हितकर है । (यो० र०)

उपयोग—इस नस्यके सूंघनेसे जुकाम, शिरदर्द, श्वासकी रुकावट और सब प्रकारके नासिका-रोग दूर होते हैं ।

(५९) नजलानाशक नस्य ।

विधि—कश्मीरी पाठा और उस्तखद्दूस दोनों २-२ भाग तथा बालछड़ (जटामांसी) और गुलबनफशा १-१ भाग लें । सबको मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें । (स्वा० कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

उपयोग—इस नस्यके सूंघनेसे कपालमें संग्रहीत कफ दूर होता है । श्वासनलिका साफ होती है, जिससे नजलेका पानी आंखोंमें उतरकर नुकसान पहुंचाता हो, वह बन्द हो जाता है । शिरदर्द शमन होकर मस्तिष्क हलका और शांत बन जाता है । जुकाम वालोंके लिये अति लाभदायक है । सन्निपात और उदावर्त रोगमें शिरोविरेचनकी जहां आवश्यकता हो वहांपर यह लाभ पहुंचाता है ।

(६०) शिरःशूलान्तक नस्य ।

प्रथम विधि—कायफल ५ तोले, नकछीकनी २ तोले, छोटी पीपल, तुलसी-पत्र, वायविडंग, छोटी इलायचीके बीज, कपूर, सब १-१ तोला और देवदाली ६ माशे लें । सबको कूट कपड़छान चूर्ण बना लें । इसमें से १-१ रत्ती आवश्यकतापर सूंघावें ।

उपयोग—इस नस्यसे शिरदर्द, जुकाम, तन्द्रा, श्वासावरोध आदि दोष दूर होते हैं ।

दूसरी विधि—हरड़, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ६-६ माशे, बच्छनाग २ माशे तथा पीपल (अश्वत्थ) की छालकी राख १॥ तोले लें । सबको अच्छी रीतिसे खरल करके नस्य तैयार कर लें ।

सूचना—इस नस्यमेंसे आध रत्ती सूंघानेसे कफ, कृमि आदि दोष निकल कर शिरदर्द शमन होता है ।

[६१] मूर्च्छान्तक नस्य ।

विधि—नौसादर, चूना और कलमीशोरा प्रत्येक १-१ तोला लें । फिर अलग-अलग पीस स्टोफर्ड बोतलमें भरकर मिला लें । पश्चात् कपूर ३ माशे मिलाकर अच्छी रीतिसे हिला लें ।

उपयोग—बेहोशीके समय सूंघानेमें अति उपयोगी है । सन्निपात, हिस्टीरिया

और सर्प आदि जानवरोंके जहरकी मूर्च्छा दूरकर देता है । दांत भिचे हुए हों; औषध खा न सके; उसी समय इस नस्यको संघानसे दांत खुल जाते हैं; और रोगी होशमें आ जाता है । यदि रोगी सूंघ न सके तो उसकी नाकके पास बोतल को खोलनेसे गैस तत्काल प्रवेश कर जाती है ।

(६२) विषादि उद्धूलन ।

विधि--अशुद्ध बच्छनाग १ तोला, कालीमिर्चका चूर्ण ३ तोले और जंगली कडों की राख १६ तोले मिला धतूरेके पत्तोंके रस ी भावना देकर सूर्यके तापमें सुखा लें ।

उपयोग--यह उ धूलन सन्निपातमें शीत और पसीना दूर करनेके लिये सारे शरीरपर मालिश करनेमें उपयोगी है ।

(६३) भूनिम्बादि उद्धूलन ।

विधि--चिरायता, कुटकी, कूठ, सौंफ, इन्द्रजौ और कचूरको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें ।

उपयोग--सन्निपातमें अत्यन्त पसीना आता हो और कण्ठावरोध हो; तब शरीरके प्रत्येक सांधोंपर इसकी मालिश करनेसे सन्निपतिके विकार शांत हो जाते हैं ।

(६४) त्वक्पत्रादि उद्वर्तन ।

विधि--दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगर, सुहिंजनेकी छाल, कूठ, वच और सौफ सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें । (वृन्द)

उपयोग--इस चूर्णको नींबूके रस या कांजीमे पीस, गरमकर लेप करनेसे हैजमें हाथ-पैरकी नसोंका खिचना तुरन्त वन्द होजाताहै ।यदि इस चूर्णका कल्क बना कांजी मिला सरसोंका तल सिद्ध करें और इस तैलकी मालिश करें; तो भी शीघ्र लाभ होता है ।

(६५) चन्द्रप्रभा उबटन ।

विधि--पीली सरसों, चिरौंजी और मसूरकी दालको समभाग मिला गोदुग्धमें पीस रात्रिको सोनेके समय मुंहपर लेप करें । (श्री० रामस्वामीजी)

उपयोग--तारुण्य पिटिका (मुंहासे) और मुंहपरके काले दाग थोड़े ही दिनोंमें दूर होते हैं । सारे शरीरमें मालिश करनेसे दुर्गन्ध,फुन्सी और खाज दूर होकर शरीरकी त्वचा सुन्दर वन जाती है ।

[६६] रजःप्रवर्तिनी वर्ति ।

विधि--एलुवा और कड़वे विदाल (देवदाली) के फल ६-६ मागे लें; तेज शरावमें पीस पतले साफ कपड़ेपर लेप करें । फिर वस्त्रको गुण्डालकर वर्ति वना लें । (श्री पं० मंगुलालजी)

उपयोग—इस वर्तिको भगमें धारण करानेसे मासिकधर्म आने लगता है। सायमें चूक (सत्यानाशीकी जड) को जलमें घिसकर नाभिपर लेप करें।

(६७) फलवर्ति।

विधि—मैनफल, पीपल, कूठ, वच, सफेद सरसो और जवाखार १-१तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। बादमें ५ तोले गुडको जलमें मिला, गरम करके चाशनी करें। फिर चूर्ण मिलाकर चलाते रहें। जब वर्ति बांधने लायक हो जाय, तब कनिष्ठिकासे कुछ पतली और नोकवाली वर्ति (वत्तिया) बना लें। (वृन्द)

उपयोग—इस वर्तिपर थोड़ा घीवाला हाथ लगाकर गुदामें चढानेसे मलावरोध जनित उदावर्त रोगका शमन होता है, उसी समय रुकी हुई अधोवायु निकलकर अफारा दूर होता है।



रोगानुसार औषध-सूची।

इस सूचीमें किस रोगपर कौन-कौनसी औषध दीजाती है, यह दिखाया है। एक ही रोगपर अनेक ओषधि काम देती हैं। परन्तु इनमेंसे देश, काल, दोष-दूष्य आदि भेदसे कोई विशष अनुकूल रहती है, कोई कम। कोई सत्वर लाभ पहुंचाती ह, कोई चिरकालमें। एवं समान औषधियोंमेंसे अनेक लाभ नहीं पहुंचा सकतीं। अतः विवेकपूर्वक उपयोग करना चाहिये। यथाहि—निद्रानाशपर मुक्तापिष्टी, सूतशेखर, निद्रोदय रस आदि औषध उपयोगमें आती है। इनमेंसे पित्त-प्रकोप या रक्तकी उष्णता हेतु हो, तो मुक्तापिष्टी; वातपित्तात्मक दोष हो; तो सूतशेखर; और तीव्र वेदना होनेपर वातकेन्द्रको बलात्कारसे सुप्त बनाकर निद्रा लानी हो, तो निद्रोदयरस देना चाहिय। पृष्ठ ३७७में हेमगर्भपोटली रसकी दो विधि लिखी है। दोनों क्षय और संग्रहणी पर उपकारक है। इनमे प्रथम विधिसे जब यकृत्पित्तका स्राव कम होता हो, तब बढाकर नियमित कराने तथा कफस्राव और अनेक पिण्डोंको सुदृढ़ बनानेकी जहां आवश्यकता हो, वहांपर हितकारक है। द्वितीय विधि उदरवात तथा पित्तकी अम्लता और उष्णताको शमन करने, अन्त्रकी संग्राहक शक्तिको बढ़ाने तथा अस्थिसंस्थाको दृढ़ बनानेके लिय लाभदायक मानी गई है। इस रीतिसे सब ओषधियोंमें सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर विभिन्नता जानी जाती है। हमने कुछ अशमें दोष आदि भेदसे औषधकी पृथक्ताका दिग्दर्शन कराया है। अधिक विस्तार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' में यथा-स्थान किया है।

पाठकोंसे प्रार्थना है कि स संक्षेपमे लिखी हुई चिकित्सापद्धतिके अनुसार रोगी, रोग, रोगबल, हेतु, दोष दूष्य, लक्षण, आयु, ओषधिबल, आहार-विहार, परिस्थिति सब बातोंका विचार करके चिकित्सा कर। रोगोंके नाम प्रांतभेदसे भिन्न होनेसे किसी एक प्रांतमें प्रचलित नाम अन्यत्र उपयोगम नहीं आते। अनक नाम अन्य प्रांतवासी नही जानते अतः यहां माधवनिदानम लिख संस्कृत नाम ही प्रायःअकारान्त क्रमसे लिखे है।

पाठकोंकी सुविधाके लिय रोगोंके नामोंकी यादी यहां दी है, इनसे सबको ईच्छित रोग वर्णन तुरन्त निकालकर देख सकें। उदाहरणार्थ कब्ज कब्जित, मलावरोध, बद्धकोष्ठ और आनाह, उन शब्दोंमसे वर्णन आनाहके साथ लिखा ह। इस रीतिसे अनेक पर्याय नामवाले रोगोके लिये समझ लें।

(१) अग्निदग्धव्रण—आगसे जलना।

वराटिका भस्म १७१। अग्निदग्धव्रणहर मलहम ७९०। शिरःशूलान्तक मलहम ७८९। दाग रह जानेपर—मनःशिलादि मलहम ७९०।

(२) अग्निमान्द्य—मन्दाग्नि (Loss of Appetite)

वातप्रधान—अग्नितुण्डी वटी ३५७। चित्रकादि वटी ५५९। हिंग्वष्टक चूर्ण ६०१। धनंजय वटी ५५७। शिवाक्षारपाचन चूर्ण ६०२। विषतिन्दुकादि वटी ५६८। गन्धक वटी ५७९। आर्द्रकावलेह ७२७। क्षुद्बोधक रस ५२५।

पित्तप्रधान—वैडूर्य भस्म १५८। प्रवालभस्म १५९। शुक्तिभस्म १६९। शंख भस्म १७३। वराटिका भस्म १७१। लवंगादि चूर्ण ६१२। नींबूका शर्बत ७३९। स्वादिष्ट शर्बत ७३८। प्राणदा गुटिका ५६९। स्वादिष्टपाचन वटी ५८७। सितोपलादि चूर्ण ५९६।

कफप्रधान—अग्निकुमार रस ३५२। धनंजयवटी ५५७। लोकनाथ रस ४५२। चित्रकादि वटी ५५९। गंधक वटी ५७९। आर्द्रकावलेह ७२७। क्षुद्बोधक रस ५२५।

जलवायु दोष जनित—दुर्जलजेता रस २९२। आर्द्रकावलेह ७२७।

धातुकी निर्बलतासे—सुवर्णभूपति २४१। अभ्रक भस्म १३३। ताम्र भस्म ८९। लोह भस्म ९३। वंगभस्म १००। लक्ष्मीविलास ३०८, ३७८। सुवर्णमालिनी वसन्त ३१६। हिंगुलरसायन ४२२। द्राक्षारिष्ट ६४६। अश्वगंधारिष्ट ६८२। त्रैलोक्य-चिन्तामणि २८७। वसंतकुसुमाकर ४३२।

विष्टब्ध या आमाजीर्णसे जीर्ण मन्दाग्नि—रससिंदूर २२१। प्राणदापर्पटी २६३। अग्नितुण्डी ३५७। द्राक्षासव ६८६। महाद्राक्षासव ७०५। क्षुद्बोधक रस ५२५। हिंग्वष्टक चूर्ण ६०१। शिवाक्षारपाचन चूर्ण ६०२।

ज्वरके पश्चात् अग्निमांद्य—सुवर्णमालिनी ३१६। लघुमालिनी ३२४। लक्ष्मी-विलास रस ३०८, ३७८। जयमंगल रस २९०। ६४ प्रहरी पीपल ४२।

विषप्रकोपसे अग्निमांद्य—सुवर्णमालिनी वसंत ३१६। सुवर्णभूपति रस २४१। चतुर्मुख रस ५४१। प्रवाल पिष्टी १६१। शुक्ति भस्म १६९। मुक्ता भस्म १५६। वराटिका भस्म १७१। वैडूर्य भस्म १५४।

आमाशयवृद्धि—समीरपन्नग+शंख भस्म २३६, १७३।

(३) अजीर्ण—पचन (Indigestion, Dyspepsia)

सामान्य अपचन और आमाजीर्ण—अग्निकुमार ३५२। क्रव्याद्रस ३५४। संजीवनी वटी ५४७। आरग्वधादि कल्क ६५७। धनंजय वटी ५५७। चित्रकादि वटी ५५९। हिंग्वादि वटी ५८६। अजमोदादि चूर्ण ६२५। विषतिन्दुकादि वटी ५६८। गंधक वटी ५७९। लहशुनादि वटी ५८५। हिंग्वष्टक चूर्ण ६०१। शिवाक्षार पाचन चूर्ण ६०२। चविकासव ६९६।

विदग्धाजीर्ण—आरोग्यवर्द्धिनी ४४३। शंख वटी ३४२। स्वादिष्ट शर्बत ७३८। धनंजय वटी ५५७। लवणभास्कर चूर्ण ६००। भृंगराजासव ७००। चविकासव ६९६।

रसशेषाजीर्ण—प्रवाल भस्म १५९। वराटिका भस्म १७१। शंख भस्म १७३। शुक्ति भस्म १६९। अग्नितुण्डी वटी ३५७। क्रव्याद रस ३५४। स्वादिष्ट शर्बत ७३८। पप्पल्यादि क्वाथ ६५०।

(८) अन्तःस्रावक ग्रन्थियोंको विकृति।

सारिवासव ६९९ । नाग भस्म ११५ । जसद भस्म ११२ । जातिफलादि वटी (मधुमेह) ४४० । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ ।

(९) अपस्मार-मृगी (Epilepsy)

नया—ताप्यादि लोह ३६३ । अमरसुन्दरी ४०७ । रौप्य भस्म ८२ । वातकुलान्तक ४०७ । भूतभैरव रस ४०६ । उन्मादगजकेशरी ४०५ । स्मृतिसागर ५०९ । योगेन्द्र रस ५३९ ।

जीर्णावस्था—अभ्रक भस्म १३३ । अष्टमूर्ति रसायन २४३ । मल्लसिंदूर २२५ । सूतराज २७४ । मल्लसिंदूर वटी ४२० । सारस्वतारिष्ट ६८५ । पञ्चगव्यघृत ७४६ । ब्राह्मीघृत ७४९ । कल्याणघृत ७५१ । स्मृतिसागर ५३० ।

बेहोशी शमनार्थ—श्वासकूठार ३८५ । मूर्च्छान्तक नस्य ७९४ ।

अर्शरोग-सह अपस्मार—गन्धक रसायन ३९९ ।

उपदंश रोगके उपद्रव रूप अपस्मारका दौरा—अष्टमूर्ति रसायन २४३ । मल्लसिंदूर २२५ । उपदंशसूर्य ४६५

हिस्टीरियासह अपस्मारका दौरा—मलेरिया वटी (नं० २) ३१४ ।

(१०) अम्लपित (Acidity)

सबपर हितावह—जीरकादि मोदक ७१८ । कूष्माण्डावलेह ७२५ । द्राक्षावलेह ७२७ । सूतशेखर ४७७ ।

वातप्रकोप सह—रौप्य स्भम ८२ । अविपत्तिकर चूर्ण ६११ ।

आमाशय वृद्धिज—रौप्य भस्म ८२ । नाग भस्म ११५ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । वंगभस्म १०० । ताप्यादि लोह ३६३ । कामधेनु रस ५१५ ।

कीटाणु प्रकोपज—लीलाविलास ४८८ ।

उदरमें व्रण होकर जीर्ण अम्लपित्त—नाग भस्म ११५ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । ताप्यादि लोह ३६३ ।

यकृत्‌की निर्वलता सह—लीलाविलास ४८८ ।

भोजनके बाद हृदयशूल—शीतल पर्पटी २६५ ।

उदरमें भारीपन—शंखभस्म १७३ ।

कफप्रधान अम्लपित्त—लीलाविलास ४८८ ।

पित्तकी तीक्ष्णता और अम्लता कम कराना—मुक्ताभस्म १५६ । प्रवाल पिष्टी १६१ । कामदूधा रस ३९५ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । ताप्यादि लोह २६३ । सूतशेखर ४७७ । शंख भस्म १७३ ।

शरीर शोधनार्थ—तुत्थ भस्म १९२ । नीलकण्ठ रस ३२९ ।

(११) अरोचक-अरुचि (Anorexia)

सबपर हितावह—अदरखका शर्बत ७३९ । धनञ्जय वटी ५५७ । शंख वटी ३४२ । आर्द्रकावलेह ७२७ । आरग्वधादि क्ल्क ६५७ । कंठसुधारक वटी ५६० । गन्धक वटी ५७९ । स्वादिष्टपाचन वटी ५८७ । स्वादिष्टपाचन चूर्ण ६०३ । यवानीखाण्डव चूर्ण ६०४ । जातिफलादि चूर्ण ६११ । द्राक्षासव ६८६ ।

(२१) आमवात (Rheumatism)

नया तीव्र—महावातविध्वंसन ४०८ । आमवातप्रमथिनी वटी ४२१ । ज्वरकेशरी ७७५ । जयमंगल २९० । लक्ष्मीविलास ३७८ । मृत्युञ्जय २९६ ।

सामान्य प्रकोप—महारास्नादि क्वाथ ६४६ । वृद्धदारुकादि चूर्ण ६१३ । वैश्वानरचूर्ण ६२५ । अजमोदादि चूर्ण ६२५ । हिंग्वादि वटी ५८६ ।

जीर्ण—लोहभस्म ९३ । मल्लसिंदूर वटी ४१८ । सुवर्णभूपति २४१ । ताप्यादिलोह ३६३ । वृहद् योगराजगूगल ६१४ । समीरगजकेसरी ४१२ । महारास्नादि क्वाथ ६४६ । चौवामल्लातक वटी ५७५ । धात्रीभल्लातक वटी ५७७ । अमृतारिष्ट ६८४

हृदय-रक्षणार्थ—लक्ष्मीविलास रस ३०८ । पूर्णचन्द्रोदयरस २१७ ।

सूतिकाको आमवात—अश्वगन्धारिष्ट ६८७ ।

कोष्ठदोष-शोधनार्थ—नाराच घृत ७८५ । नारायण चूर्ण ६३४ ।

(२२) आमाशय व्रण ।

पित्तज—कामदुधारस ३९५ । सूतशेखर ४७७ ।

दाह प्रकोप-सह—रौप्य भस्म ८२ ।

नाइट्राइट्रिक विहितमें—अभ्रक भस्म और नाग भस्म ।

(२३) उदररोग ।

वातोदर—दशमूलाद्यघृत ७८५ । दशमूल क्वाथ ६३७ । हिंगुलरसायन ४२२ । अग्नितुण्डी वटी ३५७ ।

पित्तप्रधान—रौप्यभस्म ८२ ।

अफारा-सह—प्रवालपञ्चामृत ४२८ ।

कफोदर—ताम्र भस्म ८७ । अग्नितुण्डी वटी ३५७ । ताम्रसिंदूर २२८ ।

अन्त्रपुच्छ प्रदाह—अग्नितुण्डी वटी ३५७ ।

यकृदाल्युदर—आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ । नवायसचूर्ण ३७० ।

यकृद्विकृति—आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ ।

यकृत्प्लीहावृद्धि—प्लीहान्तकक्षार चूर्ण ६०४ । प्लीहान्तक चूर्ण ६०४ । रोहितारिष्ट ६९८ । शंखद्राव ७०६ । उदरामृत योग ७०७ । लघुशंखद्राव ७०७ । शंखद्राव ७०७ । शंख भस्म १७३ । ताम्र भस्म ८७ । क्रव्यादरस ३५४ । प्रवालपञ्चामृत ४२८ । शूलवज्रिणी ४२१ । लोह भस्म ९३ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । मण्डूर भस्म १२९ । प्लीहान्तकवटी ४४३ । सुवर्णमालिनी ३१६ । वसुमालिनी ३२० । पर्पटाद्यरिष्ट ७०१ । अश्वकञ्चुकी २७९ । कुमार्यासव ६७५ । पुनर्नवासव ६९८ । अभयारिष्ट ६९० ।

जलोदर—ताम्र भस्म ८७ । ताम्रसिंदूर २२८ । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ । जलोदरारि रस ४५२ । लक्ष्मीविलास अभ्रप्रधान ३०८ । दशमूल क्वाथ ६३७ । पुनर्नवासव ६९८ ।

तीव्र यकृत्संकोच—पञ्चसूत २४६ । ताप्यादिलोह ३६३ ।

पित्ताशय संकोच—ताम्रभस्म ८७ ।

यकृत्में कंकड़ जमना—ताम्रभस्म ८७ । अगस्तिसूतराज रस ३३४ । क्रव्याद रस आदि ताम्रघटित औषधियां और कुमार्यासव ६७५ ।

मलशुद्धि अर्थ—इच्छाभेदी रस ३३० । अभयारिष्ट ६९० । नाराचघृत ७४५ । नारायण चूर्ण ६०५ ।

पाण्डुसह उदररोग—त्रिफलारिष्ट ६८३ ।

(२४) उदावर्त ।

सुवर्णभूपति २४१ । बृहद्योगराज गूगल ४१४ । सूतशेखर ४७७ । अभयारिष्ट ६९० । फलवर्ति ७९६ । योगराज गूगल ५७१ । वज्रक्षार चूर्ण ६१० । नारायण चूर्ण ६०५ । शंखभस्म १७३ । गन्धकवटी ५७९ । त्र्यूषणादि गूगल ५८७ । द्विनिशादि लेप ७७६ ।

(२५) उन्माद-पागलपन (Insanity)

सबपर हितकर—उन्मादगज केशरी ४०५ । भूतभैरव रस ४०६ । अभ्रकभस्म १३३ ।

वातप्रधान—रौप्यभस्म ८२ । कस्तूरीभैरव रस २७४ । अश्वगंधारिष्ट ६८२ । पंचगव्यघृत ७४६ । वातकुलान्तक रस ४०७ । भूतभैरव रस ४०६ ।

पित्तप्रधान—सुवर्ण भस्म ७६ । प्रवाल पिष्टी १६१ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । मूक्तापिष्टी १५६ । कामदूधारस ३९५ । सूतशेखर ४७७। सारस्वतारिष्ट ६८५ । ब्राह्मीघृत ७४९ ।

वात पित्त प्रधान—योगेन्द्र रस ५२९ ।

कफ प्रधान—मल्लसिंदूर २२५ । समीरपन्नग २३६ । मल्लसिंदूर वटी ४२० । पञ्चगव्यघृत ७४६ ।

मानसिक आघात-जन्य—स्मृतिसागर ५३० । अभ्रकभस्म १३३ । (विजयपुष्पाद्यवलेहके साथ ७३०) । रौप्य भस्म ८२ ।

गर्भाशय विकार और मासिकधर्म विकृति—स्मृतिसागर ५३० । ब्राह्मी वटी ३१३ । लक्ष्मीविलास रस ३७८ । रजोदर्शन बन्दहोनेपर सारस्वतारिष्ट ६८५ ।

शुक्रक्षयज उन्माद—पूर्ण चन्दोदय रस २१७ । (च्यवनप्राशावलेहके साथ) । बंगभस्म १०० ।

भूतोन्माद—पुनः पुनः प्रकुपित होनेवाला जीर्ण—अभ्रकभस्म १३३ । शिलासिन्दूर २३० । सूतराज रस २७४ । स्मृतिसागर ५३० । पञ्चगव्यघृत ७४६ । कल्याण घृत ७५१ ।

फिरंग अनुबन्ध सह—अष्टमूर्ति रसायन २४३ । मल्लसिन्दूर २२५ ।

निद्रानाश पर—सर्पगन्धादि वटी ५८८ । विजयापुष्पाद्यवलेह ७३० । सूतशेखर+प्रवाल पिष्टी (ब्राह्मीके क्वाथके साथ) ।

बाह्योपचार—दशांग धूप ७९२।

(२६) उपदंश-फिरंग-गरमी (Syphilis) ।

नया रोग—पारद भस्म १२२ । व्याधिहरण २४५ । सत्यानाशीका तैल । अमीर रस ४७० । उपदंशकुठार वटी ४६८ ।

जीर्ण रोग—तुत्थभस्म १९२ । मल्लसिन्दूर २२५ । अष्टमूर्ति रसायन २४३। व्याधिहरण रस २४५ । हरताल भस्म १७७ । उपदंशकुठार वटी ४६८ । उपदंश सूर्य ४६५ । मल्लादि वटी ४७१ । कज्जली ४६ । त्रिपुरभैरव २४९ ।

(३१) कब्ज—(आनाहमें देखें)।

(३२) कर्कस्फोट (Cancer) विद्रधिमें देखें।

(३३) कर्णरोग—कानके रोग।

बाधिर्य, कर्णशूल, पूय आदि—कर्पूरधारा अर्क ७११। बिल्वादि तैल ७५६। वराटिकाभस्म १७१। दशमूल क्वाथ ६३७। कर्णशोथहर लेप ७८१।

कर्णार्श जनित बधिरता—क्षार तैल ७५७।

खानेके लिये—सारिवादिवटी ४८९। शृंगभस्म १८४। वङ्गभस्म १००।

कर्ण पाकमें दोष निकालना—क्षार तैल ७५७।

(३४) कामला–पीलिया (Jaundice)

सब प्रकारपर—ताप्यादि लोह ३६३। महामृगांक रस ३७६। लोह भस्म ९३। सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३। मंडूर भस्म १२९। सुवर्णभूपति २४२। धात्र्यादि-टाद्यरिष्ट ७०१। आरोग्यवर्द्धिनी ४४३।

जीर्ण कामला—मण्डूर भस्म १२९ और शिलाजीत ५८। लक्ष्मीविलास ३७८। नवासय चूर्ण ३७०। चन्दनादि चूर्ण ६२८। पुनर्नवामण्डूर ४५८। अमृतारिष्ट ६९०। मेहान्तक रस ५२७।

कुम्भ कामला—मण्डूर भस्म १२९।

यकृद्‌के मांसार्बुद जन्य—ताम्रभस्म ८७। वङ्गभस्म १००। ताप्यादि लोह ३६३।

(३५) कास-खाँसी (Bronchitis)

सब प्रकारका कास—चन्द्रामृत रस ३८३। अभ्रकभस्म १३३। अतिविषादि वटी ५५४। कफकर्तन रस ५२१। वासादि चूर्ण ६३४।

शुक्रक्षयजन्य—वंगभस्म १००।

वातिक—रौप्यभस्म ८२। नागभस्म ११५। लघुमालिनीवसंत ३२४। ताप्यादि लोह ३६३। सूतशेखर ४७७। कर्पूरादि वटी ५५३। शुष्ककासहर क्वाथ ६५८। दशमूलाद्य घृत ७८५। कासमर्दन वटी ५६६। लऊक सपिस्ताँ ७३५। एलादि वटी ५६०।

पैत्तिक—सुवर्ण भस्म ७६। महामृगांक ३७६। गोदन्ती भस्म १४८। प्रवालपिष्टी १६१। वासादि क्वाथ ६५०। महाद्राक्षासव ७०५। सितोपलादि चूर्ण ५९६। बृहत् सितोपलादि चूर्ण ५९९। लवंगादि चूर्ण ६१२। लऊक सपिस्तां ७३५। एलादि वटी ५६०।

कफ कास—अभ्रक भस्म १३३। लोहवान पुष्प ३९। अग्नि रस ३८५। सुवर्णवङ्ग २३२। मल्लभस्म १८२। बोलबद्ध रस ३५१। महावातराज ५१७। शृङ्ग भस्म १८४। रससिंदूर २२१। आनन्दभैरव ३३१। लोकनाथ ४५२। संजीवनी वटी ५१७। त्रैलोक्यचिंतामणि २८७। कफकुठार रस ३८३। मरि-चादिवटी ५५३। लवङ्गादि वटी ५५४। कनकासव ६८१। वासादि चूर्ण ६३४। शुभ्राभस्म १९६। समीर पन्नग २३६।

कफसंग्रह—कफकुठार ३८३। समीरपन्नग २३६। कनकासव ६८१। कास

(३६) कुष्ठ-कोढ (Leprosy & Skin discsaes)

शरीर शोधनार्थ—तुत्थभस्म १९२। नारायण चूर्ण ६०५। इच्छाभेदी रस ३३०। अश्वकंचुकी रस २७९।

व्युची—फिटकरी १९८। व्युचीहर मलहम ७८६। गन्धक रसायन ३९९। दशांगलेप ७७५।

(३७) कृमि (Worms)।

उदर कृमि और पुरीषज—कृमि कुठार रस ३६१। कृमिघ्न क्वाथ ६५३।

आमाशयस्थ, कफज और पुरीषज—कृमिमुद्गर रस ३६०। कृमिघ्न चूर्ण ६२६।

सूक्ष्म पुरीषज कृमिपर—नागभस्म १००। संजीवनी वटी ५४७। कृमिघ्न गुटिका ५५५। पीतलभस्म १९०। कास्यभस्म १९०। वर्त्तलोहभस्म १९१। खदिरारिष्ट ६८०। मुस्तादि क्वाथ ६६०।

कृमि-जन्य ज्वर—लघुमालिनी वसन्त ३२४। वंगभस्म १००।

(३८) गुल्म—गोला (Abdominal Tumour)।

सब प्रकारके गुल्मपर—कांकायन वटी ५६७। लवणभास्कर चूर्ण ६००। वज्रक्षार चूर्ण ६१०। कुमार्यासव ६७५। चविकासव ६९६।

वातज—कासीसभस्म १४४। शूलवज्रिणी ४२१। बृहद्योगराजगूगल ४१४। गुल्मकालानल रस ४२६। अग्निकुमार ३५२। क्रव्याद रस ३५४। हिंग्वाष्टक चूर्ण ६०१। पुनर्नवासव ६६१।

पित्तज—नागभस्म ११५। गुल्मकुठार ४२४। प्रवालपंचामृत ४२८। कुमार्यासव ६७५। रोहितारिष्ट ६९८।

कफज—ताम्रभस्म ८७। लोहभस्म ९३। कुमार्यासव ६७५। लघुशंख द्राव ७०७। शंखद्राव ७०७। जम्भीरी द्राव ७०९। पुनर्नवासव ६९८।

रक्त गुल्म—नागभस्म ११५। गुल्मकुठार ४२४। कुमार्यासव ६७५। स्नुहीक्षीर गुटिका ५८२। गोक्षुरादि गुग्गुलु ५७१।

सूतिकारोगसे उत्पन्न गुल्म—प्रतापलंकेश्वर रस ४९५।

कोष्ठदोष शोधनार्थ—नाराचघृत ७४५। नारायण चूर्ण ६०५।

(३९) ग्रहणी—संग्रहणी (Chronic Diarrhoea)

सब प्रकारपर हितकर—जीरकादि मोदक ७१८। जातिफलादि चूर्ण ६११। एलादिमन्थ ७३७।

वात-प्रधान नया—(निराम है, तो अगस्ति सूतराज ३३४। कनकसुन्दर रस ३३६) हेमगर्भ पोटली ३७७। दशमूलारिष्ट ६७१। हिंग्वष्टक चूर्ण ६०१। हिंग्वादि चूर्ण ६०९। पञ्चामृत पर्पटी २६०।

पित्त प्रधान—मण्डूरमाक्षिक भस्म १३३। प्रवाल पञ्चामृत ४२८। सूतशेखर ४७७। महावातराज रस ५१७। लोध्रासव ६७४।

पेचिश पाण्डु, शोथसह—दुग्धवटी ३४०। महावातराज रस ५१७। कुटजारिष्ट ६८९।

परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever)—हरताळभस्म १३३। हरताल गोदन्ती भस्म १४८। मल्लसिंदूर २२५। अष्टमूर्ति रसायन २४३। लक्ष्मीनारायण रस ३०४। चन्दनादिलोह ३१६। हरताल पुष्प ५०३। ज्वरमुरारि अर्क ७१२।

पूयजन्य ज्वर—ताप्यादि लोह ३६३। शिलाजीत ५७।

शीतला, छोटी माता और अन्य मसूरिकाज्वर—त्रिभुवनकीर्ति रस २८४। प्रवालपिष्टी १६१।

कफज सन्निपात— द्राक्षादि कषाय ६५९। मल्लसिंदूर २२५। त्रिभुवन कीर्ति २८४।

वात कफ प्रधान सन्निपात (Influenza) सूतराज २७४। महावात विध्वसन ४०८। त्रिभुवनकीर्ति रस २८८। अर्कादि कषाय ६४२। द्राक्षादाद्य ६५९। पञ्चवक्त्र रस २९५। मृत्युञ्जय रस २९६। मारकूट ३००। मल्ल सिंदूर द्वितीय विधि २२५। तगरादि कषाय ६६०।

हृदय-रक्षणार्थ लक्ष्मीविलास रस ३०८। ब्राह्मीवटी ३१३। पूर्णचन्द्रोदय रस २१७। हेमगर्भपोटली रस २९३।

आन्त्रिक सन्निपात—मधुरा (२१ दिनवा मुद्दती ताप Typhoid) लक्ष्मीनारायण रस ३०८। मन्मथाभ्रेरवरस २७४। सूतशेखर ४७७। (पित्ताधिक्यपर) सजीवनी वटी ५४७। पुन प्रकुपित—महासुदर्शन ५९१।

मधुराका विष बाहर निकालना—मधुरान्तकवटी ५५१। मधुरज्वरान्तक कषाय ६४२। प्रवालपिष्टी १६१। शुभ्राभस्म १९६।

शुष्क कास—प्रवालपिष्टी १६१। कर्पूरादिवटी ५५३। कासमर्दनवटी ५६६। एलादि वटी ५६०। सूतशेखर ४७७।

दुष्ट-स्वेद-जन्य वात प्रकोप—ताप्यादिलोह ३६३।

कफ-प्रकोप हो, तो—हरतालगोदन्तीभस्म १९८।

वात-प्रधान हो, तो—अष्टमूर्तिरसायन २८३।

हृदय रक्षणार्थ—ब्राह्मी वटी ३१३। अभ्रकभस्म १३३। प्रवाल और रससिन्दूर २२१। लक्ष्मीविलास ३०८।

निद्रानाश—सूतशेखर ४७७।

अतिसार और रक्तस्राव—रौप्यभस्म ८७।

मधुरामें प्रलाप—चन्द्रकला रस ३७१।

चित्तविभ्रम और भयंकर प्रलाप—महावात विध्वसन ४०८। प्रवालपिष्टी १६१। तगरादि कषाय ६६०।

कोष्ठ-शूल, सन्धिवात, मन्द प्रलाप—महायोगराज गूगल ४१४। सूतशेखर ४७७।

श्वसनक सन्निपात—फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia)—अभ्रकभस्म १३३। मल्ल भस्म १८२। हरतालगोदन्ती भस्म १९४। शृङ्गभस्म और रससिन्दूर। कफ बाहर निकालनेके लिये—समीरपन्नग २३६। कफशान्त्यर्थ—पंचसूत रस २४६। कफशोषणार्थ—मल्ल सिन्दूर २२५। त्रैलोक्यचिन्तामणि २८७। वातकेसरी रस ५२२। महावातविध्वसन ४०८। गोदन्तीजो २७०। सूतराज २७८।

महावातराज ५१७ । मल्लपुष्प ३१४ । कालारि रस ५२० । अचिन्त्यशक्ति रस ५२४ । शुभ्राभस्म १९६ । त्रिभुवनकीर्त्ति रस+अभ्रकभस्म+शृङ्ग भस्म । पञ्चवक्त्र रस २९४ । कुटजारिष्ट ६८९ ।

फुफ्फुसदाह शमनार्थ—लक्ष्मीविलास रस अभ्रकयुक्त ३०८ ।
लगानेके लिये—पार्श्वशूलनाशक लेप ७८० ।
हृदय उत्तेजनार्थ—संचेतनी वटी ३०७ । रस सिन्दूर २२१ । हेमगर्भपोटली रस २९३ । लक्ष्मीविलास ३०८ ३७८ ।

विविध सन्निपात—गोदन्ती १४८ । हरतालगोदन्ती १९४ । अमरसुन्दरी ४०७ । संजीवनी ५४७ । महाज्वरांकुश २७७ । सूतराज २७४ ।

सन्निपातमें कफप्रकोप—पूर्णचन्द्रोदय २१७ । मल्लसिन्दूर २७५ ।
सन्निपातमें वाताक्षेप—पञ्चसूत २४६ ।
वात कफप्रकोप—समीरपन्नग २३६ । पञ्चवक्त्र २९५ । अष्टादशांग क्वाथ ६३८ । अर्कादि क्वाथ ६४२ । कालारि रस ५२० । वातेभकेसरी ५२२ ।

वातपित्त-प्रकोप—सुवर्ण भूपति रस २४१ । सूतशेखर ४७७ ।
पित्तप्रकोप—चन्द्रकला ३७१ । प्रवाल पिष्टी १६१ ।

शीताङ्ग सन्निपात—महामृत्युञ्जय २९८ । हरतालभस्म १७७ । मल्लभस्म १८२ । शीतभंजी २७० । सूतराज रस २७४ । मल्लसिन्दूर २२५ । अचिन्त्यशक्ति रस ५२४ । कालकूट रस ३०० ।

शीतल स्वेद आना—लक्ष्मीविलास ३०८ । हेमगर्भ पोटली २९३ ।
संधिक सन्निपात—महावातविध्वसन ४०८ । कालकूट ३०० ।
ग्रंथिक सन्निपात (प्लेग)—अश्वकंचुकी रस २७९ । महामृत्युञ्जय २९८ । कालकूट ३०० । महावातविध्वंसन ४०८ ।

बाह्योपचार—प्रतिसारणीयक्षार ७७८ ।
बेहोशी शमनार्थ—संचेतनी वटी ३०७ । हरतालपुष्प ५०७ । सूचिकाभरण २७५ । हेमगर्भपोटली रस २९३ । श्वासकुठार रस ३८६ ।

निद्रानाश और प्रलापपर—कस्तूरी भैरव २७४ । कस्तूर्यादि वटी ५५१ । निद्रोदय रस ४०७ । सर्पगन्धादि गुटिका ५८८ ।

हृदय-रक्षणार्थ—त्रैलोक्यचिन्तामणि २८७ । पूर्णचन्द्रोदय २१७ । लक्ष्मीविलास ३०८ । अष्टादशांगक्वाथ ६३८ । संचेतनी वटी ३०७ ।

कर्णशोथ, स्वरभङ्ग-सह—कटफलादिक्वाथ ६४४ । द्वात्रिंशदाख्यक्वाथ ६५८ ।

कफवृद्धि, हिक्का और वमन—अष्टांगावलेह ७२४ । कटफलादिक्वाथ ६४४ । विजयापुष्पाद्यवलेह ७३० । हिक्कान्तक-रस ३९० । सूतशेखर ४७७ । अष्टादशांग क्वाथ ६३८ ।

बाह्योपचार—दशांगधूप ७९२ । (शीतस्वेदपर—विषादि उद्धूलन ७९५ । भूनिम्बादि उद्धूलन ७९५) । प्रलापहर लेप ७८० । अञ्जन रस ७७१ । मूर्च्छान्तक नस्य ७९४ ।

जीर्ण सन्निपात—गदमुरारि २९८ ।

(४४) दन्तरोग—दांतके रोग ।

मसूढ़ेकी निर्बलता—दन्तप्रभाकर मञ्जन ६१५ ।

पारदविषज मसूढ़ेकी निर्बलता—शुभ्राभस्म १९६ ।

दन्तकृमि—बृहत्यादि क्वाथ ६५५ । कर्पूरधारा अर्क ७११ । कर्पूरासव ७०३ । कृमिघ्नधूम्र ७९३ । दन्तदोषहर मंजन ६१६ । फिटकरी १९८ ।

दन्तवेष्ट—(Pyorrhoea)—गन्धक रसायन ३९९ । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ ।

(४५) दद्रु—दाद (Ringworm)

दद्रुहर लेप ७८१ । दद्रुदमन मलहम ७८६ । गन्धक रसायन ३९९ । कर्पूरधारा अर्क ७११ । नारसिंह चूर्ण ६१९ । खदिरारिष्ट ६८० । समीरपन्नग २३६ । भृङ्गराजासव ७०० । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ ।

(४६) दाह

शिलाजित सत्व ४३ । गन्धक रसायन ३९९ । राजावर्त भस्म १५५ । सितोपलादि चूर्ण ५९६ । बृहत् सितोपलादि चूर्ण ५९७ । चन्दनादि चूर्ण ६०३ । सूतशेखर ४७७ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ ।

ज्वरमें दाह—जसदभस्म ११२ । प्रवालपिष्टी १६१ । सूतशेखर ४७७ । अमृताष्टक क्वाथ ६४० । गुडूच्यादि क्वाथ ६४१ ।

शराबीको दाह—सूतशेखर ४७७ । राजावर्तरस ३९५ । मुक्तापिष्टी १५६ । राजावर्त पिष्टी १५५ । दूर्वाद्य घृत ७५० ।

सर्वाङ्गमें दाह कण्डूसह—चन्द्रकलारस ३७१ । उसीरासव ६७८ ।

सेन्द्रिय विषजन्य दाह और उदरवात—कासीसभस्म १४४ ।

उष्णकालमें दाह—मुक्तापिष्टी १५६ । प्रवालपिष्टी १६१ । कामदूधा रस ३९५ । रसादि चूर्ण ३९४ । पर्पटादि क्वाथ ६४९ । चन्दनका शर्बत ७३८ । गुलाबका शर्बत ७३९ । आँवलेका मुरब्बा ७३६ । चन्दनादि अर्क ७०९ । गुलकन्द ७२५ ।

(४७) धातुक्षीणता—निर्बलता—नपुंसकता

शुक्राशयकी निर्बलता—प्रवालपिष्टी १६१ और वंगभस्म १०० । सुवर्ण वंग २३२ । वङ्गभस्म १०० । त्रिवंगभस्म ११० । नागभस्म ११५ । मृगनाभ्यादि वटी ५१२ । शुक्रमातृका ५०९ । वीर्यशोधनवटी ५१३ । वृद्धदण्ड चूर्ण ६१८ । शतावर्यादि चूर्ण ६१८ । वीर्यशोधक चूर्ण ६१८ । विजयापुष्पाद्यवलेह ७३० । कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म १९५ ।

सप्तधातुकी क्षीणता और शारीरिक निर्बलता—सुवर्णमालिनी वसन्त ३१६ । शिलाजीत ५७ । नागभस्म ११५ । लक्ष्मी विलास ३०८, ३७८ । रससिंदूर २२१ । अभ्रकभस्म १३३ । नारसिंह चूर्ण ६१९ । कासीस और लोह भस्म ९३ । च्यवनप्राशावलेह ७१८ । बादामपाक ७२८ । ब्राह्मीवटी ३१३ । संसमनी वटी ३२९ । मधुमालिनी ३२२ । लघुमालिनी वसन्त ३२४ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । कामधेनु रस ५३६ । भृङ्गराजासव ७०० । अश्वगन्धारिष्ट ६८२ । त्रिफलारिष्ट ६८३ ।

अङ्कोपकी निर्बलतामें नपुंसकता—सुवर्णभस्म ७६ । नागभस्म ११५ और शिलाजीत ५७ । रौप्यभस्म ८२ । वंगभस्म १०० । अभ्रकभस्म १३३ । लोह भस्म ९३ । वज्रभस्म १४९ । राजावर्तभस्म १५५ । लक्ष्मीविलास ३७८ । पूर्णचन्द्रोदय २१७ । हरगौरी २२८ । पुष्पधन्वा ५१० । वसन्तकुसुमाकर ४३२ । बृहद्वंगेश्वर ४३८ । अश्वगन्धारिष्ट ६८२ । मल्लतैल ७५२ । अपूर्वतिला ७५५ । मल्लसर्पि ७५६ । लिङ्गतैल ७५६ । कौंचपाक ७१७ । सालवपाक ७२१ । गणिकारवटी ५६५ । कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म १९५ ।

सुजाकजन्य नपुंसकता—सुवर्णवंग २३२ ।

मधुमेहादिमें क्षय और निर्बलता—नागभस्म ११५ । ताप्यादिलोह ३६३ । शिलाजीत ५७ । महावातराज रस ५१७ । पूर्णचन्द्रोदय २१७ । प्रमेहगजकेसरी ५२६ । माणिक्यपिष्टी १५२ ।

रक्तस्रावमें निर्बलता—लोहभस्म ९३ ।

मस्तिष्ककी निर्बलता—पित्तप्रधान—मुक्तापिष्टी १५६ । कामदुधा ३९५ । वसन्तकुसुमाकर ४३२ । खमीरे सदल ७३४ । अनरीकल मुलयन ७३५ । सुवर्ण-माक्षिकभस्म १२३ । प्रवालपिष्टी १६१ ।

मस्तिष्ककी निर्बलता—वातप्रधान—रौप्यभस्म ८२ । ज्वर आदि रोगके पश्चात्—सुवर्णमालिनी वसन्त ३१६ । रक्तकी कमीसे हो तो—मण्डूरभस्म १२९ । अथवा लोहभस्म ९३ ।

शारीरिक कृशता, धातुक्षय—अभ्रकभस्म १३३ । भृङ्गराजासव ७०० । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ । लक्ष्मीविलास रस स्वर्णयुक्त ३७८ । वसंतकुसुमाकर रस ४३२ । सुवर्णमालिनी ३१६ । च्यवनप्राशावलेह ७१८ ।

वातवाहिनीकी विकृति और मानसिक निर्बलता—अभ्रकभस्म १३३ । बादामपाक ७२८ । दिवालमुश्क ७३१ । खमीरे गावजबाँ अम्बरी ७३४ । च्यवनप्राशा-वलेह ७१८ ।

स्तम्भनार्थ—कामिनीविद्रावण ५०९ । वीर्यस्तम्भन वटी ५१७ । शुक्रस्तम्भन-गुटिका ५६६ । कस्तूर्यादि स्तम्भन ५८५ । विजयापुष्पाद्यवलेह ७३० ।

(४८) नासारोग—नाकके रोग ।

रक्त गिरना—सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । चन्द्रकला रस ३७१ । कामदुधा रस ३९५ । सूतशेखर ४७७ । मुक्ताभस्म १५६ । प्रवालपिष्टी १६१ । लघुसूत-शेखर ४८७ ।

नासाव्रण—गन्धकरसायन ३९९ ।

पीनस—व्याघ्री तैल ७५३ । नासाकृमिहर घृत ७५२ ।

(४९) निद्रानाश—नींद न आना ।

राजावर्तभस्म १५५ । मुक्तापिष्टी १५६ । निद्रोदय रस ४०७ । सूतशेखर ४७७ । कस्तूर्यादि वटी ५५१ । द्राक्षासव ६८६ । महाद्राक्षासव ७०५ । विजयापुष्पा-द्यवलेह ७३० ।

मानसिक निर्बलतासे—वसन्तकुसुमाकर ४३२ । द्राक्षारिष्ट ६८६ ।

(५१) पलित-बाल सफ़ेद हो जाना।

चांदीका निजाब ७१४। चन्दनादि-तैल ७५३। नारसिंह-चूर्ण ६११। अश्वगन्धारिष्ट ६८२। पूर्ण चन्द्रोदय रस ३१७। वसन्तकुसुमाकर ४३२। भृङ्गराजासव ७००।

(५२) प्रतिश्याय-जुकाम-नजला (Coryza)

नया-अग्निकुमार रस ३५२। देवजली ४६ (नागरबेलके पानमें)। अश्विनीकुमार रस ८२६। मरिच्यादि वटी ५५५। नागगुटिका ५५६। आनन्द भैरव रस ३३१। प्रतिश्यायहर कषाय ६५८। मधुकादि हिम ६५९। लक्ष्मीविलास अभ्रकरस ३०८।

अजीर्ण-जन्य-धनञ्जय वटी ५५७। आरोग्यवर्द्धिनी ४४३।

जीर्ण-लक्ष्मीविलास ३०८। समीरगज केसरी ४१७। त्रिपुरभैरवादि वटी ५६८।

वानस्पतिक प्रतिश्याय-रसोनादि और अभ्रक भस्म १३३।

मूर्धनेक ... -नजलोनाशि नस्य ७९४। कलिंगादि नस्य ७९४।

(५३) प्रभापात-लू लगना।

मधुकादि हिम ६५९। प्रवालपिष्टी १५१। मुक्तापिष्टी १५६। मधुकादि शीतकषाय ६५८। चन्दनका शर्बत ७३८।

(५४) प्रमेह।

नव-प्रकारके प्रमेह-निफला चूर्ण ६०६। न्यग्रोधादि चूर्ण ६१८। चन्द्रप्रभा वटी ५६०। लोध्रासव ६७४। वसन्तकुसुमाकर ४३२। बृहद्वङ्गेश्वर ४३८।

मा ...प्रधान-रौप्यभस्म ८२। शिलाजीत ५३। शाप्यादिलोह ३६२। बृहद् योगराज गूगल ८१४। अश्वगन्धारिष्ट ६८२।

वृद्धावस्थामें हीनता-वङ्गभस्म १०० । काम्यभस्म १९१। हेमनाथ ४३०। प्रमेहान्तक वटी न० २, ४३९।

...धातुक्षय-जन्य-वङ्गभस्म १००। सुवर्णवङ्ग २२२। बृहद्वङ्गेश्वर ४३८। सुवर्णभूपति २८१। लक्ष्मीविलास रस ३७८। शुक्रमातृका वटी ५०९। पुष्पधन्वा रस ४१०। ...

शुक्रमेह-चन्दनासव ६९४। प्रमेहान्तक वटी न० २, ४३९। शिलाजीत ५७।

लालामेह-प्रमेहगज-केसरी ५२६।

...प्रमेह-पिडिका-...। जातिफलादि वटी ४८०। वङ्गभस्म १००।

वात-पित्त-प्रकोपसह जीर्णप्रमेह-योगेन्द्र रस ५३९।

आमप्रकोपसह-महायोगराज गूगल ४९४।

अपचनजन्य-आरोग्यवर्द्धिनी ४४३।

पित्तप्रधान-गन्धक ५४४। सुवर्णभस्म ६६। रौप्यभस्म ८२। लोहभस्म ९३। अभ्रकभस्म १३३। शाप्यादिलोह ३६२। सुवर्णमाक्षिक १६६। राजावर्त भस्म १५५। प्रमेहान्तक वटी ४३९। मेहान्तक रसायन ५... पञ्चामृत रस ...

५३५ । अश्विनीकुमार रस ४३६ । कामधेनु रस ५३६ । चन्द्रकला रस ३७१ । प्रवाल पञ्चामृत रस ४२८ । उसीरासव ६९८ ।

कफप्रधान—शिलाजीत ५७ । लोहभस्म ९३ । नवायस चूर्ण ३७९ । आनन्द भैरव रस ३३१ । बोलबद्धरस ३५१ । त्रैलोक्यचिन्तामणि २८७ । प्रमेहान्तक वटी ४३९ । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ । प्राणदा गुटी ६९६ । चन्द्रप्रभा वटी ५६० ।

मांस खानेवालेको—ताम्र भस्म ८७ । पीतलभस्म १९० । विजय पर्पटी २५८ ।

मधुमेह—शिलाजीत ५७ । नागभस्म ११५ । जसदभस्म ११२ । सुवर्ण वङ्ग २३२ । अभ्रकभस्म १३३ । हेमनाथ रस ४३० । वसन्त कुसुमाकर ४३२ । जातिफलादि वटी ४४० । न्यग्रोधादि चूर्ण ६१८ । महावातराज रस ५१७ । मेहमुद्गर जकेसरी ५२६ । चविकासव ६९६ ।

पूयमेह (सुजाक Gonorrhoea), (नया)—संगजराहत भस्म १८९ । शुभ्राभस्म १९६ । मूत्रकृच्छ्रान्तक ४३९ । प्रमेहान्तक वटी ४३९ । उष्णवातघ्न चूर्ण ६१६ । अरविन्दासव ७०२ ।

पूयमेह (जीर्ण)—कांस्यभस्म ४८२ । नागभस्म ११५ । सुवर्णवंग २३२ । गन्धक रसायन ३९९ । हरिशंकर रस ४३७ । धात्री भल्लातक वटी ५७७ । देवदार्वाद्यरिष्ट ७०४ । रक्तशोधकारिष्ट ७०४ । सारिवासव ६९९ । चन्दनासव ६९४ । अमृतारिष्ट ६८४ । अरविन्दासव ७०२ ।

मूत्रविरेचन—मूत्रशोधक क्वाथ ६५४ । मूत्रविरेचन चूर्ण ६१७ ।

पूय प्रमेह-जन्य संधिवात, शोथ, पूयाभिष्यंद आदि—सुवर्ण वंग २३२ । धात्रीभल्लातक वटी ५७७ ।

(५५) प्रमेह-पिटिका (Carbuncle)

जातिफलादि ४४० । हेमनाथ ४३० । वसन्तकुसुमाकर ४३२ । अदीठका मरहम ७८६ । कैशोर गुगल ५५१ । महावातराज रस ५१७ । मेहान्तक रस ५२७ । सारिवासव ६९९ ।

(५६) प्रवाहिका—पेचिस (Dysentry)

आम-सह—प्राणदा पर्पटी २६३ । जातिफलादि वटी ५६७ । कुटजादि वटी ५५९ । कुटजारिष्ट ६८९ ।

रक्त और आमसह—जातिफलादि वटी ५६७ । कपूररस ३३३ । कुटजादि वटी ५५९ । शंखोदर रस ३४४ ।

रक्त पूयसह—जातिफलादि वटी ५६७ । प्रवाहिकारिपु चूर्ण ६१० ।

जीर्ण ज्वर, आम और रक्तसह—पंचामृत पर्पटी २६० ।

निराम प्रवाहिका—अगस्तिसूतराज ३३४ । जातिफलादि वटी ३४५ । कुटजावलेह ७२४ ।

(५७) पाण्डु (Anaemia)

वातज—मानसिक चिन्ताजन्य—रौप्य भस्म ८२ । अभ्रकभस्म १३३ । नागभस्म ११५ । अभ्रपर्पटी २६६ । सुवर्णभूपति २४१ । कामधेनु रस ५३६ ।

पित्तज पाण्डु और हलीमक—लोहभस्म ९२ । तीक्ष्णभस्म १५३ । जसदभस्म १५३ । मण्डूरभस्म १२९ । त्रिफलारिष्ट ६८३ । एलादिमन्थ ७३७ ।

(५८) पामा-कच्छू-खुजली (Itch) ।

(५९) पित्तवृद्धि ।

(६०) प्लीहावृद्धि (उदररोगमें देखें)।

(६१) बद्धकोष्ठ (आनाहमें देखें)।

(६२) बहुमूत्र--मूत्रातिसार (Polyuria)

थोड़-थोड़ा पेशाब अनेक बार होना--जसदभस्म ११२। सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३। अभ्रकभस्म १३३। हेमनाथ रस ४३०। पञ्चामृत रस ५३५। बृहद् वंगेश्वर रस ४३८। अश्विनीकुमार रस ४३६। बृहद्धातृघृत ७४८। माजूनफलाशफ ७३२। शिलाजीत ५७। चन्द्रप्रभावटी ५६०।

वृद्धावस्थाकी निर्बलतापर--माणिक्य रस २३१।

मूत्रोत्पत्ति अधिक होती हो तो--वंगभस्म १००। नागभस्म ११५। सुवर्णवंग २३२। जातिफलादि वटी (मधुमेह) ४४०।

(६३) बालरोग--बालकोंके रोग।

ज्वर--ताप--गोदन्तीभस्म १४८। ज्वरकेशरी २७५। रत्नगिरी रस २७८। चन्द्रशेखर ५०२। प्रवालपिष्टी १६१। बालसंजीवनीवन ५००। बालरक्षक सोगठी ५८३। शृंग्यादि चूर्ण ६३०।

जीर्ण-ज्वर--सुवर्णमालिनी ३१६। लघुमालिनी वसत ३२४। बालार्कगुटिका ५०२। बालरक्षक तैल ७६३।

दांत आनेपर अतिसार--कनकसुन्दर ३३६। दन्तोद्भेद गदान्तक ५०३। प्रवालपिष्टी १६१।

अतिसार और प्रवाहिका--पञ्चसूत २४६। सर्वाङ्गसुन्दर ५०४। बालार्कगुटिका ५०२। बालसंजीवन रस ५००। माणिक्यरसादि वटी ५०७। बालबन्धु अर्क ७०६। केशरादि चूर्ण ६३१। बालअतिसारहर चूर्ण ६३१। बालमित्र चूर्ण (नं० २) ६३२।

रक्तातिसार--बालमित्र चूर्ण (नं० १) ६३२। बालअतिसारहर चूर्ण ६३१।

ग्रहणी--सर्वाङ्गसुन्दर रस ५०४। कनकसुन्दर ३३६। बालमित्र चूर्ण (नं० ३) ६३३। ग्रहणीकपाट रस (द्वितीय विधि) ३३८।

मलावरोध और अफारा--बालरक्षक सोगठी ५८३।

कास और श्वास--माणिक्यरसादि वटी ५०७। कुमार कल्याण रस ४९७। बालार्क गुटिका ५०२। शृंग्यादि चूर्ण ६३०। कुटजारिष्ट ६८९। कुमार्यासव ६७५।

कफ-प्रकोप--द्राक्षासव ६८६।

काली खांसी--(Whooping cough)। प्रवालपिष्टी १६१। शुभ्राभस्म १९६। शृंगभस्म १८४। हरताल गोदन्तीभस्म १९४। कामदूधारस ३९५। बालघोरकासघ्न चूर्ण ६३१। द्राक्षासव ६८६!

यकृत्प्लीहा-वृद्धि--अश्वकंचुकी २७९। लघुमालिनीवसन्त ३२४। मण्डूर भस्म १२९। बालमित्र चूर्ण (नं० ३) ६३३।

वमन-कै--बाल संजीवन ५००। बालार्क गुटिका ५०२। चन्द्रशेखर ५०२।

बालचन्दु अर्क ७०६ ।

उदरशूल—माणिक्यरसादि वटी ५०७ । चन्द्रशेखर ५०२ ।

उपदंशज त्वग्रोग—अष्टमूर्ति रसायन २४३ । व्याधिहरण रस २६५ । मल्लसिंदूर २२५ ।

रोमान्तिक—(MEASLES)—त्रिभुवनकीर्ति रस २८४ ।

बारबार शिशुओंकी १-२ वर्षमें मृत्यु हो जाना—गर्भपाल रस ४९४ । वनफसा स्रवत ७३८ ।

शारीरिक निर्बलता—प्रवालपिष्टी १६१ और मण्डूर भस्म १२९ । कुमार-कल्याण ४९७ । बालरक्षक गुटिका ५८३ । बालार्कगुटिका ५०२ । बालामृत ७३७ । अरविंदासव ७०२ ।

उदर कृमि—अग्नितुण्डी वटी ३५७ । कृमिकुठार ३६१ । ताप्यादि लोह ३६३ ।

अपचन, मन्दाग्नि, अरुचि—बाल सजीवन ५०० । बालार्कगुटिका ५०२ । बालचन्दु अर्क ७०६ । बालामृत ७३७ ।

तालुकण्टक—सर्वाङ्ग सुन्दर ५०४ । बालमित्र (नं० ५) ६३३ ।

अस्थिमार्दव—(Rickets) । प्रवालपिष्टी १६१ । गिलोयसत्व और मण्डूर भस्म १२९ । शृङ्गभस्म और प्रवालपिष्टी १६१ । मधुमालिनी वसन्त ३२२ । सर्वाङ्गसुन्दर रस ५०४ । अरविंदासव ७०२ ।

क्षीरालसक-बालशोष और पारिगर्भिक—शृङ्गभस्म १८८ और प्रवालपिष्टी १६१ । लघुवसन्त ३२४ । कुमार कल्याण ४९७ । प्रवालपिष्टी १६१ और मण्डूरभस्म १२९ । प्रवालपिष्टी १६१ । मधुमालिनी वसन्त ३२२ । सर्वांगसुन्दर रस ५०४ । गन्धक रसायन ३९९ । बालरक्षक तैल ७६३ ।

डब्बा-पसुली—(Broncho Pneumonia)मल्लसिन्दूर २२५ । चन्द्र-शेखर रस ५०२ । माणिक्यरसादि वटी ५०७ । डब्बानाशक गुटिका ५८३ । बालजीवन वटी ५८४ । शृङ्ग्यादि चूर्ण ६३० । अश्वकञ्चुकी रस २७९ ।

धनुर्वात—(Infantile Convulsions)कालकूट ३०० । लक्ष्मीनारायण रस ३०४ । चन्द्रशेखर ५०२ । कृमिकुठार रस ३६१ ।

पाण्डु—मण्डूरभस्म १२९ । लघुवसन्त ३२४ । ताप्यादि लोह ३६३ । मृदुविरेचन रस ५०४ ।

बुद्धिमन्दता—अभ्रकभस्म १३३ । ब्राह्मीघृत ७४९ । सारस्वतारिष्ट ६८५ । प्रवालपिष्टी १६१ । कुमार कल्याण ४९७ ।

उपदंश अनुबन्धसे निर्बलता—अभ्रकभस्म १३३ । और गन्धकरसायन ३९९ । अभ्रक भस्म १३३ और प्रवाल पञ्चामृत ४२८ ।

रुक-रुककर बोलना—सारस्वतारिष्ट ६८५ । ब्राह्मीघृत ७४९ ।

बालग्रह—पञ्चगव्यघृत २४६ । कुमारकल्याण ४९७ । स्मृतिसागर ५३० । अष्टमङ्गलघृत ७४८ । ब्राह्मीघृत ७४९ । कल्याणघृत ७५१ ।

जीर्ण हो तो—ताप्यादिलोह ३६३ । सारस्वतारिष्ट ६८५ ।

रसस्रावमय ग्रन्थियाँ--जसदभस्म ११२ ।
पूयवृक्क--कालकूट रस ३०० ।

(६४) बुद्धिमान्द्य और स्मृतिनाश ।

अभ्रकभस्म १३३ । बंगभसम १०० । सुवर्णभस्म ७६ । सारिवासव ६९९ । सारस्वतारिष्ट ६८५ ; च्यवनप्राशावलेह ७१८ । पुष्पधन्वा रस ५१० ।

अधिक मानसिक श्रमजन्य—ब्राह्मीघृत ७४९ । मुक्तापिष्टी १५६ । प्रवालपिष्टी १६१ । अभ्रकभस्म १३३ ।

(६५) भगंदर (Anal Fistula) ।

बृहद् योगराजगूगल ४१४ । नरसिह चूर्ण ६१९ । सप्तविंशतिकोगुग्गुलु ५७४ । योगेन्द्र रस ५३९ । दशमूलारिष्ट ६७१ । त्रिफलारिष्ट ६८३ । अभ्रकभस्म १३३ । जसदभस्म ११२ । लक्ष्मीविलास रस अभ्रक ३०८ ।

बाह्योपचारार्थ—निम्बतैल ७५७ । करवीरतैल ७६२ । कोशातक्यादितैल ७६२ । भगन्दरहर मलहम ७८७ ।

(६६) भस्मक ।

भस्मनाशक चूर्ण ५९६ । सुवर्णमाक्षिक १२३ । वराटिकाभस्म १७१ । और शंखभस्म १७३ (गिलोयसत्वके साथ) ।

(६७) भ्रम-चक्कर (Vertigo) ।

प्रमेहगजकेसरी ५२६ । लक्ष्मीविलास ३०८, ३७८ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । अभ्रकभस्म १३३ और लोहभस्म ९३ । सूतशेखर ४७७ । मुक्तापिष्टी १५६ । च्यवनप्राशावलेह ७१८ सारस्वतारिष्ट ६८५ । वसन्तकुसुमाकर ४३३ ।

(६८) मदात्यय-शराब जन्यविकार (Alcoholism)

सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । कज्जली ४५ । राजावर्त्तभस्म १५५ । राजावर्त्तरस ३९५ । रसादिचूर्ण ३९४ । मुक्तापिष्टी १५६ । कुष्माण्डावलेह ७२५ ।

(६९) मसूरिका (शीतला,) रोमान्तिका ।

प्रवालपिष्टी १६१ । त्रिभुवनकीर्ति २८४ । लक्ष्मीनारायण+गोरोचन+प्रवाल पिष्टी १६१ । खदिराष्टक ६४५ । दुरालभादि क्वाथ ६५६ । पटोलादि क्वाथ ६५६ । दशांग लेप ७७५ । निशादि लेप ७८२ ।

नेत्रपर बाँधनेके लिये—मधूकादि लेप ७७६ ।

(७०) मुखरोग ।

कण्ठरोग—(पृथक लिखे है ।)
मुखपाक— मुहमें छाले—खदिरादि वटी ५५४ । जातिपत्रादि क्वाथ ६४५ ।
मुह चिकना रहना—लक्ष्मीविलास रस ३०८ । स्वादिष्टपाचन वटी ५८७ । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ ।

(७१) मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात ।

शिलाजीत ५७ । मूत्रकृच्छ्रान्तक ४३१ । सरिवासव ६९९ । उशीरासव ६७८ । चन्दनादि अर्क ७०५ । जवाखार ३८ । देवदार्वाद्यरिष्ट ७०४ । चन्द्रप्रभा वटी ५६० । लोहभस्म ९३ । प्रमेह गजकेसरी ५२६ । प्रवालपिष्टी १६१ ।

न्यग्रोधादि चूर्ण ६१८।

मूत्रावरोध—समयहृद भस्म १९०। शीतल पर्पटी २६५। त्रिकण्टकादि क्वाथ ६४५। वीरतर्वादि ६६०। गोक्षुरावलेह ७२२। महायोगराज गूगल ४१४। गोक्षुरादि गूगल ५७१।

फिरंगज वातवस्ति—वात-कुण्डली—अष्टमूर्ति रसायन २४३।

सुजाकजन्य मूत्रवाहिनी शोथ—चन्दनासव ६९४। प्रमेहान्तक वटी ४३९। सारिवासव ६९९।

मूत्राशयकी निर्बलता—अभ्रक भस्म १३३। कास्यभस्म १९१। बृहद वङ्गेश्वर ४३८। शिलाजीत ५७।

मूत्रमें दाह और रक्तजाना—कामदूधा ३९५। मुक्ता पिष्टी १५६। प्रवालपिष्टी १६१। चन्द्रकला ३७१। चन्दनादि अर्क ७०५। उशीरासव ६७८। सुवर्णमाक्षिकभस्म १२३।

(७२) मूत्रवाहिनीमें व्रण।

चन्द्रप्रभा वटी ५६०। उष्णवातघ्न चूर्ण ६१६। प्रमेहान्तक वटी ४३९। मूत्रकृच्छ्रान्तक रस ४३१।

(७३) मूर्च्छा और सन्यास-(Apoplexy)।

वात प्रधान—कस्तूरीभैरवरस २७४।

पित्तज—कामदूधारस ३९५। मुक्तापिष्टी १५६।

रक्तदबाववृद्धिसे मूर्च्छा—अश्वकचुकी २७९। आरोग्यवर्द्धिनी ४४३। चन्द्रप्रभावटी ५६०। ताप्यादिलोह ३६३।

कफोधिक्यसे मूर्च्छा—पञ्चसूत रस २४६।

सुंघानेके लिये—श्वासकुठार रस ३८६।

हिस्टीरिया या उन्मादजन्य मूर्च्छा—अश्वगन्धारिष्ट ६८२।

जीर्णरक्तज-मूर्च्छा—ताप्यादिलोह ३६३। चन्द्रकला ३७१।

फिरंग अनुबन्धसे हो, तो—अष्टमूर्ति रसायन २४३।

मधुमेहकी अन्तिमावस्थामें—नाग भस्म ११५। बसन्तकुसुमाकर रस ४३२। प्रमेहगजकेशरी ५२५।

सुंघानेके लिये—मूर्च्छान्तिक नस्य ७९४। श्वासकुठार रस ३८६।

मद्यविषजन्य मूर्च्छा—अञ्जनरस द्वितीय ७७१।

(७४) मेदोवृद्धि (Obesity)

शिलासिन्दूर २३०। आरोग्यवर्द्धिनी ४४३। शिलासिन्दूर वटी ४६२। शिलाजीत ५७। चन्द्रप्रभा वटी ५६०। मेदोहर अर्क ७१०। महायोगराजगूगल ४१४। लक्ष्मीविलास रस अभ्रकप्रधान ३०८। लघुसुदर्शन ५९३।

जीर्णरोग, हृदय और नाडियोंमें मेदसचय—लक्ष्मीविलासरस ३०८। त्र्यूषणाद्य लोह ४४३।

(७५) यकृद्वृद्धि (उदररोगमें देखें ।)

(७६) रक्तदबाववृद्धि-(High arterial blood pressure)

सर्पगन्धादि गुटिका ५८८ । अश्वकंचुकी रस २७९ । इच्छाभेदी रस ३३० । चन्द्रप्रभा वटी ५६० । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ । सारिवासव ६९९ । शुद्धशिलाजीत ५७ । चन्द्रकला रस ३७१ । ताप्यादिलोह ३६३ । जहरमोहरा पिष्टी १७६ ।

मासिकधर्मके बदलेमें रक्त दबाववृद्धि—आरोग्यवर्द्धिनी+चन्द्र प्रभा ४४३ ।

शराबजनित रक्तदबाववृद्धि—चन्द्रप्रभा वटी ५६० । शिलाजीत ५७ ।

(७७) रक्तपित्त - (Haemorrhagic Diseases.)

शुद्ध गेरु ५७ । चन्द्रकला रस ३३१ । सारिवादि वटी ४८९ । लोहभस्म ९३ । सुवर्णमाक्षिकभस्म १२३ । वैडूर्यभस्म १५४ । पीतलभस्म १९० । वासावलेह प्रवाल और माक्षिक भस्म १२३ । पर्पटादि क्वाथ ६४९ । ह्रीबेरादि क्वाथ ६६० । वसन्तकुसुमाकर ४३२ ।

रक्त बन्द करनेके लिये—वराटिकाभस्म १७१ । प्रवालपिष्टी और सुवर्णगैरिक ५७ । कामदूधा ३९५ । मुक्तापिष्टी १५६ । शुक्तिभस्म १६९ । बोलबद्ध ३५१ । बोलपर्पटी २५९ । तृणकान्तमणिपिष्टी १७६ । उसीरासव ६७८ । अशोकारिष्ट ६९२ । दूर्वादिघृत ७५० । कुष्माण्डावलेह ७२५ । अरविन्दासव ७०२ ।

रक्तदबाव वृद्धिजन्य—पुनर्नवासव ६९८ । इच्छाभेदी ३३० ।

जीर्णरोगमें—अभ्रकभस्म १३३ । प्रवालपिष्टी १६१ । संगजराहतभस्म १८९ । द्राक्षासव ६८६ । वसन्तसुकुमाकर ४३२ । उसीरासव ६७८ । कनकासव ६८१ ।

शक्ति संरक्षणार्थ—कामधेनु रस ५३६ ।

(७८) रक्तविकार ।

मंजिष्ठादि चूर्ण ६१५ । पीतलभस्म १९० । कांस्यभस्म १९१ । लोकनाथ रस ४५२ । लघुमंजिष्ठादिक्वाथ ६३९ । बृहदमंजिष्ठादि क्वाथ ६३९ ।

दाहसह—गन्धक ५४ । गन्धकघृत ७५० । गन्धक रसायन ३९९ । सुवर्ण माक्षिक भस्म १२३ ।

सुजाक जन्य—सारिवासव ६९९ । अरविंदासव ७०२ । सुवर्णवंग २३२ । माजून उसवा ७३३ ।

उपदंशज—वंगभस्प १०० । मल्लभस्म १८२ । मल्लसिंदूर २२५ । व्याधिहरण २४५ । मंजिष्ठादि तालसिंदूर ४७७ । उपदंशसूर्य ४६५ । चोपचिन्यादि चूर्ण ६१७ । रक्तशोधक क्वाथ ६५१ । रक्तशोधकारिष्ट ७०४ । तुत्थभस्म १९२ ।

कोष्ठशोधनार्थ—नारायणचूर्ण ६०५ । मुंजिस और जुलाब ६५४ ।

(७९) रक्तस्राव ।

पित्तप्रकोपज—मुक्तापिष्टी १५६ । प्रवाल १५९ । उसीरासव ६७८ ।
छुरी लगनेसे—संगजराहत १८९ । घाव तैल ७६० । लाक्षाअर्क ७१२ ।
व्रणशोथमेंसे स्राव—(व्रणशोथमें देखें)

(८०) वमन--छर्दि--कै (Vomiting) ।

पित्तप्रकोपजन्य--वान्तिहृद् रस ३९२। कुमुदेश्वर ३९४ । छर्दिरिपुवटी ५५५ । शुक्तिभस्म १६९ । सुवर्णमाक्षिकभस्म १२३ । सूतशेखर ४७७ । पुष्पराग भस्म १५८। चन्द्रकलारस ३७१ । एलादिचूर्ण ६०५ । एलादिवटी ५६० । तृष्णाग्नि गुटिका ५८४ । यवानीखाण्डव चूर्ण ६०४ ।

गर्भपातके पश्चात वान्ति--सूतशेखर ४७७ ।

अजीर्ण जन्य--गोदोनेका ८७ । सजीवनीवटी ५४७ । कर्पूरासव ७०३ । कर्पूररसारा अर्क ७११ । द्राक्षा ६८६ । अग्निकुमाररस ३५२ । आरोग्यवर्द्धिनी ८८२ । जहरमोहरा पिष्टी १७६ ।

रक्तस्रावजन्य वान्ति--वगभस्म १०० ।

जाक्षेपक वातके पश्चात वमन--सुवर्णभस्म ७६ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ ।

त्रतनद्ग वमन--एलादि चूर्ण ६०५ ।

(८१) वमन कराना ।

नीलकण्ठरस ३२९ । तुत्थभस्म १९२ ।

(८२) वात रोग ।

अर्धाङ्गवात (Hemiplegia)--महावातविध्वसन रस ४०८ । एकागवीर ४१८ ।अर्धाङ्गवातारि ५२२ । जीर्ण होनेपर--ताप्यादि लोह ३६३ ।

वातश्लेष्मात्मक हो, तो--वातगजाकुश ४११ । महारास्नादि क्वाथ ६४६ ।

जीर्ण पक्षवध--पञ्चसूत रस २४६ । अभ्रक भस्म १३३ । अग्नितुण्डी ३५७ । लक्ष्मीविलास ३०८ । स्मृतिसागर ५३० । ताप्यादि लोह ३६३ । महायोगराज गूगल ४१४ । महारास्नादि क्वाथ ६४६ । मल्लसिंदूर २२५ ।

उपदंशजन्य पक्षाघात मल्लसिंदूर २२५ । समीर पन्नग २३६ । अष्टमूर्ति रसायन २४३ । मल्लसिंदूर वटी ४२० । वृहद् मञ्जिष्ठादि क्वाथ ६३९ । उपदंश सूर्य ४६५ ।

शिरा विकृति जन्य कम्पवात--शिवगभस्म ११० । सुवर्णभूपति २४१ । ताप्यादि लोह ३६३ । एकागवीर ४१८ । अर्धांगवातारि रस ५२२ ।

वातवाहिनी दोष और आमप्रकोप--वातहर गुटिका ५७५ । सूतराज रस २७४ । मल्लभस्म १८२ । महारास्नादि क्वाथ ६४६ । अजमोदादि चूर्ण ६२५ । कुमार्यासव ६७५ ।

शुक्रक्षयसे वात प्रकोप--रौप्यभस्म ८२ । वगभस्म १०० ।

अर्दित (Facial Paralysis,) अवबाहुक, हनुग्रह, मन्याग्रह, जिह्वास्तम्भ, शिराग्रह, विश्वाची, खञ्ज, कलायखञ्ज, कटिवात आदि--समीरपन्नग रस २३६ । सुवर्णभूपति २४१ । शुण्ठ्यादिपायस ७३६ । वातगजाकुश ४११ । महायोगराजगूगल ४१४ । एरण्ड पाक ७२८ । धात्रीभल्लातक वटी ५७७ । रौप्यभस्म ८२ । शिलाजीत ५७ । महावात विध्वसन ४०८ ।

कम्पवात--सुवर्णभूपति २४१ ।

विश्वाची--लक्ष्मीविलास रस ३०८ । प्रतापलंकेश्वर रस ४९५ ।

सर्वांगवात (Diplegia) और अन्य जीर्णवात—रौप्यभस्म ८२। वज्रभस्म १४९। लक्ष्मीविलास रस ३०८, ३७८। समीरपन्नग २३६। समीरगज-केसरी ४१२। मल्लसिंदूर २२५। अश्वगंधारिष्ट ६८२। विपर्तिदुकादि वटी ५६८। दशमूलारिष्ट ६७१।

आमाधिक जीर्णवात—महायोगराज गूगल ४१४। योगराज गूगल ५७१। अजमोदादि चूर्ण ६२५।

पित्तप्रकोप सहवास—योगेन्द्र रस ५३९। सूतशेखर रस ४७७। धात्री भल्लातक वटी ५७७।

कीटाणुप्रकोप आक्षेप—चन्द्रकला ३७१। संचेतनी वटी ३०७।

मलावरोधज आक्षेप—समीरपन्नग २३६।

तीव्र पीड़ा-सह आक्षेप—स्मृतिसागर ५३०।

आक्षेपक (Convulsions), अपतानक, धनुस्तम्भ आदि—वंगभस्म १००। अश्वकञ्चुकी रस २७९। समीरपन्नग २३६। लक्ष्मीनारायण ३०४। संचेतनी गुटिका ३०७। महावातविध्वंसन ४०८। सुवर्णभूपति २४१। कुमार्यासव ६७५।

अपतन्त्रक (Hysteria)—मल्लसिन्दूर २२५। कस्तूरीभैरव २७४ पूर्ण चन्द्रोदय २१७। मल्लसिन्दूर वटी ४२०। सारस्वतारिष्ट ६८९। हिस्टीरियानाशक वटी ५७५। हिस्टीरिया नाशक चूर्ण ६२६। संचेतनी गुटिका ३०७। वातकुलान्तक रस ४०७। सर्पगन्धादि वटी ५८८।

जीर्ण आक्षेपक—अष्टमूर्ति रसायन २४३। मलसिन्दूर २२५। समीर-पन्नग २३६।

बारम्बार उत्पन्न होनेवाला वात—नागभस्म ११५।

गर्भपात और कष्टार्त्तवसे वातप्रकोप—पूतशेखर ४७७।

कलाय खञ्ज—लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ३७८। अष्टमूर्ति रसायन २४३। उपदंश सूर्य ४६५। रौप्यभस्म ८२।

खल्ली—प्रतापलंकेश्वर रस ४९५। लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ३७८।

सूतिका का वातप्रकोप—हेमगर्भपोटलीरस २९३।

पूय और व्रणसे धनुर्वात—एकांगवीर ४१८। ताप्यादि लोह ३६३।

उपदंशज संधिवात—मल्लभस्म १८२। मल्लसिदूर २२५। अष्टमूर्ति रसायन २४३। तालसिदूर २२८। चींचाभल्लातक वटी ५७५। धात्रीभल्लातक वटी ५७७। रक्तशोधकारिष्ट ७०४। उपदंश सूर्य ४६५। गन्धक रसायन ३९९। सारिवासव ६९९।

वातज और वात-कफात्मक गृध्रसी (Sciatica) समीर पन्नग २३६। अज-मोदादि चूर्ण ६२५। दशमूल क्वाथ ६३७। नाराचघृत ७४५। शुण्ठयादि पायस ७३६। बृहद् योगराज गुगल ४१४। महावात विध्वंसन ४०८।

मालिशार्थ- मल्ल तैल ७५२। वातहर तैल ७५४। चक्रमर्दन तैल ७५७। नारायण तैल ७५८। आमसह होनेपर महाविषगर्भ तैल ७६५। लघु विषगर्भ तैल ७६६। प्रस्वेद लाकर रोग शमनार्थ—शिरःशूलान्तक मलहम ७८९।

शक्ति रक्षणार्थ—त्रैलोक्यचिन्तामणि रस २८७ । लक्ष्मीविलास ३७८, ३०८ । पूर्णचन्द्रोदय २१७ । अश्वगन्धारिष्ट ६८२ । । नागभस्म ११५ ।

निर्बलताजनित कुब्जता—त्रिवंगभस्म ११० ।

(८३) वात-रक्त (Gout)

सब प्रकारमें—लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ६३९ । बृहद्मंजिष्ठादि ६३९ ।

जीर्ण रोग—अमृताद्यादि लोह ४२१ । दशमूल क्वाथ ६३७ ।

वात और कफ प्रधान—हरताल भस्म १७७ । तालसिंदूर २२८ । रस माणिक्य ४७४ ।

पित्त प्रधान—गन्धक रसायन ३९९ । पञ्चनिम्ब चूर्ण ४७३ ।

जीर्ण मूत्रविकृति सह—ताप्यादि लोह ३६३ । सारिवासव ६९९ ।

आम और कफ प्रधान—कैशोर गूगल ५७३ । महायोगराज गूगल ४१४ । चविकासव ६९६ ।

आमप्रधान जीर्ण—बृहद्योगराज गूगल ४१४ । योगराज गूगल ५७१ ।

(८४) विचर्चिका—खर्ज—खुजि (Eczema)

वंगभस्म १०० । गन्धक रसायन ३९९ । माजून उसवा ७३३ ।

लगानेके लिये—खुजीहर मल्हम ७८६ ।

(८५) विद्रधि (Abscess) ।

वज्रक्षारी ४६ । त्रैलोक्य चिन्तामणि २८७ । त्रिफला चूर्ण ६०६ । नागभस्म ११५ । वंगभस्म १०० । जसदभस्म ११२ । महामृगांक ३७६ ।

अन्तर्विद्रधि—रोहनायरस ४५२ । अश्वकञ्चुकी २७९ । ताम्रभस्म ८७ । अग्नितुन्डी वटी ३५७ । शृंगभस्म १८४ । पुनर्नवासव ६९८ ।

लगानेके लिये—कर्पूरादि मलहम ७८२ । व्रणामृत मलहम ७८८ । गन्धा मलहम ७८३ । कोशातक्यादि तैल ७६२ । घाव तैल ७६० ।

मांसार्बुद—(Cancer)—वंगभस्म १०० । ताम्रभस्म ८७ ।

(८६) विरेचन—जुलाब देना ।

इच्छाभेदी ३३० । नारायण चूर्ण ६०५ । स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण ६०६ । पञ्चसमचूर्ण ६०८ । विरेचन चूर्ण ६०८ । पञ्चसकारचूर्ण ६०८ । शेष औषधि "आनाह" रोगमें लिखी है ।

(८७) विषविकार ।

मूषक (चूहे) का विष—अश्वकञ्चुकी रस २७९ । बृहद्योगराज गूगल ४१४ । आशुविषान्तक रस ५०८ ।

सर्प-विष—तुत्थभस्म १९२ । संजीवनी वटी ५६७ । बेहोशी होगई हो, तो हरताल पुष्प ५०७ । अञ्जनार्थ—अञ्जन रस ७७१ ।

श्वान-विष—विषतिन्दुकादि वटी ५६८ । अग्नितुण्डी वटी ३५७ । कस्तूर्यादि वटी ५५१ ।

लूता- मकडीका विष—त्रैलोक्यचिंतामणि रस २८७ । सुवर्णभूपति २४१ । गन्धकरसायन ३९९ । अश्वकञ्चुकी रस २७९ ।

मधुमक्षिका विष—वृहद् योगराज गूगल ४१४ । शोथनाशक अर्क ७११ । शिरःशूलान्तक मलहम ७८९ ।

दूषी विष—तुत्थभस्म १९२ । कल्याणघृत ७५१ । गन्धक रसायन ३९९ ।
अजीर्ण-सेन्द्रियविष—ताप्यादिलोह ३६३ । आरोग्यवर्द्धिनी ४४३ । रक्त-शोधक शर्बत ७३७ ।

पारदविष—पर्पटाद्यरिष्ट ७०१ । गन्धक रसायन ३९९ ।
नाग (शीशा) विष—गन्धक ५४ । शुभ्राभस्म १९६ ।

जीर्ण विष प्रकोप—सुवर्ण भस्म ७६ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ । तार्क्ष्य भस्म १५३ । पुष्परागभस्म १५४ । प्रवालपिष्टी १६१ । रसादिचूर्ण ३९४ । पिरोजाभस्म १७७ । ताप्यादिलोह ३६३ ।

कोष्ठशोधनार्थ—नारायण चूर्ण ६०५ । तुत्थभस्म १९२ । इच्छाभेदी रस ३३० ।

क्विनाइन जनित विष—सुवर्णमाक्षिकभस्म १२३ । प्रवालपिष्टी १६१ । पर्पटाद्यरिष्ठ ७०१ ।

(८८) विसर्प और विस्फोटक ।

मुक्तापिष्टी १५६ । प्रवालपिष्टी १६१ और गिलोयसत्व । खदिरारिष्ट ६८० । खदिराष्टक क्वाथ ६४५ । गन्धक रसायन ३९९ । पिरोजाभस्म १७७ ।
वाह्योपचारार्थ—मांस्यादि लेप ७८१ । निशादिलेप ७८२ ।

(८९) विसूचिका हैजा (Cholera)

जन्तुजन्य—कर्पूरासव ७०३ । कर्पूरधारा अर्क ७११ । संजीवनी वटी ५४७ । विसूचिकाहर वटी ५८६ । लहशुनादि वटी ५८५ । सूतशेखर ४७७ ।

अजीर्णजन्य—पित्ताधिक—जातिफलादिवटी ३४५ । सूतशेखर ४७७ । शंखभस्म १७३ । संजीवनी वटी ५४७ ।

अजीर्णजन्य कफाधिक—अग्निकुमार ३५२ । क्रव्याद् रस ३५४ । चींचा-भल्लातक वटी ५७५ । हिंग्वष्टक चूर्ण ६०१ । शिवाक्षार पाचन चूर्ण ६०२ । लहशु-नादि वटी ५८५ ।

नाड़ियोंका खिचाव शमनार्थ—ताम्रभस्म ८७ । सूतशेखर ४७७ । खल्कुप-त्रादि उद्वर्त्तन ७९५ ।

रोगके अन्तमें वमन हो, तो—सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३ ।
शक्तिरक्षणार्थ—मल्लसिंदूर २२५ । लक्ष्मीविलास रस ३०८ । हेमगर्भ-पोटली रस ३७७ । समीरपन्नग २३६ ।

(९०) वृक्क विकार ।

वृक्कशोथ (Bright Disease) ताम्रपर्पटी २५७ । चन्द्रप्रभावटी ५६० । देवदार्वाद्यरिष्ठ ७०४ । सर्पगन्धादि गुटिका ५८८ ।
वृक्कव्रण—देवदार्वाद्यरिष्ट ७०४ । वंगभस्म १०० ।
वृक्क विद्रधि—लोकनाथ रस ४५२ ।
वृक्क शूल—त्रिविक्रम ४३५ । पाषाणवज्रक ४३५ । अगस्तिसूतराज ३३४ ।

शीतल पर्पटी २६५। माजून फलासफ ७३२। महावातराज ५१७। कनकासव ६८१।

(९१) वृषण वृद्धि।

वृद्धिवाधिका वटी ४६१। वृद्धिदमन लेप ७८२।

वृषणशोथ—त्रिफला चूर्ण ६०६।

(९२) व्रणशोथ, अन्तरव्रण, सद्योव्रण, नाडीव्रण।

शुद्धगन्धक ५४। वगभस्म १००। जसदभस्म ११२। कासीसभस्म १४४। गन्धक रसायन ३९९।

अन्तर व्रण—नागभस्म ११५। कानदूघा ३९५। कुटजारिष्ट ६८९।

व्रणपर लेगाये—दशाग लेप ७७५। व्रणामृत मलहम ७८४। व्रणशोधक लेप ७७७। चूनेका मलहम ७८५।

अस्थिव्रण—नागभस्म ११५।

नाडीव्रणादि गम्भीर व्रण—गन्धक रसायन ३९९। दशमूलारिष्ट ६७१। जात्यादि घृत ७४६। चक्रमर्दादि ७५४। निम्ब तैल ७५७। नाडीव्रणहर तैल ७६१। करवीर तैल ७६२। कोशातक्यादि तैल ७६२। कर्पूरादि मलहम ७८२। भगदरनाशक मलहम ७८७। पारदादि मलहम ७९०।

नेत्रगत व्रण—कासीसभस्म १४४।

रक्तज शोथ और मुद्रमार—निशादि लेप ७८२। अस्थिराधानक लेप ७७९।

उपदशज व्रण—उपदश सूर्य ८६५। अष्टमूर्ति रसायन २८३। व्याधिहरण रस २४५।

(९३) शिरशूल (Headache)

तीक्ष्ण शूल—महावातविध्वसन रस ४०८। दशमूलारिष्ट ६७१।

सामान्य शूल—अभ्रकभस्म १३३। शूलवज्रिणी ४२१। सुवर्ण-मालिनीवसन्त ३१६। गोदन्ती भस्म १४८।

कृमिजन्य शूल नासिकासे रक्तस्राव—तृणकातमणि पिष्टी १७६।

अर्द्धावभेदक—लघु सूतशेखर ४८७। सूतशेखर ४७७।

शिरदर्दका वारवार दौरा होना—शिलाजीत ५७। सूतशेखर। ४७७।

वातज शीर्ष शूल—महावात विध्वसन ४०८। लक्ष्मीविलास अभ्रकयुक्त ३०८। सूतशेखर ४७७। अगस्ति सूतराज ३३४।

वातरक्तसे शूल—वृद्ध योगराज गूगल ४१४।

पित्तप्रधान दर्द—शिलाजत्व ४३। गोदन्ती भस्म १५८। कानदूघा ३९५। सूतशेखर ४७७। प्रवालपिष्टी १६१। लघु सूतशेखर ४८७। च्यवनप्राशावलेह ७१८। सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३। सितोपलादि ५९६। चन्दनादि चूर्ण ६०३। शक्ति भस्म १६९।

पित्त प्रधानजीर्ण व्यथा—सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३। मण्डूरमाक्षिक १३३।

पित्त प्रधान अर्द्धावभेदक—मधुकादि हिम ६५९।

वातपित्तात्मक शूल—सूतशेखर ४७७। सुवर्णभूपति ७४१। सुवर्णमाक्षिक-

भस्म १२३ ।

वातकफात्मक सूर्यावर्त्त--श्वासकुठार रस ३८६ ।

पित्तज--लघु सूतशेखर ४८७ ।

मलावरोधसे भारीपन--आरोग्यवर्धिनी ४४३ । अश्वकंचुकी २७९ । सुवर्णभूपति २४१ । आंवलोंका मुरब्बा ७३६ । भृंगराजासव ७०० ।

बाह्योपचार--शिरः शूलान्तक मलहम ७८९ । षड्बिन्दु तैल ७६२ ।

सूतिका शिरदर्द--प्रतापलकेश्वर ४९५ । दशमूलारिष्ट ६७१ । सूतशेखर ४७७ ।

(९४) शीतपित्त-पित्ती--उदर्द--कोठ ।

सूतशेखर ४७७ । अरोग्यवर्द्धिनी ४४३ । अश्वकचुकी रस २७९ । गन्धक रसायन ३९९ । मल्ल सिन्दूर २२५ । प्रवालपिष्टी १६१ ।

अपचनजनित--सुवर्ण भस्म ७६ । गन्धक रसायन ३९९ ।

(९५) शूल (Colic) ।

सब प्रकारके शूलपर--शूलगजिगी ४२१ । सुवर्णभूपति २४१ ।

अजीर्णजन्य नया--शंख वटी ३४२ । मल्लादि वटी दूसरी विधि ३१५, ३८९ । हिंगुल वटी ३४६ । जातीफलादि वटी ३४५ । हिंगुल रसायन ४२२ । नींबू-द्राव ७०६ । उद्गारामृत योग ७०७ । लघुशंखद्राव ७०७ । जम्भीरीद्राव ७०९ । स्वादिष्ट शर्बत ७३८ । अदरखका शर्बत ७३९ । चित्रकादि वटी ५५९ । हिग्वष्टक चूर्ण ६०१ । गन्धक वटी ५७९ । कुमार्यासव ६७५ । शीतल पर्पटी २६५ ।

वात-प्रधान--नागभस्म ११५ । तीव्र हो, तो--महावात विध्वंसन ४०८ । दशमूलारिष्ट ६७१ । हिग्वादि वटी ५८६ ।

पित्त-प्रधान--ताप्यादि लोह ३६३ । शंखवटी ३४२ । शक्तिभस्म १६९ । शंख भस्म १७३ । कनकासव ६८१ । जीरकाष्टि ६९५ । वान्तिह्रदरस ३९२ । प्रवालपिष्टी १६१ ।

कफप्रकोप -जन्य--ताम्रभस्म ८७ । क्रव्याद् ३५४ । पीतलभस्म १९० । अश्वकंचुकी २७९ । लक्ष्मीविलास ३०८ । हिंगुल रसायन ४२२ । नागगुटिका ५५६ । अश्विनीकुमार ४३६ । लक्ष्मीनारायण ३०४ । बिल्वादि क्वाथ ६५५ ।

आम शूल-- अग्निकुमार ३५२ । क्रव्याद् रस ३५४ । महायोगराज गूगल ४१४ । कासीसभस्म १४४ । आनन्दभैरव रस ३३१ । लोहभस्म ९३ । शंख वटी ३४२ ।

वात-पित प्रधान--सूतशेखर ४७७ । सुवर्णभूपति २४१ । नागभस्म ११५ । बृहत्यादि क्वाथ ६५५ । कपर्दिकाभस्म १७१ ।

परिणाम शूल--ताम्रभस्म ८७ । मण्डूरमाक्षिक १३३ । शंखभस्म १७३ । कनकासव ६८१ । कुमार्यासव ६७५ । लक्ष्मीविलास ३७८ । गंधक वटी ५७९ । कपर्दिका भस्म १७१ । सुवर्णमाक्षिक १२३ । गुल्मकुठार ४२४ । दशमूलारिष्ट ६७१ । सुवर्ण पर्पटी+कामदूधा+संगजराहत भस्म १८९ ।

नाग विषज शूल--नागभस्म ११५ । शुभ्राभस्म १९६ । शम्बुकभस्म १९५ । शंख वटी ३४२ । शंखद्राव ७०७ । जम्भीरी द्राव ७०९ ।

शीतोपचार जन्य शूल—आनन्दभैरव रस ३३१। कस्तूरीभैरव २७४।

कृमिजन्य शूल—कृमिकुठार रस ३६१।

अन्नद्रव शूल—ताम्रभस्म ८७। सुवर्णभूपति २८१। शुक्तिभस्म १६९। वान्तिहृन्रस ३९२। सूतशेखर ४७७। कनकासव ६८१।

अष्ठीलादि ग्रन्थि जन्य —ताम्रभस्म ८७।

आनज गुल्म और शूल—कासीस भस्म १८४।

ग्रन्थरक्त जन्य—महायोगराजगूगल ४१४। दशमूल कषाय ६३७।

बद्धकोष्ठजन्य शूल—चविकासव ६९६।

रक्तवाहिनियोंके सकोचसे—लोह भस्म ९३।

सन्धिगत और अस्थिगत शूल—नागभस्म ११५।

पार्श्वशूल—लक्ष्मीविलास (३०८ ३४८)। अभ्रकभस्म १९६। गुल्मकुठार ४२८।

पित्ताशय शूल —कुमार्यासव ६७५। महावातराज रस ५१७। शृंगभस्म १८४। पञ्चसूत रस २४६। दशमूलारिष्ट ६७१। लक्ष्मीनारायण रस ३०४।

रक्तातिसारमें शूल—शंखोदर रस ३४४।

हृदय शूल –(वातज नागभस्म ११५), (पित्तज-गुल्मकुठार ४२५), (कफज— त्रैलोक्यचिन्तामणि २८७। शृंगभस्म १८४। पूर्णचन्द्रोदय २१७। रससिन्दुर २२१। लक्ष्मीविलास रस ३०८।

उदितशूल—महावात विध्वंसन ४०८।

शुष्क कफज शूल—समीरपन्नग २३६।

मस्तिष्क शूल—रौप्यभस्म ८२। गोदन्तीभस्म (कफाधिक्यपर १८८)

उपाय—वातशूलहर मलहम ७८९। शिर शूलान्तक मलहम ७८९। शोथनाशक अर्क ७१९।

आमवातज शूल—महायोगराजगूगल ४१४।

(९६) शोथ—सूजन (ANASARCA)

रक्त शोथ—लोहभस्म ९३। लोहभस्म और ताम्रभस्म ८७। तक्रमण्डूर ४५६। पुनर्नवा मण्डूर ४५८। आरोग्यवर्द्धिनी ४४३। लोहपर्पटी २५८। ताप्यादिलोह ३६३। त्रिफलारिष्ट ६८३। अभयारिष्ट ६९०। पुनर्नवादि चूर्ण ६१४। उसीरासव ६७८। पुनर्नवासव और सारिवासव मिश्रण ६९९।

हृदय विकृतिजन्य जीर्ण—सुवर्णमाक्षिक भस्म १२३। लक्ष्मीविलास ३०८। अभ्रकभस्म १३३। वसन्तकुसुमाकर ४३२। आरोग्यवर्द्धिनी ४४३।

यकृद्दाल्युदरसह शोथ—ताप्यादिलोह ३६३। आरोग्यवर्द्धिनी ४४३।

फुफ्फुसावरणके शोथ—आरोग्यवर्द्धिनी ४४३।

कफ प्रधान—तालमण्डूर २२८। दुग्धवटी ३४०।

मूत्रपिण्ड-विकृति पित्तप्रधान सर्वांगशोथ—कामदूधा रस ३९४। आरोग्यवर्द्धिनी ४४३।

विदारज—शिलाजतु ५७।

रक्तक्षय, रक्तस्राव या प्लीहावृद्धिजन्य शोथ—ताप्यादिलोह ३६३। लोह-

भस्म ९३ ।

चिरकारी मन्द शोफ—गद्मुरारि रस २९८ ।

दाह, वमन, शिरदर्द हो, तो—कामदूधारस ३९५ ।

प्रदाह शोथ—(Inflammation) पर बाह्योपचार—शिरःशूलान्तक मलहम ७८९ ।

वातज—शोथनाशक अर्क ७११ । बीजपुरजटादि लेप ७७६ ।

पित्तज—दशाग लेप ७७५ । मधुकादि लेप ७७६ ।

कफज—कृष्णादि लेप ७७६ ।

वातकफज—दोषघ्न लेप ७७५ ।

रक्तज शोथ—दशांग लेप ७७५ ।

(९७) श्लीपद—हाथीपगा (Elephantiasis)

गन्धक रसायन ३९९ । नित्यानन्द रस ४६४ । वृद्धदारुकादि चूर्ण ६१३ । लक्ष्मीविलास रस ३०८ । महायोगराज गूगल ४१४ ।

लगानेके लिये—श्लीपदहर लेप ७८२ ।

(९८) श्वास—दमा (Dyspnoea)

तमकश्वास (Asthama)—श्वासरोगान्तक वटी ३८७ । मल्लभस्म १८२ । अभ्रकभस्म १३३ । मल्लसिंदूर २२५ । शिलासिंदूर २३० । मल्लपुष्प ३१४ । हेमगर्भपोटली रस ३७७ । श्वास कुठार ३८६ । श्वासदमन चूर्ण ३८९ । शृंगभस्म १८४ । रससिंदूर २२१ । मल्लादिवटी ३८९ । समीरपन्नग २३६ । रस माणिक्य ४७४ । पञ्चसूत २४६ । मल्लसिंदूरवटी ४२० । वासादि क्वाथ ६५० । कनकासव ६८९ । महाद्राक्षासव ७०५ । महावातराज रस ५१७ । आनन्दभैरव रस ३३१ । श्वासान्तक वटी ५५६ ।

प्रतमक—पित्तज श्वास—सुवर्णभस्म ७६ । पन्नाभस्म १५३ । मुक्तापिष्टी १५६ । जसदभस्म ११२ । लोहभस्म ९३ और अभ्रकभस्म १३३ । नीलमणि भस्म १५४ । वैक्रान्तभस्म १५५ । लक्ष्मीविलास ३७८ । मल्लभस्म १८२ । हरताल गोदन्ति भस्म १९४ । प्रवालपञ्चामृत ४२८ ।

जीर्ण रोग—सुवर्णभस्म ७६ । लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ३७८ ।

कफसह श्वास—शृंगभस्म १८४ । कनकासव ६८१ ।

वातज श्वास—दशमूलारिष्ट ६७१ । प्रतापलंकेश्वर रस ४९५ ।

अपचन जनित श्वास—क्रव्याद् रस ३५४ ।

हृदयावरोध दूर करनेके लिये—महावातराज रस ५१७ । पूर्णचन्द्रोदय २१७ । पञ्चसूत २४६ । जात्यादिधूम्र ७९२ । देवदार्वादिधूम्र ७९३ । मनःशलादि धूम्रपान ७९३ ।

क्षुद्रश्वास—(Breathlessness)—चिन्तामणि चूर्ण ६३४ । लोहभस्म ९३ । आनन्दभैरव रस ३३१ । अभ्रकभस्म १३३ । द्राक्षासव ६८६ ।

छिन्नश्वास—लक्ष्मीविलास अभ्रकप्रधान ३०८ । हेमगर्भपोटली ३७७ ।

वृद्धावस्थामें श्वास—रससिंदूर २२१ । लक्ष्मीविलास ३७८ । वसन्तकुसुमाकर ४३२ । पूर्णचन्द्रोदय २१७ । अश्वगन्धारिष्ट ६८२ । श्वासकुठार ३८६ ।

वातरक्तमें श्वास—हरतालभस्म १७७ ।